MAEC-01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

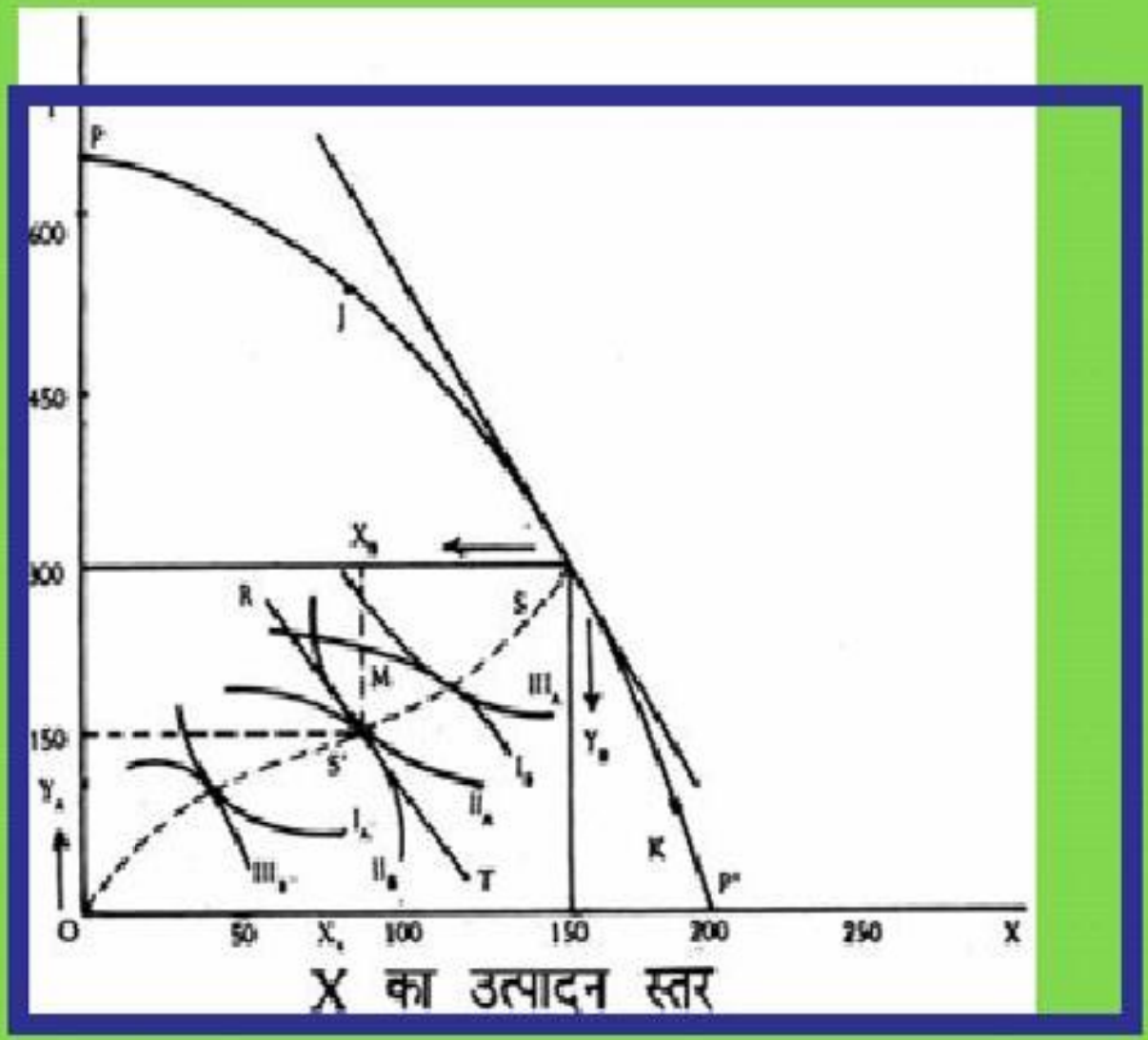

आर्थिक सिद्धान्त (प्रथम)

1

पूर्व पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. बी.एस. शर्मा

पूर्व कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक

डॉ. एल.एन. गुप्ता, संयोजक

आचार्य एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रोफेसर एस.एस. आचार्य निदेशक, विकास अध्ययन संस्थान (आई.डी.एस.) जयपुर	**प्रोफेसर डी.डी. नरूला** मानद वरिष्ठ अध्येता विकास अध्ययन संस्थान जयपुर
डॉ. श्याम नाथ फ़ेलो,एन.आई.पी.एफ़. पी नई दिल्ली	**डॉ. एम.के. घड़ोलिया** सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. प्रमोद वर्मा प्रोफेसर,इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट अहमदाबाद	**श्री आर.पी. शर्मा** सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. अमिताभ कुन्डु निदेशक, गुजरात इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट रिसर्च गोटा, अहमदाबाद	**डॉ. जे.के. शर्मा** सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रोफेसर ए.के. सिंह गिरि इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट स्टडीज लखनऊ	

डॉ. एम.के. घड़ोलिया (तत्कालीन अध्यक्ष) सह आचार्य, अर्थशास्त्र
विभाग ने 16.8.1996 तक इस पाठ्यक्रम का संयोजन किया।

पाठ्यक्रम संशोधन अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. एल.आर. गुर्जर

निदेशक अकादमिक

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक

प्रो. जे.के. शर्मा

आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. फरीदा शाह, आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय , उदयपुर	**डॉ एन. के. दशोरा,** अर्थशास्त्र विभाग, राजीव गाँधी जनजाति विश्वविद्यालय, उदयपुर
डॉ. धीरेश कुलश्रेष्ठ सह - आचार्य हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़	**डॉ.हेमा मंगलानी,** सहायक आचार्य, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ. सुरेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	

सम्पादन एवं पाठ लेखन

संपादक

प्रो. जे.एम. जोशी

भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

1. डॉ. एम.के. घड़ोलिया सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**2. डॉ. जे.के. शर्मा** सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
3. डॉ. एन.पी. पाठक सहायक आचार्य, व्यावसायिक अर्थशास्त्र विभाग, अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)	**4. डॉ. एच.एस. अग्रवाल** वरिष्ठ सहायक आचार्य आगरा कॉलेज, आगरा (उ.प्र.)
5. डॉ. के.वी. भानुमूर्ति दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	**6. डॉ.(श्रीमती) एस. मूर्ति** आचार्य एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
7. डॉ. एल.एन. भगत आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग रांची विश्वविद्यालय, रांची	**8. डॉ. सी.एस. बरला** आचार्य एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राज.)

9. डॉ. वी.सी. सिन्हा आचार्य एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)	**10. डॉ. के.आर.जी. नायर** आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग (दक्षिण परिसर) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
11. डॉ. भगवत स्वरूप सेवानिवृत्त सह आचार्य जोधपुर विश्वविद्यालय जोधपुर (राज.)	**12. श्री एम.के. अग्रवाल** वरिष्ठ सहायक आचार्य, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
13. डॉ. अनिल कुमार सह-आचार्य, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर	**14. डॉ. एल.एन. दत्ता** आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग रांची विश्वविद्यालय रांची
15. डॉ. एच.वी. त्रिवेदी वरिष्ठ सहायक आचार्य एम.एल.वी. राजकीय स्वयत्तशासी महाविद्यालय भीलवाडा (राज.)	**16. डॉ. प्रदीप कुमार मेहता** सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग एस.जी.टी.बी. खालसा स्नातकोत्तर महाविद्यालय नई दिल्ली
17. डॉ डी. एस. भुल्लर, (39 इकाई) व्याख्याता अर्थशास्त्र, राजकीय नेहरु मेमोरियल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हनुमानगढ़	18. **श्री हरध्यान बबेरवाल,**(3,4,6,13 इकाई) व्याख्याता अर्थशास्त्र, सेंट विल्फ्रेड महाविद्यालय, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.अशोक शर्मा कुलपति **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**प्रो.(डॉ.) एल.आर. गुर्जर** निदेशक, अकादमिक **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**डॉ अरविंद पारीक** निदेशक, सामग्री उत्पादन और वितरण **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पुनःउत्पादन : मई 2017 ISBN NO- 13/978-81-8496-366-3

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MAEC-01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

आर्थिक सिद्धान्त (प्रथम) -1

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड –I उपभोक्ता व्यवहार का सिद्धान्त		
1.	विषय परिचय	1-12
2.	मांग का नियम	13-37
3.	उदासीनता वक्र विश्लेषण : कीमत, आय, स्थानापन्न प्रभाव, निम्न एवं गिफिन वस्तुएँ	38-53
4.	उपभोक्ता की बचत	54-68
5.	मांग की लोच	69-86
6.	प्रगटित अधिमान सिद्धान्त एवं अधिमान संरचना	87-96
खण्ड –II उत्पादन		
7.	निश्चितता तथा अनिश्चितता की दशाओं में उपभोक्ता व्यवहार-स्थायी तथा गैर-स्थायी वस्तुओं की माँग	97-114
8.	फर्म के उद्देश्य - लाभ अधिकतमकरण, विक्रय अधिकतमकरण	115-139
9.	अल्पकाल मे उत्पादन फलन-परिवर्तनशील अनुपात का नियम	140-156
10.	दीर्घकाल मे उत्पादन फलन: पैमाने के प्रतिफल	157-168
11.	लागत रेखाएं और उनका परिमाणांकन	169-191
12.	पैमाने की मितव्ययताएं	192-203
खण्ड –III कीमत निर्धारण		
13.	फर्म की आय की अवधारणा	204-219
14.	पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण	220-242
15.	एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण	243-260
16.	विभेदकारी एकाधिकार के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन का निर्धारण	261-274
17.	एकाधिकार प्रतियोगिता में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण	275-289
18.	गैर सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूप	290-308
19.	सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूप	309-328
20.	द्विपक्षीय एकाधिकार	329-345
21.	एकाधिकार तथा केन्द्रीयकरण का अंश	346—259
22.	फर्म की वृद्धि एवं विलय	360-375
23.	क्षमता उपयोग की धारणा	376-388

24.	मूल्य विभेदीकरण एवं मार्क-अप मूल्य निर्धारण	389-407
खण्ड –IV साधन कीमत निर्धारण		
25.	सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त – पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत	408-433
26.	सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त – अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत	434-461
27.	लगान के सिद्धान्त I : रिकार्डो के सिद्धान्त	462-473
28.	लगान के सिद्धान्त II : आधुनिक सिद्धान्त	474-485
29.	ब्याज के सिद्धान्त I : कीन्स पूर्व	486-501
30.	ब्याज के सिद्धान्त II : कीन्स का सिद्धान्त	502-518
31.	मजदूरी सिद्धान्त	519-542
32.	लाभ के सिद्धान्त	543-557
खण्ड – V कल्याणकारी अर्थशास्त्र		
33.	सामान्य साम्य की अवधारणा- उपभोक्ता का साम्य	558-573
34.	सामान्य साम्य की अवधारणा- उत्पादक का साम्य	574-586
35.	कल्याण अर्थशास्त्र	587-600
36.	अधिकतम कल्याण हेतु पेरेटो की इष्टतम शर्तें	601-620
37.	नव कल्याण अर्थशास्त्र	621-637
38.	क्षतिपूर्ति सिद्धान्त	638-654
39.	द्वितीय श्रेष्ठतम का सिद्धांत तथा ऐरो का असम्भावना सिद्धांत	655-664

प्रस्तावना

प्रथम इकाई विषय-प्रवेश के बारे मे है जिसमे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के बारे में आपको विस्तार से बताया गया है। इस इकाई में आर्थिक सिद्धान्त के विश्लेषण की दो महत्वपूर्ण शाखा के - व्यष्टिगत एवं समष्टिगत के बीच आपसी सम्बन्ध एवम् विभिन्नताओ को समझाया गया है। इसके साथ ही अर्थशास्त्र के वास्तविक एवम् आदर्शमूलक स्वरूप की चर्चा भी की गयी है। अर्थशास्त्र में साम्य की स्थिति एवम् आशिक साम्य की स्थिति के महत्व की चर्चा भी यहाँ की है।

द्वितीय इकाई में मांग के नियम की चर्चा की गयी हे। उपयोगिता विश्लेषण के आधार पर मांग की अवधारणा का विवेचन इस इकाई की विषय वरत है। इसके अतिरिक्त तटस्थता तक विधि के आधार पर माँग के सिद्धान्त की व्याख्या एवं कीमत, आय, स्थानापन्न प्रभाव, निम्न एवं गिफिन वस्तुएँ की व्याख्या तृतीय इकाई में की गयी है। चतुर्थ इकाई इकाई में उपभोक्ता की बचत की व्याख्या की गई है |

पंचम इकाई मे वस्तु की माँग पर बाजार कीमतों एव आय परिवर्तनो के प्रभावो को मापने की दृष्टि से माँग की लोच की चर्चा की गयी है। माँग की लोच का अर्थ एवम् इसकी परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद इस इकाई में माँग की लोच की प्रमुख श्रेणियो की चर्चा की गयी है! माँग की लोच को मापने की प्रमुख विधियों की जानकारी भी इस इकाई मे दी गयी है।

सांतवी इकाई में उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण निश्चितता एवम् अनिश्चितता की दशाओं मे अलग-अलग किया जाता है। प्रतिष्ठित आर्थिक सिद्धान्तों में उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त की व्याख्या अनिश्चितता की दशाओं में नहीं की गयी हैं, आधुनिक अर्थशास्त्री इसे महत्वपूर्ण मानते हैं। उनके मतानुसार उपभोक्ताओं का निर्णय अनिश्चितता की स्थिति में लेने पडते हैं। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण इन दो विभिन्न स्थितियों में कर सकेगे। इसके साथ ही स्थायी उपभोग वस्तुओं की मांग सम्बन्धी नेरलोव के 'सग्रह समायोजन रचरूप' का संक्षिप्त परिचय भी दिया जायेगा।

प्रारंभ, इकाई 8, में आप फर्म के मूल उद्देश्यो के बारें में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेगे। साधारणतया यह माना जाता है कि एक फर्म का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। इसे लाभ अधिकतमकरण (Profit Maximization) का उद्देश्य कहा जाता है। इस इकाई मे इसका चित्रों एवं समीकरणों द्वारा विस्तारपूक्क विश्लेषण किएया जायेगा। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों का विचार हैं कि लाभ अधिकतमकरण के अतिरिक्त भी एक फर्म के अन्य उद्देश्य हो सकते हैं। इनमें मुख्य है : प्रो. बॉमोल का विक्रय अधिकतमकरण अथवा आय अधिकतमकरण (Sales Maximization or income maximization) किटोवस्की हिगिन्स तथा' रेडर द्वारा प्रतिपादित संतुष्टि (तुष्टिगण) अधिकतमकरण (satisfaction maximization) विलियमसन द्वारा विकसित प्रबधकीय सिद्धान्त, उपयोगिता अधिकतमकरण (utility maximization) पेनरोज द्वारा प्रदत्त वृद्धि अधिकतमकरण (Growth maximization) हॉल एवं हिच द्वारा प्रतिपादित पूर्ण लागत कीमत सिद्धान्त (full cost theory) और सायर्ट और मार्च द्वारा निरूपित व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त (behavioral theory of the firm) इन सभी उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों का आप आलोचनात्मक अध्ययन करेंगे।

एक् फर्म के अल्पकालिक एव अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक उद्देश्यों में भिन्नता हो सकती है। इकाई 9 मे आप काल के दृष्टिकोण से फर्म के मूल उद्देश्यों का अध्ययन करेंगे। यदि माँग मे वृद्धि (या

कमी) के अनुरूप पूर्ति में वृद्धि (या कमी) करने में फर्म समर्थ नहीं हो, एवं मांग पर कीमतों का प्रभाव अधिक हो तो ऐसी समयावधि को अल्पकाल कहैगे। दीर्घकाल वह समयावधि है जिसमें उत्पादन के सभी साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है, और पूर्ति में इच्छानुसार, मांग के अनुरूप, परिवर्तन किया जा सकता है। अल्पकाल में फर्म को हानि भी उठानी पड़ सकती है। लाभ अधिकतमकरण के उद्देश्य के दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि यदि अल्पकाल में एक् फर्म को P=AVC भी न मिले तो उत्पादन जारी नहीं रखा जायेगा। इसके विपरीत दीर्घकाल मे स्वतत्र प्रवेश एवं बहिर्गमन के कारण एवं उत्पादन के सभी साधनों के परिवर्तनशील होने के कारण उत्पादन तभी किया जा सकेगा जबकि सभी फर्मो को सामान्य लाभ मिलता रहे। फर्म का उद्देश्य दीर्घकाल मे अपनी उत्पादन क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग कर लागत को न्यूनतम करना होता है जिससे लाभ अधिकतम हो रनके।

वस्तु की पूर्ति मूलतया उत्पादन पर आश्रित होती है और उत्पादन की मात्रा एवं वृद्धि दर उत्पादन फलन (Production Function) पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त, उत्पादन फलन भी लघुकाल व दीर्घकाल में भिन्न होता है। इकाई 9 और 10 में आप उत्पादन के नियमों (Lows of production) का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

इकाई 9 में पहले आप अल्पकाल में उत्पादन फलन या परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Short period production function or the low of variable proportions) के बारे में रेखाचित्रों तथा उदाहरणों द्वारा आलोचनात्मक अध्ययन करेंगे। इस उत्पादन फलन में उत्पादन के कुछ साधन तो स्थिर (Fixed) होते हैं (जैसे भूमिपूंजी, इत्यादि)। और बाकी के परिवर्तनशील (Variable) होते है जैसे श्रम, कच्चामाल इत्यादि। यदि साधन दो ही हों तो एक स्थिर होता है और दूसरा परिवर्तनशील। लघुकाल में मांग को देखते हुए उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है, लेकिन कुछ सीमा तक और वह भी अधिक लागत पर। उत्पादन फलन एक अभियंत्रिकी नियम (technological low) हैं आर्थिक नहीं। परन्तु कीमतों के समावेश के पश्चात् यह नियम आर्थिक दृष्टि सै उपयोगी हो जाता है। आप इस इकाई में उत्पादन फलन के अर्थ, मान्यताएं, अंकीय उदाहरणरेखाचित्रों इत्यहदे द्वारा इसका विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। एक विशेष उत्पादन फलन, कॉब-डॉगलस उत्पादन फलन (Cobb-Douglas production function) का भी जिक्र किया जायेगा। इकाई के अन्त में इस बार पर भी प्रकाश डाला जायेगा कि यदि दोनों साधनों की इकाइयों के विभिन्न संयोगों का उत्पादन पर प्रभाव देखा जाये तो किस प्रकार समोत्पाद वक्र (Iso-product curves) खींचे जा सकते हैं। इन्हें (Iso-quants) भी कहते हैं। इसके साथ ही आप उत्पादन साधनों में प्रतिस्थापन की लोच (elasticity of substitution) का भी समीकरणों द्वारा अध्ययन करेगे।

इससे अगली इकाई 10 में आप दीर्घकाल में उत्पादन फलन-पैमाने के प्रतिफल (long period production function-returns to scale) का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। इस मे रेखाचित्रों द्वारा उत्पादन पैमाने से सम्बन्धित वर्द्धमान, स्थिर एवं हासमान प्रतिफल नियमों एवं इनके कार्यशील होने के लिए उत्तरदायी तत्वों का विवेचन किया जायेगा। इस उत्पादन फलन में सभी साधन परिवतनशील होते है। लेकिएन सभी उत्पादन-साधनों को एक ही अनुपात में बढाने पर भी प्रतिफल की वृद्धि की दर आवश्यक नहीं कि समान हो। न्यनतम लागत संयोग का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां समलागत रखा समोत्पति वक्र को स्पर्श करती है।

इकाई संख्या 11 में आप लागत रेखाएं और उनका परिमाणाकन पढेंगे । इसमे मुख्य होगे : लागत की विभिन्न धारणायें, अल्पकालीन लागत विश्लेषण तथा दीर्घकालीन लागत विश्लेषण । यह रगरा अध्ययन सारिणीयों एवं रेखाचित्रों की सहायता से किया जायेगा ।

अंत में, इकाई 12 में, आपको परिचय पैमाने की मितब्दयताओं से करवाया जायेगा । बडे पैमाने पर उत्पादन करने से बहुत सी मितव्ययताएं प्राप्त होती है । मोटे रूप से इन्हे दो भागो मे बांटा जासकता है'- आन्तारेक एवं बाहय मितव्ययताए, आन्तरिक मितव्ययताएं मुख्य रूप रो बडे आकार से सम्बन्धित मितव्ययताए है जो फर्मों की अविभाज्यता एवं विशिष्टीकरण से प्राप्त होती हैं । जबकि बाहय मितव्ययताए उद्योग में वृद्धि और उद्योग के स्थान विशेष में केन्द्रित होने के कारण स्थानीयकरण अनुसंधान एवं विघटन से प्राप्त होने वाली मितव्ययताए हैं । मितव्ययताओं के कारण उत्पादन की औसत लागत कम हो जाती है । लेकिन एक सीमा के बाद बडे पैमाने के उत्पादन से भी अमिततायताएं मिलने लगती हैं जिनसे औसत लागत बढने लगती है ।

इकाई 13 में एक उद्योग में विभिन्न फर्मो की उत्पादन मात्राओं (जो कि उत्पादन नियमोसाधनो की कीमतों, एवं आन्तरिक एवं बाहय अमितव्ययताओं पर आश्रित है और जो कि वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उत्पादित की जाती हैं) को जोडने पर वस्तु की पूर्ति का वक्र बनाया जाता है । वस्तु की माँग और पूर्ति के वक्रों का निरूपण होने पर हम वस्तु की कीमत का निर्धारण कर सकते हैं ।

व्यष्टि अर्थशास्त्र का मूल उद्देश्य उपभोग वस्तुओं और उत्पादन के साधनों के मूल्य का निर्धारण करना है । यह मूल्य निर्धारण दो घटकों पर आधारित है वस्तु/ साधन की माँग एवं उसकी पूर्ति ।

हमने पहले भाग (Block- 1) में यह पंख है कि मांग का नियम किन-किन तत्वों पर आधारित है । इसके पश्चात हमने दूसरे भाग (Block -ii) में यह दर्शाया हे कि वस्तु की पूर्ति किन बातों पर आधारित है और वस्तु के उत्पादन की लागत किस प्रकार आकी जाती है ।

वस्तु की माँग ओर उसकी पूर्ति के नियमों और सिद्धान्तों को जानने के पश्चात् अब हमें यह तय करना है कि उन नियमों द्वारा वस्तु का मूल्य किस प्रकार निश्चित होता है । यह प्रयत्न हम भाग तीन (Block-iii) में करेंगे । उपभोग वस्तुओं के मूल्य - निर्धारण के. साथ- साथ यह 'भी तय हो जाता है कि वस्तु के उत्पादन की मात्रा कितनी होगी और कितने श्रम को रोजगार मिलेगा ।

इस संदर्भ में तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक हैं । प्रथम, वरत्तु की माँग, पूर्ति और उसका मूल्य एव दूसरे पर परस्पर आश्रित होते हैं । अल्प काल में माँग का महत्व तुलनात्मक दृष्टि से अधिक होता है । लेकिन दीर्घकाल (Long Period) में उत्पादन के लागत का महत्व अधिक होने लगता है ।

द्वितीय. वस्तु के मूल्य एवं उत्पादन की मात्रा इस तथ्य 'पर भी आधारित है कि बाजार मे उपभोक्ताओं, और विशेषकर उत्पादकों की संख्या कितनी है ।

तृतीय यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि उद्योग जिस वस्तु का उत्पादन कर रहा है व समान (Homogeneous) है या थोडी बहुत अंश तक -विभिन्न (Differentiated) ।

अधिकतर हम यह मान कर चलते है कि उपभोक्ताओं की संख्या बहुत अधिक (Many) है । परन्तु उत्पादकों / विक्रेताओ की संख्या बह्त अधिक (Many) हो सकती है, एक् (One) हो सकती है । दो (Duopoly) हो सकती है, या फिर कुछ (Few) हो सकती है । इस लिए बाजारों का वगकिंरण कई

बातों पर निर्भर है, जैसे क्रेता और विक्रेताओं की संख्या और वस्तु की प्रकृति। भाग तीन में हम इन परिस्थितियों में मूल्य-निर्धारण का विश्लेषण करेंगे।

इकाई 14 में हम पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition) के अन्तर्गत, लघु एवं दीर्घकाल में, वस्तु के मूल्य निर्धारण का अध्ययन करेगें। पूर्ण प्रतियोगिता के मुख्य लक्षण है: अनेक क्रेता एवं विक्रेता (Many Buyers and Sellers), समान वस्तु (Homogeneity of Product), हस्तक्षेप की अनुपस्थिति। हम ऐसे बाजार में, रेखाचित्रों एवं गणित द्वारा, वस्तु की कीमत-निर्धारण एवं वस्तु के उत्पादन की मात्रा का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करेंगे।

इसके दूसरी ओर, इकाई 15 में हम एकाधिकार (Monopoly) का अध्ययन करेंगे। यही एक विक्रेता, समान (Homogeneous) वस्तु, और अधिक (Many) क्रेता होते हैं। हम यह देखेगे कि पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का मूल्य अधिक होता है और उत्पादन की मात्रा कम होती है।

इकाई 16 में हम विभेदकारी एकाधिकार (Discriminating Monopoly) का विश्लेषण करेंगे जिसमें एकाधिकारी, कुछ विशेष परिस्थितियों में, बाजार को विभाजित करके विभिन्न मूल्य वसूल कर सकता है। एकाधिकारिक प्रतियोगिता का विवेचन इकाई 17 की विषय वस्तु है।

इसके पश्चात हम उन बाजारों का अध्ययन करेंगे जिनमें विक्रेताओं की संख्या दो (Duopoly) या दो से अधिक, लेकिन बहुत नहीं (Oligopoly) हो। इकाई 18 में गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपो (Different Models of Non- collusive Oligopoly) के अन्तर्गत मूल्य-विश्लेषण किया गया है। इनमें प्रतिष्ठित तथा नये द्वयाधिकारी स्वरूपों का विवेचन किया गयाहै, खत कर्नो,बरतरा,चेम्बरलिन,स्टैकलबर्ग, किन्ही माँग-वक्र मॉडल, इत्यादि:।

इसके बाद, इकाई 19 में, सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों (Different Models Collusive Oligopoly) का अध्ययन किया जायेगा। इनमें वस्तु-विभेद (Product Differentiation) के अल्तर्गत फर्म और समूह (Group) के संतुलन (Equilibrium) का भी विश्लेषण शामिल है। मूल्य-मीमांसा के इस अध्ययन में जोन रॉबिन्सन, चेम्बरलिन ट्रिफिन और फैलनर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

द्विपक्षीय एकाधिकार (Bilateral Monopoly), यानी बाजार में केवल एक विक्रेता और एक क्रेता, के अन्तर्गत मूल्य-विश्लेषण हम इकाई 20 में करेंगे। इस बाजार में आवश्यक नहीं कि मूल्य-संतुलन एक बिन्दु पर हो।

अंत में ईकाई 21 में, इम विभिन्न बाजारों में एकाधिकार के अंश एवं उसके केन्द्रीकरण (Degree of monopoly and concentration) का अध्ययन करेंगे, और इसके अन्तर्गत एपी. लर्नर, के. डज्यू रोक्टचाइल्ड, ट्रिफिन एम. कैलेस्की, इत्यादि अर्थशास्त्रियों द्वारा दिये गये विश्लेषण व मापों का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

इकाई 22 की विषय वस्तु फर्म की वृद्धि एवं विलय है इससे आपका परिचय फर्म की वृद्धि की धारणा एवं फर्म की वृद्धि के सिद्धान्तों से कराया जाएगा। इसके साथ ही आप वृद्धि की विभिन्न विधियों की जानकारी भी प्राप्त करेंगे। इकाई 23 में क्षमता उपयोग की धारणा का विवेचन किया गया है।

मूल्य विभेदीकरण एवं मार्कअप मूल्य निर्धारण की चर्चा इकाई 24 में की गई है। इस खण्ड की अन्तिम इकाई में सीमान्त लागत मूल्य निर्धारण की विवेचना की गई है।

इस भाग का गहरा मनन करने के पश्चात हमारे लिए यह सम्भव होगा कि उत्पादन के साधनों की मूल्य-सीमांसा भली प्रकार से कर सके तथा तत्सम्बन्धी अन्य विषयोंको समझ सकें।

आपने पिछली इकाईयों में विनिमय प्रक्रिया के अन्तर्गत, उपभोग-वस्तु के मूल्य निर्धारण से सम्बन्धित विषयों का विस्तृत एवं गहन अध्ययन किया है। अब आप खण्ड चार में, साधन कीमत निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्तों एवं समस्याओं का विश्लेषण करेंगे। इन दोनों बाजारों में गहरा सम्बन्ध है। वस्तुओं के उत्पादन के लिए साधनों (भूमि, श्रम, पूजी, प्रबन्ध आदि) की आवश्यकता होती है। साधनों की कीमतें, साधन बाजार मे उत्पादकों (क्रेताओं) एवं साधन-मालिकों (साधनों के विक्रेताओं) के मध्य में तय होती है। साधनो की कीमतों से ही साधनों की आय निश्चित होती है। दूसरे शब्दों में प्रश्न यह है कि उत्पादन से प्राप्त आय का उत्पादन में लगे साधनों के बीच किरन प्रकार वितरण किया जाता है ' इसीलिये साधन कीमत निर्धारण सिद्धान्त आय के कार्यात्मक वितरण (functional distribution) से है, न कि वैयक्तिक वितरण (personal distribution) से।

वितरण के सामान्य सिद्धान्त को सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (marginal productivity theory of distribution) के नाम से जाना जाता रहा है। इसलिए पहले तो आप 25 वीं इकाई में जे.बी. क्लार्क, एस्फेड मार्शल एवं हिक्स द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त की समीक्षा का अध्ययन करेंगे, जो कि पूर्ण प्रतियोगिता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जायेगा। 25 वीं इकाई में आप सारणियों, रेखाचित्रों और समीकरणो द्वारा यह अध्ययन करेंगे कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में एक साधन की कीमत, उस साधन की मांग एवं पूर्ति द्वारा किस प्रकार निर्धारित की जाती है। विस्तृत रूप से आप इन बातों को अध्ययन करेंगे फर्म द्वारा एक परिवर्तनशील साधन की मांग, अपने परिवर्तनशील साधनों की स्थिति में फर्म की साधन संबंधी मांग, फर्म की साधन मांगो को प्रभावित करने वाले तत्व, एक साधन सम्बन्धी बाजार की माग, परिवर्तनशील साधन-श्रम की पूर्ति, बाजार का श्रम पूर्ति वक्र, और बाजार में सतुलन कीमत निर्धारण। अंत में आप यूरल प्रमेय तथा योगीकरण की समस्या (Euler's Theorem and Adding up Problem) का भी अध्ययन करेंगे। 25 वीं इकाई को पूर्णरूपेण समझाने के लिए अवकलन गणित (Differential calculus) का साधारण ज्ञान आवश्यक है। इसके लिए आप आपके प्रश्न पत्र परिणात्मक विधियां में सम्बन्धित इकाई को पहले पढ लें। इसके पश्चात् इकाई 26 में, आप अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधन कीमत निर्धारण की समस्या का, उसी सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में, विरत्तारपूर्वक एवं गहन अध्ययन करेंगे। इसमें भी सारणियां, रेखाचित्रो, समीकरणो एवं अवकलन गणित का प्रयोग किया जायेगा। पहले तो हम उत्पादन बाजार एकाधिकार (monopoly) की स्थिति में साधन कीमत निर्धारण की समीक्षा करेंगे। इसके अन्तर्गत आप इन बातों का अध्ययन करेंगे। सीमान्त आय उत्पत्ति, एकाधिकारी द्वारा एक परिवर्तनशील साधन की मांग, अनेक परिवर्तनशील साधनों की स्थिति में एकाधिकारी की एक साधन सम्बन्धी मांग, साधन की बाजार स्तरीय मांग एवं पूर्ति, बारजार कीमत निर्धारण एवं एकाधिकारत्मक शोषण। इसके पश्चात् आप क्रेता-एकाधिकार (monopsony) के अन्तर्गत साधन सम्बन्धी मांग, क्रेता एकाधिकार में साधन पूर्ति वक्र एवं साधन की सीमान्त लागत, एक परिवर्तनशील साधन का प्रयोग करने वाले क्रेता एकाधिकारी का संतुलन, अनेक साधनों की दशा में

क्रेता-एकाधिकारी संतुलनक्रेता एकाधिकारी शोषण, क्रेता एकाधिकार एवं श्रम संघ। अंत में आप द्विपक्षी एकाधिकार में साधन कीमत निर्धारण की समीक्षा पढ़ेंगे।

इस इकाई के अत में आप सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की समीक्षा समता, कुशलता एवं न्याय के दृष्टिकोण से भी करेंगे।

परम्परागत अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) के अनुसार उत्पादन के चार मूल साधान है- भूमि, पूंजी, श्रम एवं साहस। भूमि के प्रयोग की कीमत या मुआवजा, लगान (Rent) पूंजी की कीमत है, ब्याज (Interest), श्रम की कीमत है, मजदूरी (Wages), और साहस का प्रतिफल है, लाभ (Profit)। अगली छः इकाइयों में आप इनका अध्ययन करेंगे।

इकाई 27 - 28 में आप लगान के सिद्धान्तों की समीक्षा करेंगे। इकाई 27 में, आप परम्परागत रिकार्डो के लगान सिद्धान्त (Ricardian Theory of Rent) की विवेचना करेंगे। रिकोर्डो के अनुसार, "लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भू- स्वामी को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है। "आप इस इकाई में रिकार्डो के लगान की व्याख्या, रेखाचित्रों द्वारा सिद्धान्त के उदाहरण, विस्तृत एवं गहरी खेती में लगान, सिद्धान्त के मुख्य तत्व और मान्यताएं और अंत में इस सिद्धान्त की आलोचनाओं का- अध्ययन करेंगे।

इसके पश्चात अगली इकाई में आप लगान के आधुनिक सिद्धान्त की समीक्षा के बारे में शान प्राप्त करेंगे। आधुनिक अर्थशास्त्री, लगान शब्द का प्रयोग विरतृत दृष्टिकोण से करते हैं। उनके अनुसार - "लगान भूमि का उत्पादकता एवं स्वल्पता के लिए दिया जता है। "क्योंकि अल्पकाल में ये दोनों गुण श्रम, पूंजी व साहस में भी पाये जाते हैं, इसलिए लगान का सम्बन्ध उत्पादन के सभी साधनों से होता हैं इस आधुनिक दृष्टिकाण के आधार, अर्थ और व्याख्या के अलावा आप इन विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन गरेने। रेखाचित्रों द्वारा लगान की उत्पत्ति, विशिष्ट, अविशिष्ट एवं अर्द्ध-विशिष्ट साधनों का लगान, उसकी रिकोर्डा सिद्धान्त से तुलना, लगान तथा मूल्य, आभास लगान, एवं योग्यता का लगान।

भूमि के बाद पूंजी का उत्पादन के साधनों में महत्वपूर्ण स्थान हैं ब्याज (interest) इस पूंजी की उत्पादकता का पुरस्कार है। इसका विवेचन हम इकाई 29 और 30 में करेंगे। पहले, इकाई 29 में, आप परम्परावादी अर्थात कीन्स से पूर्व, ब्याज के सिद्धान्तों, सीनियर, केयर्न्स, मार्शल आदि द्वारा प्रतिपादित त्याग या प्रतीक्षा का सिद्धान्त, बॉम बावर्क का ब्याज का ऑरिट्रयन सिद्धान्त फिशर का समय पसन्दगी सिद्धान्त, ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त, एवं ब्याज का नव प्रतिष्ठित या उधार देय कोष (loanable funds) सिद्धान्त को रेखाचित्रो द्वारा समझाया जायेगा।

जॉन मेनार्ड कीन्स ने उपर्युक्त सिद्धान्तों, विशेषकर उधारदेय कोष सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की है। तरलता पसन्दगी ब्याज सिद्धान्त (liquidity preference theory of interest) का विश्लेषण अध्ययन इकाई 30 में प्रस्तुत किया जायेगा। इसमें आप रेखाचित्रों व समीकरणों की सहायता से मुद्रा की मांग, मुद्रा की पूर्ति, तरलता जाल, ब्याज की साम्य दर का निर्धारण आदि विषयों की समीक्षा विस्तारपूर्वक करेंगे।

उत्पादन की प्रक्रिया में तीसरा महत्वपूर्ण योगदान श्रम (Labour) का होता है। इसके योगदान की कीमत या प्रतिफल मजदूरी (wages) है। इकाई 31 में आप मजदूरी के सिद्धान्तों को विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। इसमें पहले मजदूरी की धारणा का विश्लेषण किया गया है। इसके पश्चात् आप मजदूरी के

परम्परागत सिद्धान्तों का अध्ययन करेगे जैसे-मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धान्त, मजदूरी का जीवन निवार्ह स्तर सिद्धान्त, मजदूरी कोष सिद्धान्त इत्यादि । इसके पश्चात् आप मजदूरी के सीमान्त उत्पादन सिद्धान्त के में जानकारी प्राप्त करेंगे । मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त मूलत: श्रम का मांग-पूर्ति सिद्धान्त ही है । इसके अन्तर्गत आप रेखाचित्रो द्वारा इन विषयों का अध्ययन करेंगे । श्रम की मांग धारणा, श्रम की पूर्ति धारणा, पीछे झुकता श्रम पूति वक्र, पूर्ण प्रतियोगिता दशाओं में मजदूरी निर्धारण, क्रय एकाधिकार अवस्था में मजदूरी निर्धारण, क्रय एकाधिकार के श्रम का शोषण तथा श्रम संघ, सामूहिक सौदेबाजी तथा मजदूरी निर्धारण इन विषयो पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचारों रवे भी आपको अवगत कराया जायेगा।

अंत में, इकाई 32 में, आप साहस के प्रतिफल लाभ के सिद्धान्तों के विषय में पढेगे । इसके अर्न्तगत पहले आप लाभ का अर्थ और लाभ के विभिन्न प्रकारों के बारे मे जानकारी प्राप्त करेंगे । इराके पश्चात् आप लाभ के सम्बन्धित परम्परागत एव आधुनिक सिद्धान्तों के बारे में अध्ययन करेंगे, जैसे-लाभ का लगान सिद्धान्त, लाभ का मजदूरी सिद्धान्त, लाभ का गतिशील आधिक्य का सिद्धान्त लाभ का नव प्रवर्तन का सिद्धान्त, जोखिम उठाने व अनिश्चितता का सिद्धान्त इत्यादि । इसके अलावा आप कुछ अन्य सेद्धान्तों की भी परिचय प्राप्त करेंगे । इकाई 32 में इन सभी सिद्धान्तो का आलोचनात्क विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात कल्याणकारी अर्थशास्त्र से सम्बंधित इकाईयों का अध्ययन किया जायेगा |

इकाई-1

विषय परिचय
(Subject Introduction)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 व्यष्टिगत एवं समष्टिगत विश्लेषण

1.3 वास्तविक तथा आदर्श मूलक विश्लेषण

1.3.1 आंशिक विश्लेषण

1.4 पुस्तक की रूपरेखा एवं योजना

1.4.1 प्रथम खंड

1.4.2 द्वितीय खंड

1.4.3 तृतीय खंड

1.4.4 चतुर्थ खंड

1.4.5 अन्तिम खंड

1.5 पाठ्य सामग्री की प्रमुख विशेषतायें

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको व्यष्टिगत अर्थशास्त्र पर लिखी गई इस पुस्तक के क्षेत्र तथा पुस्तक के विषय में बतलाना है। जैसा कि आप जानते है, आर्थिक विश्लेषण के दो प्रमुख आयामों में व्यष्टिगत विश्लेषण का एक विशिष्ट महत्व है। इसके अन्तर्गत आप एक इकाई-उपभोक्ता या फर्म के व्यवहार का अध्ययन करते है। आपको इस पुस्तक की विभिन्न इकाइयों में इस व्यवहार के विविध सोपानों के विषय में बतलाया जाएगा।

1.1 प्रस्तावना

आप यह जानते है कि मनुष्य की असंख्य क्रियाओं में से अनेक क्रियाओं का सम्बन्ध उसके पास उपलब्ध सीमित साधनों के इष्टतम प्रयोग से रहता है। सुविधा के लिए हम इन्हें उसकी आर्थिक

क्रियाओं की संज्ञा दे सकते है । इन्हीं आर्थिक क्रियाओं के विश्लेषण को हम अर्थशास्त्र या आर्थिक विश्लेषण के रूप में पुकारते है । आर्थिक विश्लेषण का आधार वैज्ञानिक दृष्टिकोण में निहित है, क्योंकि अर्थशास्त्र के ज्ञान का प्रसार भी अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसंधान के आधार पर ही किया जाता है तथा तार्किक आधार पर प्रश्नों के उत्तर खोजे जाते है । अर्थशास्त्र के अध्ययन में आस्था, श्रद्धा या चमत्कारों को गौण मानते हुए तथ्यों को प्राथमिकता दी जाती है ।

1.2 व्यष्टिगत एवं समष्टिगत विश्लेषण

प्रस्तुत पुस्तक में आप आर्थिक विश्लेषण के व्यष्टिगत पक्ष का अध्ययन करेंगे । एक प्रश्न स्वाभाविक है व्यष्टिगत विश्लेषण से हमारा अभिप्राय क्या है? वस्तुत : प्रत्येक व्यक्ति या आर्थिक इकाई को हम समूचे समाज या जगत की तुलना में एक सूक्ष्म इकाई मान सकते है । जब कमी हम समूचे समाज , देश या वृहत् समूह की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन न करके इनसे सम्बंद्ध किसी भी एक परिवार, फर्म या एक इकाई को विश्लेषण का केन्द्र बना लेते है तो यही व्यष्टिगत आर्थिक विश्लेषण कहलाता है । हमारी इस विश्लेषण के समय यही मान्यता रहती है कि समाज, देश या समूह की शेष इकाइयों का व्यवहार एवं साधन-प्रयोग से सम्बद्ध निर्णय प्रक्रिया भी ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि इस इकाई की है । यही कारण है कि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र को प्रायः सूक्ष्म अर्थशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है । इसके सर्वथा भिन्न समष्टिगत अर्थशास्त्र है, जिसमें एक इकाई उपभोक्ता या उत्पादक ' की अपेक्षा समूर्ण समाज या अर्थव्यवस्था को उपलब्ध साधनों के प्रयोग एवं संबद्ध निर्णय प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है । उदाहरण के तोर पर एक उपभोक्ता किस प्रकार अपनी आय को इष्टतम रूप में व्यय करता है इस बात का अध्ययन किया जाए तो यह व्यष्टिगत विश्लेषण है, परन्तु यदि देश के समूचे उपभोग को देखें तो यह समष्टिगत अध्ययन होगा ।

यह आप जानते है कि प्रत्येक देश, समूह या सूक्ष्म-स्तर की (व्यष्टिगत) इकाई के पास साधन सीमित होते है जबकि उन साधनों के माध्यम से पूरी की जाने वाली आवश्यकताओं की कोई सीमा नही है । ऐसी दशा में सीमित साधनों का असीमित आवश्यकताओं के मध्य इस प्रकार आवंटन होना चाहिए कि उससे अधिकतम प्रतिफल प्राप्त हो । अर्थशास्त्र के सिद्धान्त हमें यही सिखाते है कि हम आवश्यकताओं को प्राथमिकता के क्रम में संजोते हुए साधनों का आवंटन करें ताकि अधिक जरूरी (या अधिक प्रतिफल देने वाली) आवश्यकताओं को पहले पूरा कर सकें । संक्षेप में, एक उपभोक्ता या एक उत्पादक अपने सीमित साधनों के प्रयोग द्वारा अधिकतम सन्तुष्टि या अधिकतम लाभ उसी दशा में प्राप्त होता है जब साधनों का आवंटन इष्टतम रूप में किया जाए ।

यहां यह उल्लेखनीय है कि परम्परागत रूप में एक फर्म या उपभोक्ता केवल स्वयं के हित (लाभ या सन्तुष्टि) को अधिकतम करने का प्रयास करता है । साधनों का आवंटन करते समय उसे अन्य व्यक्तियों के लाभ या सन्तुष्टि स्तर अथवा उनकी निर्णय प्रक्रिया से कोई प्रयोजन नहीं रहता । इस बात को आप इस प्रकार भी कह सकते है कि प्रत्येक व्यष्टिगत इकाई अपने ही लाभ या सन्तुष्टि स्तर को अधिकतम करने का प्रयास करती है तथा उस दिशा मे, साधनों का आवंटन भी स्वतंत्र रूप में करती है । यदि आपके

पड़ौसी ने एल.ई.डी. टी वी. खरीद लिया तो विशुद्ध रूप में व्यष्टिगत अर्थशास्त्र की दृष्टि से आपको अपनी आय के आवंटन से प्राप्त संतुष्टि का स्तर यथावत् रहता है। इसी प्रकार यदि एक उत्पादक कीमत में कमी या वृद्धि करता है तो इससे अन्य फर्मो की कीमतों पर कोई प्रभाव नही होना चाहिए। इस प्रकार व्यष्टिगत अर्थशास्त्र का सम्बन्ध एक आर्थिक इकाई की स्वतंत्र निर्णय प्रक्रिया से ही रहता है।

प्राय : यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्र में केवल इस निर्णय प्रक्रिया का ही अध्ययन किया जाता हैं। इसके अन्तर्गत यह बतलाया जाता है कि किसी एक वस्तु की कीमत का निर्धारण उसकी मांग व पूर्ति के आधार पर होता है। कीमत के जिस स्तर पर मांग व पूर्ति समान है वही साथ कीमत मानी जाती है। किसी साधन की कीमत पर भी यही बात लागू होती है। हालांकि कभी बाजार मे एक फर्म (एकाधिकार) या एक उपभोक्ता (क्रेताधिकार) का अस्तित्व होने पर कीमत का निर्धारण उसी इकाई के द्वारा किया जाता है, परन्तु व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में उसे बाजार की विकृति माना जाता है। इस प्रकार व्यष्टिगत अर्थशास्त्र हमें विभिन्न बाजारों के विषय में ज्ञान देते हुए वस्तुओं तथा साधनों की कीमतों के निर्धारण की प्रक्रिया समझाता है। इन सब से सम्बद्ध रहने के कारण व्यष्टिगत अर्थशास्त्र को बहुधा कीमत सिद्धान्त का भी नाम दिया जाता है। आप प्रस्तुत पुस्तक में देखेगे कि अधिकांश व्यष्टिगत सिद्धान्तो का सम्बन्ध वस्तु अथवा साधन की कीमत के निर्धारण से रहता है।

1.3 वास्तविक तथा आदर्श-मूलक विश्लेषण

प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि चूंकि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र का उद्देश्य केवल एक इकाई की निर्णय प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए यह देखना है कि वह इकाई-उपभोक्ता या फर्म किस प्रकार अपना हित (उपयोगिता या लाभ) अधिकतम करती है। इस विश्लेषण का अच्छे या बुरे से कोई प्रयोजन नही है। अन्य शब्दों में, व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के माध्यम से साधन आवंटन की प्रक्रिया द्वारा व्यक्तिगत कल्याण को अधिकतम करने की विधि तो बतलाई जाती है, परन्तु अधिकतम कल्याण प्राप्ति की प्रक्रिया के औचित्य अथवा अनौचित्य की समीक्षा करना इसके अध्ययन क्षेत्र से बाहर की बात है। उदाहरण के लिए, यदि एक उद्योगपति श्रम की अपेक्षा पूंजी का उपयोग बढ़ाकर अपने लाभ को बढ़ा सकता है तो व्यष्टिगत सिद्धान्त के अनुरूप उसे पूँजी का उपयोग बढ़ाना चाहिये, भले ही ऐसा करने पर बेरोजगार श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती जाये। इसी प्रकार यदि उपभोक्ता गेहूँ की अपेक्षा टैल्कम पाउडर की मांग अधिक करते हो तो व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के अनुसार टैल्कम पाउडर की कीमत में वृद्धि होने से साधनों को गेहूँ के उत्पादन से हटाकर पाउडर के उत्पादन में स्थापन्न करना उपयुक्त होगा।

इस प्रकार विशुद्ध रूप मे व्यष्टिगत अर्थशास्त्र का प्रयोजन साम्य की स्थापना का विश्लेषण करते हुए वैयक्तिक कल्याण के अधिकतम स्तर की पहचान करना है। इसी कारण प्राय : इसे वास्तविक अर्थशास्त्र (Positive Economics) की भी संज्ञा दी जाती है। इसके विपरीत अनेक अर्थशास्त्री यह मानते है कि केवल साधन आवंटन (कारण) तथा व्यक्तिगत कल्याण के अधिकतम स्तर की पहचान (प्रभाव) तक ही हमारा विश्लेषण सीमित नहीं रहना चाहिये। हमे यह भी देखना चाहिये कि एक व्यक्ति का कल्याण किस रूप में दूसरे व्यक्ति के कल्याण से जुड़ा हुआ है (परस्पर निर्भरता) तथा हमें उन उपायों की भी खोज करनी

चाहिये 'जिनके द्वारा समाज के कल्याण स्तर में वृद्धि की जा सके । ये अर्थशास्त्री (मिशान, लिटिल आदि) व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के ज्ञान को अधूरा मानते है तथा इसमें कल्याण अर्थशास्त्र को भी सम्मिलित करने का आग्रह करते है । प्रस्तुत पुस्तक में इसीलिये व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो का विश्लेषण करने के बाद सामाजिक कल्याण से सम्बन्ध कल्याण अर्थशास्त्र के विभिन्न आयामों पर विचार किया गया है।

1.3.1 आंशिक विश्लेषण

व्यष्टिगत अर्थशास्त्र केवल एक इकाई की साम्य स्थिति का विश्लेषण करता है और तदनुसार एक उपभोक्ता, एक फर्म, एक साधन तथा एक वस्तु ही इसके अध्ययन के केन्द्र बिन्दु है । प्राय: यह मान लिया जाता है कि एक वस्तु की मांग व पूर्ति के आधार पर उसकी साम्य कीमत का निर्धारण होता है, परन्तु अन्य वस्तुओं की कीमतें यथावत् रहती है क्योंकि उनकी मांग व पूर्ति अपरिवर्तित रहती है । अन्य शब्दों में, समग्र की अपेक्षा एक अंश की साम्य स्थिति का अध्ययन ही व्यष्टिगत विश्लेषण है और इसलिये बहुधा इसे ' 'आंशिक विश्लेषण " भी कहा जाता है । व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में जो साम्य स्थिति प्राप्त की जाती है वह भी आंशिक साम्य स्थिति(Partial Equilibrium) ही रहती है।

परन्तु जैसा कि आप समझ सकते है, उपर्युक्त आधार पर किए गए आर्थिक विश्लेषण का क्षेत्र अत्यन्त सीमित रहता है, तथा इसमें ली गई मान्यताएं वास्तविक जगत में अप्रासंगिक हो जाती है । क्योंकि जितना हम सूक्ष्म की ओर प्रवृत्त होंगे, व्यापकता की हम उपेक्षा करते जाते है । आप जैसा कि जानते है, व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के केन्द्र में मानव व्यवहार है जो सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियो के अतिरिक्त व्यक्ति की स्वयं की मानसिकता से भी प्रभावित होता है । अन्य शब्दों में, यह एक विज्ञान न होकर सामाजिक विज्ञान है, तथा इसके निष्कर्षों की सत्यता या उपादेयता भी इसी बात पर निर्भर करती है कि मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाला वह वातावरण किस सीमा तक हमारी मान्यताओं के अनुरूप रहता है । चूंकि सामाजिक व राजनैतिक वातावरण के साथ-साथ व्यक्तिगत मानसिकता में भी प्राय : परिवर्तन होते रहते है, अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो की सार्वभौमिकता एवं सर्वकालिक उपादेयता भी संदेहास्पद हो जाती है । आप इस पुस्तक में यह भी देखेंगे कि व्यष्टिगत सिद्धान्तो की व्यावहारिक उपादेयता कितनी है । लगभग सभी सिद्धान्तो के विश्लेषण के साथ उनकी प्रासंगिकता की समीक्षा भी इसमें की गई है ।

1.4 पुस्तक की रूपरेखा एवं योजना

1.4.1 प्रथम खंड

प्रस्तुत पुस्तक को सुविधा की दृष्टि से पांच खंडों में वि भाजित किया गया है । प्रथम खंड में पांच इकाइयां है जिनका उद्देश्य उपभोक्ता व्यवहार के सिद्धान्तो की व्याख्या करना है । आप इस खंड में यह पढ़ेंगे कि एक उपभोक्ता किस प्रकार अपनी निर्दिष्ट आप व रूचियों के अनुरूप विभिन्न वस्तुओं से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है। अगली या द्वितीय इकाई में आपका परिचय मांग के नियम से कराया गया है । इसमें बतलाया गया है कि यदि उपभोक्ता के पास निर्दिष्ट आय हो तथा वस्तु के प्रति उसकी रूचि यथावत् हो

तो वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर मांग की मात्रा मे कितना परिवर्तन होगा। इस इकाई में आपको यह बतलाया जाएगा कि मांग के स्तर को निधारित करने वाले चरों में से एक में भी परिवर्तन होने पर मांग को स्तर भी बदल जाता है। परन्तु किसी भी चर के परिवर्तन से मांग में आनुपातिक परिवर्तन हो यह जरूरी नही है। मांग के निर्धारक घटकों में से किसी एक में परिवर्तन होने पर मांग में कितना परिवर्तन होगा यह उसकी मांग की लोच पर निर्भर करता है। मांग की लोच की व्याख्या प्रस्तुत पुस्तक की तृतीय इकाई में की गई है। इस इकाई में मांग की कीमत लोच, आय लोच तथा तिरछी लोच का विवरण दिया गया है तथा यह भी बतलाया गया है कि मांग की लोच कों किस प्रकार मापा जाता है, तथा मांग की लोच का व्यावहारिक महत्व क्या है।

बहुधा उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि किसी वस्तु की वर्तमान मांग के निरूपण तक ही हमारा विश्लेषण सीमित रहना चाहिए। परन्तु आधुनिक युग में साधनों का आवंटन केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ही नहीं किया जाता है विशेष रूप सें आर्थिक नियोजन के दौर में किसी देश की सरकार को यह अनुमान लगाना होता है कि अमुक वस्तु की मांग आने वाले पांच या दस वर्षो में कितनी बढ़ जाएगी। सरकार या योजना आयोग किसी भी योजना के अन्तर्गत मांग के पूर्वानुमानों के आधार पर ही विभिन्न क्षेत्रों में पूंजी निवेश तथा साधनों की आपूर्ति बढ़ाने हेतु लक्ष्य निर्धारित करता है। मांग के पूर्वनुमानों के औचित्य, इनके लिए प्रयुक्त विधियां तथा इनकी सीमाओं का विवरण पुस्तक की चौथी इकाई में दिया गया है। इस इकाई में यह भी बतलाया गया है कि मांग का पूर्वानुमान कितने चरणों में किया जाता है। पुस्तक की पांचवी इकाई में आप यह देखेंगे कि एक उपभोक्ता किस प्रकार सीमित साधनों के आवंटन द्वारा अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करता है। परम्परागत रूप में यह माना जाता था कि उपभोक्ता द्वारा जब भी किसी वस्तु की एक इकाई का उपभोग करने का निर्णय लिया जाता है तो उसे यह पता रहता है कि इस इकाई की निर्दिष्ट कीमत देने पर उसे उसके उपभोग से कितनी उपयोगिता प्राप्त होगी। यदि उपभोक्ता का प्रस्ताव अनेक वस्तुओं को खरीदने का है तो उक्त मान्यता के आधार पर उपभोक्ता कों निश्चित तोर पर यह पता रहता है कि अमुक राशि खर्च करने पर उसे कुल कितनी उपयोगिता विभिन्न वस्तुओं का उपयोग करने पर प्राप्त होगी। परन्तु जैसा कि आप इस इकाई में पायेंगे, वास्तविक जगत में अनिश्चितताएं विद्यमान रहती है। उदाहरण के तोर पर लॉटरी का टिकिट लेने वाला शत-प्रतिशत रूप में उस पर अंकित पुरस्कार प्राप्त कर सकेगा, यह कहना संभव नही है। यही कारण है कि उपभोक्ता को वास्तविक जगत की परिस्थितियों को देखते हुए प्रत्येक वस्तु से अपेक्षित उपयोगिता को प्रायिकता प्रदान करनी होती है। संभव है जिस वस्तु का अपेक्षित प्रतिफल (उपयोगिता या संतुष्टि) बहुत अधिक हो उसकी प्रायिकता वास्तव में प्राप्त होने की सभावना बहुत कम हो तो अपेक्षित उपयोगिता को प्रायिकता से भारित करना होगा। इसी प्रकार आप इस इकाई में उपभोग में प्रयुक्त स्थायी तथा गैर-स्थायी वस्तुओं की मांग के विषय में पड़ेंगे।

पुस्तक की छठी इकाई में उपभोग फलन तथा समय क्षितिज के संदर्भ में, उपभोक्ता द्वारा अपनी आय के आवंटन का विवरण दिया गया है। वस्तुतः इससे पूर्व की इकाइयों में यह माना गया है कि उपभोक्ता की आय, रूचियो तथा विभिन्न वस्तुओं के बीच आय का आवंटन चालू अवधि तक ही सीमित रहता है।

यह मान्यता उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण को सरल तो बनाती है, परन्तु साथ ही विश्लेषण को अवास्तविक एवं अव्यावहारिक रूप भी प्रदान कर देती है। वास्तविक जीवन में कोई उपभोक्ता भविष्य में आय बढ़ेगी इस आशा के साथ वर्तमान अवधि में आय सें अधिक व्यय कर सकता है। इस इकाई में आप यह पढ़ेंगे कि समय-क्षितिज के अनुरूप उपभोक्ता किस प्रकार उपभोग की योजना बनाता है।

1.4.2 द्वितीय खंड- इसमें छः इकाइयां है। इकाई संख्या 7 में आप यह पड़ेंगे कि किसी भी उत्पादक या फर्म के उद्देश्य क्या हो सकते है। बहुधा यह माना जाता है कि फर्म का एक मात्र उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। पिछले कुछ दशकों में अर्थशास्त्रियों ने यह सिद्ध करनें का प्रयास किया है कि फर्म यदि अधिकतम लाभ के उद्देश्य को पूरा करने में सफल न हो तो वह अन्य वैकात्यक उद्देश्यों में से किसी एक (या अधिक) उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास करेगी। इन वैकल्पिक उद्देश्यों में बिक्री अधिकतम करने से लेकर तुष्टिकरण से सम्बद्ध विकल्प शामिल हो सकते है। इसी क्रम में आठवीं इकाई में फर्म के अल्पकालीन व दीर्घकालीन उद्देश्यों के विषय में बतलाया गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि अल्पकाल में हानि या लाभ होने पर दीर्घकाल में फर्म के उत्पादन व कीमत स्तरों में क्या परिवर्तन होंगे। इकाई संख्या 9 में अल्पकालीन उत्पादन फलन के विषय में बतलाया गया है, तथा यह समझाया गया है कि यदि उत्पादन के अन्य साधनों को यथावत् रखते हुए एक (या दो) साधन की मात्रा में वृद्धि की जाए तो उस साधन के प्रयोग की इष्टतम स्थिति कहां होगी। संक्षेप में, आप इस इकाई में यह पढ़ेंगे कि यदि एक ही साधन परिवर्तनशील हो तो उसकी मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि करने पर पहले तो उत्पादन में वर्द्धमान गति से वृद्धि होगी तथा फिर ह्रासमान गति से। ऐसी दशा में यदि साधन की कीमत दी हुई हो तो उस पर साधन के प्रयोग से अधिकतम लाभ प्राप्त होगा जहां साधन की सीमान्त उत्पादकता व साधन-कीमत समान हों। यदि दो साधन परिवर्तनशील हो तो जहां साधनों की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात इनकी कीमतों के अनुपात के समान है, वही अधिकतम लाभ देने वाला साधन संयोग स्थापित होगा। इसी इकाई में आप उत्पादन की तीन अवस्थाओं का भी अध्ययन करेंगे।

इकाई संख्या दस में बतलाया गया है कि यदि उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील हों, जो कि दीर्घकाल में ही संभव है तो साधनों की मात्रा तथा उत्पादन के मध्य क्या सम्बन्ध है। इसे हम पैमाने का परिवर्तन तथा उससे प्राप्त प्रतिफल के विश्लेषण की संज्ञा देते है। बहुधा अनुभावमुलक उत्पादन फलन जैसे कोब डग्लस फलन, सिलमेंन फलन, स्थिर प्रतिस्थापन लोच फलन, आदि का विश्लेषण दीर्घकालीन दृष्टिकोण से ही किया जाता है। इसी इकाई में समोत्पत्ति वक्रों का विवरण देने के साथ-साथ यह बतलाया गया है कि दो साधनों का न्यूनतम लागत वाला संयोग किस प्रकार निर्धारित किया जाता है।

उत्पादन फलन द्वारा हम उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन के मध्य सम्मन्नों की अल्पकालीन व दीर्घकालीन दृष्टिकोण से विवेचना करते है, परन्तु यही विश्लेषण पर्याप्त नही है। आगम तथा लागतों का विश्लेषण मेंट्रिक आधार पर करके ही हम फर्म के लाभ का स्तर ज्ञात कर सकते है। इसी उद्देश्य से हमने ग्यारहवीं इकाई में लागतों की विवेचना की है। इसमें बतलाया गया है कि अल्पकाल में कुछ लागतें स्थिर तथा अन्य लागतें परिवर्तनशील होगी। लागत वक्रों के निरूपण में इस बात का ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि उत्पादन फलन अल्पकालीन है अथवा दीर्घकालीन। आप इसी इकाई में विभिन्न प्रकार

के लागत फलनों तथा सीमान्त तथा औसत लागत वक्रों के निरूपण की जानकारी भी प्राप्त करेंगे। इसके साथ ही इस इकाई में आप दीर्घकालीन लागत फलन एंव सम्बद्ध औसत व सीमान्त लागत वक्रों का निरूपण करेंगे। इकाई संख्या 12 में आप पैमाने की बचतों (मितव्ययताओं) व अमितव्ययताओं का अध्ययन करेंगे। आप यह देखेंगे कि दीर्घकाल में जब उत्पादक सभी साधनों में (समानुपाति) वृद्धि करता है तो प्रारम्भ में उत्पादन की अपेक्षा कुल लागत में आनुपातिक दर की अपेक्षा कम दर से वृद्धि होती है। क्योंकि फर्म को विभिन्न प्रकार की आन्तरिक तथा बाहय मितव्ययताएं प्राप्त होती है। एक सीमा के बाद उत्पादन का पैमाना काफी बड़ा हो जाने के बाद अ-बचतों के कारण उत्पादन की अपेक्षा कुल लागत में अधिक अनुपात में वृद्धि होती है। कुल मिलाकर, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र एक तश्तरी की भांति होता है। इसमें जिस स्तर पर औसत लागत न्यूनतम होती है- यानि जिसके बाद अमितव्ययताएं प्रारम्भ हो जाती है - वह पैमाने का इष्टतम स्तर कहलाता है। यही स्तर फर्म की दीर्घकालीन दक्षता का उच्चतम स्तर भी है, क्योंकि यही पर उत्पादन लागत न्यूनतम होती है।

1.4.3 तृतीय खंड प्रस्तुत पुस्तक का तृतीय खंड किसी वस्तु की कीमत निर्धारण के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या करता है। इसमें इकाई संख्या 13 से लेकर इकाई संख्या 24 तक कुल 12 इकाईयाँ है। जैसा कि आप जानते हे उत्पादन प्रक्रिया तभी निर्बाध एवं अविरल रूप में चल सकती है -जब उत्पादित वस्तु की बिक्री अनवरत रूप से होती रहे। अन्य शब्दों में, फर्म को अपनी वस्तु को बाजार में बेचना होता है। किस कीमत पर वस्तु की बिक्री होगी यह बाजार की प्रकृति पर निर्भर करता है। जैसा कि आप जानते है, वस्तु के बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति विद्यमान हो सकती है, या इससे सर्वथा भिन्न रूप में बाजार में एकाधिकार की स्थिति हो सकती है। यह भी संभव है कि बाजार न तो पूर्ण रूप से प्रतियोगिता पूर्ण हो और न ही विशुद्ध एकाधिकारात्मक। इस बीच की स्थिति में एकाधिकारिक प्रतियोगिता अथवा अल्पाधिकार की दशाएं मौजूद हो सकती है। वस्तुत बाजार की प्रकृति से ही इस बात का निर्णय होता है कि कीमत का निर्धारण करने में फर्म की क्या भूमिका है, तथा फर्म किस सीमा तक स्वतंत्र रूप से स्वयं कीमत को निर्धारित करने में सक्षम है। आप इस खंड की इकाई 13 में पढ़ेंगे कि यदि फर्म पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कार्यरत है तो कीमत का निर्धारण बाजार में वस्तु की कुल मांग व कुल पूर्ति के आधार पर किया जाता है तथा प्रत्येक फर्म उसी कीमत पर अधिकतम लाभ प्रदान करंने वाली मात्रा को बेचती है। ऐसे बाजार में कीमत निर्धारण प्रक्रिया में फर्म की भूमिका गौण रहती है। इस बाजार में प्रवेश व बहिर्गमन, एवं पैमाने के विस्तार की पूर्ण छूट के कारण दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ की ही स्वामी होती है। जैसा कि आप इस इकाई में पढ़ेगे, पूर्ण प्रतियोगिता ही बाजार की वह स्थिति है जहां बाजार में विद्यमान सभी फर्मो की स्थिति एक जैसी होती है, तथा दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म न्यूनतम लागत यानी अधिकतम दक्षता के स्तर पर उत्पादन करती है। यही कारण है, कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत समाज के सभी वर्गो, उपभोक्ताओं, उत्पादन कर्ताओं तथा साधनों के स्वामियों को अधिकतम कल्याण प्राप्त होता है।

इसके बाद इकाई 14 में आप एकाधिकारी फर्म द्वारा किस प्रकार वस्तु की कीमत, तथा अधिकतम लाभ प्रदान करने वाली मात्रा का उत्पादन किया जाता है, यह सब पढ़ेंगे। जैसा कि आप जानते है ,एकाधिकार

के अन्तर्गत फर्म ही कीमत का निर्धारण करती है तथा उसका उद्देश्य अधिकतम लाभ की प्राप्ति ही रहता है। परन्तु एकाधिकार वालें वाजार में नई फर्मो का प्रवेश संभव नही होता और इसलिए दीर्घकाल में भी उसे असामान्य लाभ प्राप्त होते रहते है। इस इकाई में आप यह भी पड़ेंगें कि एकाधिकार के कारण किस प्रकार के उपभोक्ताओं तथा साधनों के स्वामियों को क्षति होती है। अन्य शब्दों में, इस इकाई में आप यह देखेंगे कि एकाधिकार का आर्थिक कल्याण पर क्या प्रभाव होता है तथा किस प्रकार समाज के विभिन्न वर्गो पर इसका प्रतिकूल प्रभाव होता है। इसी क्रम में आप यह भी पढ़ेगें कि सरकार किन तरीकों से एकाधिकारी फर्म को नियंत्रित करने का प्रयास करती है।

कभी-कभी एक फर्म अपनी विशिष्ट स्थिति का लाभ उठाते हुए अपनी वस्तु की अलग-अलग कीमतें वसूल करती है। प्राय : एकाधिकारी फर्म इस प्रकार की विभेदीकृत कीमतें लेने में सफल हो जाती है। आप इकाई 15 में विभेदकारी एकाधिकार के अन्तर्गत कीमतों तथा उत्पादन की मात्रा के निर्धारण का अध्ययन करेंगें। इस इकाई में कीमत-विभेद के लिए आवश्यक शर्तो के अतिरिक्त इसके लाभकारी होने की दशाओं का भी विवरण दिया गया है।

एकाधिकारी बाजार का विश्लेषण अवलोकन करने के पश्चात् इकाई 16 में आप एकाधिकारिक प्रतियोगिता के विषय में पढ़ेगे। जैसा कि आप इसमें देखेगें, चौथे दशक में श्रीमती जॉन रॉबिन्सन तथा प्रो. चैम्बरलिन ने बतलाया था कि वास्तविक बाजार न तो पूर्ण प्रतियोगी है और न ही पूर्ण एकाधिकारी। वस्तुत : इनके मतानुसार दोनों बाजारों के बीच की स्थिति ही प्राय : देखने को मिलती है। इकाई 16 में एकाधिकारी प्रतियोगिता की विशेषताओं का अध्ययन करने के साथ-साथ आप यह भी पढ़ेगें कि अल्प व दीर्घ-काल में ऐसे बाजार में कीमतों तथा उत्पादन की मात्राओं का निर्धारण किस प्रकार होता है। आप जैसा कि इस इकाई में पड़ेंगे, चैम्बरलिन के मतनुसार वस्तु विभेद ही एकाधिकारी प्रतियोगिता को जन्म देता है, परन्तु पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।

चौथे दशक की भांति पांचवें दशक में भी बाजार से सम्बंद्ध परम्परागत विश्लेषण का विरोध जारी रहा तथा विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने शोध तथा विस्तृत अनुभवों के आधार पर बतलाया कि वास्तव में वस्तु के बाजार में अल्पाधिकार विद्यमान है उन्होंने कहा कि पूर्ण प्रतियोगिता एकाधिकार तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म स्वतंत्र रूप से व्यवहार करती है। परन्तु पांचवें दशक में यह पाया गया कि प्रत्येक फर्म का व्यवहार उसकी प्रतियोगी फर्मो के सम्भावित व्यवहार से निरूपित होता है। जैसा कि आप इकाई 17 में पढ़ेंगे, अल्पाधिकार की मुख्य विशेषता यह निर्भरता ही है। इस संदर्भ में आप यह देखेगें कि यदि विभिन्न फर्मो में परस्पर गठबन्धन न हो तो वस्तु की कीमतों तथा उत्पादन की मात्राओं का निर्धारण किस प्रकार किया जाएगा। इकाई 18 में आप गठबन्धन वाले अल्पाधिकारी बाजार के अलग-अलग मॉडलों को देखेंगें तथा यह पड़ेंगे कि इनके अन्तर्गत कीमतों का निर्धारण किस प्रकार होता है। आप इन दोनों इकाइयों में वस्तुत : यह पढ़ेंगे कि किस प्रकार एक फर्म की रक्षात्मक तथा आक्रामक रणनीतियां कीमत तथा बाजार के वातावरण को प्रभावित करती है तथा अन्ततः सन्तुलन की स्थिति कहां प्राप्त होती है।

इकाई संख्या 19 में आप एक ऐसे बाजार का अध्ययन करेंगे जहां क्रेता तथा विक्रेता एक-एक ही हों। इस बाजार को द्वयाधिकार या द्विपक्षीय एकाधिकार कहा जाता है। द्वयाधिकार में वस्तु को खरीदने वाली फर्म एक ही होती है और साथ ही वस्तु को बेचने वाली फर्म भी एक ही होती है। ऐसी दशा में कीमत निर्धारण क्रेताधिकारी तथा एकाधिकारी इकाइयों की सापेक्ष शक्ति के आधार पर होगा। यदि दोनों की शक्ति समान है तो बहुधा कीमत अनिर्णीत रहती है। बीसवीं इकाई में एकाधिकार अंश (सीमा) तथा आर्थिक संकेन्द्रण के बीच क्या सम्बन्ध है, इसकी चर्चा की गई है। इस इकाई में आप यह पढ़ेंगे कि एकाधिकार अंश के निर्धारक तत्व कौन से है। नियंत्रण के केन्द्रीकरण, लाभ दर, मूल्य व सीमान्त लागत के अंतर, फर्म तथा उद्योग के मांग वक्रों के ढलानों के अनुपात आदि के विषय में इस इकाई में पढ़ेगे जो वस्तुत : एकाधिकार अंश के माप है। इसमें से प्रत्येक माप की कतिपय सीमाएं है जिनका इस इकाई में विवरण दिया गया है। इसी इकाई में एकाधिकार अंश के अन्य माप जैसे अपसरण सूचकांक, मूल्य दृढ़ता एवं सकल लाभ व बिक्री के अनुपात पर भी प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक की इक्कीसवीं इकाई में फर्मो के विलय तथा विकास की चर्चा की गई है। इसमें यह भी बतलाया गया है कि विभिन्न फर्मो के एकीकरण द्वारा उत्पादन की लागत में किस सीमा तक कमी की जा सकती है। इसमें आप फर्म के विकास क्रम से सम्बंद्ध जीवन चक्र सिद्धान्त, परम्परागत सिद्धान्त तथा प्रबन्धात्मक सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही इस इकाई में आपको पेनरोज सिद्धान्त तथा फर्म की वृद्धि से सम्बद्ध तरीकों-जैसे, विलय, अधिग्रहण आदि के विषय में बतलाया जाएगा।22वी-इकाई में आप यह पड़ेंगे कि किन परिस्थितियों में फर्म उच्चतम दक्षता से कम स्तर पर उत्पादन करने को विवश होती है। जैसा कि आप इस इकाई में देखेंगे, प्राय : पूर्ण प्रतियोगिता के आदर्श से विचलित होने पर फर्म के लिये यह असम्भव सा हो जाता है कि वह न्यूनतम लागत पर (इष्टतम स्तर पर) दीर्घकाल में भी उत्पादन कर सके। इसी इकाई में आप क्षमता उपयोग की अवधारणा, अप्रयुक्त पूंजी के माप तथा इसके कारणों' की समीक्षा करेंगें।

इकाई संख्या 23 में मूल्य विभेदीकरण तथा मार्क-अप कीमत निर्धारण की प्रक्रिया को समझाया गया है। इसमें आप पड़ेंगें कि मूल्य विभेद क्या है तथा इसकी दशाएं व श्रेणियां कौन सी है। आप इसके अन्तर्गत यह भी पढ़ेगें कि मूल्य विभेदक फर्म की साम्य स्थिति कहां निर्धारित होती है विशेष रूप से जब एक बाजार में प्रतियोगिता हो तथा दूसरे में एकाधिकार। कभी-कभी वस्तु की मांग की लोच विभिन्न बाजारों में भिन्न होने पर भी मूल्य विभेदीकरण संभव नही हो पाता, यह भी इस इकाई में बतलाया गया है। इकाई 21 में ही आप यह भी पढ़ेंने कि मार्क-अप कीमत निर्धारण क्या है तथा फर्म इसका प्रयोग किस प्रकार करती है। इस अवधारणा की व्यावहारिक उपादेयता पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला गया है। इकाई 23 व 24 में यह बतलाया गया है कि कीमत निर्धारण के परम्परागत सिद्धान्त यानी सीमान्त लागत व सीमान्त आगम के आधार पर कीमत निर्धारण की प्रक्रिया- आज के संदर्भ में अर्थहीन हो गयी है तथा अनुभवमूलक दृष्टि से कीमत निर्धारण का आधार कुछ और ही है।

इकाई संख्या 24 में सीमान्त लागत मूल्य निर्धारण की अवधारणा को समझाया गया है। इसमें यह भी बतलाया गया है कि सीमान्त लागत के आधार पर कीमत निर्धारण का औचित्य क्या है तथा इसमें क्या व्यावहारिक कठिनाइयां है'

1.4.4 चतुर्थ खण्ड- प्रस्तुत पुस्तक का चतुर्थ खंड साधनों की कीमत निर्धारण से सम्बंद्ध है। इसमें आठ इकाइयां (इकाई 25 से 32) शामिल की गई है। इकाई 25 में सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की चर्चा की गई है। इसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार सभी बाजारों में प्रतियोगिता होने पर किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता के आधार पर उसकी मांग का निरूपण होता है तथा निर्दिष्ट पूर्ति के अन्तर्गत साधन की कीमत तथा साम्य मात्रा का निर्धारण किया जा सकता है। आप इस इकाई में यह भी देखेंगे कि इस साम्य कीमत के आधार पर एक फर्म किस प्रकार अधिकतम लाभ प्रदान करने वाली साधन-मात्रा का प्रयोग करती है। परन्तु जैसा कि आप जानते है, पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति आदर्श स्थिति होने पर भी वास्तविकता से काफी दूर है। इसी कों दृष्टिगत रखते हुए इकाई 26 में बतलाया गया है कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के आधार पर साधन की कीमत का निर्धारण उस दशा में किस प्रकार होगा जब बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान हो। इस इकाई में आप यह भी पड़ेंगे कि अपूर्ण प्रतियोगिता का साधन की कीमत पर कितना प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सताईसवीं तथा अट्ठाईसवीं इकाइयां लगान के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालती है। इनमें आप पहले रिकार्डों के लगान सिद्धान्त का अध्ययन (इकाई 27) करेंगे जो वस्तुत : लगान का मूल सिद्धान्त माना जाता है। परन्तु रिकार्डों का सिद्धान्त जिन मान्यताओं पर आधारित है वे आज के संदर्भ में सत्य प्रमाणित नही होंती। लगान केवल भूमि पर ही नहीं अपितु उत्पादन के उन सभी साधनों पर प्राप्त होता है जिनमें सीमितता का गुण विद्यमान है। चूँकि दीर्घकाल में सभी साधनों की पूर्ति को बढ़ाना संभव है, दीर्घकाल में साधन को वह प्रीमियम या अतिरेक प्राप्त नहीं हों सकता जो अल्पकाल में पूर्ति की सीमितता के कारण प्राप्त हो सकता है। आधुनिक लगान सिद्धान्त में लगान को एक अतिरेक की संज्ञा दी जाती है जो दीर्घकाल में लुप्त हो जाता है।

औद्योगिक विकास के साथ-साथ उत्पादन के साधनों में श्रम का स्थान गौण होता गया तथा पूंजी की उपादेयता बढ़ती गई। इसीलिए गत डेढ़ सौ वर्षो में ब्याज के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए है। इकाई संख्या 29 में पूर्व प्रस्तुत ब्याज के सिद्धान्तो का विवरण पड़ेंगे। इनमें सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त, त्याग का सिद्धान्त, समय अधिमान (आस्ट्रियन) सिद्धान्त, प्रतिष्ठित सिद्धान्त, नवप्रतिष्ठित सिद्धान्त आदि शामिल है। तीसवीं इकाई में आप लार्ड कीन्स द्वारा प्रस्तुत ब्याज के सिद्धान्त का विवरण पड़ेंगें।

इकाई संख्या 31 में मजदूरी के निर्धारण से सम्बद्ध सिद्धान्तो की व्याख्या की गई है। इस इकाई में आप प्रतिष्ठित तथा नवप्रतिष्ठित विद्वानों के विचार पड़ेंगे। प्रतिष्ठित तथा नवप्रतिष्ठित सिद्धान्तों के अन्तर्गत मुख्य मान्यता यही ली गई थी कि वस्तु तथा साधनों के बाजार प्रतियोगी है और इसलिए श्रमिक को सीमान्त उत्पादकता मूल्य के समान मजदूरी मिलती है जिससे उसका शोषण नही होता। परन्तु आज की

परिस्थितियों भिन्न है। आप इस इकाई में यह पढ़ेंगे कि यदि वस्तु का बाजार एकाधिकारिक तथा अथवा श्रम का बाजार क्रेताधिकारी हो तो श्रमिक का शोषण किस प्रकार होगा। चतुर्थ खंड की इकाई सखा 32 में लाभ के सिद्धान्तो का विवरण दिया गया है। इसमें भी आप लाभ से सम्बद्ध परमरावादी (प्रतिष्टित) तथा नव परमरावादी विचारों के अतिरिक्त लाभ के लगान सिद्धान्त तथा मजदूरी सिद्धान्त की व्याख्या भी देखेंगे। इसी इकाई में लाभ के नव-प्रवर्तन सिद्धान्त, जोखिम वहन सिद्धान्त तथा अनिश्चितता सिद्धान्त का भी विवरण प्रस्तुत किया-गया है।

1.4.5 अन्तिम खण्ड- प्रस्तुत पुस्तक का अन्तिमम खंड कत्याण अर्थशास्त्र से सम्बंद्ध है। चौथे खंड तक प्रस्तुत लगभग सभी इकाइयों में जहां एक व्यक्ति या संस्था के आर्थिक कल्याण को अधिकतम किये जाने का विवरण है, वही पाँचवें खंड में यह माना गया है कि विभिन्न व्यक्तियों के कल्याण में पारस्परिक संबंध है। चूंकिसमाज को प्राप्त साधन (श्रम व पूंजी) स्थिर है, इनके प्रयोग से प्राप्त वस्तुओं का समाज के विभिन्न व्यक्तियों में इष्टतम विवरण किया जाना चाहिए। पांचवें खंड की इकाई सखा 33 में आप यह पड़ेंगे कि आंशिक तथा सामान्य साम्य के बीच क्या अन्तर है। जैसा कि आप इस इकाई में देखेंगे, यदि उपभोक्ताओं की संख्या एक से अधिक हो तथा उनके मध्य दो वस्तुओं का इष्टतम आवंटन किया जाए, तो उपभोक्ताओं का सामान्य साम्य स्थापित हो जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि उपभोक्ता की साम्य (आंशिक) स्थिति के लिए जो शर्ते है उन्हीं के अनुरूप दो या अधिक उपभोक्ताओं की साम्य (सामान्य) स्थिति भी प्राप्त की जा सकती है।

इकाई संख्या 34 में उत्पादन के सामान्य साम्य का विवरण दिया गया है। जैसा कि आप इस इकाई में पड़ेंगें, एक उत्पादक जिन सिद्धान्तो के आधार पर दो साधनों के न्यूनतम लागत वाले संयोग पर किसी वस्तु का उत्पादन करता है (आंशिक साम्य) उन्हीं सिद्धान्तो के आधार पर सामान्य साम्य के अन्तर्गत दो या अधिक वक्तों के उत्पादन हेतु न्यूनतम लागत वाले सांधन संयोग की खोज की जा सकती है। इकाई संख्या 35 में कल्याण अर्थशास्त्र के अर्थ तथा संस्थापक एवं नवसंस्थापक अर्थशास्त्रियों के तत्सम्बंधी विचारों को प्रस्तुत किया गया है। इसी इकाई में ए. सी. पीगू द्वारा प्रस्तुत सामाजिक व आर्थिक कल्याण की अवधारणाओं, तथा व्यक्तिगत तथा सामाजिक कल्याण के भेद को समझाया गया है। साथ ही इस इकाई में कल्याण अर्थशास्त्र की मान्यताओं शर्तों तथा सीमाओं का विवरण भी दिया गया है।

परन्तु जैसा कि आप देखेंगे, कल्याण अर्थशास्त्र को सम्पूर्णता प्रदान करने का श्रेय विल्फ्रेडो परेटो को दिया जाता है। संख्या 36 में आप अधिकतम कत्याण की प्राप्ति में परेटो द्वारा प्रस्तुत इष्टतम शर्तों का विवरण पड़ेंगे। परेटो ने विनिमय, साधन प्रयोग, उत्पादक-रूपान्तरण तथा दो अवधियों के बीच साधन आवंटन के कुछ इष्टतम शर्ते प्रस्तुत की तथा फिर निर्दिष्ट मान्यताओं के अन्तर्गत यह बताने का प्रयास किया कि जिस स्तर पर ये सभी शर्ते समानान्तर रूप से पूरी होती है उसी स्तर पर समाज को अधिकतम आर्थिक कल्याण की प्राणि होती है। इसी स्तर पर परेटो की मान्यता के अनुसार साधनों का प्रयोग भी अधिकतम दक्षता के साथ किया जाता है। परन्तु संख्या के अन्त में यह भी स्पष्ट किया गया है कि परेटो की इष्टतम शर्ते अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है. और वस्तुत : इष्टतम की अपेक्षा समाज को द्वितीय श्रेष्ठ स्थिति पर ही संतुष्ट होना पड़ता है।

इकाई संख्या 37 में आप नव कल्याण अर्थशास्त्र के विषय में पड़ेंगे। इस इकाई में बर्गसन के सामाजिक कल्याण फलन, एरो की सामाजिक चुनाव अवधारणा तथा उस पर सैमुअल्सन की टिप्पणी आदि का विवरण दिया गया है। इसी इकाई में आप यह भी पढ़ेने कि बाजार की अपूर्णताओं(Imperfectness) तथा विविध प्रकार की बहायताओं के कारण निजी लाभ, निजी लागत, सामाजिक लाभ व सामाजिक लागत में विरोधाभास क्यों उत्पन्न हो जाता है। यही कारण है कि सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया द्वारा वैयक्तिक कल्याण को प्रभावित किया जाता है, हालांकि उस प्रक्रिया में भी कभी-कभी विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है। पुस्तक की अन्तिम यानी 38वीं इकाई में क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों का विवरण दिया गया है। इसमें आप केल्डोर, हिक्स तथा सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूर्ति सिद्धान्तो का सविस्तार अध्ययन करेंगे। परन्तु क्षतिपूर्ति सिद्धान्त अनेक अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में अव्यावहारिक है। इनकी आलोचना के अतिरिक्त रॉल्स के न्याय-सिद्धान्त' की भी इस इकाई में चर्चा की गई है।

1.5 पाठ्य सामग्री की प्रमुख विशेषताएं

पुस्तक में जितनी भी इकाइयां प्रस्तुत की गई है उनमें से प्रत्येक के प्रारम्भ में आपका सम्बद्ध इकाई की रूपरेखा तथा उसके उद्देश्यों से परिचय कराया गया है। इकाई से सम्बंद्ध विवरण को रेखाचित्रों तथा उदाहरणों के साथ उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। जहां तक संभव बन पड़ाहै विद्यार्थियों की क्षमता को देखते हुए गणितीय सूत्र भी प्रस्तुत किए गए है।

प्रत्येक इकाई के अंत में आपकी सुविधा के लिए इकाई का सारांश प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रमुख अवधारणाओं को दोहराया गया है। इसी प्रकार प्रत्येक इकाई के अन्त में संदर्भ ग्रंथों की सूची दी गई है ताकि यदि आप उपयुक्त समझे तो इकाई में प्रस्तुत सामग्री के अतिरिक्त और गहनता के साथ अध्ययन कर सके। यही नही, प्रस्तुत विवरण पर आधारित महत्वपूर्ण प्रश्न एवं उनके उत्तर संकेत भी प्रत्येक इकाई के अब में दिए गये है ताकि आप प्राप्त जानकारी के प्रति स्वयं आश्वस्त हो सके।

आशा है विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के लिए विभिन्न पुस्तिकाओं में विद्यमान इकाइयों की सामग्री उन्हें व्यष्टि अर्थशास्त्र की जटिल अवधारणाओं को समझने में सहायक होगी।

इकाई 2

मांग का नियम
Law of Demand

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 उपयोगिता की अवधारणा एवं मांग

2.3 सीमान्त उपयोगिता हास नियम

- 2.3.1 कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता वक्र
- 2.3.2 उपभोक्ता संतुलन - मार्शल

2.4 सीमान्त उपयोगिता वक्र से मांग वक्र की व्युत्पत्ति

2.5 मांग का नियम

- 2.5.1 व्यक्तिगत एवं बाजार मांग

2.6 मांग मे परिवर्तन एवं मांगी गई मात्रा मे परिवर्तन

2.7 मांग को प्रभावित करने वाले तत्व

2.8 मांग के सिद्धान्त की व्याख्या-तटस्थता वक्र विधि

- 2.8.1 तटस्थता वक्र की अवधारणा
- 2.8.2 तटस्थता वक्र एवं उपभोक्ता संतुलन
- 2.8.3 आय एवं प्रतिस्थापन प्रभाव

2.9 तटस्थता वक्र से मांग वक्र की व्युत्पत्ति

2.10 मांग के प्रकार

2.11 मांग के नियम के सामान्य अपवाद

2.12 सारांश

2.14 शब्दावली

2.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

1. अर्थशास्त्र में मांग शब्द के अभिप्राय को समझ सकेंगे;
2. उपयोगिता की अवधारणा एवं सीमान्त उपयोगिता वक्र की सहायता से उपभोक्ता का मांग थक शत कर सकेंगे।
3. मांग में परिवर्तन एवं मांगी गई मात्रा में परिवर्तन के अन्तर की व्याख्या कर सकेंगेर
4. उपयोगिता एवं तटस्थता वक्र विश्लेषणों के आधार पर आय एवं प्रतिस्थापन प्रभावों को व्यक्त कर सकेंगे;
5. तटस्थता वक्र रेखाअएं की सहायता से उपभोक्ता के मांग वक्र को ज्ञात कर सकेंगे_'
6. उन तत्वों की स्पष्ट व्याख्या कर सकेंगे जो मांग को प्रभावित करती है, एवं
7. मांग के नियम तथा इसके अपवादों की व्याख्या कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादकों अथवा उत्पादन इकाइयों को, मूलभूत आर्थिक प्रश्नों-जैसे क्या एवं कितना उत्पादन किया जाये, उत्पादन कैसे किया जाये एवं उत्पादन किसके लिये किया जाये, आदि के बारे में दिशा निर्देश कैसे प्राप्त होते है, अनगिनत उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के निर्णयों में साम्य स्थापित करने एवं उत्पादकों को निर्देश देने का कार्य बाजार तंत्र द्वारा बड़ी कुशलता से पूरा किया जाता है। बाजार-तंत्र कीमतों के उच्चावचनों के माध्यम से उपभोक्ताओं की रुचियों अथवा जरूरतों को प्रदर्शित करता है तथा इससे उत्पादकों को लाभापूर्ण विनियोजन के लिए दिशा निर्देश मिलते है। बाजार तंत्र एवं इसमें मांग एवं पूर्तिकी शक्तियों की सापेक्षिक भूमिका के सही-सही ज्ञान के अभाव में कोई भी उत्पादक बाजार में सफल नही हो सकता है। मांग एवं इसे प्रभावित करने वाले तत्वों का सही-सही विश्लेषण किये बिना एक अर्थशास्त्री भी सफल अर्थशास्त्री नही हो सकता। मांग का पूर्वानुमान लगाने के लिये भी मांग के नियम का ज्ञान होना आवश्यक है।

इस इकाई में मांग के सामान्य नियम से आपको परिचित कराया जाएगा। मांग वक्र उपर बांए से नीचे दाहिने क्यों झुकता है? मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपयोगिता विश्लेषण के आधार पर उपभोक्ता संतुलन की कोन-कोन सी शर्तें है? आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोक्ता व्यवहार की व्याख्या तटस्थता वक्र रेखाओं के प्रयोग के आधार पर करते है। इस नवीन तकनीकी के प्रयोग से मांग-वक्र की व्युत्पति किस प्रकार की जाती है? आदि प्रश्नों की विस्तृत व्याख्या इस इकाई में की जाएगी। इसके साथ ही मांग के विभिन्न निर्धारक घटकों आय एवं प्रतिस्थापन प्रभावों से भी आपको अवगत कराया जाएगा।

2.2 उपयोगिता की अवधारणा (Concept of Utility)

हम किसी वस्तु की मांग क्यों करते हैं? हम उसके लिये मूल्य चुकाने के लिये क्यों तत्पर होते है? इन प्रश्नों का उत्तर देने एवं बाजार में उपभोक्ताओं के व्यवहार की व्याख्या करने के प्रयत्न कई अर्थशास्त्रियों ने किये है । इस सम्बन्ध में दो अलग-अलग विचारधाराएं प्रचलित है-उपयोगिता विश्लेषण एवं तटस्थता वक्र विश्लेषण । उपयोगिता विश्लेषण के विकास का श्रेय प्रो. मार्शल को है । मार्शल उपयोगिता को मापनीय मानते है उनके मत में किसी वस्तु के उपयोग से प्राप्त संतुष्टि को हम एक काल्पनिक इकाई 'यूटिल्स ' '(Utils) में व्यक्त कर सकते है । अंकों में व्यक्त किये जाने के कारण हम यूटिल्स को जोड़ सकते है, घटा सकते है । एक विवेकशील उपभोक्ता को अपने उपभोग से प्राप्त होने वाली उपयोगिता की जानकारी होती है। उपभोक्ता अपने हित एवं अहित से अच्छी तरह परिचित होता है । उसका लक्ष्य अपने उपलब्ध व्यय-योग्य साधनों का उपयोग कर अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है । यदि एक उपभोक्ता किसी वस्तु को खरीदने का निर्णय लेता है तो इसका अभिप्राय यह है कि वह वस्तु उसे अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक संतुष्टि प्रदान करती है ।उपयोगिता किसी वस्तु में निहित नही होती, यह तो व्यक्ति एवं वस्तु के अन्तर्गत पर आश्रित होती है । उदाहरणार्थ, पुराने डाक टिकिट अथवा सिक्कों का संग्रह करने वाले व्यक्तियों के लिये ये डाक टिकटें या सिक्के अत्यधिक उपयोगी हो सकते है, जबकि अन्य व्यक्तियों के लिए ये वस्तुएं अनुपयोगी है ।

यद्यपि अर्थशास्त्रियों के पास उपयोगिता का माप करने के लिये कोई ठोस वास्तविक इकाई नही है, परन्तु यह भी सत्य है कि यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु की अधिकाधिक इकाइयों का उपयोग करता है तो प्रत्येक अतिरिक्त इकाई उसे उत्तरोत्तर कम संतुष्टि प्रदान करती है । इस सर्वमान्य सत्य को अर्थशास्त्रियों ने सीमान्त उपयोगिता हासनियम के नाम से सम्बोधित किया है ।

2.3 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Decreasing Marginal Utility)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को स्पष्ट करने के लिये हम एक सरल उदाहरण लेते है । मान लीजिये एक व्यक्ति को खीर खाने का बहुत शौक है । यदि उसे कोई खीर का एक प्याला देता है तो उसे उससे परम संतोष की अनुभूति होती है । मार्शल के अनुसार वह व्यक्ति अपनी इस संतुष्टि को कुछ काल्पनिक अंकों में व्यक्त कर सकता है । मान लीजिये उसे खीर के पहले प्याले से 9 यूटील्स मिलते है। अब वह व्यक्ति खीर के अपने उपभोग को जारी रखता है । उसे खीर का दूसरा प्याला दिया जाता है तों उसकी कुल उपयोगिता में वृद्धि होगी परन्तु वह पहले से दुगनी नहीं होगी । अर्थात् दूसरे प्याले से उसे पहले की अपेक्षा कम संतोष मिलेगा । कुल उपयोगिता में होने वाली इस वृद्धि को सीमान्त उपयोगिता कहा जाता है । अर्थात् दूसरे प्याले की सीमान्त उपयोगिता ' '9 " यूइटल्स " से कुछ कम ही होगी । अब यदि उपभोक्ता अपने उपभोग को जारी रखता है तो खीर का प्रत्येक अतिरिक्त प्याला उसे उत्तरोत्तर कम उपयोगिता प्रदान करेगा। कुल उपयोगिता में हो रही वृद्धि की गति धीमी पड़ती जाएगी । एक सीमा के बाद खीर की उपयोगिता शून्य रह जाएगी। यदि इसके बाद भी उपभोक्ता अपने उपभोग को बन्द न करे तो उसे खीर से अपच हो सकती है अर्थात् उसे ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होने लगेगी। इस प्रकार हम यह

मानते है कि यद्यपि आवश्यकताएं अनन्त है फिर भी किसी समय विशेष पर किसी विशेष आवश्यकता को पूर्णत : संतुष्ट किया जा सकता है।

2.3.1 कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता वक्र :

काल्पनिक उपयोगिता अनुसूची की सहायता से भी इस अवधारणा को स्पष्ट कर सकते है -

तालिका: 2. 1

X व्यक्ति की खीर के उपयोग की उपयोगिता अनुसूची

खीर की प्यालियां	कुल उपयोगिता	सीमान्त उपयोगिता
1	9	9
2	17	8
3	24	7
4	30	6
5	35	5
6	39	4
7	42	3
8	44	2
9	45	1
10	45	0
11	44	-1
12	42	-2

तालिका 2.1 में X व्यक्ति को खीर के उपयोग से प्राप्त कुल उपयोगिता एवं प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता अथवा सीमान्त उपयोगिता को प्रदर्शित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि X व्यक्ति की कुल उपयोगिता प्रत्येक अतिरिक्त प्याले के साथ बढ़ती जाती है। परन्तु 9 प्याले खाने के बाद उसकी आवश्यकता पूरी तरह संतुष्ट हो जाती है एवं दसवें प्याले से उसे कोई अतिरिक्त उपयोगिता नहीं मिलती। इसके बाद भी यदि उपभोक्ता अपना उपभोग जारी रखता है तो उसे ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होती है।

तालिका 2.1 में दी गई X व्यक्ति की काल्पनिक उपयोगिता अनुसूची के आधार पर हम कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता वक्रों का निर्माण कर सकते है। चित्र 2.1 में कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता वक्रों को एक साथ प्रस्तुत किया गया है।

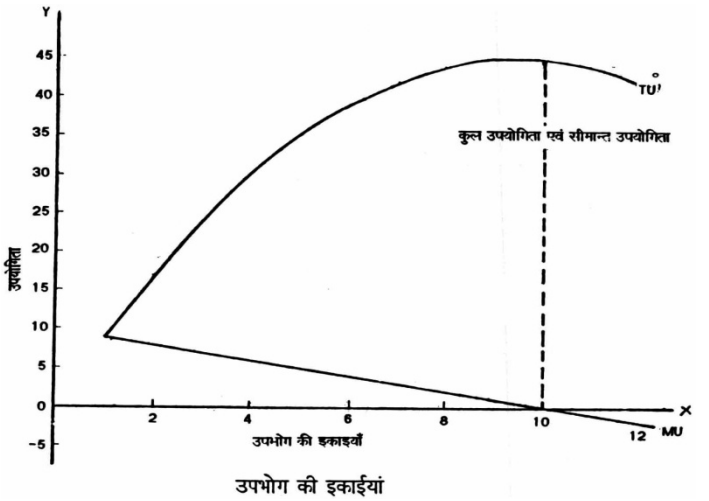

उपभोग की इकाईयां

चित्र 2.1

रेखाचित्र 2.1 से स्पष्ट हो जाता है कि कुल उपयोगिता(TU) प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के साथ-साथ बढ़ती जाती है परन्तु इसमें वृद्धि की गति धीमी पड़ती जाती है। कुल उपयोगिता में एक सीमा के बाद (प्रस्तुत काल्पनिक उदाहरण में 10 इकाई) वृद्धि नहीं होती है इस बिन्दु पर कुल उपयोगिता अधिकतम एवं सीमान्त उपयोगिता (Mu) शून्य होती है। इसे पूर्ण संतुष्टि का बिंदु कहा जाता है | यदि उपभोक्ता अपना उपभोग एक सीमा के बाद भी जारी रखता है तो उसे ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होती है। सीमान्त उपयोगिता वक्र उपर बाएं से नीचे दाहिने ओर झुकता है। अर्थात् इसका ढाल ऋणात्मक होता है। सीमान्त उपयोगिता में होने वाली इस कमी को अर्थशास्त्री एक सर्वमान्य सत्य मानते है एवं इसे **सीमान्त उपयोगिता हास के नियम** के नाम से सम्बोधित करते है। एक व्यक्ति कार्य एवं आराम के बीच निर्णय लेने में इसी नियम की सहायता लेता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति कितनी बचत करेगा एवं कितना व्यय करेगा यह निर्णय भी व्यय एवं बचत की सीमान्त उपयोगिताओं की तुलना कर किया जा सकता है।

2.3.2 उपभोक्ता संतुलन-मार्शल :

एक विवेकशील उपभोक्ता अपनी सीमित आय को व्यय करके अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। वह यह निर्णय पहले ही ले चुका है कि उसे कितना काम करना है एवं कितना आराम तथा उसे अपनी आय में से कितना व्यय करना है एवं कितनी बचत। इन निर्णयों के लिये जाने से हमें उसकी अब खर्च योग्य आय ज्ञात हो जाती है।

मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के अनुसार एक उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि उस बिन्दु पर प्राप्त होगी जहां उसके द्वारा व्यय की जाने वाली मुद्रा की अन्तिम इकाई से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता विभिन्न उपयोगों में बराबर हो। इस नियम को आधुनिक सूत्र रूप में निमानुसार लिखा जाता है -

$$\frac{Mu_a}{P_a} = \frac{Mu_b}{P_b} = \frac{Mu_c}{P_c} = \ldots\ldots\ldots\ldots \frac{Mu_n}{P_n}$$

जहाँ

Mu = सीमान्त उपयोगिता

P = कीमत

a,b,c,n, = वस्तुएं एवं सेवाएं

चूंकि विभिन्न वस्तुओं को भिन्न-भिन्न इकाइयों में व्यक्त किया जाता है अत: तुलना के उद्देश्य से सीमान्त उपयोगिताओं में कीमतों का भाग देकर प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता ज्ञात कर ली जाती है। इस प्रकार संतुलन की दशा में विभिन्न वस्तुओं की प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता बराबर होनी चाहिये।

उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि उसी दशा में प्राप्त होगी जब वह उपर्युक्त संतुलन की शर्त को पूरा करे एवं साथ ही वह अपनी समस्त आय उपभोग पर व्यय कर दे। इस शर्ते को निम्नलिखित समीकरण के रूप में लिखा जा सकता है-

$E = Q_a P_a + Q_b P_b + Q_c P_c + \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots + Q_n P_n D$

E = कुल व्यय

Q = क्रय की गई मात्रा

P = विभिन्न वस्तुओं की कीमतें

a, b, c, n = वस्तुएं एवं सेवायें

इस प्रकार वह अपनी सम्पूर्ण आय विभिन्न वस्तुओं के क्रय पर व्यय कर अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करेगा।

बोध प्रश्न - 1

एक व्यक्ति दो वस्तुएं खरीदता है। उसे दोनों वस्तुओं से मिलने वाले प्रति रूपये सीमान्त उपयोगिता इस प्रकार है-

$$\frac{Mu_A}{P_A} > \frac{Mu_B}{P_B}$$

वह अपना कुल व्यय बढ़ाए बिना कुल उपयोगिता को कैसे बढ़ा सकता है?

कुल उपयोगिता एवं सीमाब उपयोगिता में क्या सम्बन्ध है?

2.4 सीमान्त उपयोगिता वक्र से मांग वक्र की व्युत्पत्ति

एक विवेकशील उपभोक्ता द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया का अध्ययन करने के बाद अब हम किसी एक वस्तु के लिऐ उसकी मांग की चर्चा करेंगे। बाद में उन्हीं व्यक्तिगत मांग वक्रों के आधार पर बाजार मांग वक्र ज्ञात करेंगे। व्यक्तिगत मांग वक्र की व्युत्पत्ति के लिए हम निम्नलिखित मान्यताएं लेते है।

1. प्रत्येक उपभोक्ता को अपने उपभोक्ता सम्बन्धी निर्णय लेने के लिये आवश्यक सूचनाओं की पूरी-पूरी एवं सही जानकारी है। जैसे कौन कौन सी वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध है उनमें क्या तकनीकी विशेषताएं है, बाजार कीमतें एवं उसकी आय कितनी है।
2. प्रत्येक उपभोक्ता को अपना वरीयता-क्रम (Preference Scale) स्पष्ट एवं ज्ञात है।
3. परिवारों के द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं को हम पदार्थ अथवा माल के रूप में परिभाषित करते है। ये पदार्थ हमें समय के एक बिन्दु पर उपयोगी उपभोग सेवाएं प्रदान करते है। अत: हमारा उद्देश्य उस माल अथवा पदार्थ को प्राप्त करना नही बल्कि उसके द्वारा प्रदत्त सेवाओं को प्राप्त करना है। इस अर्थ में उपभोक्ता व्यवहार की व्याख्या करना सरल हो जाता है एवं वस्तुओं की अविभाज्यता, टिकाऊ वस्तुएं जैसे-कार, टेलीविजन इत्यादि, गैर-टिकाऊ वस्तुएं जैसे-दूध ,ब्रेड, सब्जी आदि विभिन्न प्रकार की सेवाएं जैसे-डॉक्टर, वकील, अध्यापक आदि का अध्ययन हो जाता है।
4. एक समय में एक उपभोक्ता किसी एक वस्तु अथवा सेवा का उपभोग नही करके एक मालसमूह का प्रयोग करता है। उपभोक्ता एक माल-समूह एवं दूसरे माल-समूह के बीच तुलना केंर चयन करता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि एक विवेकशील उपभोक्ता जिस माल-समूह का चयन करता है वह उसे उसके वरीयता-क्रम कें अनुसार अधिक प्रिय है एवं अधिक संतोष प्रदान करती है।

उपर्युक्त वर्णित मान्यताओं के परिणामस्वरूप हम बाजार में उपलब्ध अनेक वस्तुओं में से किसी एक को अलग कर उसकी मांग के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते है। सीमान्त उपयोगिता अनुसूची के आधार पर निर्मित सीमान्त उपयोगिता वक्र को चित्र 2.2 में प्रदर्शित किया गया है।

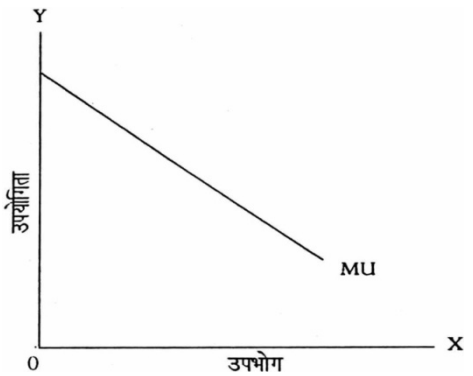

चित्र 2.2

चित्र 2.2 में उपयोगिता को OY, अक्ष पर मापा गया है एवं x वस्तु के उपभोग को OX अक्ष पर लिया गया है। उपयोगिता अनुसूची के बारे में उपभोक्ता के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति को जानकारी नहीं है। बाजार में उपभोक्ता जब किसी वस्तु विशेष की दी हुई कीमत पर कुछ मात्रा क्रय करता है तो वह

उपयोगिता वक्र पर किसी एक बिन्दु को व्यक्त करता है । जैसे- चित्र 2.3 में X वस्तु की P_1 कीमत पर उपभोक्ता 0A मात्रा क्रय करता है ।

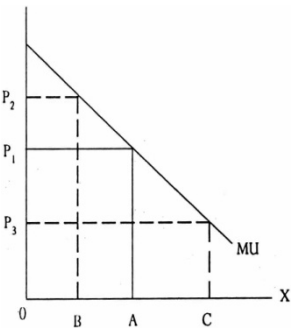

चित्र 2.3

हम यह निष्कर्ष निकालते है कि वस्तु की खरीदी गई मात्रा के लिये जो कीमत उपभोक्ता ने चुकाई है वह वास्तव में उस वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता के बराबर है। अब हम उसके सीमान्त उपयोगिता वक्र से मांग के अन्य बिन्दुओं को ज्ञात कर सकते है। मान लीजिए कीमत P_1 से बढ़कर P_2, हो जाती है। अथवा P_1 से घटकर P_2 हो जाती है। इन कीमत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप वह मांगी गई मात्राओं में परिवर्तन करेगा। इन विभिन्न कीमतों को एवं उन पर मांगी गई मात्राओं के आधार पर हम एक मांग वक्र का निर्माण कर सकते है यह मांग वक्र विभिन्न मतों पर उपभोक्ता द्वारा मांगी जाने वाली X वस्तु की मात्राओं को प्रदर्शित करेगा।

2.5 मांग का नियम (Law of Demand)

पूँजीवादी अर्थथवस्थाओं में जहां उपभोक्ताओं को अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं पर व्यय करने की स्वतंत्रता होती है, उनकी रूचियों पर कोई अंकुश नही लगाया जाता। सामान्यत: उपभोक्ताओं द्वारा वस्तु की क्रय की जाने वाली मात्रा, उस वस्तु के मूल्य पर निर्भर होती है। ऊंची कीमतों पर मांगी गई मात्रा सामान्यत: कम व नीची कीमतों पर अधिक होती है। यही सामान्य मांग का नियम है।

इस प्रकार मांग एवं वस्तु की कीमत में ऋणात्मक संबंध है परन्तु यह संबंध आवश्यक रूप से आनुपातिक नही है। यह नियम केवल मात्र एक प्रकृति अथवा दिशा का द्योतक है। यह नियम तभी क्रियाशील होता है जब मांग को प्रभावित करने वाली अन्य शक्तियां यथावत् बनी रहे ।

मांग एवं मूल्य के विपरीत संबंध को व्यक्त करने के लिए हम कुछ काल्पनिक मूल्य एवं उन पर एक व्यक्ति द्वारा मांगी गई विभिन्न मात्राओं को लेकर एक मांग अनुसूची तैयार करते है।

सारणी 2.2 सन्तरों की मांग अनुसूची

संतरों की कीमत (रुपये प्रति किग्रा.)	संतरों की मांगी गई मात्रा(प्रतिदिन किग्रा)
5	1
4	2
3	4
2	6
1	10

सारणी 2.2 में दी गई मांग अनुसूची के अध्ययन से स्पष्ट है कि जब कीमत 5 रुपये प्रति किग्रा है तो उपभोक्ता प्रतिदिन 1 क्रिग्रा. संतरों की मांग करता है। परन्तु जैसे-जैसे कीमत घटतीं जाती है, उपभोक्ता द्वारा मांगी गई मात्रा बढ़ती जाती है। इस प्रकार विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा मांगी गई मात्राओं का योग कर बाजार मांग अनुसूची ज्ञात की जा सकती है। बाजार मांग प्रतिदिन किग्रा. के स्थान पर हजार क्रिग्रा. होगी। इससे कीमत व मात्रा के विपरीत संबंध में कोई परिवर्तन नही आएगा।

सारणी 2.2 को रेखा चित्र 2.4 के द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इस चित्र में कीमत को लम्ब-अक्ष पर तथा मांगी गई मात्रा को समतल अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। मांग अनुसूची के स्थान पर मांग वक्रों का उपयोग अधिक है। क्योंकि इससे हम कीमत में होने वाले मृक्ष परिवर्तनों का मांगी गई मात्रा पर प्रभाव ज्ञात कर सकते है। यह आवश्यक नही कि कीमत 5 रुपये प्रति क्रिग्रा से घटकर 4 रु. ही हो यह इन दोंनों के वीच में भी कही हो सकती है। ऐसी स्थिति में मांग वक्र से माँगी गई मात्रा की गणना की जा सकती है।

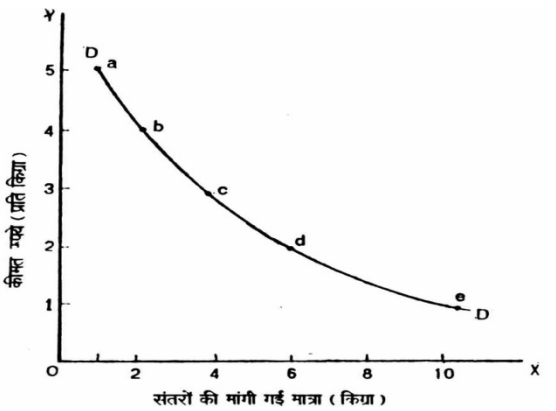

चित्र 2.4

चित्र 2.4 से स्पष्ट है कि DD व्यक्तिगत मांग अनुसूची के आधार पर तैयार किया गया मांग वक्र है। बाजार मांग वक्र का स्वरूप भी यही होगा। केवल मांगी गई मात्रा को क्रिग्राम में व्यक्त न करके हजार किलोग्राम या इससे भी बड़ी इकाई में व्यक्त किया जाएगा।

2.5.1 व्यक्तिगत एवं बाजार मांग

किमी वस्तु के लिये व्यक्तिगत मांग वक्र ज्ञात होने के बाद हम उनका योग करके बाजार मांग वक्र ज्ञात कर सकते है । किसी दी हुई कीमत पर विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा मांगी गई मात्रा का योग करके हम बाजार मांग वक्र का एक बिन्दु ज्ञात कर सकते है। इस प्रक्रिया को विभिन्न कीमतों के लिये दोहरा कर बाजार मांग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं को ज्ञात किया जा सकता है । चित्र 2.5 में बाजार मांग वक्र को प्रदर्शित किया गया है ।

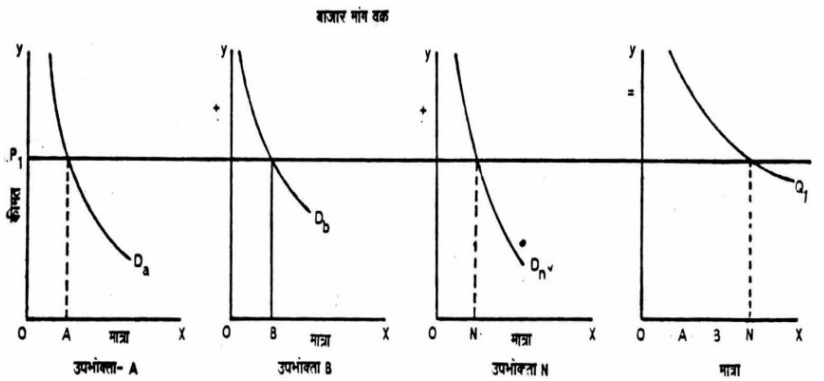

चित्र 2.5

यदि कीमत P_1 है तो उपभोक्ता AB एवं N क्रमश: OA, OB एवं ON मात्राओं का क्रय करेंगे जिन्हें बाजार मांग वक्र में OA, AB एवं BN के द्वारा दर्शाया गया है। इस प्रकार सभी उपभोक्ताओं की माँगी गई मात्राओं का योग ज्ञात करके बाजार मांग वक्र Q_1 प्राप्त किया जा सकता है।

बोध-प्रश्न - 2

1. क्या वस्तु की कीमत एवं कुल उपयोगिता में कोई सम्बंध हैं?
2. व्यक्तिगत मांग वक्रों से बाजार मांगवक्र कैसे ज्ञात किया जा सकता है?

2.6 मांग मे परिवर्तन एवं मांगी गई मात्रा में परिवर्तन

मांग में कई कारणों से परिवर्तन हो सकते है। यदि कीमत में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप उपभोक्ता अपनी मांग में परिवर्तन लाता है तो उसे मांग का विस्तार अथवा मांग का संकुचन कहतेहै। इसे "मांगी गई मात्रा में परिवर्तन" भी कहा जा सकता है। दूसरी ओर यदि ये परिवर्तन कीमत के अलावा अन्य किन्हीं कारणों से होते है तो इन्हें "मांग में वृद्धि" अथवा " मांग में कमी" कहा जाएगा। आगे किये जा रहे विवेचन में इन्ही बातों को स्पष्ट किया गया है।

मूल्यों में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं द्वारा वस्तु विशेष की अधिक अथवा कम मात्रा की मांग को मांगी गई मात्रा में परिवर्तन कहते है। यदि मूल्यों में कमी होती है तो अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग की जाती है। इस स्थिति को मांग का विस्तार कहते है। यदिमूल्यों में वृद्धि होती है तो वस्तुओं एवं सेवाओं की मांगी गई मात्रा कम हो जाती है इसे मांग का संकुचन कहते है। इसमेंमांग वक्र की स्थिति

नही बदलती है। मान लीजिए चित्र 2.4 में यदि उपभोक्ता C बिन्दु पर है अब यदि कीमत बढ़ जाती है। तो वह D बिन्दु से हटकर C पर खिसक जाएगा। यह 'मांग का संकुचन" कहा जाएगा। इसके विपरीत यदि कीमत घट जाती है और वह C से हटकर D पर आ जाता है तो इसे" मांग का विस्तार" कहते है। इस परिवर्तन की मुख्य बात यह है कि इसमें उपभोक्ता के मांग वक्र की स्थिति नही बदलती है। दूसरे शब्दों में उपभोक्ता अपने प्रारम्भिक मांग वक्र पर ही मूल्य के अनुसार विभिन्न बिन्दुओ का चयन करता है। इस प्रकार कीमतों में परिवर्तन से मांग का विस्तार एवं मांग का संकुचन होता है। इसे माँगी गई मात्रा में परिवर्तन कहते है।

मांग में परिवर्तन के परिणामस्वरूप मांग की अनुसूची एवं मांग वक्र दोनों में परिवर्तन हो जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि मांग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों जैसे आय, रूचि, फैशन,' अन्य वस्तुओं की कीमतों, आदि में से एक अथवा अधिक तत्वों में परिवर्तन के कारण मांग वक्र की स्थिति में परिवर्तन हो गया है। मांग में वृद्धि का आशय यह है कि मांग वक्र आगे दाई ओर खिसक गया है। अर्थात, अब उसी कीमत पर उपभोक्ता अधिक मात्रा खरीदने को तत्पर है। इस स्थिति को चित्र 2.6 मे प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार मांग में कमी का आश्य यह है कि मांग वक्र की स्थिति बाई और खिसक गई है। अर्थात् उपभोक्ता अब उसी कीमत पर अपनी मांग कम कर देता है। इस स्थिति को चित्र 2.7 में दिखाया गया है।

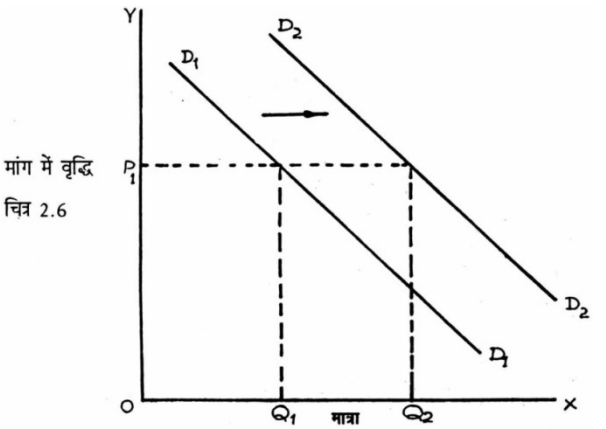

मांग में वृद्धि
चित्र 2.6

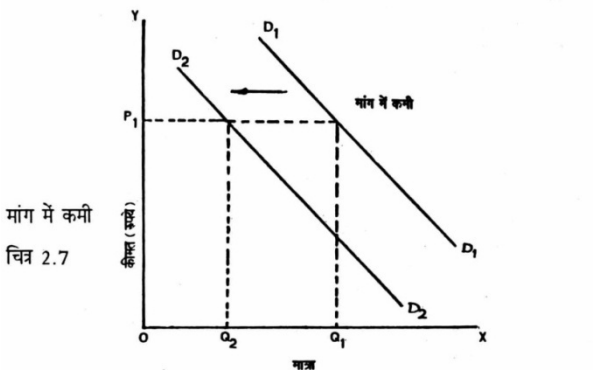

मांग में कमी
चित्र 2.7

मांग में वृद्धि को चित्र 2.6 में प्रदर्शित किया गया है इससे स्पष्ट है कि कीमत OP_1, के अपरिवर्तित रहते हुये मांग बढ़ कर OQ_1 से OQ_2, हो जाती है। एवं मांग वक्र D_1 स्थान से खिसक कर D_2, स्थान पर चला

जाता है। इसके विपरीत चित्र 2.7 में मांग वक्र बाई ओर खिसक जाता है। प्रारम्भिक मांग OP_1, कीमत पर OQ_1 है जो घटकर OQ_2, रह जाती है। मांग में यह परिवर्तन कीमत परिवर्तन के परिणामस्वरूप न होकर अन्य कारणों से हुआ है। इसे मांग में कमी कहा जाता है। अब हम उन अन्य तत्वों की विस्तृत विवेचना करेंगे जो मांग में वृद्धि अथवा कमी के लिये उत्तरदायी है।

2.7 मांग को प्रभावित करने वाले तत्व

मांग का सामान्य नियम किसी वस्तु की मांग को केवल उसी वस्तु की कीमत पर निर्भर मानता है । बीजगणितीय रूप में $Dx= f(Px)$ इसका अभिप्राय यह है कि X वस्तु की मांग X वस्तु की कीमत पर निर्भर करती है । परन्तु हमारे अनुभव यह सिद्ध करते है कि मांग में परिवर्तन मूल्यों के अलावा अन्य कारणों से भी होते है ये अन्य तत्व निम्नलिखित हो सकते है-

i. **अन्य वस्तुओं की कीमते-** एक वस्तु की मांग पर अन्य वस्तुओं की कीमतों का प्रभाव पड़ता है । स्थानापन्न वस्तुएं वे होती है जिन्हें एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाया जा सके जैसे चाय एवं कॉफी । अब यदि कॉफी की कीमतें कम हो जाएं तो चाय की मांग गिर जाएंगी, क्योंकि उपभोक्ता चाय के स्थान पर कॉफी का प्रयोग करेंगे। इसके विपरीत कॉफी की कीमतें बढ़ जाये तो चाय की मांग बढ़ जाएगी क्योंकि उपभोक्ता कॉफी के स्थान पर चाय का उपभोग बढ़ा देंगे। पूरक वस्तुएँ वे है जिन्हें साथ-साथ काम में लिया जाता है- जैसे कार एवं पैट्रोल। इस स्थिति में एक पूरक वस्तु की कीमत का दूसरी वस्तु की मांग पर भी प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त यदि कोई वस्तु ऐसी है जिस पर उपभोक्ता की आय का काफी बड़ा हिस्सा व्यय होता है, जैसे-मकान किराया, बच्चों की शिक्षा आदि । ऐसी स्थिति में इनकी कीमत बढ़ने से अन्य सभी वस्तुओं की मांग पर प्रभाव पड़ता है ।

ii. **आय का स्तर-** परिवार की आय मांग की एक महत्वपूर्ण निर्धारक है । सामान्य तोर पर किसी परिवार की आय बढ़ने पर एवं वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतें अपरिवर्तित रहने पर भी मांग बढ़ जाती है । इस प्रकार आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं के मांग वक्रों की स्थितियों में भी परिवर्तन आते है । आय बढ़ने पर मांग वक्र आगे दाई ओर तथा आय घटने पर बाई ओर खिसक जाएगा । आय के मांग पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर अर्थशास्त्रियों ने वस्तुओं को अलग-अलग वर्गो में विभाजित किया है।

iii. **आय का वितरण-** समाज में आय का वितरण मांग के स्वरूप को प्रभावित करता है । यह तो सर्वविदित ही है कि यदि समाज में धन का वितरण समान है और सामान्यत: अधिकांश लोग निर्धन है तो आवश्यक वस्तुओं की मांग अधिक होगी । दूसरी ओर यदि आय का वितरण असमान है, तो विलासिता की वस्तुओं की अधिक मांग की जाएगी। इस प्रकार यदि समाज में आय का वितरण परिवर्तित होता है तो मांग का स्वरूप भी निश्चित रूप से परिवर्तित होगा ।

iv. **जनसंख्या की मात्रा-** जनसंख्या की वृद्धि के परिणामस्वरूप मांग बढ़ेगी । इसके अतिरिक्त जनसंख्या की विशेषताओं का भी मांग के स्वरूप पर प्रभाव पड़ता है । उदाहरणार्थ, यदि समाज

में शिक्षा का प्रसार होता है तो शिक्षा, चिकित्सा जैसी-आवश्यकताओं पर अधिक व्यय किया जाएगा। एक परम्परागत समाज की मांग का स्वरूप एक शिक्षित समाज की तुलना में अलग होगा।

v. **उपभोक्ताओ की रुचि, फैशन एवं वरीयता कम-** उपभोक्ताओं की मांग पर उनकी रूचि, फैशन एवं वरीयता क्रम का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। हमारी रूचियों पर हमारे पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारों का प्रभाव पड़ता है। समुद तट के निकट रहने वालों के खाने में मछली प्रमुख खाद्य है, जबकि मध्य भारत में रहने वालों में इसकी अधिक मांग नहीं है। इसी प्रकार शादी-विवाह पर बड़े-बड़े भोज आयोजित करना, मिठाई खाना भारत-वर्ष में अच्छा माना जाता है। विदेशों में इस प्रकार की मांग नही होती क्योंकि उनके वरीयता क्रम में ऐसे खर्चो के लिए कोई स्थान नही है।

vi. **टिकाऊ वस्तुओं की जमा मात्रा-** एक विकासशील कृषि प्रधान अर्थ-व्यवस्था में टिकाऊ वस्तुओं की प्रारम्भिक मात्रा कम होती है। अत: आय में वृद्धि के साथ इनकी मांग में वृद्धि होती है। परन्तु एक विकसित अर्थ-व्यवस्था में टिकाऊ वस्तुओं की प्रारम्भिक जमा मात्रा पहले से ही अधिक होती है। इन्हें उस समय तक नही बदला जाता जब तक कि ये अत्यधिक पुरानी अथवा खराब नही हो जाती। अत: नई टिकाऊ वस्तुओं की मांग टिकाऊ वस्तुओं की वर्तमान जमा मात्रा से प्रभावित होती है।

vii. **जलवायु -** एक देश-विशेष में मांग का स्वरूप वहां के मौसम एवं जलवायु परभी निर्भर होता है। ठण्डे प्रदेशों में उनी वस्त्रों की मांग अधिक होगी। जबकि गर्म प्रदेशों में पतले रेशमी व सूती वस्त्र अधिक पसन्द किये जाऐंगे। मौसम में परिवर्तन कें साथ-साथ हमारी खान-पान की आवश्यकताएं भी बदल जाती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मांग पर कई तत्वों का प्रभाव पड़ता है। अत: मांग का उपर्युक्त वर्णित फलनालक सम्पन्न वास्तविकता से परे है। वास्तविक मांग का नियम बीजगणितीय रूप में इस फलनालक सम्बन्ध से व्यक्त किया जा सकता है-

$D_x = f(P_x, P_y \ldots\ldots\ldots\ldots P_n, I, (S), t)$

जहां

D_x = X वस्तु की कीमत

P_x = X वस्तु की कीमत

P_y = $\ldots\ldots\ldots\ldots P_n$ अन्य वस्तुओं की कीमतें

I = आय

S = जमा मात्रा, इसे कोष्ठक में रखा गया है, क्योंकि केवल टिकाऊ वस्तुओं की मांग ही इससे प्रभावित होंती है।

t = समय, यह उन सभी वस्तुओं के प्रभाव को व्यक्त करता है, जिनमें धीरे-धीरे परिवर्तन होते है जैसे जनसंख्या, आय का वितरण, रूचि, फैशन इत्यादि।

यद्यपि यह एक अधिक वास्तविक फलनात्मक सम्बन्ध है परन्तु वास्तविक बाजार तंत्र में मांग की व्याख्या के लिये इसका उपयोग नही किया जा सकता। अध्ययन की सरलता के लिये अन्य सभी तत्वों को स्थिर मान लिया जाता है। सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण पर आधारित मांग के सामान्य नियम की मार्शल द्वारा प्रस्तुत व्याख्या के आधार पर एडम स्मिथ के पानी-हीरों के विरोधाभास, 'पानी जो कि जीवन के लिये बहुत उपयोगी है, के बदलें में शायद ही कोई वस्तु खरीदी जा सके, परन्तु हीरा जिसकी उपयोगिता बहुत कम या नही के बराबर है, के बदले में कई अन्य वस्तुएं एवं सेवाएं प्राप्त की जा सकती है' की व्याख्या की जा सकती है। मार्शल ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया और बताया कि पानी की पूर्ति अधिक होने के कारण पानी की एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता बहुत कम है। जबकि हीरो की पूर्ति कम होने के कारण इसकी अतिरिक्त इकाई से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता बहुत अधिक है। यही कारण है कि पानी की कीमत कम अथवा नहीं के बराबर होंती है, एवं हीरों की कीमत बहुत उँची होती है। इस प्रकार कीमत सीमान्त उपयोगिता को प्रदर्शित करती है।

उपयोगिता विश्लेषण का प्रमुख दोष यह है कि इसके आधार पर हम कीमत परिवर्तन के आय प्रभाव एवं स्थानापन प्रभावों को अलग-अलग नही कर सकते। जब किसी वस्तु की कीमत में गिरावट होती है तो उपभोक्ता अधिक मात्रा में उपयोग कर सकता है, जो वास्तव में आय बढ़ने पर ही सम्भव था। इस -प्रकार कीमतों में कमी के परिणामस्वरूप उपभोक्ता द्वारा मांगी गई मात्रा में वृद्धि वास्तविक आय में हुई वृद्धि के कारण हुई है। अत: यह आय प्रभाव है। दूसरी ओर जिस वस्तु की कीमत में कमी हुई है इसकी प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता बढ़ जाती है। एक विवेकशील उपभोक्ता सदैव अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के उद्देश्य से सस्ती वस्तुओं को मंहगी वस्तुओं के स्थान पर प्रतिस्थापित करेगा। इसे प्रतिस्थापन प्रभाव कहते है। इस प्रकार कीमतों में गिरावट के परिणामस्वरूप आय एवं प्रतिस्थापन प्रभाव साथ-साथ क्रियाशील होते है। परन्तु उपयोगिता विश्लेषण के आधार पर उनमें भेद करना सम्भव नही था।

इसके अतिरिक्त उपयोगिता एक वैयक्तिक धारणा है जो व्यक्ति अनुभव करता है। परन्तु उपयोगिता विश्लेषण में यह माना गया है कि व्यक्ति वस्तु के उपभोग से अनुभव कई जाने वाली उपयोगिता को अंको में व्यक्त कर सकता है। वस्तुत : हिक्स ने उपयोगिता के गणना वाचक दृष्टिकोण की कटु आलोंचना की एवं कहा कि मानव का मस्तिष्क गणनायंत्र नहीं है। अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिये मार्शल द्वारा प्रस्तुत विवेचन में गणनाएं अधिक है। अत: आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोक्ता व्यवहार एवं मांग-वक्र की व्याख्या क्रम-वाचक दृष्टिकोण के आधार पर करते है। नवीन तकनीक को तटस्थता वक्रों की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

2.8 मांग के सिद्धांत की व्याख्या-तटस्थता वक्र विधि

2.8.1 तटस्थता वक्र की अवधारणा

उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण में उपयोग़िता दृष्टिकोण की सीमाओं के कारण उनका अधिक प्रचलन नही हुआ। हिक्स द्वारा प्रस्तुत तटस्थता वक्र विधि अधिक उपयोगी एवं तर्कसंगत है। इसमें उपयोगिता की अंकों में गणना करने की आवश्यकता नही पड़ती है। हिक्स के मतानुसार उपभोक्ता अपनी संतुष्टि के स्तर को अंकों में व्यक्त नही कर सकता, परन्तु वह यह बता सकता है कि संपुष्टि का स्तर पहले से अधिक है अथवा कम। इस प्रकार तटस्थता वक्र विधि क्रम वाचक गणना पद्धति का सहारा लेती है। इसके अतिरिक्त उपयोगिता विश्लेषण में व्यक्ति केवल एक वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को व्यक्त करता है। इस विधि में वह दो वस्तुओं के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जो उसे समान संतुष्टि प्रदान करते है। इस प्रकार यह विधि उपभोक्ता को एक से अधिक वस्तुएं उपलब्ध कराती है। हम यह मान्यता लेते है कि X तथा Y वस्तु की अधिक मात्रा के उपभोग से उसकी संतुष्टि का स्तर ऊँ चा होता है। एवं कम मात्रा का उपभोग संतुष्टि का स्तर नीचा कर देता है। हम यह भी मानते है कि प्रत्येक उपभोक्ता को अपना वरीयता क्रम ज्ञात है एवं वह उन संयोगों को व्यक्त कर सकता है जो उसे संतुष्टि का एक निश्चित स्तर प्रदान करते है। नीचे दो वस्तुओं के विभिन्न काल्पनिक संयोगों को प्रदर्शित किया गया है। जिनसे एक उपभोक्ता को समान संतुष्टि मिलती है।

तालिका 2.3

तटस्थता अनुसूची

संयोग	X वस्तु	Y वस्तु
A	1	10
B	2	6
C	3	3
D	4	1

तालिका में प्रदर्शित A,B,C, एवं D सभी संयोग उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्रदान करते है। अत: उपभोक्ता को चाहे जो संयोग प्रदान किया जाये जिसमें उसे x वस्तु की 1 इकाई y वस्तु की 10 इकाइयां मिलती है अथवा उसे B,C अथवा D में स कोई भी संयोग उपभोग के लिये मिले उसकी संतुष्टि का स्तर पूर्ववत् रहता है। हिक्स के अनुसार संतुष्टि के इस स्तर को उपयोगिता विश्लेषण की भांति अंकों में व्यक्त करने की आवश्यकता नही है। क्योंकि सभी संयोग समान संतुष्टि प्रदान करते है, उपभोक्ता किसी एक संयोग को प्राप्त करने के लिये अधिक उत्सुक नही होते। वे विभिन्न संयोगों के प्रति तटस्थ रहते है। इन

संयोगों को व्यक्त करने वाले वक्र को तटस्थता वक्र कहते है। तटस्थता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते है। यह रेखाचित्र 2. 8 से सष्ट ह

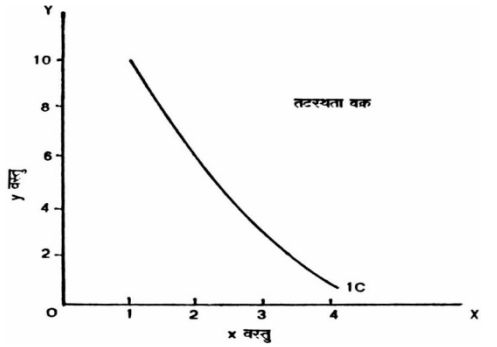

चित्र 2.8

तटस्थता वक्र के मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होने का मुक्त कारण सीमान्त प्रतिस्थापन दर का गिरना है। जैसे-जैसे X वस्तु का उपभोग बढ़ाया जाता है, Y वस्तु के रूप में उसके लिये उपभोक्ता क्रमश : कम त्याग करने को तत्पर होता है। प्रारम्भ में वह X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिये Y वस्तु की 4 इकाइयां देने को तत्पर होता है परन्तु बाद में वह B,C व D संयोगों को प्राप्त करने के लिये Y वस्तु की उत्तरोतर कम इकाइयां देने को तत्पर होता है। चित्र 2.8 में उपभोक्ता के एक तटस्थता वक्र को प्रदर्शित किया गया है। परन्तु प्रत्येक उपभोक्ता के अपने वरीयता क्रम के स्वरूप इस तरह के अन्य कई तटस्थता वक्र हो सकते है। ऊपर दांयी ओर स्थित तटस्थता वक्र संतुष्टि के उंचे स्तर को प्रदर्शित करता है। चित्र 2.9 में ऐसे अनेक वक्रों को प्रदर्शित किया गया है।

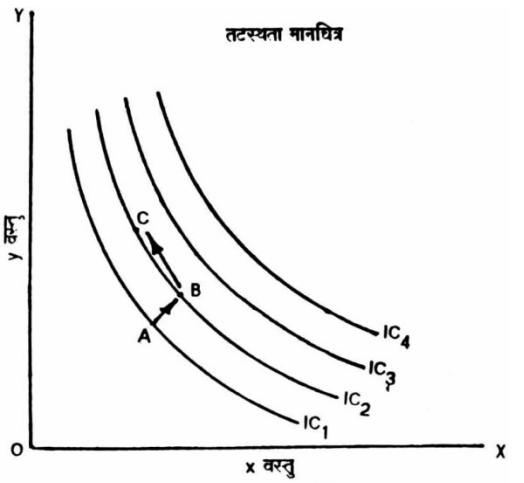

तटस्थता मानचित्र

चित्र 2.9

जब उपभोक्ता IC_1 के A बिन्दु सें IC_2 के B बिन्दु पर जाता है तो उसकी संतुष्टि का स्तर बढ़ जाता है। परन्तु IC_2, के B बिन्दु से C बिन्दु पर संतुष्टि का स्तर पूर्ववत् बना रहता है। प्रत्येक उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। अब प्रश्न है कि उपभोक्ता सबसें उँचे तटस्थता वक्र पर ही क्यो, न पहुँच

जाए? उसके मार्ग में क्या बाधा है? उपभोक्ता के साधन सीमित है। वह X एवं y वस्तुएं की असीमित इकाइया प्राप्त नही कर सकता। मान लीजिये हमें उपभोक्ता की मौद्रिक आय व X तथा y वस्तुओं की कीमतों की जानकारी है तो हम यह ज्ञात कर सकते है, कि उपभोक्ता X तथा y वस्तुओं की कितनी-कितनी इकाइयां खरीद सकता है। यदि उपभोक्ता अपनी समस्त आय को X वस्तु पर व्यय करे तो मान लीजिए वह B इकाइयां खरीद सकता है। इसी प्रकार मान लीजिए यदि वह अपनी समस्त आय y वस्तु के क्रय पर व्यय करे तो वह उसकी A इकाइयां प्राप्त कर सकता है। इन दोनो बिन्दुओं को एक सीधी रेखा से जोड़ने पर हमें AB 'बजट-रेखा" अथवा " कीमत-रेखा" प्राप्त हो जाती है। इसें चित्र 2.10 से स्पष्ट किया गया है।

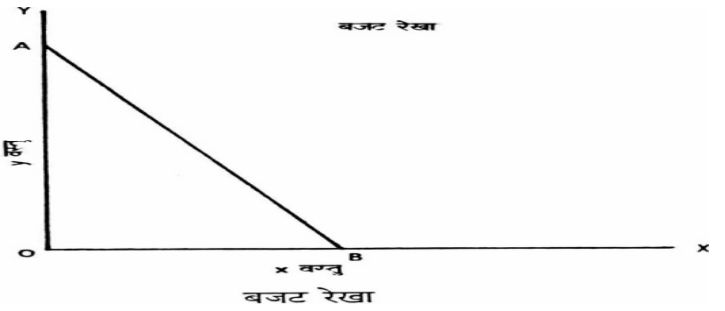

चित्र 2.10

'बजट-रेखा X तथा y वस्तुओं के उन संयोगों को व्यक्त करती है जिन्हें उपभोक्ता दी हुई सीमित आय को व्यय करके प्राप्त कर सकता है। " वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन होने पर 'बजट- रेखा' का ढाल परिवर्तित हो जाएगा। इसी प्रकार उपभोक्ता के पास व्यय योग्य आय बढ़ने पर सम्पूर्ण रेखा ऊपर दांयी ओर बढ़ जाएगी। इस प्रकार आय में परिवर्तन बजट-रेखा का स्थान व कीमतों में परिवर्तन से ' 'बजट-रेखा " का ढाल बदल जाएगा।

2.8.2 तटस्थता वक्र एवं उपभोक्ता संतुलन

तटस्थता वक्र विश्लेषन के अनुसार एक उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि उस स्थिति में प्राप्त होगी जहां पर उसकी ' 'बजट-रेखा " तटस्थता वक्र को स्पर्श करती है। इसके लिये हमें तटस्थता मानचित्र एवं बजट-रेखा को एक साथ प्रदर्शित करना पड़ेगा। चित्र 2.11 में उपभोक्ता के संतुलन को प्रदर्शित किया गया है।

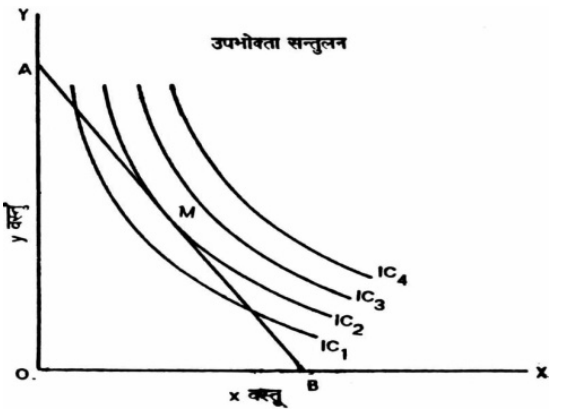

चित्र 2.11

उपभोक्ता ' बजट-रेखा " पर स्थित किसी भी बिन्दु को दी हुई सीमित आय को व्यय करके प्राप्त कर सकता है। एक विवेकशील उपभोक्ता उस बिन्दु का चयन करेगा जो उसे सबसे उँचे तटस्थता वक्र पर पहुँचा सके। इससे उसका संतुष्टि का स्तर अधिकतम होगा। चित्र 2.11 में ' बजट रेखा " IC_2, को M बिन्दु पर स्पर्श करती है। अत: यह अधिकतम संतुष्टि का बिन्दु है। इस बिन्दु पर तटस्थता वक्र का ढाल (सीमान्त प्रतिस्थापन की दर) बजट- ' रेखा के ढाल के बराबर है। संतुलन की यह शर्त मार्शल द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के समान है क्योंकि M बिन्दु पर तटस्थता वक्र का ढाल $\frac{\{Mu_x\}}{\{Mu_y\}}$ बजट रेखा के ढाल $\frac{\{P_x\}}{\{P_y\}}$ के बराबर है।

अर्थात $\frac{Mu_x}{Mu_y} = \frac{P_x}{P_y}$

$$Mu_x \times P_y = Mu_y \times P_x, \frac{Mu_x}{P_x} = \frac{Mu_y}{P_y}$$

इस प्रकार अधिकतम संतुष्टि के लिये अन्तिम रुपये की सीमान्त उपयोगिता तथा प्रत्येक वस्तु की बराबर होनी चाहिए।

2.8.3 आय एवं प्रतिस्थापन प्रभाव

तटस्थता वक्र विधि की सहायता से उपभोक्ता संतुलन की चर्चा करने के बाद अब हम आय परिवर्तन एवं कीमत परिवर्तन के संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा करेंगे। उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने पर ' बजट-रेखा " का स्थान परिवर्तित हो जाएगा। आय में वृद्धि होने पर उपभोक्ता X वस्तु एवं y वस्तु की अधिक मात्रा क्रय करने में सक्षम हो जायेगा। वह ऊपर दांयी ओर स्थित किसी अन्य तटस्थता वक्र पर स्थित संयोग को क्रय कर सकेगा। चित्र 2.12 में आय प्रभाव को प्रदर्शित किया गया है।

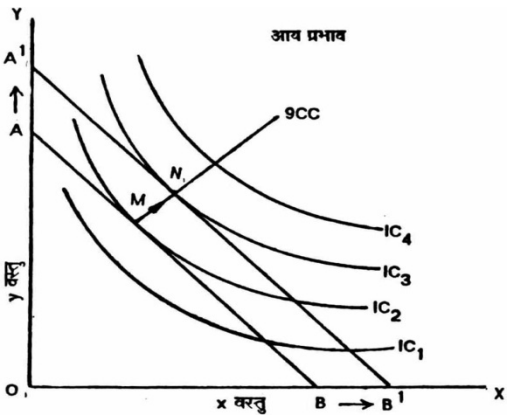

चित्र 2.12

चित्र 2.12 से स्पष्ट है कि आय बढ़ने पर बजट रेखा AB से खिसक कर A^1B^1 हो जाती है। उपभोक्ता $1C_3$ के N बिन्दु पर संतुलन में है जो X तथा y वस्तु की अधिक मात्रा में उपभोग को प्रदर्शित करता है। आय में कमी होने पर वह संतुष्टि के नीचले स्तर पर आ जाएगा।

इसी प्रकार हम कीमत परिवर्तनों के परिणाम-स्वरूप संतुलन में हुये परिवर्तन को भी प्रदर्शित कर सकते है। कीमत परिवर्तन होने पर ' बजट-रेखा " का ढाल बदल जाएगा। मान लीजिए X वस्तु की कीमत बढ़ जाती है और वह X वस्तु की B इकाइयों के स्थान पर अब B^1 इकाइयां प्राप्त कर सकता है। उपभोक्ता की आय अपरिवर्तित रहती है तो वह y वस्तु की उतनी ही इकाइयां प्राप्त कर सकेगा। X वस्तु की कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप " बजट-रेखा " का ढाल बदल जाएगा। बजट रेखा अब $1C_1$ के L बिन्दु पर स्पर्श करती है। इस प्रकार कीमत बढ़ने पर उसके संतुष्टि का स्तर गिर जाएगा। चित्र 2.13 में इसे प्रदर्शित किया गया है।

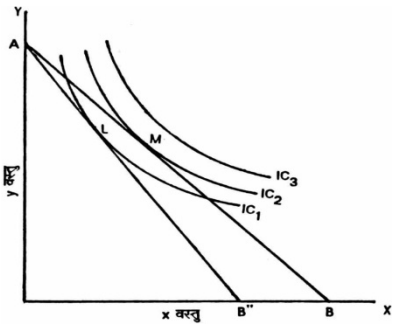

चित्र 2.13

कीमत वृद्धि के परिणामस्वरूप संतुलन बिन्दु M से हटकर L हो जाता है। तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से आय एवं प्रतिस्थापन प्रभावों को अलग-अलग किया जा सकता है। कीमतों में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय कम हो जाती है। इसलिये वह X वस्तु की कम मात्रा खरीदता है। इसके साथ ही X वस्तु y वस्तु की तुलना में महंगी हो जाता है। इसलिये वह सस्ती वस्तु की अधिक मात्रा खरीदता है। इस प्रकार कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोक्ता संतुलन बिन्दु में परिवर्तन के आय व प्रतिस्थापन प्रभावों को निम्नाकित चित्र 2.14 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

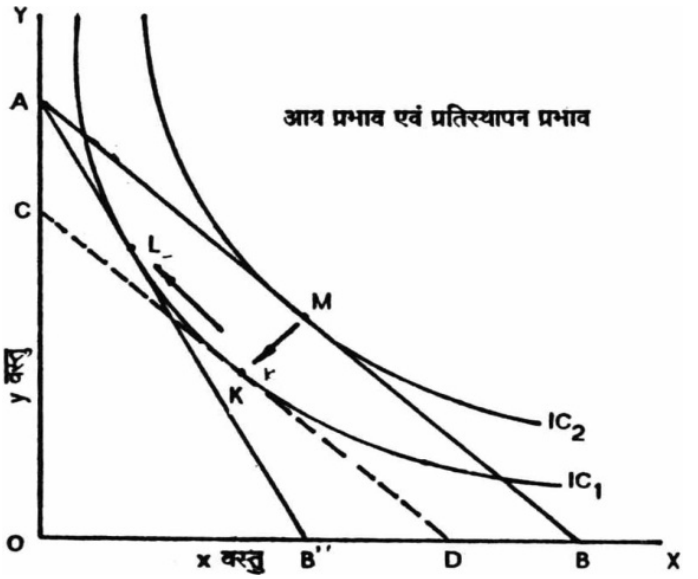

चित्र-2.14

चित्र 2.14 में x वस्तु की कीमत में वृद्धि से बजट-रेखा AB से नीचे खिसककर AB' हो जाती है। जिससे उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु 1 C^1 पर L हो जाता है । संतुलन का नया बिन्दु उपभोक्ता की वास्तविक आय में कमी का द्योतक है । वास्तविक आय में यह कमी ज्ञात करने के लिये हम AB बजट-रेखा " के समान्तर CD नई ' बजट-रेखा " खीचते है, यह नई रेखा IC_1 को K बिन्दु पर स्पर्श करती है । यदि केवल वास्तविक आय में कमी हुई होती तो उपभोक्ता IC_1 के K बिन्दु पर संतुलन में होता। परन्तु x वस्तु की कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप वह L बिन्दु का चयन करता है । चूंकि K एवं L दोनों एक ही तटस्थता वक्र $1C^1$ पर स्थित है । अत: संतुष्टि के समान स्तर को प्रदर्शित करते है । परन्तु L बिन्दु का चयन प्रतिस्थापन प्रभाव को व्यक्त करता है । इस प्रकार M से K बिन्दु पर उपभोक्ता की, पहुँच वास्तविक आय में कमी के कारण हुई इसे आय प्रभाव कहते है । एवं K से L बिन्दु प्रतिस्थापन प्रभाव को व्यक्त करता है । व्यवहार में हमें केवल यह पता चलता है कि हम पहले M बिन्दु पर थे अब L बिन्दु पर आ गये है । परन्तु वास्तव में इसमें दो अलग-अलग प्रभाव है जिन्हें केवल तटस्थता वक्र विधि से ही प्रदर्शित किया जा सकता है इसलिये यह विधि उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है ।

2.9 तटस्थता वक्र से मांग वक्र की व्युत्पत्ति

तटस्थता वक्र मानचित्र की सहायता से मांग वक्र ज्ञात किया जा सकता है । मांग वक्र कीमत एवं मांगी गई मात्रा को व्यक्त करता है । तटस्थता मानचित्र से मांग वक्र ज्ञात करने के लिये हम एक वस्तु x की कीमत में काल्पनिक परिवर्तन लाते है एवं अन्य वस्तुओं की कीमतें यथावत् रहती है । x वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता का संतुलन स्तर बदलता रहता है । इन विभिन्न संतुलन बिन्दुओं को मिलाकर हम मूल्य उपभोग वक्र (Price Consumption Curve-PCC) ज्ञात कर सकते है । PCC तथा मांग-वक्र दोनों ही मांग एवं कीमत के सम्बन्ध को व्यक्त करते है । इस समानता के बावजूद मांग्वक्र एवं PCC में अन्तर है ।PCC का निर्माण दो भिन्न -भिन्न वस्तुओ x तथा y के आधार पर होता है । जबकि

मांग वक्र में केवल एक वस्तु होती है एवं दूसरे अक्ष पर कीमत को प्रदर्शित किया जाता है।PCC में वस्तु की कीमतों को सीधे प्रदर्शित नही किया जाता। परन्तु मांग वक्र में वस्तु की कीमत एवं मांगी गई मात्रा को स्पष्ट रूप में दर्शाया जाता है। PCC के आधार पर कीमत परिवर्तन के आय एवं स्थानपन्न प्रभावों को अलग-अलग व्यक्त किया जा सकता है। जबकि मांग वक्र में उन्हें अलग प्रदर्शित नही किया जा सकता। PCC उपभोक्ता की मौद्रिक आय की मात्रा को भी प्रदर्शित कर देता है। जबकि मांग वक्र से यह सूचना प्राप्त नही होती। तटस्थता मानचित्र, X तथा Y वस्तु की कीमतें एवं उपभोक्ता की मौद्रिक आय ज्ञात होने पर हम मांग वक्र ज्ञात कर सकते है। इसे चित्र 2.15 से प्रदर्शित किया गया है।

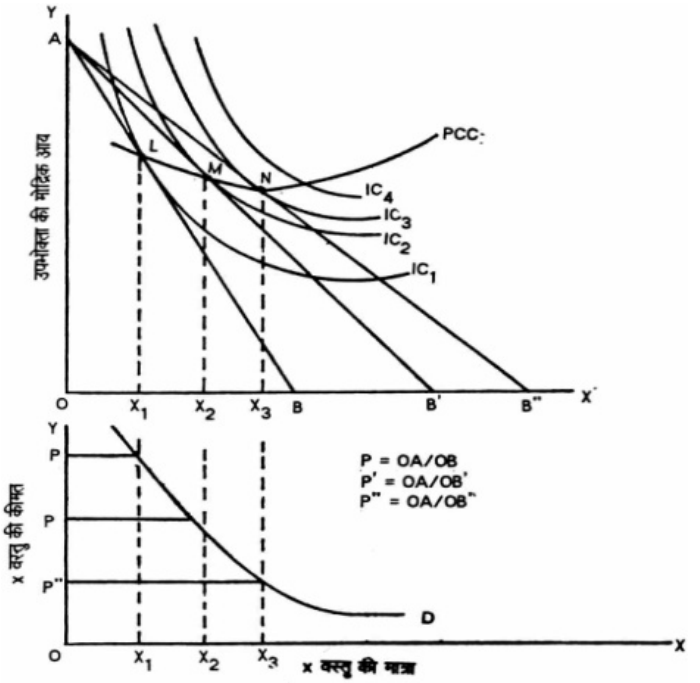

चित्र 2.15

उपभोक्ता की मौद्रिक आय को Y अक्ष पर तथा X वस्तु की मांगी गई मात्रा को X अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। AB प्रारम्भिक "बजट-रेखा" है। X वस्तु की कीमत मे कमी के परिणामस्वरूप बजट रेखा AB से आगे खिसककर AB तथा AB" हो जाती है। उपभोक्ता के संतुलन बिन्दु क्रमश: L,M एवं N हैं। जिन पर वह क्रमश: X_1,X_2 एवं X_3 मात्राएं खरीदता है। वस्तु की कीमत ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की कुल मौद्रिक आय OA में कुल सम्भावित क्रय की मात्रा OB का भाग देना पड़ेगा। कीमत P=OA/OB होगी। इसी प्रकार विभिन्न संतुलन बिन्दुओ पर X वस्तु की कीमतों का अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे OP'=OA/OB';OP"=OA/OB" इत्यादि। मांगी गई मात्रा एवं मांग के इन बिन्दुओं को नीचे चित्र के दूसरे भाग में प्रदर्शित करके परम्परागत मांग वक्र ज्ञात किया गया है। तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से मांग वक्र ज्ञात करने की अन्य वैकल्पिक विधियां भी है। तटस्थता वक्र विधि की भी कुछ सीमाएं है। तटस्थता वक्र विधि की आलोचना करते हुये प्रो. डी. एच. गबर्टसन लिखते है यह विधि हमें मांग-सिद्धान्त के बारे में कोई नई जानकारी नही देती। यह नई बोतल में पुरानी शराब है उपयोगिता के

गणनावाचक दृष्टिकोण का स्थान इसमें क्रमवाचक दृष्टिकोण ने ले लिया है। सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा के स्थान पर सीमान्त प्रतिस्थापन की दर का प्रयोग किया गया है। मार्शल एवं हिक्स की विधि से प्राप्त मांग के नियम में कोई मूलभूत अन्तर नही है। हिक्स की तटस्थता वक्र विधि भी उपयोगिता विश्लेषण की भांति वैयक्तिक एवं अवास्तविक है। इन आलोचनाओं के बावजूद भी हिक्स द्वारा प्रतिपादित विधि अधिक व्यापक है। एवं मार्शल की विधि पर एक सुधार है।

आधुनिक अर्थशास्त्री तटस्थता वक्र के स्थान पर प्रकट अधिमान सिद्धान्त (Revealed Preference Theory) का प्रयोग करते है । इसमें उपभोक्ता के काल्पनिक वरीयता क्रम मानचित्र के स्थान पर उसके वास्तविक अधिमानों का प्रयोग किया जाता है ।

2.10 मांग के प्रकार

अर्थशास्त्र में मांग के तीन प्रमुख प्रकारों की चर्चा की जाती है- कीमत मांग, आय मांग, एवं तिरछी मांग-

कीमत मांग, कीमत एवं वस्तु की मांग में परस्पर सम्बन्ध को दिखाती है । सामान्य अर्थ में मांग से अभिप्राय कीमत मांग से ही लगाया जाता है । अन्य बातों के समान रहते कीमत एवं मांग में ऋणात्मक सम्बन्ध होता है । हाँ, यदि कीमत और वस्तु में एक अपवाद सम्बन्ध यानी धनात्मक सम्बन्ध हो तो उस वस्तु को ' गिफिन वस्तु " (Giffen good) कहते है ।

आय मांग उपभोक्ता की आय व मांगी गई मात्रा में सम्बन्ध को व्यक्त करती है । यदि अन्य बातेयथावत् रहे तो आय तथा मांग में धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है । परन्तु घटिया वस्तुओं के सम्बन्ध में आय तथा मांग में ऋणात्मक सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है । इस प्रकार आय एवं मांग के सम्बन्ध के आधार पर हम सामान्य वस्तु एवं घटिया वस्तु में भी भेद कर सकते है । यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि वस्तु अपने आप में सामान्य या घटिया नही होती है । उदाहरणार्थ, एक निर्धन व्यक्ति के लिये एक साईकिल सामान्य वस्तु है परन्तु धनी व्यक्ति के लिये यह घटिया वस्तु सिद्ध होगी । इसी प्रकार एक मध्यमवर्गीय परिवार के लिये श्वेत-श्याम टेलीविजन सामान्य वस्तु होगी जबकि एक उच्च मध्यम वर्गीय परिवार के लियें यह घटिया वस्तु माना जाएगा । इस प्रकार सामान्य वस्तु एवं घटिया वस्तु की परिभाषा का आधार ' 'आय-मांग " सम्बन्ध है । यदि किसी वस्तु के लिये यह सम्बन्ध धनात्मक है तो वह वस्तु उस परिवार विशेष के लिये सामान्य वस्तु है ओर यदि ' 'आय-मांग सम्बन्ध " ऋणात्मक है तो वह वस्तु उस व्यक्ति या परिवार विशेष के लिये घटिया वस्तु है । किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन का दूसरी वस्तु की मांग पर जो प्रभाव पड़ता है उसका अध्ययन तिरछी मांग के अन्तर्गत किया जाता है । वस्तुएं एक दूसरे से दो प्रकार से सम्बन्धित हो सकती है

1) स्थानापन या प्रतियोगी वस्तुएं
2) पूरक वस्तुएं।

स्थानापन वस्तुएं उन्हें कहने है जिन्हे एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है । इनमें पहली वस्तु की कीमत बढ़ने पर दूसरी वस्तु की मांग बढ़ जाती है । इसके विपरीत दूसरी वस्तु की कीमत गिरने पर

पहली वस्तु की मांग गिर जाती है । स्थानापन अथवा प्रतियोगी वस्तुओं का उदाहरण जैसे दो विभिन्न कम्पनियों के फलों के रस के पैकेट, चाय एवं कॉफी इत्यादि है।

पूरक वस्तुएं वे होती है जिनकी कीमत एवं मांग में ऋणात्मक सम्बन्ध होता है । एक वस्तु की कीमत बढ़ने पर दूसरी वस्तु की मांग घट जाती है। जैसे स्कूटर, कार एवं पेट्रोल, पेन एवं स्याही इस प्रकार पूरक वस्तुओं की मांग संयुक्त मांग होती है एवं केवल एक वस्तु खरीदने पर उसका उपयोग नही हो पाता। यदि एक वस्तु के मूल्य में परिवर्तन का दूसरी वस्तु की मांग पर कोई प्रभाव नही पड़ता है तो उन्हें स्वतंत्र वस्तुएं कहा जाता है।

2.11 मांग के सामान्य नियम के अपवाद

मांग के नियम की क्रियाशीलता सार्वभौमिक नहीं है। कुछ परिस्थितियों में उपभोक्ताओं के व्यवहार की व्याख्या इस नियम के आधार पर नही की जा सकती। कभी-कभी सामान्य वस्तुओं की मांग भी कीमत बढ़ने के साथ-साथ बढ़ जाती है। अथवा कीमत घटने पर मांग में कोई परिवर्तन नही होता एवं इसके विपरीत मांग बढ़ने की जगह और घट जाती है। इस प्रकार उपभोक्ता व्यवहार की सही-सही भविष्यवाणी अर्थशास्त्री नहीं कर पाते। यहां पर ऐसी ही कुछ परिस्थितियों का वर्णन किया जाएगा। जिसमें सामान्य मांग का नियम लागू नही होता एवं मांग वक्रों का आकार अनिश्चित होता है। इन्हें मांग के नियम के अपवाद कहा जाता है। जब भविष्य में किसी वस्तु की कीमत बढ़ने की सम्भावना हो अथवा उपभोक्ताओं को आशंका हो कि वह वस्तु भविष्य में उपलब्ध नही रहेगी ऐसी स्थिति में मूल्यों में वृद्धि के बावजूद मांग में कमी नही आएगी। कभी-कभी तो मांग और बढ़ जाती है। इसी प्रकार सामाजिक प्रतिष्ठा की वस्तुओं पर भी यह नियम लागू नही होता है। धनी व्यक्तियों द्वारा महंगी वस्तुओं का प्रयोग उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाता है। यदि ये वस्तुएं सस्ती हो जायें तो धनी व्यक्ति उसकी मांग नही करेंगे। उदाहरणार्थ 25-30 वर्ष पूर्व स्टील के बर्तन केवल धनी व्यक्तियों के घरों की शोभा थे, अब इनके मूल्यों में कमी आ गई है इसलिये धनी व्यक्तियों द्वाय इनका अधिक उपयोग नही किया जाता।

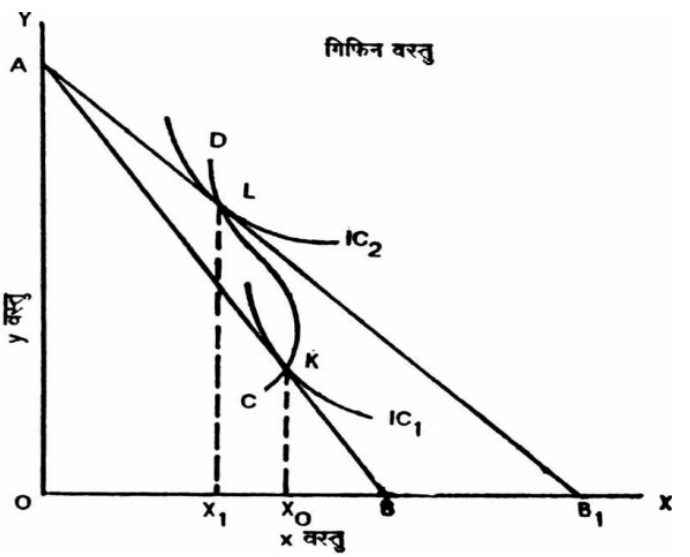

चित्र 2.16

इसी प्रकार युद्ध व अशान्ति के दिनों में उपभोक्ता व्यवहार बदल जाता है। मान लीजिये नगर में कर्फ़्यू में कुछ घण्टों की ढील दी गई है तो ऐसी स्थिति में जो भी वस्तु मिल जाएं उपभोक्ता उसे खरीद लेंगे और कीमतें ऊँची होने पर भी उन्हें अधिक लेना चाहैगे। उपभोक्ताओं की रूचि एवं फैशन में परिवर्तन के कारण मांग बक्र बदल जाएगा। कुछ वस्तुओं को उपभोक्ता नही चाहते हुये भी इसलिये खरीदते है क्योंकि वह सस्ती है। अब यदि ऐसी वस्तुएं और सस्ती हो जाये तो उपभोक्ता उन्हीं वस्तुओ की अधिक मात्रा नहीं मांगेंगे बल्कि उनकी मांग कम कर देगे। इससे जो राशि बचेगी उसे वे दूसरी बढ़िया वस्तु प्राप्त करने पर व्यय करेगे। इस व्यवहार की खोज सर्वप्रथम गिफिन नामक अर्थशास्त्री द्वारा की गई थी। अत: ऐंसी वस्तुओं को जिनकी कीमत घटने पर मांग घट जाए गिफिन-वस्तु कहते है।

इस प्रकार मांग के सामान्य नियम के उपर्युक्त वर्णित कुछ अपवाद है। परन्तु इससे नियम के महत्व में कोई कमी नही आती है।

बोध - प्रश्न 3

1. मांग के सामान्य नियम कें मुखा अपवाद कोन-कोन से है?
2. गिफिन वस्तुएं किसे कहते हैं?

2.12 सारांश

मांग से हमारा अभिप्राय एक दी हुई वस्तु की उस मात्रा से है जिसे एक उपभोक्ता एक निश्चित समय एवं मूल्य पर खरीदने को तत्पर है मांग की अनुसूची विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता द्वारा क्रय की जाने वाली मात्राओं की काल्पनिक सारणी है। सभी उपभोक्ताओं की मांग अनुसूचियों का योग करके बाजार मांग अनुसूची ज्ञात की जा सकती है। मांग-वक्र मांग अनुसूची का रेखा-चित्र है। व्यक्तिगत मांग वक्रों का योग करके बाजार मांग वक्र प्राप्त किया जा सकता है। मांग का विस्तार एवं संकुचन अथवा मांगी गई मात्रा में परिवर्तन कीमत परिवर्तनों से होते है। जबकि मांग में वृद्धि अथवा कमी कीमत के अतिरिक्त अन्य तत्वों मे परिवर्तनों के कारण होती है। वस्तु की कीमत सीमान्त उपयोगिता के आधार पर होती है। इस नियम के अनुसार मांग वक्र ऊपर बाएं से नीचे दायी ओर झुकते है। परन्तु इसके कुछ अपवाद भी है। आधुनिक अर्थशास्त्री मांग वक्र की व्याख्या तटस्थता वक्रो के आधार पर करते है। तटस्थता वक्र विधि उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है। इस विधि से आय एवं प्रतिस्थापन प्रभावों को अलग-अलग किया जा सकता है। परन्तु इसकी भी कुछ सीमाएं है। उपयोगिता विश्लेषण एवं तटस्थता वक्र विश्लेषण में मूलरूप में समानता है। दोनों मे उपभोक्ता को एक विवेकशील व्यक्ति माना गया है जिसका उद्देश्य अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना है दोनों में मांग के सामान्य नियम का उपयोग किया गया है।

2.13 शब्दावली

- **उपयोगिता (Utility)** किसी वस्तु अथवा सेवा की आवश्यकता संतुष्टि की शक्ति।
- **घटिया वस्तु (Inferior good)** जिन वस्तुओं के सम्बन्ध में आय प्रभाव धनात्मक हो।
- **सामान्य वस्तु (Normal good)** जिन वस्तुओं कें सम्बन्ध में आय प्रभाव धनात्मक हो एवं मूल्य प्रभाव ऋणात्मक हो।
- **पूरक वस्तु (Complementary good)** जिन वस्तुओं का उपयोग साथ-साथ करने पर ही वह उपयोगी हो।
- **स्थानापन वस्तु (Substitute good)** जिन्हें एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाया जा सके।
- **तटस्थता वक्र (Indifference curve)** दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करने वाला वह वक्र जिसके सभी विन्दुओं पर समान संतुष्टि प्राय होती है।
- **उपभोक्ता संतुलन (consumer's equilibrium)** वह बिन्दु जहाँ उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हों रही हो।

2.14 कुछ उपयोगी पुस्तके

- Damiel R Fusfeld-Economics : Principles of Political Economy 3rd Ed. 1988
- C.E. Ferguson and Gould- Mocro Economoc Theory 5th ed.1988 Ruffin Roy and Gregory
- एसपी. दुबे, वी. सी. सिन्हा- अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, 1988 National Publishing House,Delhi.

इकाई 3

उदासीनता वक्र विश्लेषण : कीमत, आय, स्थानापन्न प्रभाव, निम्न एवं गिफिन वस्तुएँ

(Indifference Curve Analysis: Price, Income, Substitution Effect, Inferior and Giffin Goods)

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 उदासीनता वक्र विश्लेषण: कीमत प्रभाव

3.4 उदासीनता वक्र विश्लेषण: आय प्रभाव

3.5 उदासीनता वक्र विश्लेषण: स्थानापन्न प्रभाव

3.5.1 हिक्स का स्थानापन्न प्रभाव

3.5.2 स्लट्स्की का स्थानापन्न प्रभाव

3.6 सामान्य वस्तुएँ

3.7 निम्न वस्तुएँ

3.8 गिफिन वस्तुएँ

3.9 सारांश

3.10 शब्दावली

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी मांग मात्रा में होने वाले परिवर्तन का विश्लेषण उदासीनता वक्रों के माध्यम से किया जाएगा, जिससे छात्र निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकेगें।

3. वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उसकी मांग मात्रा पर पड़ने वाले प्रभावों को जान सकेगें।
2. कीमत प्रभाव के विभिन्न पहलुओं से अवगत हो सकेंगें।
3. उपभोक्ता की आय में परिवर्तन से वस्तु की मांग मात्रा में होने वाले परिवर्तनों को समझ सकेगें।
4. सामान्य, निम्न व गिफिन वस्तुओं में भेद कर सकेगें।

3.2 प्रस्तावना

उपयोगिता विश्लेषण का गणनावाचक दृष्टिकोण अपनी अवास्तविक मान्यताओं का परित्याग करते हुए प्रो. हिक्स ने उपयोगिता विश्लेषण का क्रमवाचक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उपयोगिता विश्लेषण का क्रमवाचक दृष्टिकोण उदासीनता वक्रों के माध्यम से वस्तु की कीमत में परिवर्तन व उसके कारण मांग मात्रा में होने वाले परिवर्तन की अधिक सटीक व्याख्या प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत इकाई में वस्तु की कीम त व उसकी मांग मात्रा पर पड़ने वाले प्रभावों व इसके कारणों पर प्रकाश डाला जाएगा।

3.3 उदासीनता वक्र विश्लेषण

कीमत प्रभाव : कीमत प्रभाव से तात्पर्य वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी मांग मात्रा में होने वाले परिवर्तन से है। सामान्यतः वस्तु की कीमत में कमी होने पर वस्तु की मांग मात्रा में वृद्धि एवं वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर वस्तु की मांग मात्रा में कमी होती है। वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता के संतुलन में भी परिवर्तन आता है। वस्तु की कीमत में परिवर्तन से मांग मात्रा में होने वाला परिवर्तन ही कीमत प्रभाव है। वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उपभोक्ता के संतुलन बिन्दु में परिवर्तन होता है, इन संतुलन बिन्दुओं को मिलाने से जो वक्र बनता है, उसे कीमत उपभोग वक्र कहते हैं। कीमत उपभोग वक्र कीमत प्रभाव को व्यक्त करता है।

कीमत प्रभाव को कीमत में परिवर्तन की दिशा के अनुसार दो तरह से दर्शाया जा सकता है:

3. कीमत में कमी की स्थिति में कीमत प्रभाव
2. कीमत में वृद्धि की स्थिति में कीमत प्रभाव

3. कीमत में कमी की स्थिति में कीमत प्रभाव: कीमत में कमी की स्थिति में कीमत प्रभाव को निम्न रेखाचित्र - 3.1 की सहायता से दर्शाया गया है।

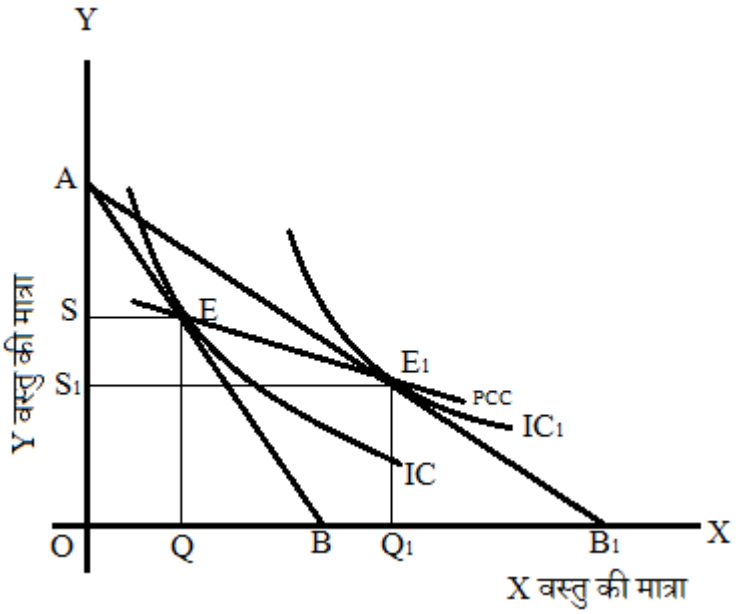

रेखाचित्र - 3.1

रेखाचित्र - 3.1 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र E बिन्दु वर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा आगे की ओर विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है, जिस पर IC_1 उदासीनता वक्र E_1 बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् नवीन संतुलन बिन्दु E_1 है, जिस पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ_1 मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता QQ_1 मात्रा अधिक खरीदता है। X वस्तु की खरीदी गई मात्रा में वृद्धि QQ_1 कीमत प्रभाव को दर्शाती है। रेखाचित्र में PCC वक्र कीमत उपभोग वक्र है।

2. कीमत में कीमत में वृद्धि की स्थिति में कीमत प्रभाव:

कीमत में वृद्धि की स्थिति में कीमत प्रभाव को निम्न रेखाचित्र की सहायता से दर्शाया गया है।

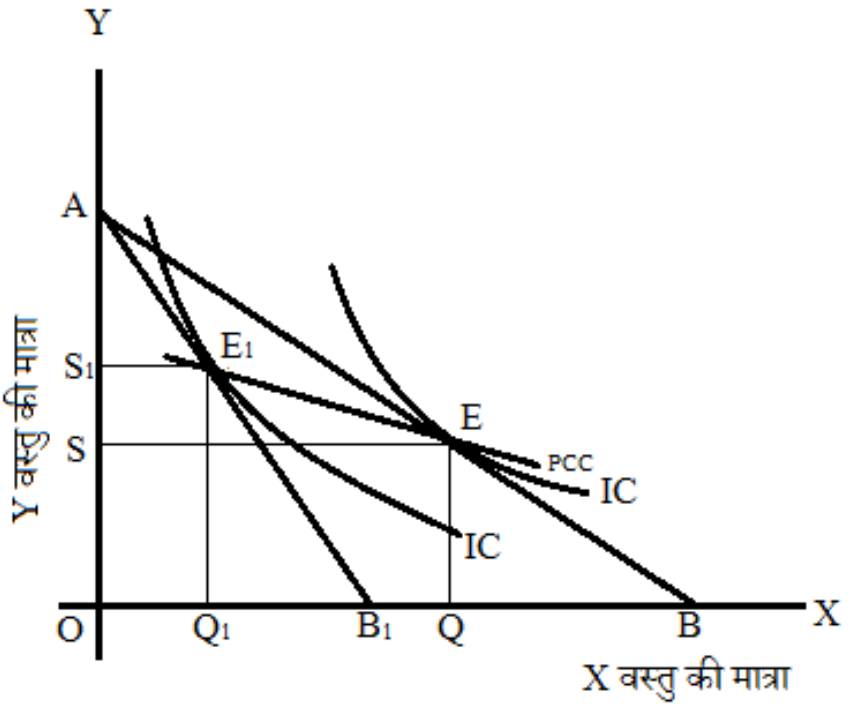

रेखाचित्र - 3.2

रेखाचित्र - 3.2 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र IC बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा पीछे की ओर विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है, जिस पर IC_1 उदासीनता वक्र E_1 बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् नवीन संतुलन बिन्दु E_1 है, जिस पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ_1 मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में वृद्धि के कारण उपभोक्ता Q_1Q मात्रा कम खरीदता है। X वस्तु की खरीदी गई मात्रा में कमी Q_1Q कीमत प्रभाव को दर्शाती है।

3.4 उदासीनता वक्र विश्लेषण:

आय प्रभाव : अन्य बातें यथावत् रहने पर उपभोक्ता की आय में परिवतन होने पर वस्तु की खरीदी गई मात्रा में परिवर्तन आय प्रभाव है। सामान्यतः उपभोक्ता की आय बढ़ने पर वस्तु की मांग मात्रा बढ़ती है व आय के कम होने पर वस्तु की मांग मात्रा घटती है। उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने से साम्य बिन्दु भी परवर्तित होता है, इन साम्य बिन्दुओं को मिलाने से आय उपभोग वक्र बनता है। आय उपभोग वक्र आय प्रभाव को व्यक्त करता है। वास्तव में आय प्रभाव दो प्रकार का होता है, धनात्मक व ऋणात्मक आय प्रभाव।

धनात्मक आय प्रभाव : सामान्य वस्तुओं की स्थिति में उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने पर वस्तु की मांग मात्रा बढ़ जाती है व आय में कमी होने पर वस्तु की मांग मात्रा भी घट जाती है। यही धनात्मक आय

प्रभाव है। उपभोक्ता की आय में वृद्धि व कमी होने पर धनात्मक आय प्रभाव को क्रमशः रेखाचित्र 3.3 व 3.4 में दर्शाया गया है।

रेखाचित्र - 3.3

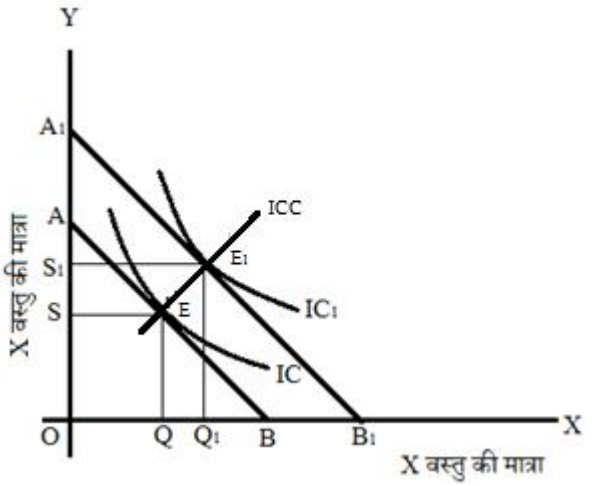

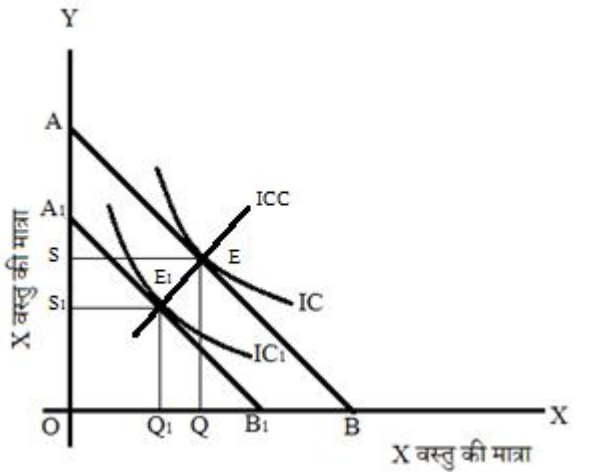

रेखाचित्र - 3.4

रेखाचित्र - 3.3 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र E बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा व Y वस्तु की OS मात्रा खरीदता है। उपभोक्ता की आय बढ़ने पर AB बजट रेखा आगे की तरफ विवर्तित होकर A_1B_1 हो जाती है, जिस पर उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_1 बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ_1 मात्रा व ल् वस्तु की OS मात्रा खरीदता है। आय में वृद्धि होने से उपभोक्ता X वस्तु की QQ_1 मात्रा अधिक खरीदता है। रेखाचित्र में आय प्रभाव को QQ_1 मात्रा से दर्शाया गया है। उपभोक्ता के संतुलन बिन्दुओं को मिलाने वाला वक्र ICC आय उपभोग वक्र है।

रेखाचित्र - 3.4 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र E बिन्दु पर स्पर्ष कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा व Y वस्तु की OS मात्रा खरीदता है। उपभोक्ता की आय घटने पर AB बजट रेखा पीछे की तरफ विवर्तित होकर A_1B_1 हो जाती है, जिस पर उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_1 बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ_1 मात्रा व Y वस्तु की OS_1 मात्रा खरीदता है। आय में वृद्धि होने से उपभोक्ता X वस्तु की QQ_1 मात्रा कम खरीदता है। रेखाचित्र में आय प्रभाव को QQ_1 मात्रा से दर्शाया गया है। उपभोक्ता के संतुलन बिन्दुओं को मिलाने वाला वक्र ICC आय उपभोग वक्र है।

ऋणात्मक आय प्रभाव : निम्न अथवा घटिया वस्तुओं की स्थिति में उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने पर वस्तु की मांग मात्रा घट जाती है व आय में कमी होने पर वस्तु की मांग मात्रा में वृद्धि हो जाती है। यही ऋणात्मक आय प्रभाव है। ऋणात्मक आय प्रभाव को रेखाचित्र 3.5 व 3.6 में दर्शाया गया है।

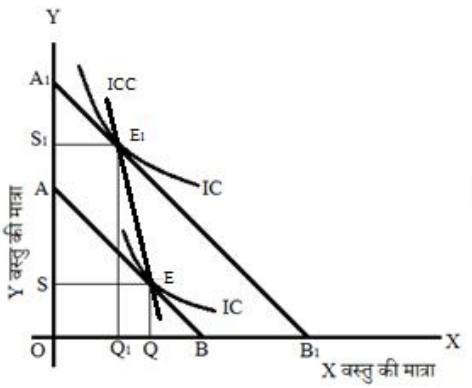

रेखाचित्र 3.5

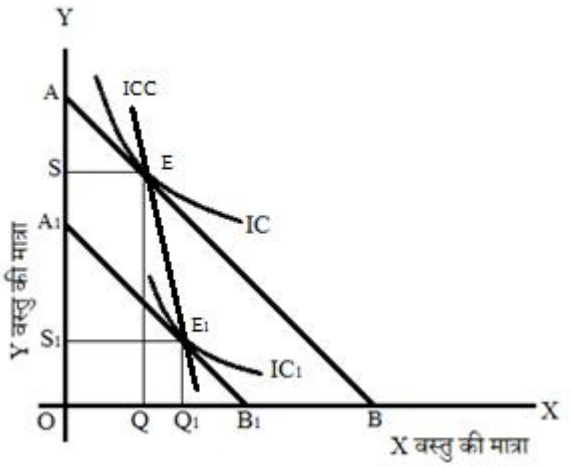

रेखाचित्र 3.6

रेखाचित्र - 3.5 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र E बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा व Y वस्तु की OS मात्रा खरीदता है। उपभोक्ता की आय बढ़ने पर AB बजट रेखा आगे की तरफ विवर्तित होकर A_1B_1 हो जाती है, जिस पर उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_1 बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ_1 मात्रा व Y वस्तु की OS_1 मात्रा खरीदता है। आय में वृद्धि होने से उपभोक्ता X वस्तु की QQ_1 मात्रा कम खरीदता है। रेखाचित्र में आय प्रभाव को QQ_1 मात्रा से दर्शाया गया है। उपभोक्ता के संतुलन बिन्दुओं को मिलाने वाला वक्र ICC आय उपभोग वक्र है।

रेखाचित्र - 3.6 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र E बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा व Y वस्तु

की OS मात्रा खरीदता है। उपभोक्ता की आय कम होने पर AB बजट रेखा पीछे की तरफ विवर्तित होकर A_1B_1 हो जाती है, जिस पर उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_1 बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ_1 मात्रा व Y वस्तु की OS_1 मात्रा खरीदता है। आय में वृद्धि होने से उपभोक्ता X वस्तु की QQ_1 मात्रा अधिक खरीदता है। रेखाचित्र में आय प्रभाव को QQ_1 मात्रा से दर्शाया गया है। उपभोक्ता के संतुलन बिन्दुओं को मिलाने वाला वक्र ICC आय उपभोग वक्र है।

3.5 उदासीनता वक्र विश्लेषण:

स्थानापन्न प्रभाव : उपभोक्ता की वास्तविक आय के स्थिर रहने पर वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन होने के कारण विचाराधीन वस्तु की मांग मात्रा में परिवर्तन स्थानापन्न प्रभाव है। स्थानापन्न प्रभाव ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर रखना आवश्यक होता है। किसी वस्तु की सापेक्ष कीमत में कमी होने पर वह वस्तु दूसरी वस्तु के सापेक्षत : सस्ती हो जाती है अतः उपभोक्ता मंहगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु का प्रतिस्थापन करता है। वस्तु की सापेक्ष कीमत व खरीदी गई मात्रा में विपरीत सम्बन्ध होता है, इसलिए स्थानापन्न प्रभाव सदैव ऋणात्मक होता है।

अर्थषास्त्र में स्थानापन्न प्रभाव को दो विधियों से ज्ञात किया जाता है, हिक्स व स्लट्स्की की विधि। यहाँ पर दोनो ही विधियों की व्याख्या की जा रही है।

हिक्स की विधि : प्रो. जे. आर. हिक्स के अनुसार, वस्तु की सापेक्ष कीमत में परिवर्तन का वस्तु की खरीदी गई मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने के लिए उपभोक्ता की मौद्रिक आय में इतना परिवर्तन किया जाता है कि वह पूर्ववर्ती संतुष्टि स्तर पर ही रहे। उपभोक्ता की आय में इस मौद्रिक परिवर्तन को प्रो. हिक्स ने आय में क्षतिपूरक परिवर्तन की संज्ञा दी है। रेखाचित्र-3.7 में आय में क्षतिपूरक परिवर्तन विधि से स्थानापन्न प्रभाव को दर्शाया गया है।

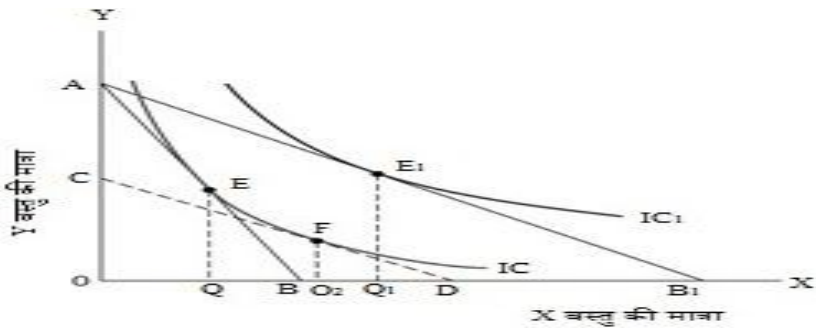

रेखाचित्र - 3.7

रेखाचित्र - 3.7 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र E बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा आगे की ओर विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है, जिस पर IC_1 उदासीनता वक्र E_1 बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् नवीन संतुलन बिन्दु E_1 है, जिस पर उपभोक्ता

X वस्तु की OQ_1 मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता QQ_1 मात्रा अधिक खरीदता है। अतः QQ_1 मात्रा कीमत प्रभाव को व्यक्त करती है। कीमत प्रभाव को स्थानापन्न प्रभाव व आय प्रभाव में विभक्त करने के लिए उपभोक्ता से AC के समान आय वापस ले ली जाती है ताकि उपभोक्ता पूर्ववर्ती संतुष्टि स्तर को प्राप्त कर सके। उपभोक्ता से AC के समान आय वापस लेने पर उपभोक्ता F बिन्दु पर संतुलन में होता है, जिस पर वह X वस्तु की OQ_2 मात्रा खरीदता है। AB व CD बजट रेखा पर उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर है, फिर भी वह X वस्तु की पहले की तुलना में अधिक मात्रा खरीदता है, क्योंकि X वस्तु की कीमत कम होने के कारण वह Y वस्तु की अपेक्षा सस्ती हो गई है अतः उपभोक्ता Y वस्तु के स्थान पर X वस्तु को प्रतिस्थापित करता है। अतः X वस्तु का Y वस्तु के सापेक्षतया सस्ती होने के कारण खरीदी गई मात्रा में परिवर्तन QQ_2 स्थानापन्न प्रभाव है।

स्लट्स्की की विधि: प्रो. स्लट्स्की के अनुसार, वस्तु की सापेक्ष कीमत में परिवर्तन का वस्तु की खरीदी गई मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने के लिए उपभोक्ता की मौद्रिक आय में इतना परिवर्तन किया जाता है कि वह वस्तुओं के पूर्ववर्ती संयोग को खरीद सके। उपभोक्ता की आय में यह मौद्रिक परिवर्तन आय में लागत अन्तर के नाम से जाना जाता है। रेखाचित्र-3.8 में स्लट्स्की विधि के अनुसार स्थानापन्न प्रभाव को दर्शाया गया है।

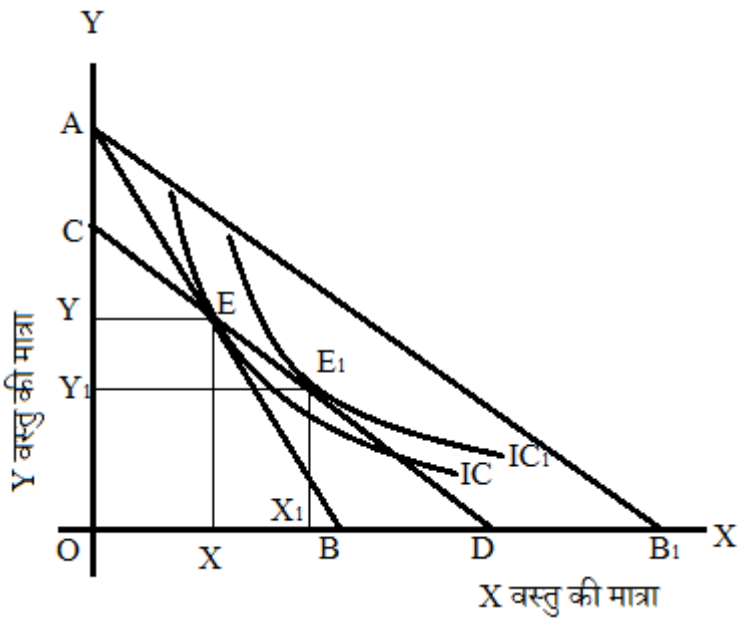

रेखाचित्र - 3.8

रेखाचित्र - 3.8 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र E बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OX मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा आगे की ओर विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है, जो कि उपभोक्ता की बढ़ी हुई वास्तविक आय की सूचक है। स्थानापन्न प्रभाव ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता से

AC लागत अन्तर के समान आय वापस ले ली जाती है ताकि उपभोक्ता वस्तुओं के पूर्ववर्ती संयोग को खरीद सके। उपभोक्ता से AC के समान आय वापस लेने पर उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन में होता है, जिस पर वह X वस्तु की OX_1 मात्रा खरीदता है। AB व CD बजट रेखा पर उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर है, फिर भी वह X वस्तु की पहले की तुलना में अधिक मात्रा खरीदता है, क्योकि X वस्तु की कीमत कम होने के कारण वह Y वस्तु की अपेक्षा सस्ती हो गई है अतः उपभोक्ता Y वस्तु के स्थान पर X वस्तु को प्रतिस्थापित करता है। अतः X वस्तु का Y वस्तु के सापेक्षत: सस्ती होने के कारण खरीदी गई मात्रा में परिवर्तन XX_1 स्थानापन्न प्रभाव है।

हिक्स व स्लट्स्की की विधियों की तुलना

प्रो. हिक्स व स्लट्स्की ने स्थानापन्न प्रभाव ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर रखने हेतु उसकी मौद्रिक आय में परिवर्तन किया है। वस्तु की कीमत में कमी होने पर हिक्स ने उपभोक्ता से आय क्षतिपूरक परिवर्तन के बराबर आय वापस लेने की बात की है, जबकि स्लट्स्की ने लागत अन्तर के समान आय वापस लेने की बात की है। दोनो विधियों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि हिक्स का आय में क्षतिपूरक परिवर्तन, स्लट्स्की के आय में लागत अन्तर के समान परिवर्तन से अधिक है। दोनो विधियों का तुलनात्मक अध्ययन रेखाचित्र-3.9 से किया जा सकता है।

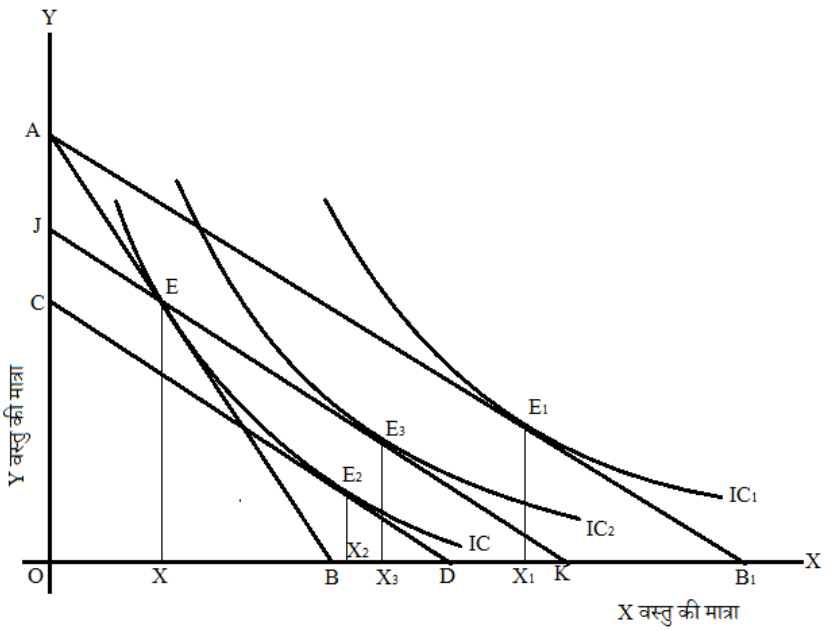

रेखाचित्र - 3.9

रेखाचित्र - 3.9 में में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र E बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OX मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा आगे की ओर विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है, जो कि

उपभोक्ता की बढ़ी हुई वास्तविक आय की सूचक है। अब उपभोक्ता का संतुलन E_1 बिन्दु पर होता है, इसके अनुसार वह X वस्तु की OX_1 मात्रा खरीदता है। प्रो. हिक्स के अनुसार स्थानापन्न प्रभाव ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की वास्तविक आय को पूर्ववर्ती स्तर के समान करने के लिए उससे AC के समान आय वापस ले ली जाती है, जिससे उपभोक्ता नई बजट रेखा CD के E_2 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_2 बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OX_2 मात्रा खरीदता है। चुंकि AB व CD बजट रेखाओं पर उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर है, अतः E बिन्दु से E_2 बिन्दु की ओर चलन स्थानापन्न प्रभाव के कारण हुआ है, अर्थात् उपभोक्ता X वस्तु की XX_2 के समान अधिक मात्रा स्थानापन्न प्रभाव के कारण खरीदता है। दूसरी तरफ यदि स्थानापन्न प्रभाव ज्ञात करने के लिए प्रो. स्लट्स्की के अनुसार उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिए लागत अन्तर जितनी आय उपभोक्ता से वापस ले ली जाए तो नई बजट रेखा JK हो जाएगी, जिसके E_3 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_3 बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OX_3 मात्रा खरीदता है। चुंकि AB व JK बजट रेखाओं पर उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर है, अतः E बिन्दु से E_3 बिन्दु की ओर चलन स्थानापन्न प्रभाव के कारण हुआ है, अर्थात् उपभोक्ता X वस्तु की XX_3 के समान अधिक मात्रा स्थानापन्न प्रभाव के कारण खरीदता है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि AC AJ से अधिक है। अर्थात् स्थानापन्न प्रभाव ज्ञात करने के लिए हिक्स स्लट्स्की की तुलना में उपभोक्ता से अधिक आय वापस लेने की बात करता है। आय में क्षतिपूरक परिवर्तन से उपभोक्ता पूर्ववर्ती संतुष्टि स्तर पर रहता है, जबकि आय में लागत अन्तर के समान परिवर्तन से उपभोक्ता पूर्ववर्ती संतुष्टि से उच्च स्तर पर रहता है। अगर स्थानापन्न प्रभाव की मात्रा के अनुसार विश्लेषण किया जाए तो हिक्स के स्थानापन्न प्रभाव में वस्तु की खरीदी गई मात्रा में XX_2 के समान परिवर्तन होता है, जबकि स्लट्स्की के स्थानापन्न प्रभाव में वस्तु की खरीदी गई मात्रा में XX_3 के समान परिवर्तन होता है। अतः आय में क्षतिपूरक परिवर्तन के कारण वस्तु की खरीदी गई मात्रा में कम परिवर्तन होता है, जबकि आय में लागत अन्तर के समान परिवर्तन करने पर वस्तु की खरीदी गई मात्रा में अधिक परिवर्तन होता है।

कीमत प्रभाव आय प्रभाव व स्थानापन्न प्रभाव का योग है।

किसी वस्तु की कीमत के परिवर्तित होने पर दो तरह के प्रभाव उत्पन्न होते हैं, प्रथम, उपभोक्ता की वास्तविक आय अथवा क्रय शक्ति में परिवर्तन, व द्वितीय, वस्तु का दूसरी वस्तु के सापेक्ष कीमत में परिवर्तन होना। जब वस्तु की कीमत कम हो जाए तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है, वास्तविक आय के बढ़ने से उपभोक्ता उस वस्तु को पहले की तुलना में अधिक मात्रा में खरीदता है। ऐसा धनात्मक आय प्रभाव के कारण होता है। दूसरा, जब वस्तु की कीमत कम होती है, तो वह दूसरी वस्तु के सापेक्ष सस्ती हो जाती है, अतः उपभोक्ता महंगी वस्तु का उपभोग कम करके सस्ती वस्तु को अधिक मात्रा में खरीदता है, ऐसा ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव के कारण होता है। इसके विपरीत यदि वस्तु की कीमत बढ़ जाए तो उपभोक्ता की वास्तविक आय कम हो जाती है, वास्तविक आय के घटने से धनात्मक आय प्रभाव की क्रियाशीलता के कारण उपभोक्ता उस वस्तु को पहले की तुलना में कम खरीदता है। दूसरा, जब वस्तु की कीमत बढ़ जाती है, तो वह दूसरी वस्तु के सापेक्ष महंगी हो जाती है , अतः उपभोक्ता सस्ती वस्तु को अधिक मात्रा में खरीदता है व उस वस्तु का उपभोग कम कर देता है। ऐसा

ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव के कारण होता है। रेखाचित्र-3.10 में कीमत प्रभाव को स्थानापन्न प्रभाव व आय प्रभाव में विभक्त करके दिखाया गया है।

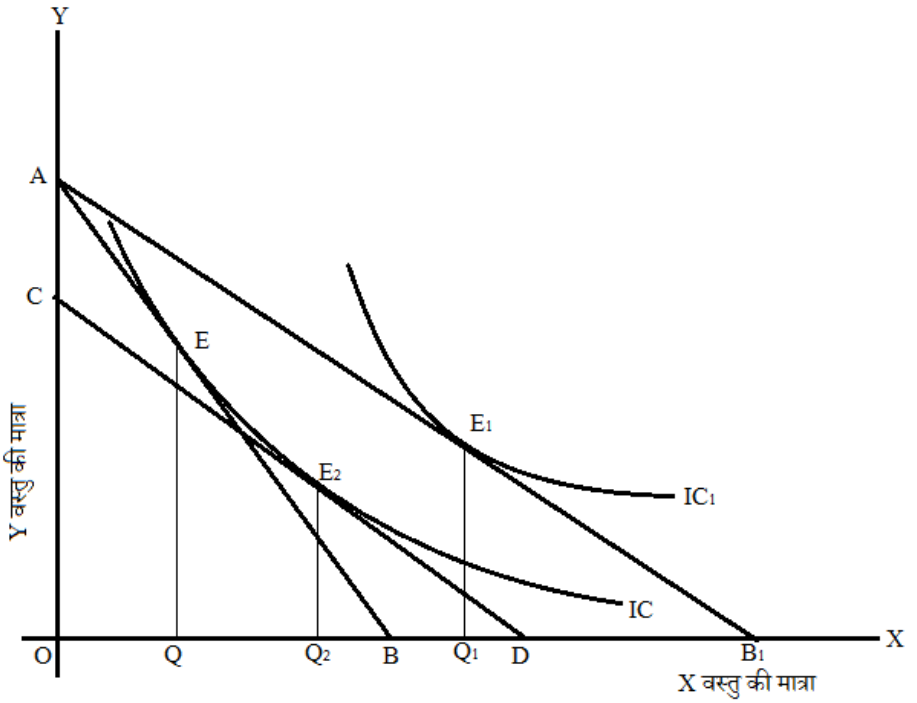

रेखाचित्र - 3.10

रेखाचित्र - 3.10 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। प्रारम्भिक बजट रेखा AB है, जिस पर IC उदासीनता वक्र E बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है, अर्थात् उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा आगे की ओर विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है, जिस पर IC_1 उदासीनता वक्र E_1 बिन्दु पर स्पर्ष कर रहा है, अर्थात् नवीन संतुलन बिन्दु E_1 है, जिस पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ_1 मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता QQ_1 मात्रा अधिक खरीदता है। अतः OQ_1 मात्रा कीमत प्रभाव को व्यक्त करती है। कीमत प्रभाव को स्थानापन्न प्रभाव व आय प्रभाव में विभक्त करने के लिए उपभोक्ता से AC के समान आय वापस ले ली जाती है ताकि उपभोक्ता पूर्ववर्ती संतुष्टि स्तर को प्राप्त कर सके। उपभोक्ता से AC के समान आय वापस लेने पर उपभोक्ता F बिन्दु पर संतुलन में होता है, जिस पर वह X वस्तु की OQ_2 मात्रा खरीदता है। AB व CD बजट रेखा पर उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर है, फिर भी वह X वस्तु की पहले की तुलना में अधिक मात्रा खरीदता है, क्योकि X वस्तु की कीमत कम होने के कारण वह Y वस्तु की अपेक्षा सस्ती हो गई है अतः उपभोक्ता Y वस्तु के स्थान पर X वस्तु को प्रतिस्थापित करता है। अतः X वस्तु का Y वस्तु के सापेक्ष सस्ती होने के कारण खरीदी गई मात्रा में परिवर्तन QQ_2 स्थानापन्न प्रभाव है। अब यदि उपभोक्ता को AC के समान आय वापस दे की जाए तो नई बजट रेखा विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है,

जिस पर IC_1 उदासीनता वक्र E_1 बिन्दु पर स्पर्ष कर रहा है, अर्थात् नवीन संतुलन बिन्दु E_1 है, जिस पर उपभोक्ता X वस्तु की OQ_1 मात्रा खरीदता है। X वस्तु की कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता QQ_1 मात्रा अधिक खरीदता है। आय बढ़ने के कारण उपभोक्ता वस्तु की Q_2Q_1 मात्रा अधिक खरीदता है, जो कि आय प्रभाव की सूचक है। वस्तु की कीमत में कमी के कारण वस्तु की मात्रा में QQ_1 के समान वृद्धि हुई है, उसमें QQ_2 मात्रा स्थानापन्न प्रभाव व Q_2Q_1 मात्रा आय प्रभाव के कारण बढ़ी है। अतः यह स्पष्ट है कि कीमत प्रभाव स्थानापन्न प्रभाव व आय प्रभाव का योग है।

3.6 सामान्य वस्तुएँ : सामान्य वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी मांग मात्रा में विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है। सामान्य वस्तु की कीमत में कमी होने के कारण ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव व धनात्मक आय प्रभाव के कारण उसकी मांग मात्रा बढ़ती है एवं वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव व धनात्मक आय प्रभाव के कारण उसकी मांग मात्रा घट जाती है। सामान्य वस्तु की स्थिति में कीमत, आय व स्थानापन्न प्रभाव को रेखाचत्र - 3.10 से समझा जा सकता है जिसकी व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है।

3.7 निम्न वस्तुएँ : निम्न वस्तु को घटिया वस्तु के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार की वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन होने पर ऋणात्मक आय प्रभाव उत्पन्न होता है। सामान्यतः निम्न अथवा घटिया वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी मांग मात्रा में विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है। इस प्रकार की वस्तुओं में स्थानापन्न व आय प्रभाव एक ही दिषा में क्रियाशील होते हैं। निम्न वस्तु की कीमत में कमी होने के कारण ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव से उसकी मांग मात्रा बढ़ती है परन्तु ऋणात्मक आय प्रभाव के कारण वस्तु की मांग मात्रा कम होती है। परन्तु ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव की तुलना में अधिक होता है, अतएव वस्तु की कीमत में कमी होने पर उसकी मांग मात्रा बढ़ती है। दूसरी तरफ, निम्न वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव के कारण उसकी मांग मात्रा घटती है परन्तु ऋणात्मक आय प्रभाव के कारण वस्तु की मांग मात्रा बढ़ती है। ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव के ऋणात्मक आय प्रभाव की तुलना में अधिक प्रभावी होने के कारण वस्तु की मांग मात्रा कम हो जाती है। परन्तु सदैव यह आवश्यक नही होता कि निम्न वस्तु की कीमत व मांग मात्रा में विपरीत सम्बन्ध हो, कुछ स्थितियों में निम्न वस्तु की कीमत व मांग मात्रा में एक ही दिशा में भी परिवर्तन हो सकता है, ऐसी वस्तुओं को गिफिन वस्तु कहा जाता है। गिफिन वस्तु की चर्चा हम इसी इकाई के अगले बिन्दु के तहत् करेंगे। निम्न वस्तुओं की स्थिति में कीमत , आय व स्थानापन्न प्रभाव को रेखाचित्र 3.11 से समझा जा सकता है।

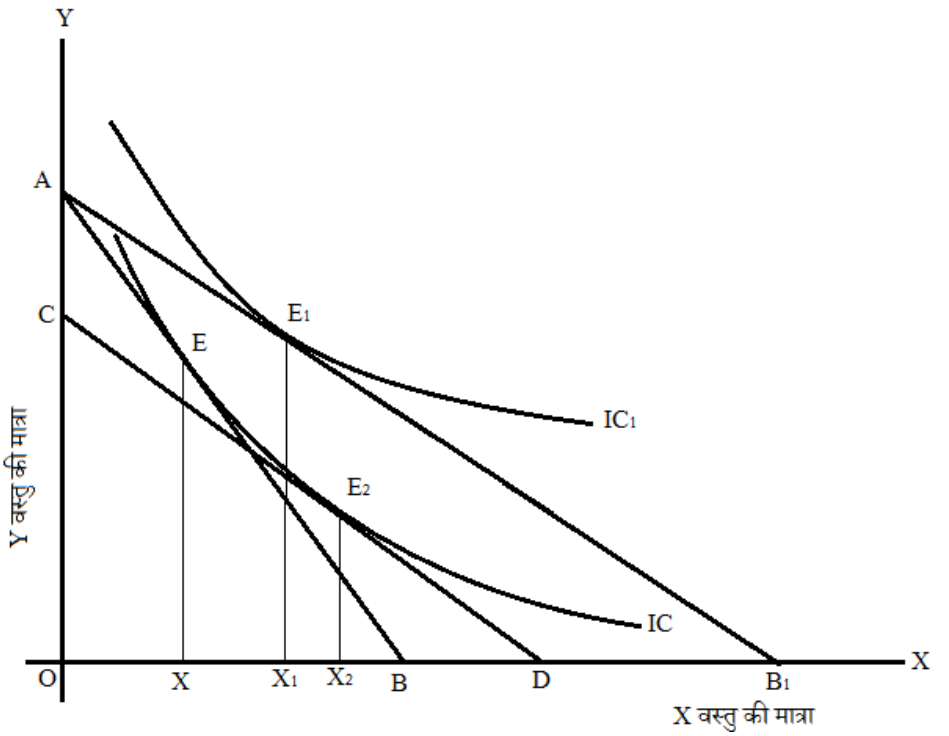

रेखाचित्र 3.11

रेखाचित्र - 3.11 से स्पष्ट है कि निम्न वस्तु X की कीमत में कमी होने पर उस मांग मात्रा XX_1 के समान बढ़ती है। वस्तु की सापेक्ष कीमत में कमी के कारण वस्तु की मांग XX_2 बढ़ी परन्तु ऋणात्मक आय प्रभाव के वस्तु की मांग मात्रा X_1X_2 के समान कम हो गयी। चुंकि ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव से अधिक है, इसलिए वस्तु की मांग मात्रा XX_1 के समान बढ़ी है।

3.8 गिफिन वस्तुएँ

आर्थिक जगत में कुछ वस्तुएँ ऐसी भी है, जिनकी कीमत में कमी होने पर उनकी मांग मात्रा बढ़ जाती है एवं कीमत में वृद्धि होने पर उनकी मांग मात्रा कम हो जाती है। इसका एक उदाहरण गिफिन वस्तु है। इस प्रकार की वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन होने पर ऋणात्मक आय प्रभाव उत्पन्न होता है। गिफिन वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी मांग मात्रा में उसी दिशा में परिवर्तन होता है। इन वस्तुओं में ऋणात्मक स्थानापन्न व आय प्रभाव एक ही दिषा में क्रियाशील होते हैं। गिफिन वस्तु की कीमत में कमी होने से ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव के कारण उसकी मांग मात्रा बढ़ती है परन्तु ऋणात्मक आय प्रभाव के कारण वस्तु की मांग मात्रा कम होती है। ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव की तुलना में कम होता है, अतएव वस्तु की कीमत में कमी होने पर उसकी मांग मात्रा कम हो जाती है। दूसरी तरफ, गिफिन वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव के कारण उसकी मांग मात्रा घटती है परन्तु ऋणात्मक आय प्रभाव के कारण वस्तु की मांग मात्रा बढ़ती है। परन्तु ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव के ऋणात्मक आय प्रभाव की तुलना में अधिक प्रभावी होने के कारण वस्तु की कीमत

में वृद्धि होने पर वस्तु की मांग मात्रा बढ़ जाती है। सामान्यतः उपभोक्ता एक वस्तु पर अपनी आय का बहुत कम भाग व्यय करता है इसलिए ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव से कम होता है। गिफिन वस्तु से सम्बन्धित कीमत, आय व स्थानापन्न प्रभाव को रेखाचित्र-3.12 में दर्शाया गया है।

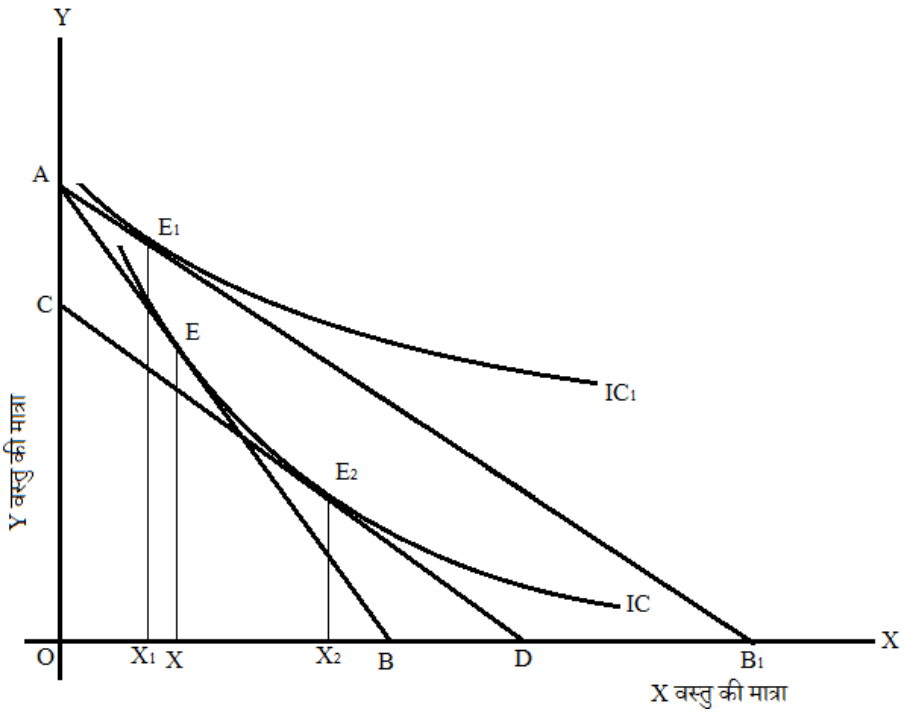

रेखाचित्र 3.12

रेखाचित्र - 3.12 से स्पष्ट है कि गिफिन वस्तु X की कीमत में कमी होने पर उस मांग मात्रा XX_1 के समान कम हो जाती है। वस्तु की सापेक्ष कीमत में कमी के कारण वस्तु की मांग XX_2 बढ़ी, परन्तु ऋणात्मक आय प्रभाव के वस्तु की मांग मात्रा X_1X_2 के समान कम हो गयी। चुंकि ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव से कम है, इसलिए वस्तु की मांग मात्रा XX_1 के समान कम हो गयी है।

3.9 सारांश

वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता द्वारा उस वस्तु की मांगी गई मात्रा में परिवर्तन होता है। क्रमवाचक विश्लेषण में उदासीनता वक्रों के माध्यम से कीमत प्रभाव की विवेचना की गई है। कीमत प्रभाव के दो आयाम है, स्थानापन्न प्रभाव व आय प्रभाव। स्थानापन्न प्रभाव सदैव ऋणात्मक होता है। आय प्रभाव सामान्य वस्तुओं की दशा में धनात्मक होता है परन्तु निम्न व वस्तुओं की स्थिति में ऋणात्मक होता है।

3.10 शब्दावली:

मौद्रिक आय : जब आय को मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाता है, तो उसे मौद्रिक आय कहा जाता है।

वास्तविक आय : जब आय को उसकी क्रयशक्ति के रूप में व्यक्त किया जाए, तो उसे वास्तविक आय कहते हैं।

कीमत प्रभाव : अन्य बातें यथावत् रहने पर, वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता द्वारा उसकी खरीदी गई मात्रा में परिवर्तन को कीमत प्रभाव कहते हैं।

स्थानापन्न प्रभाव : उपभोक्ता की वास्तविक आय के स्थिर रहने पर, वस्तु की सापेक्ष कीमत में परिवर्तन होने से वस्तु की मांग मात्रा में होने वाला परिवर्तन स्थानापन्न प्रभाव होता है।

आय प्रभाव : अन्य बातें यथावत् रहने पर, उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण वस्तु की मांग मात्रा में परिवर्तन आय प्रभाव को व्यक्त करता है।

सामान्य वस्तु : सामान्य वस्तु उन वस्तु को कहा जाता है, जिस पर मांग का नियम लागू होता है।

निम्न वस्तु : निम्न वस्तु की स्थिति में स्थानापन्न प्रभाव के साथ-साथ आय प्रभाव भी ऋणात्मक होता है, लेकिन यह आवश्यक नही है कि वस्तु की कीमत व मांग मात्रा में एक ही दिशा में परिवर्तन हो।

गिफिन वस्तु : गिफिन वस्तु उस वस्तु को कहते हैं, जिस पर मांग का नियम लागू नही होता। इस प्रकार की वस्तु की स्थिति में ऋणात्मक आय प्रभाव स्थानापन्न प्रभाव की तुलना में अधिक प्रभावी होता है।

कीमत उपभोग वक्र : अन्य बातें यथावत् रहने पर, वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता के संतुलन पथ को दर्शाने वाला वक्र कीमत उपभोग वक्र होता है।

आय उपभोग वक्र : अन्य बातें यथावत् रहने पर, उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता के संतुलन पथ को दर्शाने वाला वक्र कीमत उपभोग वक्र होता है।

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न:

1. कीमत प्रभाव स्थानापन्न प्रभाव व आय प्रभाव का योग है। सिद्ध कीजिए।
2. कीमत प्रभाव को स्थानापन्न प्रभाव व आय प्रभाव में विभक्त करने की हिक्स की विधि का वर्णन कीजिए।
3. कीमत प्रभाव को स्थानापन्न प्रभाव व आय प्रभाव में विभक्त करने की स्ल की विधि का वर्णन कीजिए।
4. कीमत प्रभाव को स्थानापन्न प्रभाव व आय प्रभाव में विभक्त करने की हिक्स व स्लट्स्की की विधि में अन्तर का वर्णन कीजिए।
5. उदासीनता वक्रों के माध्यम से सामान्य, निम्न व गिफिन वस्तुओं में अन्तर की व्याख्या कीजिए।

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ (References):

- एच. एल. आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., रामनगर, नई दिल्ली-2004
- के. एन. वर्मा : व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त, विशाल पब्लिकेशन कम्पनी, जालंधर- 2011
- सी. एस. बरला : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर-2002
- Koutsoyiannis : Modern Microeconomics , Macmillan Press LTD, London-2006

इकाई-4

उपभोक्ता की बचत
(Consumer's Surplus)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा : अर्थ एवं परिभाषा

4.4 उपभोक्ता की बचत का माप : गणनावाचक दृष्टिकोण

4.5 उपभोक्ता की बचत का माप : क्रमवाचक दृष्टिकोण

4.5.1 कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन

4.5.1 कीमत सममूल्य परिवर्तन

4.5.1 परिमाण क्षतिपूरक परिवर्तन

4.5.1 परिमाण सममूल्य परिवर्तन

4.6 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा की आलोचना

4.7 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का महत्त्व

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.1 उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई में उपभोक्ता की बचत का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन से छात्र निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकेगें।

- उपभोक्ता की बचत की अवधारणा से अवगत हो सकेगें।
- उपभोक्ता की बचत के गणनावाचक व क्रमवाचक दृष्टिकोणों से परिचित हो सकेगें।
- उपभोक्ता की बचत के आर्थिक महत्त्व को समझ सकेगें।

- उपभोक्ता की बचत की आलोचनात्मक समीक्षा कर सकेगें।

4.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम उपभोक्ता की बचत के विचार का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करेंगें। कल्याणकारी अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का विशेष महत्व है। उपभोक्ता की बचत को उपभोक्ता का अतिरेक, उपभोक्ता की बेशी अथवा उपभोक्ता का आधिक्य आदि अनेक नामों से जाना जाता है। उपभोक्ता की बचत का विचार सर्वप्रथम फ्रांसीसी अर्थशास्त्री ड्यूपिट ने 1844 मे दिया था। 1890 में प्रो. मार्शल ने अपनी पुस्तक "Principles of Economics" में इस अवधारणा का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया।

4.3 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा: अर्थ एवं परिभाषा

उपभोक्ता की बचत का अर्थ : एक उपभोक्ता किसी वस्तु को खरीदने के लिए उससे प्राप्त उपयोगिता के समान कीमत देने को तत्पर होता है। जबकि वास्तव में वह उसे बाजार कीमत पर खरीदता है। उपभोक्ता की बचत वस्तु के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता व उसकी कीमत के अन्तर को ही कहा जाता है। एक वस्तु से प्राप्त उपयोगिता व कीमत का अन्तर उपभोक्ता की बचत है।

उपभोक्ता की बचत की परिभाषा : उपभोक्ता की बचत की विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने अपने अनुसार परिभाषाएँ दी है, जिनमें महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं।

प्रो. मार्शल के अनुसार, किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की अपेक्षा एक उपभोक्ता उस वस्तु की वास्तविक कीमत से जितनी अधिक कीमत देने को तैयार है, यह अन्तर ही आधिक्य संतुष्टि का आर्थिक माप है.... इसे उपभोक्ता की बचत कहा जा सकता है। सेम्युअल्सन व नोरढ़ाउस के अनुसार, एक वस्तु की कुल उपयोगिता व उसके बाजार मूल्य का अन्तर को उपभोक्ता की बचत कहा जाता है। ऑक्सफोर्ड के अर्थशास्त्र शब्दकोश के अनुसार, उपभोक्ता की बचत लाभ का वह अतिरेक है, जो वह वस्तु खरीदने के लिए भुगतान करने पर प्राप्त करता है।

उपभोक्ता की बचत का माप :

अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत के सम्बन्ध में दो तरह के दृष्टिकोण प्रचलित हैं।

1. गणनावाचक दृष्टिकोण
2. क्रमवाचक दृष्टिकोण

4.4 उपभोक्ता की बचत का माप: गणनावाचक दृष्टिकोण

प्रो. मार्शल ने अपनी पुस्तक 'Principles of Economics' में उपभोक्ता की बचत का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया है। मार्शल के अनुसार एक उपभोक्ता किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए उससे प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता के समान कीमत देने को तैयार होता है। जब एक उपभोक्ता किसी वस्तु

की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करता है तो उन इकाइयों से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता क्रमशः घटती जाती है। जबकि उपभोग की गई अंतिम इकाई से प्राप्त सीमांत उपयोगिता के समान कीमत देता है। इस प्रकार उपभोक्ता को वस्तु की उपभोग की गई पूर्ववर्ती इकाइयों से कीमत की तुलना में अधिक सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। सीमांत उपयोगिता का यह आधिक्य ही उपभोक्ता की बचत है। उपभोक्ता की बचत को निम्न सूत्र की सहायता से मापा जाता है :

उपभोक्ता की बचत = कुल उपयोगिता - कुल व्यय

Consumer's Surplus = Total Utility – Total Expenditure

उपभोक्ता की बचत = सीमांत उपयोगिताओं का योग - कुल व्यय

$$\boldsymbol{Consumer's\ Surplus} = \sum \boldsymbol{MU} - \boldsymbol{Total\ Expenditure}$$

मान्यताएं :

1. उपयोगिता मापनीय है।
2. उपभोग प्रक्रिया में घटती सीमांत उपयोगिता का नियम क्रियाशील है।
4. मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर है।
4. उपभोक्ता की आय, अभिरूचि, फैशन व रीति-रिवाज आदि स्थिर हैं।
5. मांग वक्र का ढाल ऋणात्मक है।

उपभोक्ता की बचत के विचार को समझने के लिए निम्न तालिका को समझना आवश्यक है।

तालिका - 4.1

वस्तु की इकाइयों की संख्या	कुल उपयोगिता (रु. में)	सीमांत उपयोगिता (रु. में)	वस्तु की कीमत (रु. में)	उपभोक्ता की बचत (रु. में)
1	10	10	2	8
2	18	8	2	6
3	24	6	2	4
4	28	4	2	2
5	30	2	2	0
कुल	30	30	10	20

तालिका 4.1 से स्पष्ट है कि उपभोक्ता को वस्तु की प्रथम इकाई के उपभोग से 10 रु. के बराबर सीमांत उपयोगिता प्राप्त हुई, जबकि उसे वस्तु की कीमत के रूप में मात्र 2 रु. का ही भुगतान किया, अत: वस्तु की प्रथम इकाई से उपभोक्ता को 8 रु. के बराबर उपभोक्ता की बचत प्राप्त हुई। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी व पाँचवी इकाइयों के उपभोग से उपभोक्ता को क्रमश: 8, 6, 4 व 2 रु. के बराबर सीमांत उपयोगिता प्राप्त हुई जबकि प्रत्येक इकाई हेतु उसने 2 रु. का ही भुगतान किया। जिससे दूसरी, तीसरी, चौथी व पाँचवी इकाइयों के उपभोग से क्रमश: 6, 4, 2 व शून्य रु. के समान उपभोक्ता की बचत प्राप्त हुई। इस प्रकार वस्तु की कुल पाँच इकाइयों के उपभोग से 30 रु. के समान कुल उपयोगिता प्राप्त हुई, जबकि कुल भुगतान मात्र 10 रु. का ही किया अत: उपभोक्ता को 20 रु. के समान बचत प्राप्त हुई।

उपभोक्ता की बचत को रेखाचित्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है। जब वस्तु पूर्णतया विभाज्य न हो तो उपभोक्ता की बचत को रेखाचित्र-4.1 की भाँति दर्शाया जाता है।

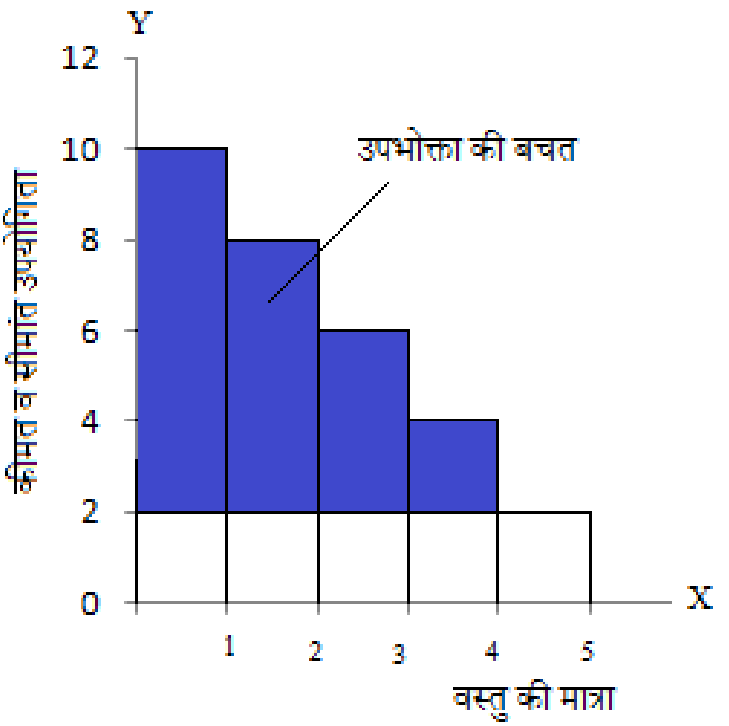

रेखाचित्र-4.1

पूर्णतया विभाज्य वस्तु की स्थिति में उपभोक्ता की बचत को रेखाचित्र-4.2 के माध्यम से दर्शाया गया है। मांग वक्र के नीचे के क्षेत्रफल कुल उपयोगिता को बताता है। जबकि उपभोक्ता द्वारा किए गए भुगतान की जाने वाली राशि को कीमत को वस्तु की खरीदी गई मात्रा से गुणा करके ज्ञात किया जा सकता है। रेखाचित्र- 4.2 में उपभोक्ता की बचत को ΔDPE क्षेत्र से दर्शाया गया है।

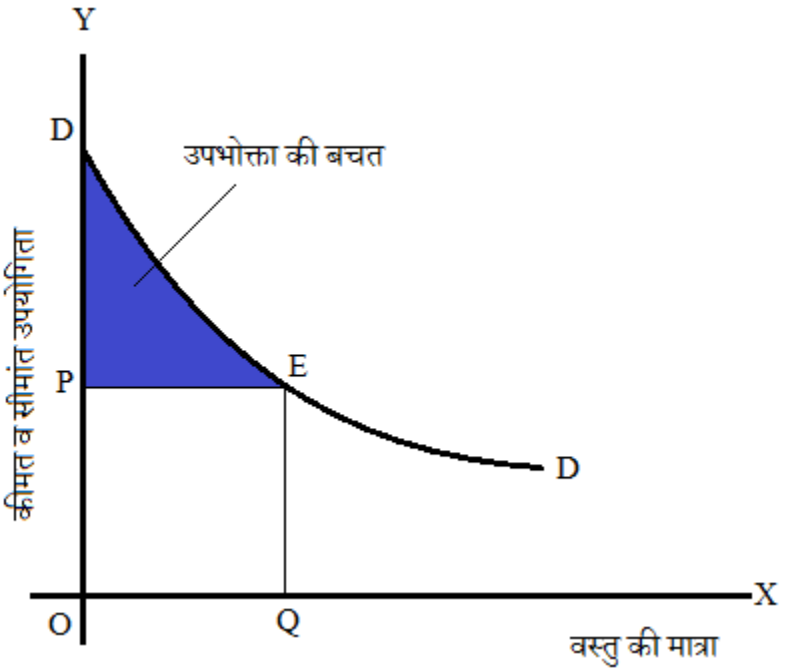

रेखाचित्र-4.2

बोध प्रश्न :

1. उपभोक्ता की बचत से आपका क्या तात्पर्य है?
2. उपभोक्ता की बचत के मार्शल के दृष्टिकोण की रेखाचित्र सहित व्याख्या कीजिए।

4.5 उपभोक्ता की बचत का माप: क्रमवाचक दृष्टिकोण

उपभोक्ता की बचत का गणनावाचक दृष्टिकोण उपयोगिता की मापनीयता, उपयोगिता की स्वतंत्रता व मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता जैसी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित था। प्रो. जे. आर. हिक्स ने क्रमवाचक दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए अपनी पुस्तक "Value and Capital" में उदासीनता वक्रों के माध्यम से उपभोक्ता की बचत की विवेचना की है। क्रमवाचक दृष्टिकोण के अनुसार उपभोक्ता की बचत को रेखाचित्र 4.3 से समझा जा सकता है।

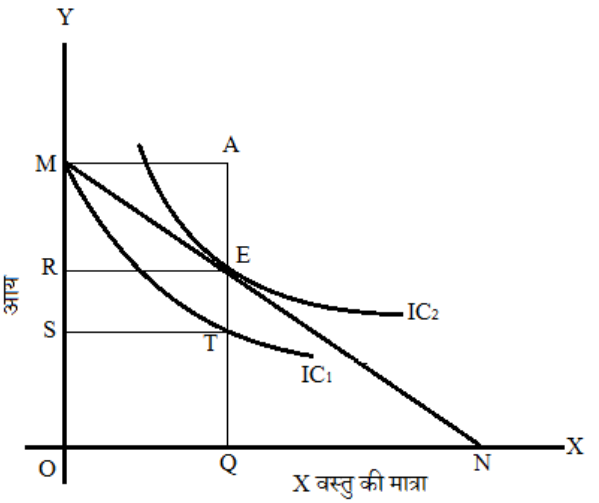

रेखाचित्र-4.3

रेखाचित्र 4.3 में क्षैतिज अक्ष पर वस्तु की मात्रा व उर्ध्वाकार अक्ष पर उपभोक्ता की मौद्रिक आय को मापा गया है। MN रेखा बजट रेखा है, तथा IC_1 व IC_2 उदासीनता वक्र है। उपभोक्ता के पास OM के समान कुल मौद्रिक आय है। उपभोक्ता अपनी आय OM से वस्तु की ON मात्रा खरीद सकता है। उदासीनता वक्र IC_1 के T बिन्दु पर उपभोक्ता के लिए वस्तु की OQ मात्रा तथा OS आय उपलब्ध है, अर्थात् वह वस्तु की OQ मात्रा के लिए MS आय व्यय करने को तैयार है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन में है, जब उपभोक्ता के पास OR आय तथा वस्तु की OQ मात्रा उपलब्ध है, अर्थात् उपभोक्ता MR आय के बदले वस्तु की OQ मात्रा प्राप्त करता है। उपभोक्ता वस्तु की OQ मात्रा के लिए MS आय व्यय करने को तैयार है, जबकि वह वास्तव में MR आय ही व्यय करता है, अर्थात् RS उपभोक्ता की बचत है।

उपभोक्ता की बचत के सम्बन्ध में हिक्स की चार अवधारणाए¡: हिक्स ने अपनी पुस्तक Value and Capital में उपभोक्ता की बचत सम्बन्धी चार अवधारणाएं दी है

1. कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन
2. कीमत सममूल्य परिवर्तन
4. परिमाण क्षतिपूरक परिवर्तन
4. परिमाण सममूल्य परिवर्तन

उपभोक्ता की बचत सम्बन्धी इन चार अवधारणाओं की व्याख्या निम्नलिखित है:

4.5.1 **कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन :** प्रो. हिक्स के अनुसार कीमत में क्षतिपूरक परिवर्तन मुद्रा की वह अधिकतम मात्रा है, जो उपभोक्ता संतुष्टि के प्रारम्भिक स्तर पर रहते हुए वस्तु को सस्ती कीमत पर खरीदने की सुविधा हेतु व्यय करने को तैयार है। रेखाचित्र- 4.4 में कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन को दर्शाया गया है।

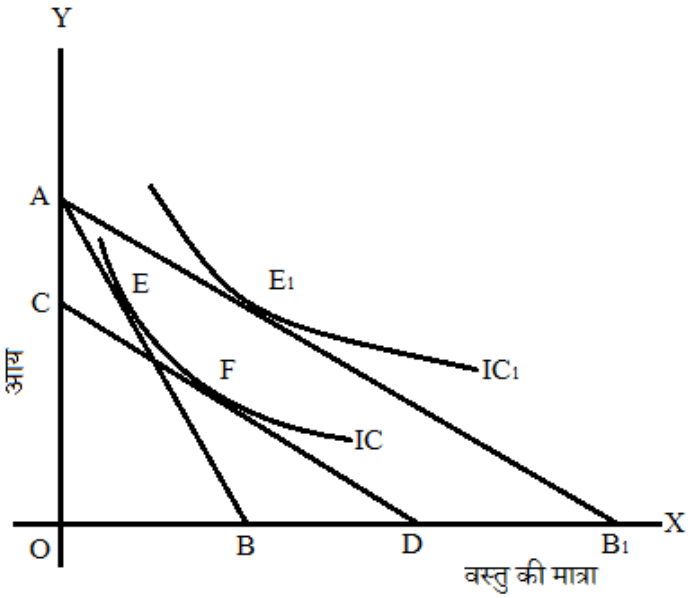

रेखाचित्र-4.4

रेखाचित्र 4.4 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा व OY अक्ष पर उपभोक्ता की आय को दर्शाया गया है। आरम्भ में बजट रेखा AB पर X वस्तु की प्रारम्भिक कीमत पर उपभोक्ता IC उदासीनता वक्र के E बिन्दु पर संतुलन में है। वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा AB_1 हो जाती है, जिससे उपभोक्ता उदासीनता वक्र IC_1 के E_1 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_1 बिन्दु ऊँचे उदासीनता पर स्थित होने के कारण उपभोक्ता को पहले की तुलना में अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। अब यदि उपभोक्ता से AC के समान आय वापस ले ली जाए तो नई बजट रेखा CD हो जाएगी जिस पर उपभोक्ता पूर्ववर्ती उदासीनता वक्र E_1 के F बिन्दु पर संतुलन में होगा जो कि पूर्ववर्ती संतुष्टि स्तर के समान है। अर्थात् AC मुद्रा की वह मात्रा है जो उपभोक्ता संतुष्टि के पूर्ववर्ती स्तर पर रहते हुए वस्तु को सस्ती कीमत पर खरीदने की सुविधा हेतु व्यय करने को तैयार है। रेखाचित्र में AC कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन को इगिंत करता है।

4.5.2 कीमत सममूल्य परिवर्तन:

कीमत सममूल्य परिवर्तन मुद्रा की वह न्यूनतम मात्रा है जिसके प्राप्त करने पर उपभोक्ता संतुष्टि के अनुवर्ती स्तर पर रहते हुए वस्तु को सस्ती कीमत पर खरीदने की सुविधा का त्याग करने को तैयार है। रेखाचित्र- 4.5 में कीमत सममूल्य परिवर्तन को दर्शाया गया है।

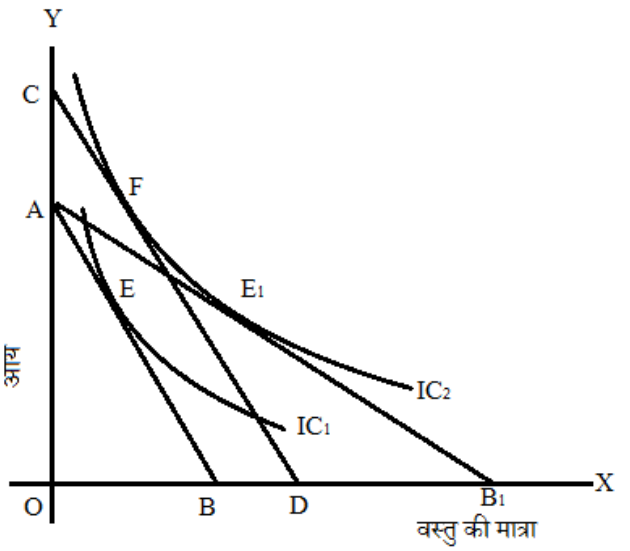

रेखाचित्र-4.5

रेखाचित्र 4.4 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा व OY अक्ष पर उपभोक्ता की आय को दर्शाया गया है। आरम्भ में बजट रेखा AB पर X वस्तु की प्रारम्भिक कीमत पर उपभोक्ता IC_1 उदासीनता वक्र के E बिन्दु पर संतुलन में है। वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा AB_1 हो जाती है, जिससे उपभोक्ता उदासीनता वक्र IC_2 के E_1 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_1 बिन्दु उँचे उदासीनता पर स्थित होने के कारण उपभोक्ता को पहले की तुलना में अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। यदि वस्तु की कीमत कम होने की अपेक्षा उपभोक्ता की आय AC के समान बढ़ जाती तो उपभोक्ता IC_2 उदासीनता वक्र के F बिन्दु पर संतुलन में होता जिससे उसे E_1 बिन्दु के समान संतुष्टि प्राप्त होती। अर्थात उपभोक्ता AC के समान आय प्राप्त करने के लिए वस्तु की कीमत में कमी की सुविधा का त्याग करने को तत्पर होगा। आय की यह AC मात्रा कीमत सममूल्य परिवर्तन की सूचक है।

4.5.3 परिमाण क्षतिपूरक परिवर्तन

प्रो. हिक्स के अनुसार कीमत में क्षतिपूरक परिवर्तन मुद्रा की वह अधिकतम मात्रा है, जो उपभोक्ता संतुष्टि के प्रारम्भिक स्तर पर रहते हुए वस्तु को सस्ती कीमत पर खरीदने की सुविधा हेतु व्यय करने को तैयार है, बशर्ते वह कीमत में कमी के फलस्वरूप नवीन संयोग के समान ही वस्तु की मात्रा खरीदे।

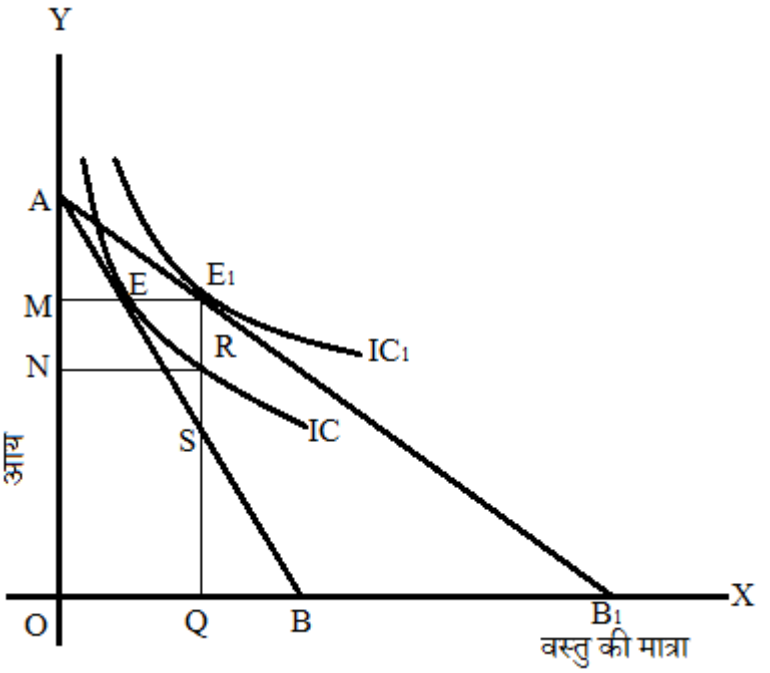

रेखाचित्र-4.6

रेखाचित्र 4.6 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा व OY अक्ष पर उपभोक्ता की आय को दर्शाया गया है। आरम्भ में बजट रेखा AB पर वस्तु की प्रारम्भिक कीमत पर उपभोक्ता IC उदासीनता वक्र के E बिन्दु पर संतुलन में है। वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा AB_1 हो जाती है, जिससे उपभोक्ता उदासीनता वक्र IC_1 के E_1 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_1 बिन्दु ऊँचे उदासीनता पर स्थित होने के कारण उपभोक्ता को पहले की तुलना में अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। E बिन्दु पर उपभोक्ता वस्तु की OQ मात्रा खरीदता है। यदि E_1R आय वापस लेकर उपभोक्ता को वस्तु की OQ मात्रा ही खरीदने को बाध्य किया जाए तो वह प्रारम्भिक संतुष्टि स्तर पर ही होगा। अत: E_1R या MN आय परिमाण क्षतिपूरक परिवर्तन को व्यक्त करती है।

4.5.4 परिमाण सममूल्य परिवर्तन:

परिमाण सममूल्य परिवर्तन मुद्रा की वह न्यूनतम मात्रा है जिसके प्राप्त करने पर उपभोक्ता संतुष्टि के अनुवर्ती स्तर पर रहते हुए वस्तु को सस्ती कीमत पर खरीदने की सुविधा का त्याग करने को तैयार है, यदि उसे प्रारम्भिक कीमत पर खरीदी गई मात्रा के समान ही वस्तु खरीदने पर बाध्य किया जाए। रेखाचित्र- 4.7 में परिमाण सममूल्य परिवर्तन को दर्शाया गया है।

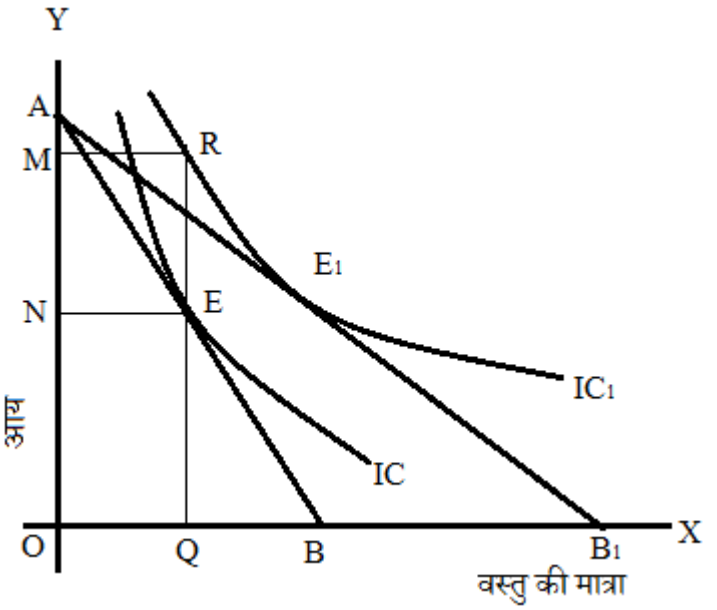

रेखाचित्र- 4.7

रेखाचित्र 4.7 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा व OY अक्ष पर उपभोक्ता की आय को दर्शाया गया है। आरम्भ में बजट रेखा AB पर वस्तु की प्रारम्भिक कीमत पर उपभोक्ता IC उदासीनता वक्र के E बिन्दु पर संतुलन में है। वस्तु की कीमत में कमी होने पर बजट रेखा AB_1 हो जाती है, जिससे उपभोक्ता उदासीनता वक्र IC_1 के E_1 बिन्दु पर संतुलन में होता है। E_1 बिन्दु उचे उदासीनता पर स्थित होने के कारण उपभोक्ता को पहले की तुलना में अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। E बिन्दु पर उपभोक्ता वस्तु की OQ मात्रा खरीदता है। यदि ER आय उपभोक्ता को दी जाए व वस्तु की OQ मात्रा ही खरीदने को बाध्य किया जाए तो वह अनुवर्ती संतुष्टि स्तर पर होगा। अत: ER या MN आय परिमाण सममूल्य परिवर्तन को व्यक्त करती है।

बोध प्रश्न :

1. उदासीनता वक्रों की सहायता से उपभोक्ता की बचत की अवधारणा को समझाइए।
2. कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन व कीमत सममूल्य परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।
3. मात्रा क्षतिपूरक परिवर्तन व मात्रा सममूल्य परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।

4.6 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा की आलोचना:

1. कई अर्थशास्त्रियों ने उपभोक्ता की बचत की अवधारणा को एक काल्पनिक व भ्रमात्मक अवधारणा कहकर आलोचना की है। एक उपभोक्ता अपनी आय से अधिक व्यय नही कर सकता, अत: यह कहना उचित नही है कि उपभोक्ता किसी वस्तु के उपयोग से वंचित रहने की अपेक्षा कितना व्यय करने को तत्पर होगा।

2. उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है, इसका मापन करना सम्भव नही है। अत: उपभोक्ता की बचत के माप के लिए उपयोगिता की मापनीयता की मान्यता व्यवहारिक नही है।

4. मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर नही होती। उपभोक्ता की बचत की अवधारणा में यह मान्यता ली गई है कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर होती है। उपभोक्ता द्वारा अपनी आय को व्यय करते समय उत्तरोत्तर रूप से अधिक मानसिक कष्ट होता है। अत: जब मुद्रा की सीमांत उपयोगिता ही स्थिर नही होती तो वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को मुद्रा के रूप मे मापना उचित नही है।

4. कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा उपभोक्ता की बचत की इस आधार पर आलोचना की है कि वस्तु की भिन्न- भिन्न इकाइयाँ उपभोक्ता को भिन्न- भिन्न संतुष्टि प्रदान नहीं करती जबकि उपभोक्ता की बचत की अवधारणा के अनुसार व्यक्ति वस्तु की भिन्न- भिन्न इकाइयों से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता का आकलन करता है व उनके अनुसार वस्तु की की कीमत अदा करने को तैयार रहता है। वास्तव में कोई भी उपभेक्ता वस्तु की भिन्न- भिन्न इकाइयों से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता का विचार न करके कुल उपयोगिता पर विचार करता है। वस्तु की सभी इकाइयों के समान होने के कारण उनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।

5. यह अवधारणा वस्तुओं के आपसी सम्बन्धों की अवहेलना करती है। उपभोक्ता की बचत की अवधारणा में यह मान लिया गया है कि वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता दूसरी वस्तुओं से प्राप्त होने वाली उपयोगिता से स्वतंत्र होती है जबकि वास्तव में किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता केवल उसी वस्तु पर निर्भर नही करती बल्कि उस वस्तु की पूरक व स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता पर भी निर्भर करती है।

6. ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जिनसे प्राप्त उपयोगिता अनन्त होती है। जैसे, जीवनरक्षक वस्तुओं से प्राप्त उपयोगिता को मापा नही जा सकता, अत: ऐसी वस्तुओं से प्राप्त उपभोक्ता की बचत का माप करना सम्भव नही होता।

4.7 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का महत्व:

1. **उपयोग मूल्य व विनिमय मूल्य में अन्तर:** किसी वस्तु का उपभोग करने पर उससे प्राप्त होने वाली संतुष्टि ही उस वस्तु का उपयोग मूल्य होता है, जबकि वस्तु का विनिमय मूल्य वस्तु प्राप्त करने के लिए किए गए भुगतान को व्यक्त करता है। उपयोग मूल्य व विनिमय मूल्य के अन्तर को ही उपभोक्ता की बचत कहा जाता है।

2. **जल-हीरा विरोधाभास :** जल का अत्याधिक उपयोगी होने पर भी कम कीमत पर उपलब्ध होना व हीरे का कम उपयोगी होने पर अत्याधिक कीमती होना ही जल-हीरा विरोधाभास है। प्राय: यह समझ लिया जाता है कि वस्तु की कीमत उसके उपयोग मूल्य के समान होती है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। उपभोक्ता की बचत की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि वस्तु की कीमत उसके

विनिमय मूल्य के समान होती है। जल के उपभोग से उपभोक्ता को बहुत अधिक बचत प्राप्त होती है, जबकि हीरे के उपभोग से उपभोक्ता को कम बचत प्राप्त होती है।

4. **कर का आर्थिक विश्लेषण**: सरकार द्वारा किए जाने वाले करारोपण का उपभोक्ता के आर्थिक कल्याण पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करने में उपभोक्ता की बचत का विशेष महत्त्व है। रेखाचित्र - 4.8 में करारोपण से उपभोक्ता की बचत पर पड़ने प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

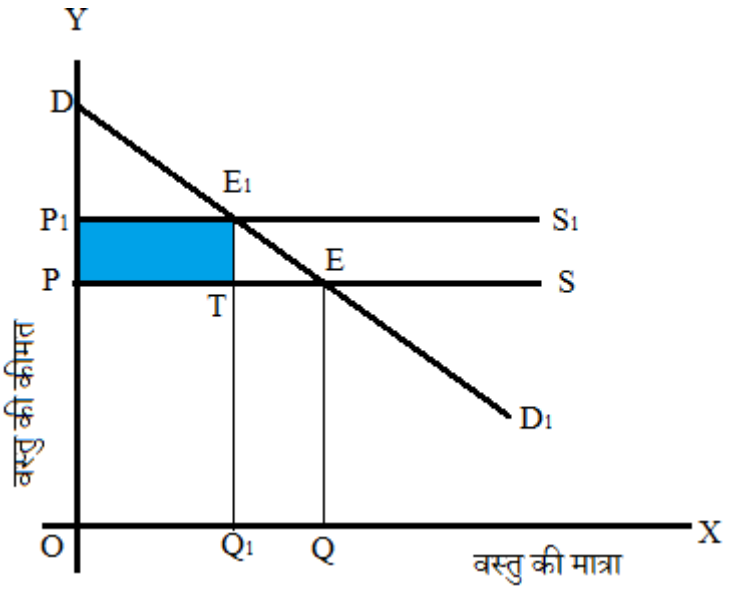

रेखाचित्र - 4.8

उपरोक्त रेखाचित्र - 4.8 में OX अक्ष पर वस्तु की मांग व पूर्ति की मात्रा व OY अक्ष पर वस्तु की कीमत को दर्शाया गया है। DD_1 वस्तु का मांग वक्र व PS वस्तु का पूर्ति वक्र है। मांग व पूर्ति वक्र के कटान बिन्दु E पर उपभोक्ता का संतुलन होता है, जिस पर वस्तु की कीमत OP व मांग व पूर्ति मात्रा OQ निर्धारित होती है। वस्तु की OQ मात्रा खरीदने पर उपभोक्ता को ΔDPE के समान बचत प्राप्त होती है। सरकार द्वारा वस्तु पर PP_1 के समान प्रति इकाई कर लगाने पर पूर्ति वक्र विवर्तित होकर P_1S_1 हो जाता है। जिसके कारण E_1 बिन्दु पर उपभोक्ता का संतुलन स्थापित होता है। E_1 बिन्दु पर उपभोक्ता को ΔDP_1E_1 के समान बचत प्राप्त होती है। करारोपण के कारण उपभोक्ता की बचत में P_1E_1EP के समान कमी हो जाती है, जबकि करारोपण से सरकार को PP_1E_1T के समान राजस्व प्राप्त होता है। अर्थात ΔE_1TE के समान उपभोक्ता की बचत में कमी ऐसी है जो सरकार या उपभोक्ता में से किसी को भी प्राप्त नही होती। अर्थशास्त्र में इसे मृतप्राय: हानि के नाम से जाना जाता है। यदि अप्रत्यक्ष कर के स्थान पर प्रत्यक्ष करारोपण किया जाता तो उपभोक्ता की बचत में कमी नही आती। इसलिए अर्थशास्त्री अप्रत्यक्ष करों की तुलना में प्रत्यक्ष करारोपण का समर्थन करते हैं।

स्थिर लागत व घटती लागत वाले उद्योगो पर करारोपण करने से राजस्व में हुई वृद्धि उपभोक्ता की बचत में हुई कमी से कम होती है, अत: सरकार को स्थिर लागत व घटती लागत वाले उद्योगो पर करारोपण

नही करना चाहिए। इसके विपरीत बढती लागत वाले उद्योगो पर करारोपण करने से राजस्व में हुई वृद्धि उपभोक्ता की बचत में हुई कमी से अधिक होती है, अत: सरकार को बढती लागत वाले उद्योगो पर करारोपण करना चाहिए।

4. **आर्थिक सहायता का विश्लेषण:** सरकार समय समय पर विभिन्न उद्योगों को प्रोत्साहन स्वरूप आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाती रहती है। उपभोक्ता की बचत की अवधारणा से इस आर्थिक सहायता की उपादेयता का विश्लेषण किया जा सकता है। रेखाचित्र - 4.9 में सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली आर्थिक सहायता का उपभोक्ता की बचत पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

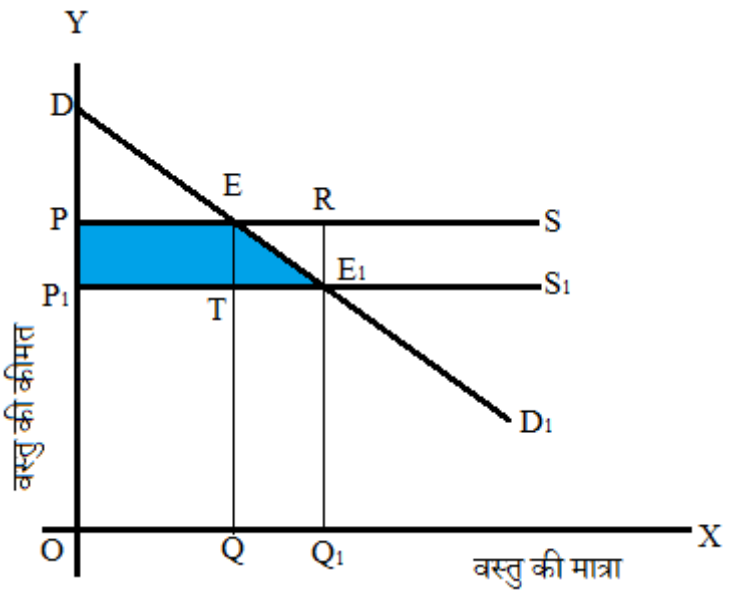

रेखाचित्र - 4.9

उपरोक्त रेखाचित्र - 4.9 में OX अक्ष पर वस्तु की मांग व पूर्ति की मात्रा व OY अक्ष पर वस्तु की कीमत को दर्शाया गया है। DD_1 वस्तु का मांग वक्र व PS वस्तु का पूर्ति वक्र है। मांग व पूर्ति वक्र के कटान बिन्दु E पर उपभोक्ता का संतुलन होता है, जिस पर वस्तु की कीमत OP व मांग व पूर्ति मात्रा निर्धारित होती है। वस्तु की OQ मात्रा खरीदने पर उपभोक्ता को ΔPDE के समान बचत प्राप्त होती है। सरकार द्वारा वस्तु की प्रति इकाई के उत्पादन पर PP_1 आर्थिक सहायता देने पर पूर्ति वक्र विवर्तित होकर P_1S_1 हो जाता है। जिसके कारण E_1 बिन्दु पर उपभोक्ता का संतुलन स्थापित होता है। E_1 बिन्दु पर उपभोक्ता को ΔDP_1E_1 के समान बचत प्राप्त होती है। आर्थिक सहायता के कारण उपभोक्ता की बचत में PP_1E_1E के समान वृद्धि होती है, जबकि आर्थिक सहायता के रूप में सरकार द्वारा PP_1E_1R के समान राशि उद्योग को प्रदान की गई है, अर्थात् आर्थिक सहायता के कारण सरकार को ΔEE_1R के अतिरिक्त भार वहन करना पड़ता है।

5. **एकाधिकार में कीमत निर्धारण:** एकाधिकार की स्थिति में लाभ अधिकतम करने के लिए एकाधिकारी द्वारा कीमत विभेदीकरण किया जाता है। पूर्ण कीमत विभेदीकरण अपनाते हुए एक एकाधिकारी द्वारा अपने उत्पादन की प्रत्येक इकाई के लिए इतनी कीमत निर्धारित की जा सकती है कि उपभोक्ता की बचत शून्य हो जाए।

6. **सार्वजनिक परियोजनाओं का आर्थिक महत्त्व:** सरकार द्वारा सार्वजनिक परियोजनाओं में निवेश करते समय उन्हे लागत-लाभ कसौटी पर परखा जाता है। सरकार द्वारा उन परियोजनाओं में निवेश को प्राथमिकता दी जाती है जिन पर लागत-लाभ अनुपात कम हो। सरकार द्वारा ऐसी परियोजनाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिनसे अधिकाधिक उपभोक्ता की बचत उत्पन्न हो।

7. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्त्व:** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करते समय प्राय: प्रत्येक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण करते है, जिनके उत्पादन में उसे अधिक सापेक्ष लाभ प्राप्त होते हैं। इससे व्यापार में संलग्न प्रत्येक देश को सस्ती कीमत पर उत्पाद सुलभ होते हैं, जिससे उपभोक्ताओं की बचत में काफी वृद्धि होती है।

4.8 सारांश

वस्तु के उपयोगिता मूल्य व विनिमय मूल्य के अन्तर को उपभोक्ता की बचत कहा जाता है। प्रो. मार्शल ने उपयोगिता को गणनावाचक रूप में मापनीय मानते हुए उपभोक्ता की बचत की व्याख्या की है। प्रो. हिक्स ने गणनावाचक दृष्टिकोण की अवास्तविक मान्यताओं का परित्याग करते हुए उदासीनता वक्रों की सहायता से उपभोक्ता की बचत से सम्बन्धित चार प्रकार की धारणाओं की व्याख्या की है।

सरकार द्वारा राजस्व प्राप्ति हेतु करारोपण किया जाता है व विकास हेतु उद्योगों को आर्थिक सहायता दी जाती है। करारोपण व आर्थिक सहायता के विश्लेषण में उपभोक्ता की बचत की अवधारणा काफी मददगार साबित होती है।

4.9 शब्दावली

उपयोगिता : वस्तु या सेवा का वह गुण जिससे उपभोक्ता की किसी आवश्यकता की तृप्ति होती है।

उपभोक्ता की बचत : उपयोग मूल्य व विनिमय मूल्य का अन्तर

कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन : कीमत में क्षतिपूरक परिवर्तन मुद्रा की वह अधिकतम मात्रा है, जो उपभोक्ता संतुष्टि के प्रारम्भिक स्तर पर रहते हुए वस्तु को सस्ती कीमत पर खरीदने की सुविधा हेतु व्यय करने को तैयार है।

कीमत सममूल्य परिवर्तन : कीमत सममूल्य परिवर्तन मुद्रा की वह न्यूनतम मात्रा है जिसके प्राप्त करने पर उपभोक्ता संतुष्टि के अनुवर्ती स्तर पर रहते हुए वस्तु को सस्ती कीमत पर खरीदने की सुविधा का त्याग करने को तैयार है।

परिमाण क्षतिपूरक परिवर्तन : कीमत में क्षतिपूरक परिवर्तन मुद्रा की वह अधिकतम मात्रा है, जो उपभोक्ता संतुष्टि के प्रारम्भिक स्तर पर रहते हुए वस्तु को सस्ती कीमत पर खरीदने की सुविधा हेतु व्यय करने को तैयार है, बशर्ते वह कीमत में कमी के फलस्वरूप नवीन संयोग के समान ही वस्तु की मात्रा खरीदे।

परिमाण सममूल्य परिवर्तन : परिमाण सममूल्य परिवर्तन मुद्रा की वह न्यूनतम मात्रा है जिसके प्राप्त करने पर उपभोक्ता संतुष्टि के अनुवर्ती स्तर पर रहते हुए वस्तु को सस्ती कीमत पर खरीदने की सुविधा का त्याग करने को तैयार है, यदि उसे प्रारम्भिक कीमत पर खरीदी गई मात्रा के समान ही वस्तु खरीदने पर बाध्य किया जाए।

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न:

1. उपभोक्ता की बचत क्या है? रेखाचित्रों की सहायता से मार्शल द्वारा दी गई उपभोक्ता की बचत की अवधारणा को समझाइए।
2. उदासीनता वक्रों की सहायता से उपभोक्ता की बचत की व्याख्या कीजिए।
4. उपभोक्ता की बचत की आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
4. आर्थिक विश्लेषण में उपभोक्ता की बचत का क्या महत्त्व है? समझाइए।

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ:

एच. एल. आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., रामनगर, नई दिल्ली-2004

के. एन. वर्मा : व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त, विशाल पब्लिकेशन कम्पनी, जालंधर- 2011

सी. एस. बरला : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर-2002

A. Koutsoyiannis : Modern Microeconomics , Macmillan Press LTD, London-2006

इकाई 5

मांग की लोच

Elasticity of Demand

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मांग की लोच का अर्थ एवं परिभाषा

5.2.1 मांग की लोच की श्रेणियां

5.3 मांग की लोच की माप

5.5 मांग की लोच के निर्धारक तत्व

5.6 मांग की लोच की अन्य मापे

5.6.1 मांग की आय लोच

5.6.2 मांग की तिरछी लोच

5.7 मांग की लोच का महत्व

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तके

5.11 अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस खण्ड की इकाई 2 में हम मांग एवं मांग के नियम के बारे में विस्तार से चर्चा कर चुके है। इस इकाई में हम मांग की लोच की धारणा का विस्तार से अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

मांग की लोच का अर्थ एवं परिभाषाओं सें परिचित हो जाएंगें;

1. जान सकेंगे, कि मांग की लोच के आधार पर किसी वस्तु की मांग को लोचदार, बेलोचदार, अधिक लोचदार आदि श्रेणियों में किस प्रकार विभाजित किया जाता है;
2. मांग की लोच को मापने की विभिन्न विधियां कौन्सी है;
3. मांग की लोच के अन्य माप कौन-कौन से है; एवम्

4. इसके विभिन्न निर्धारक तत्व कौन-कौन से है तथा मांग की लोच की धारणा का क्या महत्व है।

5.1 प्रस्तावना

वस्तु की मांग कई बातों पर निर्भर होती है। मांग फलन के स्वतंत्र चरों में परिवर्तन की प्रतिक्रिया स्वरूप निर्भर चर (मांग) में होने वाले परिवर्तन को हम मांग की लोच की धारणा के द्वारा व्यक्त करते है। मांग की लोच के तीन प्रमुख प्रकार है:

मांग की कीमत लोच :- यह वस्तु की कीमत में परिवर्तन की प्रतिक्रिया में मांग में हुये परिवर्तन की माप है।

मांग की आय लोच - यह आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की मांग में हुये परिवर्तन की माप है।

मांग की तिरछी लोच-यह किसी सम्बन्धित वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की मांग में हुये परिवर्तन की माप है।

इन सभी में सर्वाधिक प्रचलित माप मांग की कीमत लोच है। इस इकाई में हम मांग की कीमत लोच की विस्तृत व्याख्या करनें के पश्चात् मांग की लोच की अन्य मापों का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई में हम मांग की लोच की विभिन्न श्रेणियों जैसे अधिक लोचदार, लोचदार, बेलोचदार आदि के बारे में भी अध्ययन करेंगें। यह जानकारी कई महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णय लेने में सहायक सिद्ध होगी। इसके अतिरिक्त मांग की लोच के निर्धारक तत्वों की व्याख्या भी इस इकाई में की जाएगी।

5.2 मांग की लोच का अर्थ एवं परिभाषा:

मांग फलन के स्वतंत्र चरों(Independent variables) में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप निर्भर चरों (dependent variables) में होने वाली प्रतिक्रिया अथवा मांग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन की माप को मांग की लोच कहते है।

मांग की कीमत लोच को व्यक्त करने के लिए अर्थशास्त्री सामान्यतः मांग की लोच शब्द का ही प्रयोग करते है इसलिये इसकी परिभाषा कीमत परिर्वतनों के सन्दर्भ में ही की गई है।

मार्शल के शब्दों में, "मांग की लोच (या अनुक्रियाशीलता) का कम अथवा अधिक होना इस बात पर निर्भर है कि बाजार में वस्तु की कीमत में कमी होने पर मांग में कम या अधिक वृद्धि होती है तथा कीमत में वृद्धि होने पर मांग में कमी कम होती है अथवा अधिक।"

श्रीमती जॉन राबिन्सन के अनुसार 'मांग की लोच किसी कीमत अथवा उत्पादन पर क्रय की गई मात्रा का आनुपातिक परिवर्तन है जो कीमत के अल्प परिवर्तन में, कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।' इस परिभाषा के अनुसार :

$$\text{मांग की लोच} = \frac{\text{मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

अथवा (मांग की कीमत लोच)

सूत्र के रूप में $Ed = \frac{\Delta Q}{Q} \div \frac{\Delta P}{P}$ or $\frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$

अवक्रलन गणित में $E_d = \frac{dQ}{dp}\,\frac{p}{Q}$

जहां : Ed = मांग की कीमत लोच अथवा मांग की लोच

ΔQ = मांग में परिवर्तन, ΔP = कीमत में परिवर्तन, Q = प्रारम्भिक मांग, P = प्रारम्भिक कीमत

मांग की लोच का चिन्ह (Sign) सदैव ऋणात्मक होता है, परन्तु अर्थशास्त्री मांग की लोच की गणना करते समय चिन्हों को छोड़ते हुए केवल निरपेक्ष परिवर्तनों पर ही ध्यान केन्द्रित करते है। उदाहरणार्थ यदि वस्तु की कीमत में 10 प्रतिशत (अथवा 0.1) वृद्धि हो और मांग में 5 प्रतिशत (अथवा 0.05) कमी आ जाए तो मांग की लोच Ed = 0.05/0.1=(-)0.5 होगी। मांग की लोच का यह मूल्य इकाई से कम (Ed<1) है अत: इसे बेलोचदार मांग कहा जाएगा। इस प्रकार मांग इकाई के बराबर (Ed=1), इकाई से अधिक (Ed>1) अथवा शून्य से अनन्त के बीच कोई भी मूल्य ले सकती है । इस आधार पर मांग की लोच की निम्नलिखित विभिन्न श्रेणियां बनाई जा सकती है।

5.3 मांग की लोच की श्रेणियां

मांग की लोच को निम्नलिखित प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :-

1. **बेलोचदार मांग :** यदि मांग में परिवर्तन कीमत में हुए आनुपातिक परिवर्तन की अपेक्षा कम हो तो उसे बेलोचदार मांग कहा जाता है उदाहरणार्थ यदि मूल्यों में 10 प्रतिशत की वृद्धि हो एवं मांग केवल 5 प्रतिशत ही कम हो, तो इसे बेलोचदार मांग कहा जाएगा। फर्म का कुल आगम कीमत के बढ़ने पर बढ़ जाता है एवं कीमत के कम होने पर कुल आगम भी कम हो जाता है। उदाहरणार्थ यदि वस्तु की कीमत के रुपये प्रति इकाई है तो मांग 35 इकाई है एवं कुल आगम (कीमत × मात्रा) 175/-रुपये है अब यदि कीमत घटकर 3 रुपय हो जाये और मांग बढ़कर 45 इकाई हो जाये तो कुल आगम 135 रुपये होगा जो पहले से कम है। मांग के इस स्वरूप को बेलोचदार मांग कहा जाएगा इस सम्बन्ध को निम्नाकिंत रेखाचित्र 5.1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

   यहां $Ed = (-)\frac{\Delta Q}{\Delta P}.\frac{P}{Q} = (-)\ \frac{10}{2}\ .\frac{5}{35} = (-)\frac{5}{7} = (-)\,0.71$ जो कि इकाई से कम है।

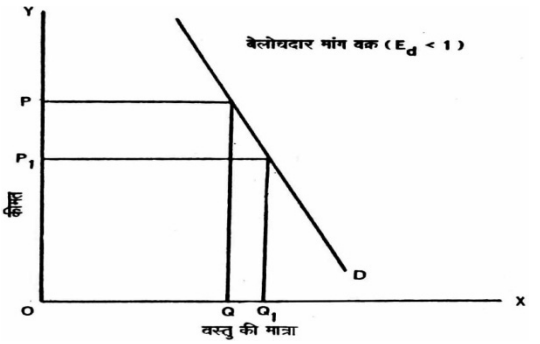

चित्र 5.1

रेखाचित्र 5.1 में वस्तु की मात्रा X अक्ष पर तथा कीमत Y अक्ष पर ली गई है। जब कीमत OP से बढ़कर OP हो जाती है तो मांग OQ से घटकर OQ रह जाती है। Q_1Q की तुलना में P_1P अधिक है इससे स्पष्ट है कि बेलोचदार मांग कीमत के परिवर्तन से कम अनुपात में बदलती है। अत: इसे इकाई से कम लोचदार मांग भी कहते है। इसकी चरम सीमा वह है जहां मांग कीलोच शून्य (Ed = 0) हो जाती है। अर्थात् वस्तु की मांग अपरिवर्तित रहती है वस्तु की कीमत चाहे कुछ भी हो। इसे पूर्णतया बेलोचदार मांग कहा जाता है। यह स्थिति सैद्धानिक रूप में ही सम्भव है । व्यावहारिक रूप में ऐसी स्थिति नही पाई जाती। पूर्णतया बेलोचदार मांग वक्र X अक्ष पर लम्ब का रूप ले लेता है। इसे रेखाचित्र 5.2 में प्रदर्शित किया गया है।

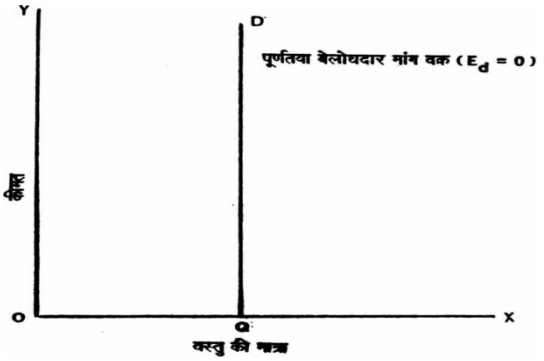

चित्र 5.2

2. लोचदार मांग : जब किसी वस्तु की मांग में परिवर्तन उसकी कीमत में परिवर्तन की तुलना में अधिक हो तो उसे लोचदार मांग कहते है। उदाहरणार्थ यदि मूल्यों में 10 प्रतिशत की वृद्धि होने पर मांग में 25 प्रतिशत की कमी हो जाये तो उसे लोचदार मांग कहते है। कुल आगम कीमत बढ़ने पर गिर जाता है एवं कीमत कम होने पर बढ़ जाता है। जैसे किसी वस्तु की कीमत 9/- रुपये प्रति इकाई है तो उसकी 15 इकाइयां खरीदी जाती है। कुल आगम 9×15 = 135/ - रु. है। परन्तु यदि कीमत घटकर 7/- रुपये प्रति इकाई हो जाये एवं मांग बढ़कर 25 इकाई हो जाये तो कुल आगम 7× 25 =175/- रुपये हो जाएगा। मांग के इस स्वरूप को लोचदार मांग कहते है। मांग की लोच का मूल्य इकाई से अधिक (ED>1) होने के कारण इसे इकाई से अधिक

लोचदार मांग भी कहा जाता है। इस स्वरूप को रेखाचित्र 5.3 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यहां लोच का गुणांक (Ed) इस प्रकार है:

$$(-)\frac{\Delta Q}{\Delta P}\cdot\frac{P}{Q}=(-)\ \frac{10}{2}\ \cdot\frac{9}{15}=(-)3$$ जो कि (1) अधिक है।

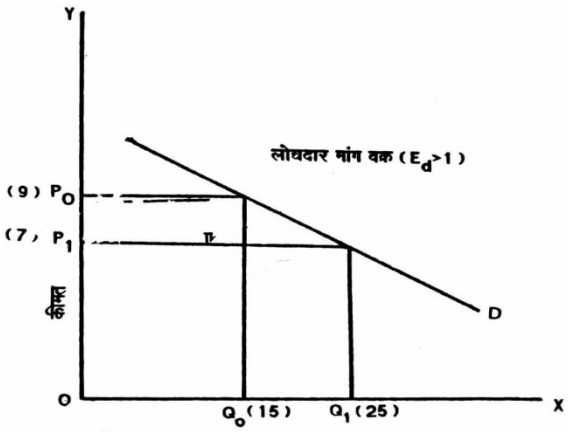

चित्र 3.3 वस्तु की मात्रा

जब कीमत OP_0 से घटकर OP_1 हो जाती है तो मांग OQ_0 से बढ़कर OQ_1 हो जाती है। Q_0Q_1 की तुलना में कम है। इससे स्पष्ट है लोचदार मांग कीमत में परिवर्तन से अधिक अनुपात में बदलती है। इसकी चरम सीमा वह है जहां कीमत में मामूली वृद्धि से मांग शून्य हो जाती है एवं कीमत में थोड़ी सी कमी से कुल आगम व मांग अनन्त हो जाती है। इस स्थिति को पूर्णतया लोचदार मांग कहते है। यह भी सैद्धानिक स्थिति है व्यवहारिक रूप में ऐसी स्थिति नही पाई जाती है। पूर्णतया लोचदार मांग वक्र X अक्ष के समानान्तर रेखा का रूप ले लेता है। इसे रेखा चिर 5.4 में प्रदर्शित किया गया है।

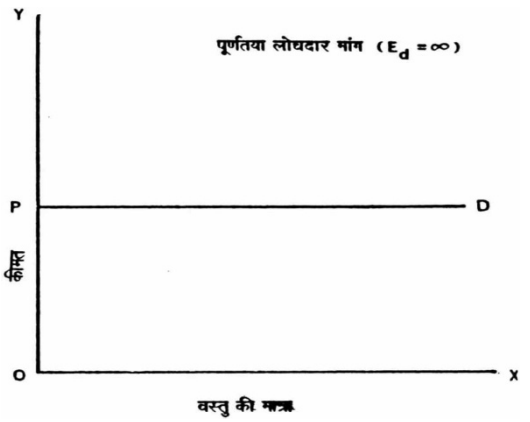

चित्र 5.4

3. इकाई के बराबर लोचदार मांग अथवा इकाई लोच : यदि कीमत एंव मांग मे समान अनुपात में परिवर्तन हो तो उसे इकाई लोच (Ed=1) कहेंगे। उदाहरणार्थ यदि वस्तु की कीमत के 10 प्रतिशत बढ़ने पर यदि मांग भी 10 प्रतिशत घट जाए तो इसे इकाई के बराबर लोचदार मांग

कहा जाएगा। ऐसी परिस्थिति में कुल आगम लगभग अपरिवर्तित रहता है। उदाहरणार्थ यदि कीमत 7 रुपये प्रति इकाई है तो वस्तु की मांग 25 इकाइयां है। एवं कुल आगम $7 \times 25 = 175/-$ रुपये है। अब यदि कीमत घटकर 5 रु. रह जाये तो मांग बढ़कर 35 इकाइयां हो जाती है। कुल आगम $5 \times 35 = 175/-$ रुपये अपरिवर्तित रहता है। अत: इस मांग सम्बन्ध को इकाई के बराबर लोचदार मांग कहा जाएगा। इसे कुल व्यय दृष्टिकोण (Total outlay approach) कहते है। एक rectangular hyperbola वाले मांग वक्र की कीमत लोच इकाई के बराबर होती है:

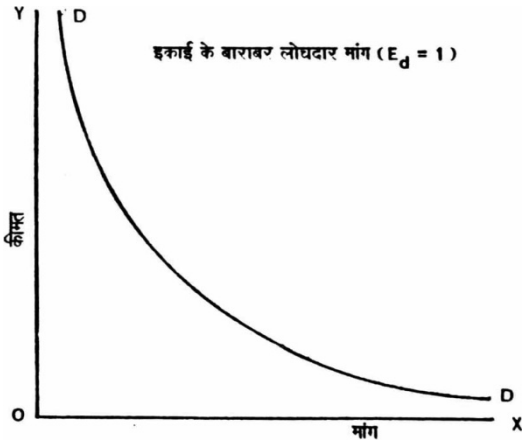

चित्र 5.5

यहां पर यह बात उल्लेखनीय है कि मांग की लोच का मांग वक्र के ढाल से अधिक सम्बन्ध नही है। यदि दो मांग वक्र अलग-अलग पैमाने खीचे जाये तो उनकें ढाल अलग होगा परन्तु लोच समान हो सकती है। परन्तु यदि दो मांग वक्र एक ही पैमाने पर बनाए गये है तो अधिक ढालू मांग वक्र बेलोचदार होगा जबकि अधिक समतल मांग वक्र लोचदार होगा। इसके साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि मांग वक्र कें प्रत्येक बिन्दु पर मांग की लोच भिन्न भिन्न होंती है। यद्यपि ऐसा मांग वक्र भी बनाया जा सकता है जिसके प्रत्येक बिन्दु पर मांग की लोच इकाई के बराबर हो (जैसे चित्र 5.5 में देखिये)

बोध प्रश्न - 1

अपने उत्तरों का मिलान इकाई कें अन्त में दिये गये उत्तरों से करें।

1. मांग की लोच की प्रमुख श्रेणियों के नाम लिखिए।
2. एक वस्तु की मांग की लोच इकाई से अधिक है। वस्तु का उत्पादक उसकी कीमत बढ़ाने का विचार करता है। बताइये फर्म के कुल आगम पर उसके इस निर्णय का क्या असर होगा?
3. एक फर्म का मांग वक्र बेलोचदार है। अन्य परिस्थितियों के यथावत् रहते, कीमत वृद्धि का कुल आगम पर क्या प्रभाव होगा?

5.4 मांग की लोच की माप :

मांग की कीमत लोग अथवा मांग की लोच मापने की तीन प्रमुख विधियां है-

1. **प्रतिशत विधि -** मांग की लोच की यह विधि प्रो. फ्लक्स (Flux) द्वारा दी गई है। इस विधि के अनुसार मांग की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन तथा वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात द्वारा मांग की लोच ज्ञात की जाती है।

सूत्र के अनुसार

E_d = $\frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$

मांग में प्रतिशत परिवर्तन = $\frac{\text{मांग में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक मांग}}$

कीमत में प्रतिशत परिवर्तन = $\frac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक मांग}}$

सूत्र के रूप में $E_d = \frac{\Delta Q}{Q} \div \frac{\Delta P}{P} or \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P} or \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$

जहां ΔQ = मांग में परिवर्तन, ΔP = कीमत में परिवर्तन

P = प्रारम्भिक कीमत, Q = प्रारम्भिक मांग

एक संख्यात्मक उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये प्रारम्भिक किमत (P) = 9 प्रारम्भिक मांग (Q) = 15 इकाई, नई कीमत 7 रु. व नई मांग 25 इकाई है। ऐसी स्थिति में ΔQ 10 इकाई ΔQ 10 रु. है। इन परिवर्तनों को सूत्र में रखने पर

$Ed = \frac{10}{2} \times \frac{9}{15} = 3$, मांग की लोच का मूल्य 3 है।

अर्थात् मांग अधिक लोचदार है। यह लोच मूल्य में कमी होने पर ज्ञात की गई है परन्तु इस सूत्र के आधार पर इन्हीं ऑकड़ों का उपयोग कर यदि हम यह मान लें कि प्रारम्भिक कीमत 7 रु. थी व प्रारम्भिक मांग 25 इकाई थी। नई कीमत 9 रु. व नई मांग 15 इकाई है तो मांग की लोच का मूल्य 1.4 ही रह जाएगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस सूत्र का प्रयोग करने पर मूल्य परिवर्तन की दिशा से मांग की लोच का पूर्ण प्रभावित हो जाता है। अत: इसे अधिक उपयोगी नही कहा जा सकता।

(2) **बिन्दु विधि -** मांग वक्र के किसी बिन्दु पर मांग की लोच ज्ञात करने के लिये प्रो. मार्शल ने एक ज्यामिति विधि बताई है। इसमें हम मांग वक्र को एक सरल रेखा मानते है। परन्तु यदि वास्तविक मांग वक्र का स्वरूप एक सरल रेखा जैसा नही हो तो भी हम इस विधि का प्रयोग कर सकते है। इसके लिये हम मांग वक्र के जिस बिन्दु पर मांग की लोच ज्ञात करना चाहते है उस बिन्दु पर एक स्पर्श रेखा खींचते

है। इस-बिंदु पर स्पर्श रेखा का ढाल मांग वक्र के उस बिन्दु पर ढाल के बराबर होता है। अत: स्पर्श रेखा के ढाल को ज्ञात करके उसके आधार पर मांग की लोच ज्ञात की जाती है। रेखाचित्र 5.6 में मांग की लोच की बिन्दु विधि को स्पष्ट किया गया है।

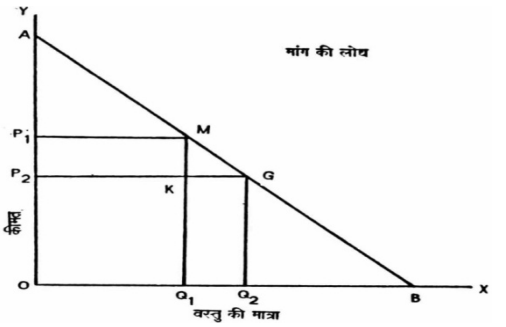

चित्र 5.6

रेखाचित्र 5.6 मे समानान्तर अक्ष पर मात्रा एवं तथ अक्ष पर कीमत को लेते है। AB मांगवक्र है प्रारम्भिक मूल्य OP_1, एवं प्रारम्भिक मांगOQ_1, है, जब मूल्य गिरकर OP_2, हो जाता है तो मांग की मात्रा बढ़कर OQ_2, हो जाती है। वस्तु की मात्र में परिवर्तन Q_1Q_2 अथवा KG के बराबर है एवं मूल्य में परिवर्तन P_1P_2, अथवा MK के बराबर है। अब सूत्र के आधार पर -

$$E_d = \frac{q_1q_2}{p_1p_2} \times \frac{OP_1}{Oq_1} = \frac{KG}{MK} \times \frac{Mq_1}{Oq_1} \qquad \because \; q_1q_2 = kg \text{ तथा}$$

$P_1p_2 = MK$ एवं

$OP_1 = Mq_1$

अब त्रिभुज MKG तथा $M\,q_1\,B$ में

$<KGM> = < q_1BM$ तथा $<MKG = M\,q_1\,B$

क्योंकि ΔMKG तथा ΔMq_1B समरूप त्रिभुज है। अत: इनकी भुजाओं अनुपात भी बराबर होगा:

$$\left(\because \frac{KG}{MK} = \frac{q_1{}^B}{Mq_1} \right)$$

$$\frac{KG}{MK} \times \frac{Mq_1}{Oq_1} = \frac{q_1{}^B}{Mq_1} = \frac{q_1{}^B}{Oq_1}$$

क्योंकि $\Delta\, M\, q_1\, B$ एवं ΔAOB दोनों ही समरूप है अत:

$$\frac{q_1{}^B}{Oq_1} = \frac{OP_1}{P_1A} = \frac{MB}{AM}$$

$$Ed = \frac{\text{मांग वक्र का नीचला भाग}}{\text{मांग वक्र का ऊपरी भाग}}$$

अर्थात् सीधी रेखा वाले मांगवक्र के बिन्दु पर मांग की लोच ज्ञात करने के लिए हम MB में AM का भाग देते है। इस सूत्र का लाभ यह है कि हम मांग वक्र के किसी भी बिन्दु पर मांग की लोच ज्ञात कर सकते है। मांग वक्र के ठीक बीचों बीच जहां नीचला भाग व उपरी भाग बराबर होंगे मांग की लोच इकाई के बराबर होगी। इसके उपर की ओर मांग वक्र अधिक लोचदार एवं नीचे की ओर कम लोचदार होता है। रेखा चित्र 5.7 में एक सीधी रेखा मांग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर मांग की लोच को दिखाया गया है।

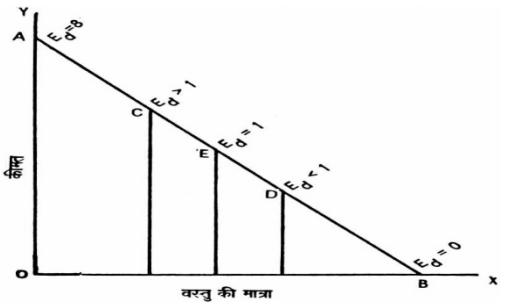

चित्र 5.7

A बिन्दु पर मांग की लोच अनन्त है। जबकि B बिन्दु पर यह शून्य है। E बिन्दु पर लोच इकाई के बराबर है। E बिन्दु से A की ओर अग्रसर होने पर मांग लोचदार तथा B बिन्दु की ओर अग्रसर होने पर बेलोचदार होती जाती है। मांग की लोच ज्ञात करने की इस विधि का प्रयोग उस समय भी किया जा सकता है जब मांग वक्र एक सीधी रेखा न हो। जैसे रेखा, चित्र 5.8 में मांग वक्र DD_1 एक सीधी रेखा नही है। इस मांग वक्र के जिस बिन्दु पर हम मांग की लोच जानना चाहते है, उस बिंदु पर हम एक स्पर्श रेखा खींचते है।

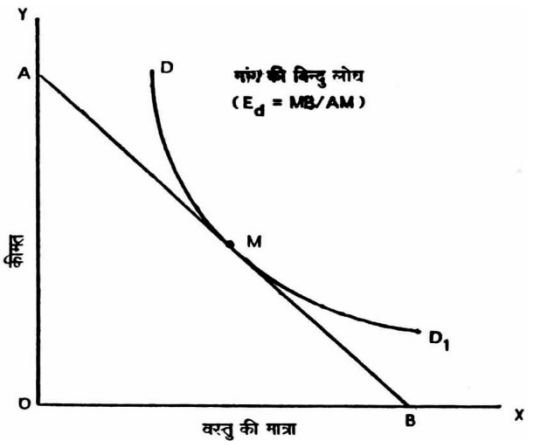

चित्र 5.8

जैसे रेखा चित्र 5.8 में यदि हम मांग वक्र के M बिन्दु पर मांग की लोच ज्ञात करना चाहते है तो हमें M बिन्दु पर एक AB स्पर्श रेखा खींचनी पड़ेगी अब बिन्दु विधि के आधार पर M बिन्दु पर मांग की लोच

MB/AM के बराबर होगी। अब यदि किसी दूसरे बिन्दु पर मांग की लोच ज्ञात करनी हो तो हमें दूसरी स्पर्श रेखा खींचनी पड़ेगी।

(3) **चाप विधि :** मांग की लोच ज्ञात करने की बिन्दु विधि हमें केवल एक बिंदु पर मांग की लोच को बताती है जबकि चाप लोच में मांग वक्र के किन्हीं दो बिन्दुओं के बीच मांग की लोच ज्ञात की जाती है। इस विधि में प्रतिशत विधि की कमियों को भी दूर किया गया है। इस विधि में हम मांग में हुए परिवर्तनों को प्रारमिक मांग से भाग नहीं देते बल्कि प्रारम्भिक व नई मांग के औसत से भाग देते है। इसी प्रकार कीमत परिवर्तनों में भी प्रारम्भिक व नई कीमत के औसत का भाग देते है सूत्र रूप में -

$$Ed = \frac{\text{मांग में परिवर्तन}}{\text{मात्राओं का औसत}} X \frac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{कीमतों का औसत}}$$

$$= \frac{\Delta q}{(q_1 + q_2)/2} \div \frac{\Delta P}{(P_1 + q_2)/2}$$

$$= \frac{\Delta q}{\Delta P} \div \frac{(P_1 + P_2)}{(q_1 + q_2)}$$

एक संख्यात्मक उदाहरण के द्वारा इस सूत्र के आधार पर मांग की लोच की गणना को भली-भांति स्पष्ट किया जा सकता है। मान लिजिए-प्रारम्भिक कीमत P_1 = 5 रु. नई कीमत (P_2) =4 रु. प्रारम्भिक मांग (q_1) =50 इकाईयां नई मांग(q^2_1) = 7()इकाइयां है :

उपर्युक्त सूत्र के आधार पर मांग की लोच :

$$Ed = \frac{\Delta q}{\Delta P} \times \frac{(P_1 + P_2)}{(q_1 + q_2)} = \frac{20}{1} \times \frac{(5+4)}{(50+70)}$$

$$= \frac{20}{1} \times \frac{9}{120} = 1.5$$

यहां पर ऋणात्मक चिन्ह को छोड़ दिया गया है। क्योंकि ऋणात्मक चिन्ह केवल यह बताता है कि मांग एवं कीमत में ऋणात्मक सम्बन्ध है। मांग की लोच की चाप विधि को रेखाचित्र5.9 की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

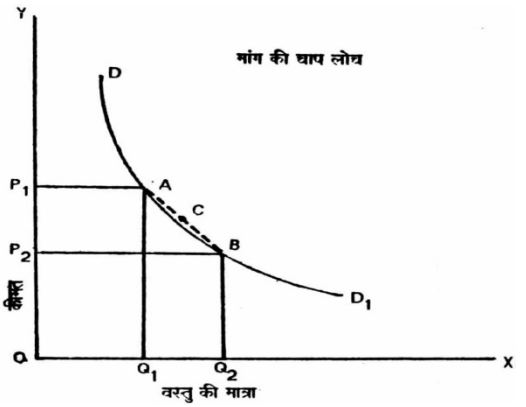

चित्र 5.9

रेखा चित्र 5.9 में DD_1 मांग वक्र है इसके बिन्दु A तथा B के मध्य चाप लोच ज्ञान करने के लिये हम चाप लोच के सूत्र का प्रयोंग करते है। चाप लोच वास्तव में AB के मध्य बिन्दु C पर मांग की लोच है। बिन्दु C एवं B यदि एक दूसरे के इतने समीप आ जाएं कि उनमें भेद करना सम्भव ही न रहे तो चाप लोच वस्तुतः बिन्दु लोच बन जाती है।

(4) व्यय विधि : मांग की लोच ज्ञात करने की एक और विधि व्यय विधि है। किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उस वस्तु पर किया जाने वाला व्यय भी परिवर्तित हो जाता है। वस्तु पर किये गये कुल व्यय के आधार पर मांग की लोच का अनुमान लगाया जा सकता है। हम यह ज्ञात कर सकते है कि किसी वस्तु की मांग की लोच इकाई के बराबर है, इकाई से अधिक है अथवा इकाई सें कम है। संक्षेप में हम इसे निम्न तालिका द्वारा प्रदर्शित कर सकते है। रेखाचित्र 5.10 में जब कुल व्यय स्थिर रहता है जब e=1 है जैसा कि B से C तक दिखाया गया है AB तक e>1 है एवं CD तक e<1 है |

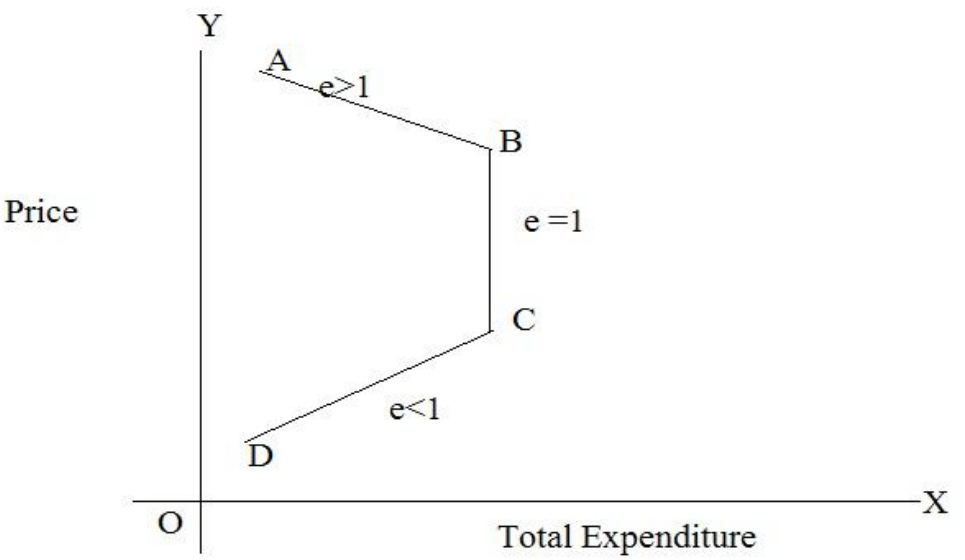

चित्र 5.10

तालिका 5.1 मांग की लोच : व्यय विधि

कुल व्यय स्थिति	कीमत में परिवर्तन	मांग की लोच
अपरिवर्तित	कीमत में वृद्धि/कमी	Ed = 1
वृद्धि	कीमत में कमी	Ed >1
कमी	कीमत में वृद्धि	Ed >1
वृद्धि	कीमत में वृद्धि	Ed <1
कमी	कीमत में कमी	Ed <1

5.5 मांग की लोच के निर्धारक तत्व :

किसी वस्तु की मांग की लोच कई बातों का प्रभाव पड़ता है। इनमें से कुछ प्रमुख निमलिखित है :

1. **स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि :** वस्तु की मांग की कीमत लोच स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता पर निर्भर होती है। यदि स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता अधिक व सुगम है तो ऐसी वस्तुओं की मांग लोचदार होगी। यदि स्थानापन वस्तुओं की कमी है अथवा उन्हें आसानी से प्राप्त नही किया जा सकता हो तो ऐसी वस्तुओं की मांग बेलोचदार होगी।
2. **पारिवारिक बजट मे वस्तु विशेष का स्थान :** यह संभव है कि किन्हीं दों वस्तुओं के अधिक स्थानापन्न उपलब्ध न हों परन्तु उनकी मांग की लोच अलग-अलग हो। यदि किसी वस्तु विशेष पर पारिवारिक बजट का बहुत ही छोटा भाग व्यय किया जाता हो तों ऐसी वस्तु की मांग की लोच बेलोंचदार होगी। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु पर पारिवारिक वजट का बड़ा भाग व्यय किया जाता हो तों उसकी मांग लोचदार होगी।
3. **वस्तु की प्रकृति :** किसी वस्तु की प्रकृति भी मांग की लोच का प्रमुख निर्धारक घटक है। सामान्यतः अनिवार्य वस्तुओं की मांग की कीमत लोच कम तथा विलासिता की मांग की लोच अधिक होती है। क्योंकि आवश्यक वस्तुओं के अभाव में जीवन में कठिनाइयाँ आती है। अत: इनका उपभोग कम नही किया जा सकता। परन्तु विलासिता वस्तुओं का उपभोग आसानी से स्थगित किया जा सकता है। अत: इन वस्तुओं की मांग लोचदार होती है।
4. **वस्तु की स्थायित्वता :** चिर-स्थायी वस्तुओं की मांग सामान्यतः बेलोचुदार होती है। परन्तु अस्थायी उपमोग वस्तुओं की मांग कीमत का अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि किसी वस्तु का उपभोग आसानी से भविष्य के लिये स्थगित किया जा सकता हो तो उसकी मांग लोचदार होगी।
5. **उपभोक्ताओ की रूचि एवं आदत :** यदि कोई वस्तु उपभोक्ता की आदत का अंग बन जाती है तो इसकी मांग बेलोचदार हो जाती है। नशीली वलुओं का सेवन करने वालों की मांग बेलोचदार

होती है क्योंकि उसका उपभोग व्यक्ति की आदत बन जाना है । इसी प्रकार यदि कोई वस्तु उपभोक्ता की रूचि के अनुरूप है तो उसकी मांग भी बेलोचदार होती है।

6. **कीमत परिवर्तनो के साथ समायोजन में समय :** किसी -किसी वस्तु की कीमत बदलने के बाद मांग को समायोजित होने में अधिक समय लगता हो तो उसका मांग लोचदार होती है। मान लीजिये एक वस्तु विशेष के कई उपयोग है कीमत में वृद्धि होने पर व्यक्ति उसका उपयोग केवल अति आवश्यक कार्यो में ही करेंगें एवं मांग पर तत्काल उसका असर पड़ेगा। इस प्रकार सर्वप्रथम कम महत्व के उपयोगी पर उपभोक्ता प्रतिबन्ध लगाकर मांग कम करेगा।

   उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु विशेष की मांग की कीमत लोच कई घटकों पर निर्भर होती है अत: कीमत परिवर्तन का मांग पर क्या प्रभाव होगा इसका सही पूर्वानुमान लगाना कठिन कार्य है।

बोध प्रश्न - 2

इकाई के अज में दिये गये उत्तरी से अपने उजरों का मिलान करें।

1. मांग की लोच ज्ञात करने की प्रमुख विधियों के मापे लिखिए :-
2. नमक व्यक्ति के उपभोग सूची की अनिवार्य वस्तु है । इसकी कीमत में वृद्धि होने पर मांग पर क्या प्रभाव होगा?
3. विलासिता की वस्तुओं की कीमतों में 'वृद्धि होने पर मांग पर क्या प्रभाव होगा?

5.6 मांग की लोच की अन्य मापे :

मांग की लोच की दो अन्य मापें निमलिखित है -

5.6.1 मांग की आय लोच - उपभोक्ता की आय में परिवर्तनों के कारण मांग की मात्रा में परिवर्तन होतें है। सामान्यत: जब उपभोक्ता की आय में वृद्धि होंती है तो वस्तु की मांग भी बढ़ती है। घटिया वस्तुओं पर यह नियम लागू नही होता अर्थात् घटिया वस्तुओं की मांग आय बढ़ने पर कम हो जाती है । इस प्रकार आय लोच में हम उपभोक्ता की आय के परिवर्तनों के प्रति मांग की प्रतिक्रिया की माप करतें है। सूत्र रूप में :-

$$Ei = \frac{\text{मांग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{उपभोक्ता की आय में आनुपातिक परिवर्तन}} \quad \text{अथवा}$$

$$Ei = \frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta i}{i} \quad \text{अथवा} \quad \frac{\Delta q}{\Delta i} \times \frac{i}{q}$$

जहां Δq = मांग में परिवर्तन, Δi आय में परिवर्तन

Δi = आय में परिवर्तन , i = प्रारम्भिक आय, q = प्रारम्भिक मांग

अधिकांश वस्तुओं की आय लोच धनात्मक होती है, अर्थात उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने पर मांग में वद्धि होंती है तथा इसके विपरीत उपभोक्ता की आय में कमी होने पर मांग में भी कमी हों जाती है। अगर आय लोच इकाई के बराबर है तों आय में 1 प्रतिशत वृद्धि वस्तु की मांग में 1 प्रतिशत वृद्धि उत्पन्न करेगी। उपभोक्ता अपनी आय का समान भाग वस्तु पर व्यय करेगा। यदि आय लोच इकाई से अधिक है तो आय वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु पर किया जाने वाला व्यय का भाग बढ़ जाएगा। इस प्रकार यदि आय लोच इकाई से कम है तो आय वृद्धि के परिणामस्वरूप उस वस्तु पर किये जाने वाले व्यय का भाग कम हो जाएगा। मांग की आय लोच ज्ञात करने के लियें हम निम्न लोच का सूत्र भी प्रयोग में ला सकते है -

$$= \frac{\Delta q}{(q_1 + q_2)/2} \div \frac{\Delta P}{(P_1 + q_2)/2} \text{ अथवा}$$

$$\frac{\Delta q}{\Delta i} \times \frac{(i_1 + i_2)}{(q1_1 + q_2)}$$

जहां i आय को व्यक्त करती है।

आय लोच के आधार पर हम वस्तुओं की प्रकृति को भी समझ सकते है। आवश्यक वस्तुओं की मांग की आय लोच इकाई से कम होंगी तथा विलासिता वस्तुओं की मांग की आय लोच इकाई से अधिक होती है। यदि मांग की आय लोच इकाई से कम हो तो उस वस्तु को हीन (inferior) वस्तु कहते है।

5.6.2 मांग की तिरछी लोच : वास्तविक जगत में वस्तुएं या तो स्थानापन्न होती है या पूरक। परिणामस्वरूप जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है तो उससे सम्बन्धित वस्तुओं की मांग भी प्रभावित होती है। इस प्रकार किसी अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन का वस्तु की मांग पर प्रभाव पड़ता है। मांग की तिरछी लोच में सम्बंधित वस्तुओं की कीमतों में हुए परिवर्तनों का वस्तु की मांग पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। मांग की तिरछी लोच हम' को निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है:

$$Exy = \frac{\Delta qx}{qi} \div \frac{\Delta Py}{Py}$$

जहाँ Δqx = x वस्तु की मांग में परिवर्तन

Qx = x वस्तु की प्रारम्भिक मांग

ΔPy = y वस्तु की किमत में परिवर्तन

Py = y वस्तु की प्रारम्भिक किमत

मांग की तिरछी लोच ज्ञात करने कें लिये चाप लोच का सूत्र निम्नांकित है-

$$Exy= \frac{\Delta q_x}{(q^x_1 + q^x_2)/2} \div \frac{\Delta P_y}{(P^y_1 = P^y_2)/2}$$

जहाँ q^x_1 = x वस्तु की प्रारम्भिक मांग

q^x_2 = x वस्तु की नई मांग

q^y_1 = y वस्तु की प्रारम्भिक कीमत

q^y_2 = y वस्तु की नई कीमत

मांग की कीमत लोच की भांति मांग की आड़ी अथवा तिरछी लोच सदैव ऋणात्मक नही होती। यह धनात्मक अथवा ऋणात्मक हों सकती है।

(1) धनात्मक तिरछी लोच: धनात्मक तिरछी लोच का अभिप्राय यह है कि वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर वस्तु की मांग बढ़ जाती है। जैसे चाय की कीमतें बढ जायें तो उपभोक्ता उसके स्थान पर अधिक कॉफी की मांग करेंगे। क्योंकि चाय एवं कॉफी स्थानापन वस्तुएं है। इसके विपरीत स्थानापन वस्तुओं की कीमत गिरने पर दूसरी वस्तुओं की मांग गिर जाएगी।

(2) ऋणात्मक तिरछी लोच : ऋणात्मक तिरछी लोच का अभिप्राय वस्तु की कीमत तथा वस्तु की मात्रा में विपरीत सम्बन्ध होता है। अर्थात वस्तु की कीमतों में वृद्धि, वस्तु की मांग में कमी कर देती है एवं वस्तु की कीमतों में कमी, वस्तु की मांग बढ़ा देती है। ऋणात्मक तिरछी लोच पूरक वस्तुओं के संदर्भ में पाई जाती है। जैसे डबलरोटी एवं मक्खन की मांग की तिरछी लोच ऋणात्मकहेगी।

इस प्रकार यदि तिरछी लोच धनात्मक है तो दो वस्तुओं स्थानापन्न होगी। यदि तिरछी लोच ऋणात्मक है तो दो वस्तुएं पूरक होंगी। यदि तिरछी लोच शन्य है तो दो वस्तुओं के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं है।

5.7 मांग की लोच का महत्व

मांग की लोच की धारणा का अर्थशास्त्र में अत्यन्त महत्व है। इसकी व्याख्या निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर की जा सकती है।

(1) मूल्य निर्धारण मे महत्व : प्रत्येक उत्पादनकर्ता को वस्तु की कीमत में वृद्धि करने से पूर्व यह अवश्य जान लेना चाहिए कि उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग लोचदार है अथवा बेलोचदार। कोई भी उत्पादक मूल्य वृद्धि नही करना चाहेगा, यदि मूल्य वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु की मांग में कमी होने की संभावना अधिक हो। एकाधिकारी के लिये मांग की लोच का ज्ञान और भी अधिक महत्व रखता है। क्योंकि एकाधिकरी अपनी वस्तु की कीमत को अपनी स्वेच्छा से बढ़ा सकता है। परन्तु बाजार मैं मांग पर उसका नियंत्रण नहीं है। अत. उसे अपनी वस्तु के नृत्य में वृद्धि उसी दशा में करनी चाहिए जवकि उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग बेलोचदार हो। इससे उसके लाभ में वृद्धि होगीं। मांग की लोच का

ज्ञान एकाधिकारी को मूल्य विभेद की नीति लागु करनें में भी मदद करता है। लोचदार मांग वाले बाजार में उसे वस्तु का मूल्य नीचा एवं बेलोचदार मांग वाले वाजार में वधु का मूल्य ऊएचा रखना चाहिए।

(2) उत्पादन साधनो का पारितोषिक निर्धारण- उत्पत्ति कें जिन साधनों की मांग बेलोचदार होती है उन साधनों को उत्पादक ऊँचे पारिश्रमिक पर भी प्राप्त करेगा । इसके विपरीत जिन साधनों की मांग लोचदार होंती हैँ उन्हें कम पारिश्रमिक दिया जाएगा।

(3) सरकार के लिए महत्त्व मांग की लोच की जानकारी का किसी देश की सरकार के लिये विशेष महत्व है। सरकार अपने खर्चो की पूर्ति के लिये करारोपण द्वारा आय प्राप्त करती है। करारोपण उन्हीं वस्तुओं पर किया जाना चाहिए जिनकी मांग करारोपण के बाद अधिक कम न हो । अर्थात् कर उन्हीं वस्तुओं पर लगाये जानें चाहिए जिनकी मांग वेलोचदार हों। यदि लोचदार मांग वाली वस्तुओं पर कर लगाए गये तो उनकी मांग गिर जाएगी व सरकार को पर्याप्त आय नही होगी। इसके साथ ही कौन से अप्रत्यक्ष कर उपभोक्ताओं पर भार बढ़ायेगे एवं कौन से कर उपभोक्ताओं पर हस्तान्तरित नही किए जा सकेगें। यह भी मांग की लोच पर निर्भर होता है। यदि वस्तु की मांग बेलोचदार है तो कर की अधिकांश राशि उपभोक्ताओं पर हस्तान्तरित कर दी जाएगी। इसके विपरीत जिस वस्तु कर लगाया गया है। यदि उसकी मांग लोचदार है तो उत्पादक कर की अधिक राशि उपभोक्ताओं पर नही थोप पाऐंगे।

(4) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मे महत्व : दो देशों के बीच व्यापार की शर्ते एक दूसरे कें निर्यातों के लिये मांग की सापेक्षिक लोच पर निर्भर करेगी। यदि निर्यात की जाने वाली वस्तु की मांग बेलोचदार है तो निर्यातक देश वस्तु के ऊँचे मूल्य प्राप्त कर सकता है। परन्तु यदि निर्यात की जाने वाली वस्तु की मांग लोचदार है तो मूल्य वृद्धि सम्भव नही होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यापार की शर्ते मांग की लोच पर निर्भर करती है।

5.8 सारांश

मांग की लोच का सिद्धान्त अर्थशास्त्र में मार्शल की सर्वश्रेष्ठ देन है। मांग की लोच मांग फलन के स्वतंत्र चरों में होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मांग की मात्रा में परिवर्तन की माप है। मांग की लोच की दो चरम सीमाएं है प्रथम, पूर्णतया लोचदार मांग एवं द्वितीय, पूर्णतया बेलोचदार मांग। इन दोनों चरम सीमाओं के बीच में मांग की लोच की तीन प्रमुख श्रेणियां है। प्रथम बेलोचदार मांग, द्रिनाय लोचदार मांग एवं तृतीय इकाई के बराबर लोचदार मांग। मांग की लोच ज्ञात करने की प्रमुख विधियां निमलिखित हैं (1) प्रतिशत विधि, (2) बिन्दुविधि (3) चाप विधि (4) व्यय विधि।

मांग की लोच से हमारा अभिप्राय कीमत लोच से है यह कई तत्वों पर निर्भर करती है। जिसमें स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि वस्तु का पारिवारिक बजट में स्थान, वस्तु की प्रकृति, उपभोक्ताओं की रूचि, कीमत परिवर्तनो के याद समायोजन में लगने वाला समय आदि प्रमुख है। मांग की कीमत लोच के अतिरक्त दो अन्य मापे भी है। प्रथम, मांग की आय लोच एवं द्वितीय मांग की तिरछी लोग। परन्तु इन सभी में मांग की कीमत लोच जिसे हम केवल मांग की लोच के नाम से भी सम्बोधित करते है सर्वाधिक चर्चित है। इस धारणा का सैद्धान्तिक ही नही बल्कि व्यवहारिक महत्व भी है।

5.9 शब्दावली

मांग की कीमत लोच (Ed or price Elasticity of Demand) यह कीमत में आनुपातिक परिवर्तनो के परिणामस्वरूप मांग में हुए आनुपातिक परिवर्तनों की माप है।

कुल आगम (TR or Total Revenue) वस्तु को वेबने से फर्म को प्राप्त होने वाली कुल आय जिसे कीमत X मात्रा (pxq) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

पूर्णतया लोचदार मांग (Perfectly Inelastic Demand) मूल्य में मामूली परिवर्तन होने पर मांग मूल्य वृद्धि की दशा में शून्य और मूल्य में मामृली कमी होने पर अनन्त हो जाती हैं।

पूर्णतया बेलोचदार मांग (Perefectly Inelastic Demand) मूल्य में हुये आनुपातिक परिवर्तनों मांग पर कोई प्रभाव नही पड़ता अर्थात मांग स्थिर रहती है।

मांग की आय लोच (Income Elasticity of Demand) आय में हुये आनुपातिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मांग में हुये आनुपातिक परिवर्तनों की माप है।

मांग की तिरछी लोच (Cross Elasticity of Demand) किसी अन्य वस्तु Y की कीमत में हुये आनुपातिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप (X) वस्तु की मांग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन की माप है।

आवश्यक वस्तुए (Necessaries) सामान्यत जिन वस्तुओं की मांग आय लोच इकाई से कम होती है उन्हें आवश्यक वस्तुओं की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

विलासिता वस्तुएं (Luxuries) सामान्यत: जिन वस्तुओं की मांग आय लोच इकाई से अधिक होती है। उन्हें विलासिता वस्तुओं की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तके :

Gould and Ferguson, Micro Economic Theory 5th Ed. 1988

Ruffin, Roy and Gregory Paul, Principles of Micro Economics, 3rd Ed. 1988. Scolt Foresman Lomdon.

दुबे, एस पी एवं सिन्हा वीसी, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त 19th ed. 1989 NPH, Delhi.

Hardwick, Philip; Khan, Bhahadur; Langmead john;An Introduction to Modern Economics, 2nd ed. 1986 ELBS; Longman

5.11 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. मांग की लोच की पांच प्रमुख श्रेणियां है

(1) पूर्णतया वेलोचदार मांग (2) बेलोचदार मांग (3) पूर्णतया लोचदार मांग (4) लोचदार मांग (5) इकाई के बराबर लोचदार मांग

2. कुल आगम में कमी आ जाएगी
3. कुल आगम में वृद्धि होंगी।

बोध प्रश्न - 2

2. मांग की लोच ज्ञात करने की चार प्रमुख विधियां है

(1) प्रतिशत विधि (2) बिन्दु विधि (3) चाप विधि (4) व्यय विधि

इकाई-6

प्रगटित अधिमान सिद्धान्त एवं अधिमान संरचना
(Revealed Preference theory and Preference Structure)

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 अधिमान से सम्बन्धित आधारभूत अवधारणाएं

6.4 प्रगट अधिमान सिद्धान्त से मांग के आधारभूत नियम की व्युत्पत्ति

6.5 प्रगट अधिमान सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन

6.5.1 प्रगट अधिमान सिद्धान्त के गुण

6.5.2 प्रगट अधिमान सिद्धान्त के दोष

6.6 प्रगट अधिमान सिद्धान्त से उदासीनता वक्र की व्युत्पत्ति

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य छात्रों का मांग की वैज्ञानिक व्याख्या से परिचित कराना है।

इस इकाई के अध्ययन से छात्र

1. उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण के एक नवीन व व्यवहारिक उपागम से परिचित हो सकेंगे।
2. उपभोक्ता के अधिमान से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं से अवगत हो सकेंगे।
3. व्यवहारवादी उपागम से मांग के नियम की व्युत्पत्ति कर सकेंगे।
4. वास्तविक मान्यताओं के साथ उदासीनता वक्र की व्युत्पत्ति करना सीख सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

उपभोक्ता व्यवहार के गणनावाचक व क्रमवाचक विश्लेषण में आत्मनिरीक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया था। ये दोनों विश्लेषण विभिन्न कीमत आय परिस्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोक्ता की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया पर आधारित थे। परन्तु सेम्युअल्सन ने एक नवीन दृष्टिकोण अपनाते हुए व्यवहारवादी पद्धति का प्रयोग करके मांग का विश्लेषण हेतु प्रगटित अधिमान सिद्धान्त प्रस्तुत किया। व्यवहारवादी विश्लेषण का यह प्रगटित अधिमान सिद्धान्त विभिन्न कीमत आय परिस्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप बाजार में उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार पर आधारित है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की काल्पनिक मान्यताओं का परित्याग करते हुए प्रो. सेम्युअल्सन ने वास्तविक मान्यताओं के आधार पर मांग की एक वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है।

6.3 अधिमान से सम्बन्धित आधारभूत अवधारणाएं

1. **अधिमान :** प्रो. सेम्युअल्सन के अनुसार, "चयन अधिमान को प्रकट करता है।'' उपभोक्ता द्वारा अपनी सीमित आय से खरीदे जा सकने वाले विभिन्न संयोगों में से किसी एक का चयन करना ही अधिमान को प्रगट करना होता है। अधिमान प्रगट करने की प्रक्रिया को रेखाचित्र-6.1 से भली-भाँति समझा जा सकता है।

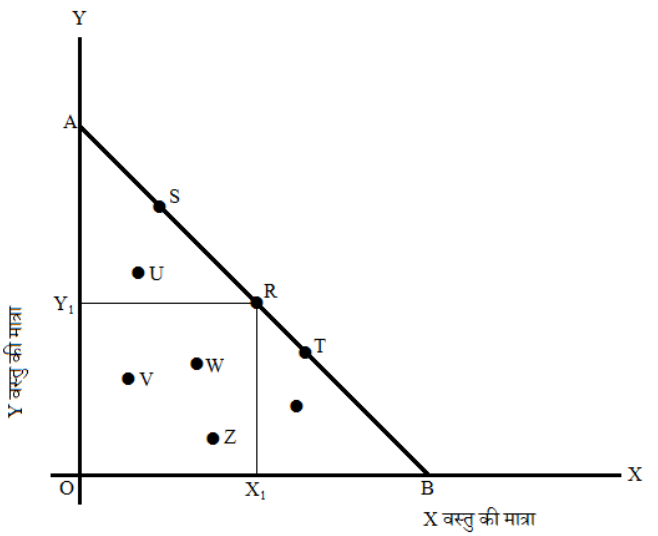

रेखाचित्र-6.1

रेखाचित्र-6.1 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। उपभोक्ता की बजट रेखा को AB रेखा से दर्शाया गया है। R, S, T,U, V, W एवं Z दोनो वस्तुओं X व Y के वे संयोग है, जिन्हे वह अपनी सीमित आय से खरीद सकता है। इन सभी संयोगों में किसी भी संयोग का चयन करना उसके अधिमान को प्रगट करेगा। मान लो कि उपभोक्ता ने इन सभी संयोगो में से R संयोग का चयन करता है। उपभोक्ता द्वारा R संयोग का चयन उसके अधिमान को प्रगट करता है।

2. **सबल क्रमबद्धता :** उपभोक्ता द्वारा खरीदे जा सकने वाले विभिन्न संयोगों में से किस एक संयोग को वरीयता प्रदान करना सबल क्रमबद्धता का सूचक है। सबल क्रमबद्धता की स्थिति में उपभोक्ता उपलब्ध संयोगों के मध्य उदासीन नहीं होता, बल्कि वह उन सभी संयोगों को वरीयता क्रम प्रदान करता है। उपरोक्त रेखाचित्र 6.1 से इसे आसानी से समझा जा सकता है। R संयोग के चयन करते हुए उपभोक्ता ने इस संयोग को अन्य सभी संयोगों की तुलना में वरीयता दी है, लेकिन वह उपलब्ध अन्य संयोगो के मध्य उदासीन नही है।
3. **संगत चयन :** उपभोक्ता द्वारा किन्ही दो अवलोकनों में परस्पर विरोधी चयन न करना ही संगत चयन है। उदाहरणार्थ, यदि उपभोक्ता ने विषेष कीमत-आय स्थिति में, जब R व S संयोग उपलब्ध है, R का चयन कर लिया तो वह अन्य किसी भी कीमत-आय स्थिति में में, जब R व S संयोग उपलब्ध हों, तो वह R का ही चयन करे, तो इसे संगत चयन कहा जाएगा।
4. **असंगत चयन :** उपभोक्ता द्वारा किन्ही दो अवलोकनों में परस्पर विरोधी चयन करना असंगत चयन है। उदाहरणार्थ, उपभोक्ता ने विषेष कीमत-आय स्थिति में, जब R व S संयोग उपलब्ध है, R का चयन कर लिया, मान लो वह अन्य किसी कीमत-आय स्थिति में में, जब R व S संयोग उपलब्ध हों, तो वह S का चयन करे, तो यह असंगत चयन होगा।
5. **सकर्मकता :** यदि उपभोक्ता द्वारा एक विषेष कीमत-आय स्थिति में, जब R व S संयोग उपलब्ध है, R का चयन किया जाता है, व एक अन्य कीमत-आय स्थिति में में, जब S व ज T संयोग उपलब्ध हों, तो वह S का चयन करता है, तो एक ऐसी कीमत-आय स्थिति जिसमें R व T संयोग उपलब्ध हों, तो यदि वह R का चयन करे, तो इसे सकर्मक चयन कहा जाएगा।

6.4 प्रगट अधिमान सिद्धान्त से मांग के आधारभूत नियम की व्युत्पत्ति:

मांग के आधारभूत नियम की व्युत्पत्ति हेतु निम्नलिखित मान्यताएँ ली गयी हैं।

1. चयन अधिमान को प्रगट करता है।
2. उपभोक्ता के अधिमान संगत हैं।
3. उपभोक्ता के अधिमान सकर्मक हैं।
4. उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा की तुलना में अधिक मात्रा वाले संयोग के प्रति अपना अधिमान प्रगट करता है।

मांग का नियम: प्रो. मार्शल के अनुसार, मांग का नियम से तात्पर्य वस्तु की कीमत व वस्तु की मांग मात्रा के मध्य विपरीत सम्बन्ध से है। मार्शल ने मांग के नियम की व्याख्या में आय लोच के सम्बन्ध में कोई मान्यता नहीं ली थी, परन्तु प्रो. सेम्युअल्सन ने मांग की धनात्मक आय लोच की मान्यता लेते हुए मांग के नियम की व्याख्या की है, जिसे उन्होने उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत नियम कहा है। प्रो. सेम्युअल्सन के अनुसार, "किसी वस्तु (साधारण या जटिल), जिसकी मांग मौद्रिक आय के बढ़ने पर सदैव बढ़ती है, की मांग मात्रा अवश्य कम होगी, जब केवल उसकी कीमत बढ़े।'' प्रो. सेम्युअलसन के उपभोग सिद्धान्त के आधारभूत नियम में मांग की आय लोच का धनत्मक होना आवश्यक है। वस्तु की

कीमत बढ़ने पर उपभोग सिद्धान्त के आधारभूत नियम को रेखाचित्र-1.2 से आसानी से समझा जा सकता है।

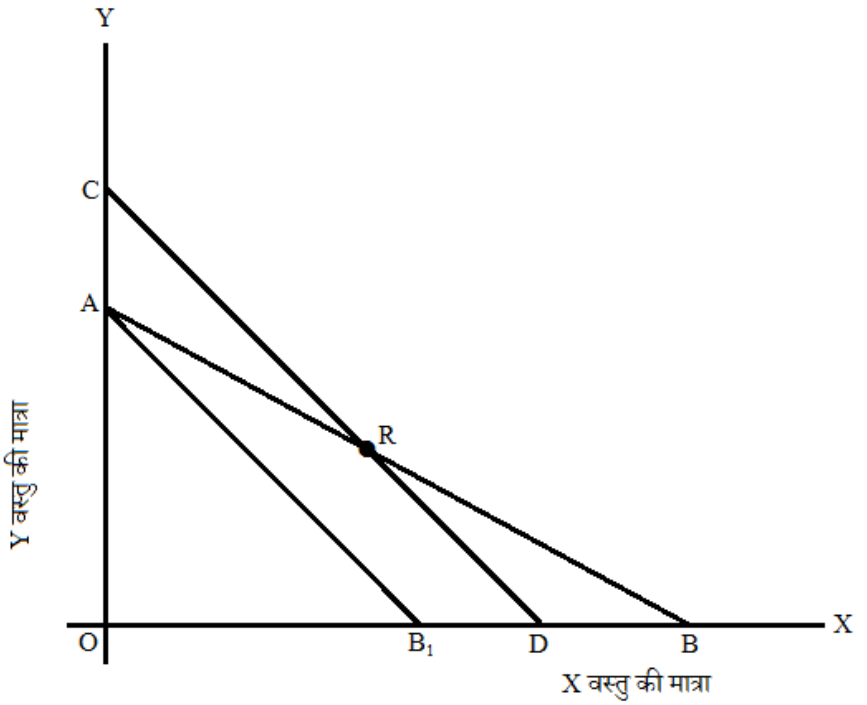

रेखाचित्र-6.2

रेखाचित्र-6.2 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा Y अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। एक विशेष कीमत-आय स्थिति में बजट रेखा को AB रेखा से दर्शाया गया है। मान लो कि उपभोक्ता बजट रेखा AB पर स्थित बिन्दु R के प्रति अपना अधिमान प्रगट करता है। वस्तु की कीमत बढ़ने पर बजट रेखा विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है, इस नवीन कीमत-आय स्थिति में बिन्दु R उपलब्ध नहीं है, क्योंकि R बिन्दु वाले संयोग को उपभोक्ता के पास पर्याप्त मात्रा में आय नही है, अन्य शब्दों में R बिन्दु वाला संयोग उपभोक्ता की बजट सीमा से बाहर है। यदि उपभोक्ता को लागत अन्तर के समान मौद्रिक आय अर्थात् AC के समान आय दे दी जाए जो नई बजट रेखा CD हो जाती है। अब उपभोक्ता CD बजट रेखा के CR भाग पर स्थित किसी भी संयोग का चयन कर सकता है, जो कि संगत चयन होगा। यदि उपभोक्ता CD बजट रेखा के RD भाग पर स्थित R संयोग के अलावा किसी संयोग का चयन करता है, तो उसका चयन संगत नहीं होगा, क्योंकि AB बजट रेखा वाली स्थिति में RD रेखा वाले सभी संयोग उपलब्ध थे, परन्तु उपभोक्ता ने उनका चयन न करते हुए R बिन्दु वाले संयोग का चयन किया था, अर्थात् RD रेखा वाले अन्य सभी संयोगों को निम्न क्रम पर रखा था। अतः संगत चयन हेतु वह नवीन कीमत-आय स्थिति में CD बजट रेखा के CR भाग पर स्थित किसी भी संयोग का चयन करेगा। CD बजट रेखा के CR भाग पर स्थित R के अलावा कोई भी संयोग पर R संयोग की अपेक्षा X वस्तु की कम मात्रा को प्रदर्शित करते हैं। अतः स्पष्ट है कि वस्तु की कीमत बढ़ने पर उपभोक्ता या तो वस्तु की पूर्ववर्ती मात्रा को

ही खरीदता है या पहले की तुलना मे कम मात्रा खरीदता है। अब यदि उपभोक्ता से लागत अन्तर के समान जो मौद्रिक आय वापस ले जाए तो वह निश्चित रूप से R संयोग की तुलना में X वस्तु की कम मात्रा वाले संयोग का ही चयन करेगा। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि वस्तु की मांग की आय लोच धनात्मक है तो वस्तु की कीमत बढ़ने पर उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा खरीदेगा।

वस्तु की कीमत कम होने की स्थिति में भी उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत नियम सही ठहरता है, जिसे रेखाचित्र-6.3 से आसानी से समझा जा सकता है।

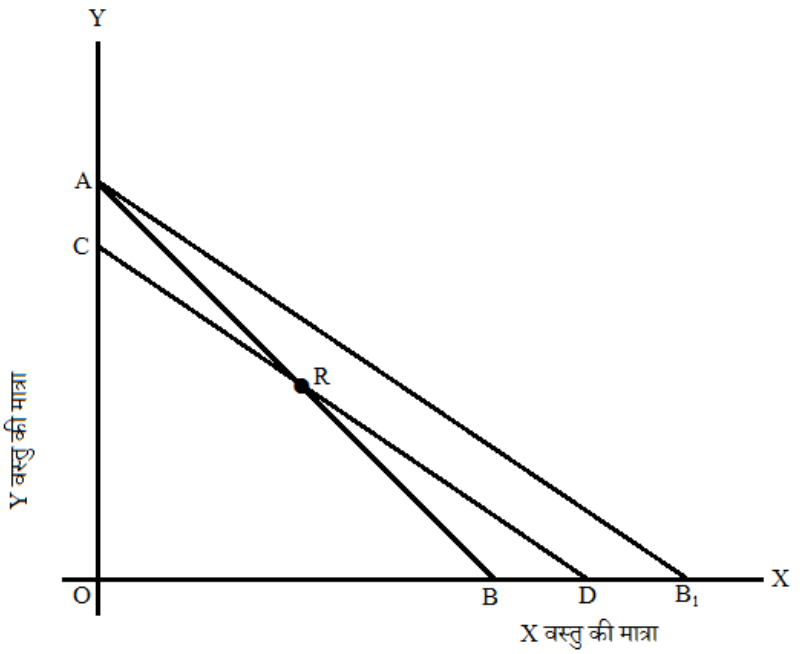

रेखाचित्र-6.3

रेखाचित्र-6.3 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। एक विशेष कीमत-आय स्थिति में बजट रेखा को AB रेखा से दर्शाया गया है। मान लो कि उपभोक्ता बजट रेखा AB पर स्थित बिन्दु R के प्रति अपना अधिमान प्रगट करता है। वस्तु की कीमत कम होने पर बजट रेखा आगे की ओर विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है। चुंकि वस्तु की कीमत कम होने के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ गयी है, अतः वस्तु की कीमत में कमी का प्रभाव जानने हेतु उपभोक्ता को पूर्ववर्ती वास्तविक आय स्तर पर रखने के लिए उससे लागत अन्तर के समान मौद्रिक आय अर्थात् AC के समान आय ले ली जाए जो नई बजट रेखा CD हो जाती है। अब उपभोक्ता CD बजट रेखा के RD भाग पर स्थित किसी भी संयोग का चयन कर सकता है, जो कि संगत चयन होगा। यदि उपभोक्ता CD बजट रेखा के CR भाग पर स्थित R संयोग के अलावा किसी संयोग का चयन करता है, तो उसका चयन संगत नहीं होगा, क्योंकि AB बजट रेखा वाली स्थिति में CR रेखा वाले सभी संयोग उपलब्ध थे, परन्तु उपभोक्ता ने उनका चयन न करते हुए R बिन्दु वाले संयोग का चयन किया था, अर्थात् CR रेखा वाले अन्य सभी संयोगों को निम्न क्रम पर रखा था। अतः संगत चयन हेतु वह नवीन कीमत-आय स्थिति

में CD बजट रेखा के CR भाग पर स्थित किसी भी संयोग का चयन करेगा। CD बजट रेखा के RD भाग पर स्थित R के अलावा कोई भी संयोग पर R संयोग की अपेक्षा X वस्तु की अधिक मात्रा को प्रदर्शित करते हैं। अतः स्पष्ट है कि वस्तु की कीमत बढ़ने पर उपभोक्ता या तो वस्तु की पूर्ववर्ती मात्रा को ही खरीदता है या पहले की तुलना मे अधिक मात्रा खरीदता है। अब यदि उपभोक्ता से लागत अन्तर के समान जो मौद्रिक आय वापस ले ली गयी थी, उसे वापस की दिया जाए तो वह निश्चित रूप से R संयोग की तुलना में X वस्तु की अधिक मात्रा वाले संयोग का ही चयन करेगा। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि वस्तु की मांग की आय लोच धनात्मक है तो वस्तु की कीमत कम होने पर उपभोक्ता वस्तु की अधिक मात्रा खरीदेगा।

बोध प्रश्न:

1. अधिमान को परिभाषित कीजिए।
2. संगत चयन किसे कहते हैं? उदाहरण सहित समझाइए।
3. सकर्मक चयन किसे कहते हैं? उदाहरण सहित समझाइए।
4. प्रगट अधिमान सिद्धान्त की सहायता से उपभोग सिद्धान्त के आधारभूत नियम की व्युत्पत्ति कीजिए।

6.5 प्रगट अधिमान सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन

प्रगट अधिमान सिद्धान्त उपयोगिता विश्लेषण के गणनावाचक व क्रमवाचक उपागमों की अवास्तविक मान्यताओं का परित्याग करते हुए व्यवहारिक मान्यताओं के साथ उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण करता है। यह सिद्धान्त वास्तव में पूर्ववर्ती विश्लेषण पद्धतियों पर एक सुधार है। फिर भी कुछ कमियों के कारण कुछ अर्थषास्त्रियों ने इसकी आलोचना की है। प्रगट अधिमान सिद्धान्त के गुण व दोष निम्नलिखित हैं।

6.5.1 प्रगट अधिमान सिद्धान्त के गुण:

1. प्रगट अधिमान सिद्धान्त मार्शल व हिक्स के विश्लेषण की भाँति आत्मनिरीक्षण पद्धति पर आधारित न होकर उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार पर आधारित है। इस सिद्धान्त में उपयोगिता विश्लेषण की आत्मनिरीक्षण पद्धति की मान्यताओं का परित्याग करते हुए मांग के नियम की आधुनिक व्याख्या प्रस्तुत की है।

2. प्रो. मार्शल व प्रो. हिक्स का उपयोगिता विश्लेषण उपभोक्ता की विवेकशीलता की मान्यता पर आधारित थे। उपभोक्ता की विवेकशीलता से तात्पर्य है कि उपभोक्ता वस्तुओं का उपभोग इस प्रकार से करता है कि उनसे प्राप्त होने वाली उपयोगिता अधिकतम हो जाए, परन्तु प्रत्येक परिस्थिति में ऐसा होना सम्भव नही होता। प्रो. सेम्युअल्सन ने उपयोगिता अधिकतमीकरण की मान्यता का त्याग करते हुए अपने सिद्धान्त में एक नवीन मान्यता "चयन की संगतता'' ली है, जो अधिक वास्तविक व उपयोगिता अधिकतमीकरण की मान्यता की तुलना में कम बाध्यकारी है।

3. उदासीनता वक्र विश्लेषण उदासीनता वक्र की सततता की मान्यता पर आधारित था। एक सतत् उदासीनता वक्र पर वस्तुओं के अनेक हास्यास्पद संयोग हो सकते हैं या कुछ ऐसे संयोग भी हो सकते हैं जो वास्तव में उपलब्ध ही न हों। प्रगट अधिमान सिद्धान्त में इस तरह की कोई मान्यता नहीं ली गई है। हालांकि बजट रेखा सतत् होती है, पर यह सिद्धान्त बजट रेखा की सततता पर आधारित नहीं है, वरन् उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार से सम्बन्धित अवलोकनों पर आधारित है।

6.5.2 प्रगट अधिमान सिद्धान्त के दोष:

1. सबल क्रमबद्धता की मान्यता पर आधारित यह सिद्धान्त वस्तुओं के विभिन्न संयोगो के मध्य उपभोक्ता की उदासीनता की अवहेलना करता है। व्यवहार में भी कुछ ऐसे संयोग अवलोकित होते हैं, जिनके मध्य उपभोक्ता उदासीन होता है। प्रो. आर्मस्ट्रांग के अनुसार उपभोक्ता द्वारा चयन किए गए प्रत्येक संयोग के आसपास अनेक ऐसे संयोग होते हैं, जिनके मध्य उपभोक्ता उदासीन होते है। प्रो. आर्मस्ट्रांग के विचार को रेखाचित्र-6.4 से समझा जा सकता है।

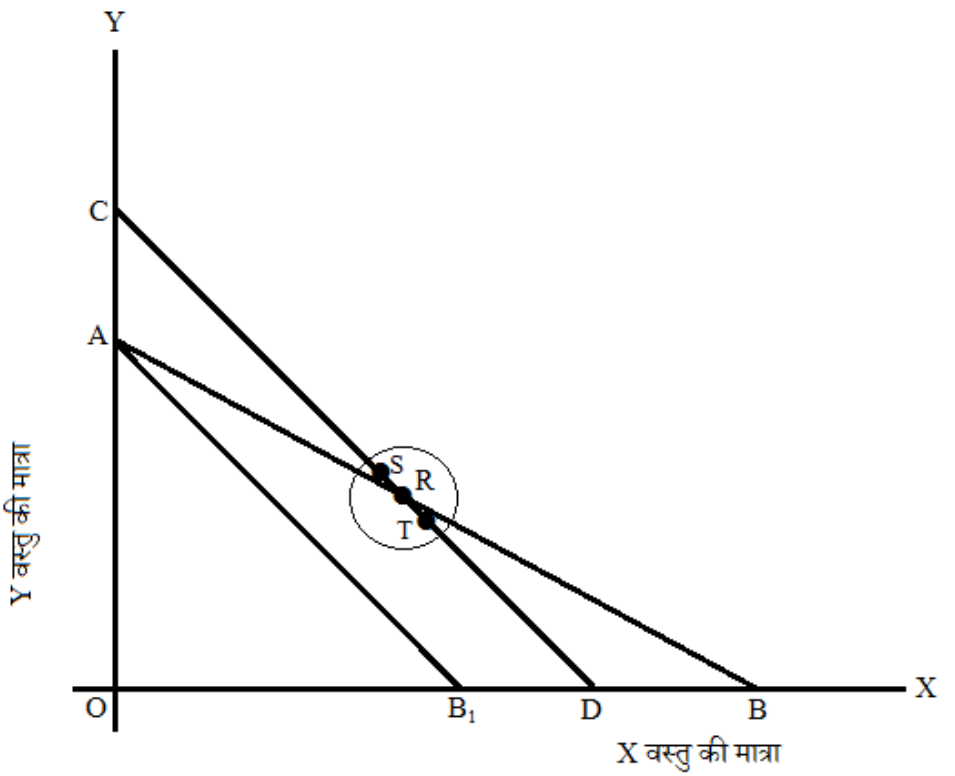

रेखाचित्र-6.4

रेखाचित्र-6.4 में में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। उपभोक्ता की बजट रेखा को AB रेखा से दर्शाया गया है। मान लो कि उपभोक्ता ने AB बजट रेखा पर उपलब्ध R संयोग का चयन किया। प्रो. आर्मस्ट्रांग के अनुसार R बिन्दु के आसपास स्थित S व T बिनदुओं के प्रति उपभोक्ता उदासीन है, जिसे रेखाचित्र में वृत क्षंत्र में

दर्शाया गया है। वस्तु X की कीमत कम होने पर बजट रेखा विवर्तित होकर AB_1 हो जाती है। वस्तु X की कीमत कम होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय कम हो गयी है। अब उपभोक्ता को लागत अन्तर के समान मौद्रिक आय देने पर (ताकि उपभोक्ता पूर्ववर्ती संयोग को खरीद सकने की स्थिति में हो) बजट रेखा CD हो जाती है। इस नवीन कीमत-आय स्थिति में यदि उपभोक्ता T बिन्दु का चयन करता है, जो वह X वस्तु की पहले की तुलना में अधिक मात्रा का क्रय करेगा, जो कि मांग के नियम के विपरीत है।

2. यह सिद्धान्त मांग की धनात्मक आय लोच की मान्यता पर आधारित है। इस मान्यता के कारण प्रो. सेम्युअल्सन गिफिन विरोधाभास की व्याख्या नही कर पाए। जबकि उपयोगिता विश्लेषण का क्रमवाचक दृष्टिकोण में गिफिन विरोधाभास की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। प्रो. सेम्युअलसन वास्तविक जीवन में गिफिन वस्तुओं की उपलब्धता को नकारते है। परन्तु सिद्धान्त रूप में गिफिन विरोधाभास को नकारा नहीं जा सकता।

3. प्रो. सेम्युअल्सन ने अपने सिद्धान्त में विभिन्न संयोगों के मध्य उपभोक्ता की उदासीनता की सम्भावना को नकारते हैं, जबकि व्यवहार में वस्तुओं के ऐसे अनेक संयोग हो सकते हैं, जिनके चयन में उपभोक्ता उदासीन होता है।

4. इस सिद्धान्त में वस्तुओं के प्रतिस्थापन की सम्भावना को शामिल नही किया गया है। जबकि व्यवहार में अनेक बार उपभोक्ता एक वस्तु प्राप्त करने के लिए दूसरी वस्तु का त्याग करने को तत्पर रहता है। समस्त कल्याणवादी अर्थशास्त्र प्रतिस्थापन की सम्भावना पर ही आधारित है। अगर व्यवहार में प्रतिस्थपन्न की सम्भावना नही हो तो कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अस्तित्व ही मिट जाएगा।

5. अर्थषास्त्रियों ने सिद्धान्त की इस मान्यता की भी आलोचना की है कि "चयन से अधिमान प्रगट होता है"। जब उपभोक्ता चयन प्रक्रिया में उपभोक्ता खेल सिद्धान्त जैसी व्यूह रचना अपनाता है, तब चयन से अधिमान प्रगट नहीं होता।

6.6 प्रगट अधिमान सिद्धान्त से उदासीनता वक्र की व्युत्पत्ति

प्रो. हिक्स ने उदासीनता वक्र की व्युत्पत्ति हेतु यह मान्यता ली थी कि उपभोक्ता दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को वरीयता क्रम प्रदान कर सकता है। यह एक कठोर मान्यता है, क्योंकि उपभोक्ता को दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के प्रति अपने अधिमानों का ज्ञान हो ही, यह सदैव आवश्यक नही है। प्रो. सेम्युअल्सन ने हिक्स के विश्लेषण की मान्यताओं से सरल मान्यताएँ लेकर उदासीनता वक्रों की व्युत्पत्ति की है। उदासीनता वक्रों की व्युत्पत्ति हेतु प्रगट अधिमान सिद्धान्त में निम्न मान्यताएँ ली जाती हैं।

1. चयन अधिमान को प्रगट करता है।
2. उपभोक्ता के अधिमान संगत हैं।
3. उपभोक्ता के अधिमान सकर्मक हैं।

4. उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा की तुलना में अधिक मात्रा वाले संयोग के प्रति अपना अधिमान प्रगट करता है।

उपरोक्त मान्यताओं के साथ उदासीनता वक्र की व्युत्पत्ति को रेखाचित्र-6.5 की सहायता से समझा जा सकता है।

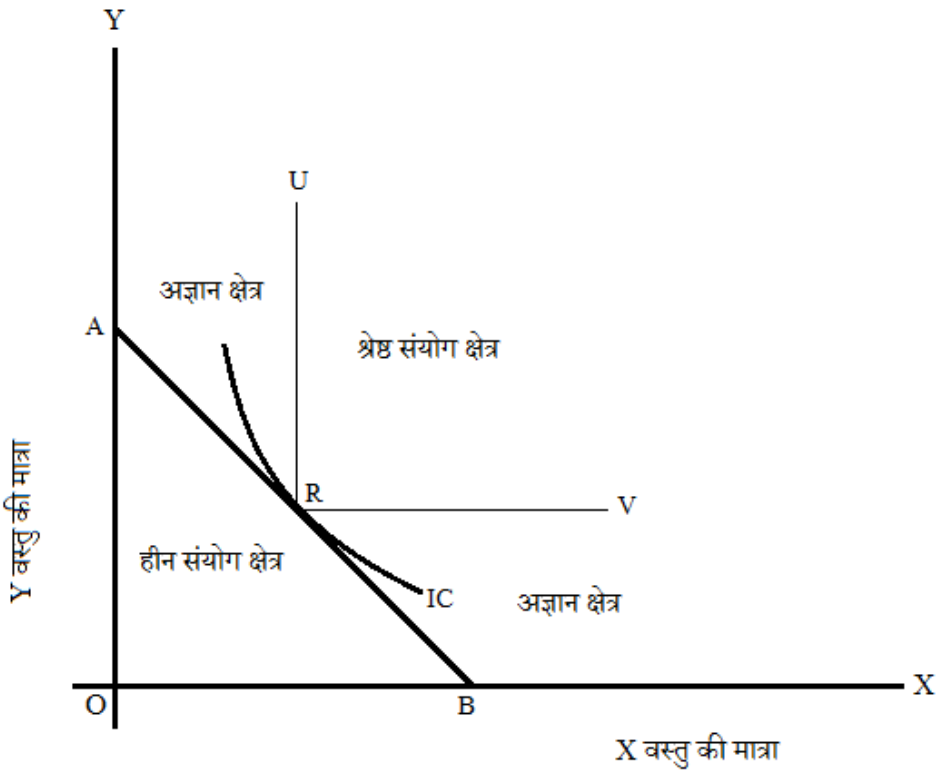

रेखाचित्र-6.5

रेखाचित्र-6.5 में में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y वस्तु की मात्रा को लिया गया है। उपभोक्ता की बजट रेखा को AB रेखा से दर्शाया गया है। मान लो कि उपभोक्ता AB बजट रेखा पर उपलब्ध R संयोग का चयन करता है, अर्थात् R संयोग के प्रति अपना अधिमान प्रगट करता है। इसका तात्पर्य यह कि उपभोक्ता ΔOAB के अन्य सभी संयोगों को R संयोग की तुलना में हीन मानता है, जिन्हे वह दी हुई कीमत-आय परिस्थिति में खरीद सकता था। चुंकि उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा की तुलना में अधिक मात्रा को अधिक वरीयता देता है, इसलिए URV क्षेत्र में स्थित संयोगों को वह अधिक वरीयता प्रदान करेगा। URV क्षेत्र को रेखाचित्र में श्रेष्ठ संयोग क्षेत्र के रूप में दर्शाया गया है। बजट रेखा AB व URV के मध्य श्रेष्ठ संयोग क्षेत्र व अज्ञान का क्षेत्र है। उदासीनता वक्र की व्युत्पत्ति हेतु अज्ञानता के क्षेत्र को कम करना होता है। वस्तु की कीमत में परिवर्तन करके उपभोक्ता के अधिमान का अवलोकन कर अज्ञानता के क्षेत्र को कम किया जा सकता है। अज्ञानता के क्षेत्र को कम करने करने की प्रक्रिया को जारी रखते हुए अनधिमान वक्र की व्युत्पत्ति की जा सकती है।

बोध प्रश्न:

1. प्रगट अधिमान सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. प्रगट अधिमान सिद्धान्त की सहायता से उदासीनता वक्रों की व्युत्पत्ति कीजिए।

6.7 सारांश

प्रगट अधिमान सिद्धान्त पूर्ववर्ती उपयागिता विष्लेषणों की अवास्तविक मान्यताओं से परे व्यवहारिक व सरल मान्यताओं पर आधारित है। इस सिद्धान्त के माध्यम से प्रो. सेम्युअल्सन ने उपभोक्ता के व्यवहार की वैज्ञानिक व व्यवहारिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इस सिद्धान्त का प्रयोग करके उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार का अवलोकन करते हुए प्रगट अधिमान सिद्धान्त के माध्यम से मांग के नियम व उदासीनता वक्रों की व्युत्पत्ति की जा सकती है।

6.8 शब्दावली

अधिमान : उपभोक्ता द्वारा विभिन्न संयोगों में से किसी एक संयोग का चयन करना ही अधिमान को प्रगट करना होता है।

सबल क्रमबद्धता : उपभोक्ता द्वारा खरीदे जा सकने वाले विभिन्न संयोगों में से किस एक संयोग को वरीयता प्रदान करना सबल क्रमबद्धता का सूचक है।

संगत चयन : उपभोक्ता द्वारा किन्ही दो अवलोकनों में परस्पर विरोधी चयन न करना ही संगत चयन है।

सकर्मक चयन : यदि उपभोक्ता द्वारा एक विषेष कीमत-आय स्थिति में, जब R व S संयोग उपलब्ध है, R का चयन किया जाता है, व एक अन्य कीमत-आय स्थिति में में, जब S व T संयोग उपलब्ध हों, तो वह S का चयन करता है, तो एक ऐसी कीमत-आय स्थिति जिसमें R व T संयोग उपलब्ध हों, तो यदि वह R का चयन करे, तो इसे सकर्मक चयन कहा जाएगा।

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न:

1. प्रगट अधिमान सिद्धान्त की सहायता से उपभोग सिद्धान्त के आधारभूत नियम नियम की व्युत्पत्ति कीजिए।
2. प्रगट अधिमान सिद्धान्त की सहायता से उदासीनता वक्रों की व्युत्पत्ति कीजिए।
3. प्रगट अधिमान सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ (References):

एच. एल. आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., रामनगर, नई दिल्ली-2004

के. एन. वर्मा : व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त, विशाल पब्लिकेशन कम्पनी, जालंधर- 2011

सी. एस. बरला : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर-2002

A. Koutsoyiannis : Modern Microeconomics , Macmillan Press LTD, London-2006

Hal R. Varian : Intermediate Microeconomics: A Modern Approach, W. W. Norton & Company, Inc., 500 Fifth Avenue, New York-2010

इकाई-7

निश्चितता तथा अनिश्चितता की दशाओं में उपभोक्ता व्यवहार-स्थायी तथा गैर-स्थायी वस्तुओं की माँग

(Consumer Behaviour Under Conditions of Certainty and Uncertainty- Demand for Durable and Non- Durable Goods)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 विषय प्रवेश

- 7.2.1 माँग सम्बंधी निर्णय
- 7.2.2 उपलब्ध अवसर तथा माँग
- 7.2.3 रुचियाँ तथा माँग

7.3 निश्चितता की दशाओं मे उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण

- 7.3.1 स्वयंतथ्य मूलक विश्लेषण
- 7.3.2 मजबूत क्रम तथा कमजोर क्रम
- 7.3.3 विवेकपूर्ण व्यवहार के निर्धारक स्वयंतथ्य
- 7.3.4 निष्कोण अनधिमान वक्रों कें निर्धारक स्वयं तथ्य
- 7.3.5 प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के व्यवहार के निर्धारक स्वंयतथ्य
- 7.3.6 स्वयंतथ्य तथा उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण
- 7.3.7 स्वयंतथ्य तथा प्रथम क्रम की शर्तें : मार्शल तथा हिक्स के विश्लेषण
- 7.3.8 स्वयंतथ्य तथा प्रकटित पसंद विश्लेषण

7.4 अनिश्चितता की दशाओं मे उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण

7.4.1 नॉयमेन तथा मार्गनस्टर्न विश्लेषण

7.4.2 एन एम विश्लेपण में स्वयंतथ्य

7.4.3 एन एम विश्लेषण तथा उपभोक्ता पसंद क्रम

7.5 वस्तुओं की सन्तुलन माँग

7.5.1 सामान्य विश्लेषण

7.5.2 स्थायी उपभोग वस्तुओं की मांग

7.5.3 नेरलोव का संग्रह समायोजन स्वरूप

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 बोध प्रश्न

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.10 व्यावहारिक प्रश्नो के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप.

1. माँग पर प्रभाव डालने वाले कारकों, उपलब्ध अवसर तथा रूचियों, के बारे में बता सकेंगे ।
2. निश्चितता की दशाओं में स्वयंतथ्यों पर आधारित उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण समझा सकेंगे।।
3. मजबूत क्य तथा कमजोर क्रम में भेद कर सकेगे।
4. वे सभी स्वयंतथ्य समझा सकेंगे जो कि उपभोक्ता का विवेकपूर्ण व्यवहार, निष्कोण अनधिमान वक्र तथा प्रतिस्थापन की दर का व्यवहार निर्धारित करते है ।
5. इन स्वयतथ्यों के आधार पर मार्शल तथा हिक्स के विश्लेषणों में निहित प्रथम कम की शर्तें बता सकेंगे।
6. इन स्वयंतथ्यों के आधार पर सेमुलसन के प्रकटित पसंद विश्लेषण समझा सकेंगे।
7. अनिश्चितता की दशाओं में नॉयमेन तथा मार्गनस्टर्न का विश्लेषण समझा सकेंगे।
8. स्थायी उपभोग वस्तुओं की मांग के बारे में नेरलोव का संग्रह समायोजन 'स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से पूर्व प्रकटित अधिमान सिद्धान्त के बारे में अपने अध्ययन को दोहरा लीजिए। उपभोक्ता व्यवहार के बारे में आपने जो विश्लेषण पड़े है उन्हें पारम्परिक मांग सिद्धान्तो की संज्ञा दी जाती है। इसका संक्षिप्त परिचय आपको पूर्व की इकाइयों में दिया जा चुका है । अन्य पूर्वधारणाओं के अलावा

इन सिद्धान्तो के पीछे दो विशेष पूर्वधारणाएँ (मान्यताएं) है । प्रथम, उपभोक्ता मांग सम्बन्धी निर्णय निश्चितता की स्थिति में लेता है । अर्थात् माँग पर प्रभाव डालने वाले सभी कारक, जैसे आय, रूचियाँ, अन्य वस्तुओं के मूल्य आदि में कोई परिवर्तन नहीं आता । दूसरे, जिस समय वस्तु खरीदी जाती है उसे उसी समय उपभोग हुई मान ली जाती है। मार्शल का सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण, हिक्स का अनधिमान वक्र विश्लेषण तथा सेम्युलसन का प्रकटित पसंद विश्लेषण इन्हीं पूर्व धारणओं पर आधारित है ।

यह आवश्यक नहीं है कि ये पूर्व धारणाएँ ठीक निकलें । प्रथम, अब यह महसूस किया जा रहा है कि उपभोक्ता को निर्णय प्राय: अनिश्चितता की दशाओं में लेने पड़ते है । इस अनिश्चितता के कई रूप हो सकते है जिनका वर्णन इकाई के अन्य भाग़ों में किया गया है । अत: अनिश्चितता की दशाओं में उपभोक्ता व्यवहार के बारे में विश्लेषण की आवश्यकता भी महसूस हुई । इस कमी को नायेमेन तथा मार्गनस्टर्न विश्लेषण द्वारा पूरा किया गया है । दूसरे, यह भी अब समझा जाने लगा है कि उपभोक्ता के व्यवहार के विश्लेषण में स्थायी तथा गैर-स्थायी वस्तुओं में भेद करना आवश्यक है क्योंकि स्थायी वस्तुओं का उपभोग तुरन्त न होकर काफी लम्बी अवधि तक होता रहता है और उपभोक्ता के मांग सम्बन्धी निर्णयों पर इसका प्रभाव पड़ता है । अत: स्थायी उपभोग वस्तुओं के लिए अलग विश्लेषण की आवश्यकता है । इसकी कमी काफी हद तक नेरलोव के संग्रह समायोजन स्वरूप द्वारा पूरी होती है।

इस इकाई में हम निश्चितता तथा अनिश्चितता दोनों ही दशाओं में उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण उपभोक्ता स्वयंतथ्यों (axioms) की सहायता से करेंगे। इसके अतिरिक्त स्थायी उपभोग की वस्तुओं का विश्लेषण अलग से करेंगे।

7.2 विषय प्रवेश

7.2.1 मांग सम्बंधी निर्णय

प्राय: परिवार ही, जिसे उपभोक्ता भी कहते है एक उपभोग इकाई कहलाती है । उपभोक्ता को अनेक निर्णय लेने पड़ते है । पारम्परिक उपभोक्ता सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया गया है कि उपभोक्ता अपनी निश्चित आय को विभिन्न उपलब्ध वस्तुओं पर कैसे व्यय करता है । साथ-साथ श्रम तथा आराम के बीच चुनाव पर भी ध्यान दिया गया है । दोनों ही परिचर्चाये पूर्ण निश्चितता (perfect Certainty) की दशाओं पर आधारित है । लेकिन इसके अतिरिक्त उपभोक्ता को और कई निर्णय लेने पड़ते है जैसे कि वह व्यय करे या न करे, कोई वस्तु अभी खरीदे या कुछ समय बाद खरीदे । उसे यह भी निर्णय लेना पड़ता है कि आय का वह भाग जो उसने व्यय नही किया है किस रूप में रखे। अब इस बात को भी अधिकाधिक माना जा रहा है कि उपभोक्ता को ये निर्णय अनिश्चितता (Uncertainty) की स्थिति में लेने पड़ते है।

7.2.2 उपलब्ध अवसर तथा माँग

यह तो स्पष्ट ही है कि उपभोक्ता को उपलब्ध अवसरों का उसके द्वारा लिये गये निर्णयों पर प्रभाव पड़ता है । ये अवसर इन बातों पर निर्भर है, कि उसे कौन-कौन सी वस्तुएँ उपलब्ध है, किन शर्तों पर ये प्राप्त की जा सकती है तथा उसकी आय तथा सम्पत्ति कितनी है । विकसित देश जटिल तथा परिष्कृत

(Sophisticated) वस्तुऐ बनाते है जो कि कम विकसित देशों में नही बनती है । इससे कम विकसित देश के उपभोक्ताओं का वस्तुओं के चुनाव का दायरा विकसित देशों की अपेक्षा सीमित रहता है । यदि गाँवों और इसके आसपास अच्छी सड़कें हो तो भी भारत के गांव में एक प्राथमिक स्कूल का अध्यापक कार खरीदने के केवल सपने ही ले सकता है । अपनी कम आय तथा कारों के ऊँचे मूल्य के कारण अवसर सीमित रहने से वह अधिक से अधिक मोपेड या अधिक संभवत: साईकिल ही खरीद सकता है।

7.2.3 रुचियाँ तथा माँग

उपभोक्ता के निर्णयों पर प्रभाव डालने वाला एक और महत्वपूर्ण कारक रूचियाँ (tastes) है। उदाहरणत: किसी शराब न पीने वाले व्यक्ति को सबसे बढ़िया शराब उपलब्ध करा दी जाय तो उसके लिए वह अनुपयोगी होगी। रूचियाँ वास्तव में बहुत अधिक व्यक्तिपरक (subjective) होती है और अनेक कारणों जैसे मौसम, सामाजिक दशाओं आदि से प्रभावित होती है। यह भी सच है कि विज्ञापन जैसे अनेक कारकों से रुचियों में परिवर्तन भी आ सकता है । लेकिन अधिकतर उपभोक्ता सिद्धान्तो में रूचि को निश्चित तथा स्थिर माना जाता है।

7.3 निश्चितता की दशाओ मे उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण

7.3.1 स्वयंतथ्य मूलक विश्लेषण (Axiomatic approach)

मान लीजिए वस्तुओं की संख्या n है । इन n वस्तुओं के विभिन्न संयोगो के ऐसे विभिन्न समूह है जो कि उपभोक्ता को उपलब्ध है । मान लीजिए कि ये विभिन्न समूह X, X,' X," X ", आदि है । इस तरह समूह X,' में 1 से लेकर n वस्तुओं की क्रमश: X_1,'X_2,' X_3,'X_n ,' मात्राएं शमिल होगी । उदाहरणत : X,' यह बतायेगा कि समूह X" में वस्तु i की कितनी मात्रा है । यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं है कि सभी समूहों में प्रत्येक वस्तु शामिल हो । उदाहरण के तौर पर X_2," शून्य भी हो सकता है जिसका अर्थ यह है कि X" में वस्तु 2 नही है।

इन समूहों का पसंद कम उपभोक्ता की रूचि को दर्शाता है । ऐसा अर्थपूर्ण भी है और सामान्य भी कि हमें केवल उन्हीं उपभोक्ताओं की रूचियों का पता लगाना चाहिए जिनकी आधारभूत न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी हो चुकी हो। मान लीजिए कि उपभोक्ता की भोजन तथा कपड़े की न्यूनतम आवश्यकताएं क्रमश: 3 रोटी तथा एक धोती और बनियान है। ऐसे में उससें यह पूछना अर्थहीन है कि दो समूहों-एक में 3 रोटी तथा एक बनियान और दूसरे में 2 रोटी तथा एक बनियान और एक धौती का पंसद क्रम क्या है?

7.3.2 मजबूत क्रम तथा कमजोर क्रम

(Strong Ordering and weak Ordering)

हम एक ऐसे उपभोक्ता को लेते है जिसकी आधारभूत न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी हो चुकी है। मान ले कि XRX,' यह इंगित करता है कि उपभोक्ता की नजरों में समूह X कम हे कम उतना तो अच्छा है जितना कि समूह X। यदि उपभोक्ता को X' की अपेक्षा X अधिक पसंद है तो ऐसा XPX' द्वारा इंगित किया

जाएगा इसका अर्थ यह होता है कि XRX'' तो उस उपभोक्ता को मान्य है एंव उसकी पसंद के अनुरूप हैं। परन्तु X'RX उसकी पसन्द के अनुरूप नहीं है। इसी प्रकार यदि X'PX उपभोक्ता को मान्य है। तो इसका अर्थ यह है कि X'RX तो उसकी पसन्द के अनुरूप है। ।परन्तु इसका उल्टा XRX' उसकी पसन्द के अनुरूप नहीं है। यदि केवल मजबूत पंसद क्रम (Strong Preference Ordering) है तो उपभोक्ता की पसन्द भी स्पष्ट होगी, अर्थात् वह या तो X' की अपेक्षा X को पसन्द करता है या इसके विपरीत X की अपेक्षा X को करता है। मजबूत पसंद क्रम की मान्यता लेते हुए यह सम्भव नही है कि XRX'' तथा X दोनों एक साथ ठीक हों। लेकिन कमजोर पसंद कम (weak Preference ordering) में ऐसा सम्भव है कि वह X एवं X वस्तुओं में से किसी एक के प्रति एक पसन्द न प्रकट कर सके। ऐसी स्थिति में उदासीन अथवा। तटस्थ (Indifferent) है तथा ऐसा X 1 X' द्वारा बताया जाता है। उपभोक्ता व्यवहार सिद्धांत की व्याख्या सामान्यत: कमजोर पसंद क्रम की मान्यता के आधार पर की जाती है। इसमें उपभोक्ता को विवेकशील माना जाता है इस मान्यता के लिए निमांकित तीन स्वयं तथ्य आवश्यक मने जाते है।

3.3.3 विवेकपूर्ण व्यवहार के निर्धारक स्वयंतथ्य

(Axioms determining rational choice)

यह सुनिश्चित करने के लिए कि उपभोक्ता का त्यवहार विवेकपूर्ण (rational) है,। तीन स्वयंतव्य (axiom) आवश्यक है पूर्णता (Completeness) सक्रमकता (transitiuity) तथा बुद्धि संगत चुनाव (rational choice) पूर्णता के स्वयंतथ्य को पूर्ण क्रम स्वंय तथ्य (complete ordering axiom) भी कहते है। इसके अनुसार उपभोक्ता किन्ही भी दो उपलब्ध समूहों में अपना एक निश्चित पसंद कम रखता है। इसका अर्थ यह है कि किन्हीं दो समूहों X तथा X में या तो XRX , की और या फिर X' R X या दोनों एक साथ की स्थिति है।

सक्रंमकता के स्वयंतथ्य में यह मान लिया जाता है कि उपभोक्ता को समूहों में भेद करने की पूरी समझ है। यदि तीन समूह X,X"' तथा X" है और इनमें यदि XRX'' R X" की स्थिति है तो XRX" की स्थिति भी ठीक है।

इन दो स्वंयतध्यों के आधार पर समूहों के सैट (Set of bundles) को छोटे उपसैटों (subsets) में बांटना संभव होता है। प्रत्येक उपसेट जिसे अनाधिमान वर्ग (indifference class) कहा जाता है, में उपभोक्ता किन्हीं दो तत्वों या समूहों को एक समान समझता है। विभिन्न अनधिमान वर्गो को उपभोक्ता की पसंद के अनुसार क्रमबद्ध (ranked) किया जा सकता है। ऐसे में विभिन्न अनधिमान वर्गो के बीच कोई भी समूह या तत्व एक समान नहीं होंगे। इन दो स्वयंतथ्यों द्वारा हमने समूहों के सैट को अलग-अलग उपसैटौं में बाँट दिया है।

बुद्धिसंगत चुनाव (Rational Choice) का तीसरा स्वयंतथ्य केवल यह बताता है कि उपभोक्ता अपने व्यवहार में अपनी पसंद कम को ही मानता है। 'इसका अर्थ यह है कि यदि समूहों के किसी सैट S में से समूह X चुन लिया जाता है तो उस सैट S में बाकी सभी समूह X की स्थिति XRX' की होती है।'

वास्तव में यदि की स्थिति है, तो उपभोक्ता कभी भी ऐसे समूहों के सैट में से जिसमें कि समूह X भी हो समूह X' नही चुनेगा। यदि X1X' की स्थिति है नो स्पष्ट है कि उसकी पसंद X केवल उसकी रूचि पर ही आधारित नहीं है।

7.3.4 निष्कोण अनधिमान वक्रों के निर्धारक स्वयंतथ्य

(Axioms determining Smooth indifference curves)

उपर्युक्त वर्णित तीन स्वयंतध्यों के अतिरिक्त निम्नांकित चार स्वंयतथ्य और है असंतृप्ति (non-saturation), पसंद की निरन्तरता (continuity of preference), दृढ़ उन्नतोदरता (Strict Convexity) और निष्कोष (Smooth) अनधिमान वक्र। असंतृप्त के स्वयंतथ्य से अभिप्राय यह है कि किसी भी वस्तु के उपभोग में पूर्ण तृप्ति (Satiation) की अवस्था नही है। वस्तुओं को अच्छा माना जाता है, बुरा नहीं। अत: उपभोक्तागण वस्तुओं की कम मात्रा की अपेक्षा अधिक मात्रा को पसंद करते है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी उपभोक्ता को सभी समूह X तथा X उपलब्ध है, औंर यदि समूह xमें किसी एक वस्तु की अधिक मात्रा है, नो उपभेक्ता X की अपेक्षा समूह X ही पसंद करेगा अर्थात XPX' 1 अनधिमान वक्र विश्लेषण के संदर्भ मे इसका अर्थ यह है कि अनधिमान वक्र ऊपर की ओर चढाऊ (upward sloping) नहीं हो सकते और उपभोक्ता अपनी बजट रेखा (budget line) पर ही रहता है।

पसंद की निरन्तरता के स्वयंतथ्य में एक महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक बात यह है कि पसद तथा ना पसंद के बीच एक उदासीनता (indifference) का क्षेत्र होता है। यह बात कोशकारिक (lexicographic) पसंद की स्थिति में ठीक नही बैठती है तथा इस स्वयंतथ्य के अनुसार अमान्य है। सैट सिद्धान्त परिसीमा सैट (Set theory) में इस का स्वंयतथ्य से आशय है कि परिसीमा सैट (boundary set) B(X) में X से जुड़ी सभी X' के बारे मे X''X' की स्थिति है। इस स्वयंतथ्य को एक और प्रकार से देखा जा सकता है कि किसी भी समूह X के लिए समूह X'RX तथा समूह XRX दोनों ही बन्द सेट (closed sets) है।

असंतृप्ति तथा पसंद की निरन्तरता के स्वयंतथ्य संयुक्त रूप में, निष्कोण (Continuous) अनधिमान वक्रों,जो कि न तो मोटे (thick) है और न ही आपस में एक दूसरे को काटते है के अस्तित्व को सुनिश्चित करते है।

7.3.5 प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के व्यवहार के निर्धारक स्वयंतथ्य

(Axioms determining the behavior of Marginal Rate of Substitution)

दृढ़ उन्नतोदरता (Strict Convexity) के स्वयंतथ्य से आशय यह है कि किसी भी X के लिये सभी X' का सैट, जैसा कि XRX, दृढ़ तौर पर उन्नतोदर है। अनधिमान वक्र विश्लेषण के संदर्भ में इससे आशय यह है कि अनधिमान वक्र मूल बिन्दु (Origin) की और उन्नतोदर है, सीधे नही है और अक्षों (axis) को छूते नही है। इसके साथ-साथ यह भी है कि यदि मापना संभव हो तो सीमान्त प्रतिस्थापन दर (Marginal Rate of Substitution) अनधिमान वक्र के ढलान के साथ-साथ गिरती जाती है।

निष्कोंण अनधिमान वक्रों (Smooth indifference curves) के स्वयंतथ्य से आशय यह है कि अनधिमान वक्रों में विकुंचित (kink) नही है। यह भी सुनिश्चित करता है कि वस्तुओं के किन्हीं दो जोड़ों के बीच केवल एक ही (unique) प्रतिस्थापन की सीमान्त दर हो।

दृढ़ उन्नतोदरता तथा निष्कोण अनधिमान वक्र के स्वयं तथ्य, संयुक्त रूप में, इस बात को सुनिश्चित करते है कि किसी बिन्दु पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर केवल एक है तथा अनधिमान वक्र के ढलान के साथ-साथ यह गिरती जाती है।

7.3.6 स्वयंतथ्य तथा उपभोक्ता-व्यवहार विश्लेषण

(Axioms and Analyasis of Consumer Behaviour)

इन स्वयंतथ्यों के आधार पर उपभोक्ता व्यवहार के बारे में स्थापित विश्लेषणों को बताना संभव है। इस हेतु, हम यह मान कर चलते है कि ऐसा उपयोगिता फलन (utility function) है जिसमें प्रत्येक समूह को केवल एक ही वास्तविक संख्या (unique real number) दी गयी है ताकि u(X)=u(x1,X,2,X3,----Xn) इस प्रकार हो कि u (X) $\geq$ u(x') हो और केवल XRX' हो । उपयोगिताओं को इस रूप में नियत करने से पूर्ण क्रम (complete ordeing) तथा संक्रमकता (transitivity) के स्वयंतथ्य ठीक उतरते है। बुद्धिसंगत चुनाव का स्वयंतथ्य से आशय यह होगा कि उपभोक्ता अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करना चाहेगा या ऊँचे से ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुँचना चाहेगा। बाकी सभी स्वयंतथ्यों का अर्थ होंगा कि आंशिक अवक्रलन (partiat derivative) $\partial u / \partial xi > o$ है और यह सीमान्त प्रतिस्थापन की घटती दर की प्रकृति के अस्तित्व को सुनिश्चित करेंगा स्वयंतथ्यों को सही होने के लिए केवल इतना आवश्यक है कि क्रम उपयोगिताओं की पूर्वधारणा की जाये जैसा कि हिक्स ने अपने अनधिमान वक्र विश्लेषण में किया है मार्शल ने तथापि गणनावाचक उपयोगिता की कड़ी पूर्वधारणा की है। इसके साथ-साथ एक और कड़ी पूर्वधारणा, कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर है, की है जिससे उसने अपने मूल्य-प्रभाव के विश्लेषण में आय प्रभाव को पूरी तरह नजर अन्दाज किया है। मार्शल ने सीमान्त उपयोगिता को घटती हुई माना है जबकि इसके कारण प्रतिस्थापन की सीमान्त दर भी घटती हुई हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि एक और कड़ी पूर्वधारणा की जाये कि विभिन्न वस्तुओं के उपभोग फलन स्वतन्त्र है।

7.3.7 स्वयंतथ्य तथा प्रथम कम की शर्तें : मार्शल तथा हिक्स के विश्लेषण

(Arxioms and the first order Conditions : Marshal's and Hicks' Analysis))

केवल दो वस्तुओं कों लेकर उपभोक्ता का व्यवहार आसानी से दिखा सकते है हालांकि इसे वस्तुओं की किसी भी संख्या n पर लागू किया जा सकता है। मान लीजिए स्वयंतथ्य पर ठीक उतरने वाला उपभोग फलन u=u (x_1,x_2) है तथा बजट प्रतिका (budget constraint) M = P_1 X_1+ P_2X_2 है जिसमें P से अभिप्राय मूल्यों से, है। लग्रान्जे फलन (Lagrangian function) इस प्रकार लिखा जा सकता है

u*=(X_1,X_2)+u (M-P_1,x_1-P_2x_2)

u* का X_1, X_2 के प्रति आंशिक अवक्रलन (Partial darivative) मालूम करके तथा U को शून्य मान कर उपयोगिता अधिकतम करने का उद्देश्य रखने वाले उपभोक्ता की प्रथम कम की शर्तें (First ORDER Conditions) प्राप्त की जा सकती है। यदि हम गणना वाचक उपयोगिता पर आधारित मार्शल की विचार धारा को लेते है तो इन्हें $(u_1/P_1)=(u_2/P_2)$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जिससे यह पता चलता है कि अधिकतम उपयोगिता का उद्देश्य रखने वाले उपभोक्ता को दोनों में किसी भी वस्तु पर एक रूपया व्यय करने से एक समान सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है। यदि हम हिक्स की विचारधारा पर आधारित कम सूचक उपयोगिता (ordinal utililty) को ले तों इसे $u_1/u_2=P_1/P_2$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जिसका अर्थ यह है दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उनके मूल्यों के अनुपात के समान है। हम कोई भी विचारधारा लें एक और प्रथम क्रम की शर्त यह है कि उपभोक्ता केवल बजट रेखा पर ही विद्यमान रहता है।

7.3.8 स्वयंतथ्य तथा प्रकटित पसंद विश्लेषण

(Axioms and Revealed Preference Analysis)

सैम्युलसन तथा हाउथेकर (Houthakker) द्वारा विकसित प्रकटित पसंद विश्लेषण (Revealed Preference Approach) में रूचियों के स्थिर रहने की पूर्वधारणा की गयी है इससे रूचियों के बारे में निष्कर्ष निकालने तथा मांग के साध्य (prepositions) प्राप्त करने हेतु यह देखा जाता है कि उपभोक्ता का वास्तविक बाजार में क्या व्यवहार है। यह विचारधारा मार्शल तथा हिक्स की विचार धाराओं से बिल्कुल अलग है क्योंकि मार्शल तथा हिक्स के विश्लेषणों में उपभोक्ता के आत्मविश्लेषण के बारें में सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। इसका यह भी दावा है कि यह पसंद क्रम के बारे में उन सभी स्वयंतथ्यों से मुक्त है जिनकी कि आवश्यकता स्वयंतथ्य विश्लेषण (axiomatic approach) में पड़ती है। लेकिन यदि हम प्रकटित पसंद विश्लेषण की दो आधारभूत पूर्वधारणाओं को देखें तो इस दावे में कुछ शंका नजर आती है। प्रथम, यह है कि मूल्यों, आय तथा उपलब्ध वस्तुओं पर आधारित विभिन्न विकल्पों (alternatives) में से उपभोक्ता केवल एक ही पसंद करता है। इससे पूर्ण कम का स्वयंतथ्य (Complete Ordering Axiom) कमजोर पड़ जाता है। दूसरी पूर्वधारणा उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार के सामंजस्य (Consistency) के बारे में है जिसके अनुसार यदि एक ऐसे विकल्पों के सेट, जिसमें कि समूह X' भी शामिल है, में से यदि समूह X का चुनाव किया जाता है, तो किसी ऐसे अन्य विकल्पों के सेट में, जिसमें से कि समूह X' चुना जाता है, X शामिल नहीं होगा। यह पूर्वधारणा संक्रमकता (transtivity) तथा बुद्धिसंगत चुनाव के स्वंय तथ्यों के लिए कठिनाई उत्पन्न करती है। वास्तव में यह भी दिखाया जा सकता है कि यदि उपभोक्ता के बारे में हमारे पास काफी सूचना (observation) है और हम उसके बारें में संक्रमकता तथा असंतृप्ति (Non-Satiety) की पूर्वधारणाएं करें, तो प्रकटित पसंद विश्लेषण के द्वारा हम उसका पसंद कम तथा अनधिमान वक्र ज्ञात कर सकते है।

7.4 अनिश्चितता की दशाओं मे उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण

(Analysis of Consumer behaviour under conditions of uncertainty)

घटती सीमान्त उपयोगिता पर आधारित मार्शल के तर्क को अनिश्चित परिस्थितियों में लागू करने पर यह अर्थ निकलता है कि उपयोगिता अधिकतम करने का उद्देश्य रखने वाले उपभोक्ता द्वारा जुआ खेलना गैर-बुद्धिसंगत (irrational) है। अत: अनिश्चित दशाओं में उपभोक्ता के व्यवहार के बारे में सिद्धान्त विकसित करने की जिम्मेदारी नॉयमेन (Neumann) तथा मार्गनस्टर्न (Morgenstern) पर पड़ी। इन के विश्लेषण को संक्षेप में NM विश्लेषण कहा जाता है।

7.4.1 नॉयमेन तथा मार्गनस्टर्न विश्लेषण

NM विश्लेषण में लाटरी टिकटों या संभावनाओं (Prospects) के विषय में बात की जाती है। एक ऐसी संभावना लीजिए जिसके नतीजे में दो सम्भव इनाम निकल सकतें है। इनमें सें एक अधिक अनुकूल इनाम A है जिसे हम "सफलता" कह सकते है। मान लीजिए कि इसकी संभाव्यता (Probability) Pa है। दूसरा कम अनुकूल परिणाम B है जिसे हम "असफलता" कह सकते है और जिसकी संभाव्यता (1 – Pa) है। यह विश्लेषण हमें उपभोक्ता की विभिन्न संभव इनामों वाली लाटरी टिकटों के बीच पसंद के बारे में निष्कर्ष निकालने में सहायक है। ऐसा उपभोक्ता की विभिन्न इनामों के बारे में पसंद सुनिश्चित करके, प्रत्येक इनाम कों एक निश्चित गणनावाचक उपयोगिता संख्या देकर, तथा उपभोक्ता व्यवहार के बारे में कुछ पूर्वधारणाएँ कर, किया जा सकता है।

7.4.2 N M विश्लेषण मे स्वयंतथ्य

NM विश्लेषण में उपभोक्ता के पसंद के बारे में पाँच स्वयंतथ्य है। ये इस प्रकार हैं पूर्ण क्रम, पसंदों की निरन्तरता, स्वतंत्रता, असमान संभाव्यता, तथा जटिलता।

पूर्ण क्रम (Complete Ordering) का स्वयंतथ्य बताता है कि उपभोक्ता का इनामों तथा लाटरी टिकटों के बारे में क्रम पूर्ण तथा संक्रमक है।

पसन्दों की निरन्तरता (Continuity of Perference) का स्वयं तथ्य यह बताता है कि किन्हीं तीन संभावित नतीजों E,A और D में उपभोक्ता के लिए यदि E P_A तथा A P_D की स्थिति हो, तो संभाव्यता Pa ऐंसी होगी कि A तथा एक लाटरी टिकट के बीच उपभोक्ता उदासीन (indfferent) रहता है। इसमें E की संभाव्यता पर है तथा D की (1-Pa) है। ऐसी पसंद को A I (Pa:E,D,) के रूप में व्यक्त किया जाता है।

स्वतन्त्रता (Independence) का स्वयंतथ्य बताता है कि किन्हीं चार इनामों A,B,C and F में यदि उपभोक्ता के लिए A I B तथा CIF है तो किसी संभाव्यता p के लिए (P: A, C) I (P : B, F) है।

असमान संभाव्यता (Unequal Probability) का स्वंयतथ्य सफलता की अधिक संभाव्यता की इच्छा पर आधारित है। यह बताता है कि किन्ही विकल्पों E तथा D और किन्हीं संभाव्यता संख्याओंr तथा r 'के संदर्भ. में यदि उपभोक्ता के लिए E P_D की स्थिति हो, तो (r: E, D) P (r': E,D) की स्थिति उसी समय होगी जबकि (की अपेक्षा 1- अधिक हो।

जटिलता (Complexity) का स्वयंतथ्य मिश्रित संभाविता अंकगणित (compound probability arithmetic) पर आधारित है। यह स्वयंतथ्य पसंद क्रम तर्क को मिश्रित लाटरी टिकटों, जिनके, संभावित नतीजे स्वंय लाटरी टिकट ही है, पर लागू करता है। दो साधारण लाटरी टिकटों 1 तथा 2, जो (Pa: E,D) तथा (PB: E, D) द्वारा सूचित है, को लीजिए। एक मिश्रित लाटरी टिकट वह है जिसके संभावित नतीजे लाटरी टिकट 1 तथा 2 है। इनकी संभाव्यता क्रमश: P तथा (1-P) है जों कि (p:(Pa:ED),(P_b: ED) द्वारा सूचित है। जटिलता का स्वयंतथ्य बताता है कि किन्हीं विकल्पों E तथा D और किन्हीं संभाव्यता संख्याओंP',Pa', तथा Pb के लिए [P: (Pa: E, D), Pb (E,D)] I (r: ED), है जिसमें कि r का मूल्य PP+ (1-P) Pb है जो कि मिश्रित लाटरी टिकट में E जीतने की संभाव्यता है।

7.4.3 NM विश्लेषण तथा उपभोक्ता पसंद क्रम

इन स्वयतथ्यों के आधार पर और उपभोक्ता के इनामों के क्रम को निश्चित करके, इन इनामों साथ उसके लाटरी के टिकटों के क्रम (ranking) को मालूम किया जा सकता है। इसके लिए हम दों चरम (extreme) इनाम लेने है। इनमे से एक इनाम E है जो बहुत अधिक पसंद है जैसे कि सेल्स रोयस कार या शाश्वत परमानन्द की प्राप्ति। दूसरा इनाम D है जो कि बहुत कम पसंद है जैसे कि केवल एक पिन या नर्क प्राप्ति। उपभोक्ता के पसंद क्रम में इसका स्वभाविक परिणाम EP_D होगा। E तथा D को दो काल्पनिक उपयोगिता संख्या इस तरह दीजिए जिससे कि उपभोक्ता का पसंद क्रम प्रकट हो। मान लीजिए u (E) तथा U (D) = 1 एक ऐसा विशेष लाटरी कट S (P) बनाइये जिससे कि यह (p: E,D) हो जिममें P निर्दिष्ट नहीं है। एक साधारण इनाम ,A लीजिए । यदि हमारे S(P) में P=1 जो कि शश्वत परमानन्द की प्राप्ति को सुनिश्चित करता है, तो A की तुलना में S(p) को पंसद किया जाएगा। इसके विपरीन यदि S(P) में P=O हो और नर्क निश्चित हो, तो s(p) की तुलना में A को पसंद किया जायगा। इन स्वयंतथ्यो के परिणाम स्वरूप हम उपभोक्ता से साक्षात्कार कर P g का वह मूल्य ज्ञात कर सकते है जिस पर कि उपभोक्ता A तथा S (P) के बीच उदासीन (indifferent) होगा इससे A की उपयोगिता ज्ञात की जा सकती है। मान लीजिए Pg का मूल्य 0.2 निकलता है।

u[S (Pg)] = Pgu (E) +(1-Pg) u (D)

= 0.2X100+0.8X 1 = 20.8 = u (A)

B,C,F आदि इनामों में से किसी भी इनाम की उपयोगिता इसी प्रकार मालूम की जा सकती है। और इनके आधार पर उपभोक्ता का विभिन्न लाटरियों के बीच पसंद क्रम निकाला जा सकता है। मान लीजिए दो लाटरी टिकट L_1 (Pa : A,B) तथा L_2 (PC : C,F) है जिनमें Pa तथा Pc दिये हुए है। A,B,C तथा F की उपयोगिताएं हमें आपने सामान्य लाटरी टिकट द्वारा तथा उपभोक्ता से साक्षात्कार करके, पहले से ही ज्ञात है। इस तरह L_1 तथा L_2 की संभावित उपयोगिताओं कों मालूम किया जा सकता है और यह मान कर कि उपभोक्ता अपनी संभावित उपयोगिता अधिकतम करना चाहता है हम लाटरी टिकटों के बीच उस का पसंद कम ज्ञात कर सकते है। वास्तव में यह आसानी से दिखाया जा सकता है, कि यदि

स्वयंतथ्य ठीक हों, तो इस ढंग से लाटरी टिकटों के बीच उपभोक्ता की पसंदों का पूर्वानुमान लगाने की संभावना है ओर ऐसे लगाए गए पूर्वानुमान वास्तव में व्यक्तिसंगत है।

यह ठीक है कि NM विश्लेषण द्रारा अनिश्चितता की दशाओं में उपभोक्ता क व्यवहार का विश्लेषण किया जा सकना है। तथापि इसे मार्शल के गणनावाचक उपयोगिता पर आधारित उपभोक्ता सिद्धांत को पुन: स्थापित करने का प्रयत्न नहीं माना जा सकता। वास्तव में इस विश्लेषण को "गण भेड़िये," की खाल में "क्रमसूचक भेड़" कहा जाता है। यह सही है कि NM गणनावाचक उपयोगिता में मार्शल गणनावाचक उपयोगिता से मिलता-जुलती कुछ गणितीय विशेषताएं (Properties) है। लेकिन N M का गणनावाचक सूचकांक (Cardinal index) मनमाने ढंग का है और उपभोक्ता आन्तरिक सुख की प्रबलता को नही दर्शाता हैं। NM विश्लेषण में न तो कोई घटती सीमान्त उपयोगिता की पूर्वधारणा है और न ही अन्तर वैयक्तिक तुलना करने का प्रयत्न है।

यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि NM विश्लेषण में जो पूर्व धारणाएं है वे सभी उपभोक्ताओं पर एक साथ ठीक नही उतरती है। उदाहरणत: जोखिम उठाने से बहुत घबराने वालों या पैदायशी जुआरियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे ऐसे व्यवहार करें जिससे कि उनकी संभाविक उपयोगिता अधिकतम हो। पर्वत आरोहक जैसे भी कुछ व्यक्ति हो सकते जो सफलता की उँची संभाव्यता को पसन्द ही न करे। सभी उपभोक्ताओं से यह आशा रखना कि वे मिश्रित संभाव्यता सम्बंधी जोड़बाकी करने क्षमता रखते हैं और उसके अनुसार कार्य भी करते है, शायद कुछ ज्यादती ही होगी।

7.5 वस्तुओ की सन्तुलन मांग

7.5.1 सामान्य विश्लेषण (General Analysis)

यदि उपभोक्ता की रूचियॉ तथा उसे उपलब्ध अवसर दियें हुए हों, तो यह पूर्वधारण करके कि वह उपयोगिता अधिकतम करना चाहता है, हम उसके द्वारा मांगी गयी वस्तुओं की मात्रा ज्ञात कर सकते है। अवसरों में कोई भी परिवर्तन उसकी सन्तुलन स्थिति तथा विभिन्न वस्तुओं की मांग पर प्रभाव डालेगा। अत: यह तो स्पष्ट ही है कि उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु की मांग को प्रभावित करने वाले अनेक कारक है। वास्तव में यदि हम एक उपभोक्ता की मांग के बारे में बात करते है तो यह आवश्यक है कि उनकी मांग के निर्धारक तत्व के रूप में केवल उनकी कुल आय तथा सम्पति ही न ले बल्कि उनकें बीच आय तथा सम्पति के वितरण को भी ले। अत: किसी वस्तु के उपभोक्ताओं के समूह कें मांग फलन (demand function) के बारे में निमलिखित रूप में लोचना तर्क कान लगता हैं।

$$qX = F (P X, Py, Pz, I, Po, W, D, T)$$

जिसमें

qX = वस्तु X की मांग, Px = वस्तु X का मूल्य

Py = प्रतिस्थापित वस्तुओं के मूल्य, Pz = पूरक वस्तुओं के मूल्य

I = समुह की कुल आय, Po = अन्य वस्तुओँ के मूल्य

W = समूह की कुल समत्ति, D = समूह में आय तथा संसाधन का वितरण।

T = रूचियां

तथापि, यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहे, तो मांग फलन को एक उपभोक्ता की या उपभोक्ताओं के किसी समूह की किसी वस्तु के विभिन्न मूल्यों पर मांगी गयी विभिन्न मात्राओं के बिन्दुओं के समूह (locus of points) के रूप में लेना एक सामान्य बात है। एक साधारण या मार्शल का मांग फलन इस पूर्वधारणा पर आधारित है कि वस्तु के मूल्य में परिवर्तन से मांग पर प्रभाव डालने वालें अन्य कारकों, जिसमें उपभोक्ता की या उपभोक्ता समूह की वास्तविक आय पर भी, प्रभाव पड़ेगा। वस्तु के मूल्य और उसकी मांग के, बारे में मार्शल का विश्लेषण, यदि अन्य बातें पूर्वक्त रहै, यह बात नजर अंदाज करता है कि वस्तु के मूल्य में परिवर्तन का उपभोक्ता की वास्तविक आय पर भी प्रभाव पड़ेगा। हाल के अनधिमान वक्र विश्लेषण में इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया है तथा मूल्य प्रभाव (price effect) को स्थानापन्न प्रभाव (substitutional effect) और आय प्रभाव (income effect) में बांटा गया है। स्थानापन प्रभाव मापते समय, मूल्य में परिवर्तन के बावजूद, वास्तविक आय को स्थिर रखा है। आय प्रभाव, यह मान कर कि मूल्य स्थिर है, वास्तविक आय में परिवर्तन का वस्तु की मांग पर प्रभाव दिखाता है। आजकल साधारण मांग फलन और क्षतिपूर्ति (compensated) मांग फलन में भेद किया जाता है जो कि स्थानापन्न प्रभाव दिखाता है। वास्तव में क्षतिपूरित मांग फलन भी दो प्रकार के है जो कि इस बात पर निर्भर हे कि हम स्थानापन्न प्रभाव हिक्स के विश्लेषण के आधार, पर अथवा स्लट्स्की(Slutsky) के आधार पर दिखलाते है।

7.5.2 स्थायी उपभोग वस्तुओं की मांग

(Demand for Consumer Durables)

मांग फलनों में वस्तु की प्रकृति के आधार पर भी भेद किया जा सकता है.। प्राय: नाशवान और स्थायी वस्तुओं मे भेद किया जाता है जो कि इस बात पर निर्भर है कि इनको लम्बी अवधि तक जमा करके रखा जा सकता है या नही। उपभोक्ता के आर्थिक सिद्धांत में स्थायी वस्तुओं के बारे में एक आम पूर्वधारणा यह है कि इनका इनके खरीदते ही उपभोग हो जाता है। लेकिन इस पूर्वधारणा के प्रति संदेह व्यक्त किया जा सकता है। यह सन्देह स्थायी उपयोग की स्थायी वस्तुओं (durable use of durable goods) के बारे में और भी अधिक है जैसै टेलीविजन, रेडियो, कपड़े, जूते, आदि जिन्हें बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है, अत: स्थायी वस्तुओं के बारे में अर्थशास्त्रियों ने इस तथ्य को स्पष्ट तौर पर माना है कि स्थायी वस्तु की मांग पर प्रभाव डालने वाला एक महत्वपूर्ण कारक यह है कि उपभोक्ता के पास उस वस्तु की पहले ही कितनी मात्रा है।

7.5.3 नेरलोव का संग्रह समायोजन स्वरूप

(Nerove's Stock Adjustment Model)

स्थायी उपयोग वस्तुओं की मांग का विश्लेषण नेरलोव (Nerlove) के "संग्रह समायोजन स्वरूप' (Stock Adustment Model) द्वारा किया जा सकता है। इस के अनुसार समय (t) पर, उपभोक्ता अपनी आय (yt) का एक अनुपात (b) अपने स्थायी वस्तु के संग्रह Q को रखने के लिये व्यय करना चाहता है। इसका अर्थ यह है कि

$$Q^x_1 = byt \text{-------} > (1)$$

स्थायी वस्तुओं के संग्रह में वास्तविक परिवर्तन, Q_{t-1} तथापि इच्छित परिवर्तन

$$\text{अर्थात } Q_t - Q_{t-1} = K(a^+ - Q_{t-1}) \text{----------} (2)$$

का एक अंश K संग्रह समायोजन का गुणांक (coefficient) कहलाता है। समीकरण (1) में दिये गये Q^x_t के मूल्य को यदि हम समीकरण (2) में प्रतिस्थापित करें तो हमें निमलिखित समीकरण प्राप्त हो जाएगा।

$$Q_t - Q_{t-1} - K\,(byt - Q_{t-1})$$

$$\text{अर्थात } Qt = kby_t + (1-K)\,Q_{t-1} \text{----------} > (3)$$

यदि $Kb = a_1$ तथा $(1-K) = a_2$ को हम समीकरण (3) में प्रतिस्थापित करें, तो हमें निम्नलिखित समीकरण प्राप्त हो जायेगा।

$$Q_t = a_1 y_t + a_2 Q_{t-1} \qquad \text{----(4)}$$

समीकरण (4) स्थायी वस्तुओं का नैरलोव का संग्रह समायोजन स्वरूप प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार स्थायी वस्तुओं की मांग न केवल उपभोक्ता की चालू आय पर निर्भर है बल्कि इस बात पर भी निर्भर है कि उपभोक्ता के पास इन वस्तुओं की कितनी मात्रा पहले से ही है।

7.6 सारांश

उपभोक्ता मांग से सम्बन्धित पारम्परिक सिद्धांतों में ये पूर्वधारणाएं है कि मांग पर प्रभाव डालने वाले कारक निश्चित तथा स्थिर है तथा उपभोक्ता जैसे ही कोई वस्तु खरीदता है उसे उपभोग हुआ मान लिया जाता है। अन्य शब्दों में स्थिर वस्तुओं तथा नाशवान वस्तुओं में कोई भेद नहीं किया जाता। लेकिन उपभोक्ता व्यवहार के आधुनिक विश्लेषणों में यह अधिकाधिक महसूस किया जाने लगा है कि ये दोनों पूर्वधारणाए व्यवहार में पूरी तरह ठीक नही है। अब यह माना जा रहा हैं कि उपभोक्ता को निर्णय अनिश्चितता की स्थिति में लेने पड़ते है, जैसे कि वह व्यय करे या न करे, अभी करे या कुछ समय बाद करे, आदि। अन अनिश्चिता की स्थिति में मांग के बारे में अलग विश्लेषण की आवश्यकता है। यह भी माना जा रहा है कि स्थिर वस्तुओं की मांग के बारे मे अलग विश्लेषण की आवश्यकता है।

निश्चितता की दशाओं में उपभोक्ता व्यवहार को स्वयंतथ्य मूलक विश्लेष्ण (axiomatie analysis) द्वारा समझाया जा सकता है। इसमे हमारी रूचि उपभोक्ता की पसंद कम (preference Ordering) मालूम करने की है। इस सदर्भ में उन्हीं उपभोक्ताओं को लेना चाहिए जिनकी कि न्यून्तम आवश्यकताएं पूरी हो चुकी है। प्रायः मजबूत पसंद क्रम तथा कमजोर पसंद कम में भेद किया जाना है। मांग सम्बंधी विश्लेषण अधिकतर कमजोर पसंद क्रम की पूर्वधारणा पर आधारित होते हैं।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण (rational) है तीन स्वयंतथ्य आवश्यक हैं।ये है पूर्णता सक्रमकता तथा बुद्धि संगत चुनाव के स्वंयतथ्य यह सुनिश्चित करने हेतु कि उपभोक्ता कें अनधिमान वक्र निष्कोण (Continuous) है, असंतृप्ति तथा पसंद का निरन्तरता के स्वयंतथ्य आवश्यक है।

यह सुनिश्चित करने के लिए, कि अनधिमान वक्र के किसी बिन्दु पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर केवल एक ही हो तथा वक्र के ढलान के कम होने के साथ-साथ यह कम होती जाये, दृढ़ उन्नतोदरता तथा निष्कोण अनधिमान वक्र के स्वयंतथ्य आवश्यक है।

इन स्वयंतथ्यों के आधार पर निश्चितता पर आधारित विश्लेषणों को समझा सकते है। हम एक ऐसा उपभोग फलन लेते है जो कि क्रम तथा सक्रमकता के स्वयंतथ्यों पर आधारित है। बुद्धिसंगत चुनाव का स्वंयतथ्य वह बताता है कि उपभोक्ता अपनी उपयोगिता अधिकतम करना चाहता है। बाकी सभी स्वयंतथ्य सीमान्त प्रतिस्थापन की घटती दर के अस्तित्व को सुनिश्चित करते है। इन सभी स्वयंतथ्यों के सही होने के लिए कम उपयोगिता की पूर्णधारणा करना आवश्यक है।

स्वयंतथ्यों के आधार उपभोग फलन लेकर तथा बजट प्रतिबंध लेकर हम मार्शल की प्रथम क्रम की शर्त (u_1/P_1) तथा हिक्स की प्रथम कम की शर्त $(u_1/u_2)= (P_1/P_2)$ दिखा सकते हैं।

सेमुअलसन के प्रकटित पसंद विश्लेषण की पूर्वधारणा के कारण स्वयंतथ्यों का इस विश्लेषण लागू करने में कुछ कठिनाई आती है उपभोक्ता का केवल एक ही विकल्प पसंद करना पूर्णक्रम स्वयंतथ्य को कमजोर बनाता है। उपभोक्ता के बारे में सामंजस्य की पूर्वधारणा सक्रमकता तथा बुद्धिसंगत चुनाव के स्वयंतथ्यों के लिए कठिनाई उत्पन्न करती है।

अनिश्चितता की दशाओं में उपभोक्ता के व्यवहार के बारे में सिद्धांत नायमेन तथा मांर्गनस्टर्न द्वारा विकसित किया गया है। इसमे लाटरी टिकटों या सम्भावनाओं के बारे में बात की गयी है। यह विश्लेषण पाँच स्वयंतथ्यों पर आधारित है। ये है पूर्णक्रम, पसंदों की निरन्तरता, स्वतन्त्रता, असमान संभाव्यता तथा जटिलता। इन स्वयंतथ्यों के आधार पर तथा उपभोक्ता के इनामों के क्रम को निश्चित करके उसके लाटरी के टिकटों के कम को मालूम किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि यह विश्लेषण सभी उपभोक्ताओं एक साथ ठीक उतरे। जोखिम उठाने से घबराने वाले या पैदायशी जुआरी इसके अपवाद हो सकते है। इस विश्लेंषण की एक आलोचना यह हैं कि सभी उपभोक्ताओं से यह आशा रखना कुछ ज्यादती लगती है कि वे मिश्रित संभाव्यता सम्बन्धी जोड़ बाकी करने की क्षमता रखते है।

उपभोक्ताओं द्वारा वस्तुओं की मांग केवल अन्य कारकों के अतिरिक्त केवल उनकी कुल आय तथा संपत्ति पर ही नही इसके वितरण भी निर्भर है। मार्शल ने तो मूल्यों में परिवर्तन के कारण हुए आय प्रभाव को भी नजर अन्दाज किया है जबकि हिक्स ने अपने विश्लेषण में इसे स्थान दिया है। स्लट्स्की ने आय प्रभाव कों थोड़े विभिन्न रूप में लिया है।

मांग विश्लेषण में अब स्थायी तथा नाशवान वस्तुओं में भेद किया जाने लगा है। पारम्परिक विश्लेषणों में ऐसा भेद नही किया जाता था क्योंकि इनमें यह पूर्वधारणा की जाती थी कि वस्तुओं को खरीदते ही उनका उपभोग हो जाता है। स्थायी वस्तुओं की मांग का विश्लेषण नेरलोव के 'संग्रह समायोजन स्वरूप" द्वारा किया जा सकता है। यह इस पूर्वधारणा पर आधारित है कि स्थायी वस्तुओं की मांग उपभोक्ता की केवल चालू आय पर ही निर्भर न हो कर इस बात पर भी निर्भर है कि इसके पास इस वस्तु की पहले से ही कितनी मात्रा है।

7.7 शब्दावली

स्वयंतथ्य (axioms)	उपभोक्ता की पसंद के बारे में पूर्वधारणाएं
मजबूत क्रम (Strong Ordering)	उपभोक्ता को उपलब्ध विभिन्न समूहों के बीच उसका एक निश्चित पसंद क्रम
कमजोर क्रम (Weak Ordering)	उपभोक्ता को उपलब्ध विभिन्न समूहों के बीच उसका एक अनिश्चित क्रम
प्रतिस्थापन की सीमान्त (Marginal Rate of Substitution)	दर त्यागी गयी वस्तु की मात्रा तथा इसके बदले में प्राप्त किसी अन्य वस्तु की अतिरिक्त मात्रा का वह अनुपात जिससे उपभोक्ता की कुल उपयोगिता पर कोई प्रभाव न पड़े
गणनावाचक उपयोगिता (Cardinal Unility)	किसी वस्तु की उपयोगिता को एक निश्चित संख्या जैसे 1,2,3 अदि द्वारा व्यक्त करना।
क्रम उपयोगिता (Ordinal Unility)	किसी वस्तु की उपयोगिता को एक निश्चित क्रम, जैसे प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि देना
स्थायी वस्तुएं (Durable goods)	ऐसी वस्तुएं जिनका उपयोग लम्बी अवधि तक किया जा सकता है।

7.8 बोध प्रश्न

1. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से उपने उत्तर का मिलान करें।

2. अनिश्चितता की दशाओं में उपभोक्ता के व्यवहार के विश्लेषण की आवश्यकता क्यों है?
3. उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण हो इसके निर्धारक स्वयंतथ्य क्या है?
4. प्रकटित पसंद विश्लेषण की पूर्वधारणाए उपभोक्ता के बारे में किन-किन स्वंय तध्यों के। कमजोर बनाती है?
5. नॉयमेन तथा मार्ग़नस्टर्न का विश्लेषण किन-किन स्वयंतव्यों पर आधारित हैं?
6. स्थायी उपभोग वस्तुओं की मांग के बारे में एक अलग विश्लेषण की आवश्यकता क्यों है?

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Baumol, Economic Theory and oprations Analysis, prentice Hall, 1977, IV edition Ch. 9, 14817

H.A.J Green, Consumer Theory, Mcmillan, 1979, Chs – 10

J.M. Henderson and R.E Quandt, Micro Economic Theory " A Mathematical Approach", Mc Graw- Hill- Kogukusha, 1971, sec 2.8.&2.9

Koutsoyiannis, Modern micro- Economics, Macmillan, 1979, Ch.2, Sec3-A

Layard and walters, micro Economic Theory, London School of Economics 1982, CH.5

Milton Friedman, price Theory.

7.10 व्यावहारिक प्रश्नो के उत्तर

उपभोक्ता को कई बार निर्णय अनिश्चितता की दशाओं में लेने पड़ते है। जैसे कि वह क्य करे या नही करे, वस्तु अभी खरीदे या कुछ समय बाद खरीदे, अपनी आय का वह भाग जो उसने व्यय नहीं किया है किस रूप में रखें, आदि। अत: अनिश्चितता की दशाओं में एक अलग विश्लेषण की आवश्यकता है।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण है तीन स्वयंतथ आवश्यक है : (1) पूर्णता का स्वयतथ्य जिसके अनुसार उपभोक्ता किन्हीं भी दो समूहों के बीच एक निश्चित पसंदक्रम रखता है। (2) संक्रमता का स्वयंतथ्य जिसके अनुसार उपभोक्ता विभिन्न समूहों में भेद करने की पूरी समझ रखता है (3) बुद्धिसंगत चुनाव का स्वयंतथ्य जिसके अनुसार उपभोक्ता व्यवहार में केवल उपने पसंदक्रम को ही मानता है।

विभिन्न विकल्पों में से केवल एक ही विकल्प पसंद करने की पूर्वधारणा पूर्णक्रम स्वयंतथ्य को कमजोर बनाती है, क्योंकि पसंद किये हुए विकल्प के अतिरिक्त अन्य विकल्पों के बारे में उपभोक्ता कुछ नही कहता। सामंजस्य की पूर्वधारणा सक्रमकता तथा बुद्धिसंगत पूनाव कें स्वयततथ्यों के लिए कठिनाई उत्पन्न करती है।

नायमन तथा मार्गनस्टर्न का विश्लेषण पाँच स्वयंतध्यों पर आधारित है। ये है : (1) पूर्णक्रम (2) पसन्दों की निरन्तरता (3) स्वतन्त्रता (4) असमान संभाव्यता तथा (5) जटिलता।

स्थायी वस्तुएं वे होती है जिन्हें बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है जैसै कि टेलीविजन रेडियो, कपड़े आदि। इन वस्तुओं की मांग पर प्रभाव डालने वाला एक अतिरिक्त कारक यह भी है कि उपभोक्ता के पास इन वस्तुओं की पहले से ही कितनी मात्रा है। अत: इन वस्तुओं के बारे में एक अलग विश्लेषण की आवश्यकता है।

इकाई 8

फर्म के उद्देश्य - लाभ अधिकतमकरण, विक्रय अधिकतमकरण

Purpose of the Firm - Profit Maximization, Sales Maximization

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 फर्म

8.3 फर्म की विशेषताएं

8.4 फर्म के उद्देश्य

- 8.4.1 लाभ अधिकतमकरण
- 8.4.1.1 कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं द्वारा
- 8.4.1.2 सीमान्त तथा औसत रेखाओं द्वारा
- 8.4.2 विक्रय अधिकतमकरण अथवा आय अधिकतमकरण
- 8.4.3 संतुष्टि अधिकतमकरण
- 8.4.4 उपयोगिता अधिकतमकरण
- 8.4.5 वृद्धि अधिकतमकरण
- 8.4.6 व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त
- 8.4.7 पूर्ण लागत कीमत सिद्धान्त

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.8 अभ्यासों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत फर्म का सामान्य परिचय समझाने के पश्चात् इसके उद्देश्यों का वर्णन किया गया है जिसके अध्ययन के पश्चात् आप :

1. फर्म को परिभाषित कर सकेंगे;
2. फर्म की विशेषताओं अर्थात् लक्षणों को समझ सकेंगे;
3. फर्म की अवधारणा एवं विशेषताओं को जान लेने के बाद इसके विभिन्न उद्देश्यों यथा-लाभ अधिकतमकरण, विक्रय अधिकतम करण स्तुष्टि अधिकतमकरण, उपयोगिता अधिकतमकरण, वृद्धि अधिकतम करण आदि का आलोचनात्मक अध्ययन करेंगे।
4. इसके अतिरिक्त सायर्ट तथा मार्च के व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त एवं पूर्ण लागत अथवा औसत लागत कीमत निर्धारण के सिद्धान्तो की आलोंचनात्मक समीक्षा कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपका परिचय फर्म से कराया जायेगा साथ ही आप इस तथ्य से भी अवगत हो सकेंगे कि ये फर्म किन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करती है।

इसमें आपको यह समझाया जायेगा कि एक फर्म सम्मति के स्वामित्व तथा प्रसंविदीय सम्बन्धों का एक वैधानिक स्वरूप होती है तथा जो अपने स्वामियों की सम्पत्ति को बढ़ाने की दृष्टि से वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय करती है।

इसके अतिरिक्त फर्म की परिभाषा के आधार पर उसकी विशेषताओं की भी विवेचना की जायेगी ताकि आप इकाई के प्रमुख भाग ' 'फर्म के उद्देश्य " को सरलता से समझ सकें।

फर्म के उद्देश्य के सम्बन्ध में आपको इस तथ्य से परिचित कराया जायेगा कि प्रत्येक कर्म के कुछ उद्देश्य होते है जिन्हें प्राप्त करना फर्म के लिए सर्वोपरि होता है। फर्म के उद्देश्य का आशय उस लक्ष्य से होता है जिसे प्राप्त करने के लिए फर्म प्रयत्नशील रहती है।

इस इकाई में आपको इस बात का भी बोध कराया जायेगा कि यद्यपि फर्म के पारम्परिक सिद्धान्त में फर्म का एक मात्र उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है। परन्तु प्रयोग सिद्ध प्रमाणो से व्यावसायिक फर्मो के अन्य उद्देश्यों यथा अधिकतम विक्रय, अधिकतम विकास इत्यादि को भी प्राप्त करना हैं।

8.2 फर्म

साधारण बोलचाल की भाषा में एक व्यक्तिगत इकाई जो किसी वस्तु का उत्पादन या विक्रय करती है, को फर्म कहते है। फर्म की परिभाषा के सम्बन्ध में भी अन्य आर्थिक पहलुओं की ही भांति अर्थशास्त्री एकमत नही है। जहां एक तरफ हैण्डरसन ने कहा कि "एक फर्म वह तकनीकी इकाई है 'जहाँ वस्तुएँ उत्पादित की जाती है।' वस्तुओं और सेवाओं का विक्रय करने वाली आर्थिक इकाई को फर्म कहते है। "

फर्म की ये दोनों परिभाषाएं एकांगी एवं अपूर्ण है और दोनों की विशेषताओं को अलग नही किया जा सकता। इन दोनों को संयुक्त रूप से व्यक्त करने पर ही फर्म की अवधारणा को स्पष्ट किया जा सकेगा। ऐसा करने पर हम यह कह सकेंगे कि ' 'एक व्यावसायिक फर्म उस तकनीकी आर्थिक इकाई को कहते है जो किसी वस्तु या वस्तुओं एवं सेवाओ, का उत्पादन अथवा विक्रय दोनों करती हों।"

एल्शियन एवं एलन ने व्यावसायिक फर्म की एक उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दी है- ''एक व्यावसायिक फर्म सम्पत्ति के स्वामित्व तथा प्रसविदीय सम्बन्धों का एक वैधानिक स्वरूप होती है तथा जो अपने स्वामियों की सम्पत्ति बढ़ाने की दृष्टि से वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय करती है।"

8.3 फर्म की विशेषताएं

फर्म का आशय समझ लेने पर अब हम उसकी विशेषताओं का अध्ययन भली प्रकार कर सकेंगे, क्योंकि फर्म की विशेषताएं मूलरूप से उसकी परिभाषाओं पर ही आधारित है । फर्म की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है-

1. फर्म का स्वरूप एकल स्वामित्व, साझेदारी, संयुक्त पूँजी कम्पनी अथवा निगम हो सकता है।
2. फर्म का आकार उत्पत्ति या विक्रय के पैमाने पर निर्भर करता है।
3. एक फर्म चाहे वस्तुओं का उत्पादन और विक्रय दोनों कर रही हो अथवा केवल वस्तुओं का विक्रय अथवा केवल वस्तुओं का उत्पादन कर रही हो, प्रत्येक स्थिति में वस्तुओं अथवा सेवाओं का क्रय किया जाना अनिवार्य है।

8.4 फर्म के उद्देश्य

साधारण शब्दों में फर्म के उद्देश्य से आशय उस सत्य से है जिसे प्राप्त करने के लिए फर्म प्रयत्नशील रहती है।

फर्म के पारम्परिक सिद्धान्त में फर्म का एकमात्र उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है परन्तु प्रयोग सिद्ध प्रमाणों से व्यावसायिक फर्मो के अन्य उद्देश्यों यथा विक्रय अधिकतमकरण, उत्पादन अधिकतमकरण, संतुष्टि अधिकतमकरण, उपयोगिता अधिकतमकरण, विकास एवं स्तुष्टि अधिकतमकरण तथा सुरक्षा प्रयोजन इत्यादि का भी पता चलता है। आईये अब हम फर्म के इन उद्देश्यों का पृथक-पृथक अध्ययन करें ।

8.4.1 लाभ अधिकतमकरण (Profit Maximization)

सामान्यतया लाभ अधिकतमकरण को फर्म का प्राथमिक उद्देश्य माना जाता है । फर्म के पारम्परिक सिद्धान्त की मान्यता ही यह है कि प्रत्येक फर्म अपने कुल लाभ को अधिकतम करना चाहती है। जिस मात्रा का उत्पादन करने पर फर्म का लाभ अधिकतम होता है उस अवस्था का साम्य की अवस्था कहा जाता है, अर्थात् एक फर्म साम्य की स्थिति में उस समय होती है जबकि उसके उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नही होती है।

सामान्य तौर पर अधिकतम लाभ की स्थिति को निम्नलिखित दो प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है: -

(अ) कुल लागत तथा कुल आगम रेखाओं द्वारा

(ब) सीमान्त तथा औसत रेखाओं द्वारा

(अ) कुल लागत तथा कुल आगम रेखाओं द्वारा

उत्पादन की जिस मात्रा पर कुल आगम तथा कुल लागत का अन्तर सबसे अधिक होता है उस बिन्दु पर फर्म का लाभ अधिकतम होता है। उस तथ्य को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है- चित्र 8.1 में,TR कुल आगत रेखा और TC कुल लागत रेखा है। चित्र में उत्पादन की प्रत्येक मात्रा से TR तथा TC की तुलना करने से यह पता लगता है कि उत्पादन के साथ लाभ किस प्रकार से परिवर्तित होता है। उदाहरण के लिए यदि फर्म OM_1 से कम उत्पादन करती है तो उसको हानि होगी क्योकि O से M_1 तक के क्षेत्र में TC_1TR के ऊपर रहती हैं। यदि फर्म OM_1 इकाइयों का उत्पादन करती है तो कुल लाभ शून्य होगा क्योंकि उत्पादन के इस स्तर पर TR=TC है। उस बिन्दु A को जहां पर TR तथा TC बराबर है, सम्बिच्छेद बिन्दु [Break Even Point] कहते है। M_1 से M_2 के बीच उत्पादन के किसी भी स्तर पर फर्म को धनात्मक लाभ प्राप्त होता है। परन्तु O M_2 उत्पादन पर फर्म का कुल लाभ शून्य हो जाता है, चूंकि यहां पर पुन: कुल आगम कुल लागत के बराबर है। अर्थात् B बिन्दु के बाद कुल लागत रेखा कुल आगम रेखा के ऊपर रहती है इसलिए M_2 उत्पादन के बाद उत्पादन के सभी स्तरों पर फर्म को हानि होगी। इससे स्पष्ट है कि जिस समय वस्तु की उत्पादन मात्रा OM रहती है उस समय TR तथा TC के बीच खड़ी दूरी RS सबसे अधिक रहती है जों अधिकतम लाभ को दर्शाती है।

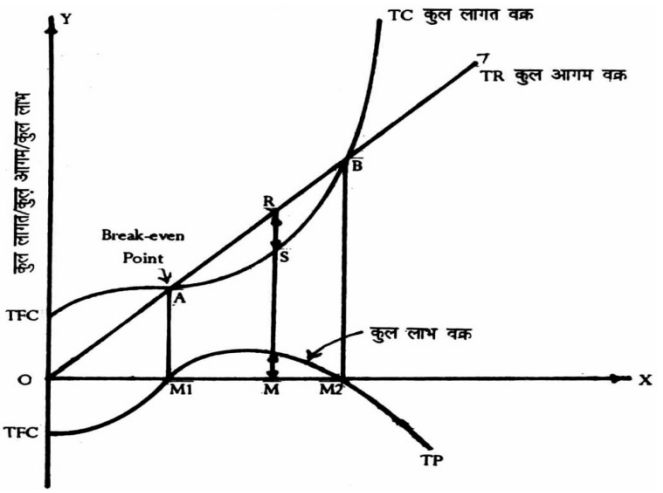

चित्र 8.1

यद्यपि आमतौर पर चित्र 8.1 के द्वारा अधिकतम लाभ को प्रदर्शित किया जाता है किन्तु इस विधि में मुख्यत: दो कठिनाइयां आती है:

एक ही दृष्टि में कुल लागत एवं कुल आगम में अधिकतम अन्तर मालूम करना सरल नहीं है।

इसी प्रकार एक ही दृष्टि से प्रति इकाई वस्तु का मूल्य ज्ञात करना सम्भव नही है।

(ब) सीमान्त तथा औसत रेखाओं द्वारा

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अधिकतम लाभ ज्ञात करने की कुल लागत एवं कुल आगम विधि के स्थान पर सीमान्त तथा औसत रेखाओं का प्रयोग किया है। इनके अनुसार उत्पादन की जिस मात्रा पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त आगम बराबर होते है, उत्पादन की वह मात्रा अधिकतम लाभप्रदान करती है। ऐसी

स्थिति मे फर्म अपने उत्पादन को ऐसे स्तर पर निश्चित करेगी जो सीमान्त आगम और सीमान्त लागत को बराबर करने वाला हो। इसे नीचे दिये गये रेखाचित्र 8.2 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है-

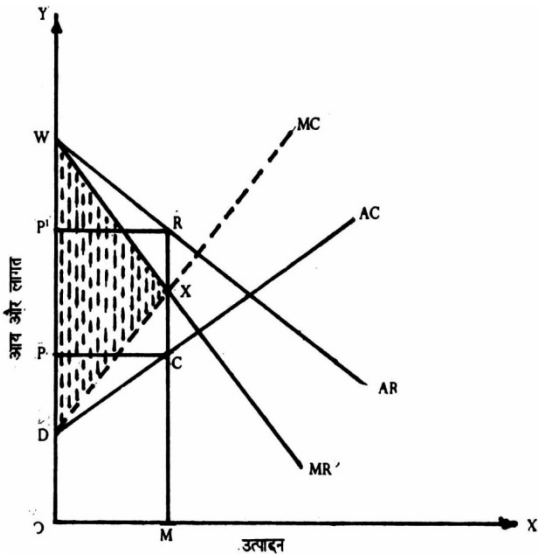

चित्र 8.2

चित्र 8.2 स्पष्ट है कि OM उत्पादन पर फर्म की सीमान्त आगत उसकी सीमान्त लागत के बराबर है और इसलिए उत्पादन के इस स्वर पर फर्म का लाभ अधिकतम होगा। फर्म अपने उत्पादन के लिए MR कीमत लेगी जो OP^1 के बराबर है। लाभ की मात्रा PRLP आयत के क्षेत्रफल के बराबर होगी। यह सबसे बड़ा आयत है जो औसत आगत तथा औसत लागत वक्रों और Y अक्ष के बीच में खीचा जा सकता है। यहां पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि आयत P^1RLP का क्षेत्रफल त्रिभुज WXP के क्षेत्रफल के बराबर है जो MR और MC वक्रों के बीच स्थित है। अत: यह कहा जा सकता है कि चूंकि उत्पादन के OM स्वर पर फर्म का सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर है। इसलिए यही उसका अधिकतम लाभ का बिन्दु होगा। अर्थात् यह एक ऐसा बिन्दु है जिसमें विस्तार एवं संकुचलन की प्रवृत्ति नही होगी।

कारण यह है कि उपर्युक्त स्थिति के अतिरिक्त यदि उत्पादन को OM से आगे बढ़ाया जाता है तों सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक हो जायेगी और फलत: उत्पादन में इस प्रकार की वृद्धि कुल लाभ को कम कर देगी। इसी प्रकार यदि उत्पादन को OM से कम किया जाता है तो सीमान्त आगम (MR), सीमान्त लागत (MC), से अधिक होगी। जिसका अभिप्राय यह होगा कि इससे आगे उत्पादन करना फर्म के हित में होगा और फलत: OM उत्पादन स्तर तक फर्म अपना उत्पादन अवश्य बढ़ायेगी। इस प्रकार OM ही उत्पादन का वह अनुकूलतम स्तर है जहां पर फर्म की सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत बराबर होने से लाभ अधिकतम होगा।

यद्यपि सीमान्त लागत और सीमान्त आगम का बराबर होना फर्म के अधिकतम लाभ की अनिवार्य शर्त है, किन्तु यह शर्त अकेले पर्याप्त नहीं है। इसके लिए एक दूसरी शर्त का भी पूरा होंना आवश्यक है। और

वह यह है कि सीमान्त लागत रखा सीमान्त आगम रेखा को नीचे सें काटें। यदि यह दूसरी शर्त पूरी नही होगी तो फर्म अधिकतम लाभ नही प्राप्त कर सकती है। इस तथ्य को निम्नरेखाचित्र 8.3 द्वारा और भी स्पष्ट किया जा सकता है : -

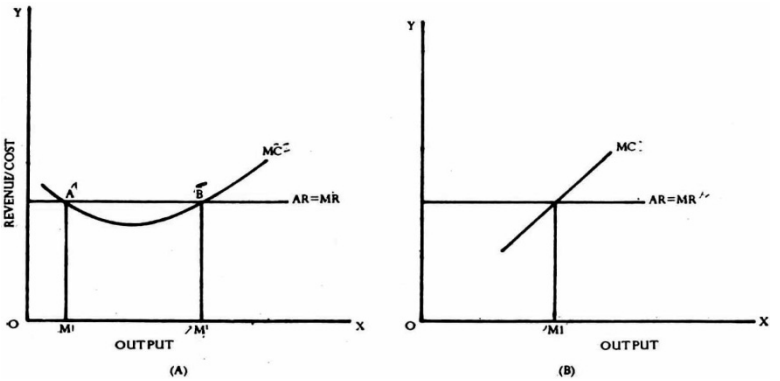

चित्र 8.3

चित्र 8.3 में MR वक्र को MC वक्र पहले बिन्दु A पर काटता है। यह MC=MR की पहली शर्त को तो पूरा करता है परन्तु यह अधिकतम लाभ का बिन्दु नही है क्योंकि A के बाद MC वक्र MR वक्र से नीचे रहता है। न्यूनतम उत्पादन फर्म के लिए लाभदायक नहीं है क्योंकि OM से अधिक उत्पादन करके फर्म अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठा सकती है। हां OM_1पर पहुंचकर फर्म आगे उत्पादन बन्द कर देगी क्योकि OM_1 उत्पादन का वह स्तर है जहां फर्म के लाभ अधिकतम होने की दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं।

अर्थात् MC=MR है और MR को MC वक्र नीचे से काटता है। यदि फर्म OM_1 से अधिक उत्पादन करना चाहती है तो उसे हानि उठानी पड़ेगी, क्योंकि संतुलन बिन्दु B के बाद सीमान्त लागत से सीमान्त आगम कम हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होने की दो शर्तें है:-

1. सीमान्त लागत (MC) न् सीमान्त आगम (MR) हो
2. सीमानत लागत वक्र सीमान्त आगम को संतुलन बिन्दु अथवा संतुलन की मात्रा पर नीचे से काटे।

अधिकतम लाभ की ये दोनों शर्तें प्रत्येक प्रकार के बाजार चाहे वह पूर्ण प्रतियोगिता हो या अपूर्ण अथवा एकाधिकारी प्रतियोगिता, पूरी होनी चाहिए। ये दोनों शर्तें अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों ही दशाओं में उपयुक्त है।

आलोचनाएं :

अर्थशास्त्रियों ने अधिकतम लाभ की निम्न प्रकार से आलोचना की है:-

1. अधिकतम लाभ सिद्धान्त में यह माना गया है कि फर्म अपने अधिकतम लाभ के स्तर के बारे में निश्चित हैं। जबकि वास्तव में लाभ सबसे अधिक अनिश्चित है क्योंकि यह आय प्राप्ति और भविष्य में होने वाली लागतों के अन्तर से प्राप्त होते है।
2. अधिकतम लाभ के उद्देश्य की एकाधिकारी अथवा अल्पाधिकरी फर्म की अपेक्षा पूर्ण प्रतियोगिता वाली फर्म से अधिक सम्बंद्धता है।
3. अधिकमत लाभ की मान्यता है कि सभी फर्मो को न केवल उनकी अपनी अपितु अन्य फर्मो की लागत और आय के कार्यो की लागत और आय के कार्यो का भी पूर्ण ज्ञान होता है। जबकि वास्तव में फर्मो को उन परिस्थितियों का पर्याप्त ज्ञान नही होता जिसके अन्तर्गत वे कार्य करती है। अधिक से अधिक उन्हें अपनी उत्पादन लागत का पता हो सकता है लेकिन वे बाजार के मांग वक्र के बारे में निश्चित नही हो सकते।
4. अधिकतम लाभ के सम्बन्ध में यह माना गया है कि फर्म को सीमान्त लागत और सीमान्त आगम का इतना अनुमान होता है जिससे वह उनको बराबर बनाती है। जबकि श्री हाल और हिच (Hall and Hitch) ने अपने प्रयोग सिद्ध प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकाले है कि फर्म को सीमान्त लागत और सीमान्त आगम का पता नही होता है।
5. आलोचकों का मत है कि चूंकि फर्मे अपनी वस्तु की मांग की परिस्थितियों के बारे में बिल्कुल निश्चित नही हो सकती है, चाहे वे लागत परिस्थितियों से परिचित भी हो फिर भी वे उतना उत्पादन करेंगी जिससे कि लाभ अधिकतम हो। यह उतपादन वह नही हो सकता जिससे वास्तव में लाभ अधिकतम होता है।
6. आलोचकों का यह भी कहना है कि फर्म के अधिकतम लाभ का उद्देश्य अल्पकाल से सम्बन्धित है। यदि हम यह मानते है कि फर्मे अधिकतम लाभ कमाती है तो वे अल्पकाल की अपेक्षा दीर्घकाल में अधिकतम लाभ कमाती है।

वास्तव में आर्थिक सिद्धान्त में लाभ अधिकतमकरण का उद्देश्य पूर्ण, अपूर्ण एवं एकाधिकारी प्रतियोगी फर्मो के लिए है। किन्तु अल्पाधिकारी फर्म की स्थिति में इसकी आलोचना के कारण इसे छोड़ दिया गया है। इस प्रकार इस सिद्धान्त में अर्थशास्त्रियों द्वारा जो विभिन्न आलोचनाएं की गयी है वे अल्पाधिकार एवं द्वयाधिकार से ही सम्बन्धित है।

बोध प्रश्न 1

अपना उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का इस्तेमाल करें।

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. किसी फर्म का प्रमुख उद्देश्य क्या है ?लाभ अधिकतमकरण की स्थिति को किस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है?

लाभ अधिकतमकरण के आलोचको द्वारा इस अवधारणा के अनेक विकल्प प्रस्तुत किये गये है जिनमें से कुछ प्रमुख विकल्पों का अध्ययन हम यहां पर करेंगे।

8.4.2 विक्रय अधिकतमकरण अथवा आय अधिकतमकरण

प्रो. बॉमोल (Prof. Baumol) ने विक्रय अधिकतमकरण को पारम्परिक लाभ अधितमकरण की मान्यता के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि व्यावहारिक जीवन में एक फर्म का अन्तिम उद्देश्य अपने कुल विक्रय या आय को अधिकतम करना होता है न कि कुल लाभ को। इनका विचार है कि फर्म अपने विक्रय को न केवल इसलिए बढ़ाना चाहती है कि वह अपनी परिचालन कुशलता के उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहती है अपितु उसके लिए विक्रय से तात्पर्य वस्तु को बेचने से प्राप्त कुल आय है। अत: प्रो. बॉमोल ने अपनी इस परिकल्पना को विक्रय अधिकतमकरण अथवा आय अधिकतमकरण की संज्ञा दी हैं।

अपनी बिक्री अधिकतमकरण की अवधारणा की विवेचना करते हुए बॉमोल ने बताया कि बिक्री बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील फर्मे उत्पादन लागत और लाभ मात्रा की उपेक्षा नही करती। वे यह मानते है कि यद्यपि फर्म के बिक्री उद्देश्य और लाभ उद्देश्य में कुछ संघर्ष होता है। उनके अनुसार ' 'वास्तविक जगत में, व्यापारी बिक्री में वृद्धि करने का प्रयास करते है परन्तु शर्त यह है कि उसको उत्पादन लागत के अतिरिक्त विनियोग पर सामान्य दर से लाभ भी प्राप्त होना चाहिए। उनके अनुसार प्रबन्ध इससे अधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्टा नही करता, एक बार लाभ का यह न्यूनतम स्तर प्राप्त हो जाता है तो विक्रय (न कि लाभ) प्रमुख उद्देश्य हो जाता है। एकाधिकृत-प्रतियोगिता और विशेषकर अल्पाधिकारी प्रतियोगिता (जो कि वास्तविक जीवन में भी सर्वत्र मिलती है) की फर्म न्यूनतम लाभ प्राप्ति के बाद विक्रय अधिकतमकरण का लक्ष्य रखती है।

इस प्रकार वास्तविक जीवन में फर्मो का उद्देश्य लाभ के बजाय विक्रय अधिकतमकरण ही , होता है। ' 'जब तक लाभ इतने अधिक है कि वे हिस्सेदारों कों सन्तुष्ट रखते है और कम्पनी के विकास की ठीक प्रकार से वित्त व्यवस्था करते है। प्रबन्धकों का प्रयत्न लाभों में वृद्धि के स्थान पर बिक्री से आय को अधिकतम रखना होगा।"

अब प्रश्न यह उठता है कि फर्म का लाभ के स्थान पर बिक्री अधिकतम करने का उद्देश्य कहां तक विवेकशील है?

प्रो. बॉमोल का कहना है कि उनकी बिक्री अधिकतमकरण की अवधारणा उद्यमी के विवेकपूर्ण व्यवहार की मान्यता के साथ पूर्णतया संलग्न है। वे विवेकशीलता की एक नयी व्याख्या करते है, जो अधिक वैज्ञनिक है। उनके अनुसार विवेकशीलता का अभिप्राय उद्देश्यों के चयन से नही है, बल्कि इसका अभिप्राय: उद्देश्यों की कुशलता तथा संगत रूप से प्राप्त करना है।

प्रो. बॉमोल के बिक्री अधिकतमकरण सिद्धान्त को रेखाचित्र 8.4 की सहायता से स्पष्ट किया गया है –

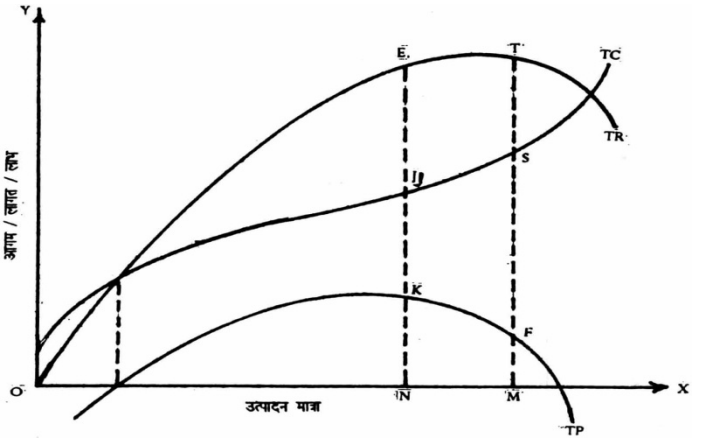

चित्र 8.4

रेखाचित्र 8.4 की सहायता से स्पष्ट है कि रेखाचित्र में TP (लाभ वक्र) TR (कुल आय वक्र) तथा TC (कुल लागत वक्र) है।

कुल लाभ वक्र TP पर K बिन्दु सर्वोच्च बिन्दु है। अत : यदि लाभ अधिकतमकरण का लक्ष्य रखा जाय तो फर्म ON उत्पादन मात्रा का निर्धारण करेगी। इसके विपरीत यदि बिक्री अधिकतमकरण उद्देश्य हो जैसा कि लाभ अधिकतमकरण की मात्रा ON से NM अधिक है।

OM उत्पादन मात्रा पर कुल आय MT है जो कि चित्र के अनुसार सर्वाधिक है क्योंकि कुल आय रेखा TR सर्वोच्च बिन्दु है।

चित्र अधिकतम लाभ मात्रा को रेखा EJ (=KN) द्वारा प्रदर्शित किया गया है। बिक्री अधिकतमकरण की आकांक्षी फर्म की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त उत्पादन मात्रा OM है लेकिन फर्म अपनी उत्पादन मात्रा ON निश्चित करेगी अन्यथा उसे अधिकतम लाभ मात्रा KN उपलब्ध नही होगी।

बिक्री अधिकतमकरण की स्थिति में कीमत:

= कुल आय / कुल उत्पादन अर्थात् MT/OM निश्चित की जायेगी।

चित्र में लाभ अधिकतमकरण की उत्पादन मात्रा ON बिक्री अधिकतमकरण की उत्पादन मात्रा OM से NM कम है।

लाभ अधिकतम करण की स्थिति में सीमान्त लागत MC सीमान्त आय MR एक दूसरे के बराबर होती है। यदि संतुलन बिन्दु (सीमान्त आय = सीमान्त लागत) के उपरांत एक और इकाई का उत्पादन किया जाता है तो लागत और कुल आय दोनों में वृद्धि होती है। यद्यपि लागत में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है । प्रो. बॉमोल का मत है कि लाभ अधिकतमकरण की दशा में जबकि फर्म अधिकतम आवश्यक लाभ मात्रा (चित्र में ON उत्पादन पर KN लाभ) से कम लाभ FM (=TS) प्राप्त करती है तो बिक्री अधिकतमकरण की दृष्टि से यह उचित ही है कि वह कीमत कम करके अपनी उत्पादन मात्रा को OM तक बढ़ाले ।

आलोचनाएं

प्रो. बॉमोल के आय (बिक्री) अधिकतम करने की परिकल्पना की आधुनिक अर्थशास्त्रिओं द्वारा सराहना की गई है । लाभ अधिकतमकरण के जितने भी विकल्प प्रस्तुत किये गये है । उनमें प्रो. बॉमोल का मॉडल वास्तविकता के सबसे अधिक निकट है। ऊपर हम देख चुके है कि लाभ की अधिकतम करने की तुलना में बिक्री को अधिकतम करने के उद्देश्य के अन्तर्गत उत्पादन अधिक होता है तथा कीमत कम रहती है । इसलिए जिस अंश तक फर्मे बिक्री को अधिकतम करने के उद्देश्य से वास्तव में प्रेरित होती है उस सीमा तक उनकी कीमत तथा उत्पादन नीतियां उपभोक्ताओं के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करती है । बिक्री अधिकतमकरण करने की प्रेरणा में फर्मे वास्तविक जगत से किस सीमा तक प्रभावित होती है, इस पर अनुभवगमन अनुसन्धान की आवश्यकता है । अभी तक इसमें अधिक अनुभवगम्य अनुसंधान नही है।

बोध प्रश्न 2

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरी से अपने उतरों का मिलान करें ।

1. बॉमोल के बिक्री अधिकतमकरण के उद्देश्य को समझाइए ।

8.4.3 संतुष्टि अधिकतमकरण अथवा तुष्टिगुण अधिकतमकरण

संतुष्टि या तुष्टिगुण वह अन्तिम उद्देश्य है जिसको प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है । इसीलिए कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे टिवर सिटोवस्की, बैन्जामिन हिगिन्स तथा मोल्विर्न रेडर ने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य के स्थान पर संतुष्टि (तुष्टिगुण) अधिकतम करने अथवा अधिमान फलन अभिकतम करने का विचार प्रस्तुत किया है । इन अर्थशास्त्रियों का कहना है कि लाभ अधिकतमकरण और स्तुंष्टि को प्राप्त करना चाहता है ऐसा वह न केवल अपने उद्यम से प्राप्त मौद्रीक लाभों के द्वारा भौतिक सुख सुविधाएं बढ़ाकर कर सकता है बल्कि इसके साथ ही वह अपने आराम या अवकाश का समय बढ़ाकर भी चाहेगा। कारण यह है कि जैसे-जैसे उसकी आय (लाभ) मे वृद्धि होती है, वह प्रयास (उत्पादन) की बजाय अवकाश को अधिक पसन्द करता है । सिटोवस्की की अधिकतम संतुष्टि की परिकल्पना को चित्र 8.5 में दर्शाया गया है ।

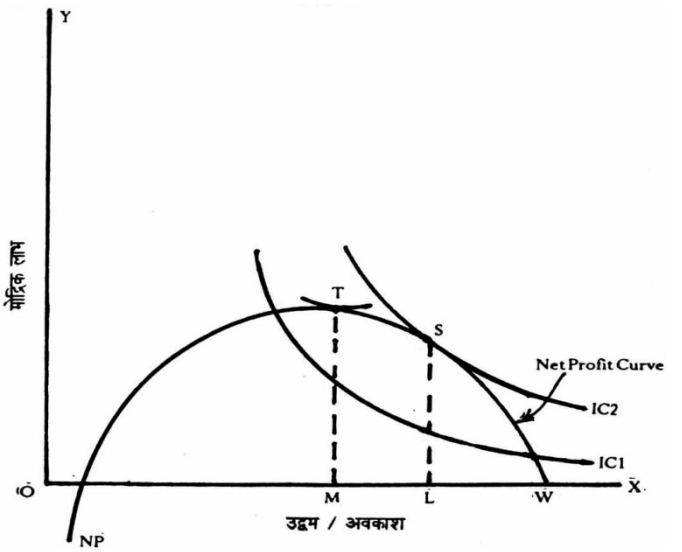

चित्र 8.5

चित्र 8.6 में उद्यमी का अनधिमान या उदासीनता मानचित्र खीचा गया है जिसमें उदासीनता वक्र, मुद्रा, लाभों व आराम (अवकाश) कें ऐसें विभिन्न सयोंगों को प्रदर्शित करते है जिनसे उद्यमी को सामान्य संतुष्टि प्राप्त होती है। उद्यमी का संतुलन जितने ऊँचे तटस्थता वक्र पर होगा उतनी ही अधिक संतुष्टि उसे प्राप्त होगी।

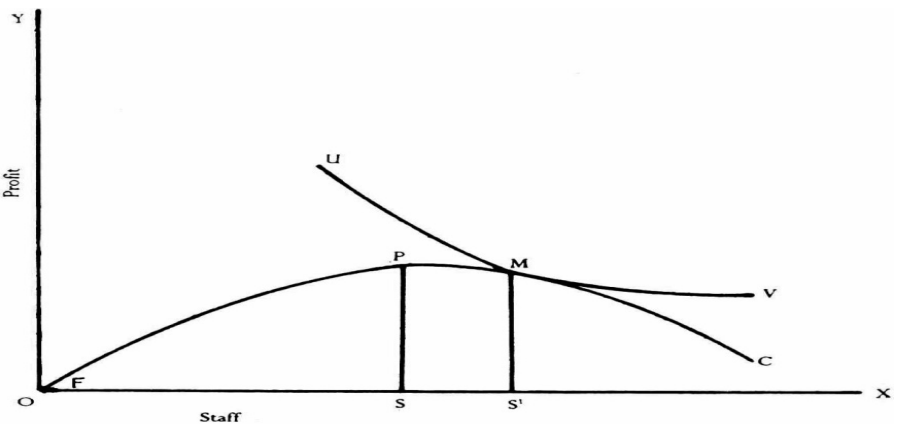

चित्र 8.6

चित्र OX अक्ष पर बिन्दु W शून्य उत्पादन को दर्शाता है जिसका यह अर्थ है कि उद्यमी बिल्कुल कार्य नहीं करता अर्थात् पूरी तरह आराम करता है। अन्य शब्दों में OW कुल अवकाश अथवा उद्यमी की क्रियाहीनता का द्योतक है।

जब वह उद्यमी के रूप में कुछ कार्य करता है तो वस्तुओं का उत्पादन कर कुछ शुद्ध लाभ प्राप्त करता है। यह शुद्ध लाभ उसकी कुल आय और कुल लागत का अन्तर होता है। कुल लागत में उसका सामान्य लाभ (या प्रबन्ध की मजदूरी) शामिल रहती है।

चित्र में NP शुद्ध लाभ वक्र है जो W से प्रारम्भ हो रहा है। यह वक्र उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर उद्यमी को प्राप्त होने वाले शुद्ध लाभों को दर्शाता है जिनको बिन्दु W से बायी ओर से दाँयी ओर को मापा गया है।

संतुष्टि अधिकतमकरण का आकांक्षी उद्यमी सर्वोच्च उदासीनता वक्र पर पहुँचना चाहेगा। चित्र में शुद्ध लाभ वक्र NP उदासीनता वक्र IC_2 को S बिन्दु पर स्पर्श करता है। अत: बिन्दु S पर उसके अधिकतम संभव संतुष्टि प्राप्त होगी। इस दशा में उद्यमी को LS के बतबर शुद्ध लाभ प्राप्त होंगा।

OL उत्पादन की दरों में उद्यमी की क्रियाहीनता को दर्शाता है अर्थात् OL उद्यमी को उपलब्ध आराम की माप है। चित्र में S बिन्दु पर यद्यपि उद्यमी की संतुष्टि अधिक है परन्तु उसका शुद्ध लाभ अधिकतम प्राप्त होता है।

लाभ अधिकतमकरण शुद्ध लाभ रेखा NP के T बिन्दु पर होता है जबकि वह WL के बजाय WM मात्रा का उत्पादन कर रहा है अर्थात् WM के बराबर उद्यमी क्रियाएं कर रहा है और केवल OM आराम की मात्रा का उपयोग कर रहा है।

OX अक्ष तथा शुद्ध लाभ वक्र में MT सर्वाधिक अन्तर को व्यक्त करता है, और शुद्ध लाभ वक्र पर उच्चतम बिन्दु है। अत: यह स्पष्ट है कि अधिकतमकरण की उत्पादन मात्रा WL लाभ अधिकतमकरण की मात्रा WM से कम है।

इस प्रकार हम देखते है कि यदि उद्यमी के व्यवहार के अध्ययन में स्तुष्टि की अवधारणा को शामिल कर लेते है तो उत्पादन का स्तर लाभ अधिकतम करने वाली उत्पादन मात्रा से नीचे निधारित होती है।

आलोचनाएं

सिटोवरकी ने स्वयं बताया है कि उसकी अधिकतम संतुष्टिकी कल्पना में दो कमजोरियां है:-

1. यह मानना अवास्तविक है कि उद्यमी की काम करने की इच्छा उसकी आय से अलग है। आखिरकार उद्यमी की पैसा कमाने की महत्वाकांक्षा को आय में वृद्धि होने के साथ निरूत्साहित नही किया जा सकता। व्यापारी अपनी कमाई हुई आय को अपनी सफलता और कार्य कुशलता की सूची के रूप में देखते है और अपने व्यवसाय में विशिष्टता प्राप्त करने की आकांक्षा स्वयं पैसा कमाने की इच्छा दर्शाती है।
2. यह कहना कि एक उद्यमी अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है पूर्णतया सामान्य कथन है। यह उसके मनोवैज्ञानिक अथवा व्यवहार के बारे में कुछ नही बताता है। इसलिए यह मात्र सत्यवाद है और प्रयोगसिद्ध संतुष्टि से रहित है।

बोध प्रश्न 3

इकाई के अन्त में दिये गयें उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. सिटोवस्सकी की संतुष्टि अधिकतमकरण की अवधारणा को समझाइए।

8.4.4 उपयोगिता अधिकतमकरण

विलियमसन ने अधिकतम लाभ की तुलना में अधिकतम उपयोगिता की परिकल्पना का विकास किया है। बॉमोल के अधिकतम बिक्री सिद्धान्त की तरह यह प्रबन्धकीय सिद्धान्तो में सें एक है। इसें प्रबन्धकीय विवेक सिद्धान्त (Managerial Discretion Theory) के रूप में भी माना जाता है।

बड़ी आधुनिक फर्मो में शेयरधारकों और प्रबन्धको के दो अलग-अलग समूह होते है। शेयरधारक अपने विनियोग पर अधिकतम प्रतिफल चाहते है जिससे कि अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके। दूसरी और प्रबन्धक अपने उपयोगिता कार्यो में अधिकतम लाभ की अपेक्षा अन्य पहलुओं पर भी ध्यान देते है। इस प्रकार प्रबन्धक न केवल अपनी आय अपितु अपने स्टाफ की संख्या और उनपर किये जाने वाले व्यय में भी रूचि रखते है। अत: विलियमसन का सिद्धान्त प्रबन्दकों की उपयोगिता के अधिकतम होने से सम्बन्धित है जो कि स्टाफ पर होने वाले व्यय तथा उनको मिलने वाली आय एवं विवेक - निधियों पर निर्भर है। 'जहां तक पूंजी बाजार में दबाव और वस्तु बाजार में प्रतियोगिता अपूर्ण है इसलिए प्रबन्धक अपने विवेक से लाभों के अलावा अन्य उद्देश्यों को प्राप्तकरते है।"

अधिकतम उपयोगिता कें अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबन्धक फर्मो के ससाधनो को निम्न तीन प्रकार से दिशा निर्देश देते है:-

प्रबन्धक अपने स्टाफ तथा उनका वेतन बढ़ाना चाहता है। अधिक स्टाफ का महत्व इसलिए होता है क्योंकि इससे प्रबन्धक को अधिक वेतन, अधिक प्रतिष्ठा और अधिक सुरक्षा मिलती है।

अपनी उपयोगिता को अधिकतम करने के लिए प्रबन्धक सुन्दर लड़कियों को निजी सचिव बनाने, कम्पनी कार, कम्पनी फोन, कर्मचारियों के लिए अन्य सुविधाएं प्रदान करने में लग जाते है। विलियमसन ने ऐसे व्ययों को प्रबन्धन-शिथिलता (Management slack) माना है।

प्रबन्धक अग्रिम विनियोग करने के लिए अथवा जो कम्पनी परियोजना उनकी दृष्टि में लाभकारी है उन्हें विशाल करने के लिए विवेकाधिकार कोष (Discretionary Fund) बनाना चाहते है। विवेकाधिकार कोष लाभ अथवा विनियोग वह राशि हैं जो कि कर और शेयरधारकों को लाभांश देने के बाद फर्म के प्रभावी नियंत्रण के लिए प्रबन्धक के पास शेष रहती है।

सी. जे. हॉकिन्स के अनुसार विलियमसन की अधिकतम उपयोगिता फर्म की दो धारणाएं है:-

1. यदि लाभ कर दर में वृद्धि होती है तो इससे इसके उत्पादन और स्टाफ व्यय में वृद्धि होगी और?
2. यदि एक मुस्तकर लगाया जाता है तो इससे इसके उत्पादन और स्टाफ व्यय में कमी होगी।

विलियमसन के अधिकतम उपयोगिता माडल को चित्र 8.6 से स्पष्ट किया गया है जिसमें स्टाकधारकों के लाभों को अनुलम्ब अक्ष पर तथा स्टाक या आय को क्षैतिज अक्ष पर मापा गया है। FC सम्भावना वक्र है जो कि लाभ तथा प्रबन्ध को उपलब्धि स्टाफ के संयोग को दर्शा रहा है। uu प्रबन्धक का उपयोगिता वक्र है। प्रारम्भ में जैसा हम सम्भाव्यता वक्र पर बिन्दु F से ऊपर की ओर जाते है तो लाभ और स्टाफ (अथवा प्रबन्धक की आय) बिन्दु P तक बढ़ते है। P फर्म का अधिकतक लाभ बिन्दु है जहां OS स्टाफ

को SP अधिकतम लाभस्तर दिखाया गया हैं । परन्तु प्रबन्धक स्पर्शिता बिन्दु M को चुनता है जहां उसकी उपयोगिता फलन uu और सम्भाव्यता वक्र F एक दूसरे को स्पर्श करते है । यहां प्रबन्धक की उपयोगिता अधिकतम होती है । स्टॉकधारी के लाभ S'M अधिकतम लाभ SP से कम है परन्तु स्टाफ अथवा प्रबन्धक की आय अधिकतम होती है । तयापि विलियमसन ने उल्लेख दिया है कि कर व्यवसाय परिस्थितियों में परिवर्तन जैसे तत्व संभाव्यता वक्र को प्रभावित करके इष्टतम स्पर्शिता बिन्दु में परिवर्तन कर सकते है । इसी प्रकार उपयोगिता फलन के आकार में परिवर्तन करने से स्टाफ आय स्टाकधारियों के लाभों में होने जैसे तल इष्टतम स्थिति को बदल सकते है ।

विलियमसन ने अपनी अधिकतम उपयोगिता परिकल्पना का अनेक ऐसे प्रमाणों से समर्थन किया है जो कि सामान्यतया उसके तीन मॉडलो से मेल खाती है । इस प्रकार विलियमसन का सिद्धान्त अन्य प्रबंधकीय सिद्धान्तो की तुलना में प्रयोगसिद्ध सिद्धान्त के रूप में अधिक सदृढ़ है । विलियमसन का अधिकतम उपयोगिता मॉडल वॉमोल के अधिकतम बिक्री मॉडल से श्रेष्ठतर है क्योंकि इसमें बॉमोल के सिद्धान्त में निहित तथ्यो को भी स्पष्ट किया गया है । विलियमसन बॉमोल की तरह अधिकतम बिक्री को एक मात्र मापदण्ड के रूप में ही नहीं मानता है । वह इसे प्रबन्धक द्वारा अपने स्टाफ और आय को बढ़ाने के एक साधन के रूप में स्वीकार करता है । यह दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक वास्तविक है।

आलोचनाएं

1. विलियमसन ने आपने संभाव्यता वक्र खींचने के आधार को स्पष्ट नही किया है । विशेषकर सभाव्यता वक्र के आकार के अनुसार वह लाभ-स्टाक के सम्बन्धों की सीमाओं का उल्लेख करने में असफल रहा है ।
2. यह उपयोगिता वक्र में स्टाफ और प्रबन्धक की आय को एक समान समझता है । प्रबन्धक के गैर आर्थिक और आर्थिक लाभों के मिश्रण से उपयोगिता वक्र अस्पष्ट सा हो गया है । परन्तु इन कठिनाइयों को तीन आयामी चित्र बनाकर दूर किया जा सकता है ।
3. इसके बावजूद अधिकांश अर्थशास्त्री विलियमसन के अधिकतम उपयोगिता सिद्धांत को इसलिए नहीं मानना चाहते कि बहुत से तत्व (जैसे कि- लाभ, बिक्री, उत्पादन, विकास, स्टाफ की संख्या तथा मखमली दफ्तर एवं कारो) उद्योगो, में लोगों को उपयोगिता प्रदान कर सकते है और वे कोई निश्चित परिणाम देने वाले असमर्थ मॉडल के साथ समाप्त हों जाएगें ।

बोध प्रश्न -4

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरी का मिलान करें ।

1. विलियमसन के उपयोगिता अधिकतमकरण के उद्देश्य को समझाइए ।

8.4.5 वृद्धि अधिकतमकरण

श्रीमती पेनरोज ऐसी प्रथम अर्थशास्त्री थी ' जिन्होंने यह सुझाव दिया कि आधुनिक फर्मो के प्रबन्धक अधिकतम लाभ की अपेक्षा अधिकतम वृद्धि में रूचि रखते है परन्तु राविन मैरिस के अनुसार बड़ी फर्मो

के प्रबन्धको, का उद्देश्य अपनी फर्म के विकास और सुरक्षा में वृद्धि करना होता है। बड़ी फर्म में प्रबन्धक के वेतन अधिक होते है। अत: उसे अधिकतम लाभ के आकार से फर्म के आकार को अपेक्षाकृत और विस्तृत करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। ऐसा करने वह अपने अधिनस्थों एवं वरिष्ठ अधिकारियों (निर्देशकी) की दृष्टि में अपना एक स्थान बनाता है।

मैरिस ने उन साधनों का विश्लेषण किया हैं जिनके, द्वारा फर्म अपने अधिकतम वृद्धि के लक्ष्य को पाने का प्रयास करती है। फर्म अपनी नई वस्तुओं और नई माँगों के सृजन द्वारा नये बाजारों की स्थापना करके अपनें आकार को विस्तृत कर सकती है। परन्तु पूँजी बाजार इन उद्देश्यों को प्राप्त करने पर प्रतिबन्ध लगाता है।इस सम्बन्ध में मैरिस ने सदा विद्यमान रहने वाली फर्म को अधिकार में लेने की धमकी पर जोर दिया है। यदि कम्पनी की परिसम्पत्तियों का उपयोग गैर-प्रभावों तरीके से किया जा रहा है तो अन्य फर्मे इस फर्म को अधिकार में लेने की प्रेरणा की स्थिति मे इसलिए बनी रहती है क्योंकि ' घाटे में चल रही फर्मो के अंशों का बाजार मूल्य संभावित मौजूदा मूल्य से नीचे गिर जाता है। " अधिकतर प्रबन्धक अचानक अधिकार में लेने की स्थिति से बचना चाहते है। क्योंकि ऐसी स्थिति में उनको नौकरी से हटाये जाने का खतरा हो जाता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए उन्हें अधिक कार्यकुशल बनने तथा मूल्यांकन अनुपात को वृद्धि दर पर प्रतिबन्ध के रूप में शामिल करने की आवश्यकता है। मूल्यांकन अनुपात उसके समता अंशों के बाजार मूल्य का उनके खाता मूल्य के साथ अनुपात होता है।

ऐसी वृद्धि दर तथा फर्म के शेयर मूल्यों में एक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मैरिस ने सतत स्थिति (Steady State) वृद्धि मॉडल तैयार किया है जिसमें प्रबन्धक विकास ऐसी नियमित दर को चुनता है जिस पर फर्म की बिक्री, लाभ, परिसम्पत्तियों इत्यादि में वृद्धि होती है। यदि वह उच्च वृद्धि दर चुनता है तो उसे अधिक मांग और नई वस्तुओं का सृजन करने के लिए विज्ञापन अनुसंधान और विकास पर अधिक खर्च करना होगा। अत: ऐसी वृद्धि वर्धक गतिविधियों के लिए वह लाभों के अधिक अनुपात ले अलग रखेगा। इसके परिणामस्वरूप शेयर धारको को मिलने वाले लाभ कम हो जाएंगे और शेयरों का मूल्य गिर जाएगा। इसलिए प्रबन्धकों को ऐसी वृद्धि दर चुननी चाहिए जो बाजार मूल्य को अधिकतम बनाती है और जिस दर पर अधिग्रहण (Take Over) किया जाएगा। मैरिस के वृद्धि अधिकतमकरण के मॉडल को चित्र 8.7 में स्पष्ट किया गया है जिसमें मूल्यांकलन अनुपात को अनुलम्ब अक्ष पर और वृद्धि दर को क्षैतिज अक्ष पर दिखाया गया है।

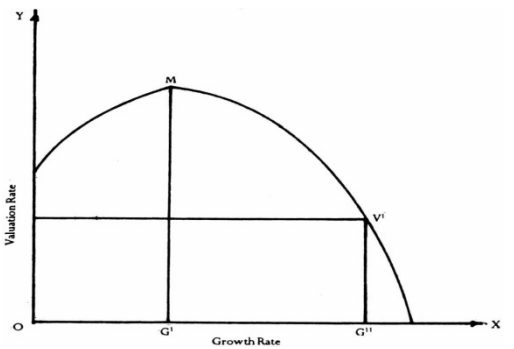

चित्र 8.7

मूल्यांकन अनुपात V स्टाक बाजार व्यवहार के कारण परवलयिक (Parabolic) रूप का है तथा वृद्धि दर G का फलन है। जब वृद्धि दर G^1 है तो यह बिन्दु का पर मूल्याकन अनुमान को अधिक तम को अधिकतम करती है तथापि प्रबन्धक उच्च विकास दर G^{11} को चुनते हैं तथा उसके अनुरूप मूल्यांकन अनुपात V^1 महत्वपूर्ण मूल्य है प्रबन्धक अधिक लाभों को अपने पास रखकर तथा शेयर धारकों को कम लाभांश देकर ऐसा करते है।

आलोचनाएं

मैरिस के वृद्धि अधिकतमकरण सिद्धांत की इसकी अत्यधिक सरलीकृत मान्यताओं के कारण निम्न आलोचना की गयी है।

1. लागत और राजस्व अनुसूचियों को समय पर्यन्त परिवर्तित होने को माना गया है। साधन कीमतें तथा व्याज की दर स्थिर रहती है, यह माना गया है कि विविधिकरण द्वारा कीमतों को कम किये बिना अतिरिक्त उत्पादन को बेचने की कम गुंजाइश है, और यह माना गया है कि सभी प्रमुख चरों जैसे कि लाभ, बिक्री और लागतें उसी दर पर बढ़ेगी। यह भी माना गया है कि फर्मे कीमतों के बारे में स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सकती है तथा अल्प अधिकारिक परस्पर निर्भरता की समस्या की उपेक्षा कर सकती है।
2. उस वृद्धि दर पर पहुंचना कठिन है जिससे फर्म के शेयरों कें बाजार मूल्य अधिकतम हो जाते है और जिस दर पर फर्म का अधिग्रहण किया जा सकता है।
3. फर्म के लिए यह निर्णय लेना कठिन है कि यह नियमित दर पर वृद्धि करती रहेगी, यह अब अधिक गति से बढ़ सकती है और बाद में धीमी गति से।

बोध प्रश्न- 5

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करे।

1. मैरिस के वृद्धि अधिकतमकरण उद्देश्य की व्याख्या कीजिए।

8.4.6 व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त

सायर्ट और मार्च ने फर्म के तुष्टिकरण सिद्धांत की अपेक्षा फर्म के व्यवहार के बारे में अधिक व्यवस्थित सिद्धान्त दिया है। उन्होंने केवल फर्म के अतिरिक्त संगठन का ही नही अपितु उसकी अनिश्चितता की समस्या का भी अवलोकन किया है। अनिश्चितता कम से कम दो बातों से उत्पन्न होती है " अपूर्ण दूरदर्शिता और जटिल समस्याओं को हल करने की मानवीय असमर्थता। "

अनिश्चितता की परिस्थितियों के अन्तर्गत फर्मो का निर्णय लेने का व्यवहार फर्म के आन्तरिक संचालन की जांच से बाजार कारकों के अध्ययन को पूरा करता है।

सायर्ट तथा मार्च ने आधुनिक व्यवसाकिय फर्म को एक ऐसा जटिल संगठन माना है जिसमें निर्णय लेने की प्रक्रिया को उन चरों (Variables) में विश्लेषित करना चाहिए जो संगठनात्मक लक्ष्यों, आशाओं और पसन्द को प्रभावित करते है। परन्तु सायर्ट और मार्च फर्म को प्रबन्धकों, कर्मचारियों, अंश धारको,

प्रतिकर्ताओ, ग्राहकों इत्यादि को संगठनात्मक सहमिलन (Organisational Coalition) के रूप में देखते है। इस दृष्टि से देखने पर फर्म को विभिन्न उद्देश्य रखने वाली उद्देश्य इत्यादि। उत्पादन का उद्देश्य उत्पादन से सम्बन्धित सहमिलन के सदस्यों की मांग का प्रतिनिधित्व करता है। यह स्थिर रोजगार, कार्यक्रम की सरलता, स्वीकार्य लागत निष्पादन का विकास और वृद्धि जैसी बातों की ओर दबाब प्रदर्शित करता है। यह उद्देश्य उत्पादन निर्णयों से सन्नन्धित है। मालसूची उद्देश्य मालसूची से सम्बन्धित सहमिलन सदस्यों की मागो का प्रतिनिधित्व करता है।यह विक्रेताओं ओर ग्राहकों से प्राप्त होने वाली मालसूची पर होनें वाले दबाव से प्रभावित होता है। यह उद्देश्य उत्पादन और बिक्री क्षेत्रों में होने वाले निर्णयों से सम्बन्धित है। बिक्री के उद्देश्य का लक्ष्य इससे सम्बन्धित उन सहमिलन सदस्यों की मांगों को पूरा करना है जो संगठन की स्थिरता के लिए बिक्री को अनिवार्य मानते है। बाजार शेयर उद्देश्य बिक्री उद्देश्य का एक विकल्प है। यह सहमिलन के बिक्री प्रबन्धक वर्ग की मांगों से सम्बन्धित है जो कि मुख्य रूप से संगठन की तुलनात्मक सफलता में दिलचस्पी रखते है। बिक्री उद्देश्य की तरह बाजार-शेयर लक्ष्य बिक्री निर्णयों से सम्बन्धित है। लाभ उद्देश्य एक आकांक्षा स्तर के रूप में जो कि लाभ की मुद्रा-मात्रा से सम्बन्धित है। यह लाभ के हिसा और विनियोग पर होने वाले प्रतिफल के रूप में भी हो सकता है। इस प्रकार लाभ उद्देश्य कीमत निर्धारण और संसाधन आवंटन निर्णयों से सम्बन्धित है। सायर्ट और मार्च के अनुसार सभी उद्देश्यों की सन्तुष्टि करनी चाहिए क्योकि वे संगठन के कीमत, उत्पादन और बिक्री नीति निर्णयों से सम्बन्ध है।

इस प्रकार सायर्ट और मार्च ने द्वि-अधिकार व्यवहार सम्बन्धी मॉडल की परिकल्पना की है। प्रत्येक फर्म मांग और उत्पादन का अनुपात लगाती है और अपने उत्पादन स्तर को चुनती है। यदि यह उत्पादन स्तर लाभ का वान्छित स्तर प्रदान नही करता है तो फर्म लागतें कम करके मांग का पुन: अनुमान लगाने के उपायों का पता लगाती है और यदि आवश्यकता हो तो लाभ के लक्ष्म कम करती है। अन्य फर्म भी इसी प्रकार का व्यवहार करती है।

आलोचनाएं

यद्यपि सायर्ट और मार्च के व्यवहार सम्बन्धी सिद्धांत का फर्म के सिद्धान्त में एक महत्वपूर्ण योगदान है जो कि प्रबन्धकीय निर्णय लेने में अनेक परिवर्तन और स्वीकार्य तथ्यों की ओर ध्यान केन्द्रित करता है और सन्तुष्टिकरण के स्थान पर अधिकतमता का स्थान लेता है तथापि अर्थशास्त्रियों ने सायर्ट और मार्च के सिद्धान्त की कड़ी आलोचनाएं की है।

हॉकिन्स ने उल्लेख किया है कि व्यवहार सम्बन्धी आलोंचना इस बात पर आधारित है कि यह एक अखरोट को तोडने के लिए हथौड़े का इस्तेमाल करता है। क्या हमें वास्तव में कम्पनियों की दर्पण छवि बनाने की आवश्यकता है और क्या वास्तव में ही उनके व्यवहार की भविष्यवाणी करने के लिए निर्णय लेने की प्रक्रिया को जोड़ने की आवश्यकता है? क्या सीमित प्रयोजनों के लिए सरल मॉडल पर्याप्त नही होगें।

अर्थशास्त्रियों ने प्रश्न किया है ' 'क्या वास्तव में यह सिद्धान्त है?" यह विशेष मामलों से सम्बन्धित है जबकि एक सिद्धान्त सें फर्म के व्यवहार के सामान्य मोटें अनुमान की आशा की जाती है। इस प्रकार एक फर्म के सिद्धान्त के रूप में यह असफल है।

व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त द्वि-अधिकारी फर्म से सम्बन्धित हैं और बाजार ढांचे के सिद्धान्त के रूप में असफल है।

बोध प्रश्न 5

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरी से अपने उत्तरी का मिलान करें।

1. सायर्ट और मार्च के व्यवहार सम्बन्धी उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

8.4.7 पूर्ण लागत कीमत सिद्धान्त-

प्रो. आर0 एल0 हाल और सी0 जे0 हिच ने इंग्लैड में कीमत नीति के सम्बन्ध में 38 उद्यमियों से साक्षात्कार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि फर्मे कभी भी अपनी सीमान्त लागत को सीमान्त आय के बराबर करके लाभ अधिकतमकरण का प्रयत्न नही करती! कारण यह है कि उन्हें न तो सीमान्त लागत का पता होता है और नही सीमान्त आय का अपने अध्ययन के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला, कि फर्म कीमत का निर्धारण पूर्ण या कुल औसत उत्पादन लागत के आधार पर करती है। पूर्ण औसत उत्पादन लागत में (अ) औसत परिवर्तनशील लागत (ब) सामान्य लाभ निहित रहते है। कई मत निर्धारण के इस सिद्धान्त को पूर्ण लागत सिद्धान्त कहा जाता है। सिद्धान्त को लागत कीमत (Cost Plus) या लागत अन्तर (Mark Up) कीमत निर्धारण के सिद्धान्त का नाम भी दिया जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार निर्माणात्मक उद्योगों में वस्तु की कीमत क्रेताओं के मोल-भाव के आधार पर निर्धारित नही होती बल्कि फर्मे ही वस्तु की अन्तिम कीमत निश्चित करती है। जिस पर वह वस्तु उपभोक्ता को बेची जाती है। इस कीमत में फर्म और मध्यस्थों के लाभांश भी सम्मिलित रहते है। कीमत में सामान्य लाभ अथवा असामान्य लाभ भी सम्मिलित हो सकते है। यदि फर्म को प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है तो कीमत में सामान्य लाभ ही सम्मिलित होंगे, पूर्ण लागत कीमत निर्धारण के सिद्धान्त को रेखाचित्र 8.8 की सहायता से समझाया गया है।

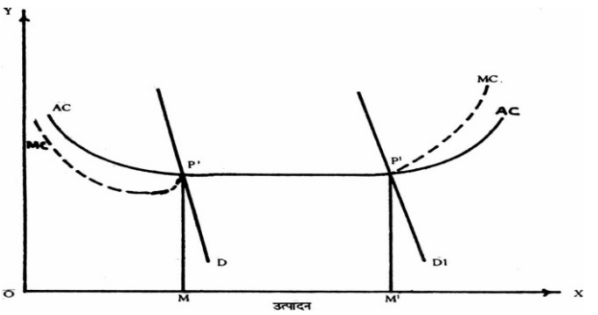

चित्र 8.8

चित्र 8.8 में फर्म के AC व MC क्रमश: औसत लागत और सीमान्त लागत वक्र है।

पूर्ण लागत कीमत निर्धारण के अनुसार वस्तु की कीमत $PM=P^1M^1$ निर्धारित की जानी चाहिए लेकिन फार्म OM^1 मात्रा तक का उत्पादन P^1M^1 कीमत फर्म की औसत लागत के बराबर है। और औसत में सामान्य लाभ निहित है। MM^1उत्पादन की सीमा के अन्तर्गत MC=AC, लेकिन क्योंकि उसी AC लागत पर उत्पादन PM से बढ़ाकर PM^1 तक किया जा सकता है, इसलिए फर्म को PM^1तक उत्पादन करना चाहिए। यहां P^1M^1 में सामान्य लाभ शामिल है।

आलोचनाए

केहन, राबिन्सन, मैकलप तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने पूर्ण लागत कीमत निर्धारण सिद्धान्त की निम्नलिखित आधार पर कड़ी आलोचना की है -

(1) इस सिद्धान्त की एक मुख्य त्रुटि है कि यह उस फर्म का उल्लेख करने में असफल रहा है जिसका पूर्ण लागत अल्प विक्रेताधिकार बाजार में फर्म की वस्तु का मूल्य निर्धारित किया जाएगा तथा अन्य फर्मे भी इसी मूल्य का अनुसरण करेंगी। इसमें मूल्य नेतृत्व की वह सम्भावना शामिल है जिस पर हॉल और हिच ने कोई विचार नहीं किया है।

(11) राबिन्सन और केहन जैसे अनेक आलोचको ने उल्लेख किया है कि पूर्ण लागत कीमत निर्धारण सिद्धान्त अधिकतम लाभ के उस सिद्धान्त से मुक्त नहीं है जो कि हॉल और हिच द्वारा जांच की गयी अनेक फर्मों के कीमत निर्धारण सम्बन्धी निर्णयों में निहित हो गया है। जैसा कि हॉल और हिच ने अपने विश्लेषण में स्वयं उल्लेख किया है। विस्तृत मांग वक्र में विकुंचन पर वस्तु का जो मूल्य है वह सीमान्त लागत के विस्तृत क्षेत्र में अधिकतम लागत मूल्य है और जहां यह इसके असतत क्षेत्र में सीमान्त आय वक्र को काटता है।

(।।।) पूर्ण लागत मूल्य निर्धारण सिद्धान्त को स्थिर मूल्य से जुड़े रहने के कारण आलोचना की गयी है। फर्म प्राय: मन्दी के दौरान अपने स्टाक को बेचने के लिए मूल्यों में कमी कर देती है और तेजी के दिनों में लागत बढ़ने पर वे मूल्यों में वृद्धि कर देती हैं। अत: फर्मे प्राय : स्थिर मूल्य नीति की अपेक्षा स्वतंत्र मूल्य नीति का अनुसरण करती है।

(17) इसके अलावा मात्र लाभ की "गुंजाइश' ' या लागत का अन्तर जैसा कि एन्ड्रयूज ने कहा है, असष्ट है। सिद्धान्त में यह स्पष्ट नही है कि लागत के अन्तर का निर्धारण कैसे होता है तथा फर्म द्वारा इसका पूर्ण लागत में कैसे दाम लगाया जाता है? फर्म द्वारा इसकी वस्तु की लागत और मांग पर निर्भर करते हुए मात्र लाभ गुंजाइश के रूप में कम या अधिक दाम ले सकती इन आलोचनाओं के बाबजूद पूर्ण लागत कीमत निर्धारण सिद्धान्त वास्तविक व्यावसायिक फर्मो के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया वह पहला प्रयास था जिसके बाद साइमन विलियमसन, बॉमोल, मैरिस सायर्ट और मार्च द्वारा फर्मो के व्यववहार के बारे में और प्रयोग सिद्ध अध्ययन किये गये।

8.5 सारांश

एक व्यावसायिक फर्म उस तकनीकी आर्थिक इकाई को कहते है, जो किसी वस्तु या वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन अथवा विक्रय दोनों करती है।

इस प्रकार कोई भी फर्म एकल स्वामित्व, भागिता सार्थ, संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल या निगम या अन्य किसी भी प्रकार की हो सकती है। इसका आकार उतपत्तियों विक्रय के पैमाने पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त एक फर्म की भूमिका उत्पादन या विक्रेता अथवा दोनों ही स्थिति में क्रेता की आवश्यकता होती है।

फर्म के प्रारम्भिक सिद्धान्त के अनुसार लाभ अधिकतमकरण उसका प्रमुख उद्देश्य है। सामान्यत: फर्म के अधिकतम लाभ की स्थिति को निम्न दो प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है-

कुल लागत तथा आगम रेखाओं द्वारा

इसके अन्तर्गत उत्पादन की जिस मात्रा पर कुल आगम तथा कुल-लागत का अन्तर सबसे अधिकतम होता हैं उस बिन्दु पर फर्म का लाभ अधिकतम होता है।

सीमान्त तथा औसत रेखाओं द्वारा

इनके अन्तर्गत उत्पादन की जिस मात्रा पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त आगत बराबर होते है उत्पादन की वह मात्रा अधिकतम लाभ प्रदान करती है। किन्तु यह शर्त अकेले पर्याप्त नही है। इसके लिए एक दूसरी शर्त, कि सीमान्त लागत रेखा सीमान्त आगम आगम रेखा को नीचे से काटे, का भी पूरा होना आवश्यक है।

लाभ अधिकतमकरण के आलोचकों द्वारा इस अवधारणा के अनेक विकल्प प्रस्तुत किये गये है जो इस प्रकार है :-

प्रो. बॉमोल (Professor Baumol) ने विक्रय अधिकतमकरण को परम्परिक लाभ अधिकतमकरण की व्यवस्था के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि, ' व्यावहारिक जीवन में एक फर्म का अंतिम उद्देश्य अपने कुल विक्रय या आय को अधिकतम करना होता है, न कि कुल लाभ को।

अपनी बिक्री अधिकतमकरण की अवधारणा की विवेचना करते हुए ' बॉमोल " ने बताया कि बिक्री बढ़ाने कई लिए प्रयत्नशील फर्मे उत्पादन लागत और लाभ मात्रा की उपेक्षा नहीं करती। वें यह मानते है कि यद्यपि फर्म के बिक्री उद्देश्य और लाभ उद्देश्य में कुछ संघर्ष होता है। उनके अनुसार वास्तविक जगत में व्यापारी बिक्री में वृद्धि करने का प्रयास करते है। परन्तु शर्त यह है कि उसको उत्पादन लागत के अतिरिक्त विनियोग पर सामान्य दर से लाभ भी प्राप्त होना चाहिए। उनके अनुसार प्रबंधक इससे अधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता। यदि एक बार लाभ का न्यूनतम स्तर प्राप्त हो जाता है तो विक्रय (न कि लाभ) उद्देश्य हो जाता है। इस प्रकार वास्तविक जीवन में फर्मो का उद्देश्य लाभ के बजाय विक्रय अधिकतमकरण ही होता है। ' स्तुष्टि या तुष्टिगुण " वह अंतिम उद्देश्य है जिसको प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है। इसीलिए कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे-टिंबर सिटोवस्की, बैन्जामिन हिगिन्स तथा मोर्ल्विन रेडर ने

लाभ को अधिकतमकरण करने का उद्देश्य के स्थान पर संतुष्टि (तुष्टिगुण) अधिकतम करने अथवा अधिमान फलन अधिकतम करने का विचार प्रस्तुत किया है। इन अर्थशास्त्रियों का कहना है कि लाभ अधिकतमकरण और संतुष्टि अधिकतमकरण दोनों एक ही बात नही है। प्रत्येक व्यक्ति का अंतिम लक्ष्य अपनी कुल संतुष्टि को अधिकतम करना होता है। अत: एक उद्यमी जो अपनी कुल संतुष्टि का प्राप्त करना चाहता है, ऐसा वह न केवल अपने उद्यम से प्राप्त मौद्रिक लाभो के द्वारा भौतिक सुख सुविधाएं बढ़ाकर कर सकता है, बल्कि इसके साथ ही वह अपने आराम या अवकाश का समय बढ़ाकर भी करना चाहेगा। कारण यह है कि जैसे-जैसे उसकी आय (लाभ) में वृद्धि होती है वह प्रयास (उत्पादन) की बजाय अवकाश को अधिक पसंद करता है। इसी प्रकार विलियमसन ने अधिकतम लाभ की तुलना में अधिकतम उपयोगिता की परिकल्पना का विकास किया है। विलियमसन का सिद्धांत प्रबंधको की उपयोगिता के अधिकतम होने से मिलने वाली आय एवं विवेक निधियों पर निर्भर है। जहां तक पूंजी बाजार में दबाव और वस्तु बाजार में प्रतियोगिता अपूर्ण है। इसलिए प्रबंधक अपने विवेक से लाभों के अलावा अन्य उद्देश्यों को प्राप्त करते है।

अधिकतम उपयोग़ता के अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबंधक फर्मो के संसाधनों को तीन प्रकार से दिशा निर्देश देते है-

1. प्रबंधक अपने स्टाफ तथा उनका वेतन बढ़ाना चाहता है।
2. अपनी उपयोगिता को अधिकतम करने के लिए प्रबंधक सुन्दर लड़कियों को निजी सचिव बनाने, कम्पनी फोनों, कर्मचारियों के लिए अनेक सुविधाएँ प्रदान करने में लग जाते है।
3. प्रबंधक अग्रिम विनियोग करने के लिए अथवा जो कम्पनी परियोजना उनकी दृष्टि लाभकारी है उन्हें विशाल करने के लिए विवेकाधिकार कोष (Diescretionary Fund) बनाना चाहते है।

श्रीमती पेनरोज ऐसी प्रथम अर्थशास्त्री थी जिन्होंनें यह सुझाव दिया कि आधुनिक फर्मो के प्रबंधक अधिकतम लाभ की अपेक्षा अधिकतम वृद्धि में रूचि रखते है। परन्तु राविन मैरिस ने फर्म के व्यवस्थित वृद्धि अधिकतमकरण के सिद्धान्त को विकसित किया। मैरिस के अनुसार बड़ी फर्मो के प्रबंधक का उद्देश्य का अपनी फर्म के विकास और सुरक्षा मे वृद्धि करना होता है।

मैरिस ने उन साधनों का विश्लेषण किया हैं जिसके द्वारा फर्म अपने अधिकतम वृद्धि के लक्ष्यों को पाने का प्रयास करती है।

ऐसी वृद्धि दर तथा फर्म के अंश (SHARE) मूल्यों में एक संबंध स्थापित करने के लिए मैरिस ने सतत स्थिति वृद्धि मॉडल तैयार किया है जिसमें प्रबंधक विकास की ऐसी नियमित दर को चुनता है जिस पर फर्म की बिक्री, लाभ, परिसंपत्तियों इत्यादि में वृद्धि होती है। यदि वह उच्च वृद्धि दर चुनता है तो उसे अधिक मांग नई वस्तुओं का सृजन करने के लिए विज्ञापन अनुसंधान और विकास पर अधिक खर्च करना होगा। अतः ऐसी वृद्धिवर्द्धक गतिविधियों के लिए वह लोगों के अधिक अनुपात को अलग रखेगा। इसके परिणाम स्वरूप (share holders) अंशधारियों को मिलने वाले लाभ कम हो जाएगें और अंशो

का मूल्य गिर जाएगा। इसलिए प्रबंधकी को ऐसी वृद्धि दर चुननी चाहिए जो बाजार मूल्य को अधिकतम बनाती है और जिस दर पर अधिग्रहण (Take Over) किया जाएगा।

"सायर्ट और मार्च " ने फर्म के तुष्टिकरण सिद्धांत की अपेक्षा फर्म के व्यवहार के बारे में अधिक व्यवस्थित सिद्धांत दिया है। उन्होंने केवल फर्म के अतिरिक्त संगठन ही नही अपितु उसकी अनिश्चितता की समस्या का भी अवलोकन किया है।

"सायर्ट तथा मार्च" ने आधुनिक व्यवसायिक फर्म को एक ऐसा जटिल संगठन माना है जिसमें निर्णय लेने की प्रक्रिया को उन चरों में विश्लेषित करना चाहिए जो संगठनात्मक लक्ष्यों, आशाओं और पसंद को प्रभावित करते है। लक्ष्यों वाले किसी संगठन की कल्पना करना कठिन है। परन्तु सायर्ट और मार्च फर्म को प्रबंधकों, कर्मचारियों, अंशधारियों, पूर्तिकर्ताओं, ग्राहकों इत्यादि को संगठनात्मक सहमिलन (Organisational Coalition) के रूप मे देखते है। इस दृष्टि से देखने पर फर्म को विभिन्न उद्देश्य रखने वाली माना जा सकता है। जैसे कि - उत्पादन, मालसूची, बिक्री, बाजार, अंश और लाभ के उद्देश्य आदि।

इस प्रकार सायर्ट और मार्च ने द्वि-अधिकार व्यवहार संबधी मॉडल की परिकल्पना की है। प्रत्येक फर्म मांग और उत्पादन का अनुपात लगाती है और अपने उत्पादन स्तर को चुनती है। यदि यह उत्पादन स्तर लाभ का वांछित स्तर प्रदान नही करता है तों फर्म लागतें कम करके मांग का पुन: अनुमान लगाने के उपायों का पता लगाती हैं और यदि आवश्यकता हो तो लाभ के तक कम करती है। अन्य फर्म भी इसी प्रकार का व्यवहार करती है।

प्रोफेसर **" हॉले तथा हिच "** ने यह निकर्ष निकाला कि फर्म कीमत का निर्धारण पूर्ण या कुल औसत उत्पादन लागत में (अ) औसत परिवर्तनशील लागत (ब) औसत स्थिर लागत और .(स) सामान्य लाभ निहित रहते है। कीमत निर्धारण के इस सिद्धांत को पूर्ण लागत सिद्धांत कहा जाता है।

इस सिद्धांत के अनुसार निर्माणात्मक उद्योंगों में वस्तु की कीमत, क्रेताओ में मोल-भाव के आधार पर निर्धारित नहीं होती, बल्कि फर्मे ही वस्तु की अन्तिम कीमत निश्चित करती है, जिस पर वह वस्तु उपभोक्ता को बेची जाती है। इस कीमत में फर्म और मध्यस्थों के लाभांश भी सम्मिलित रहते है। कीमत में सामान्य लाभ अथवा असामान्य लाभ भी शामिल हो सकते हैं। यदि फर्म को प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है तो कीमत में सामान्य लाभ भी सम्मिलित होगे, असामान्य लाभ नही। इसके विपरीत यदि फर्म को एकाधिकारी शक्ति प्राप्त है तो फर्म की कीमत में असामान्य लाभ होर्गे।

8.6 शब्दावली

पूर्ण प्रतियोगिता-पूर्ण प्रतियोगिता वह है जिसमें कोई भी एक क्रेता या विक्रेता व्यक्तिगत रूप से बाजार कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता है तथा वस्तु की कीमत एक ही होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता-सरल शब्दों में, जब पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में किसी भी दशा का अभाव होता है तो अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। तकनीकी शब्दों में, अपूर्ण प्रतियोगिता वह होती है जबकि एक व्यक्तिगत फर्म की वस्तु की मांग पूर्णतया लोचदार नहीं होती है।

एकाधिकार-एकाधिकार का आशय बाजार की उस स्थिति से होता है जिसमें एक विशिष्ट वस्तु का एक विक्रेता होता है तथा उसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता है।

तुष्टिगुण-अर्थशास्त्र की भाषा में किसी भी वस्तु का वह गुण जिसके द्वारा वस्तु मनुष्य की किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति करती है। अत: स्पष्ट है कि वस्तुओं के उस गुण को तुष्टिगु ण कहते है, जिससे मनुष्य की आवश्यकता की संतुष्टि होती है। जो किसी व्यक्ति को धन या संपत्ति के उपयोग से प्राप्त होता है।

अल्पकाल-अल्पकाल से तात्पर्य उस अवधि से है जिसमें उपलब्धि साधनों की कार्यक्षमता में परिवर्तन कर उत्पादित वस्तु की पूर्ति में आवश्यकतानुसार वृद्धि संभव नही हो।

दीर्घकाल-दीर्घकाल से तात्पर्य ऐसी अवधि से है जिसमें उत्पत्ति के साधनों में परिवर्तन कर उत्पादन की मात्रा को आवश्यकतनुसार समायोजित किया जा सकता है।

अंश (Share)-एक अंश पूँजी वाली कम्पनी के पूंजी को एक निश्चित राशि के जिन हिस्सों में विभाजित किया जाता हैं उन्हें अंश कहते है।

लाभ-उत्पादन साधन के रूप में उद्यमी या साहसी को जोखिम उठाने के लिए जो प्रतिफल मिलता है उसे लाभ कहते है।

लाभांश-कम्पनी के लाभ की राशि में से अंशधारियों को उनके अंश के अनुपात मे , किया गया भुगतान लाभांश क्टलाता है।

8.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, डा० एम० एल० शर्मा एवं बी० के० केसरीवाल, साहित्य भवन, आगरा।

व्यक्तिगत आर्थिक सिद्धांत, एच० एल० आहुजा एवं के० के डमुवेट, एस० चर एण्ड कम्पनी प्रा० लि० रामनगर, नई दिल्ली।

व्यावसायिक एवं प्रबंधकीय अर्थशास्त्र वी० सी० सिन्हा एवं पुष्पा सिन्हा, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली.

Managerial Economices Habib-Ur Rahman, Himalaya Publishing House Bomaby.

A Study of Magagerial Economics & Gopal Krishna, Himalaya Publishig House Bombay

Economics Analysis K.P.M Sundram, E.N. Sundhram, Sultan chand & sone, New Delhi.

8.8 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. फर्म के पारम्परिक सिद्धान्त के अनुसार लाभ अधिकतमकरण उसका प्रमुख उद्देश्य है। अधिकतम लाभ की स्थिति को दो प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता हैं-
2. कुल लागत तथा आगम रेखाओं द्वारा जहां पर कुल अगम तथा लागत का अंतर अधिकतम होता है वही लाभ सर्वाधिक होता है।
3. सीमांत तथा औसत रेखाओं द्वारा जहां पर MC=MR होते है तथा MC,MR भार को नीचे से काटती है वही पर लाभ अधिकतम होगा।

बोध प्रश्न - 2

"बॉमोल" के अनुसार व्यवहारिक जीवन में फर्म का अंतिम उद्देश्य अपने कुल विक्रय या आय को अधिकतम करना होता है न कि कुल लाभ को। यद्यपि वे यह मानते है कि फर्म के बिक्री उद्देश्य और लाभ उद्देश्यों में कुछ संघर्ष होता है और इसीलिए वास्तविक जगत में व्यापारी बिक्री में वृद्धि करने का प्रयास करती है परन्तु शर्त यह है कि उसका उत्पादन लगत के अतिरिक्ति विनियोग पर सामान्य दर से लाभ भी प्राप्त होना चाहिए। उनके अनुसार प्रबंधक इससे अधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्टा नही करता। एक बार लाभ का या न्यूनतम स्वर प्राप्त हो जाता है तो विक्रय (न कि लाभ) प्रमुख उद्देश्य हो जाता है।

बोध प्रश्न - 3

कुछ अर्थशास्त्रियों ने फर्म का उद्देश्य लाभ और विक्रय अधिकतमकरण को न मानकर संतुष्टि अधिकतमकरण को माना है। उनके अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति का अंतिम लक्ष्म अपनी कुल संतुष्टि को अधिकतम करना होता है। अत: एक उद्यमी जो अपनी कुल संतुष्टि को प्राप्त करना चाहता है ऐसा वह न केवल अपने उद्यम से प्राप्त मौद्रिक लाभों के द्वारा मौलिक सुख सुविधाएँ बढ़ाकर कर सकता है, बल्कि इसके साथ ही वह अपने आराम या अवकाश का समय भी बढ़ाकर करना चाहेगा। कारण यह है कि जैसे-जैसे उसकी आय (लाभ) में वृद्धि होती है वह प्रयास (उत्पादन) के बजाय अवकाश को अधिक पसंद करता है।

बोध प्रश्न – 4

विलियमसन ने अधिकतम उपयोगिता को फर्म का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बताया है। उनके अनुसार प्रबंधकों की उपयोगिता के अधिकतम होने से मिलने वाली आय एवं विवेक विधियों पर निर्भर है। अधिकतम उपयोगिता के उपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबधक फर्मो के संसाधनों को तीन प्रकार से दिशा निर्देश देते है-

स्टाफ तथा उनका वेतन बढ़ाना

उपयोगिता को अधिकतम करने के लिए सुन्दर लड़कियों को निजी सचिव बनाने, कम्पनी कारों, कम्पनी फोन, कर्मचारियों के लिए अन्य सुविधाएँ प्रदान करना,

अग्रिम विनियोग करने के लिये अथवा जो कम्पनी परियोजना उनकी दृष्टि में लाभकारी है उनके लिए विवेकाधिकार कोष बनाना।

बोध प्रश्न - 5

श्रीमती पेनरोज ने अधिकतम वृद्धि तथा मैरिस ने बड़ी फर्मो के प्रबंधक का उद्देश्य अपनी फर्म के विकास और सुरक्षा में वृद्धि करना बताया है। इन्होंने उन साधनों का विश्लेषण किया है। जबकि यदि प्रबंधक उच्च वृद्धिदर चुनता है तो उसे अधिक मांग और नई वस्तुओं का सृजन करने के लिए विज्ञापन अनुसंधान और विकास पर अधिक खर्च करना होगा। अत: ऐसी वृद्धिवर्द्धक गतिविधियों के लिए वह लोगों के अधिक अनुपात को अलग रखेगा। इससे अंशधारियों को मिलने वाले लाभ कम हो जाएंगें और उसके अंशों का मूल्य गिर जाएगा। इसलिए प्रबधंको को ऐसी वृद्धि दर चुननी चाहिए जो बाजार मूल्य को अधिकतम बनाती है और जिस दर पर अधिग्रहण किया जाएगा।

बोध प्रश्न 6

सायर्ट तथा मार्च ने आधुनिक व्यवसायिक फर्म को एक ऐसा जटिल संगठन माना है जिसमें निर्णय लेने की प्रक्रिया को उन चरों में विश्लेषित करना चाहिए जो संगठनात्मक लक्ष्यों, आशाओं और पंसद को प्रभावित करते है। लक्ष्यों वाले किसी संगठन की कल्पना करना कठिन है परंतु वे फर्म को प्रबंधकों, कर्मचारियों, अंशधारियों, पूर्तिकर्ताओ ग्राहकों इत्यादि को संगठनात्मक सहमिलन के रूप में देखतें है। इससे फर्म को अधिक उद्देश्य रखने वाली (जैसे - उत्पादन, माल सूची, बिक्री, बाजार अंश, और लाभ के उद्देश्य आदि) माना जा सकता है। प्रत्येक फर्म मांग और उत्पादन का अनुपात लगाती है और उत्पादन स्तर को चुनती है। यदि वह चाहे गये लाभ के स्तर को नहीं प्राप्त करती तो वह लागतों में कमी करके पुन : मांग का अनुमान लगाती है। यदि आवश्यक हुआ तो लाभ का लक्ष्य भी कम कर देती है। इसी तरह अन्य फर्मे भी करती है।

बोध प्रश्न - 7

हॉल तथा हिच ने पूर्ण लागत सिद्धांत की कल्पना करते हुए बताया कि निर्माणात्मक उद्योगों में वस्तु की कीमत क्रेताओं में मोल भाव के आधार पर निर्धारित नही होती, बल्कि फर्मे ही वस्तु की अंतिम कीमत निश्चित करती है। जिस कीमत पर वस्तु उपभोक्ताओं को बेची जाती है उसमें फर्म और मध्यस्थों के लाभांश भी शामिल रहते है। कीमत मे सामान्य लाभ या असामान्य लाभ भी शामिल हो सकते है। यदि प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है तो कीमत में सामान्य लाभ शामिल होंगे, असामान्य लाभ नहीं। किन्तु यदि एकाधिकारी शक्ति प्राप्त है तो फर्म की कीमत में असामान्य लाभ होगें।

इकाई 9

अल्पकाल मे उत्पादन फलन-परिवर्तनशील अनुपात का नियम

Short Term Production Function- Law of Variable Proportions

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 उत्पादन-फलन का अर्थ

9.2.1 मान्यताएं

9.2.2 विशेषताएं

9.3 एक परिवर्ती आदा सहित उत्पादन-फलन

9.3.1 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम

9.3.2 उत्पादन की विभिन्न अवस्थाएं एवं अनुकुलतम अवस्था

9.4 दो परिवर्ती आदाओं सहित उत्पादन फलन

9.4.1 समोत्पाद वक्र-अर्थ एवं विशेषताएं

9.4.2 प्रतिस्थापन की लोच

9.5 सारांश

9.6 शब्दावली

9.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें.

9.8 अभ्यासों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

1. जान सकेंगे कि उत्पादन-फलन किसे कहतें है
2. अल्पकाल में उत्पादन-फलन के स्वरूप को समझ सकेगे एवं इस आधार पर किसी उद्योग में उत्पादन की विभिन्न अवरथाओं की व्याख्या कर सकेंगे; एवं
3. आप जान पाएंगे कि परिवर्तनशील अनुपातों का नियम क्या है? एक उत्पादक उत्पादन की विभिन्न स्थितियों में से किस अवस्था में रहकर अपना लाभ अधिकतम कर सकता है?

4. समुत्पाद वक्र की अवधारणा को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

किसी भी ठोस भौतिक वस्तु का उत्पादन करने के लिए हमें कुछ उत्पादन के साधनों की आवश्यकता पड़ती है। जिन साधनों का प्रयोग उत्पादन प्रक्रिया में किया जाता है उन्हें आदा (input) कहा जाता है। उत्पादन पक्रिया में जौ वस्तु उत्पादित होती है उसे प्रदा (output) कहा जाता है। उत्पादन प्रक्रिया में विभिन्न साधनों को विभिन्न कार्यों में लगाया जा सकता है एवं इन अनुपातों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। किसी फर्म की भौतिक आदाओं एवं भौतिक प्रदाओ के बीच सम्बध ही उत्पादन-फलन है।

उदाहरणार्थ एक उत्पादन-फलन एक किसान के द्वारा एक मौसम में उत्पादित गेहूँ कि मात्रा को प्रदर्शित कर सकता है जा कृषक द्वारा उस मौसम में किये गये श्रम, खाद, बीज, सिचांई, कीटनाशक दवाइयों एवं की मात्रा पर निर्भर करेगा। उत्पादन-फलन इस तथ्य को भी उजागर करता है कि कृषक 100 क्विंटल गेहूँ का उत्पादन करने के लिए विभिन्न तकनीके अपना सकता है। वह श्रम प्रधान तकनीक अपना कर पूँजी का कम प्रयोग कर सकता है अथवा वह पूँजी-गहन तकनीक अपना कर श्रम का उपयोग कम कर सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्पादन फलन आदाओं एवं प्रदा के बीच भौतिक सम्बन्ध हैं एवं उत्पादन के किसी एक स्तर को प्राप्त करने के लिये साधनों के कमातों को बदला जा सकता है। इस इकाई में आपको उत्पादन-फलन से भली-भांति परिचित कराने के बाद परिवर्तनशील अनुपातों के नियम सें भी परिचित कराया जाएगा। इस इकाई में हम अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक साधन को परिवर्तित मानते हुऐ उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या करेंगे। इसके बाद दो परिवर्ती इनपुटोके 'सन्दर्भ में हम समोत्पाद वक्रों से भी आपका परिचय कराएने।

9.2 उत्पादन-फलन का अर्थ

उत्पादन-फलन में फलन शब्द गणित से लिया गया है। इसे गणित की भाषा में इस प्रकार लिखा जाता है-

$Q = f(L, K, N.....)$

इसमें Q किसी वस्तु का भौतिक उत्पादन है एवं L, K, N इत्यादि विभिन्न साधन है। जिनकी आवश्यकता उत्पादन प्रक्रिया के दौरान पड़ती है। इस प्रकार प्रदा है एवं L, K एवं N इनपुट है। इस समीकरण में प्रदा आश्रित चर है एवं आदाएँ अनाश्रितचर अथवा स्वतंत्र चर है। उत्पादन-फलन को सदैव निश्चित समयावधि से जोड़ा जाता है। उत्पादन प्रक्रियार मे उत्पादन तकनीकी को स्थिर माना जाता है। वस्तु विशेष के उत्पादन-फलन में उस वस्तु की किस में सूक्ष्म अन्तरों को पुला दिया जाता है एवं वस्तु विशेष को समरूप मानकर चला जाता है। जैसे उपयुक्त उदाहरण में प्रदा गेहूँ की किस्म में अफर को ध्यान में नहीं रखा गया है क्योंकि ऐसा करने पर प्रत्येक किस्म का अलग उत्पादन-फनल होगा। इस प्रकार उत्पादन-फलन उत्पादन-फलन (Function) की विस्तृत विवेचना आपके पाठ्यक्रम के प्रश्नपत्र-परिभाणात्मक विधियों के खण्ड १ की पहली एवं दूसरी इकाइयों में की गई है। प्रक्रिया में आदाओं एवं प्रदा के बीच कार्यालक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। चूंकि उत्पादन-फलन का अध्ययन हमेशा एक

निश्चित तकनीकी ज्ञान के सन्दर्भ में किया जाता है अत: उपयुँक्त परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है : एक फर्म का उत्पादन-फलन एक दिये हुए समय में (या प्रति इकाई समय में) साधनों के सभी सम्भव संयनौं या प्रत्येक संयोग से सम्बन्धित उत्पादन (अर्थात् अधिकतम उत्पादन) के मध्य भौतिक सम्बय को व्यक्त करता है, जबकि तकनीकी ज्ञान की स्थिति दी हुई हो । संक्षेप में उत्पादन-फलन उत्पादन सम्भावनाओं का एक सूचीपत्र (Catalogue) है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक फर्म का एक उत्पादन-फलन होता है जो किसी वस्तु विशेष के उत्पादन से सम्बन्धित होता है । आदाओं में किसी भी प्रकार का परिवर्तन उलदन-फलन को बदल देता है । अल्पकाल में उत्पादन के सभी साधनों अथवा आदाओं में परिवर्तन करना सम्भव नही होता परन्तु किसी एक अथवा दो साधनों को न्यूनाधिक मात्रा में परिवर्तित किया जा सकता है। परिवर्तित साधनों को स्थिर साधनों के साथ मिलाकर एक उत्पादक ऐसा संयोग स्थापित करना चाहता है जिससे दी हुई स्थितियों में अधिकतम उत्पादन (output) मिल सके । इसके विपरीत दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है। इस स्थिति में कोई स्थान स्थिर नहीं होता। विभिन्न साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया अथवा घटाया जा सकता है। इस प्रकार उत्पादनपका पैमाना बदला जा सकता है। दीर्घकाल में पतादन-फलन की आखा हम अगली इकाई में विस्तार से करेगे। इस इकाई में कुछ स्थिर साधनों के साथ परिवर्तनशील साधनों को मिलाने पर उत्पादन में जो सम्भावित परिवर्तन हो सकते है। उन स्थितियों की चर्चा की जाएगी। इसे हम अल्पकालीन उत्पादन-फलन भी कहते है। चूंकिं कुछ साधन स्थिर है एवं कुछ साधन परिवर्तित होते है साधनों का अनुपात बदल जाता है अत: अल्पकालीन उत्पादन-फलन परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के रूप में भी जाना जाता है।

9.2.1 मान्यताएं

उत्पादन-फलन निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है -

1. उत्पादन-फलन का सम्बंध किसी निश्चित समयावधि से होता है।
2. दूसरी महत्वपूर्ण मान्यता स्थिर तकनीकी ज्ञान से सम्बन्धित है। चूंकि तकनीकी ज्ञान आदाओं की उत्पादकता में महत्वपूर्ण सुधार ला सकता है ऐसी स्थिति में उत्पादन-फलन बदल जाता है। परन्तु एक दी हुई समयावधि में हम तकनीकी ज्ञान की स्थिति को भी दिया हुआ मान लेते है।
3. उत्पादन-फलन की एक अन्य महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि फर्म सर्वश्रेष्ठ एवं आधुनिकतम उत्पादन तकनीक का प्रयोग करती है।
4. उत्पादन-फलन में यह मान्यता भी ली जाती है कि उत्पादन साधनों के मूल्य स्थिर है।
5. उत्पादन-फलन उत्पादन के विभिन्न साधनों को छोटी-छोटी इकाइयों मे विभाज्य मानता है।
6. साधनों को एकरूप[1] (Homogeneous) मानते है।

[1] हम साधनों को एकरूप (Homogeneous) मानते है। यह समस्या का अति सरलीकरण है। वस्तुत: श्रम एवं पूँजी स्वरूप नही होने श्रमिकों की कार्य कुशलना एवं मशीनों के रूप भिन्न-भिन्न होते है। परन्तु इन्हें अलग-अलग लेने से कई समस्याएं उत्पन हो जाती है। उनके बचने के जिये इन्हें एकरूप मानकर चला जाता है।

9.2.2 विशेषताएँ

उत्पादन-फलन की निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी जा सकती है -

1. **उत्पादन-फलन एक अभियांत्रिकी समस्या है, आर्थिक समस्या नही-**उत्पादन-फलन का निर्माण केवल वही व्यक्ति कर सकता है जिसे उद्योग दिशो। से सम्बन्धित प्रावैधिक एवं अभियात्रिकी जानकारी होती है । उत्पादन-फलन का तकनीकी निर्माण अर्थशास्त्र की विषय वस्तु नही है । यह उत्पादन अभियान्त्रिकी का क्षेत्र है । परन्तु विगत वर्षो में अर्थशास्त्रियों ने इस क्षेत्र में काफी रूचि प्रदर्शित की है । इन अर्थशास्त्रियों ने भौतिक आदाओं एवं भौतिक प्रदाओं में हुए परिवर्तनों के सम्बन्ध के सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर कई प्रकार के उत्पादन फलनों का प्रतिपादन किया है । इनमें सर्वाधिक प्रचलित रूप कॉब-डगलस (Cabb Douglas) उत्पादन-फलन है इसका निर्माण दो अमरिकी अर्थशास्त्रियों सी. डब्ल्यू की एवं पॉल एच. डगलस ने किया था।
2. **उत्पादन-फलन कीमतों से स्वतंत्र होता है-**प्रत्येक फर्म को दो बाजारों में लेन-देन करना पड़ता है । प्रथम, वस्तु-बाजार जहां फर्म अपने उत्पादन को बेचती है एवं पूर्तिकर्ता की भूमिका अदा करती है; द्वितीय, साधन-बाजार जहाँ फर्म उत्पादन के साधनों का क्रय करती है एवं मांग कर्ता के रूप में उपस्थित होती है। उत्पादन-फलन का सम्बन्ध उत्पादन के साधनों की किमतो तथा उत्पादित वस्तुओं की कीमतों से नही होता अर्थात् यह कीमतों से स्वतंत्र होता है। फिर भी जब एक उत्पादनकर्ता इसकी सहायता से उत्पादन स्तर को निश्चित करने का निर्णय करता है तो उसे कीमतों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। विभिन्न साधन संयोग में से किस संयोग का चुनाव किया जाय तथा कितनी मात्रा में वस्तु का उत्पादन किया जाय, इसका निर्धारण वस्तु एवं साधनों की कीमतों द्वारा ही किया जाता है ।
3. **उत्पादन-फलन का निर्धारण तकनीकी ज्ञान की स्थिति द्वारा होता है -** यह तो आप पढ़ ही चुके है कि उत्पादन-फलन का निर्माण तकनीकी ज्ञान को स्थिर मानकर किया जाता है। तकनीकी ज्ञान में परिवर्तन उत्पादन-फलन में परिवर्तनला देगा क्योंकि तकनीकी ज्ञान बढ़ने पर इनपुटोकी मात्रा में परिवर्तन किये बिना ही अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा । अत: स्पष्ट है तकनीकी ज्ञान उत्पादन-फलन में परिवर्तन का प्रमुख कारण है।
4. **उत्पादन-फलन की व्याख्या एक निश्चित समयावधि के सन्दर्भ में ही की जाती है-**इसका अभिप्राय यह है कि उत्पादन-फलन का सम्बन्ध एक समयावधि से होता है। किसी भी वस्तु का उत्पादन करने के लिए कुछ समय की आवश्यकता होती है अत: समय की इकाई के सन्दर्भ में ही उत्पादन-फलन की अर्थपूर्ण व्याख्या की जा सकती है।
5. **उत्पादन-फलन के निर्धारण में साधनों की प्रतिस्थापनीयता पर ध्यान देना आवश्यक है-**उत्पादन के साधनों को एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाया जा सकता है । उदाहरणार्थ अनेक ऐसे कार्य है जिन्हे श्रमिकों द्वारा करवाया जा सकता है अथवा उन्ही कार्यो को मशीनों द्वारा करवाया जा सकता है। अर्थात् श्रम के स्थान पर पूँजी का प्रतिस्थापन किया जा सकता है ।

ये संयोग अल्पकाल एवं दीर्घकाल मे अलग-अलग होंगे, क्योंकि अल्पकाल में सभी साथने को एक ही अनुपात में नही बढ़ाया जा सकता। यदि एक साधन को बढ़ाया जाता है तो दूसरे साधन स्थिर रहते है। इस प्रकार अल्पकाल में साधनों को अनुपात बदल कर उत्पादन में परिवर्तन किया जाता है इसलिए अल्पकालीन उत्पादन-फलन स्रे परिवर्तनशील अनुपातों का नियम भी कहा जाता है।

इसके विपरीत दीर्घकाल में सभी आदाओं को एक साथ एक ही मात्रा में बढ़ाया अथवा घटाया जा सकता है। अर्थात् साधन मात्रा को बदले बिना उत्पादन का पैमाना बढ़ाया अथवा घटाया नही जा सकता है। इस स्थिति को दीर्घकालीन उत्पादन-फलन अथवा पैमाने के प्रतिफल के नाम से व्यक्त किया जाता है।

बोध प्रश्न 1

अपना उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का प्रयोग करें।

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरी से अपने उत्तरी का मिलान करें ।

1. उत्पादन-फलन किसे कहते है । क्या यह फलन तकनीकी श्रेष्ठता की मान्यता लेकर चलता है?
2. अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन-फलन में क्या अन्तर है?
3. उत्पादन-फलन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

9.3 एक परिवर्ती आदा सहित उत्पादन-फलन

9.3.1 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम:

अब हम अल्पकालीन उत्पादन-फलन की विवेचना करेंगे जिसमें एक को छोड़कर सभी इनपुट स्थिर है। परिवर्तनशील इनपुट श्रम है। अन्य सभी उत्पादन-साधनों के स्थिर होने के कारण फर्म उत्पादन में वृद्धि करने के लिए केवल श्रम की अधिकाधिक इकाइयों का प्रयोग करती है। श्रम की पूर्ति बढ़ाने एवं अन्य साधनों, की पूर्ति स्थिर रहने के कारण उत्पादन फलन में श्रम का अनुपात बढ़ता चला जाता है जब किसी एक साधन की इकाईयाँ बढ़ती है एवं अन्य साधनों की इकाईयाँ यथावत् रहती है तो कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि की दर घटती जाती है। यह उत्पादन के सार्वभौमिक नियम ह्रासमान प्रतिफल नियम की क्रियाशीलता अपेक्षाकृत शीघ्र दृष्टिगोचर होने लगती है।

अब हम एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा कृषि के क्षेत्र में इसकी क्रियाशीलता का विस्तृत अध्ययन करेंगे। मान लीजिए भूमि के एक निश्चित टुकड़े पर कृषक अन्य इनपुट खाद, बीज, यंत्र, उपकरण, कीटनाशक दवाइयों एवं सिंचाई आदि को यथावत् रखते हुए श्रम की उत्तरोंत्तर अधिक इकाइयों का प्रयोग करता है। अब कृषक को यह निर्णय लेना है कि वह अपने फार्म पर श्रम की कितनी इकाइयां लगाए। यह निर्णय वह श्रम की भौतिक उत्पादकता को देखकर ही करेगा। निम्नाकिंत सारिणी 9.1 में श्रम की मात्रा को बढ़ाने से प्राप्त होने वाले कुल उत्पादन, औसत एवं सीमान्त उत्पादन को दर्शाया गया है।

सारिणी 9. 1 (उपज क्विंटल में)

श्रम की इकाइयां (L)	कुल भौतिक उत्पादन (TPP)	औसत उत्पादन (AP)	सीमान्त उत्पादन (MP)	विशेष विवरण
1	19	19	19	प्रथम अवस्था
2	52	26	33	
3	93	31	41	
4	136	34	43	
5	175	35	39	
6	204	34	29	द्वितीय अवस्था
7	217	31	13	
8	208	26	-9	तृतीय अवस्था
9	171	19	-37	
10	100	10	-71	

सारिणी 9.1 से स्पष्ट है कि परिवर्तनशील साधन श्रम की इकाइयों में वृद्धि करने पर उत्पादन में परिवर्तनों को तीन भिन्न भिन्न अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम अवस्था में कुल उत्पादन औसत उत्पादन एवं सीमान्त उत्पादन तीनों ही बढ़ते है औसत उत्पादन में गिरावट प्रारम्भ होने के साथ ही फर्म उत्पादन की दूसरी अवस्था में प्रवेश कर जाती है। इस अवस्था में कुल उत्पादन में वृद्धि की दर कम होती जाती है एवं एक सीमा के बाद यह वृद्धि रूक जाती है। प्रस्तुत काल्पनिक उदाहरण में श्रम की सातवीं इकाई पर कुल उत्पादन अधिकतम है। इस के बाद कुल उत्पादन गिरने लगता है। यहाँ से उत्पादन की दूसरी अवस्था समाप्त होकर तुलीय अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। तृतीय अवस्था में श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है। इस सारिणी से स्पष्ट है कि उत्पत्ति ह्रासमान नियम एक सीमा के बाद क्रियाशील हो जाता है। परन्तु इससे पूर्व उत्पादन के वर्द्धमान प्रतिफल एवं समता प्रतिफल नियम लागू हो सकते है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मन में उत्पत्ति ह्रासमान नियम के समान नियम केवल कृषि के क्षेत्र में लागू होता है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री इसे सर्व व्यापक नियम मानते है। उत्पादन के बढ़ने स्थिर रहने एवं अन्त में घटने के इस नियम को हम परिवर्तनशील अनुपातों का नियम भी कहते है। इसके लागू होने का मुख्य कारण स्थिर साधनों के साथ एक साधन के अनुपात में परिवर्तन होना है। साधन एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न नही है यदि ऐसा होता तो स्थिर लागतों से अनन्त उत्पादन प्राप्त किया जा सकता था।

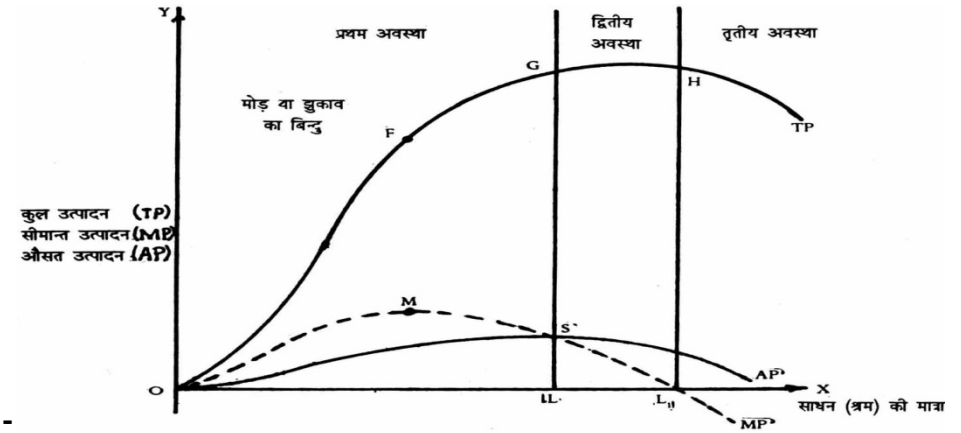

चित्र 9.1

कुल उत्पादन औसत उत्पादन एवं सीमांत उत्पादन के मध्य आपसी सम्बन्ध की व्याख्या हम रेखाचित्र में 9.1 के द्वारा कर सकते है। इस रेखाचित्र में X अक्ष पर परिवर्तनशील साधन श्रम की इकइयों को प्रदर्शित किया गया है तथा y अक्ष पर उत्पादन को मापा गया है। यहाँ यह मान लिया गया है कि साधन की इकाइयाँ किसी भी सीमा तक विभाजित की जा सकती है। रेखाचित्र में TP,AP एवं MP रेखाएं क्रमशः कुल उत्पादन, औसत उत्पादन एवं सीमान्त उत्पादन को प्रदर्शित करती है। इन वक्रों की आकृति से यह पता चलता है कि साधनों के अनुपात में परिवर्तन होने पर अर्थात् जब कुछ साधनों की मात्रा को स्थिर रखकर एक साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो कुल उत्पादन औसत उत्पादन एवं सीमान्त उत्पादन किस प्रकर बदलते है। कुल उत्पादन वक्र TP बिन्दु H तक बढ़ता है तथा उसके बाद यह नीचे गिरने लगता है। इसी प्रकार सीमान्त उत्पादन वक्र M बिन्दु तक बढ़ता है तथा उसके बसद घटना शुरू कर देता है। बिन्दु L_1 पर यह शून्य हो जाता है तथा उसके बाद ऋणात्मक हो जाता है। इसी प्रकार औसत उत्पादन बिन्दु तक बढ़ता है तथा उसके बाद घटना ररू कर देता है, परन्तु यह वक्र कभी भी X अक्ष को स्पर्श नही करेगा। रेखाचित्र 9.1 से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सीमान्त उत्पादन वक्र औसत उत्पादन वक्र की तुलना में पहले घटना आरम्भ कर देता है। अतः सीमान्त उत्पादन बढ़ता है तो कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ता है तथा जब सीमान्त उत्पादन घटता है तो कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है। कुल उत्पादन अधिकतम वहां होता है जहां सीमान्त उत्पादन शून्य होता है।

9.3.2 उत्पादन की विभिन्न अवस्थाएं एवं अनुकूलतम अवस्था

इस कुल सीमान्त तथा औसत उत्पादनों में परिवर्तन की निम्नलिखित तीन अवस्थाऐं (Stages)बतायी जा सकती है:-

प्रथम अवस्था (Stage 1)- रेखाचित्र 9.1 में प्रथम अवस्था परिवर्तनशी साधन (श्रम) की मात्रा OL तक प्रयोग करने तक दिखायी गयी है । परिवर्तनशील साधन (श्रम) की मात्रा ज्यों-जों बढ़ायी जाती है त्यों-त्यों कुल उत्पादन O बिन्दु से F बिन्दु तक बढ़ती हुई दर से बढ़ता है, जिसका तात्पर्य यह है कि सीमान्त उत्पादन में वृद्धि होती है । O बिन्दु से F बिन्दु तक कुल उत्पादन वक्र ऊपर की ओर नत्तोदर

(Concave upwards) होता हैं। F बिन्दु के बाद पहली ही अवस्था में कुल उत्पादन वक्र ऊपर की ओर बढ़ता जाता है, परन्तु इसके बढ़ने की दर कम होती जाती है, अर्थात् सीमान्त उत्पादन में कमी होने लगती है । रेखाचित्र 9.1 में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि M बिन्दु पर सीमान्त उत्पादन बढ़कर अधिकतम हो जाता है, इसके बाद परिवर्तनशील साधन (श्रम) का प्रयोग करने पर सीमान्त उत्पादन कम होता जाता है तथा कुल उत्पादन भी F बिन्दु के बाद घटती हुई दर से ही बढ़ता है। कुल उत्पादन वक्र पर अंकित F बिन्दु को मोड़ बिन्दु (Point of inflexion) कहा जाता है । इसका कारण यह हैं कि इस बिन्दु पर कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ना बन्द करके घटती हुई दर से बढ़ना प्रारम्भ कर देता है अथवा इस मोड़ बिन्दु M बिन्दु पर सीमान्त उत्पादन अधिकतम होता है तथा उसके बाद वह घटना प्रारम्भ कर देता है।

परिवर्तित अनुपातों के नियम (Laws of Variable Proportions) की पहली अवस्था वहा समाप्त हो जाती है जहां कि औसत उत्पादन अधिकतम हो जाता है । रेखाचित्र में यह स्थिति S बिन्दु पर देखी जा सकती है जबकि परिवर्तनशील साधन (श्रम) की OL इकाइयों का प्रयोग किया जा चुका होता है । इस स्थिति में स्थिर साधनों की मात्रा परिवर्तनशील साधन (हम) की मात्रा की अधिकतम हो जाता है । जिसके फलस्तरूप औसत उत्पादन में लगातार वृद्धि होती है ।

द्वितीय अवस्था (Stage II) - रेखाचित्र 9.1 में पहली अवस्था परिवर्तनशील साधन (श्रम) की OL मात्रा तक के प्रयोग तक ही सीमित रहती है । इसके बाद यदि परिवर्तनशील साधन की अधिक मात्रा का प्रयोंग किया जाता है तो दूसरी अवस्था प्रारम्भ हो जाती है । यह अवस्था परिवर्तनशील साधन की LL_1 मात्रा के प्रयोग तक सीमित रहती है । इस अवस्था में कुल उत्पादन वक्र घटती हुई दर से बढ़ता जाता है तथा M बिन्दु पर अधिकतम हो जाता है । इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन (श्रम) का सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों में कमी हो जाती है परन्तु ये धनालक ही बने रहते है। जब इस अवस्था की सीमा समाज हो जाती है अर्थात् परिवर्तनशील साधन की अन्तिम इकाई (रेखा चित्र में L_1 बिन्दु पर) से प्राप्त सीमान्त उत्पादन शन्य हो जाता है । ठीक इस बिन्दु पर कुल उत्पादन बढ़कर अधिकतम हो जाता है । दूसरी अवस्था को घटते हूए प्रतिफल की अवस्था (Stage of diminishing retuns) अथवा घटते हुए प्रतिफल के नियम (Law of Diminishing Returns) की भी संज्ञा प्रदान की जा सकती है। इसका कारण यह है कि इस अवस्था में इस दूसरी अवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि एक फर्म अथवा उत्पादनकर्ता अपनी वस्तु का उत्पादन इसी अवस्था के किसी बिन्दु पर निश्चित करेगा जहाँ कि उसका सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर हो जाता है ।

तृतीय अवस्था (Stage III) -दूसरी अवस्था के बाद जब परिवर्तनशील साधन की OL_1 से अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है तो हम परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीसरी अवस्था में चले जाते है । इस अवस्था में मुल उत्पादन घटने लगता है तथा परिवर्तनशील साधन (श्रम) की मात्रा अत्यधिक हो जाती है । इस अवस्था को ऋणात्मक होता है । इस अवस्था का अर्थशास्त्र में कोई महत्व नही होता । किसी भी उत्पादनकर्ता के इस अवस्था में प्रदेश करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

उत्पादन की अनुकूलतम अवस्था

उत्पादन की तीनों अवस्थाओं का अध्ययन करने के बाद यह प्रश्न उपस्थित होता है कि एक विवेकशील उत्पादनकर्ता किस अवस्था में वस्तु का उत्पादन निश्चित करेगा अथवा उत्पादन की अनुकूलतम अवस्था कोन सी है? यह तो स्पष्ट है कि कोई भी उत्पादनकर्ता तीसरी अवस्था में कभी भी उत्पादन करना पसन्द नही करेगा, क्योंकि तीसरी अवस्था में परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है। अत: इस स्थिति में एक उत्पादक परिवर्तनशील साधन की मात्रा को कम करके उत्पादन में वृद्धि कर सकता है । फलस्वरूप उत्पादक के इस अवस्था में प्रवेश करने का कोई प्रश्न नहीं उठता। यदिं परिवर्तनशील साधन की प्राप्ति के लिए उत्पादक को कोई कीमत भी देनी न पड़े अर्थात् वह साधन मुक्त भी मिले, तब भी उत्पादक उसका उत्पादन में प्रयोग करना नही चाहेगा। उसके साथ-साथ एक विवेकशील उत्पादक पहली अवस्था मे भी नहीं रहना चाहेगा क्योंकि इसमें स्थिर साधनों का उत्पादन ऋणात्मक होता है अर्थात् स्थिर साधनों की मात्रा परिवर्तनशील साधन की मात्रा की तुलना में अत्यधिक होती है एवं उत्पादक अपने स्थिर साधनों का अनुकूलतम प्रयोग नही कर पाता है । यदि उत्पादक परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि करता है तो वह अधिक उत्पादन करके अपने लाभ को अधिकतम कर सकता है।

अत: यह निश्चित हो जाता है कि एक उत्पादनकर्ता न तो प्रथम अवस्था में ही रहना चाहेगा और न ही वह तीसरी अवस्था में प्रवेश करेगा, बल्कि वह दूसरी अवस्था में किसी बिन्दु पर अपना उत्पादन निश्चित करने का प्रयास करेगा। दूसरी अवस्था परिवर्तनशील साधन की L से L_1 तक की मात्रा मे प्रयोग से संबन्धित होती है। इस अवस्था में परिवर्तनशील सान के सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों में कमी होती जाती है। कुल उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होती रहती है। जिस बिन्दु से (अर्थात् L बिन्दु से) दूसरी अवस्था प्रारम्भ होती है, उस बिन्दु पर परिवर्तनशील साधन का औसत उत्पादन अधिकतम होता है तथा स्थिर साधन का सीमान्त उत्पादन शून्य होता है अर्थात् इस बिन्दु पर उत्पादक अपने स्थिर साधन का अधिकतम उपयोग कर रहा होता है अत: उत्पादनकर्ता इस बिन्दु पर अपना उत्पादन समाप्त नही करेगा। दूसरी ओर, जिस बिन्दु पर दूसरी अवस्था समाज होती है (अर्थात् L_1 बिन्दु पर) वहाँ परिवर्तनशील साधन का सीमान्त उत्पादन शून्य होने के कारण उत्पादन उस स्तर तक अपने परिवर्तनशीन साधन का उपयोग नही करना चाहेगा। इसका कारण यह है कि उत्पादक को परिवर्तनशील की एक धनात्मक कीमत चुकानी पड़ती है। अत: इस अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से प्राप्त शून्य उत्पादक इसे उत्पादन कार्य में प्रयुक्त नही करेगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्पादक दूसरी अवस्था के प्रारम्भिक तथा अन्तिम छोर बिन्दुओं (extreme points) पर न रहकर इन दोनों बिन्दुओं के बीच कही भी दूसरी अवस्था में अपना उत्पादन निश्चित करेगा। यहां यह बताना मुश्किल है कि किस बिन्दु विशेष पर उत्पादक वस्तु का उत्पादन करने का निर्णय करेगा क्योंकि यह साधनों की कीमतों (अर्थात् उत्पादन लागत) पर निर्भर करता हैं। चूंकि उत्पादन लागत का यहाँ पता नही है, अत: यही कहा जा सकता है कि द्वितीय अवस्था विवेकशील उत्पादन निर्णयों के क्षेत्र को व्यक्त करती है।

बोध प्रश्न 2

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तरों का मिलान करें।

सारिणी 9.1 में कुल उत्पादन के ऑकड़ो की इस प्रकार बदल दे - 1, 2, 6, 12, 18, 23, 27, 30, 32, 33, अब आप श्रम का औसत भौतिक उत्पादन (APP) तथा सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP) ज्ञात कीजिए।

क्या आप इस मत से सहमत है कि किसी भी क्षेत्र में प्रारम्भ में उत्पादन वर्द्धमान प्रतिफल नियम क्रियाशील होता है एवं अन्त में ह्यसमान प्रतिफल नियम क्रियाशील होगा। कारण दीजिए।

एक विवेकशील उत्पादक उत्पादन की कौनसी अवस्था में उत्पादन करना पसन्द करेगा? अपने उत्तर की पुष्टि में संक्षेप में तर्क दीजिए

9.4 दो परिवर्ती आदाओं सहित उत्पादन-फलन

यद्यपि यह विवेचन अल्पकालीन उत्पादन-फलन की विषय-वस्तु नहीं है तथापि निरन्तरता की दृष्टि से हम इसका विवेचन करने के बाद सभी परिवर्ती आदाओं सहित उत्पादन-फलन की विवेचना करेंगे जो दीर्घकालीन उत्पादन-फलन है। इस प्रकार प्रथम स्थिति जिसमे एक ही आदा को बढ़ाया अथवा घटाया जाता है अल्पकालीन उत्पादन-फलन है जिसकी व्याख्या हम इस इकाई के इससे पूर्व के विवेचन में कर चुके है। द्वितीय स्थिति वह हैजिसमें फर्म सभी आदाओं को परिवर्तित कर सकती है। इसे हम दीर्घकालीन उतपादन-फलन एवं पैमाने के प्रतिफल के रूप में इकाई संख्या 10 में पढ़ेगे। परन्तु इस बीच की स्थिति का अध्ययन यहाँ महत्वपूर्ण है क्योंकि उत्पादन-फलन में साधनों की स्थानापन की व्याख्या इसकी सहायता से आसानी सें को जा सकती है। इसके साथ ही दो परिवर्ती आदाओं के प्रतिस्थापना एवं संयोजन से प्राप्त उत्पादन के एक विशेष स्तर को व्यक्त करने के लिये बनाए गए रेखाचित्र उपभोक्ता व्यवहार की व्याख्या करने के लिए बनाए गये तटस्थ वक्रों अथवा उदासीनता वक्रों से बहुत मिलते-जुलते है। यही करण है इन्हें उत्पादन उदासीनता वक्र अथवा समोत्पाद वक्र भी कहा जाता है। अर्थशास्त्र में इन वक्रों का व्यापक प्रयोग हुआ है। अत: यहां हम इनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

हम उस काल्पनिक स्थिति का अध्ययन करेगे जिसमें फर्म दो आदाओं को परिवर्तित करके उत्पादन बढ़ाती है जो एक दूसरे के स्थानापन है, जैसे श्रम एवं पूँजी। इस उत्पादन-फलन को हम गतितीय रूपमें एक सारिणी द्वारा व्यक्त करेगे। इसमें क्षतिज अक्ष पर श्रम की इकाइयों को रखा गया है। एवं उदग्र-अक्ष पर पूँजी की इकाइयों को रखा गया है। प्रस्तुत उदाहरणमें दोनों आदाओं की 1 से 8 इकाइयाँ ली गई है। विभिन्न संयोजनों से होने वाले उत्पादन को इस सारिणी में प्रदर्शित किया गया है। उत्पादन बिन्दु से समानांतर रेखा पर पूँजी की इकाइयाँ एवं लाम्ए रेखा पर रम की इकाइयों ज्ञात की जा सकती है। उदाहरणार्थ 8 मशीनें (पूँजी की इकाइयां) एवं 1 श्रमिक (श्रम की इकाई) के संयोजन से 50 इकाइयाँ प्रदा अथवा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार 8 मशीनों एवं 2 श्रमिकों से 71 इकाइयों प्राप्त की

जा सकती है। अन्य सभी संयोगों को हम निम्नाकित उत्पादन-फलन द्वारा प्रदर्शित करेगे पूंजी की इकाइयों (मशीन):-

सारिणी 9.2

पूंजी की इकाइयां (मशीन)									
	8	(50)	71	(87)	100	112	122	132	141
	7	47	66	81	94	105	115	124	132
	6	43	(61)	75	(87)	97	106	115	122
	5	40	56	68	79	88	97	105	112
	4	35	(50)	61	71	79	(87)	94	100
	3	31	43	53	(61)	68	75	81	(87)
	2	25	35	43	(50)	56	(61)	66	71
	1	18	25	31	35	40	43	47	(50)
		1	2	3	4	5	6	7	8

श्रम की इकाइयॉं (श्रमिक)

उपर्युक्त सारिणी से हम श्रम अथवा पूँजी की सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP) ज्ञात कर सकते है। यदि हम सीमान्त भौतिक उत्पाद की परिभाषा का स्मरण करे तो हमें ज्ञात हो जाएगा कि उत्पत्ति के अन्य साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन की मात्रा में परिवर्तन से कुल उत्पादन में जो परिवर्तन होता है वह सीमान्त भौतिक उत्पाद है इसी प्रकार इस सारिणी से हम ह्यासमान प्रतिफल के नियम की भी व्याख्या कर सकते है। इस नियम के अनुसार यदि उत्पत्ति के अन्य साधनो को स्थिर रखकर किसी एक साधन के अनुपात को बढ़ाया जाता है तो उससे प्राप्त होने वाली श्रीमान भौतिक उत्पत्ति उतरोत्तर घटती चली जाती है। इसके साथ ही इस उदाहरण से साधनों की स्थानापन्नता की व्याख्या भी की जा सकती है। सारिणी 9.2 के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि 50 इकाइयाँ उत्पादित करने के निम्नलिखित संयोजन हो सकते है।

सारिणी 9.3

50 इकाइयां उत्पादित करने के लिए साधन संयोजन

संयोजन	उत्पादन इकाइयाँ	पूँजी की इकाइयाँ (मशीने)	श्रम की इकाइयाँ (श्रमिक)
(a)	50	8	1
(b)	50	4	2
(c)	50	2	4
(d)	50	1	8

चूंकि सभी संयोजन उत्पादन के समान स्तर को व्यक्त करते है उपर्युक्त सारिणी को हम समोत्पाह अनुसूची भी कह सकते है एवं इस रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित करने पर जो वक्र मिलता हैं उसे हम समोत्पाद वक्र कहते है। इसका विवेचन भाग 9. 4.1 में विस्तार से किया गया है।

9.4.1 समोत्पाद वक्र-अर्थ एवं विशेषताएं

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि एक निश्चित उत्पादन को फर्म विभिन्न वैकल्पिक साधन-संयोगो का प्रयोग करके प्राप्त कर सकती है। इन संयोगो को रेखाचित्र की सहायता से प्रदर्शित करने पर हमें समोत्पाद वक्र प्राप्त होता है (देखिए रेखाचित्र 9.2)

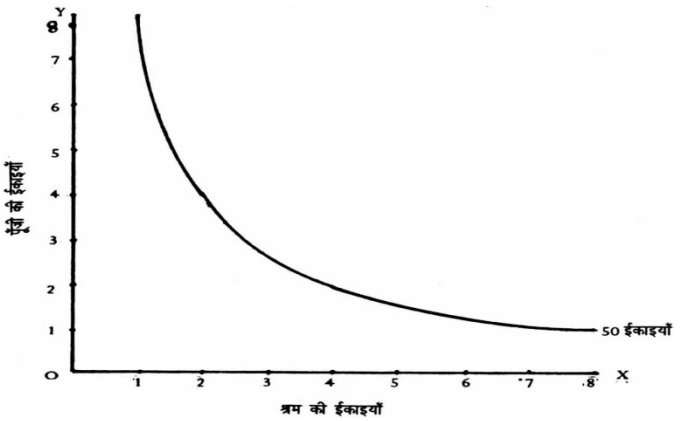

यह वक्र उन सभी वैकल्पिक साधन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे 50 इकाइयाँ उत्पादित की जा सकती है। समोत्पाद वक्र एवं तटस्थता अथवा उदासीनता वक्रो में अत्यधिक समानता पाई जाती है। जिस प्रकार उदासीनता वक्र दो वस्तुओं के उन संयोगों को व्यक्त करना है जात उपभोक्ता को स्तुष्टि का एक समान स्तर प्रदान करते है। उसी प्रकार समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन संयोगों को व्यक्त करता है जिनसे समान प्रदा उत्पन्न होती है। समोत्पाद वक्रों को उत्पादन की इकाइयों की संख्या के रूप मे व्यक्त किया जाता है जबकि उदासीनता वक्रो में संतुष्टि के स्तर को मापा नही जाता। समोत्पत्ति वक्र के दोनों किनारे ऊपर की उठते हुऐ हो सकते है। ऐसा तटस्थता वक्रो में नही होता। फर्म के उत्पादन-फलन को रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित करने पर समोत्पत्ति वक्र मानचित्र (Isoquant map) प्राप्त होता है। प्रत्येक वक्र के साथ उस उत्पादन का स्तर अंकित होता है जिसे वह प्रदर्शित करता है। अत हम समोत्पत्ति वक्र की कुछ विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

1. **समोत्याद वक्र नीचे दाहिनी ओर झुकते है**समोत्पाद वक्र तटस्थता वक्री की ही भांति ऊपर बाएं से नीचे दायी ओर झुकते है। इसका अर्थ यह है कि उत्पति की समान मात्रा अल्पन करने के लिये साधनों को एक दूसरे के स्थान पर प्रविस्थापित किया जा सकता है।
2. **समोत्याद वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते है**समोत्पाद वक्र भी तटस्थता वक्रों की भांति मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते है। इसका कारण प्राविधिक प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होता है। समोत्पाद वक्र का ढाल यह प्रदर्शित करता है कि एक आदा को दूसरी आदा से किस प्रकार प्रतिस्थापित किया जाता है जबकि उत्पादन अपरिवर्तित रहे। अत:

प्राविधिक प्रतिस्थापन की दर (RTS L for K) वह दर है जिस पर पूँजी के बदने श्रम को प्रतिस्थापित किया जाता है कि उत्पादन का स्तर अपरिवर्तित रहे गणितीय रूप में -

$$MRTS(LforK)=MP_L=MP_K$$

इस समीकरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि समोत्पाद वक्र निश्चित रूमसे ऋणात्मक ढाल होने चाहिए। चूंकि साधनों को तभी नियोजित किया जाएगा जबकि उनकी सीमान्त उत्पादकता धनात्मक ही। कोई भी फर्म उस समय उत्पादन बन्द कर देगी जब किसी साधन की सीमान्त उत्पादकत्ता ऋणात्मक हो। केवल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (dk/dl) को ऋणात्मक चिन्ह उसके ढाल को दूरदर्शित करता है अर्थात् श्रम की इकाइयों में वृद्धि हो ने पर पूंजी की इकाईयों में कमी होना अनिवार्य है तभी उत्पादन स्थिर रह पाएगा। यदि उत्पादन स्थिर रखने के लिए श्रम एवं पूँजी दोनों की इकाइयों को बढ़ाना पड़े तो इसका अभिप्राय यही होगा कि दोनों में से किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक है। यह स्थिति असम्भव है। अत: चूंकि MP_L तथा MO_K दोनों धनात्मक होंगे प्रविधिक प्रतिस्थापन की दर (RTS) भी धनात्मक होगी।

3. **दो समोत्पाद वक्र आपस में एक दूसरे को काटते नही है**। चूंकि प्रत्येक समोत्पाद वक्र उत्पादन के एक विशिष्ट स्तर को प्रदर्शित करता है यह अव्यावहारिक होगा कि दो भिन्न-भिन्न मात्राएं साधनों के एक ही संयोग से उत्पादित की जा सकती है।

9.4.2 प्रतिस्थापन की लोच (The elasticity of Substitution)

दो परिवर्ती आदाओं सहित उत्पादन-फलन की विवेचना में प्रतिस्थापन की लोच (σ) का ज्ञान आवश्यक है। हम यह जानना चाहेगे कि क्या श्रम के स्थान पर पूँजी का प्रतिस्थापन सरल है यह प्रश्न किसी एक समोत्पाद वक्र के स्वरूप का प्रश्न है पूरे समोत्पाद मानचित्र से इसका सम्बन्ध नही है। एक समोत्पाद वक्र में यह मान्यता ली गई है कि प्रतिस्थापन की दर (RTS) पूँजी श्रम अनुपात (K/L) के घटने के साथ-साथ घटती जाती है। प्रतिस्थापन की लोच के द्वारा हम इसकी अनुक्रियाशीलता (Responsiveness) की माप करते है। यदि K/L के परिवर्तित होने पर RTS अपरिवर्तित रहे तो हम कहेंगे कि प्रतिस्थापन सरल है क्योंकि दोनों इनपुटोकी सीमान्त उत्पादकता का अनुपात आदाओं की मात्राओं के बदलने पर भी नही बदलता है। इसके विपरीत यदि प्रविधिक प्रतिस्थापन की दर (RTS), पूँजी /श्रम अनुपात (K/L) में मामूली परिवर्तन से प्रभावित होती हे तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि प्रतिस्थापन कठिन है क्योंकि आदाओं के संयोगों में मामूली परिवर्तन आदाओं की सीमान्त उत्पादकता को ठोस रूप से प्रभावित करेगा। प्रतिस्थापन की अनुक्रियाशीलता की माप प्रतिस्थापन्न की लोच द्वारा की जाती है।

एक दिये हुए उत्पादन-फलन Q=f(K/L) में प्रतिस्थापन्न की लोच (σ) को साधनों की मापा के अनुपात (K/L) में आनुपातिक परिवर्तन प्रविधिक प्रतिस्थापन की दर (RTS) में आनुपातिक परिवर्तन का भाग देकर प्राप्त किया जा सकता है। अर्थात्

$$\sigma = \frac{\text{साधनों की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{प्राविधिक प्रतिस्थापन्न की दर में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

चूंकि किसी समोत्पाद वक्र में पूंजी/श्रम(K/L) तथा RTS एक ही दिशा में परिवर्तित होते है 6 का मूल्य सदैव धनात्मक होगा। यदि σ का मूल्य शून्य है तों यह स्थिर अनुपात की स्थिति होगी इसमें पूंजी का श्रम के लिये प्रतिस्थानन्न सम्भद नहीं होगा। इस स्थिति में समोत्पाद वक्र L आकार के होंगे। यदि σ का मूल्य अनन्त है तो यह इस बात का परिचायक होगा की पूँजी एवं श्रम पूर्ण स्थानापनन्न साधन है। इस स्थिति में समोत्पाद वक्र सीधी रेखा होंगे। इसके विपरी यदि (σ) का मूल्य कम है तो समोत्पाद वक्र अधिक मुड़े हुए होंगे। एक ही समोत्पाद वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर (σ) का मूल्य भिन्न-भिन्न होगा एवं उत्पादन का पैमाना बदलने के साथ-साथ (σ) का मान बदलेगा। सामान्यतया (σ) को स्थिर मानकर अधिकांश उत्पादन-फलनों की व्याख्या की जाती है। प्रसिद्ध कॉव-डगलग उत्पादन फलन में $\sigma = 1$ मानकर विश्लेषण किया जाता है। इस फलन को इस प्रकार लिखा जाता है:-

$$Q = AK^{A.}.L^{B}$$

जहाँ A,a एवं b सभी धनात्मक स्थिरांक है। यदि a+b=1 है तो यह पैमाने के स्थिर प्रतिफल हुए प्रतिफल की स्थिति होगी। यदि a+b>1 है तो यह पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल एवं यदि a+b<1 है तो यह पैमाने के घटते हुए प्रतिफल को प्रदर्शित करेगा।

बोध प्रश्न 3

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. समोत्पाद वक्रों को क्या पूर्ण रूप से उदासीनता वक्रों की भांति समझा जा सकता है? यदि नही तो इनमें समानताओं एवं भिन्नताओं का स्पष्ट उल्लेख कीजिए।

9.5 सारांश

उत्पादन प्रक्रिया में विभिन्न साधनों से विभिन्न अनुपातों में लगाया जा सकता है एवं इन अनुपातों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। किसी फर्म की भौतिक आदाओं एवं भौतिक प्रदाओं के बीच सम्बन्ध ही उत्पादन-फलन है। गणितीय भाषा में,Q =f(K,L,N,....) इसका अभिप्राय है कि Q = उत्पादन अथवा प्रदा, उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त पूँजी, श्रम एवं अन्य साधनों पर (अथवा आदाओं पर) निर्भर है। उत्पादन-फलन किसी निश्चित समयावधि, स्थिर तकनीकी एवं साधनों को विभाज्य माना जाता है।

यदि उत्पादन-फलन में अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखकर किसी एक आदा की मात्रा बढ़ायी जाती है तो परिवर्तनशील अनुपातों का नियम क्रियाशील हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि यदि किसी परिवर्तनशील साधन को स्थिर साधनों के साथ अधिकाधिक मिलाया जाएगा तो एक सीमा के बाद परिवर्तनशील साधन की सीमान्त एवं औसत उत्पत्ति घटने लगेगी। प्रत्येक फर्म उत्पादन की तीन विभिन्न स्थितियों से गुजरती है। प्रथम स्थिति में फर्म का औसत उत्पादन बढ़ता हुआ होता है। द्वितीय स्थिति में

फर्म का औसत उत्पादन घटने लगता है एवं एक सीमा के बाद सीमान्त उत्पादन शून्य हो जाता है। यही उत्पादन की दूसरी अवस्था समाप्त हो जाती है। कुल उत्पादन उस बिन्दु पर अधिकतम होता है जिस बिन्दु पर सीमान्त उत्पादन शून्य हो जाता है। उत्पादन की तृतीय अवस्था ऋणात्मक सीमान्त उत्पादन की अवस्था है। अत: यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उत्पादक किस अवस्था पर रुकना पसन्द करेगा। कोई भी विवेकशील उत्पादक अपना उत्पादन दूसरी अवस्था में किसी बिन्दू पर तय करेगा।

यदि दो इनपुट परिवर्तित हो तो साधनों की स्थानापन्न की व्याख्या समोत्पाद वक्रो की सहायता से आसानी से की जा सकती है। समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन संयोगो को व्यक्त करते है जिनसे समान प्रदा उत्पन्न होती है। उदासीनता वक्रो की भांति समोत्पाद वक्र ऋणात्मक ढालू एवं मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते है। साधनों की भौतिक मात्रा के अनुपात के आनुपातिक परिवर्तन में उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकता के अनुपात में आनुपातिक परिर्तन का भाग देकर प्रतिस्थापन की लोच ज्ञात की जाती है। प्रतिस्थापन की लोच (6) का ज्ञान हमें समोत्पाद वक्रो के स्वरूप का ज्ञान प्रदान करता है। प्रसिद्ध कॉब-डगलस उत्पादन-फलन में प्रतिस्थापन्न की लोच (6=1) का मान इकाई के बराबर माना गया है।

9.6 शब्दावली

आदा (Input) : किसी उत्पाद के उत्पादन हेतु प्रयुक्त साधन इन्हें उत्पादन के साधन भी कहा जाता है।

प्रदा (Output) : विभिन्न आदाओं के संयोग से उत्पन्न वस्तु, इसे उत्पादन अथवा उत्पाद भी कहते है।

उत्पादन-फलन (Production Function) : किसी फर्म की भौतिक आदाओं एवं भौतिक प्रदाओं का सम्बन्ध

परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Laws of Variable Proportions): जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील का उत्पादन-फलन में किसी एक साधन का अनुपात बढ़ाया जाता है तो प्रारम्भ में उत्पादन में बढ़ती हुई दर से वृद्धि होती है फिर यह वृद्धि स्थिर दर से होने लगती है एवं अन्त में यह घटती हुई दर से होती है। यही परिवर्तनशील अनुपातों का नियम है।

समोत्पाद वक्र (Isoquants or Equal Product Curve) : समोत्पाद वक्र दो साधनों के उप विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उत्पादन का एक विशिष्ट स्तर प्राप्त किया जा सकता है।

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) : यह समोत्पाद रेखा के ढाल को प्रदर्शित करती है यह दर ऋणात्मक होती है।

प्रतिस्थापन की लोच (The elasticity of Substitution) : साधनों की मात्रा के अनुपात (K/L) में अनुपातिक परिवर्तन को उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकता के अनुपात में अनुपातिक परिवर्तन का भाग देने पर प्राप्त राशि प्रतिस्थापन की लोच कही जाती है।

9.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

माइक्रो अर्थशास्त्र, एम.एल.सेठ, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा (नवीनतम संस्करण) अध्याय 15.

James M Handerson and Richard E Quandt Microeconomic Theory AMathematical Approach,Chapter-3

Walter Nichalson,Micro Economic Theory-Basic Principles and Extensions 3rd ed. 1986 The Dryden Press,Chapter.7

9.8 अभ्यासो के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. किसी फर्म की भौतिक आदाओं एवं भौतिक प्रदाओं के मध्य तकनीकी सम्बन्ध को उत्पादन-फलन कहते है। हॉ, श्रेष्ठ तकनीकी की मान्यता इसमें अन्तर्निहित है।
2. अल्पकालीन उत्पादन-फलन मे अन्य साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन को परिवर्तित किया जाता है इससे साधनों का अनुपात बदलता है जबकि दीर्घकालीन उत्पादन-फलन में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तित किया जा सकते है। अत: साधनों का अनुपात बदले बिना उत्पादन का पैमाना बदला जा सकता है।
3. देखिए भाग 9.2.2

बोध प्रश्न 2

(1)APP=1,1,2,3,3,6,3,83,3.85,3.75,3.55,3.3

MPP=1,1,4,6,6,5,4,3,2,1

(2) हॉ। प्रारम्भ में कुछ साधनों को अविभाज्यता एवं बड़े पैमाने पर उत्पादन से प्राप्त मिल व्यवस्थाताओं के कारण उत्पादन वर्द्धमान नियम लागू होता है,परंतु धीरे-धीरे स्थिर साधनों कें साथ परिवर्तनशील साधनों की अधिकाधिक इकाइयों के मिश्रण से परिवर्तनशील साधन की सीमान्त की अधिकाधिक इकाइयों के मिश्रण से परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता गिरने लगती है।

(3) एक विवेकशील उत्पादक सदैव दूसरी अवस्था में रहना पसन्द करेगा क्योंकि पहली अवस्था में उत्पादन लगातार बढ़ रहा है। अत: वह नही रूकना चाहेगा। तीसरी अवस्था में साधन की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है अन्त: उत्पादक तीसरी अवस्था में कभी प्रवेश नही करना चाहेगा।

बोध प्रश्न 3

1. समोत्पाद वक्र एवं उदासीनता वक्र जैसे दृष्टिगोचर होते है परन्तु इनमें पूर्ण समानता नही है।

समानताएं

1. दोनों ऋणात्मक ढालू होते है

2. दोनों मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते है
3. दोनों वक्र के एक दूसरे को काटते नही है।

भिन्नताएं

1. समोत्पाद वक्र उत्पति के स्तर को व्यक्त करते है जिसे वक्र के साथ लिखा जाता है जबकि उदासीनता वक्र संतुष्टि के स्तर को बताते है जिसे मापा नही जा सकता।
2. समोत्पाद वक्र कोने मुड़े हुए हो सकते है ऐसा तटस्थता वक्रों मे नही होता।

इकाई 10

दीर्घकाल मे उत्पादन फलन: पैमाने के प्रतिफल

Long run Production Function: Return to Scale

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 पैमाने के प्रतिफल - सभी परिवर्ती इनपुट

10.2.1 पैमाने के वृद्धिशील प्रतिफल

10.2.2 पैमाने के स्थिर प्रतिफल

10.2.3 पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

10.3 एक ही उत्पादन-फलन में पैमाने के बदलते हुए प्रतिफल

10.4 न्यूनतम-लागत संयोग का निर्धारण

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.8 अभ्यासों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस खण्ड की नवीं इकाई में अल्पकाल में उत्पादन-फलन की चर्चा करने के बाद इस इकाई में हम आपका परिचय दीर्घकाल में उत्पादन-फलन से कराएंगे इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

1. सभी परिवर्ती इनपुटों सहित उत्पादन-फलन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
2. पैमाने के प्रतिफल से संबद्ध वर्द्धमान, स्थिर एवं ह्रासमान अवस्थाओं की क्रियाशीलता के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे,
3. एक ही उत्पादन-फलन में पैमाने के बदलते हुए प्रतिफल के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

पैमाने के प्रतिफल का नियम दीर्घकाल में आदाओं और प्रदाओं के सम्बन्धों के स्वभाव से सम्बंधित है। दीर्घकाल में सभी इनपुट परिवर्ती होती है। दूसरे शब्दों में कोई भी आदा (Input) स्थिर नही

होती और प्रदा (Output) को बढ़ाने के लिए फर्म के उत्पादन का पैमाना ही बदल दिया जाता है। अत: पैमाने के प्रतिफल शब्द का प्रयोग उत्पत्ति के समस्त साधनों के साथ-साथ दिये हुए अनुपात में परिर्वतन होने से उत्पादन में होने वाले परिर्वतन से सम्बन्धित है एवं यह केवल दीर्घकाल में ही सम्भव है इससे पूर्व इकाई 9 में भी स्पष्ट किया जा चुका है कि यदि उत्पादन का कोई साधन स्थिर रहता है तो वह अल्पकालीन उत्पादन-फलन होगा। ऐसी परिस्थति में उत्पादन के क्षेत्र उत्पत्ति में उत्पत्ति के नियम (Laws of Returns) लागू होते है पैमाने के प्रतिफल (Returns to scale) नही। आपसे यह अपेक्षा की जाती है कि इस अनर को भलीभांति समझ लें। इस प्रकार अल्पकाल में कुछ आदाओं के स्थिर रहते उत्पादन परिर्वतनशील अनुपातों के नियम की क्रियाशीलता के अनुरूप परिवर्तित होगा जबकि दीर्घकाल में सभी परिवर्ती आदाओं के कारण उत्पादन पैमाने के प्रतिफल के अनुरूप परिवर्तित होगा। इस इकाई में हम दीर्घकाल में उत्पादन फलन विभिन्न अवस्थाओं के लिए उत्तरदायी तत्वों की विस्तृत विवेचना करेंगे।

10.2 पैमाने के प्रतिफल - सभी परिवर्ती इनपुट

पैमाने के प्रतिफलों को समझने के लिए हम एक काल्पनिक उदाहरण लेते है। मान लीजिए हम उत्पादन की सभी आदाओं को 25 प्रतिशत बढ़ा देते है तो उत्पादन में निम्नाकिंत तीन स्थितियों कें अनुसार परिवर्तन हो सकते है। पहली स्थिति में समस्त उत्पादन 25 प्रतिशत से अधिक बढ़ जाता है। दूसरी स्थिति में उत्पादन में 25 प्रतिशत तथा तीसरी स्थिति में उत्पादन 25 प्रतिशत से कम बढ़ता है। इस प्रकार पहली अवस्था जिसमें कुल उत्पादन आदाओं में की गई वृद्धि से अधिक अनुपात में बढ़ता है वर्द्धमान प्रतिफल अवस्था (Increasing Returns to Sale) होती है। दूसरी अवस्था जिसमें कुल उत्पादन में वृद्धि आदाओं में की गई वृद्धि के अनुपात में होती है स्थिर प्रतिफल अवस्था (Constant Returns to Scale) है। इसी प्रकार तीसरी अवस्था जिसमें कुल उत्पादन में वृद्धि अनुपात से कम मात्रा में होती है, ह्रासमान प्रतिफल अवस्था (Diminishing Returns to Scale) हैं। अब हम इन विभिन्न अवस्थाओं एवं इसके लिए उत्तरदायी तत्वों की विस्तृत विवेचना करेंगे।

10.2.1 पैमाने का वृद्धिशील प्रतिफल

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है यदि उत्पादन में वृद्धि अनुपात से अधिक होती है तो इसे वर्द्धमान प्रतिफल अवस्था कहा जाएगा। अब प्रश्न यह है कि पैमाना का वृद्धिशील प्रतिफल क्यों लागू होता है? ऐसा इसलिए होता है कि जब उत्पादन बढ़ाने के लिए पूँजीगत वस्तु के आकार में वृद्धि की जाती है तो उससे प्राप्त उत्पादन उस पर किये गये व्यय की तुलना में अधिक अनुपात में बढ़ता है। इन्हें विमीय बचतों (Dimensional Economies) के नाम से जाना जाता है। एक उदाहरण द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाएगी। मान लीजिए हमारे घर पर नल का (1/2) आधा इन्च व्यास पाइप लगा हैं उससे पानी का जो प्रवाह आता हैं उसकी जगह एक इन्ची व्यास पाईप लगाने पर प्रवाह पहले से अधिक बढ़ जाएगा। इसी प्रकार 1 घनमीटर लकड़ी के बसरा को बढकार -3 घन मीटर का बना दिया जाय तो बक्सा की क्षमता 27 गुना बढ़ जाएगी। पैमाने के प्रतिफल के बढ़ने का एक अन्य कारण पूँजी एवं कुछ अन्य साजोसामान की अविभाज्यता है। इसी प्रकार एक मशीन से एक पारी में काम लिया जा रहा है उसके स्थान पर उसे तीन

पारियों में चौबिसों घर काम लिया जाय तो पूँजीगत लागत के अनुपात में उत्पादन अधिक बढ़ेगा। इस प्रकार निष्कर्ष यह है कि जब उत्पादन में वृद्धि मशीनों के गहन एवं उनकी पूर्णक्षमता प्रयोग से प्राप्त की जाती है तो इससे प्रति इकाई उत्पादन लागत कम हो जाती है तो इससे प्रति इकाई उत्पादन लागत कम हो जाती है। उत्पादन के पैमाने से सम्बन्धित इन मितव्ययताओं की विस्तृत चर्चा इस खण्ड की इकाई 12 में की गई हैं।

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का कारण विशेषता का ऊँचा स्तर भी है। बड़े पैमाने पर उत्पादन के परिणामस्वरूप फर्में श्रम विभाजन एवं विशेषज्ञों की सेवाओं के लाभ प्राप्त कर सकती हैं। इसके साथ ही कई अन्य आन्तरिक एवं बाह्य मितव्ययताएं उत्पादन लागतों को कम कर देती है। इसमें विपणन सम्बन्धी बचतें, वित्तीय बचतें, विज्ञापन लागत में बचते भी प्राप्त होती है। उत्पादन पैमाने से सम्बंद्ध वर्द्धमान प्रतिफल अवस्था कब तक लागू होगी इसके बारे मे निश्चित रुप से कुछ नही कहा जा सकता। यह उद्योग के स्वरूप पर निर्भर है कुछ उद्योग मे यह अवस्था लये समय तक क्रियाशील रहती है जबकि कुछ उद्योगों में यह शीघ समाज हो जाती है।

यदि हम यह मान्यता लें कि उत्पादन केवल दो ही साधनों श्रम एवं पूँजी के प्रयोग द्वारा होता है तो पैमाने के प्रतिफल को समोत्पत्ति वक्रों की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

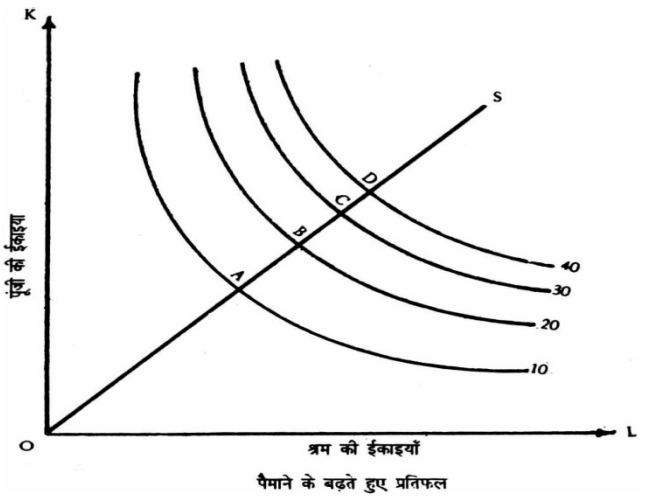

चित्र 10.1

चित्र 10.1 में OS स्केल-रेखा (Scale line) है फर्म सदैव OA, B, C, D) स्केल-रेखा पर स्थित किसी बिन्दु पर ही अपने उत्पादन-पैमाने को निधारित करेगी। यह रेखा हमें यह बताती है कि जब फर्म अपने उत्पादन पैमाने में परिवर्तन करती है तो किसी प्रकार वह परिचालन-क्रियाओं (Scale of Operation) को उससे समायोजित कर लेती है। स्केल-रेखा को कभी कभी विस्तार-पथ (Expansion Path) भी कहते है। स्केल-रेखा की सहायता से हम यह देख सकते है कि उत्पादन साधनों में परिवर्तन करने पर प्रतिफल बढ़ता है, घटता है अथवा स्थिर रहता है। चित्र 10.1 में हमने सरलता एवं सुविधा के लिए स्केल-रेखा को सीधा रखा है, वैसे इसका सीधा होना अनिवार्य नही है। स्केल-रेखा विभिन्न स्तरों पर

उत्पादन की मात्राओं को प्रदर्शित करती है। ये विभिन्न स्तर विभिन्न समोत्पति वक्रों 10,20,30,40 द्वारा व्यक्त किये गये है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि OABCD स्केल-रेखा के सहारे उत्तरोत्तर समोत्पति वक्रों की दूरी अथवा समोत्पति वक्रों के बीच का अन्तर घटता चला जाता है। इसका अभिप्राय यह है किं फर्म का प्रतिफल उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। दूसरे शब्दों में AB से BC छोटा है। इसी प्रकार BC से CD छोटा है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उत्पादन में एक दी हुई वृद्धि (10 इकाइयाँ) के लिए फर्म को अब दोनों साधनों की कम मात्राएं लगानी पड़ेगी। इस प्रकार जब उत्पादन 10 से बढ़कर 20 इकाइयों किया जाता है तो फर्म का उद्व्यय में वृद्धि अनुपात से कम होती है।

10.2.2 पैमाने के स्थिर प्रतिफल

पैमाने के स्थिर प्रतिफल उत्पादन-फलन की वह अवस्था है जिसमें फर्म को प्रारम्भिक विस्तार के साथ-साथ उपलब्ध होने वाली मितव्ययताएं धीरे-धीरे कम होने लगती है। यह तो आपको विदित ही है कि इन्हीं मितव्ययताओं की क्रियाशीलता के कारण प्रारम्भ में फर्म की प्रति इकाई उत्पादन लागत कम होती जाती है। जब ये मितव्ययताएं समाज होने लगती है तो पैमाने के वृद्धिशील प्रतिफल की अवस्था भी धीरे-धीरे समाज होने लगती है। यदि फर्म अपने उत्पादन का विस्तार जारी रखती है तो एक सीमा के बाद उत्पादन-पैमाने से सम्बंद्ध स्थिर प्रतिफल की अवस्था क्रियाशील हो उठती है । अर्थशास्त्रियों का विचार है कि यह अवस्था काफी लम्बे समय तक चल सकती है । इस अवस्था में उत्पादन में होने वाली वृद्धि आदाओं के अनुपात में होती है । उदाहरणार्थ - यदि सभी इनपुट दुगुनी अथवा तिगुनी कर दी जाती है तो प्रदा भी अनी अथवा तिगुनी हो जाती है उत्पादन पैमाने से समद्ध स्थिर प्रतिफल अवस्था के क्रियाशील होने का मुख्य कारण यह है कि फर्म को पैमाने के विस्तार के साथ-साथ प्राप्त होने वाली आन्तरिक एवं बाह्य मितव्ययताएं एवं अनिमितन्ययताएं बराबर हो जाती है । इसके परिणामस्वरूप फर्म को मिलने वाली अतिरिक्त बचतें समाप्त हो जाती है एवं मितव्ययताएं अमितव्ययताएं से संतुलित हो जाती है।

उत्पादन-पैमाने से सम्बंद्ध स्थिर प्रतिफल अवस्था को प्राय : रेखीय एवं सजातीय: (Linear and Homegeneous) अथवा प्रथम अशांक का सजातीय (Homogeneous of the first order) उत्पादन-फलन के नाम से भी जाना जाता है । प्रसिद्ध कॉब-डगलस उत्पादन फलन वस्तुत :. रेखीय एवं सजातीय उत्पादन-फलन है।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल को हम समोत्पत्ति वक्र पर स्केल-रेखा की सहायता से भी स्पष्ट कर सकते है।

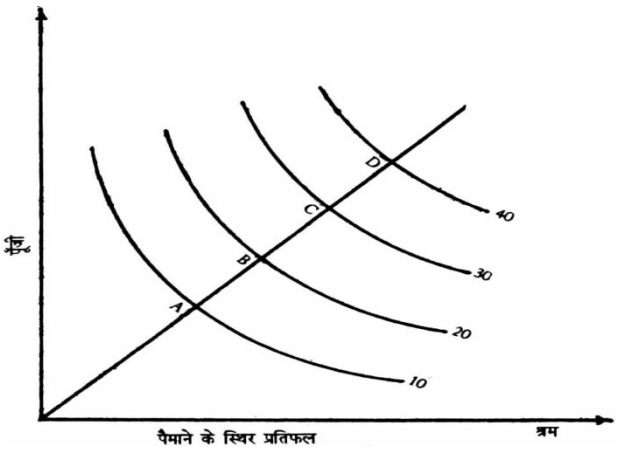

चित्र 10.2

रेखाचित्र 10.2 में यह मानकर चला गया है कि उत्पादन के केवल दो ही साधन होते है- श्रम रख पूँजी। रेखाचित्र में OABCD स्केल-रेखा है। इसको सरलता के लिए सीधा रखा गया है, वैसे इसका सीधा होना अनिवार्य नही है। स्केल-रेखा विभिन्न स्तरों पर उत्पादन-मात्राओं को प्रदर्शित करती है। उत्पादन के विभिन्न स्तर विभिन्न समोत्पति वक्रों द्वारा प्रदर्शित किये गये हैं एवं उनके साथ उत्पादन की भौतिक इकाइयॉ भी लिखी गई हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह हैं कि स्केल-रेखा OABCD पर विभिन्न उत्पादन स्तरों वाले समोत्पति वक्रों की दूरी समान अथवा स्थिर हैं। यह इस बात की पुष्टि करता हैं कि उत्पादन पैमाने से सम्बन्ध स्थिर प्रतिफल अथवा क्रियाशील है । अधिक स्पष्ट रुप में AB=BC=CD स्थिर प्रतिफल को व्यक्त करते है। उत्पादन की आदाओं का पारस्परिक अनुपात इसमें अपरिवर्तित रहता है।

यहाँ पर हम उत्पादन के पैमाने से सम्बंद्ध प्रतिफल अवस्थाओं एवं उन पर होने वाले व्यय से सम्बन्ध प्रतिफल अवस्थाओं में अन्तर पर भी प्रकाश डालना चाहेगे । अब तक हमने इन दोनों शब्दों को समान माना है। यदि दी हुई साधन कीमतों पर साधनों की मात्राओं को दुगुना कर दिया जाता हैं तो इन पर किया गया व्यय भी दुगुना हो जाता है । अत: उदव्यय से सम्बन्ध प्रतिफल अवस्थाओं को पैमाने से सम्बंद्ध प्रतिफल अवस्थाओं के समान व्यय माना गया है। लेकिन यदि उत्पादन-विस्तार के परिणाम-स्वरुप साधनों का अनुपात भी प्रभावित होता है तब पैमाने के प्रतिफल के स्थान पर उद्व्यय के प्रतिफल (Returns to outlay) का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में उद्व्यय को दुगुना करने पर आवश्यक नहीं कि दोनों साधनों की मात्राएं भी दुगुनी हो जायेंगी।

रेखाचित्र 10.2 में साधनों एवं उद्व्यय के स्थिर अनुपात में बढ़ाया जाता है। परिणामस्वरुप प्रतिफल में भी अनुपातिक वृद्धि होती है । ऐसे उत्पादन-फलन को प्रथम अंशांक का सजातीय उत्पादन-फलन (Homogeneous production function of the first degree) कहते हैं। आर्थिक सिद्धान्तो के निर्माण में यह मान्यता बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। परन्तु व्यवहार में यह मान्यता सही सिद्ध नही होती । हम देखते है कि जब उत्पादन का विस्तार किया जाता है तो साधनों के अनुपात भी बदल जाते है । इस प्रकार उद्व्यय तो दुगुना , तिगुना किया जा सकता है परन्तु साधनों का अनुपात भी यही रहे यह आवश्यक

नही । परिमाणात: उद्व्यय से सम्बंद्ध प्रतिफल अवस्था तो स्थिर रह सकती है लेकिन उत्पादन-पेंमाने से सम्बन्ध प्रतिफल अवस्था स्थिर नही रह सकती है अत: व्यवहार में प्रथम अंशांक का उत्पा दन फलन की मान्यता वास्तविकता के धरातल पर खरी नही उतरती । परन्तु उपर्युक्त उदाहरण में अध्ययन की सरलता के लिए उत्पादन फलन को सजातीय माना गया है। क्योंकि इसमें उत्पादन से सम्बन्द्ध प्रतिफल अवस्था एवं उद्व्यय से सम्बन्ध प्रतिफल अवरथा दोनों ही स्थिर रहती है।

10.2.3पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

उत्पादन-पैमाने से सम्बंद्ध आन्तरिक एंव बाह्य मितव्ययताओं की प्राप्ति फर्म को पैमाने को बदलने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। फर्म जब पैमाने का विस्तार करती हैं तो धीरे-धीरे ये मितव्ययताए क्षीण होने लगती हैं। एक उत्पादन को उत्पादन-फलन की इस स्थिति को पहचान कर उत्पादन बढ़ाना चाहिए और जब मित्तव्ययताएं समाज हो जाएं अथवा अमितव्ययताओं सें संतुलित हो जाएं तो उत्पादन्पैमाने के विस्तार के बारे में निर्णय लोच-समझ कर लेना चाहिए । मान लीजिए उत्पादन व्यावसायिक फर्म का विस्तार स्थिर प्रतिफल बिन्दु के उपरान्त की जारी रखता है तो उत्पादन ' पैमाने के विस्तार सें मित्तव्ययताओं के स्थान पर अमित्तव्ययताएं प्राप्त होने लगती है । परिणामत : उत्पादन-पैमाने से सम्बंद्ध ह्रासमान प्रतिफल अवस्था कार्यशील हो उठती हैं।

आन्तरिक अमितव्ययताएं (Internal diseconomies) फर्म के विशाल आकार के कारण प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयों के परिणाम स्वरुप उत्पन्न होती है । निरीक्षण सम्बन्धी कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती है। पर्याप्त निरीक्षण के अभाव में श्रमिक पूरा कार्य नही करते एवं समय नष्ट करते हैं। दूसरे, कार्य विभाजन के परिणामस्वरुप एक ही कार्य कई स्वतंत्र विभागों के आपसी सहयोग एवं समन्वय से ही पूरा हो सकता है। परन्तु एक दूसरे विभाग के प्रबन्धकों के आपसी टकराव के कारण उत्पादन मे कई व्यवधान उपस्थित होने लगते है पारस्परिक सम्पर्क व सहयोग के अभाव में निर्णय तस्परता से नही लिए जा सकते। इस प्रकार फर्म का प्रबन्ध, परिचालन एवं संचालन एक निश्चित आकार के बाद एक समस्या बन जाती हैं एवं ह्रासमान प्रतिफल लागू होने लगता है। इन अमितव्ययताओं में प्रावैधिक अमितव्ययताएं भी सम्मिलित है जो संयन्त्र की अनुकूलतम क्षमता से अधिक कार्य लेने से कार्यशील होती हैं।

अमितव्ययताओं के उपर्युक्त वर्णित विभिन्न रुपों को आन्तरिक अमितव्ययताओं के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन आन्तरिक अमित्तव्ययताओं के साथ-साथ कुछ बाह्य अमित्तव्ययताएं भी होती है जिनका प्रभाव किसी उद्योग विशेष पर न पड़कर सभी उद्योगों पर एवं उद्योग विशेष की सभी फर्मों पर पड़ता है। इन आन्तरिक एवं बाह्य अमितव्ययताओं के कारण ह्रासमान प्रतिफल अवस्था की प्रवृत्ति और भी सुदृढ़ हो जाती है। इनमें परिवहन अमितव्ययताएं प्रमुख है। जब एक ही स्थान पर उद्योगों का स्थानीयकरण हो जाता है तो परिवहन व्यवस्था पर भी दबाव बढ़ता है । परिवहन व्यवस्था पर अधिक समय एवं अधिक व्यय होने लगता है। इसके साथ ही बैकिग, बीमा एवं अन्य सार्वजनिक सेवाओं जैसे - पानी, बिजली, आवास आदि पर दबाव बढ़ता है। इससे इन सुविधाओं पर किया जाने वाला फर्मों का

व्यय भी बढ़ जाता है जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत बढ़ लजाती है। पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल अवस्था को समोत्पति वक्रो की सहायता से भी प्रदर्शित किया जा सकता है।

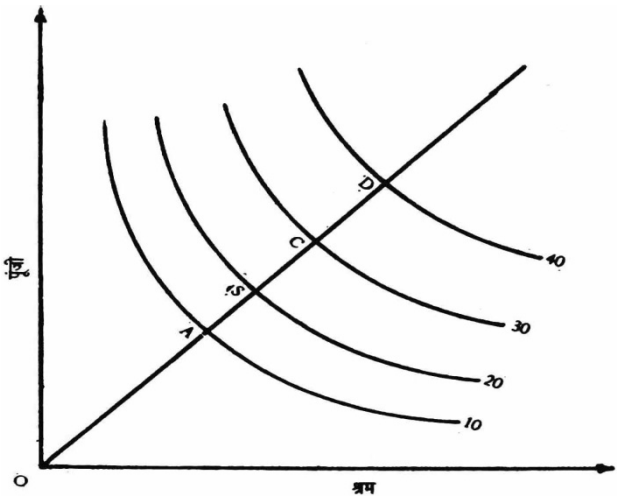

पैमाने के ज्ञसमान प्रतिफल

चित्र 10.3

हम इससे पूर्व भी समोति वक्रों द्वारा पैमाने के प्रतिफल को व्यक्त करने के लिए की जाने वाली मान्यताओं की चर्चा कर चुके है। रेखाचित्र 10.3 में OABCD स्केल-रेखा है। यह रेखा उत्पादन के विभिन्न स्तरों को व्यक्त करती है जिन्हें समोत्पति वक्रों के साथ-साथ भौतिक इकाइयों के रुप में लिख दिया गया है। समोत्पति वक्रो के बीच की बढ़ती दूरी यह प्रदर्शित करती है कि उत्पादन लागतें बढ़ रही है। दूसरे शब्दों में AB<BC<CD है।

बोध प्रश्न 1

अपना उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गई खाली जगह का प्रयोग करें।

1. दीर्घकालीन उत्पादन-फलन किस प्रकार अल्पकालीन उत्पादन-फलन से पिन होता है।
2. अनुपात एवं पैमाने में आप किस प्रकार भेद करेंगे?
3. उत्पादन पैमाने से सम्बंद्ध वर्द्धमान प्रतिफल अवस्था के आधार क्या हैं?

10.3 एक ही उत्पादन-फलन मे पैमाने के बदलते हुए प्रतिफल

क्या उत्पादन पैमाने से सम्बन्ध सीनों स्थितियों अथवा अवस्थाओं के लिए उत्पादन-फलन भी अलग-अलग होंगे? क्या जिन उद्योगों में बद्धमान प्रतिफल लागू हो रहा है। वहाँ ह्रासमान प्रतिफल की अवस्था नही आएगी? क्या एक उत्पादक सदैव उत्पादन के स्थिर प्रतिफल प्राप्त करता रहेगा? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जिनका उत्तर एक अर्थशास्त्र के विद्यार्थी को देना होता है। उपर्युक्त विवेचना से हमें यह नही मान लेना चाहिए कि उत्पादन पैमाने के विभिन्न प्रतिफल नियमों के लिए उत्पादन-फलन भी अलग-अलग होते है। वस्तुत: उत्पादन पैमाने से सम्बन्ध तीनों अवस्थाएं समय के साथ-साथ एक ही उत्पादन-फलन पर

कार्यशील होती है। विभिन्न अध्ययनों के परिणामस्वरुप एकत्रित सूचनाओं की व्याख्या करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भिक अवस्था में जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ाया जाता है उपलब्ध पूँजीगत संसाधनों के पूर्णक्षमता उपयोग एवं मित्तव्ययताओ के कारण प्रति इकाई उत्पादन लागत घटती है अर्थात् उत्पादन पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं। वर्द्धमान प्रतिफल के लिए साधनों की अविभाजयता, कुशल उपयोग आदि तत्व भी जिम्मेदार है। इनका विस्तृत विवेचन बिन्दु 10.2.1 में किया जा चुका है तो फर्म को प्राप्त होने वाली आन्तरिक एवं बाह्य मितव्ययताएं धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है एवं इनके स्थान पर फर्म को कुछ अमित्तव्ययताएं धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है एवं इनके स्थान पर फर्म को कुछ अमित्तव्ययताएं प्राप्त होने लगती है बचते अमित्तव्ययताओं से प्राप्त हानियों से संतुलित हो जाती है एवं उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ने लगता है जिस अनुपात में फर्म की में वृद्धि कई जाती है। यदि उत्पादन इसके बाद भी फर्म का विस्तार जारी रखता है तो अमित्तव्ययताएं बढ़ती जाती है एवं मित्तव्ययताएं समाप्त हो जाती है। इसके परिणामस्वरुप उत्पादन आन्दाओं की वृद्धि के अनुपात से कम बढ़ता है। इस अवस्था को ह्रासमान प्रतिफल की अवस्था के नाम से सम्बोधित किया जाता हैं। यह निमय अनतोगत्वा सभी उद्योगों में लागू होता हैं। उत्पादन पैमाने से सम्बन्ध तीनों स्थितियों को समोत्पति वक्रों की सहायता से भी प्रदर्शित किया जा सकता हैं।

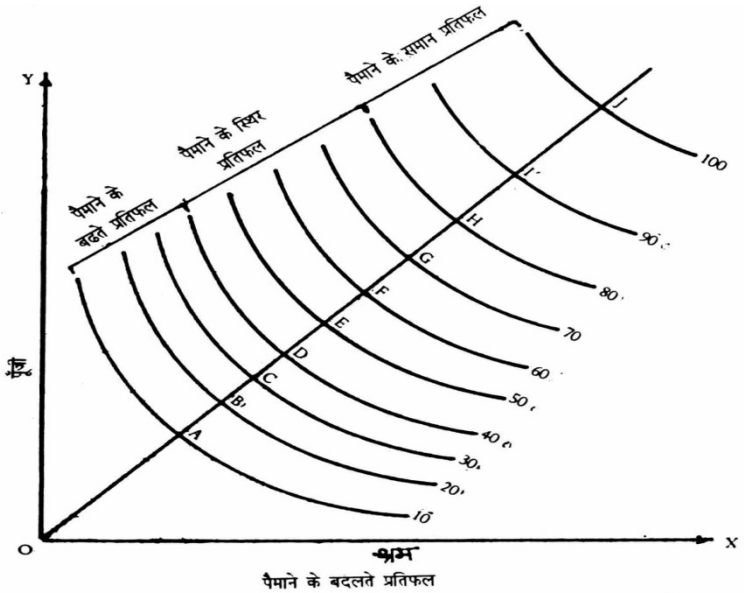

चित्र 10.4

रेखा चित्र 10.4 में स्केल-रेखा पर पैमाने के बदलते हुए प्रतिफलों को प्रदर्शित किया गया है। हम यह पहले ही स्पष्ट कर चुके है कि पैमाने के कौन से प्रतिफल लागू हो रहे है इसका परिचय समोचित वक्रो के बीच की दूरी से लगाया जा सकता है। प्रारम्भ मे स्केल-रेखा पर BC<AB एवं CD<BC समोत्पति वक्रों के बीच की दूरी कम हो रही है यह इस बात का द्योलक है कि पैमाने को वर्द्धमान प्रतिफल लागू हो रहे है। इसके बाद DE=EF=FG यह बताते है कि समोचित वक्रों की दूरी स्थिर है। यह उत्पादन पैमाने से सम्बन्धित स्थिर प्रतिफल की अवस्था है। स्केल-रेखा पर H बिन्दु के बाद भी यदि उत्पादन का पैमाना

बढ़ाया जाता है तो समोत्पिति वक्रों की दूरी बढ़ती जाती है। अर्थात् HI > GH एवं IJ > HI यह स्पष्ट करते है कि उत्पादन पैमाने से सम्बध ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त हो रहे है। इस. प्रकार एक ही उत्पादन-फलन में पैमाने से सम्बन्धित विभिन्न प्रतिफलों को प्रदर्शित किया जा सकता है।

10.4 न्यूनतम लागत संयोग का निर्धारण

उत्पादन-फलन के विवेचन की अनिम एवं महत्वपूर्ण कड़ी उत्पादन के साधनों से ऐसे संयोग का पता लगाना है जिससे उत्पादन अपनी लागत को न्यूनतम कर सके। इस समस्या का विवेचन हम दो अलग-अलग विधियों से कर सकते है यदि हम यह मान्यता लें कि उत्पादन के केवल दो ही साधन है तो न्यूनतम-लागत संयोग (Least –Cost Combination) का निर्धारण करने के लिए समोत्पति वक्रों का प्रयोग कर सकते है। यह विवेचन उपभोग के क्षेत्र में उपभोक्ता का संतुलन ज्ञात करने के लिए किये गये विवेचन के समान है। जिस तरह उपभोक्ता के संतुलन की व्याख्या करने के लिए उपभोक्ता के उदासीनता मानचित्र एवं कीमत रेखा की जानकारी आवश्यक हैं उसी प्रकार उत्पादक की संतुलन अवस्था ज्ञात करने के लिए समोचित मानचित्र एवं समलागत रेखा की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार सम-लगत. रेखा (Iso-Cost Line) उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करती है जिन्हें फर्म एक दी हुई राशि से दी हुई कीमतों पर खरीद सकती है। फर्म द्वारा व्यय की जाने वाली समस्त राशि से खरीदी जा सकने वाली श्रम एवं पूँजी की अधिकतम मात्राओं को आपस में एक सीधी रेखा से जोड़कर सम-लागत रेखा प्राप्त की जा सकती है। यदि साधनों की कीमतों में परिवर्तन होता है तो सम-लागत रेखा का दाल परिवर्तन हो जाता है। साधनों की कीमतों के अपरिवर्तित रहते यदि फर्म कुल उद्व्यय बढ़ाने का निर्णय लेती है तो सम-लागत रेखा ऊपर दायी ओर खिसक जाती है

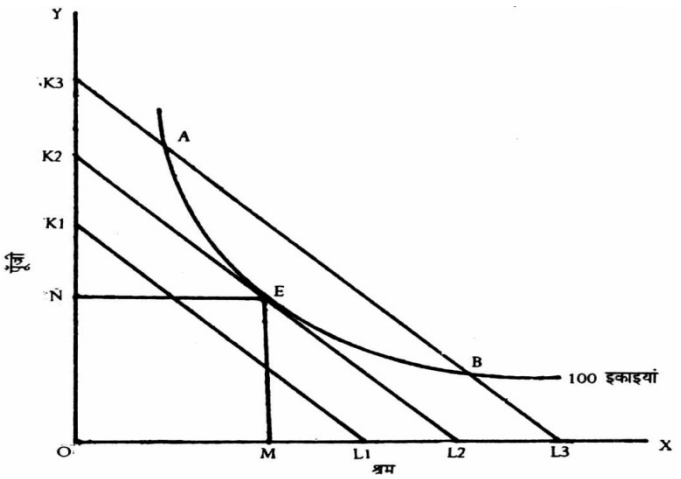

चित्र 10.5

उत्पादक अनुकूलतम अथवा सर्वोतम साधन संयोग ज्ञात करना चाहता है यही न्यूनतम-लागत संयोग भी होता है। उत्पादन उस समय संतुलन की स्थिति में होता है जब वह न्यूनतम लागत पर वस्तुओं का उत्पादन करने में सफल होता है। उसके लिए उस साधन संयोग का चयन करना चाहिए जिस पर सम

लागत रेखा समोअति वक्र को स्पर्श करती हैं। उत्पादन के सयुलन को चित्र 10.5 में प्रदर्शित किया गया है।

रेखाचित्र 10.5 में यह मान लिया गया है कि उत्पादक 100 इकाइयां उत्पादन करने का निर्णय लेता हैं यह समोत्पति वक्र पर अंकित भौतिक इकाइयों से प्रदर्शित किया गया है। यह स्तर A,B अश्वा B साधन संयोगों से प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि ये सभी संयोगसमोत्पत्ति वक्र पर स्थित है। सम-लागत रेखाएं निर्दिष्ट स्तर को प्राप्त करने के लिए होंने वाले उद्व्यय को प्रदर्शित करती हैं। यह पहले ही रयाट किया जा चुका है कि ऊपर दायी ओर स्थित सम-लागत रेखा अधिक उद्व्यय के स्तर को बनाती हैं। इस प्रकार उदव्यय का स्तर K_1 L_1, से K_2 L_2 अधिक एवं K_3 L_3 उससे भी अधिक है अब A एवं B बिन्दुओं का चयन करने पर लागत ऊँची है क्योंकि ये सम-लागत रेखा K_3 L_3 पर रिथत हैं। K_1L_1 रेखा से 100 इकाइयों का संयोग प्राप्त नही हो सकता क्योंकि ये समात्पति वक्र को स्पर्श नही करती। अत: न्यूनतम लागत संयोग E हैं। यह K_2L_2, रेखा पर रिथत है। इस बिन्दु उत्पादक श्रम की OM मात्रा एवं पूँजी की ON मात्राओं कों लगाएगा इस प्रकार जिस बिन्दु पर समोत्पाद वक्र सम लागत रेखा को स्पर्श करता है वही बिन्दु एक दिये हुए स्तर पर उत्पादन करने के लिए सर्वोत्तम अवस्था हैं।

न्यूनतम-लागत संयोग का निर्धारण करने के लिए दूसरी विधि का प्रयोग उस समय किया जा सकता हैं जब उत्पादन के, साधन दो से अधिक हो। इस सिद्धान्त के अनुसार फर्म को अपने उद्व्यय को विभिन्न साधनों में इस ढंग से वितरित करना चाहिए कि विभिन्न साधनों की सीमान्त भौतिक उपज एवं कीमतों का अनुपात समान हो। अर्थात्

$$MPPa / Pa = MPPb / Pb = MPPc / Pc = ... = MPPz / Pz$$

जहां MPP = साधन की सीमान्त भौतिक उपज

P = साधन की कीमत, a,b,c.... z = विभिन्न इनपुट (साधन)

यही बिन्दु फर्म के उत्पादन का अनुकुलतम स्तर प्रदर्शित करता है। जब तक साधनों के अनुपात असमान रहते है फर्म मंहगे साधन के स्थान पर सस्ते साधनों को प्रतिस्थापित कर, लागत न्यूनतम करने के लिए प्रयत्नशील रहेगी। फर्म के उत्पादन का न्यूनतम लागत संयोग सदैव स्थिर नही रहता। उत्पादन साधनों के मूल्यों में परिर्वतन के साथ-साथ इसमें भी परिवर्तन होते रहते है। अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि फर्म उत्पादन के विभिन्न साधनों की प्रति रुपया सीमान्त भौतिक उपज में समानता स्थापित करके उत्पादन लागत न्यूनतम कर सकती हैं।

10.5 सारांश

इस इकाई में उत्पादन पैमाने से सम्बन्धित वर्द्धमान, स्थिर एवं ह्रासमान प्रतिफल नियमों एवं इनके कार्यशील होने के लिर्य-उत्तरदायी तत्वों का विवेचन किया गया हैं। पैमाने के प्रतिफल शब्द का प्रयोग दीर्घकालीन उत्पादन-फलन कें लिए ही किया जा सकता हैं जब साधनों के अनुपात को स्थिर रखते हुए फर्म उत्पादन के सभी साधनों को एक ही कमात में बढ़ाती अथवा घटाती हैं। यदि उत्पादन में वृद्धि

साधनों के अनुपात से अधिक होती है तो हम यह मानते है कि उत्पादन के वर्द्धमान प्रतिफल मिल रहे है। उत्पादन मे वद्धि साधन अनुपात कें समान रहे तो उत्पादन के स्थिर प्रतिफल प्राप्त हो रहे है। इसके विपरीत यदि उत्पादन में वृद्धि साधन अनुपात में की गई वृद्धि से कम होती है तो उत्पादन के हासमान प्रतिफल नियम क्रियाशील हो रहे है। उत्पादन पैमाने से सम्बंद्ध विभिन्न प्रतिफल के नियम एक ही उत्पादन फलन में लागू होते है।

न्यूनतम लागत संयोग का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां सम-लागत रेखा समात्पति वक्र को स्पर्श करती है अथवा जहां विभिन्न साधनों की प्रति रुपया सीमान्त भौतिक उपजों का अनुपात बराबर हो।

10.6 शब्दावली

इनपुट (input)	उत्पादन प्रक्रिया के दौरान प्रयुक्त होने वाले संसाधन
प्रदा (output)	व्यवसायिक फर्म के अन्तिम उत्पाद
स्केल-रेखा (Scale Line)	स्केल-रेखा विभिन्न स्तरों पर उत्पादन की मात्राओं को प्रदर्शित करती है।
न्यूनतम लागत संयोग (least Cost Combination)	उत्पादन का वह बिन्दु जहां पर साधनों के बीच प्रतिस्थापन्न की आवश्यकता नही रहती एवं लागत न्यूनतम होती है।

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

A koutsioyonis , Modern Microeconomics, The Ma Millan Press,

Alpha C. Chiang Fundamental Methods of Mathematical Economics, Mc Graw Hill

एम. एल. सेठ, माइक्रो अर्थशारत्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, अगरा-3

10.8 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. दीर्घकालीन उत्पादन फलन में उत्पादन साधनों के अनुपात को अपरिवर्तित रखते हुए साधनों को समान अनुपात में बढ़ाया अथवा घटाया जाता हैं। जबकि अल्पकालीन उत्पादन फलन में साधनों के अनुपात को परिवर्तित किया जाता है इकसे कुछ साधनों को स्थिर रखकर एक साधन की मात्रा को बढ़ाया अथवा घटाया जाता है अथवा एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों कोई मात्रा को बढ़ाया अथवा घटाया जाता है।

2. 'अनुपात' में एक अथवा कुछ साधन स्थिर रहते है। पैमाने में सभी साधनों को बढ़ाया अथवा घटाया जाता है।
3. उत्पादन पैमाने से सेन्द्रद्ध वर्द्धमान प्रतिफल अवस्था के लागू होने के लिए साधनों की अविभाज्यता एवं बड़े पैमाने के उत्पादन सें प्राप्त होने वाली मितव्ययताएं जिम्मेदार है।

इकाई 11

लागत रेखाएं और उनका परिमाणांकन
Cost lines and their Calculation

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 लागत की धारणा

- 11.2.1 मौद्रिक लागत
- 11.2.2 वास्तविक लागत
- 11.2.3 अवसर लागत

11.3 अल्पकालीन लागत विश्लेषण

- 11.3.1 कुल स्थिर लागत
- 11.3.2 कुल परिवर्तनशील लागत
- 11.3.3 कुल लागत
- 11.3.4 औसत लागत
- 11.3.5 सीमांत लागत

11.4 दीर्घकालीन लागत विश्लेषण

- 11.4.1 दीर्घकालीन औसत लागत
- 11.4.2 दीर्घकालीन सीमांत लागत

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.8 अभ्यासों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के रुप में आप जानना चाहैंगे कि वस्तु का मूल्य कैसे तय होता हैं। मूल्य मांग पक्ष और पूर्ति पक्ष द्वारा निर्धारित किया जाता है। पूर्ति पक्ष वस्तु का मूल्य तय करते समय इस बात पर विचार करता है कि वस्तु की उत्पादन लागत क्या है? इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

1. जान सकेंगे कि विभिन्न. प्रकार की लागतें क्या है एवं लागत रेखाओं का स्वरूप कैसा होता है,
2. अल्पकाल एवं दीर्घकाल में लागत वक्रों का स्वरूप कैसा होता है, एवम्
3. कुल लागत, औसत लागत एवं सीमान्त लागत वक्रों में सम्बन्धों की व्याख्या कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग वस्तु विनिमय का नही बल्कि मौद्रिक लेन-देन का है। जब हम बाजार जाते हैं तो मूल्य देकर वस्तु खरीदते है। कोई वस्तु हमको किस मूल्य पर मिलेगी, यह बात बहुत कुछ उस वस्तु की उत्पादन लागत पर निर्भर करती हैं। कोई वस्तु किस मूल्य पर बेची जाएगी, या दिये हुए मूल्य पर कितनी वस्तु उत्पन्न की जायेगी, ये बातें वस्तु की उत्पादन लागत पर निर्भर होती है। अत: हमारे लिये लागत वक्रो और लागत के माप का अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। इससे हमें फर्म एवं उद्योगों के साध्य एवं मूल्य निर्धारण का अध्ययन करने में मदद मिलेगी।

11.2 लागत की धारणा

सामान्य बोलचाल में जब हम लगत 'शब्द का प्रयोग करते है तो हमारा तात्पर्य होता है, किसी वस्तु के निर्माण में किया गया मौद्रिक व्यय। अर्थशास्त्र में लागत का व्यापक, अर्थ लागाया जाता हैं। अर्थशास्त्र में लागत शब्द का प्रयोग तीन अर्थो मे किया जाता है :

11.2.1 मौद्रिक लागत

साधारण बोलचाल में मौद्रिक लागत का अर्थ है किसी वस्तु के उत्पादन में किया गया मौद्रिक व्यय। यह अर्थ आपके विषय की दृष्टि से पूर्ण नही है। अर्थशास्त्र में मौद्रिक लागत में निम्न तीन मदें शामिल होती हैं।

1. **स्पष्ट लागतें (Explicit Costs)**-ये वे खर्चे है जो एक उत्पादक स्पष्ट रुप से उत्पत्ति के विभिन्न साधनों यथा-भूमि, श्रम, पूंजी, संगठन व साहस को खरीदने में खर्च करता हैं। वस्तु के विक्रय को बढ़ाने हेतु किया गया खर्चा, सरकार के दिये जाने वाले कर आदि भी इसी में शामिल है। अत: स्पष्ट लागतों में मुख्य रुप से तीन प्रकार की लागतें आती है। ये है-
    a. **उत्पादन लागतें**-इसमें उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार जैसे- भूमि या भवन का किराया, श्रमिकों की मजदूरी, पूंजी का ब्याज, मशीनों की घिसाई व्यय, प्रबन्धकों का वेतन आदि आते है।
    b. **विक्रय लागतें**-इसमें पैकिंग, विज्ञापन व प्रचार पर किया गया व्यय आता है।

c. **अन्य लागतें**-इसमें वे सब मौद्रिक व्यय आते है जो उपरोक्त दो में शामिल नहीं हैं। जैसे-कर, बीमा व्यय आदि।

2. **अन्तर्निहित लागतें (Implicit Costs)-**इसमें उन साधनों व सेवाओं का मूल्य शामिल है जिनका प्रयोग तो किया जाता हैं पर कीमत नही चुकाई जाती है। जैसे-साहसी के स्वयं के साधनों का प्रतिफल। मान लीजिए, आप स्वयं की भूमि पर खेती करते है तब आपको भूमिका का लगान नही देना पड़ेगा और वही आपकी खेती की अन्तर्निहित में शामिल रहेगा। अर्थशास्त्रियों के अनुसार व्यवसाय में साहसी के निजी साधनों के पुरस्कार को मौद्रिक लागत का अंग मानना चाहिए, यद्यपि व्यवहार में हम कई बार ऐसा नही करते।
3. **सामान्य लाभ-** 'सामान्य लाभ' लाभ की वह न्यूनतम मात्रा है जो साहसी को उत्पादन कार्य में बनाये रखने के लिये अनिवार्य है। यदि साहसी को उत्पादन कार्य में बनाये रखने के लिये अनिवार्य हैं साहसी को सामान्य लाभ नही मिलेगा तो वह उत्पादन कार्य बन्द कर देगा।

इस प्रकार अर्थशास्त्र में मौद्रिक लागत में स्पष्ट लागतें, अस्पष्ट लागतें और सामान्य लाभ तीनों शामिल होते है जबकि सामान्य बोलचाल में सिर्फ वास्तविक मौद्रिक व्यय ही उसमें शामिल होता है।

11.2.2 वास्तविक लागत

जब कोई काम किया जाता है तो सिर्फ पैसे ही खर्च नहीं होते, कुछ कष्ट, त्याग और प्रयत्न भी होता है जो उस काम की वास्तविक लागत होता है। जैसे आप विद्यार्थी है, तो पढ़ाई के लिये आप किताबों, कापियां फीस आदि पर पैसा खर्च करते है परन्तु हम व्यय के अलावा पढ़ाई के लिये आपको और आपके परिवार को अनेक कष्ट सहने पड़ते है, त्याग करना पड़ता है, रात में जागकर पड़ता पड़ता है, अपने मनोरंजन को घटाना पड़ता है, अपने अन्य खर्चे कम करने पड़ते है। इन सबमें कुछ त्याग है, कुछ कष्ट है जो पढ़ाई की वास्तविक लागत को तय करता है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी वस्तु की कीमत अन्त में उसकी वास्तविक लागत के बराबर होती है। मार्शल वास्तविक लागत की माप उस अनुपयोगिता अथवा असंतोष से करते है जो उत्पादन के साधनों को वस्तु के उत्पादन हेतु अपनी सेवाएं प्रदान करने में उठाना पड़ता है।

वास्तविक लागत को सामाजिक लागत भी कहते है। सामाजिक लागत से अभिप्राय उस कष्ट, त्याग, प्रतिज्ञा, असंतोष, नीरसता और मानवीय दु:ख से है जो समाज को किसी वस्तु के उत्पादन में उठाना पड़ता है।

वास्तविक लागत की धारणा में अनेक कमियां है। एक तो इसे मापना सम्भव नही होता। दूसरे, अलग-अलग लोगों के लिये किसी कार्य हेतु किया गया कष्ट और त्याग अलग-अलग हो सकता है। तीसरे, कार्य में अधिक कष्ट होने पर उसका पुरस्कार हमेशा अधिक नही होता। व्यावहारिक जीवन में एक मजदूर को एक फिल्म-स्टार की तुलना में अपने काम में अधिक कष्ट उठाना पड़ता है, फिर भी उसका पुरस्कार कम होता है। कई बार एक ही कार्य को करने में एक व्यक्ति को तो कष्ट होता है परन्तु दूसरे को आनन्द मिलता है। जैसे- गायन, पढ़ाना आदि।

इस प्रकार वास्तविक लागत का विचार अनेक अव्यवहारिकताओं और विसंगतियों से युक्त है, अत: आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसे नकार दिया है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने वास्तविक लागत के स्थान पर एक अन्य प्राकर की लागत का विचार दिया है जिसे अवसर लागत कहते है।.

11.2.3 अवसर लागत

आधुनिक अर्थशास्त्र में वास्तविक लागत को अवसर लागत, वैकल्पिक लागत, हस्तानरण आय, विस्थापित लागत आदि शब्दों से व्यक्त किया गया है । अवसर लागत का विचार आस्ट्रियन अर्थशास्त्रियो ने दिया और अमेरिका के अर्थशास्त्रियों ने उसे आगे बढ़ाया। बेन्हम के अनुसार, मुद्रा की वह मात्रा जो कोई एक विशेष इकाई अपने सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में प्राप्त कर सकती हैं, उसकी हस्तान्तरण आय कहलाती है। श्रीमती जोन रोबिन्सन कें अनुसार, वह कीमत जो किसी साधन की एक इकाई को किसी उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिये आवश्यक है, उसकी हस्तान्तरण कीमत कहलाती है। उत्पत्ति के साधन सीमित है, अत: किसी एक वस्तु का उत्पादन करने हेतु किसी अन्य वस्तु का उत्पादन रोकना होगा। अत: 'अ' वस्तु की अवसर लागत 'ब' वस्तु की वह मात्रा है जो 'अ' वस्तु का उत्पादन करने के लिये छोड़ दी गई हैं। उदाहरणार्थ- मान लो साधनों की एक निश्चित मात्रा से 100 क्विण्टल गेहूं या 150 क्विण्टल चने उत्पन्न किये जा सकते है। जब यदि गेहूं उत्पन्न किया जाता है तो चने उत्पन्न नही किये जा सकते। अत: 100 क्विण्टल गेहूं की अवसर लागत 150 क्विण्टल चने हुई।

संक्षेप में अवसर लागत वह अवसर है जो किसी वस्तु के उत्पादन के कारण खो दिया गया है

चित्र 11.1 में X Y रेखा रोटी और कपड़े के से संयोग दर्शाती है जो एक निश्चित और समान द्वारा उत्पन्न किये जा सकते है। अत: इनमें से हर संयोग की अवसर लागत अन्य सयोग है। उदाहणार्थ- X Y रेखा पर अ, ब, स संयोग स्थित है। अत: अ संयोग की अवसर लागत ब या स संयोग है ब की अवसर लागत अ या स संयोग है और स की अवसर लागत अ या ब संयोग है।

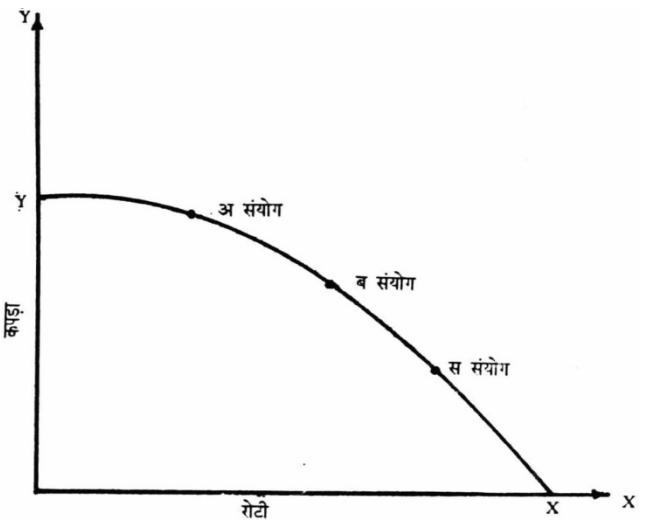

चित्र 11.1

एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर जाने का अर्थ हैं एक उत्पादन मात्रा को दूसरी उत्पादन मात्रा में रुपान्तरित किया जाय। अत: इसे रूपान्तरण रेखा' भी कहते है।

एक मजदूर की अवसर लागत वह मजदूरी है जो उसे अन्यत्र मिल सकती है। पूँजी की अवसर लागत वह ब्याज दर है जो पूँजी पर अन्यत्र मिल सकती है । व्यवस्था की अवसर लागत वह प्राप्ति है जो व्यवस्थापक को किसी अन्य व्यवसाय में हो सकती है। इस प्रकार अवसर लागत सर्वोलम वैकल्पिक अवसर में होने वाली प्राप्ति है।

महत्व

1. अवसर लागत की सहायता से उत्पत्ति के साधनों का मूल्य निर्धारित करने में सहायता मिलती है।
2. अवसर लागत साधन के मूल्य में परिवर्तन का कारण समझती है। यदि वर्तमान मूल्य अवसर लागत से कम है तो उसमें परिवर्तन होगा।
3. यह पता चलता है कि साधन किसी कार्य-विशेष में क्यों है। यदि साधन की अवसर लागत कम है तो तब कार्य-विशेष में बना रहेगा।
4. यह लगान के अधुनिक सिद्धान्त का आधार है। अवसर लागत के ऊपर होने वाली प्राप्ति लगान है और यह लगान उत्पत्ति के किसी भी साधन को प्राप्त हो सकता है, सिर्फ भूमि को ही नही।
5. उत्पादन के साधनों के आवंटन में अवसर लागत की धारणा सहायक है। जहां अवसर लागत अधिक होगी वहां साधन अधिक जायेंगे।

इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि किसी उद्योग की लागत उत्पादन की मात्रा के साथ किस सीमा तक बदल सकती हैं। यदि फर्म उत्पादन को बढना चाहती है तो उसे अधिक साधनों की आवश्यकता होगी और अधिक साधनों को आकर्षिक करने से उसे अधिक मूल्य देना पड़ेगा। फलस्वरुप उत्पादन मात्रा के साथ उत्पादन लागत भी बढ़ेगी।

सीमाएं

1. अवसर लागत की धारणा पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।
2. कई बार अवसर लागत अधिक होने पर भी वास्तविक लागत कम होती है क्येंकि उत्पादन के साधनों में गतिशीलता की कमी होती है। उदाहरणार्थ- आपको कलकत्ता में 5000-00 रुपये प्रतिमाह पर नौकरी मिल सकती है और अजमेरवासी है और कलकत्ता जाना नहीं चाहते। अत: आपकी अवसर लागत 5000-00 रुपये होने पर भी गतिशीलता के अभाव के कारण आपकी वास्तविक लागत 3000-00 रुपये ही हैं।
3. विशिष्ट साधनों के सम्बंध में यह धारणा सही नही हैं। विशिष्ट साधन वे होते हैं जिनका केवल एक निश्चित प्रयोग होता है। ऐसे साधनों को अवसर लागत शून्य होती है क्योकि उनके वैकल्पिक प्रयोग नही होते।
4. साधन की वैकल्पिक लागत जानना सदा सम्भव नही होता।

इस प्रकार अवसर लागत की धारणा अनेक दोषों से युक्त हैं।

बोध प्रश्न – 1

प्रश्नों का उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का इस्तेमाल करें।

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. मौद्रिक लागत में कौन-कौन सी मदें शामिल होती है?
2. अवसर लागत क्या होती है?

11.3 अल्पकालीन लागत विश्लेषण

लागत की धारणा से अवगत होने के बाद अब हम अल्पकाल में एक फर्म या कारखाने की विभिन्न प्रकार की लागतों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना करेंगे। फर्म की लागतें मुख्यत: पांच प्रकार की होती है। ये है -

1. कुल स्थिर लागत
2. कुल परिवर्तनशील लागत
3. कुल लागत
4. औसत लागत
5. सीमांत लागत

जैसे-जैसे फर्म अपने उत्पादन की मात्रा बढ़ाती जाती है, इन लागतों में परिवर्तन होता जाता हैं। सारिणी क्रमांक-1 में एक फर्म की विभिन्न प्रकार की लागतों को दर्शाया गया है।

सारिणी क्रमांक 1 : विभिन्न प्रकार की लागतों का परिमाणांकन

उत्पादन मात्रा	कुल स्थिर लागत (TFC)	कुल लागतें परिवर्तनशील लागते (TVC)	कुल लागत (TC)	औसत स्थिर लागतें (AFC)	औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)	औसत लागत (AC)	सीमान्त लागत (MC)
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**
0	200	--	200	--	--	--	--
1	200	100	300	200	100	300	100
2	200	190	390	100	95	195	90
3	200	270	470	6.6	90	156.6	80

4	200	340	540	50	85	135	70
5	200	400	600	40	80	120	60
6	200	550	750	33.3	78.3	111.6	70
7	200	550	750	28.6	78.6	107.1	80
8	200	640	840	25	80	105	90
9	200	750	950	22.2	83.3	105.5	110
10	200	890	1090	20	89	109	140

11.3.1 कुल स्थिर लागत (सारणी-1 कॉलम-2)

इसे अप्रत्यक्ष लागत, सामान्य, कुल स्थिर लागत या पूरक लागत भी कहते है। किसी भी उत्पादन कार्य को आरम्भ करने हेतु फर्म को कुछ निश्चित व्यय करने पड़ते है जैसे - भूमि, भवन मशीन आदि पर किये गये व्यय। उत्पादन कार्य बन्द करने पर भी ये लागते स्थिर रहती है और उत्पादन की मात्रा बढ़ने पर भी अल्पकाल पेंच, लागतें स्थिर रहती है। दीर्घकाल में उत्पादन की मात्रा बहुत बढ़ने पर ये लागतें भी बढ़ानी पडाती हैं।

11.3.2 कुल परिवर्तनशील लागत (सारिणी-1, कॉलम-3)

इसे अस्थिर लागत, प्रत्यक्ष लागत, विशेष या प्रमुख लागत भी कहते है। परिवर्तन लागत उत्पादन की मात्रा में परिर्वतन के साथ बदलती रहती है। यह उत्पादन की मात्रा घटने-बढ़ने के साथ घटती-बढ़ती रहती है और उत्पादन हो जाने पर समाप्त हो जाती है। इसमें कच्चे माल का मूल्य, ईधन या शक्ति पर व्यय, मजदूरी आदि शामिल होते है। मूल्य निर्धारण में परिवर्तनशील लागत का महत्व अधिक है। अल्पकाल में यदि परिवर्तनशील लागत वसूल होती है तो उत्पादन जारी रहेगा।

11.3.3 कुल लागत (सारिणी-1, कॉलम-4)

कुल लागत, स्थिर लागत और परिवर्तनशील लागत का योग है। वस्तु की किसी विशेष मात्रा का उत्पादन करने के लिये फर्म को जितना कुल व्यय करना पड़ता हैं, उसे फर्म की कुल लागत कहते है। जैसे-जैसे वस्तु का उत्पादन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे कुल लागत भी बढ़ती जाती है। उत्पादन कुल लागत का ही परिणाम होता हैं।

$$TC = TFC + TVC$$

कुल स्थिर लागत, कुल परिवर्तन लागत और कुल लागत वक्रों का स्वरुप

चित्र-11.2 में स्थिर लागत को TVC वक्र द्वारा, कुल परिवर्तनशील लागत को TVC वक्र द्वारा तथा कुल लागत को TC वक्र द्वारा दर्शाया गया है। इन वक्रों का सरुप समझने के लिये सारिणी क्रमांक-1 का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना आवश्यक है।

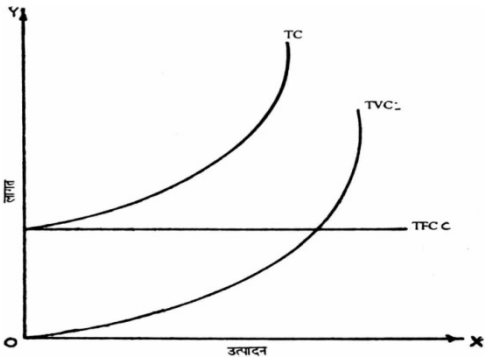

चित्र 11.2

हम देखते है –

1. अल्पकाल में उत्पादन मात्रा बढ़ने पर भी कुल स्थिर लागत अपरिवर्तित रहती है। यहां तक की शून्य उत्पादन पर भी वह उतनी की उतनी ही है। अत: कुल स्थिर लागत वक्र अक्ष के समान्तर है।
2. कुल परिवर्तनशील लगात का वक्र मूल बिन्दु 0 से निकलकर शूरु में धीमी गति से और बाद में तेज गति से दाई ओर चढ़ता है। इसका कारण यह है कि शुरु में उत्पादन शून्य रहने पर परिवर्तनशील लागत भी शून्य होती है। फिर उत्पादन मात्रा में वृद्धि के साथ वह बढ़ती है। बाद में उत्पत्ति तस नियम लागू होने के कारण वह तेजी से बढ़ती है।
3. कुल लागत का वक्र TC अन्य दो वक्रों TFC और TVC का योग है। यह TFC वक्र के मूल बिन्दु से आरम्भ होकर TVC वक्र के समानान्तर ऊपर चढ़ता है।
4. उत्पादन में दोनों लागतें आवश्यक है।
5. स्थिर लागत और परिवर्तनशील लागतों का अन्दर अल्पकाल का है क्योंकि दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील होती है।

11.3.4 औसत लागत

कुल लागत में उत्पादन की मात्रा का मांग देने से औसत लागत प्राप्त होती है। यह किसी वस्तु की कुल उत्पादित मात्रा की प्रति इकाई लागत होती है, अत: इसे इकाई लागत' भी कहते है। एक व्यक्तिगत फर्म और उद्योग की दृष्टि से औसत लागत महत्वपूर्ण है ।संतुलन उत्पादन तथा कीमत निर्धारण सिद्धान्त में औसत लागत का विशेष महत्व है।

औसत लागतें तीन प्रकार की होती है -

1. औसत स्थिर लागत

2. औसत परिवर्तनशील लागत
3. औसत कुल लागत या औसत लागत

इनका विवेचन हम यहां करेंगे।

1. औसत स्थिर लागत (सरिणी-1, कॉलम-5)

कुल स्थिर लागत मे उत्पादन मात्रा का मांग देने से औसत स्थिर लागत प्राप्त होती है।

$$\text{औसत स्थिर लागत} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत}}{\text{कुल उत्पादन मात्रा}}$$

उत्पादन में वृद्धि कें साथ-साथ अल्पकाल में औसत स्थिर लागत निरन्तर घटती जाती है। अत: औसत स्थिर लागत का वक्र भी निरन्तर नीचे की ओर गिरता जाता हैं

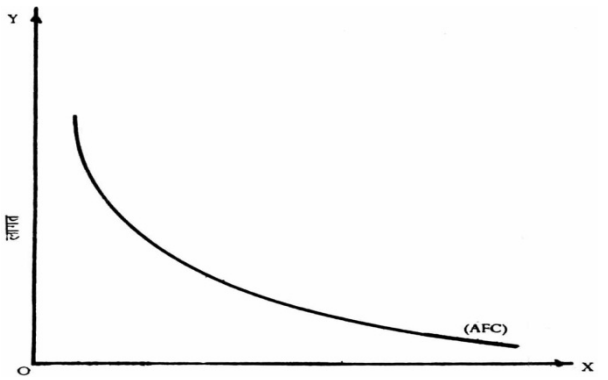

"चित्र 11.3

चित्र- 11.3 में AFC वक्र औसत लागत का वक्र है जो बायें से दायें नीचे की ओर निरन्तर पहले तेजी से व बाद में धीरे-धीरे गिर रहा है। इसका कारण यह हैं कि अल्पकाल में कुल स्थिर लागत स्थिर रहती है। जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा बढ़ती जाती है, वह अधिकाधिक इकाइयों पर फैलती जाती है, अत: औसत स्थिर लागत घटती जाती है। आरंभ में यह तेजी से घटती है फिर धीरे-धीरे घटती है किन्तु कभी भी शून्य नही होती। (देखिये सारिणी क्रमांक-1, कॉलम-5)। अत: औसत स्थिर लागत वक्र कभी भी अक्ष-अक्ष को नही छूता। इसका कारण यह है कि कुल स्थिर लागत कभी भी शून्य होती। AFC वक्र अक्ष-अक्ष को काटकार नीचे भी नहीं जाती क्योंकि कुल स्थिर TFC ऋणात्मक नहीं होती। (देखिये चित्र-11.3)।

2. औसत परिवर्तनशील लागत (सारिणी-1, कॉलम- 6)

कुल परिवर्तनशील लागत में उत्पादन की मात्रा का मांग देने से औसत परिवर्तनशील लागत प्राप्त होती है। देखिये सारिणी-1, कॉलम-6)

$$\text{औसत परिवर्तनशील लगत} = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत}}{\text{कुल उत्पादन मात्रा}}$$

उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ औसत परिवर्तनशील लागत आरमी में तो घटती हैं फिर स्थिर हो सकती है और फिर बढ़ने लगती हैं (चित्र 11.4)

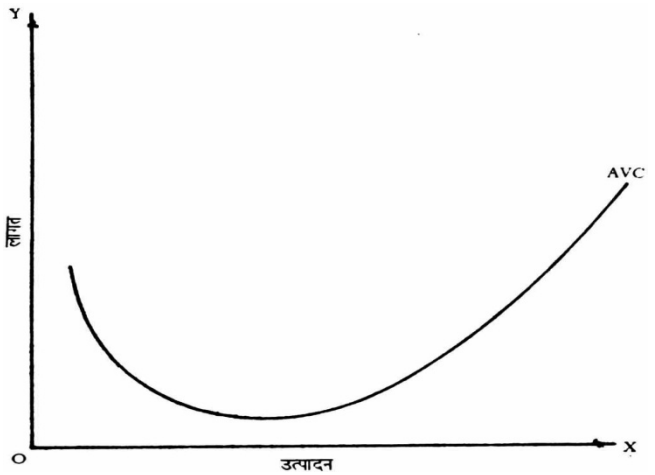

चित्र-11.4

चित्र-11.4 में AVC वक्र औसत परिवर्तनशील लागत का वक्र है जो आरम्भ में गिर रहा है और फिर बढ़ रहा है। इस प्रकार इसका आकार अर्द्ध-चन्द्रकार हैं। इसका क्या कारण है? उत्पत्ति के नियमों के अनुसार जब कोई फर्म उत्पादन के नियम लागू होते है। पूर्ण उत्पादन क्षमता के प्रयोग होने तक उत्पादन बढ़ने से क्षमता बढती हैं और प्रति इकाई उत्पादन उत्पादन घटती है। इससे उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है। अतिरिक्त उत्पादन क्षमता के निर्माण की आवश्यकता पड़ने पर व अत्यधिक मात्रा में उत्पादन होने पर साधन घटने लगते है जिससे उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता हैं। आरम्भ के उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होने से औसत परिवर्तनशील लागत घटती हैं, फिर उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने से वह बढ़ने लगती है। परिणामस्वरुप औसत परिवर्तनशील लागत का वक्र अर्द्ध-चन्द्रकार हो जाता है जैसा कि चित्र 11.4 मे दर्शाया गया है।

3. औसत कुल लागत या औसत लागत (सारिणी-1, कॉलम-7)

कुल लागत में संबन्धित उत्पादन की मात्रा का मांग देने से औसत लागत प्राप्त होती है।(देखिये सारिणी-1 कॉलम-7)

$$\text{औसत लागत} = \frac{\text{कुल लागत}}{\text{कुल उत्पादन मात्रा}}$$

सुविधा के लिये इसे औसत कुल लागत न कहकर औसत लागत Average Cost (AC) ही कहा जाता है। औसत लागत औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत का योग होता हैं। अत: यह धीरे-धीरे गिरती है और धीरे-धीरे बढ़ती हैं।

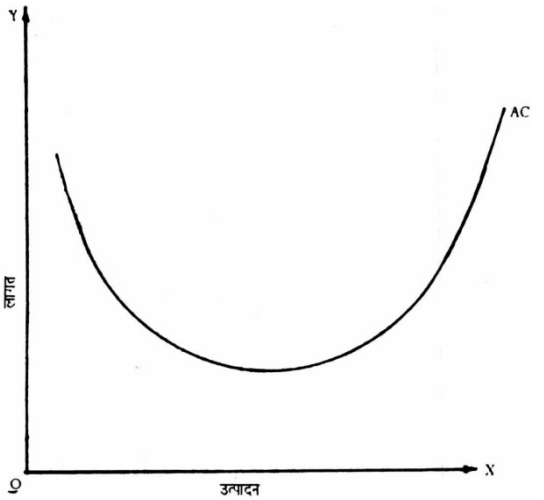

चित्र 11.5

चित्र 11.5 इसका वक्र U आकार का होता हैं। आदर्श उत्पादन की स्थिति में यह न्यूनतम होती है। जब तक अविभाज्य साधनों का पूर्ण से कम उपयोगी होता है, यह घटती जाती हैं। जब अविभाज्य साधनों का अनुकूलन उपयोग होता हैं, यह स्थिर रहती हैं और जब अविभाज्य साधनों का पूर्ण से अधिक उपयोग होता हैं, बढ़ने लगती हैं क्योंकि जब आंतरिक बचतें समाप्त हो जाती है। बल्कि आंतरिक बाह्य हानियां भी होने लगती है।

दूसरे शब्दो ये AV वक्र चूंकि प्रतिफल के नियमो पर आधारित है, अत: यह प्रतिफल की तीनो स्थिनियों (घटती, व बढ़ती लागतों) को दर्शाता हैं और इसका आकार U होता है

औसत स्थिर लागत AFC औसत परिवर्तनशील लागत AVC और औसत लागत AC में सम्बंध

AFC, AVC और AC का सम्बंध चित्र 11.6 में दर्शित होता हैं।

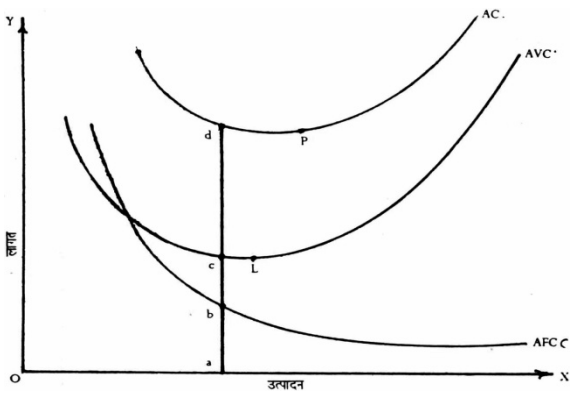

चित्र 11.6

चित्र 11.6 AC, AFC व AVC वक्रों को साथ-साथ दर्शाया गया हैं।

AC वक्र AFC और AVC का योग है। चित्र में oa उत्पादन का औसत लागत ad के बराबर हैं। यह औसत स्थिर लागत ab और औसत परिवर्तनशील लागत ac का योग हैं। इस स्थिति में ab=cd है। इससे सिद्ध होता हैं कि ac वक्र AVC वक्र से उतना ही ऊपर होगा जितना AFC वक्र आधार रेखा से होगा।

आरम्भ में AVC और AC दोनों नीचे गिर रहे है। AVC का न्यूनतम बिन्दु L पर पहले पहुंचता है और फिर उठने लगता है जबकि AC अपने न्यूनतम बिन्दु p पर बाद में पहुंचता हैं और फिर उठने लगता है। इसका कारण यह हैं कि AC पर AVC के अलावा AFC का भी प्रभाव है जब AVC उठने लगी है तब भी AFC गिर रही है और AVC की तुलना में अधिक तेजी से गिर रही है। अत: AC अभी भी गिरती है। AC जब तक गिरती हैं जब तक AFC का गिरना AVC के उठने से समायोजित नही हो जाता हैं। उसके बाद AC भी उठने लगती हैं।

जब AC और AVC दोनों ऊपर उठ रहे होते है तों उनकी दूरी क्रमश: घटती जानी है परन्तु समाप्त नही होती। यह दूरी तब तक समाप्त नही हो सकती जब तक AFC रेखा आधार अक्ष को स्पर्श न करे। चूंकि AFC कभी भी आधार अक्ष को नही छूती अत: AVC और AC कभी भी आपस में नही मिलते।

11.3.5 सीमांत लागत (सारिणी-1, कॉलम-8)

एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत मे जो वृद्धि होनी है या एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन में जो अतिरिक्त लागत आती है उसे सीमांत लागत कहने हैं। उत्पादन की अंतिम इकाई को सीमांत इकाई भी कहते है। इस सीमांत इकाई पर किये जाने वाले व्यय को ही सीमांत व्यय या सीमांत लागत Marginal Cost (MC) कहते है। दूसरे शब्दों में सीमांत लागत उत्पादन की n इकाइयों की कुल लागत तया (n-1) इकाइयों की कुल लागत का अन्तर हो इसे निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता हैं-

$$MC = TC_n - TC_{n-1}$$

या

$$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

चूंकि अल्पकाल में स्थिर लागत में परिवर्तन नही होता अत: कुल लागत में होने वाला परिवर्तन कुल परिवर्तन कुल परिवर्तनशील लागत के परिवर्तन के कारण ही होना है।अत: अल्पकाल में सीमांत लागत उत्पादन की n इकाइयों की कुल परिवर्तनशील लागत तथा (n-1) इकाइयों की कुल परिवर्तनशील लागत का अन्तर भी है इसे सारणी क्रमांक -1 की सहायता से समझा जा सकता है सारणी में तीसरी इकाई की सीमांन लागत 80 है जो दूसरी व तीसरी इकाई की कुल लागत (क्रमश: 390 व 470) का अन्तर है। इमी प्रकार यह दूसरी इकाई की कुल परिवर्तनशील लागत (क्रमश: 190 व 270) का भी अन्तर है। सीमांत लागत की धारणा का वस्तु की उत्पादन मात्रा के निर्धारण तथा कीमत सिद्धांत की दृष्टि से विशेष महत्व हैं। सीमांत लागत वक्र भी U आकार का होना हैं क्योंकि उनका प्रभावक्र वक्र-कुल परिवर्तनशील लागत व वक्र U आकार का होता हैं।

सीमांत लागत और औसत लागत मे सम्बन्ध

सीमांत लागत और औसत लागत में संबंध उत्पत्ति के नियम पर आधारित होता है।

1. **उत्पत्ति वृद्धि नियम:** जब उत्पादन उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत हो रहा होता हैं तो लागन में वृद्धि उत्पादन में होने वाली वृद्धि के अनुपात में कम होती हैं अत: सीमांत लागत वक्र औसत लागत वक्र से नीचे रहता है।

उदाहरणार्थ : -

उत्पादन	कुल लागत	औसत लागत	सीमांत लागत
1	24	24	24
2	44	22	20
3	60	20	16
4	72	18	12

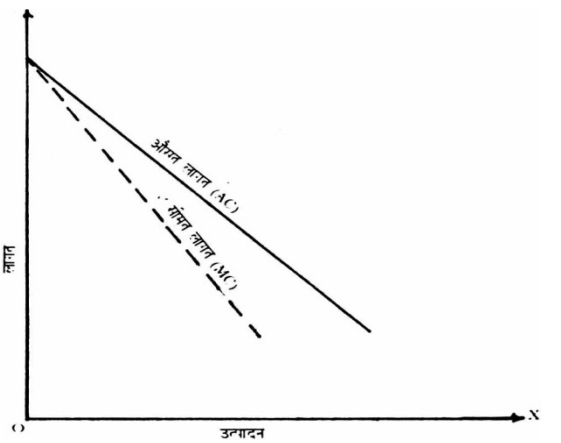

चित्र 11.7

2. **उत्पत्ति समता नियम :** जब उत्पादन उत्पत्ति समता नियम के अंतर्गत हो रहा होता है तो उत्पादन और लागत में समान वृद्धि होती है अत: सीमांत लागत और औसत लागत बराबर रहती है और उसका वक्र एक ही रहता है उदारणार्थ

उत्पादन	कुल लागत	औसत लागत	सीमांत लागत
1	4	4	4
2	8	4	4
3	12	4	4
4	16	4	4

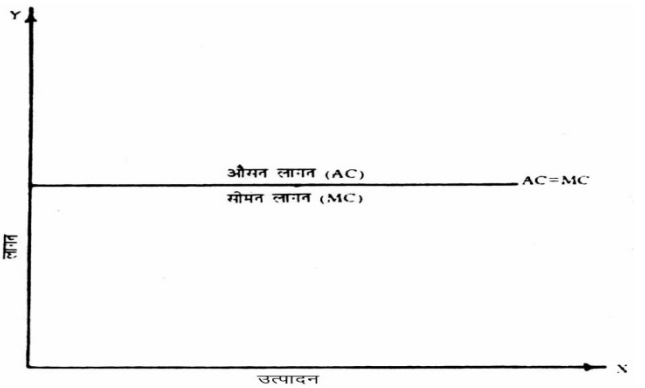

चित्र 11.8

3. उत्पत्ति ह्रास नियम: जब उत्पादन उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत होता हैं तो लागत में वृद्धि उत्पादन से अधिक अनुपात में होती है। अत: सीमांत लागत वक्र औसत लागत वक्र से ऊपर रहता है। उदाहरणार्थ –

उत्पादन	कुल लागत	औसत लागत	सीमांत लागत
1	20	20	20
2	44	22	24
3	74	24	28
4	104	26	23

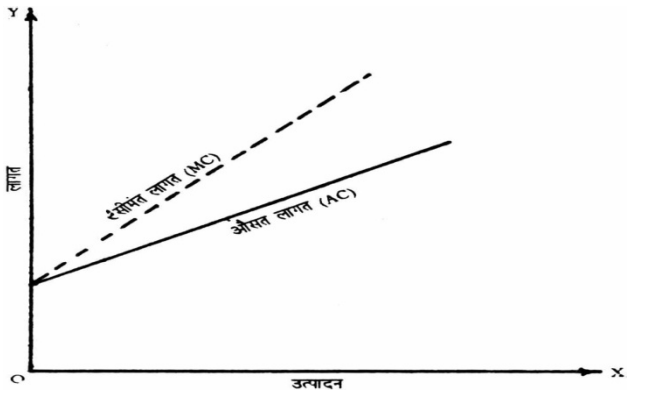

चित्र 11.9

जब तीनों अवस्थाएं एक ही रेखाचित्र में दिखाई जाती है तो सीमांत लागत और औसत लागत के वक्रU आकार के हो जाते है। जब तक औसत लागत AC गिरती है, सीमांत लागत MC उसके नीचे रहती है। जहां AC स्थिर हो जाती हैं MC उसके बराबर हो जाती है और जहां से AC बढ़ने लगती है, MC उसके ऊपर हो जाती है। परिणामस्वरुप MC AC को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटती है।

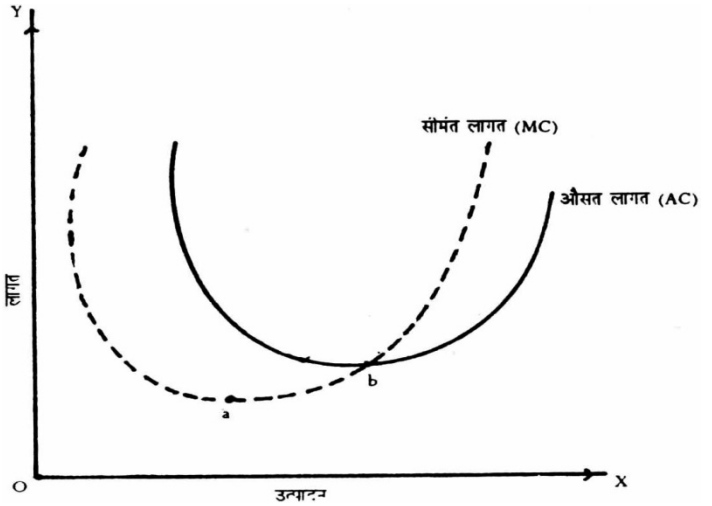

चित्र 11.10

MC वक्र AC से पहले अपने न्यूनतम बिन्दु a पर पहुंचती हैं क्योकि MC बढ़ने लगती है तब भी AC एक निश्चित सीमा तक गिरती रहती हैं। एक निश्चित सीमा के बाद AC भी बढ़ने लगती हैं और AC के इसी न्यूनतम बिन्दु b पर MC उसे काटते हुए ऊपर निकल जाती है। औसत लागत और सीमांत लागत के इस सम्बन्ध को चित्र 11.10 में दर्शाया गया हैं।

सीमांत लागत का इकाई लागतों से सम्बंन्ध

चित्र 11.11 में औसत लागत, औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील लागत और सीमात लागत का सम्बन्ध दर्शाया गया हैं। ।

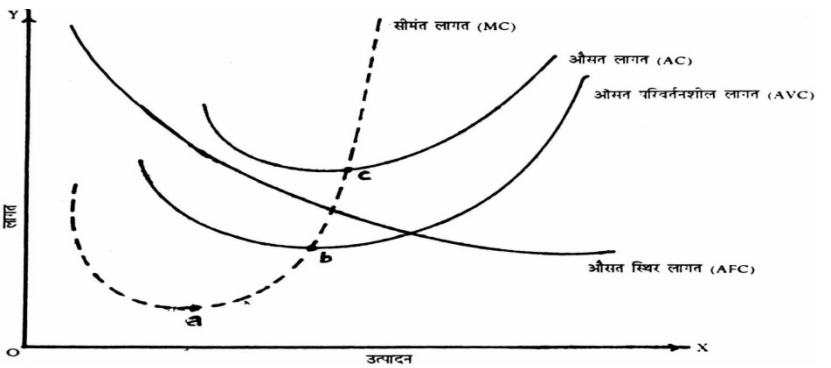

चित्र 11.11

से स्पष्ट है कि-

1. अल्पकाल में औसत स्थिर लागत AFC के अलावा अन्य लागत रेखाए AC, AVC और MC आकार की होती है अर्थात् सिर्फ AFC निरन्तर घटती हैं जबकि अन्य पहले घटती हैं और फिर बढ़ती है।
2. MC वक्र AC वक्र और AVC वक्रों को उनके न्यूनतम बिन्दुओ पर काटता हैं।

3. MC वक्र AVC वक्र को पहले और AC वक्र को बाद में काटता हैं।
4. जब तक औसत लागत वक्र AC गिरता है तक तक सीमांत लागत वक्र MC भी गिरता है और वह औसत लागत वक्र के नीचे रहता हैं। जैसे ही औसत लागत वक्र ऊपर उठने लगना है, सीमात लागत वक्र औसत लागत तक को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता हुआ उसके ऊपर तो बना है।
5. MC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु a पर सबसे पहले, AVC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु c. पर उसके बाद और AC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर सबसे अन्त में पहुंचता हैं।

11.4 दीर्घकालीन लागत विश्लेषण

किसी भी उद्योग से कुल उत्पादन की मात्रा तीनों बातो पर निर्भर होती हैं (I) फर्मो की संख्या (II) फर्मो का आकार या उत्पादन क्षमता (III) उत्पादन पर I अल्पकाल में प्रथम दो में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता, अत: उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन दर ही होता हैं। किन्तु दीर्घकाल में फर्म के पास इतना समय रहता हैं कि वह अपनी उत्पादन क्षमता को मांग के अनुरुप बदल सकती हैं। अन्य शब्दों में दीर्घकाल में अधिकतम समायोजन सम्भव हैं। दीर्घकाल मे मांग के घटने तथा बढ़ने पर यंत्रों, श्रमिकों, कच्चे पदार्थ सभी को घटाना-बढ़ाना सम्भव है। स्पष्ट है कि दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तित की जा सकती है अतः दीर्घकाल में स्थिर और परिवर्तनशील लागतों का भेद समाप्त हो जाता हैं ओर सभी लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं। अतः दीर्घकाल में लागत के केवल दो ही वक्र रह जाते है। ये है-

1. दीर्घकाल व औसत लागत वक्र Long Term Average Cost Curve (LAC)
2. दीर्घकाल व सीमांत लागत वक्र Long Term Marginal Cost Curve (LMC)

यहां हम इनका अध्ययन करेंगे

11.4.1 दीर्घकालीन औसत लागत (Long Term Average Cost Curve (LAC)

दीर्घकाल में अनेक अल्पकाल होते हैं। इनमे से हरेक अल्पकाल के लिये एक भिन्न आकार प्लांट होता हैं तथा उसका एक अलग अल्पकालीन औसत लागन वक्र होता है। देख चित्र 11.12 चित्र

11.12 में om_1 मात्रा के उत्पादन हेतु पहले प्लान्ट का आल्पकालीन लागत वक्र SAC_1 हैं। चित्र 11.12 में om_2 उत्पादन मात्रा के उत्पादन हेतु दूसरे प्लान्ट के उत्पादन का अल्पकालीन औसत लागत वक्र SAC_2 हैं। उसी प्रकार om3 उत्पादन मात्रा हेतु तीसरे प्लान्ट का अल्पकालीन औसत लागत वक्र ASC हो। दीर्घकाल में ऐसे अन्य अनेक SAC हो सकते है। हमने यहा सुविधा के लिये सिर्फ 3SAC बनाये हैं जो अल्पकलीन औसत लागत को दर्शाते हैं।

इन अल्पकालीन औसत' लागत वक्रों को स्पर्श करते हुए एक वक्र खीच दें तो टर्घकालीन औसत लागत रेखा बन जायेगी। इस वक्र से ज्ञात होता हैं कि उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन होने पर दीर्घकाल से औसत लागत में किस प्रकार परिवर्तन होगा।

प्रश्नों-का उत्तर लिखने के लिये प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का प्रयोग केरे।

प्रश्न बोध

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उनरों का मिलान करें।

1. अल्पकाल में फार्म की लागतें कितने प्रकार की होती है। उनके नाम बताइये।
2. औसत लागतें कितने प्रकार की होती है? कुल लागत से इन्हें ज्ञात करने के ज्ञात करने बताइये।
3. सीमांत लागत क्या होती हैं?
4. क्या अल्पकाल में कुल लागत वक्र मूल बिन्दु से आरम्भ हो सकता हैं?

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की विशेषताएं

1. चित्र 11.12 में LAC वक्र के स्वरूप को देखने से पता चलता है कि वह SAC वक्रों को लिफाफे की तरह ढक लेती है। अतः LAC वक्र को लिफाफा' या आवरण भी कहने है।
2. LAC को नियोजित रेखा भी कहते है क्योंकि यह वक्र भविष्य मे उत्पादन तथा लागत सम्बन्धी सर्वश्रेष्ट सम्भावनाएं प्रदर्शित करती है। इस तरह यह फर्म की दीर्घकालीन उत्पादन नीति के निर्धारण में सहायक होती है।
3. LAC वक्र सदा अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के नीचे रहती है तथा यह SAC वक्रों की स्पर्श रेखा मात्र होती है। वह SAC को काटती नही क्योंकि वह किसी भी बिन्दु पर SAC से अधिक नही होती।
4. LAC वक्र SAC वक्रों को हमेशा उनके न्यूनतम बिन्दुओं पर स्पर्श नही होती। उत्पत्ति वृद्धि की स्थिति में वह SAC के गिरते हुए भाग पर, उत्पत्ति स्थिरता की स्थिति में स्थिर मांग पर और उत्पत्ति ह्रास की स्थिति में SAC वक्र के उठते हुए मांग पर स्पर्श करती हैं।
5. LAC वक्र भी SAC वक्र की तरह U आकार की होती हैं परन्तु यह अल्पकालीन लागत वक्र की अपेक्षा अधिक चपटी (Flat) होती हैं। इसका कारण यह हैं कि लागतों में परिवर्तन की दर अल्पकाल की अपेक्षा दीर्घाकल मे कम रहती हैं।
6. LAC वक्र के U आकार के अलावा कुछ अन्य रुप भी हो सकते है। इसका रुप इस बात पर निर्भर है कि उत्पत्ति का कौन से नियम लागू हो रहा है। उसे कुछ आकार निम्नानुसार होते है।

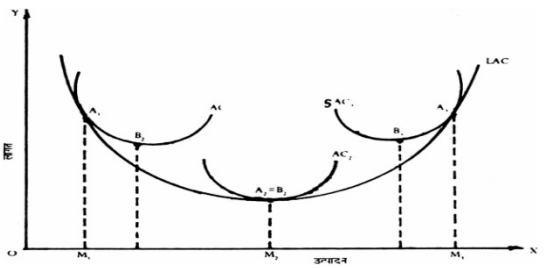

चित्र 11.12

(अ) जब बड़े पैमाने की मितव्ययिताएं कम समय तक लागू होन से उत्पत्ति ह्रास या लागत वृद्धि की स्थिति जल्दी लागू होती है (जैसे कृषि में) वहां इसका आकार चित्र क्रमांक के अनुसार होता है

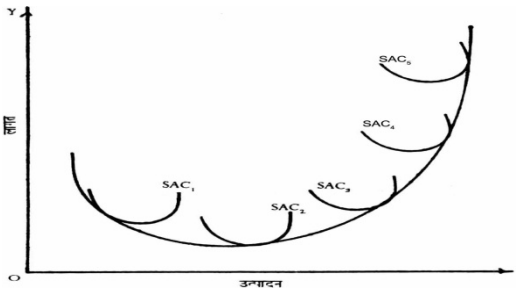

चित्र 11.13

(ब) जहा बड़े पैमाने की मितव्ययिताएं अधिक समय तक लागू होनी है (जैसे उद्योग में वहाँ उत्पत्ति वृद्धि या लागत ह्रास को स्थित अधिक समय तक चलती हैं। जब इनका आकार चित्र 11.14 कि अनुसार होता है।

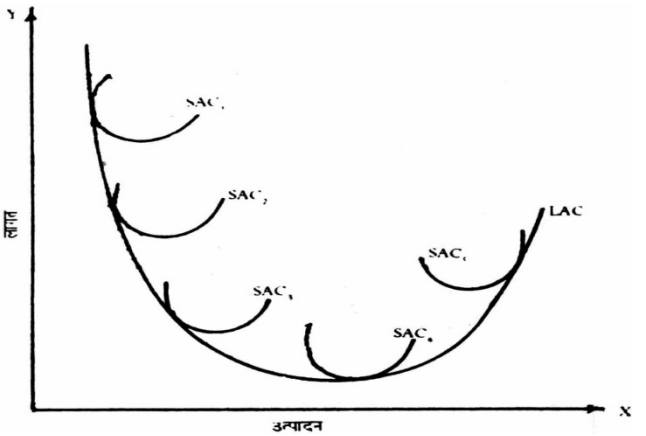

चित्र 11.14

(स) जहां लागत स्थिरता नियम लागू होता है वहा इनका आकार चित्र 11.15 के समान होता है। परन्तु यह स्थित अव्यावहारिक है।

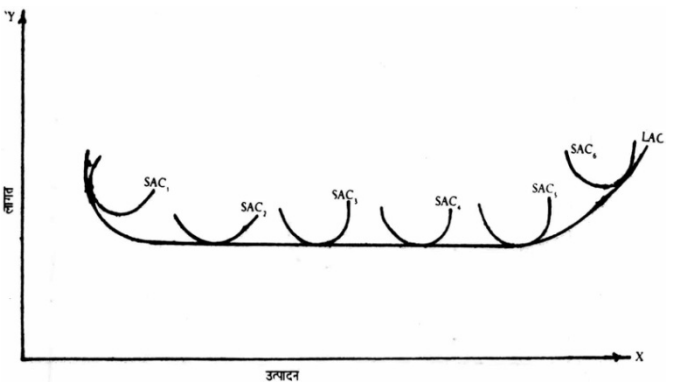

चित्र 11.15

(द) जहां तीनों नियम समान रूप से लागू होते है वहां इनका आकार चित्र 11.16 की तरह होता हैं।

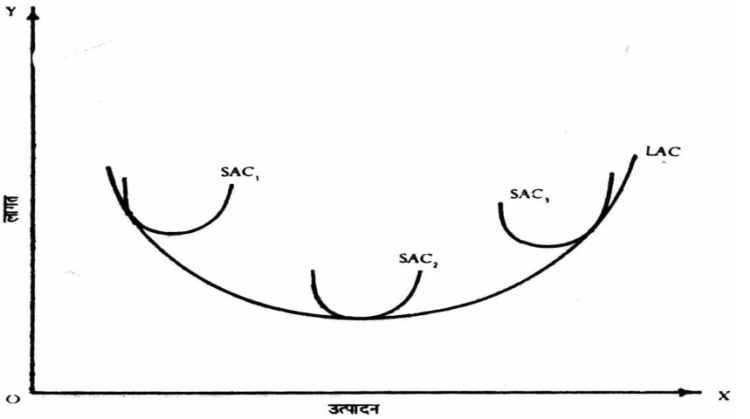

चित्र 11.16

11.4.2 दीर्घकालीन सीमांत लागत (Long Term marginal cost)

दीर्घकालीन सीमांत लागत दीर्घकाल में एक इकाई के उत्पादन कुल लागत में हुई वृद्धि को दर्शाती है। दीर्घकाल में भी सीमांत लागत और औसत लागत में वही सम्बन्ध होता है जो अल्पकाल में होता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की तरह दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र से सम्बन्धित एक अल्पकालीन सीमांत लागत वक्र (SMC) होता है। इन SMC वक्रों को स्पर्श करता हुआ एक वक्र खींच दें तो वह LMC वक्र होगा।

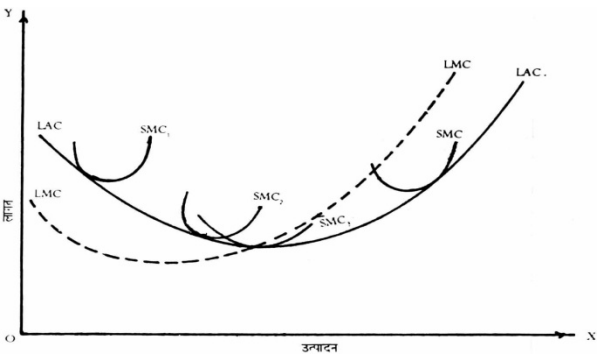

चित्र 11.17

LMC वक्र SMC वक्रों को लागत ह्रास की स्थिति में गिरती हुई भुजा पर लागत स्थिरता की स्थिति मे न्यूनतम बिन्दुओं लागत वृद्धि की स्थिति मे उठती हुई भुजा पर स्पर्श करता हैं।

विशेषताएं

1. इसका आकार भी U जैसा होता हैं परन्तु वह SMC वक्रों से अधिक चपटा होता हैं।
2. जब LAC वक्र गिरता है तो LMC उसके नीचे होता हैं और जब LAC वक्र उठता हैं तो LMC वक्र उसे उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता हुआ ऊपर निकल जाता हैं।

प्लान्ट का अनुकूलतम आकार

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र और दीर्घकालीन सीमात लागत वक्र की सहायना मे अनुकूलतम आकार वाले प्लान्ट का पता लगाया जा सकता हैं। वह प्लान्ट अनुकूलतम आकार का होता हैं जिसका अल्पकालीन औसत लागत वक्र का न्यूनतम बिन्दु उसके दीर्घकालीन औसत लागत के न्यूनतम बिन्दु के बराबर होता हैं और इसी बिब्दु पर दीर्घकालीन सीमात लागत दीर्घकालीन औसत लागत को काटती हैं। चित्र 11.18 मे यह दर्शाया गया हैं।

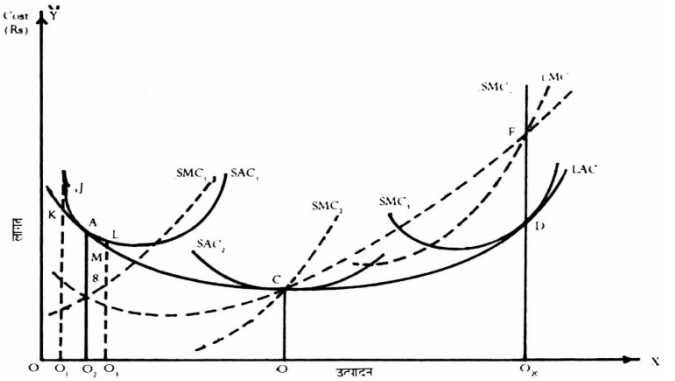

चित्र 11.18

चित्र-11.18 में E बिन्दु पर प्लान्ट-2 का SAC वक्र LAC वक्र और LMC वक्र मिलते है, अतः यह प्लान्ट अनुकूलतम आकार का प्लान्ट हैं।

प्रश्न बोध - 3

प्रश्नों का उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का इस्तेमाल करें।

इकाई के अन्त में दिये गये उनरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. क्या दीर्घकाल में स्थित लागतें होती ?

सारांश

1. वस्तु का मूल्य तय करने में पूर्ति पक्ष वस्तु की लागत पर विचार करता हैं। लागत वस्तु को उत्पन्न करने मे किया गया व्यय है।
2. मौद्रिक लागत मुद्रा द्वारा नापी जाती हैं। इसमें स्पाष्ट लागतें, अस्पष्ट लागतें और लाभ शामिल होता हैं।
3. वास्तविक लागत में मौद्रिक लागत के अलावा उन सब कष्टों, त्याग और प्रयत्नों का मौद्रिक मूल्यांकन शामिल हैं, जो किसी वस्तु के उत्पादन में किया जाता हैं।
4. अवसर लागत वह सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्राप्ति हैं जो किसी वस्तु के उत्पादन के कारण खो दी गई हैं। अल्पकाल में किसी कारखाने की लागतें पांच प्रकार की होती है। ये है स्थिर लागत परिवर्तनशील लागत, कुल लागत औसत सीमांत लागत।

5. स्थिर लागत वह हैं जो आरम्भ में एक मर्तबा लगाई जाती हैं जैसे- भूमि, भवन और यंत्र की लागत। परिवर्तनशील लागत बार-बार लगाई जाती हैं जैसे-कच्चा माल व शक्ति साधन पर जय । कुल लागत स्थिर व परिवर्तनशील लागतों का योग है। औसत लागत कुल लगत में उत्पादन मात्रा का भाग देने से प्राप्त होती है जबकि सीमांत लागत अन्तिम इकाई की उत्पादन लागत होती हैं।
6. स्थिर लागत का वक्र अल्पकाल में एक सीधी व अक्ष-अक्ष के समानांतर रेखा होता हैं । परिवर्तनशील लागत रेखा आरम्भ में धीरे-धीरे और फिर तेजीं से ऊपर उठती हैं। कुल लागत की रेखा स्थिर लागत की रेखा से आरम्भ होकर कुल परिवर्तनशील लागत रेखा के समान्तार ऊपर उठती है। औसत स्थिर लागत की रेखा निरन्तर नीचे गिरती हैं पर कभी शून्य नही होती, अतः अक्ष-अक्ष को स्पर्श नहीं करती। औसत परिवर्तनशील लागत और औसत कुल लागत की रेखाएं U आकार की होती है। औसत परिवर्तनशील लागत औसत लागत की तुलना में पहले अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुंचती हैं। दोनों का अन्तर धीरे -धीरे घटता जाता हैं। पर समाप्त नही होता। सीमांत लागत की रेखा भी U आकार की होती हैं। यह औसत परिवर्तनशील लागत वक्र और औसत कुल लागत वक्र को उनके न्यूनतम बिन्दुओं पर काटती हुई उनके ऊपर निकलती हैं।

इन पांच प्रकार की अल्पकालीन लागतों और लागत वक्रों के अलावा दो प्रकार के दीर्घकालीन लागतें और वक्र भी होती हैं। ये हैं-दीर्घकालीन औसत लागत और दीर्घकालीन सीमांत लागत और उनकें वक्र । दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अनेक अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को स्पर्श करता हुआ बनाया जाता हैं जबकि दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र उनके अल्पकालीन सीमांत लागत वक्रों को छूता हुआ बनाया जाता हैं।

11.6 शब्दावली

मौद्रिक लागत (Money Cost) : वस्तु के उत्पादन में किये गये कुल मौद्रिक व्यय को उसकी मौद्रिक लागत कहते हैं।

वास्तविक लागत (Real Cost) : वस्तु के उत्पादन में किये गये प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, प्रयत्न त्याग व काष्ट का मूल्यांकन वस्तु की वास्तविक लागत हैं।

अवसर लागत (Opportunity Cost) : किसी साधन का वह अलग सर्वोत्तम वैकल्पिक अवसर जो किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिये खो दिया गया हैं।

वैकल्पिक लागत (Alternative Cost) : अवसर लागत के समान।

विस्थापित लागत (Displaced Cost) : अवसर लागत के समान।

हस्तान्तरण लागत (Transfer Cost) : अवसर लागत के समान।

स्पष्ट या व्यक्त लागत (Explicit Cost) : वह लागत जो फर्म को विभिन्न उत्पादन साधनों को प्राप्त करने हेतु स्पष्ट रूप से खर्च करनी पड़ती हैं।

अस्पष्ट या अव्यक्त लागत (Emplicit Cost) : उन साधनों व सोवाओ का मूल जो फर्म को साहसी उपलब्ध कराता हैं, पर उनका मूल्य नही चुकाता।

सामान्य लाभ (Normal Profit) : लाभ की वह न्यूनतम मात्रा जो उद्यमी को उस उद्योग में बने रहने के लिये अनिवार्य है।

स्थिर लागत (Fixed Cost) : उत्पादन के वे स्थिर व्यय जो अल्पकाल में आरम्भ में एक ही बार करने पड़ते है, जैसे- भूमि और भवन पर व्यय।

परिवर्तनशील लागत (Variable Cost): उत्पादन के वे व्यय जो उत्पादन वृद्धि के साथ हर बार करने पड़ते है, जैसे-कच्चा माल व शक्ति साधन पर व्यय।

कुल लागत (Total Cost) : यह स्थिर लागत और परिवर्तनशील लागत का योग हैं। उत्पादन का कुल खर्चा कुल लागत कहलाता हैं।

औसत लागत (Average Cost) : कुल लागत में इकाइयों की संख्या का भाग देने पर औसत लागत प्राप्त होती है।

सीमांत लागत (Marginal Cost): एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन पर होने वाला व्यय सीमांत लागत है।

11.7 कुल उपयोगी पुस्तकें

Micro Economics Theory M.L. Jhingan, Konark Publishers Pvt. Ltd., Delhi

Micro Economics, M.L. seth, Publishers-Laxmi Narayan Arawal, Agra

अर्थशास्त्र के विश्लेषण. के. पी. जैन, प्रकाशन- नेशलन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त : एस. पी. दुबे एवं वी. सी. सिन्हा, प्रकाशन - नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त : के. पी. एस. सुन्दरम् एवं एम. सी. वैश्य प्रकाशन- रतन प्रकाशन मन्दिर, अग़रा।

उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त : डॉ. एस. एन. दुबे, प्रकाशन- लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1

व्यक्ति अर्थशास्त्र के सिद्धान्त : डॉ. एच. एस. अग्रवाल, प्रकाशन- लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा-31

11.8 अभ्यासो के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. मौद्रिक लागत में तीन मदें शामिल होती हैं।

स्पष्ट लागतें (ii) अन्तर्निहित लागतें और (iii) सामान्य लाभ।

2. किसी साधन का वह सर्वोत्तम वैकल्पिक अवसर जो किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिये खो दिया गया है।

बोध प्रश्न 2

1. (i)कुल लागत (ii) कुल स्थिर लागत (iii) कुल परिवर्तनशील लागत (iv) औसत लागत एवं (v) सीमांत लागत
2. औसत लागतें तीन प्रकार की होती हैं।
   i. औसत स्थिर लागत = $\frac{\text{कुल स्थिर लागत}}{\text{कुल उत्पादन मात्रा}}$
   ii. औसत परिवर्तनशील लागत = $\frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत}}{\text{कुल उत्पादन मात्र}}$
   iii. औसत लागत = $\frac{\text{कुल लागत}}{\text{कुल उत्पादन मात्रा}}$
   iv. औसत लागत कुल उत्पादन मात्रा
3. उत्पादन मे एक इकाई के परिवर्तन से कुल लागत में हुए परिवर्तन की माप सीमांत लागत हैं।
4. नहीं

बोध प्रश्न 3

1. दीर्घकाल में स्थिर और परिवर्तनशील लागतों का भेद समाप्त हो जाता हैं। सभी लागतें परिवर्तनशील लागतें हो जाती हैं।

इकाई 12

पैमाने की मितव्ययताएं
Scale of Economies

इकाई की रूपरेखा

12.0 उदेश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 बड़े पैमाने पर उत्पादन एवं मितव्ययताएं

12.3 आन्तरिक मितव्ययताएं

12.3.1 आन्तरिक मितव्ययताओं के कारण

12.4 बाह्य मितव्ययताएं

12.5 आन्तरिक तथा बाहय मितव्ययताओं में सम्बन्ध

12.6 पैमाने की अमितव्ययताएं

12.7 सारांश

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.9 अभ्यासों के उत्तर

12.0 उदेश्य

इससे पूर्व की इकाइयों में आप उत्पादन फलन के बारे में अध्ययन कर चुके है। इस इकाई में हम मुख्यतया यह देखेंगे कि उत्पत्ति के पैमाने से क्या तात्पर्य है और बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से कौन-कौन सी मितव्ययताएं प्राप्त होती है हम इस इकाई में पैमाने की अमितव्ययताओं का भी अध्याय करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न बातें जान पाएंगें-

1. बड़े पैमाने के उत्पादन से प्राप्त मितव्ययताएं क्या है,
2. उत्पादन फलन में जो उत्पत्ति के साधन है यदि उन्हें परिवर्तित किया जाये जो उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ेगा, एवम्
3. बड़े पैमाने के उत्पादन से प्राप्त अमितव्ययताएं क्या हैं?

12.1 प्रस्तावना

इस खंड की ग्यारहवीं इकाई में आपने उत्पादन लागत के बारे में अध्ययन किया है। उत्पादन लागत की परिभाषा से ही स्पष्ट है कि उत्पादन लागत एक दिए हुए समय के लिए उत्पादन की मात्रा के बारे में बताता है। उत्पादन लागत जान लेने के बाद आपके मन में निम्न दो प्रश्नों का उठना स्वाभिवक्र है। (1) उत्पादन किस पैमाने पर किया जाए और अलग-अलग पैमाने से उत्पादन की मात्राओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा। (2) एक उद्योग के आकार में वृद्धि करने से मितव्ययता पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

पहला प्रश्न उत्पत्ति करने वाली इकाई के आकार से है। मोटे रुप में आकार की दृष्टि से उत्पादन दो प्रकार से किया जा सकता है। (1) बड़े पैमाने पर तथा (2) छोटे पैमाने पर। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से जो मितव्ययताएं होती है उसकी चर्चा हम इस इकाई में करेंगे। यह स्वाभाविक है कि अधिक उत्पादन करने के लिए हमें उद्योग के आकार को बढ़ाना पड़ेगा। अब यह प्रश्न उठता है कि उद्योग के विकास करने पर फर्मों की मितव्ययताओं पर क्या असर पड़ेगा। इसका एक सीधा सा उत्तर यह है कि मितव्ययताओं में परिवर्तन होगा, और फर्मो को एक सीमा के बाद अमितव्ययताओं का सामना करना पड़ेगा। इस जिज्ञासा का समाधान भी इकाई में किया गया है।

12.2 बड़े पैमाने पर उत्पादन एवं मितव्ययताएं

जैसा कि प्रस्तावना में उल्लेख किया है कि मुख्यतया आकार की दृष्टि से उत्पादन या तो बड़े पैमाने पर किया जाता है या छोटे पैमाने पर। एक उत्पादनकर्ता पूँजी, तकनीकी स्थिति, कच्चे माल की उपलब्धि, श्रम एवं वस्तु की मांग आदि अनेंक बातों को ध्यान में रखकर उत्पत्ति के पैमाने के बारे में निर्णय लेता है। अब प्रश्न यह है कि यदि सभी बातें अनुकूल हों तो हर उत्पादनकर्ता छोटे पैमाने की बजाय बड़े पैमाने पर उत्पादन करना क्यों पसंद करता है? यद्यपि आप लाभ एवं लागत के विचारों को आगे आने वाली इकाइयों में पढ़ेंगे लेकिन यहां यह जान लें कि हर उद्यमकर्ता अपने लाभ को अधिक करने के लिए कम से कम लागत पर उत्पादन करना चाहेगा। उत्पादन के पैमाने का उत्पत्ति की प्रति इकाई लागत से गहरा सम्बन्ध होता है। बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रति इकाई लागत कम आती है, क्योंकि बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से कुछ विशिष्ट मितव्ययताएं प्राप्त होगी जो कि छोटे पैमाने पर नहीं होती है, वह उत्पत्ति के समस्त सम्बन्धों के सुलभ होने पर बड़े पैमाने पर ही उत्पादन करना पसंद करेगा। इन विशिष्ट मितव्ययताओं की वजह से उत्पादनकर्ता कम लागत पर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकता है।

बड़े पैमाने पर उत्पत्ति का अर्थ :

जब किसी उद्योग में उत्पत्ति के विभिन्न साधनों जैसे पूँजी, श्रम एवं कच्चामाल आदि को बड़ी मात्रा में प्रयोग किया जाता है और जिसके फलस्वरूप उत्पादन इकाइयां बड़े आकार की होती है तो उसे बड़े पैमाने पर उत्पादन कहा जाता है। जब किसी उद्योग में उत्पादन के साधनो का प्रयोग बड़ी मात्रा में करने के लिए उत्पादन-इकाइयों का आकार बड़ा होता है, तब ऐसे व्यावसायिक संगठन को "बड़े पैमाने पर

उत्पादन" कहा जाता है। अत: बड़े पैमाने पर उत्पादन-व्यवस्था का आशय-उद्योग या उत्पादन-इकाइयों के आकार में विस्तार से है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि बड़े पैमाने के उत्पादन के कुछ विशिष्ट मितव्ययताएं प्राप्त होती है जिन्हें हम दो भागों में बॉट सकते है-

(अ) आन्तरिक मितव्ययताएं एवं (ब) बाहय मितव्ययताएं । प्रो0 मार्शल के अनुसार बड़े पैमाने पर उत्पादन आन्तरिक तथा बाहय मितव्ययताओं के कारण ही संभव हो पाता है। रॉबर्टसन ने भी इन मितव्ययताओं को बड़े पैमाने पर उत्पादन की व्यवस्था का मूल कारण माना है। यहां हम इन दोनों मितव्ययताओं की विस्तृत चर्चा करेंगे।

12.3 आन्तरिक मितव्ययताएं (Internal Economics)

किसी फर्म के लिए आन्तरिक मितव्ययताएं वे मितव्ययताएं है जो कि उनके आन्तरिक संगठन अच्छा होने के कारण उसे प्राप्त होती है। यह आवश्यक नही कि इस प्रकार की मितव्ययताएं दूसरी फर्मो को भी प्राप्त हों। ये मितव्ययताएं प्रत्येक फर्म के लिए उसके आकार के अनुसार भिन्न होती है। प्रो0 केअर्नक्रास के अनुसार- "आन्तरिक मितव्ययताएं वे है जो एक कारखाने या फर्म को प्राप्त होती है, ये अन्य फर्मो के कार्यों पर आधारित नही होती। ये फर्म के उत्पादन के पैमाने में वृद्धि का परिणाम है और इनको तब तक प्राप्त नही किया जा सकता जब तक कि उत्पादन में वृद्धि न हो। ये मितव्ययताएं किसी फर्म को उस समय प्राप्त होती है जब उत्पादन लग़तें कम हो जाती है और उत्पादन बढ़ जाता है। ये किसी एक फर्म को ही प्राप्त होती है और उनका अन्य फर्मो के कार्यो से कोई समय नही होता, ये उस फर्म के उत्पादन पैमाने के विस्तार का परिणाम होती है और तब तक उपलब्ध नही होती, जब तक कि उत्पादन नही बढ़ता। अत: यह स्पष्ट है कि इन मितव्ययताओं को प्राप्त करने के लिए उत्पादन की मात्रा बढ़ाना आवश्यक है।

12.3.1 आन्तरिक मितव्ययताओ के कारण (Causes of Internal Economics)

फर्म का विस्तार होने पर उसे निम्नलिखित कारणों से मितव्ययताएं प्राप्त होती हैं -

अविभाज्यताएं (Indivisibilities)

हम जानते है कि उत्पत्ति के अधिकांश साधन अविभाज्य होते है। प्रत्येक साधन का एक निम्नतम आकार होता है जिसके नीचे उसको एक छोटे भागों में नही बांटा जा सकता। उत्पादन के अनेक नियत साधनों को एक निश्चित न्यूनतम परिणाम में ही प्रयोग करना पड़ता है। स्टोनियर व हेग के अनुसार "उत्पादन के साधन प्रर्याप्त रुप से बड़े उत्पादन में ही अधिकतम दक्षता से काम में लाए जा सकते है, लेकिन छोटे पैमाने पर उत्पादन में वे कम दक्षता से काम करते है, क्योंकि उन्हें अपेक्षाकृत छोटी इकाइयों में विभाजित नही किया जा सकता। "इस प्रकार उत्पादन बढ़ने पर अविभाज्य साधनों की पूर्ण क्षमता का उपयोग किया जा सकता है।

श्रीमती जॉन रोबिन्सन, फ्रेंक नाइट व निकाल्स कॉलडोर नें भी पैमाने की मितव्ययताओं का सम्बन्ध साधनों की अविभाज्यता से जोड़ा है। श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार "यदि उत्पादन के समस्त साधन रेत की भांति अन्तिम रुप के विमाज्य हों, तो बड़े पैमाने के उत्पादन से प्राप्त होने वाले सभी लाभों के सथ किसी भी वस्तु का कम से कम मात्रा में भी उत्पादन संभव है" कॉलडोर का मत हैं कि पद्धति की दृष्टि से यह सुविधाजनक होगा कि बड़े पैमाने की सारी मितव्ययताएं "अविभाज्यता" के अन्तर्गत रखी जायें। मशीन, प्रबन्धक बाजार एवम् विज्ञापन, वित्त और अनुसंधान में अविभाज्यताएं का तत्व होता है। जिन फर्मो का आकार बड़ा होता है वे इन अविभाज्यता साधनों का पूरा-पूरा प्रयोग करने लगती है जिससे इन्हें आन्तरिक मितव्ययताएं प्राप्त होती है। एक फर्म अपने विस्तार के साथ-साथ बाजार एवम् विज्ञापन, अनुसंधान आदि का बड़ी मात्रा में उपयोग करके प्रति इकाई लागत घटा सकती है।

विशेषीकरण (Specialisation)

आन्तरिक मितव्ययताओं का एक और कारण श्रम का विभाजन है जो विशेषीकरण कहलाता है। प्रो0 चेम्बरलिन का कहना है कि "बड़े पैमाने के उत्पादन से प्राप्त लाभ उत्पादन साधनों की अविभाज्यता के कारण नही प्राप्त होते, बल्कि विशिष्टीकरण एवं प्राविधिक विधियों का उपयोग बड़े पैमाने के उत्पादन द्वारा संभव होता है।" फर्म का आकार बढ़ने पर उत्पादन के साथ-साथ कच्चे माल एवं श्रमिकों की संख्या भी बढ़ती है। इससे श्रमिकों में विशिष्टता बढ़ती जाती है और विशिष्ट साधनों का प्रयोग करने लगते है। प्रत्येक श्रमिक को एक विशिष्ट काम साँप दिया जाता है और अधिक दक्षता के लिए प्रक्रियाओं को उप-प्रक्रियाओं में विभाजित किया जाता है। इस प्रकार, विशेषीकरण से उत्पादन दक्षता बढ़ेगी और लग़तें घट जाएंगी।

उत्पादन-साधनों का सुचारु रुप से प्रयोग साधनों की अविभाज्यता, विशिष्टीकरण एवम् वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग के कारण होता है। अविभाज्यता एवम् विशिष्टता जो कि बड़ी फर्मो के साथ जुड़ी होती है उन्हें धीरे-धीरे सभी क्षेत्र जैसे तकनीकी, प्रबन्ध, बाजार एवं वित्त में भी आन्तरिक मितव्ययताएं उपलब्ध करवाती है।

आन्तरिक मितव्ययताओं को मुख्यतया निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है :-

1. तकनीकी मितव्ययताएं
2. प्रबन्धकीय मितव्ययताए
3. बाजार एवम् विज्ञापन सम्बंधित मितव्ययताएं
4. वित्तीय मितव्ययताएं
5. जोखिम से सम्बंधित मितव्ययताएं
6. अनुसंधान की मितव्ययताएं
7. कल्याणकारिता की मितव्ययताएं

1. तकनीकी मितव्ययताए

तकनीकी मितव्ययताएं उत्पादन की उत्तम तकनीक, बड़ी मशीनों के प्रयोग, विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन के प्रयोग द्वारा प्राप्त की जा सकती है। ये मितव्ययताएं एक अकेले प्रतिष्ठान के आकार को प्रभावित करती है क्योंकि हों सकता है कि एक फर्म के संचालन में एक से अधिक प्रतिष्ठान हो। कैअर्नक्रास व निक्लेयर ने तीन प्रकार की तकनीकी किफायतें बतलायी है-

उन स्तरीय तकनीक की मितव्ययताएं-बढ़िया किस्म की मशीनरी बहुत छोटे पैमाने पर उत्पादित नही की जा सकती है। इसलिए उच्चकिस्म की तकनीक का प्रयोग कर सकने कें लिए बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाना आवश्यक होता है। उत्पादन की उत्तम तकनीकी विधियों, स्वचालित तथा शक्ति द्वारा संचालित यंत्रों के प्रयोग से उत्पादन व्यय कम होता है और प्रति इकाई उत्पादन लागत भी कम होती है।

प्रक्रियाओं को सम्बन्ध करके

व्यापार तथा उत्पादन-व्यवस्था के आकार का विस्तार करने पर विभिन्न उत्पादन-प्रक्रियाओ एवं विधियों को एक ही स्थान पर सम्बंद्ध किया जा सकता है। इसी में व्यर्थ पदार्थों की उपोत्पत्ति (by products) के रुप में बदलने की किफायत भी शामिल की जाती है। छोटे संयंत्रों के साथ कमा करने से ये मितव्ययताएं प्राप्त नही की जा सकती, क्योंकि उनमें व्यर्य पदार्थ कम निकलते है। जिनको हटाने का व्यय और वहन करना पड़ता है।

वृहद आयामों के आकार की मितव्ययताए

किसी उत्पादन इकाई का विस्तार होने पर बड़ी मशीनों का प्रयोग संभव हो पाता है तथा प्रति इकाई कम व्यय पर अधिक मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है। छोटी मशीनो के स्थान पर बड़ी मशीनों का प्रयोग मितव्ययी माना जाता है।

विशिष्टीकरण की मितव्ययताए

स्टोनियर व हेग ने इसका वर्णन किया है। विशिष्टीकरण के बढ़ने से श्रम विभाजन बढ़ता है और इनके लाभ उत्पादन-इकाई के आकार के विस्तार होने पर ही प्राप्त हो सकते है। छोटी फर्म में श्रम-विभाजन सीमित होता हैं, इसलिए मितव्ययताएं कम प्राप्त हो पाती है, क्योंकि कार्य-कुशल व्यक्ति की कार्य-क्षमता का पूर्ण उपयोंग संभव नही हो पाता है। श्रम विभाजन के लाभों के कारण ही अल्पकाल में एक दियें हुए संयंत्र की सहायता से उत्पत्ति बढ़ाने पर कुछ सीमा तक प्रति इकाई लागत घट सकती है। इस प्रकर विशिष्टीकरण के बढ़ने से तकनीकी मितव्ययताएं प्राप्त होती है।

2. प्रबन्धकीय मितव्ययताएं

बड़े पैमाने पर उत्पादन-व्यवस्था में वैज्ञानिक प्रबन्ध तथा प्रबन्ध-व्यवस्था में आवश्यक सुधार करके इस प्रकार की मितव्ययता प्राप्त की जा सकती है। प्रबन्ध में विशिष्टीकरण दो तरह से प्राप्त किया जाता है। (i) विभिन्न प्रकार के कार्य अन्य व्यक्तियों को सौप देना : इसमें व्यवसाय का मालिक छोटे-छोटे कई कार्य अन्य सहायकों को सौपकर अपना सम्पूर्ण ध्यान महत्वपूर्ण निर्णयों में लगा सकता है। (ii) कार्यात्मक

विशिष्टीकरण: फर्म के कुशल प्रबन्ध के लिए कार्यो को विभिन्न विभागों जैसे - क्रय-विक्रय विभाग, लेखांकन एवं लागत विभाग, विज्ञापन विभाग आदि में बांट दिया जाता है, और एक विभाग के कार्य को भी कई उप-विभागों में बांटा जा सकता है । परन्तु इस प्रकार का कार्य-विभाजन तथा कार्यो का विशिष्टीकरण व्यावसायिक संगठन के विस्तार अथवा संस्थाओ, को एक कुशल व्यवस्थापक के अन्तर्गत लाने पर ही संभव हो सकता है और तभी प्रबन्ध सम्बन्ध मितव्ययताएं प्राप्त की जा सकती है।

3. बाजार एवं विज्ञापन सम्बन्धी मितव्ययताएं

यह मितव्ययताएं फर्म को कच्चे माल को खरीदने तथा उत्पादित माल को बाजार में बेचने से संबंधित है । एक बड़ी उत्पादक संस्था के लिये, अधिक मात्रा में कच्चा माल, ईधन, मशीनों आदि को क्रय करने पर, ये वस्तुएं कम कीतमत पर एवं अच्छी मिल जाती है। इन वस्तुओं पर उद्योग को रेल परिवहन अधिकारियों, बैकों व अन्य संस्थाओं के विशेष सुविधाएं भी मिलती है । एक फर्म के साथ एक से अधिक वस्तुओं की बिक्री करके अपना प्रति इकाई व्यय कम कर सकती है। आजकल के युग में विक्रय के लिए विज्ञापन का सहारा लेना आवश्यक है और बड़ी फर्मो द्वारा विज्ञापन एवं प्रसार पर किया गया व्यय अधिक इकाइयों में बंट जाता है।

4. वित्तीय मितव्ययताएं

आजकल सफल व्यापार के लिए सबसे बड़ी शर्त है आवश्यकतानुसार वित्त का प्राप्त होना, क्योंकि बड़ी फर्मो की बाजार में साख होती है अत: रुपया उधार देने वाली संस्थाएं आसानी से दिल उपलब्धकरवा देती है ।बड़ी फर्म को अपनी ऊँची प्रतिष्ठा के कारण अंश-पूँजी जुटाने में ज्यादा सुविधा रहती है । इन फर्मो के अंशों, ऋण पत्रों आदि का नियमित बाजारों में क्रय-विक्रय किया जाता है। जिससे अंश धारकों को विशेष कठिनाई का समाना नही करना पड़ता है।

5. जोखिम से सम्बन्धित मितव्ययताएं

एक बड़े संस्थान मे छोटे संस्थान की अपेक्षा व्यावसायिकजोखिम सहने की क्षमता अधिक होती है । इसका कारण यह है कि बड़ी संस्था में यह जोखिम कई अंश धारकी में बंट जाती है। इसके अतिरिक्त बड़ी फर्मो को जाखिम की मात्रा छोटी फर्मो की अपेक्षा कम होती है। कई बाजारों में वस्तुओं की बिक्री करने पर, विभिन्न विधियों द्वारा उनका उत्पादन करने पर तथा विभिन्न क्षेत्रो से कच्चा माल क्रय करने पर भी जो जोखिम बंट जाती है । आधुनिक उद्योग जोखिम को छितरा देने के लिए अपने उत्पादन में विविधता लाते है, बाजारों के सम्बन्ध में विविधता लाते है एवं अपने पूर्ति के सोतों व उत्पादन की प्रक्रियाओं में भी विविधता लाते है। इस प्रकार इन विविधताओं सें जोखिम कम की जाती है।

6. अनुसंधान की मितव्ययताए

इस बड़ी फर्म के पास छोटी फर्म की अपेक्षा साधन अधिक होते है और वह अच्छें विशेषज्ञ एवम् अनुसंधानकर्ता रखकर अपनी स्वयं की अनुसंधान प्रयोगशाला स्थापित कर सकती है। फर्म के विशेषज्ञ जिन नई उत्पादन तकनीकों का अविष्कार करते है उनका उपयोग करके वह फर्म उत्पादन बढ़ाती है और लागतें कम करती है।

7. कल्याणकारिता की मितव्ययताएं

सभी फर्मे अपने श्रमिकों को कई प्रकार की सुविधाएं प्रदान करती है जैसे - फर्म परिसर में सहायक कैन्टीन चलाना, शिशुओं के लिए बालगृह, श्रमिकों के लिए मनोरजनशाला आदि। फर्म परिसर के बाहर श्रमिकों कें लिए सस्ते मकान, मनोरंजन क्लब, शैक्षणिक एवम् चिकित्सासुविधाए आदि सुविधाएं भी प्रदान कर सकती है। एक छोटी फर्म के मुकाबले बड़ी फर्म के पास अधिक साधन होते है। अत: वह अपने श्रमिकों को उपरोक्त सुविधाएं प्रदान कर सकती है। इन सुविधाओं पर फर्म को बहुत खर्च करना पड़ता है, लेकिन इनसे श्रमिकों की उत्पादन क्षमता बढ़ती है जो उत्पादन बढ़ाने और लागतें घटाने में सहायक होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि आन्तरिक मितव्ययताएं एक फर्म को उसके आकार में वृद्धि होने से प्राप्त होती है। इनसे उत्पादन की लागत कम होती है। इनका सम्बन्ध फर्म के आन्तरिक संगठन व व्यवस्था से होता है।

12.4 बाह्य मितव्ययताएं (External Economics)

ये वे मितव्ययताएं होती है जो किसी औद्योगिक इकाई के स्वयं के कारण उत्पन्न नही होती, बल्कि बड़े पैमाने के उद्योगों के सामान्य विकास के कारण उत्पन्न होती है। इनके उत्पन्न होनें का प्रमुख कारण एक ही क्षेत्र में एक ही प्रकार की अनेक औद्योगिक इकाइयों की स्थापना होना है। इनमें केन्द्रीयकरण के कारण उत्पन्न होने वाले लाभ तथा अन्य मितव्ययताएं शामिल होती है।

किसी एक उद्योग का विस्तार होने के कारण सम्पूर्ण उद्योग को प्राप्त होने वाली उन सभी मितव्ययताओं को जिनका लाभ प्रत्येक सदस्य इकाई को सम्मिलित रूप से मिलता हैं बाहय मितव्ययताएं कहते है। केअर्नक्रास के अनुसार, "बाहय मितव्ययताएं वे मितव्ययताएं है, जो अनेक फर्मो अथवा उद्योगों को प्राप्त होती हैं। जबकि एक उद्योग अथवा उद्योगों के एक समूह में उत्पादन का पैमाना बढ़ता है।"

स्टोनियर एवं हेग के शब्दो में "उत्पादन की बाह्य मितव्ययताएं एक व्यक्तिगत फर्म की उत्पत्ति वृद्धि की अपेक्षा समपूर्ण उद्योग में होने वाली उत्पत्ति की वृद्धि पर निर्भर करती है। जबकि एक उद्योग के आकार में वृद्धि होने से उसमें स्थित व्यक्तिगत फर्मो की लागतें कम हो जाती है। "बाह्य मितव्ययताएं केवल एक फर्म को प्राप्त न होकर अनेक फर्मो अथवा उद्योगों को प्राप्त होती है, ये उस समय प्राप्त होती है जबकि उद्योग में उत्पादन का पैमाना बढ़ता है।

बाह्य भितव्ययताओ के उलन होने के कारण:

बाहय मितव्ययताएं दो कारणों से उतन होती है- (I) उद्योगों का स्थानीयकरण तथा (II) केन्द्रित फर्मो द्वारा विशिष्टीकरण को अपनाना।

(I) उद्योगों का स्थानीयकरण :प्राकृतिक आर्थिक तथा अन्य कारणों से एक ही भौगोलिक क्षेत्र या स्थान मे एक ही प्रकार की बहुत सी औद्योगिक फर्मो के केन्द्रित हो जाने से प्रत्येक फर्म की उत्पादन लागत कम होती है। प्रो0 थॉमस के शब्दों मे "बाह्य मितव्ययताएं वे मितव्ययताएं होती

है जो उद्योग के स्थानीयकरण के कारण उत्पन्न होती है और सभी फर्मो को समान रूप से उपलब्ध होती है।"

(II) केन्द्रित फर्मो द्वारा विशिष्टीकरण को अपनाना : प्रो0 स्टिगलर के अनुसार – "उद्योग के विकास के फलस्वरुप फर्मो में विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति ही बाहय मितव्ययताओं का मुख्य स्त्रोत है।" औद्योगिक स्थानीयकरण के कारण विशिष्ट प्रकार की सेंवायें प्रदान करने वाली संस्थाएं वहां पर स्थापित हो जाती हैं। इसके कारण उद्योग की सभी फर्मे विशिष्टीकरण का लाभ प्राप्त करके कम लागत पर उत्पादन करती है। मोटे रुप से बाहय मितव्ययताओं को निम्न भागों में बांटा जा सकता है -

1. केन्द्रीयकरण की मितव्ययताएं

जब बहुत सी फर्मे एक क्षेत्र में केन्द्रित हो जाती है तो उनके स्थानीकरण के परिणामस्वरुप कई बाहय मितव्ययताएं प्राप्त होती है जैसे एक क्षेत्र में परिवहन तथा संचार व्यवस्था का अच्छा विकास हो जाता है तथा सरकार भी इन साधनों के निर्माण एवं विकास में सहायता करती है। उद्योगों के केन्द्रीयकरण को देखते हुए सरकार विद्युत शक्ति कभी उस क्षेत्र में विकास करती है जिससे सस्ती दर पर विद्युत मिल जाती है। ऐसे क्षेत्र में कई नई फर्मे खुल जाती है जो बड़े उद्योगों को कच्चे माल की पूर्ति करती हैं औंर उनसे निर्मित माल लेती है। इसके अलावा उस क्षेत्र में कुलश श्रमिक भी आसानी से प्रापत हो जाते है और उनके लिए प्रशिशण सुविधाओं का विकास भी हो जाता है। बैक एवं बीमा कम्पनियों की स्थापना से इनकी सेवायें प्राप्त होंती हैं इन सबके परिणामस्वरुप फर्म की कुशलता बढ़ जाती है तथा फर्म को बाहय मितव्ययताएं प्राप्त होती है।

2. ज्ञान एवं सूचना की मितव्ययताएं

आजकल लगभग सभी बड़े उद्योग अपने यहां अनुसंधान एवं विकासविभाग रखते है तथा उनसे होने वाले लाभों का व्यापारिक एवं तकनीकी पत्रिकाओं के माध्यम से आदान-प्रदान किया जाता है। इसी प्रकार कुछ फर्मे मिलकर एक केन्द्रीय अनुसंधान सरथान भी स्थापित कर सकती है तथा जिनकी खोजों का लाभ प्रत्येक सदस्य फर्म को हो सकता है। सूचना सम्बन्धी मितव्ययताओं का अकेले उद्योग के साथ-साथ सभी उद्योगों के लिए महत्व होता है। प्राय: इस अनुसंधान के व्यय का भार सरकार के कन्धों पर पड़ता है जिससे सम्पूर्ण उद्योग लाभाविन्त होता है।

3. विघटन की मितव्ययताएं

जब किसी उद्योग का पर्याप्त विकास हो जाता है तब उस उद्योग का कुछ प्रक्रियायें पृथक हो जाती है जो एक विशिष्ट फर्म या उद्योग के द्वारा विशिष्टीकरण प्राप्त करके अधिक कार्य-कुशलता से पूरी की जा सकती है। इस प्रकार विशिष्ट फर्मो की सेवाओं से सभी फर्मो को लाभ प्राप्त होता है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि आन्तरिक मितव्ययताएं एक फर्म को मिलती है और यह फर्म पर निर्भर करता है कि वह कुल कितना मितव्ययताएं प्राप्त करनें में सफल हो सकती है। ये किसी फर्म विशेष को उसके आकार में वृद्धि तथा संगठन में सुधार के कारण प्राप्त होती है। जबकि बाहय मितव्ययताएं

उद्योग के आकार तथा स्थानीयकरण पर निर्भर करती हैं तथा इन समस्त फर्मो को मिलती है जो एक उद्योग से जुड़ी है और लगभग एक स्थान पर है बाहय मितव्ययताएं आन्तरिक मितव्ययताओं से भिन्न होती है लेकिन इनमें निश्चित विभाजन करना कठिन होता है क्योंकि एक फर्म के लिए जो आन्तरिक मितव्ययता होती है वही दूसरी फर्म के लिए बाहय मितव्ययता हो सकती है।

इन दोनों प्रकार की मितव्ययताओं के कारण ही बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से प्रति इकाई लागत कम आती है।

प्रश्न बोध- 1

प्रश्नों का उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का प्रयोग करें। इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. बड़े पैमाने पर उत्पादन का क्या तात्पर्य है?
2. आन्तरिक मितव्ययताए मुख्य रुप से कौन सी है?
3. बाहय मितव्ययताएं किन कारणों से उत्पन्न होती हैं?

आन्तरिक तथा बाहय मितव्ययताओं का सम्बन्ध केवल स्थिति परक ही है। उदाहरणार्थ, कुछ फर्मे अलग-अगल रहकर बाहय मितव्ययताएं प्राप्त कर रही है, लेकिन यदि वे सब इकट्ठी मिल जायें तो उनके लिए सभी बाह्य मितव्ययताएं आन्तरिक बन जाती है। एक ही प्रकार की मितव्ययता एक के लिए आन्तरिक मितव्ययता और दूसरी कें लिए बाहय मितव्ययता हो सकती है। यदि एक फर्म की किसी आन्तरिक का लाभ कोई दूसरी फर्म लेने लगे तो दूसरी फर्म के लिए वह बाहय मितव्य यता बन जायेगी। उदाहरण के लिए हम देखें कि रेल्वे परिवहन का विकास किसी क्षेत्र में होने पर यह स्वयं रेल्वे उद्योग कें लिए तो आन्तरिक मितव्ययता और अन्य फर्मो के लिए बाहय मितव्ययता माना जायेगा।

प्राय : बाहय मितव्ययताओं से आन्तरिक मितव्ययतायें उत्पन्न होती है। श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार "बड़े पैमाने के उद्योग की मितव्ययताओं का परिणाम यह हो सकता है कि फर्म का इष्टतम परिणाम बदल जाये और जब फर्म अपने को नए इष्टतम परिणाम के अनुरूप समायोजित करने के लिए अपना पुन संगठन करें तो और मितव्ययताएं प्राप्त हो जायें। "प्रोफेसर राबर्टसन ने सभी मितव्ययताओं को एकत्र करके उनको आन्तरिक बाहय मितव्ययताएं कहा है। वे फर्म के परिणाम पर निर्भर करती है इसलिए आन्तरिक मितव्ययताएं और उद्योग के परिणाम पर निर्भर करती है इसलिए बाहय मितव्ययताएं होती है।

12.6 पैमाने की अमितव्ययताएं (Diseconomies of Scale)

बड़े पैमाने की मितव्ययताएं निरन्तर उपलब्ध नही हो सकती। किसी फर्म तथा उद्योग के जीवन में ऐसा समय आता है जब आगे विस्तार से मितव्ययताओं के स्थान पर अमितव्ययताएं उत्पन्न होने लगती है। अमितव्ययताएं भी आन्तरिक अमितव्ययताएं एवम् बाहय अमितव्ययताए हो सकती है आन्तरिक

अमितव्ययताओं सम्बन्ध एक फर्म के आन्तरिक संगठन से होता है। बाह्य अमितव्ययताओं का सम्बन्ध उद्योग के आकार में वृद्धि से होता है जिससे व्यक्तिगत फर्मों की लागतें बढ़ जाती है।

बड़े पैमाने पर उत्पादन व्यवस्था में एक सीमा के बाद मितव्ययताएं समाप्त हो जाती है और अमितव्ययताएं उत्पन्न होने लगती है। फर्म के विस्तार से उत्पन्न व्यय में वृद्धि हो सकती है। एक सीमा से आगे कुशल श्रम, पूँजी की कमी होने से तथा स्थानाभाव के कारण उत्पादन लागत में वृद्धि हो सकती है। जिससे अमितव्ययताएं प्राप्त होने लगती है। बड़े पैमाने में प्रबन्ध क्रियाओं में उत्पादन, परिवहन, वित्त, बिक्री आदि से सम्बन्धित क्रियायें आती है। इन सब कार्यों को करने के लिए सही सूचना की आवश्यकता होती है, अन्यथा गलत निर्णय लिये जाने का खतरा रहता है। एक फर्म से संयंत्र का आकार बढ़ने से एक बिन्दु के बाद प्रश्न का कार्य नीचे के लोगों को साँपना पड़ता है इससे कागजी कार्यवाही एवं लाल फीताशाही बढ़ने से उत्पादन लागत बढ़ने लगती है और उद्योग को अमितव्ययताएं प्राप्त होने लगती हैं।

उद्योग का विकास होने पर उसमें दक्ष श्रमिकों की मांग बढ़ जाती है इन्हे तो ऊंची मजदूी देकर दूसरे उद्योगों से लेना पड़ता है या घटिया श्रमिकों से कम उत्पादन करवाना पड़ता है। इससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है। इससे इस उद्योग की फर्मो के समक्ष बढ़ती हुई लागत की स्थिति उत्पन्न होने से बाहय अमितव्ययताएं प्राप्त होने लगती है।

उत्पादन के परिणाम में वृद्धि होने पर पूँजी के अतिरिक्त अन्य साधनों की मांग में वृद्धि होने से मजदूी, कच्चे माल के मूल्य, लगान आदि में वृद्धि हो जाती है जिससे फर्म को अधिक उत्पादन करने पर अमितव्ययताएं प्राप्त होती है।

बोध प्रश्न 2

अपना उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का प्रयोग करें।

1. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।
2. बड़े पैमाने के उत्पादन की अमितव्ययताओं के बारे में बताइये।

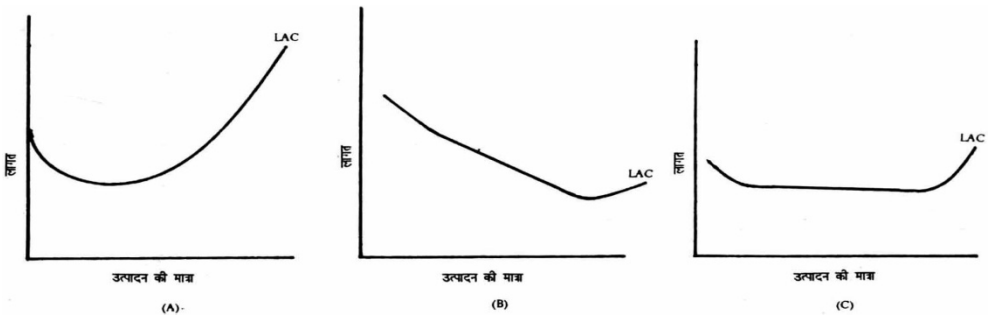

12.7 सारांश

इस इकाई में अपने बड़े पैमाने पर प्राप्त होने वाली मितव्ययताओं के बारे में अध्ययन किया है।

प्रारम्भ में हमने देखा कि बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से कौन-कौन सी मितव्ययताएं प्राप्त होती है। मोटे रूप से इन्हें दो भागों - आंतरिक एवं बाहय मितव्ययताओं के रूप में बांटा जा सकता हैं। आंतरिक मितव्ययताएं मुख्य रूप से बड़े आकार से सम्बन्धित मितव्ययताएं है जो फर्मो की अविभाज्यता एवं विशिष्टीकरण से प्राप्त होती है। जबकि बाहय मितव्ययताएं एक उद्योग के स्थान विशेष में केन्द्रित होने के कारण स्थानीयकरण अनुसंधान एवं विघटन से प्राप्त होने वाली मितव्ययताएं है। मितव्ययताओं के कारण उत्पादन की औसत लागत (AC) कमं हो जाती है। लेकिन एक सीमा के बाद बड़े पैमाने के उत्पादन में भी अमितव्ययताएं मिलने लगती है जिनसे औसत लागत बढ़ने लगती है। अत: हम देखते हैं कि बड़े पैमाने से जो मितव्ययताएं प्राप्त होता है वे असीमित नही होती।

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

G.S. Stiger, "The Theory of Price."

J.K. Mehta, "Advanced Economic Theory".

J.P. Gould and C.E. Ferguson, "Micro Economic Theorty", 5th ed. Indian reprint, 1988.

M.L. Jhingan," Advanced Economic Theory," 8th ed. Konark pub., 1989.

William J. Baumol, "Economic Theory and operations Analysis," Prentice Hall Pvt. Ltd. New Delhi.

गूल्ड व फर्गूसन के पैमाने की अमितव्ययताओ पर विचार

यह कह सकना कठिन है कि पैमाने की अमितव्ययताएं कहां से प्रारम्भ होती हैं। जिन व्यवसायों में पैमाने की मितव्ययताएं कम मिलती है उनमें अमितव्ययताएं जल्दी चालू हो जाती हँ, इसलिए इनका दीर्घकाल औसत लागत वक्र उत्पत्ति की थोड़ी मात्राओं पर ही बढ़ने लगता है। चित्र में अमितव्ययताओ की तीन स्थितियों के बारे में बताया गया है। चित्र 12.1(A) 12.1(A) में बताया गया है कि उन उद्योगों में जिनमें पैमाने की मितव्ययताएं एक मिलती है उनमें अमितव्ययताएं जल्दी चालू हो जाती है, इसलिए इनका दीर्घ कालीन औसत लागत (LAC) वक्र उत्पत्ति की थोड़ी मात्राओं पर ही बढ़ने लगता है।

कुछ उद्योगों में प्रबन्ध की कार्य कुशलता तो जल्दी ही घटने लगती है, लेकिन तकनीकी मितव्ययताएं जारी रहती है जो प्रबन्ध की अकार्यकुशलता का प्रभाव मिटा देती है, जिसे उत्पत्ति की काफी मात्राओं तक औसत लागत का घटना जारी रहता है। तत्पश्चात औसत लागत बढ़ती है, जैसा कि चित्र 12.1(B) में दर्शाया गया हैं। ऐसा प्राकृतिक एकाधिकार (Natural Monopoly) की स्थिति में देखा जाता है।

कुछ स्थितियां ऐसी होती है जिनमें पैमाने की सारी मितव्ययताए तो जल्दी ही प्राप्त हो जाती है, लेकिन अमितव्ययताएं काफी मात्रा मे, उत्पत्ति करने तक प्रारंभ नहीं होती। इस अवस्था में औसत लागत वक्र काफी दूरी तक क्षैतिज (Horizontal) बना रहता है और बाद मे बढ़ता है। यह स्थिति चित्र 12.1(C) में दिखायी गयी है।

12.9 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

जब किसी उद्योग में उत्पत्ति के विभिन्न साधनों (पूँजी, श्रम, कच्चामाल) को कड़ी मात्रा में प्रयोंग किया जाता है जिसके फलस्वरुप उत्पादन इकाइयां कड़े आकार की होती है।

आन्तरिक मितव्ययताएं मुख्य रुप से निम्न वर्गो में बंटी जा सकती है - (i) तकनीकी मितव्ययताएं (ii) प्रबन्धकीय मितव्ययताएं (iii) बाजार एंव विज्ञापन संबंधी मितव्ययताएं (iv) जोखिम से संबंधित मितव्ययताएं (v) वित्तीय मितव्ययताएं (vi) अनुसंधान की अमितव्ययताएं (vii) कल्याणकारिता की मितव्ययताएं।

बाह्य मितव्ययताएं दो कारणों से उत्पन्न होती है

(i) उद्योगो का स्थानीयकरण और (ii) केन्द्रित फर्मो द्वारा विशिष्टीकरण को अपनाना।

बोध प्रश्न 2

1. उद्योग या फर्म का विस्तार अधिक होने पर अमितव्ययताए उत्पन्न होने लगती है, ये भी दो प्रकार की होनी हैं।
2. आन्तरिक अमितव्ययताएं एवं बाहय अमितव्ययताएं।

इकाई-13

फर्म की आय की अवधारणा

(Concept of Firm's Income)

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 आय की अवधारणा

13.3.1 कुल आय

13.3.2 औसत आय

13.3.3 सीमांत आय

13.4 विभिन्न बाजार दशाओं में आय की अवधारणाएं

13.13.1 पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कुल, औसत एवं सीमांत आय

13.13.2 एकाधिकार की स्थिति में कुल, औसत एवं सीमांत आय

13.13.3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में कुल, औसत एवं सीमांत आय

13.13.4 अल्पाधिकार की स्थिति में आय की अवधारणाएं

13.5 कुल, औसत व सीमांत आय में सम्बन्ध

13.6 मांग की कीमत लोच व फर्म की आय के मध्य सम्बन्ध

13.7 आर्थिक विश्लेषण में फर्म की आय का महत्त्व

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम फर्म की आय के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकेगें।

- फर्म की आय की विभिन्न प्रकार की अवधारणाओं से अवगत हो सकेंगे।

- फर्म की आय के विभिन्न प्रकारों के मध्य सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

-यह जान सकेंगे कि विभिन्न बाजार दशाओं में फर्म की आय किस प्रकार प्रभावित होती है।

-फर्म की आय व उसके उत्पाद की मांग की लोच के मध्य सम्बन्ध को समझ सकेंगे।

13.2 प्रस्तावना

प्रत्येक आर्थिक अभिकर्त्ता अपने उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अपनी आर्थिक - क्रियाएं सम्पादित करता है। उदाहरणार्थ, एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है कि उसे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो, ठीक इसी भांति एक उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। लाभ की मात्रा आय व लागत पर निर्भर करती है। विभिन्न प्रकार के बाजारों में आय संरचना भिन्न -भिन्न होती है। प्रस्तुत इकाई में हम आय की विभिन्न अवधारणाओं का अध्ययन करेगें।

13.3 आय की अवधारणा

फर्म द्वारा उत्पाद की बिक्री से जो आय प्राप्त होती है, उसे फर्म की आय कहा जाता है। प्रो. डूली के अनुसार, एक फर्म की बिक्री या आमदनी को उसकी आय कहा जाता है। आर्थिक विश्लेषण हेतु फर्म की आय को तीन भागों में विभाजित किया जाता है कुल आय, औसत आय व सीमांत आय।

13.3.1कुल आय: फर्म को अपने उत्पादन की एक निश्चित मात्रा के विक्रय से जो आय प्राप्त होती है, उसे कुल आय कहा जाता है।

$$TR = P \times Q$$

कुल आय = कीमत X वस्तु की मात्रा

13.3.2औसत आय: फर्म के उत्पाद के विक्रय से प्राप्त प्रति इकाई कीमत को औसत कीमत कहा जाता है। प्राय: बाजार में विक्रेता अपने उत्पाद की विभिन्न इकाईयों को समान कीमत पर ही बेचता है, अत: औसत आय कीमत के समान ही होती है। परन्तु जब विक्रेता अपने उत्पाद को अलग अलग कीमतों पर बेचता है तो औसत आय कीमत से भिन्न होती है।

$$AR = \frac{TR}{Q}$$

$$\text{औसत आय} = \frac{\text{कुल आय}}{\text{वस्तु की मात्रा}}$$

13.3.1सीमांत आय: फर्म द्वारा अपने उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई का विक्रय करने से कुल आय में हुआ परिवर्तन सीमांत आय को व्यक्त करता है।

$$MR = \frac{\Delta TR}{\Delta Q}$$

$$\text{सीमांत आय} = \frac{\text{कुल आय में परिवर्तन}}{\text{वस्तु की मात्रा में परिवर्तन}}$$

सीमांत आय को निम्नलिखित रूप से भी व्यक्त किया जा सकता है:

$MR_n = TR_n - TR_{n-1}$

MR_n = n वी इकाई से प्राप्त सीमांत आय

TR_n = n वी इकाई से प्राप्त कुल आय

TR_{n-1} = n-1 वी इकाई से प्राप्त कुल आय

13.4 विभिन्न बाजार दशाओं में आय की अवधारणाएं: विभिन्न प्रकार के बाजारों में कुल, औसत व सीमांत आय की प्रवृत्ति अलग अलग होती है। इकाई के इस भाग में विभिन्न प्रकार के बाजारों में फर्म की आय की भिन्न-भिन्नअवधारणओं की व्याख्या की जाएगी।

13.13.1 पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कुल, औसत एवं सीमांत आय: पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है जिसमें अनेक क्रेता व विक्रेता किसी समरूप वस्तु का एक समान कीमत पर क्रय-विक्रय करते हैं। पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कुल, औसत एवं सीमांत आय को समझने के लिए हम निम्नलिखित तालिका को समझना आवश्यक है

तालिका - 2.1

विक्रय की मात्रा	कुल आय	औसत आय	सीमांत आय
0	0	0	0
1.	10	10	10
2.	20	10	10
3.	30	10	10
13.	40	10	10
5.	50	10	10
6.	60	10	10
7.	70	10	10

कुल आय : पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कीमत स्थिर रहने के कारण कुल आय एक स्थिर गति से बढती है

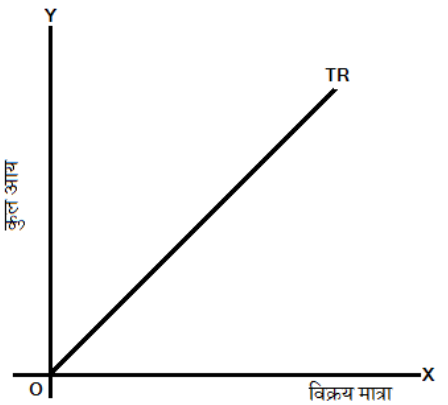

रेखाचित्र - 13.1

औसत आय : पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत का निर्धारण उद्योग द्वारा किया जाता है अत: औसत आय स्थिर रहती है।

सीमांत आय : पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में सीमांत आय व औसत आय एक समान व स्थिर रहती है।

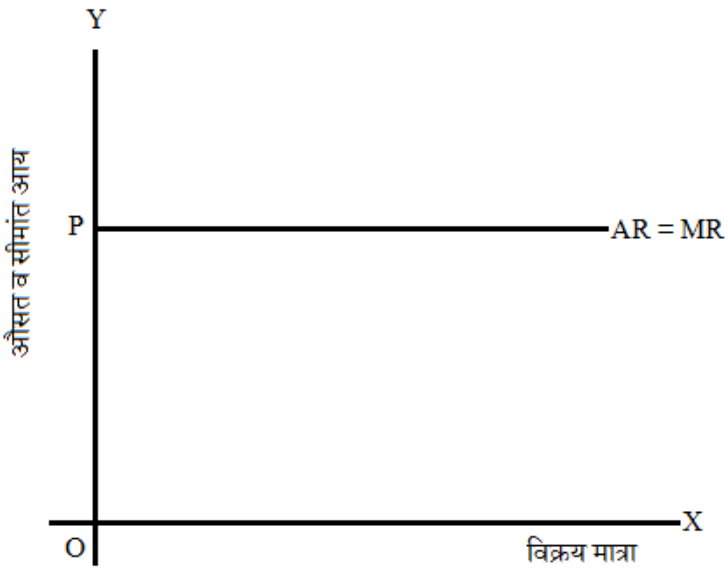

रेखाचित्र - 13.2

13.13.2 एकाधिकार की स्थिति में कुल, औसत एवं सीमांत आय: एकाधिकार बाजार की उस दशा को कहा जाता है जब बाजार में केवल एक ही विक्रेता हो व क्रेता अनेक हों। एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु की कीमत पर एकाधिकारी की पूर्ण नियन्त्रण होता है। इस प्रकार के बाजार में वस्तु का कोई निकटतम स्थानापन्न उपलब्ध नहीं होता। निम्नलिखित तालिका में एकाधिकार की स्थिति में कुल, औसत एवं सीमांत आय को स्पष्ट किया गया है:

तालिका - 2.2

विक्रय की मात्रा	कुल आय (TR)	औसत आय (AR)	सीमांत आय (MR)
0	0	0	0
1.	8	8	8
2.	14	7	6
3.	18	6	4
13.	20	5	2
5.	20	4	0
6.	18	3	-2
7.	14	2	-4

कुल आय : एकाधिकार की स्थिति में कीमत के घटते हुए होने के कारण कुल आय घटती हुई दर पर बढती है। एक सीमा के पश्चात कुल आय घटने लगती है।

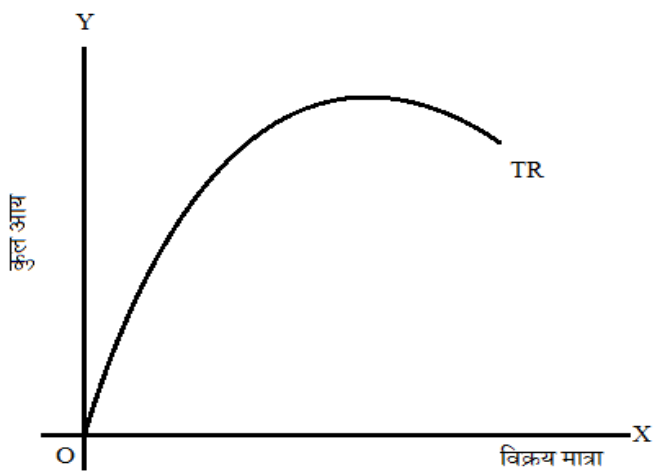

रेखाचित्र - 13.3

औसत आय : एकाधिकारी कीमत व उत्पादन दोनो को एक साथ नियंत्रित नहीं कर सकता। अधिक बिक्री के लिए उसे कीमत करनी पड़ती है, जिसके कारण औसत आय घटती हुई होती है।

सीमांत आय : एकाधिकार में औसत व सीमांत आय एक समान न होकर भिन्न-भिन्न होती है। औसत आय के घटते हुए होने के कारण सीमांत आय भी घटती हुई होती है। इस प्रकार के बाजार में सीमांत आय औसत आय की तुलना में तेजी से घटती है।

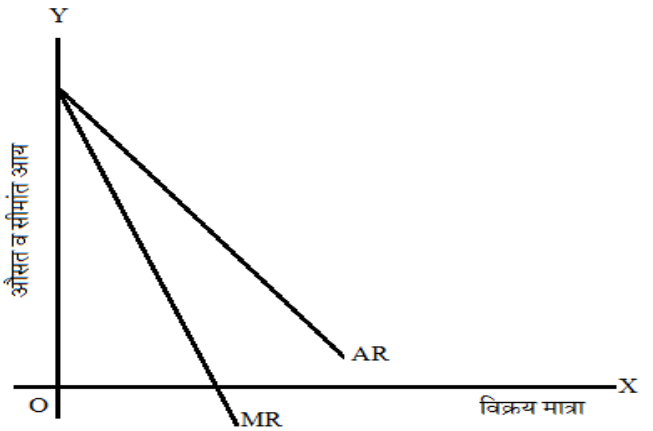

रेखाचित्र - 13.4

13.13.3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में कुल, औसत एवं सीमांत आय:

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में बाजार में अनेक क्रेता व विक्रेता होते है, जो आपस में विभेदीकृत वस्तु का क्रय-विक्रय करते हैं। ऐसी स्थिति में विक्रय की जाने वाली वस्तु के निकटतम स्थानापन्न बाजार में उपलब्ध होते हैं।

तालिका - 2.3

विक्रय की मात्रा	कुल आय	औसत आय	सीमांत आय
0	0	0	0
1.	8	8	8
2.	15	75	7
3.	21	7	6
13.	26	65	5
5.	30	6	4
6.	33	55	3
7.	35	5	2
8.	36	45	1
9.	36	4	0
10.	35	35	-1
11.	33	3	-2

कुल आय : एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में एकाधिकार की भांति कुल आय घटती हुई दर से बढती है।

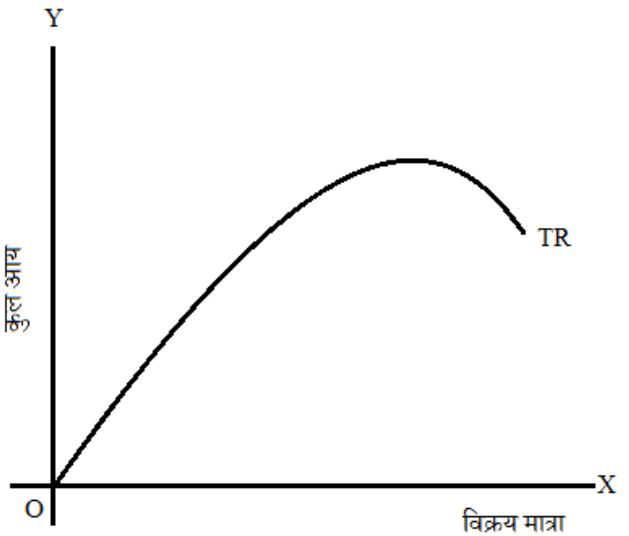

रेखाचित्र - 13.5

औसत आय : एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में औसत आय घटती हुई होती है।

सीमांत आय : इस प्रकार के बाजार में सीमांत आय घटती हुई होती है व यह औसत आय की तुलना में तेजी से घटती है।

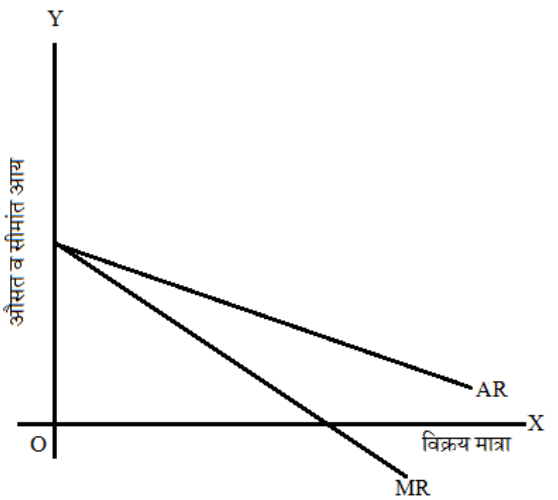

रेखाचित्र - 13.6

13.13.4 अल्पाधिकार की स्थिति में आय की अवधारणएं : बाजार की इस विशेष अवस्था में केवल कुछ ही विक्रेता होते हैं, जिनमें गलाकाट प्रतियोगिता पायी जाती है। अमेरिकन अर्थशास्त्री पॉल एम स्वीजी के अनुसार अल्पाधिकार बाजार में कीमत दृढता के कारण विकुंचित मांग वक्र पाया जाता है। विकुचित मांग वक्रके पीछे यह मान्यता ली जाती है कि फर्म के द्वारा वस्तु की कीमत करने पर दूसरी फर्में भी अनुसरण करते हुए अपनी वस्तु की कीमत कर देती हैं परन्तु फर्म के द्वारा वस्तु की कीमत बढाने पर दूसरी फर्में अपनी वस्तु की कीमत कम नहीं करती हैं। विकुचन से पहले फर्म का मांग वक्र लोचदार होता है, पर विकुचन के बाद मांग वक्रबेलोचदार हो जाता है।

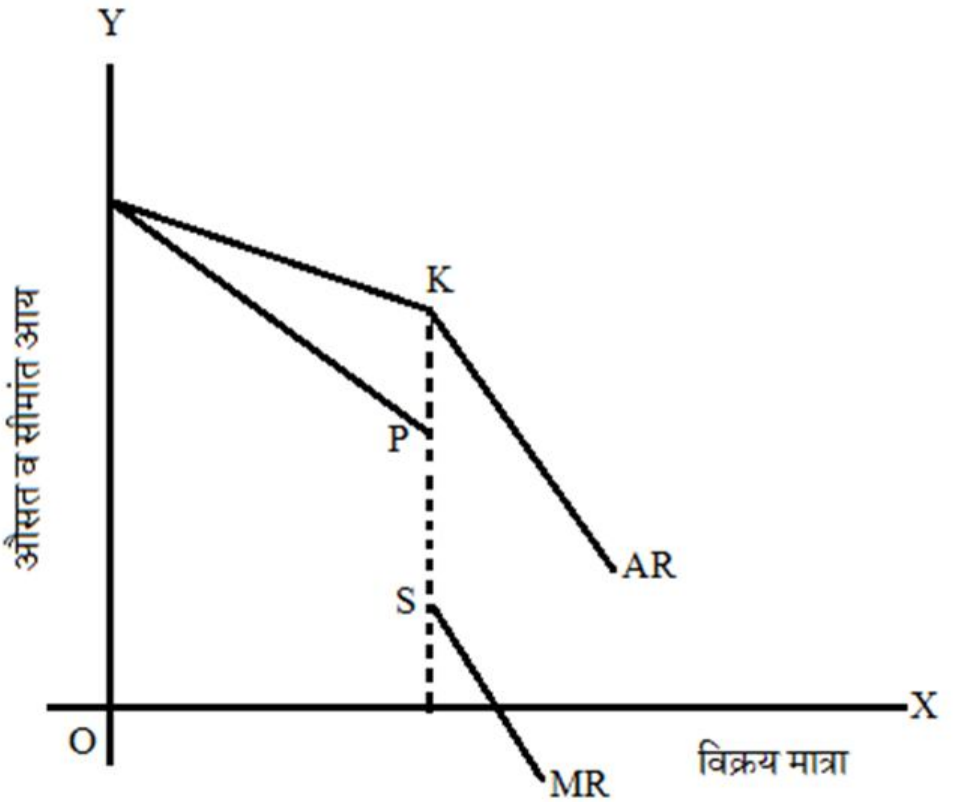

रेखाचित्र - 13.6

13.5 कुल, औसत व सीमांत आय में सम्बन्ध: फर्म के आर्थिक व्यवहार के विश्लेषण हेतु कुल, औसत व सीमांत आय में सम्बन्ध को समझना अति आवश्यक है। कुल, औसत व सीमांत आय के मध्य सम्बन्धों को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. जब औसत आय स्थिर रहती है तो सीमांत आय औसत आय के समान होती है। इस स्थिति में कुल आय स्थिर गति से बढती है। पूर्ण प्रतियोगिता में ऐसी ही स्थिति पायी जाती है।

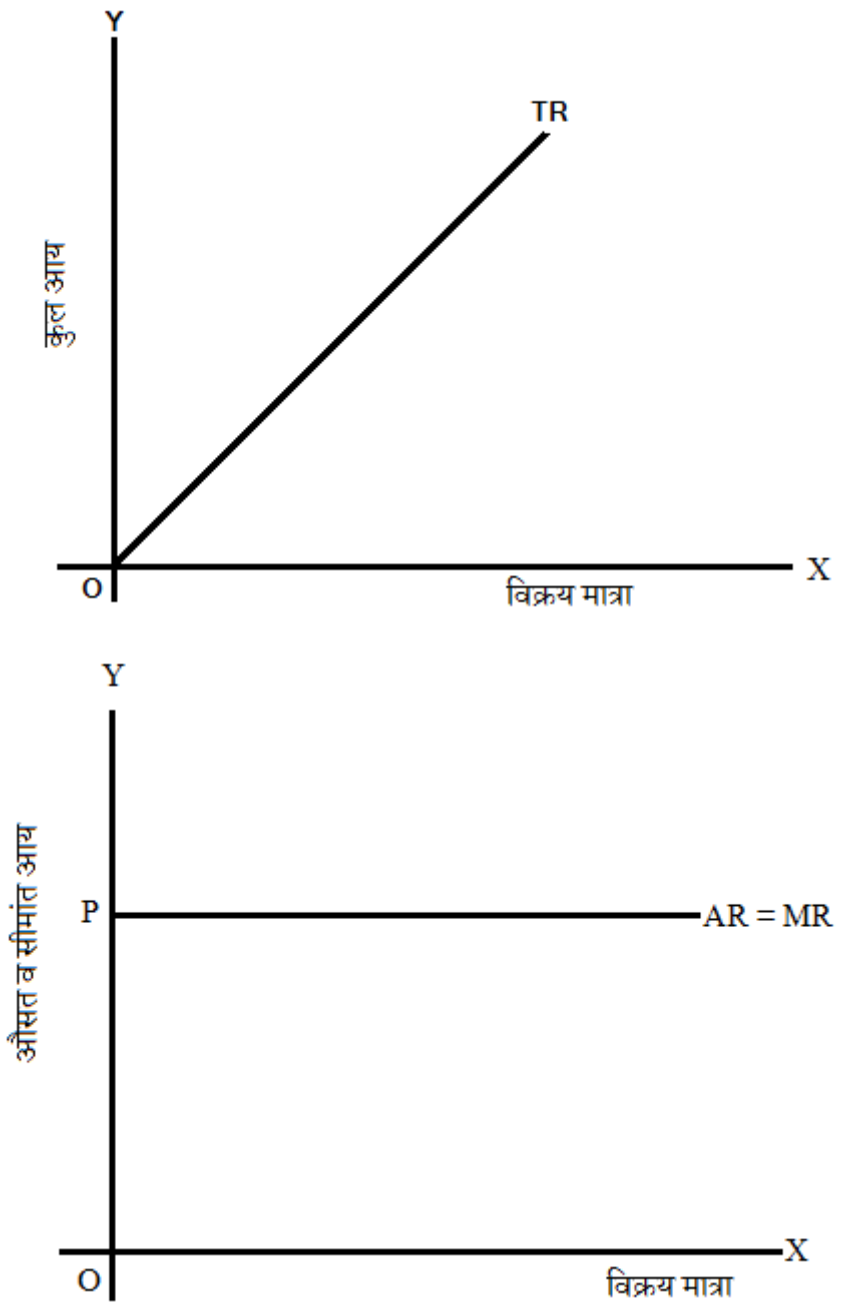

रेखाचित्र - 13.7

2. जब औसत आय घटती है तो सीमांत आय भी घटती हुई होती है। ऐसी स्थिति में सीमांत आय औसत आय से कम होती है एवं कुल आय घटती हुई दर से बढती है।

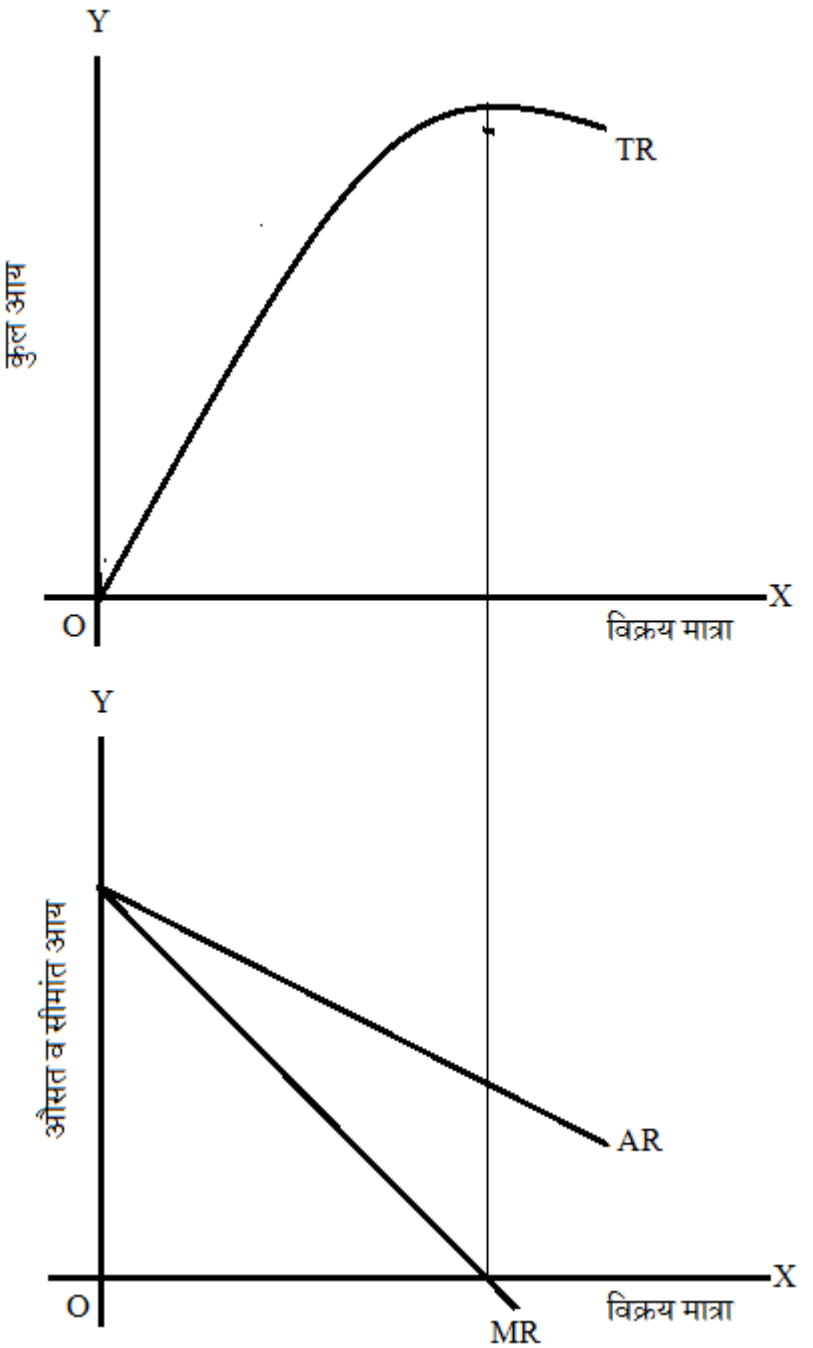

रेखाचित्र - 13.8

3. जब सीमांत आय शून्य होती है तो औसत आय धनात्मक होती है एवं कुल आय अधिकतम होती है। इसे रेखाचित्र 13.8 से भी समझा जा सकता है।
4. यदि सीमांत व औसत आय वक्र एक सीधी रेखा के रूप में हो तो सीमांत आय वक्र औसत आय वक्र से क्षैतिजिय अक्ष पर आधी दूरी से गुजरता है।

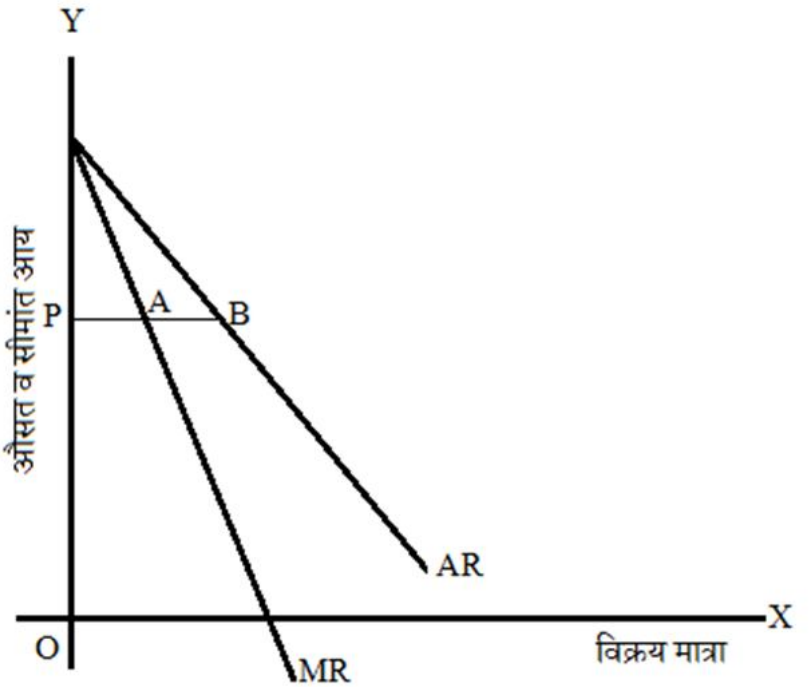

रेखाचित्र - 13.9

5. यदि सीमांत व औसत आय वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर हो तो सीमांत आय वक्र औसत आय वक्र से क्षैतिजिय अक्ष पर आधी से कम दूरी से गुजरता है।

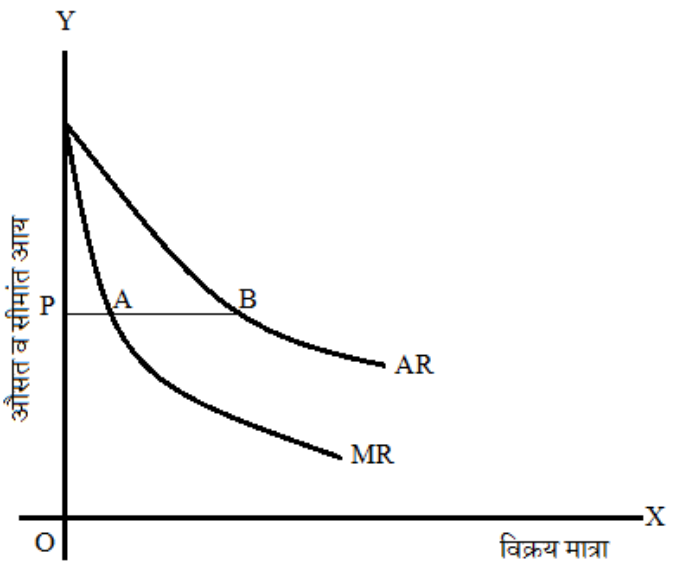

रेखाचित्र - 13.10

6. यदि सीमांत व औसत आय वक्र मूल बिन्दु की ओर नतोदर हो तो सीमांत आय वक्र औसत आय वक्र से क्षैतिजिय अक्ष पर आधी से अधिक दूरी से गुजरता है।

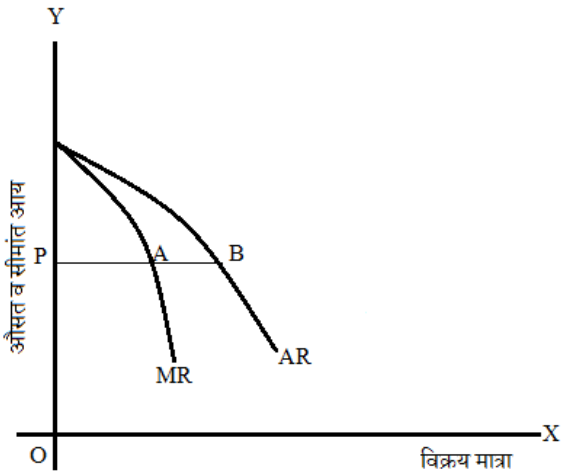

रेखाचित्र - 13.11

13.6 मांग की कीमत लोच व फर्म की आय के मध्य सम्बन्ध

मांग की लोच व फर्म की आय के मध्य सम्बन्ध को निम्न रेखाचित्र की सहायता से समझा जा सकता है :

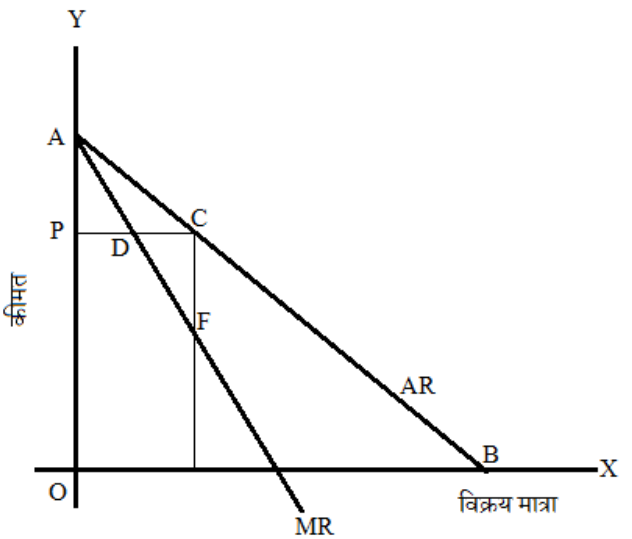

रेखाचित्र - 13.12

$$E_d = \frac{AR}{AR-MR}$$

$$E_d = \frac{\text{मांग वक्र का निचला भाग}}{\text{मांग वक्र का ऊपरी भाग}}$$

$$E_d = \frac{CB}{AC}$$

चुंकि Δ CQB एवं ΔAPC समकोण त्रिभुज हैं, अत: इनकी भुजाओं का अनुपात भी समान ही होगा।

$$\frac{CB}{AC} = \frac{CQ}{AP}$$

इस रेखाचित्र में PD = DC है।

चुंकि ΔDCF एवं ΔAPD सर्वांगसम त्रिभुज हैं, अत:

CF = AP

इसलिए

$$\frac{CQ}{CF} = \frac{CQ}{CQ - FQ}$$

चुंकि CQ = AR एवं FQ = MR है, अत:

$$E_d = \frac{CQ}{CQ-FQ}$$

$$E_d = \frac{AR}{AR-MR}$$

— जब औसत आय व सीमांत आय समान होती है तो मांग की लोच अनन्त लोचदार होती है।

— जब सीमांत आय शून्य होती है तो मांग की लोच इकाई के समान होती है।

— जब सीमांत आय धनात्मक होती है तो मांग की लोच इकाई से अधिक लोचदार होती है।

— जब सीमांत आय ऋणात्मक होती है तो मांग की लोच इकाई से कम लोचदार होती है।

13.7 आर्थिक विश्लेषण में फर्म की आय का महत्त्व

किसी फर्म के आर्थिक विश्लेषण हेतु लागत व आय संरचना की जानकारी अति-आवश्यक होती है। उत्पादन स्तर व वस्तु की कीमत के निर्धारण में फर्म की आय सम्बन्धी अवधारणाओं के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत् स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **फर्म के साम्य का निर्धारण :** लाभ अधिकतम या हानि न्यूनतम करने के उद्देश्य से उत्पादन कर रही एक फर्म उस समय साम्यावास्था में होती है, जब उत्पादान की सीमांत लागत व सीमांत आय समान हों अर्थात्

   MR = MC
2. **लाभ व हानि का निर्धारण :** लाभ व हानि के निर्धारण में औसत आय व औसत लागत की अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। जब औसत आय औसत लागत से अधिक हो तो फर्म को लाभ होता है व जब औसत आय औसत लागत से कम हो तो फर्म को हानि होती है। लाभ व हानि की मात्रा को निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से ज्ञात किया जाता है..

   Profit = TR – TC

   Loss = TC – TR
3. **उत्पादन रोको बिन्दु का निर्धारण :** उत्पादन का वह स्तर जब फर्म की कुल आय व कुल लागत समान हो अर्थात् औसत आय व औसत लागत समान हो, तो फर्म को उत्पादन रोकने का निर्णय लेना होता है। उत्पादान रोको बिन्दु के निर्धारण हेतु फर्म की आय सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाओं की जानकारी आव'यक है।
4. **उत्पादन बन्द करो बिन्दु का निर्धारण :** उत्पादन का वह स्तर जब फर्म की कुल आय व कुल परिवर्तनशील लागत समान हो, दूसरे शब्दों में, जब फर्म की औसत आय अर्थात् वस्तु की कीमत व औसत परिवर्तनशील लागत समान हो तो फर्म को उत्पादन बन्द करना होता है। फर्म की आय सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाओं की जानकारी के बिना उत्पादन के ऐसे स्तर का निर्धारण सम्भव नहीं हो पाता।
5. **कीमत विभेद का आधार :** एकाधिकार बाजार में कीमत विभेद का आधार औसत आय व मांग की लोच ही होती है। औसत आय व मांग की लोच जिस बाजार मे अधिक होती है, उस बाजार मे एकाधिकारी कम कीमत निर्धारित करता है व जिस बाजार में औसत आय व मांग की लोच कम होती है, उस बाजार में एकाधिकारी ऊँची कीमत वसूल करता है।

13.8 सारांश

फर्म के आर्थिक विश्लेषण हेतु आय की अवधारणाओं को समझना आवश्यक होता है। प्रस्तुत इकाई में फर्म की आय से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं पर प्रकाश डाला गया है। पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत का निर्धारण उद्योग द्वारा किया जाता है, जिसके कारण औसत आय स्थिर रहती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में कीमत निर्धारण का कार्य फर्म द्वारा किया जाता है। ऐसे में फर्म द्वारा बिक्री बढाने के लिए कीमत को कम करना होता है, जिसके कारण औसत आय घटती हुई होती है। फर्म द्वारा लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वस्तु की कीमत निर्धारित करते समय मांग की लोच को भी ध्याना में रखा जाना आवश्यक होता है।

13.9 शब्दावली:

- **कुल आय :** फर्म द्वारा वस्तु की निश्चित मात्रा की बिक्री से प्राप्त आय।
- **औसत आय :** वस्तु की बिक्री से प्राप्त प्रति इकाई आय।
- **सीमांत आय :** वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की बिक्री से कुल आय में हुआ परिवर्तन।
- **पूर्ण प्रतियोगिता :** एक ऐसा बाजार जिसमें अनेक क्रेता व विक्रेता समरूप वस्तु का एक समान कीमत पर क्रय -विक्रय करते हैं।
- **एकाधिकार :** एक ऐसा बाजार जिसमें केवल एक विक्रेता अनेक क्रेताओं को एक ऐसी वस्तु बेचता है जिसका निकटतम स्थानापन्न बाजार में उपलब्ध नहीं होता।
- **एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता :** एक ऐसा बाजार जिसमें अनेक क्रेता व विक्रेता वस्तु का क्रय -विक्रय करते हैं। ऐसे बाजार में फर्में अपनी बिक्री बढाने के लिए विक्रय लागतो का सहारा लेती हैं।
- **अल्पाधिकार :** एक ऐसा बाजार जिसमें कुछ विक्रेता अनेक क्रेताओं को निकटतम स्थानापन्न वस्तु बेचते हैं। ऐसे बाजार में फर्मों के मध्य गलाकाट प्रतियोगिता पायी जाती है।
- **मांग की लोच :** किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी मांग मात्रा में होने वाले परिवर्तन की दर।
- **उत्पादन रोको बिन्दु :** उत्पादन का वह स्तर जब वस्तु की कीमत उसकी औसत लागत के समान हो जाए।
- **उत्पादन बन्द करो बिन्दु :** उत्पादन का वह स्तर जब वस्तु की कीमत उसकी औसत परिवर्तनशील लागत के समान हो जाए।
- **कीमत विभेद :** एक समान वस्तु को अलग-अलग क्रेताओं को अलग-अलग कीमतों पर बेचना।

13.10 अभ्यासार्थ प्रश्न:

1. विभिन्न बाजार संरचनाओं के अन्तर्गत औसत व सीमांत आय को रेखाचित्रों की सहायता से समझाइए।
2. औसत आय, सीमांत आय व मांग की लोच के मध्य सम्बन्ध का सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. कुल, औसत व सीमांत आय के मध्य सम्बन्ध का वर्णन कीजिए।
4. आर्थिक विश्लेषण में आय की विभिन्न अवधारणाओं का क्या महत्त्व है ? विवेचना कीजिए।

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ (References):

एच. एल. आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., रामनगर, नई दिल्ली-2004

के. एन. वर्मा : व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त, विशाल पब्लिकेशन कम्पनी, जालंधर- 2011

सी. एस. बरला : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर-2002

B. Koutsoyiannis : Modern Microeconomics , Macmillan Press LTD, London-2006

इकाई – 14

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

Determine the Price and Production Under perfect Competition

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 बाजार की विभिन्न श्रेणियाँ

14.2.1 पूर्ण प्रतियोगिता

14.2.2 एकाधिकार

14.2.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता

14.2.4 अल्पाधिकार

14.3 कीमत निर्धारण की प्रक्रिया

14.3.1 कीमत ग्रहणकर्ता

14.3.2 कीमत निर्धारक

14.4 पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं विशेषताएं

14.4.1 अनेक क्रेता एवं विक्रेता

14.4.2 समरूपी वस्तुएं

14.4.3 मुक्त प्रवेश

14.4.4 साधनों की स्वतंत्र गतिशीलता

14.4.5 बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान

14.4.6 लागत फलन की स्वतंत्रता

14.4.7 स्वतंत्र निर्णय प्रक्रिया

14.4.8 दीर्घकाल में सामान्य लाभ

14.4.9 सरकारी हस्तक्षेप की अनुपस्थिति
14.5 प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण का सामान्य मॉडल
14.6 अल्पकाल में कीमत निर्धारण एवं फर्म का साम्य
14.6.1 बाजार अवधि में कीमत निर्धारण
14.6.2 अल्पकाल में कीमत निर्धारण
14.7 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकालीन कीमत निर्धारण
14.7.1 फर्मो के प्रवेश/बहिर्गमन की स्वतंत्रता एवं दीर्घकालीन कीमत निर्धारण
14.7.2 फर्मो के पैमाने का विस्तार एवं दीर्घकालीन साम्य
14.8 दीर्घकाल में उद्योग की साम्य स्थिति
14.9 पूर्ण प्रतियोगिता की वांछनीयता
14.10 क्या पूर्ण प्रतियोगिता का बाजार वास्तविक है?
14.11 सारांश
14.12 शब्दावली
14.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें
14.14 अभ्यासों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

आप इससे पूर्व उपभोक्ता के व्यवहार तथा उत्पादन के नियम आदि का अध्ययन कर चुके है। प्रस्तुत इकाई में आप एक प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण की प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे। इस इकाई का अध्ययन करके आप :

1. यह जान सकेंगे कि किसी वस्तु की भिन्न-भिन्न बाजारों में कीमत किस प्रकार निर्धारित की जाती है :
2. यह समझ सकेंगे कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत निर्धारण किस प्रकार होता है :
3. यह ज्ञात कर सकेंगे कि उद्योग या बाजार तथा फर्म की स्थिति में क्या अन्तर है तथा प्रतियोगी बाजार में फर्म का कीमत निर्धारण में कितना योगदान संभव है।
4. यह जान सकेंगे कि अल्पकाल में प्रचलित कीमत पर एक फर्म को अधिलाभ या हानि होती है तो इसका बाजार में वस्तु की पूर्ति तथा कीमत पर अन्ततः (दीर्घकाल) में क्या प्रभाव होता है:
5. यह देखेंगे कि दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का साम्य क्योंकर निर्धारित होता है; तथा
6. यह जानेंगे कि पूर्ण प्रतियोगिता का आर्थिक कल्याण से क्या सम्बन्ध है।

14.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व प्रस्तुत इकाइयों में आपने यह पढ़ा था कि एक उपभोक्ता जब वस्तुओं की इकाइयां खरीदता है तो यद्यपि उसके उपयोगिता स्तर में परिवर्तन होते है तथापि व्यक्तिगत स्तर पर उसके द्वारा क्रय की गई मात्राओं का वस्तु की कीमत पर कोई प्रभाव नही होता। अन्य शब्दों में, वस्तु की कीमत बाहय-निर्धारित है। इसी प्रकार एक उत्पादक के लिए साधन की कीमत बाहय-निर्धारित रहती है, हांलांकि साधन की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयों का प्रयोग करने पर उत्पादकता का स्तर बदलता जाता है। वस्तुत : एक उत्पादक या एक उपभोक्ता की साधन या वस्तु की कीमत को प्रभावित करने की अक्षमता इसी बात की ओर संकेत करती है कि वस्तु या साधन का बाजार पूर्ण प्रतियोगी बाजार है। जैसा कि आप आगे देखेंगे पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत निर्धारण एक व्यक्ति (क्रेता या विक्रेता) द्वारा न किया जाकर वस्तु की समूची मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा किया जाता है। आपको प्रस्तुत इकाई में बतलाया जाएगा कि मांग या पूर्ति किस प्रकार वस्तु की कीमत को निर्धारित करती है तथा उस कीमत के आधार पर एक विक्रेता (या फर्म) अधिकतम लाभ (या न्यूनतम हानि) प्राप्त करने के लिए वस्तु का कितनी मात्रा में उत्पादन करती है।

प्रस्तुत इकाई मे आप पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार की विशेषताओं का भी अध्ययन करेंगे। जैसा कि अप देखेंगे, पूर्ण प्रतियोगी बाजार में भले ही एक फर्म वस्तु की कीमत निर्धारण करने में सक्षम न हो, उसे यह तो स्वतंत्रता रहती ही है कि वह अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ा ले या कम कर दे। इसके अतिरिक्त नई फर्मो के प्रवेश, अथवा विद्यमान फर्मो में से कुछ के बहिर्गमन, पर कोई प्रतिबन्ध नही होता। इस सबके फलस्वरूप पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है।

जैसा कि आप समझ चुके होंगे, पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उद्योग तथा फर्म की संरचना में अन्तर होता है। यही कारण है कि दीर्घकाल में फर्म तथा उद्योग की साम्य स्थितियों को इस इकाई में अलग-अलग रूप में प्रस्तुत किया गया है।

14.2 बाजार की विभिन्न स्थितियां

वैसे तो कीमत निर्धारण की प्रक्रिया में वस्तु की मांग (उपभोग पक्ष) तथा पूर्ति (उत्पादन पक्ष) दोनों का योगदान होता है, फिर भी किस पक्ष की भूमिका अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है यह बाजार की प्रकृति पर निर्भर करता है। सुविधा के लिए आप यह मान लें कि उपभोकताओं द्वारा निरूपित वस्तु का मांग फलन आपको ज्ञात हैं। ऐसी स्थिति में पूर्ति पक्ष की दृष्टि से बाजार को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकात है: पूर्ण प्रतियोगी बाजार, एकाधिकार, एकाधिकारिक प्रतियोगिता एवं अल्पाधिकार।

14.2.1 पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition)

बाजार की उस स्थिति को पूर्ण प्रतियोगिता कहा जाता है जिसमें क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है। ऐसी दशा में कीमत निर्धारण वस्तु की कुल मांग व कुल पूर्ति की शक्तियों द्वारा

किया जाता है। जैसा कि आप इस इकाई के अगले खंड में देखेंगे, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म वस्तु की कीमत में तनिक भी परिवर्तन नही कर सकती। यही नही, ऐसे बाजार में नई फर्मो के प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नही होता और इस का कारण दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ (P=AC) ही अर्जित कर पाती है। प्रतियोगी बाजर में उद्योग या बाजार की तुलना में एक फर्म (अथवा उपभोक्ता) का आकार अत्यन्त सूक्ष्म होता है, और इसीलिए उसकी क्षमता या सामर्थ्य भी नगण्य ही रहती है।

14.2.2 एकाधिकार (Monopoly)

एकाधिकार बाजार की उस स्थिति को कहते है जिसमें वस्तु की सगूची पूर्ति एक ही विक्रेता के नियंत्रण में रहती है। ऐसी स्थिति में वह विक्रेता वस्तुत की कीमत का स्वयं ही निर्धारण करता है। इस विक्रेता या फर्म को एकाधिकारी की संज्ञा दी जाती है। न केवल एकाधिकारी वस्तु की कीमत निर्धारण करने में सक्षम है, अपितु वह इतना सशक्त है कि उसे पर्याप्त अधिलाभ होने पर भी नए विक्रेता बाजार में प्रवेश नही कर पाते। एकाधिकार जिस वस्तु का उत्पादन करता है उसका प्राय : प्रतिस्थापन सम्भव नही होता। कभी-कभी एकाधिकारी अलग-अलग कीमत भी वसूल करता है। इस नीति को कीमत विभेद की नीति कहा जाता है।

14.2.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता

प्रो. चैम्बरलिन के अनुसार किसी बाजार में अलग-अलग फर्में मिलती-जुलती वस्तुओं का उत्पादन करती है। ये वस्तुएं एक ही जरूरत की पूर्ति कर सकती है तथापि बनावट, रंग, पैकिंग, डिजाइन आदि में भिन्न है। फर्मो की संख्या पूर्ण प्रतियोगिता के अनुरूप न होकर काफी कम होती है परन्तु प्रत्येक फर्म की वस्तु में विद्यमान विशेष गुणों के कारण उस फर्म का उपभोक्ताओं के एक वर्ग पर प्रभुत्व कायम हो जाता है। इसके बावजूद यदि फर्म अपनी वस्तु की मनमानी कीमत वसूल करना चाहे तो ये उपभोक्ता एक सीमा के बाद उसे ऐसा नही करने देंगे क्योंकि अन्य वस्तुएं इस फर्म की वस्तु की निकट स्थानापन्न वस्तुएं है। अस्तु, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक छोटी सीमा में फर्म वस्तु की कीमत निर्धरण करने में सक्षम है।

श्रीमती जॉन राबिन्सन ऐसे बाजार को अपूर्ण प्रतियोगिता वाला बाजार कहती है। उनके मन में सभी विक्रेता समरूपी वस्तुएं बनाते है परन्तु उनकी स्थिति या उनके द्वारा प्रदत्त सुविधाओं में अन्तर होने के कारण बाजार में अपूर्णता आ जाती है।

आप जैसा कि समझ सकते है, जहां पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के अन्तर्गत समूचे बाजार में वस्तु की एक ही कीमत होती है, एकाधिकारिक या अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म को आंशिक एकाधिकार प्राप्त होने के कारण प्राय: कीमतों में अन्तर हो जाता है।

14.2.4 अल्पाधिकार (Oligopoly):

अल्पाधिकार बाजार की उस दशा को कहा जाता है जिसमें किसी वस्तु के विक्रेताओं की संख्या बहुत कम (दो से अधिक परन्तु दस-बारह से कम) रहती है। यह संख्या कम होने कें कारण इनमें परस्पर

निर्भरता स्थापित हों जाती है। जैसे ही एक फर्म अपने लाभ को बढ़ाने हेतु कीमत में कमी करती है, अन्य उत्पादक भी तत्काल ऐसे कदम उठाएगें कि प्रथम फर्म के लाभ में वृद्धि न होने पाए। परन्तु यदि प्रथम फर्म कीमत में वृद्धि करती है तो अन्य प्रतियोगी फर्मे अपनी कीमत यथावत् रखेंगी।

अल्पाधिकार वाले बाजार में प्राय : प्रत्येक फर्म स्वयं के लाभ को बढ़ाने या प्रतिद्वन्दी फर्मो के आक्रमण उत्पन्न अपनी हानि को न्यूनतम करने में व्यस्त रहती है। इसके विपरीत यह ऐसे भी प्रयत्न कर सकती है जिससे प्रतिद्वन्दी फर्मो को अधिकतम क्षति पहुंचाई जा सके। यह सब इस कारण होता हैं कि बाजार में विक्रेताओं की संख्या बहुत कम होने के कारण प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वियों की प्रत्येक चाल पर नजर रख सकता है। 14.3 कीमत निर्धारण की प्रक्रिया

सामान्य बोल-चाल की भाषा में और कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार भी, बाजार में कीमत का निर्धारण मांग तथा पूर्ति के आधार पर होता हैं। परन्तु यह दृष्टिकोण केवल पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत ही वैध है क्योंकि एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मांग तथा पूर्ति का महत्व समान नही होता। इन बाजारों में एक फर्म काफी सीमा तक अपनी लागत के अनुसार कीमत का निर्धारण करने का प्रयास करती है।

जैसा कि आप आगे देखेंगे, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है। इसके विपरीत एकाधिकार की दशा में अनेक क्रेताओं के मध्य बाजार में वस्तु की पूर्ति एक ही विक्रेता या फर्म द्वारा की जाती है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार में कुछ विक्रेता अपनी-अपनी क्षमताओं के स्वरूप उपभोक्ताओं की मांग को पूरा करने का प्रयत्न करते है । अस्तु, विभिन्न बाजारों में विक्रेता की स्थिति कीमत निर्धारण प्रक्रिया में क्या है, यह एक महत्वपूर्ण विचार बिन्दु हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है।

14.3.1कीमत ग्रहणकर्ता (Price Takers)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में बहुत से क्रेता तथा बहुत से विक्रेता होते है। स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति मे एक विक्रेता या फर्म की क्षमात इतनी नही हो पाती कि वह वस्तु की कीमत का निर्धारण स्वयं की इच्छा या सुविधा के. अनुसार कर दें। इसी प्रकार एक क्रेता भी बाजार में इतना सक्षम नही होता कि वह कीमत का अपनी इच्छानुसार निर्धारण कर दें। इस स्थिति में कीमत का निर्धारण सभी क्रेताओं की संयुक्त मांग तथा सभी विक्रेताओं की संयुक्त पूर्ति के आधार पर होता है। अन्य शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में न तो एक आर्थिक इकाई (क्रेता या विक्रेता) और ना ही अकेला मांग पक्ष या पूर्ति पक्ष इतना सक्षम है कि वह बाजार कीमत को निर्धारित कर सकें।

चूंकि ऐसी स्थिति में सकल मांग व सकल पूर्ति के द्वारा ही कीमत का निर्धारण संभव है, एक प्रतियोगी फर्म की कीमत ग्रहणकर्ता (Price taker) की संज्ञा दी जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक फर्म अपनी वस्तु को उसी कीमत पर बेचने के लिए बाध्य है जो बाजार में मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित हो चुकी है। यदि बाजार में विद्यमान कोई भी फर्म इससे अधिक कीमत लेना चाहे तो उसकी विक्री शून्य हो जाएगी क्योंकि वही वस्तु अन्य विक्रेता बाजर में निर्धारित कीमत पर विक्रय कर रहे है।

इसी प्रकार प्रत्येक क्रेता भी वस्तु के लिए वही कीमत देने को बाध्य है जो बाजर में मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित हो चुकी है।

14.3.2 कीमत निर्धारक (Price makers)

पूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में एक फर्म पूर्ण अथवा आंशिक रूप से कीमत का स्वयं निर्धारण करने में इसलिए सक्षम है कि उस फर्म का बाजार की पूर्ति पर भी पूर्ण अथवा आंशिक रूप से नियंत्रण है। एकाधिकार के अन्तर्गत तो वस्तु को समूची पूर्ति एक ही विक्रेता अथवा फर्म के पास निहित होती है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता वालें बाजार में क्रेताओं की तुलना में विक्रेताओं की संख्या नगण्य रहती है। कुछ परिस्थितियों में विक्रेता की भौगोलिक स्थिति उसे यह अधिकार प्रदान कर देती है कि वह अन्य विक्रेताओं (जो दूर-दूर स्थित है) द्वारा चाही गई कीमत से अधिक कीमत क्रेताओं से वसूल कर लें। अन्य परिस्थितियों जो एक फर्म या विक्रेता की कीमत निर्धारण का सम्पूर्ण अथवा आंशिक अधिकार प्रदान कर देती है इस प्रकार है : वस्तुओं की बनावट अथवा पैकिंग में अन्तर (वस्तु विभेद), क्रेताओं की वस्तु या कीमत के बारे में अनभिज्ञता तथा विक्रेता व क्रेताओं के पारस्परिक संबंध।

इस प्रकार एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक विक्रेता अथव फर्म बाजार की मांग व पूर्ति की शक्तियों पर आश्रित रहने की अपेक्षा कीमत का निर्धारण स्वयं करती है। इसलिए ऐसे बाजारों में फर्म की कीमत निर्धारक (Price maker) की संज्ञा दी जाती है।

14.4 पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं विशेषताएं

पूर्ण प्रतियोगिता किसी भी बाजर की उस स्थिति को कहा जाता है जिसमें विभिन्न प्रतियोगी विक्रेताओं या फर्मो के बीच प्रतिद्वन्दिता का नितांत अभाव हो यद्यपि साधारण तौर पर प्रतियोगिता तथा प्रतिद्वन्दिता को पर्यायवाची माना जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में ये दोनों धारणाएं इसलिए भिन्न हो जाती है कि एक प्रतियोगी बाजार में बाजार की तुलना में फर्म का आकार अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है। बाजार में विक्रेताओं की संख्या जितनी अधिक होगी, फर्म की सापेक्ष स्थिति उतनी ही छोटी अथवा आणविक होती जाएगी। यही कारण है कि पूर्ण प्रतियेग़िता को आणविक प्रतियोगिता (atomistic competition) भी कहा जाता है। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ भली भांति समझने हेतु यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि आप एक प्रतियोगी बाजार की विशेषताओं अथवा उन मान्यताओं को समझ ले जिन पर यह बाजार निर्भर करता है।

14.4.1 अनेक क्रेता एवं विक्रेता (Large Number of buyers and sellers)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, प्रतियोगी बाजार में क्रेताओं व विक्रेताओं की संख्या काफी अधिक होती है। ऐसी स्थिति में बाजार में विद्यमान सभी क्रेताओं (उपभोक्ताओ) की सकल मांग तथा सभी विक्रेताओं (उत्पादकों) की सकल पूर्ति के आधार पर ही उस वस्तु की बाजार कीमत का निर्धारण किया

जाता है। अन्य शब्दों में, एक क्रेता अथवा एक विक्रेता की बाजार-कीमत को प्रभावित करने की क्षमता लगभग शून्य होती है।

14.4.2 समरूपी वस्तुए (Homogeneity of products)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में विद्यमान सभी विक्रेता एक जैसी वस्तुएं बेचते है। अन्य शब्दों में, सभी विक्रेताओं की वस्तुओं में पूर्ण स्थानापन्नता होती है। यहां समस्थता को एक विस्तुत अर्थ में लिया जाता है। इसके अनुसार (अ) सभी विक्रेताओं से क्रेताओं की भौगोलिक दूरी समान होनी चाहिये (ब) सभी विक्रताओं की दुकानें एक जैसी होनी चा हिए (स) सभी विक्रताओं द्वारा वस्तुओं का प्रस्तुतीकरण समरूपी होनी चाहिए (द) क्रेताओं के साथ सभी विक्रेताओं का व्यवहार एक जैसा होना चाहिए तथा (य) क्रेताओं को विक्रेताओं की ओर से प्रदत्त सुविधाएं, जैसे उधार की सुविधा, पार्किग, होम डिलीवरी, टेलीफोन आदि भी समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिये।

इन सभी विशेषताओं के कारण क्रेता की रूचि किसी विशिष्ट विक्रेता द्वारा प्रस्तुत वस्तु की क्रय करने में नही होगी और फलस्वरूप सभी विक्रेता वही कीमत लेने को बाध्य होंगे जिसका निर्धारण बाजार की मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा हुआ है।

यदि बाजार में काफी संख्या में विक्रेता हो तो हम एक विक्रेता की शक्ति (Monopoly power) को इस प्रकार ज्ञात कर सकते है: $a = \frac{si}{\sum_{i=1}^{n} si} \quad (i = 1, 2, 3, \ldots\ldots, n)$

उपरोक्त सूत्र में को एक विक्रेता की बाजार कीमत का निर्धारण करने की क्षमता तथा si को किसी कीमत पर i^{th} विक्रेता द्वारा की गई पूर्ति का प्रतीक माना गया है। जैसे-जैसे विक्रेताओं की संख्या (n) बढ़ती जाती है a का मान घटता जाता है।, $n \to \infty$ यदि हो जाए तो का मान शून्य की ओर प्रवृत्त होगा।

इसी प्रकार स्व क्रेता की शक्ति को भी निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है....

B को यहां एक उपभोक्ता द्वारा निर्दिष्ट कीमत पर मांगी गई मात्रा(di) को कुल बाजार मांग के अनुपात के रूप में दर्शाया गया है। यदि क्रेताओं की संख्या k अनन्त को ओर प्रवृत्त हो तो एक क्रेता कता की शक्ति शून्य की ओर प्रवृत्त होगी।

14.4.3 मुक्त प्रवेश (Free Entry)

मुक्त प्रवेश का अभिप्राय यह है कि प्रतियोगी बाजार में नए विक्रेताओं के प्रवेश अथवा विद्यमान विक्रेताओं में से किसी भी इकाई के बहिर्गमन पर कोई पाबन्दी नहीं होनी चाहिये।

यदि अल्पकाल में बाजार कीमत उत्पादन लागत से अधिक है तो इस लाभ से आकृष्ट होकर नई फर्मे बाजार में प्रवेश करेंगी। इसके विपरीत यदि उत्पादन लागत ऊंची होने के कारण मौजूदा फर्मो की प्रचलित

कीमत पर हानि हो रही है तो उनमें से कुछ बाजार से बाहर चली जाएंगी। इसी प्रकार मुक्त प्रवेश का यह भी अर्थ है कि विद्यमान फर्मो द्वारा पैमाने का विस्तार अथवा संकुचन निर्बाध रूप से किया जा सकता है।

14.4.4 साधनों की स्वतंत्र गतिशीलता (Perfect mobility of factors of production)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत यह भी मान्यता ली जाती है कि उत्पादन के साधन पूर्ण रूप से गतिशील है। किसी साधन का पुरस्कार एक फर्म (या उद्योग) की अपेक्षा दूसरी फर्म (या उद्योग) में अधिक हो तो उस साधन के स्वामी को यह स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह अपने साधन को वैकल्पिक प्रयोग में अन्तरित कर सके। साधनों को स्वतंत्र अथवा पूर्ण गतिशीलता के फलस्वरूप प्रत्येक साधन की कीमत सभी वैकल्पिक प्रयोगों में समान होगी। चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म की उत्पादन तकनीक एक जैसी होती है, इस विशेषता के कारण प्रत्येक फर्म का लागत फलन (एवं तदनुसार औसत व सीमान्त लागतें) भी एक जैसा ही होगा।

14.4.5 बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान (Perfect Knowledge of the market conditions)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक क्रेता व विक्रेता को बाजार कीमत फर्मो की स्थिति, मांग व पूर्ति में हो रहे परिवर्तनों आदि की पूरी जानकारी रहती है। इसके परिणाम स्वरूप कोई भी व्यक्ति (क्रेता अथवा विक्रेता) किसी अन्य व्यक्ति का शोषण नही कर पाता। अन्य शब्दों में, बाजार की परिस्थितियों से अनभिज्ञता से उत्पन किसी भी प्रकार के शोषण की संभावना प्रतियोगी बाजार में नही होती।

14.4.6 लागत फलन की स्वतंत्रता (Independent cost function)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, एक फर्म के उत्पादन का बाजार की कुल पूर्ति में अनुपात अत्यन्त गौण होता है। यदि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कोई फर्म उत्पादन में वृद्धि करना चाहे तो इसका कोई प्रभाव साधनों की सकल मांग पर नही होगा और फलतः साधनों की कीमतों तथा फर्म के लागत फलतः पर भी कोई प्रभाव नही होगा। संक्षेप में, फर्म के आणविक आकार के कारण इसके उत्पादन स्तर या पैमान का परिवर्तन लागत फलन को किसी भी रूप में प्रभावित नही करता।

14.4.7 स्वतंत्र निर्णय प्रक्रिया (Independent Decision Making)

पूर्ण प्रतियोगिता के अर्न्तरत व्यष्टिगत स्तर पर प्रत्येक क्रेता अथवा प्रत्येक फर्म अपने अभीष्ट उद्देश्य (अधिकतम उपयोगिता अथवा अधिकतम लाभ) की प्राप्ति हेतु स्वयं प्रयत्नशील रहती हैं तथा अन्य क्रेताओं या विक्रेताओं के निर्णय उसे प्रभावित नही करते। प्रत्येक फर्म अपनी लागत को दृष्टिगत रखते हुए बाजार में निर्धारित कीमत पर उतना उत्पादन करती है जहां उसे अधिकतम लाभ हो। इसी प्रकार प्रत्येक उपभोक्ता दी हुई कीमत पर अपने उपयोगिता फलन के स्वरूप उतनी मात्रा खरीदेगी जहाँ उसे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो। इस प्रकार बिना प्रलोभन, बाहरी दबाव या बिना किसी बाहरी प्रभाव के प्रत्येक उत्पादक अथवा प्रत्येक उपभोक्ता अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वस्तु की मात्रा (उत्पादन अथवा उपभोग थे) का निर्धारण करता है।

14.4.8 दीर्घकाल मे सामान्य लाभ (Normal Profit in the Long Run)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में किसी फर्म को अधिक लाभ हो सकता है। ऐसी स्थिति तब होती है साम्य कीमत का स्तर वस्तु की उत्पादन लागत से ऊंचा हो। परन्तु दीर्घकाल तक यह स्थिति बनी रहे, ऐसा सम्भव नही है क्योंकि प्रवेश की स्वतंत्राता के कारण इस लाभ से आकृष्ट होकर नई फर्मे बाजार में प्रवेश करेंगी जिसके फलस्वरूप वस्तु की पूर्ति में वृद्धि होगी तथा साम्य कीमत में कमी हो जायेगी। जब तक कीमत का स्तर लागत से अधिक होगा, नए उत्पादकों का प्रवेश एवं कीमत में हास की प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी। यह प्रवृत्ति उस समय रूक जाएगी जब कीमत का स्तर लागत के समान हो जाता है (P=AC) इससे विपरीत स्थिति में साम्य कीमत पर विद्यमान फर्मो में से प्रत्येक को हानि हो सकती है। ऐसी दशा में उनमें से कुछ बाजार से बाहर जाना प्रारम्भ कर देगी। इसके परिणाम स्वरूप बाजार में वस्तु की पूर्ति कम होगी व कीमत में वृहि होगी। अन्ततः कीमत का स्तर लागत के समान होने, यानि सामान्य लाभ प्राप्त होने की स्थिति प्राप्त होने, पर फर्मों के बहिर्गमन की प्रक्रिया रूक जाएगी।

14.4.9 सरकारी हस्तक्षेप की अनुपस्थिति (Absence of Government Interference)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है जिसमें सरकार की ओर से फर्मो के उत्पादन, साधनों की कीमतों या वस्तु की कीमत आदि के विषय में कोई भी नीति नही बनाई जाती। यही नहीं, साधनों या वस्तुओं का आवंटन पूर्णरूप से बाजार में विद्यमान क्रेताओं की इच्छा के अनुरूप होता है। परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि सरकार द्वारा करारोपण अथवा साधनों पर अनुदान की कोई नीति लागू नही की जाती।

14.5. प्रतियोगी बाजार मे कीमत निर्धारण का सामान्य मॉडल

ऊपर यह बतलाया गया था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अर्शात वस्तु की कीमत या साम्य कीमत का निर्धारण बाजार में विद्यमान कुल मांग व कुल पूर्ति कें आधार पर होता है तथा प्रत्येक फर्म एवं प्रत्येक उपभोक्ता इसी कीमत के अनुरूप अपनी-अपनी मात्राओं को निर्धारित करते है।

यह भी ऊपर बतलाया गया था कि प्रतियोगी बाजार में सभी फर्मो के आकार एवं उत्पादन लागतों में समस्थता पाई जाती है।

आप यह जानते है कि एक फर्म (i^{th}) के लिए उत्पादन करने हेतु उपयुक्त दशा वह होती है जब उसकी लागत वर्द्धमान हो। जब कल्पना कीजिए कि फर्म का लागत फलन इस प्रकार हैं

$Ci=0.1qi^2+0.2qi+20$ (कुल लागत फलन) (14.1)

इसका प्रथम अवक्रलन प्राप्त करने पर फर्म का सीमांत लागत फलन प्राप्त होगा। अस्तु,

$$\frac{dci}{dqi} = 0.2qi + 2 \qquad (13.2)$$

आप यह जानते है कि प्रतियोगी फर्म को अधिकतम लाभ उत्पादन के उस स्तर पर प्राप्त होता है जहां सीमान्त लागत तथा कीमत में समानता हो इस प्रकार समीकरण (13.2) को निम रूप में भी लिखा जा सकता हैं

$$\frac{dci}{dqi} = -.2qi + 2 = p$$

अथवा

$$qi = 5p - 10 - - - - - - - - - - - (13.3)$$

वस्तुत: समीकरण 13.3 एक फर्म खई पूर्ति फलन व्यक्त करता है जिसमें त् वस्तु की कीमत , तथा पा उसकी पूर्ति की मात्रा, के प्रतीक है। स्पष्ट है, जैसे-जैसे त् में वृद्धि होगी वैसे-वैसे पा भी बढ़ती जायेगी। परन्तु कीमत 2 रूपये या इससें कम है तो पूर्ति शच होगी।

यदि बाजार में 100 फर्मे हो तो समीकरण) 33 के आधार पर बाजार का प्रुतइा फलन (5) निम प्रकार लिखा जा सकता है

S=100=100(5p-10)----------(14.4)

अथवा S=500P-1000

मान लीजिए, बाजर में मांग फलन इस प्रकार है.

D=2000-500 P----------(14.5)

आप ऊपर यह पड़ चुके है कि प्रतियोगी बाजार में कीमत का निर्धारण एक फर्म अथवा एक क्रेता द्वारा नही किया जाता। अपितु, बाजार में कुल मांग तथा कुल पूर्ति में जहां समानता है वही साम्य कीमत स्तर निर्धारित होता है। यदि समीकरण (14.4) व समीकारण (14.5) को समान मान लें तो साम्य कीमत निम्न प्रकार से निर्धारित की जा सकती है :

S=D=500P-1000=2000-500P .....(14.6)

अथवा

1000p=3000

P=3

इसी प्रकार समीकरण (14.4) या (14.5) में P का मान रख देने पर हमें बाजार की उस स्थिति का पता चल जाता है जहां निर्दिष्ट कीमतपर मांग व पूर्तिसमान होती है। यह मात्रा 500 इकाई होगी।

हम उपरोक्त उदाहरण में यदि कीमत का स्तर 3 से भिन्न, माने तो या तो पूर्ति, मांग से अधित होगी या इससे कम हो जाएगी।

यदि P=2 हो, तो D=2000-1000

एवं S=1000-1000=0

(D>S),(मांग का अधिक्य)

इसी प्रकार

यदि P=4 हो तो

D=2000-2000=0

S=2000-1000=1000

इस प्रकार उपरोक्त मॉडल मे मांग व पूर्ति के फलनों के अनुरूप केवल साम्य कीमत पर ही मांग व पूर्ति में समानता होती है। इसी बात की चित्र 14.1 में दर्शाया गया है।

14.6 अल्पकाल में कीमत निर्धारण एवं फर्म का साम्य (Price Determination in the Short Run and Equilibrium of the Firm)

ऊपर प्रस्तुत विवरण में आपको प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण के मॉडल के विषय में बतलाया गया था। यहां आपको यह बतलाया जाएगा कि बाजार में मांग तथा पूर्ति फलनों के सामन्तस्य होने पर प्राप्त साम्य कीमत पर एक फर्म वस्तु की कितनी मात्रा बेचना चाहेगी। हम पहले फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति के बारे में बतलाएगे और तत्पश्चात् दीर्घकालीन साम्य की चर्चा करेंगे।

वैसे तो बाजार में किसी भी फर्म के क्रियाशील होने के अनेक उद्देश्य या प्रयोजन हो सकते है, तथापि प्रतियोगी मॉडल में सामान्य तोर पर अधिकतम लाभ की प्राप्ति को ही फर्म का एक मात्र उद्देश्य माना जाता है। अब आप यह देखेंगे कि साम्य कीमत पर फर्म वस्तु की उस मात्रा का निर्धारण क्योंकर करती है जिस पर उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। हम पहले फर्म का लाभ फलन लेते है

II=TR-TC----------(14.8)

उक्त समीकरण में फर्म के लाभ TR वस्तु की बिक्री से प्राप्त आगम का तथा TC कुल लागत का प्रतीक है। स्पष्ट है प्रत्येक फर्म को धनात्मक राशि यानी TR के TC पर आधिक्य की अधिकतम करना चाहती है। गणितीय रूप में अधिकतम को प्राप्ति का समीकरण निम्न होगा:

$$\frac{dII}{dq} = \frac{dTR}{dq} = \frac{dTC}{dq} = 0 \qquad \text{----------(13.2)}$$

समीकरण (14.9) का अर्थ यह है कि उत्पादन के उस स्तर पर फर्म को अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है जहाँ सीमान्त आगत (dTR/dq=MR) तथा सीमान्त लागत (dTC/dq=MC) का अन्तर शून्य हो। अन्य शब्दों में, अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु फर्म उस स्तर तक उत्पादन करेगी जहाँ सीमान्त आगत तथा सीमान्त लागत (MR=MC) में समानता हो। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत निर्धारण को चित्र 14.1 के द्वारा दर्शाया गया है।

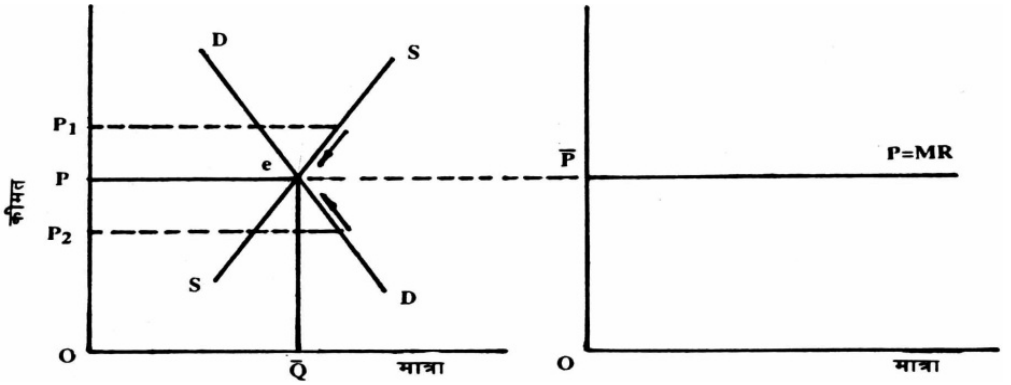

(a) बाजार/उद्योग (b) फर्म

चित्र 14.1 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्हर्गत कीमत निर्धारण

गणतीय दृष्टि से अधिकतम लाभ तथा न्यूनतम हानि की शर्तो में कोई अन्तर नही होता। अन्य शब्दों में यदि कीमत का साम्य स्तर उत्पादन की लगत से कम हो तो फर्म ऋणात्मक लाभ यानि हानि को न्यूनतम करना चाहेगी और उस दशा में भी MR=MC की शर्त पूरी होनी चाहिए।

चित्र 14.1 को दो भागों में समझाया जा सकता है। भाग (a) में SS एव DD वक्र क्रमश: सम्पुर्ण उद्योग की पूर्ति एवं मांग को व्यक्त करते है। ये दोनों ही वक्र रैखिक है। जैसा कि चित्र में स्पष्ट हैe बिन्दु पर पूर्ति वक्र, मांग वक्र का प्रतिच्छेदन करता है। तद्नुसार बाजार में OP कीमत का निर्धारण होगा जिसे साम्य कीमत कहा जा सकता है। इस साम्य कीमत पर विक्रेताओं द्वारा बेची जाने वाली मात्रा एवं क्रेताओं को कुल मांग में भी समानता होती है। चित्र14.1(a) मे साम्य मात्रा OQ निर्धारित की गई है।

अब चित्र का भाग (b) देखिए । बाजार में विद्यमान प्रत्येक फर्म की अपनी मात्रा OP कीमत पर ही बेचनी है । चूंकि एक फर्म कीमत ग्रहण कर्ता है वह किसी भी दशा में OP से कम या अधिक कीमत नही ले पाएगी । अन्य शब्दों में, फर्म के सन्दर्भ में बिक्री की मात्रा में होने वाले किसी सी (संभावित) परिवर्तन का कीमत पर कोई प्रभाव नही होता । इसके फलस्वरूप अतिरिक्त इकाई से प्राप्त अतिरिक्त आगम (MR) तथा कीमत में समानता बनी रहती है (P=MR) चित्र 14.1(b) में क्षैतिज रेखा इसी बात को व्यक्त करती है ।

यदि साम्य कीमत op, न होकर op_1 हो तो पूर्ति की मात्रा मांग से अधिक होगी और फलस्वरूप विक्रेताओं में परस्पर होड़ के कारण कीमत में कमी प्रारम्भ हो जाएगी । इससे एक ओर पूर्ति में कमी होगी जबकि दूसरी ओर मांग का विस्तार होगा । अन्ततः मांग व पूर्ति में op कीमत पर साम्य स्थापित हो जाएगा । इसके विपरीत op_2 कीमत पर मांग की पूर्ति से आधिक्य होगी तथा क्रेताओं के दबाव के कारण कीमत में वृद्धि प्रारम्भ होगी । इस वृद्धि के कारण एक ओर पूर्ति में वृद्धि होगी जबकि दूसरी ओर मांग में संकुचन होगा । अन्ततः op पर मांग व पूर्ति समान होगी ।

अस्तु, पूर्ण प्रतियोगी बाजार में अन्ततःपूर्ति तथा मांग के सामन्तस्य के फलस्वरूप साथ कीमत का निर्धारण हो ही जाता है । जैसा कि ऊपर भाग 14.3 में बतलाया गया था, ये सभी प्रक्रियाएं एवं साम्य

स्थिति ही प्राप्ति बाजार की शक्तियों को पारसरिक क्रियाओं-प्रतिक्रियों का परिणाम-मात्र है एवं इनमें सरकार या कोई अन्य व्यक्ति या संस्था की कोई भूमिका नहीं होती। पूर्ण प्रतियोगी फर्म को उद्योग द्वारा निर्धारित साम्य कीमत op दी हुई होती है। इस कीमत पर एक फर्म विशेष को उत्पादन बेचना होता है। फर्म विशेष कितनी इकाइयों बेचेगी यह सीमान्त लागत(MR) एवं सीमान्त लागत (MC) के प्रतिछेदन द्वारा तय होगा। इस बिन्दु पर फर्म को लाभ अथवा हानि भी हो सकती है इसका विवेचन चित्र 14.2 के माध्यम से किया गया है।

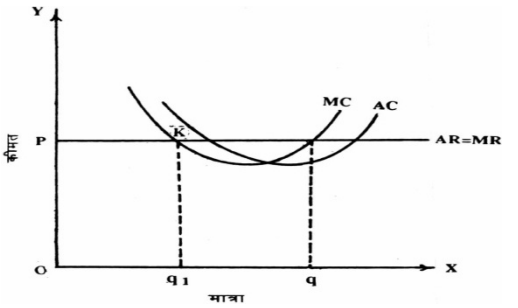

चित्र 14.2 प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण

बाजार में निर्धारित कीमत op पर जहां कुल साम्य मात्रा oq निर्धारित होती है, वही फर्म अधिकतम लाभ हेतु इकाइयां बचेना चाहेगी क्योंकि इसी स्तर पर MC=MR=P की शर्त पूरी होती है। आप यह देख सकते है कि MC=MR=P की शर्त k बिन्दु पर भी पूरी होती है, परन्तु उस स्तर पर औसत लागत का स्तर कीमत से अधिक होने के कारण फर्म को हानि होती है। इसलिए अधिकतम लाभ या न्यूनतम हानि वाले उत्पादन स्तर पर यह जरूरी हैं कि M C वक्र को नीचे से काटे। यह स्थिति OQ उत्पादन स्तर पर प्राप्त होती है।"

अन्य शब्दों में, यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक कर्म कीमत ग्रहणकर्ता ही रहती है तथापि निर्दिष्ट कीमत पर वह उतनी ही मात्रा में उत्पादन करती है जहाँ MC=MR=P की शर्त पूरी होने से उसका लाभ अधिकतम होता हो अथवा हानि न्यूनतम होती हो।

14.6.1 बाजार अवधि (Market Period) मे कीमत निर्धारण

बाजार अवधि वह अवधि होती है जिसमें किसी वस्तु की पूर्ति पूर्णत: बेलोच होती हो। यदि कीमत में वृद्धि हो जाए तो भी नए विक्रेता बाजार में नही आ पाते क्योंकि कीमत वृद्धि के लाभ से आकृष्ट होकर भी वे पूर्ति अथवा उत्पादन को तत्काल बढ़ाने में सक्षम नहीं है। इसके विपरीत, यदि मांग के अभाव में वस्तु की साम्य कीमत में कमी आ जाए और इसके फलस्वरूप प्रत्येक फर्म को हानि होने लगे, तब भी मौत फर्म में से कोई भी तत्काल बाहर नही जा पाती। बहुधा, अत्यधिक नाशवान वस्तुओं को बाजार अवधि से जोड़ा जाता है। इन वस्तुओं की किसी भी दिन जो पूर्ति बाजार में आ जाती है उसमें कीमतों के अनुरूप कोई भी कमी या वृद्धि नही की जा सकती

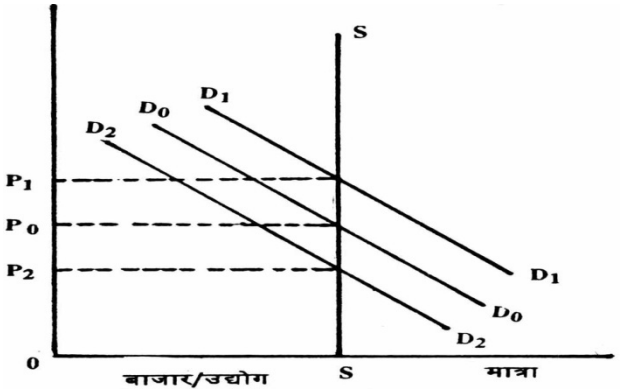

चित्र 14.3 बाजार अवधि में कीमत निर्धारण

चित्र 14.3 में बाजार अवधि में कीमत निर्धारण की प्रक्रिया को समझाया गया है। चूंकि वस्तु की पूर्ति SS पूर्णतया बेलीच है, अत: कीमत का स्तर पूर्णतया मांग पर निर्भर करता है। यदि मांग फलन है तो बाजार की साम्य कीमत OPo होगी। इसके विपरीत यदि मांग में विवर्तन होकर मांग वक्र D_1D_1 या D_2D_2 का रूप ले ले तो कीमत का स्तर भी तद्नुसार OP_1 या OP_2 हो जाएगा। चित्र 14.3 से यह तथ्य स्पष्ट है कि कीमत मे परिवर्तन होने पर भी पूर्ति की मात्रा OS ही बनी रहती है।

गणितीय दृष्टि से ही एक दूसरी शर्त का पूरा होना भी जरूरी है। इसके अनुसार अधिकतम लाभ या न्यूनतम हानि के लिए MR=MC के अतिरिक्त निम्न शर्त भी पूरी होनी चाहिए:

$$D^2II/dq^2 = d^2TR/dq^2 - d^2TC/dq^2<O$$

इस द्वितीय शर्त का अभिप्राय यह है कि फर्म की साम्य स्थिति में न केवल MR=MC की शर्त पूरी होनी चाहिए, अपितु यह भी जरूरी है कि उस स्तर पर सीमान्त आगत वक्र का ढलान सीमान्त लगत वक्र के ढान से कम हो, अर्थात् सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगत वक्र को नीचे से काटता हो।

14.6.2 अल्पकाल मे कीमत निर्धारण (Pricing in the Short Run)

यदि विभिन्न उत्पादकों को इतना समय मिल जाए कि वे फर्म के पैमाने को यथावत् रखते हुए भी उसी प्लांट के द्वारा उत्पादित मात्रा में वृद्धि या कमी करने में सफल हो सके तो साथ कीमत में परिवर्तन होने पर प्रत्येक फर्म के उत्पादन स्तर तथा बाजार की कुल पूर्ति में भी परिवर्तन होना सम्भव है। आप यह जानते है कि अल्पकाल में फर्म अपनी उत्पादन क्षमता, अथवा पैमाने में परिवर्तन नही कर सकती तथापि परिवर्तनशील साधन या साधनों के नियोजन में परिवर्तन करके उत्पादन में वृद्धि या कमी कर सकती है। चित्र 14.4 में उद्योग या बाजार तथा एक फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति को दर्शाया गया है।

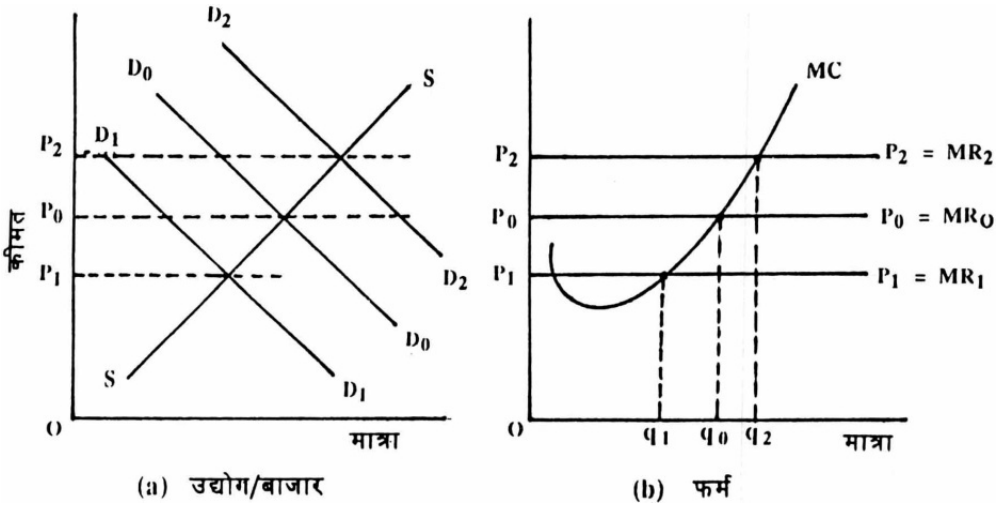

चित्र 14.4 उद्योग एवं फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति

चित्र 14.4(a) मे SS पूर्ति वक्र है जबकि मांग वक्र के तीन स्वरूप दिए गए है। यदि बाजार में मांग वक्र D_qD_0 हो तो साम्य कीमत OP_0 होगी। यदि मांग में विवर्तन होकर यह D_1D_1 हो जाए तो कीमत में कंमी होगी (OP_1) और फलंस्वरूप साम्य मात्रा का स्तर OQ_0 से घटकर OQ_1 हो जाएगा। इसी प्रकार मांग फलन D_2D_2 होने पर साम्य कीमत बढ़कर OP_2 तथा साम्य मात्रा का स्तर बढ़कर OQ_2 हो जाएगा। संक्षेप में, साम्य कीमत बढ्ने पर साम्य मात्रा के स्तर में वृद्धि होगी जबकि कीमत मे कमी होने पर मात्रा भी कम हो जाएगी।

अब चित्र 14.4 का भाग (b) देखिए। जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, सामय कीमत पर अधिकतम लाभ या न्यूनतम हानि के लिए एक फर्म उतनी मात्रा का उत्पादन करती है जहां सीमांत आगम (यानी कीमत) तथा सीमात लागत में समानता हो, और साथ ही जहां सीमांत लागत वक्र सीमांत आगम वक्र को नीचे से काटता हो। चित्र 14.4(b) में साम्य कीमत Oq_0,Oq_1 और OP_2 होने पर फर्म द्वारा अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु क्रमश: Oq_0,Oq_1 एवं OP_2इकाइयों का उत्पादन किया जाएगा। यानी साम्य कीमत बढ़ने पर फर्म अधिक उत्पादन करेगी तथा कीमत घटने पर उत्पादन कम कर देगी।इसलिए फर्म सीमान्त लागत वक्र (MC) को इसका पूर्ति वक्र भी का जा सकता है।

14.7 दीर्घकालीन पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत मे कीमत निर्धारण

(Pricing in the Long Run)

जैसा कि आप जानते है, दीर्घकाल उस अवधि को कहा जाता है जिसमें (अ) बाजार या उद्योग में पर्याप्त संख्या में नई फर्मो का प्रवेश संभव हो तथा (ब) प्रत्येक फर्म अपने पैमाने (उत्पादन के सभी साधनों) में पर्याप्त परिवर्तन करने में सक्षम हो।

14.7.1 फर्मो के प्रवेश / बहिर्गमन की स्वतंत्रता एवं दीर्घकालीन कीमत निर्धारण

चित्र 14.5 में यह बताया गया है कि यदि बाजार या उद्योग में प्रचलित कीमत पर एक (प्रतिनिधि) फर्म को लाभ या हानि होती हो तो उसके फलस्वरूप नई फर्मो के प्रवेश अथवा पुरानी फर्मो में से कुछ के बहिर्गमन के फलस्वरूप बाजार में वस्तु की पूर्ति में क्या परिवर्तन होंगे और उससे साम्य कीमत पर क्या प्रभाव होगा।

चित्र 14.5 (a) बाजार या उद्योग की स्थिति को व्यक्त करता है पूर्ति वक्र SS को मांग वक्र DD जिस पर काटता है वहां साम्य कीमत op निर्धारित हुई थी। अब चित्र 14.5(b) उस स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें op कीमत पर प्रत्येक फर्म को अधि-लाभ प्राप्त होता है। इसके फलस्वरूप बाजार का पूर्ति वक्र विवर्तित होगा तथा कीमत में कमी होती जाएगी। जब पूर्ति वक्र चित्र 14.5 उद्योग व फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति S_1S_1 हो जाएगा तब साम्य कीमत होगी op_1 तथा इस कीमत पर प्रत्येक फर्म को उत्पादन लागत कीमत के समान होने के कारण उसे केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। इस स्थिति में पहुंचने के साथ ही नई फर्मो का प्रवेश भी रूक जाएगा।

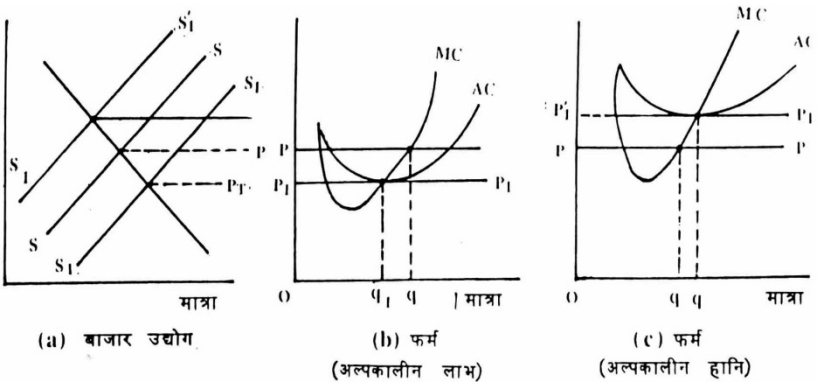

वक्र चित्र 14.5 उद्योग व फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति

इसके विकल्प के रूप मे चित्र 14.5(b) को देखिए। कीमत की तुलना मे प्रत्येक फर्म की उत्पादन लागत अधिक है (AC>OP)। स्पष्ट है प्रत्येक फर्म हानि को न्यूनतम करने हेतु oq मात्रा का उत्पादन करती है। परन्तु दीर्घकाल तक बहुत सी फर्मे हानि वहन करने को तैयार नहीं होगी। इसके फलस्वरूप जैसे-जैसे कुछ फर्मो का बहिर्गमन होगा, बाजार का पूर्ति वक्र बाई ओर विवर्तित होगा। पूर्ति में आई इस कमी के फलस्वरूप फर्मो के बहिर्गमन के साथ-साथ वस्तु की साम्य कीमत बढ़ती जाएगी। यह प्रक्रिया अन्ततःवहां रुक जाएगी जहां पूर्ति वक्र s^1s^1 होगा तथा इस बार साम्य कीमत op^1 होगी क्योंकि इस कीमत पर कीमत तथा उत्पादन लागत में समानता होने के फलस्वरूप प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होने लगेगा। फर्मो का बहिर्गमन भी इस स्थिति के बाद रूक जाएगा।

उपरोक्त विवरण से दो बातें स्पष्ट है। प्रथम, यदि अल्पकाल में फर्म की साम्य कीमत पर अधिक लाभ या हानि होती है तो नई फर्मो के प्रवेश या पुरानी फर्मो के बहिर्गमन की प्रक्रिया के कारण साम्य कीमत में परिवर्तन प्रारम्भ हो जाएगा द्वितीय, प्रवेश या बहिर्गमन की प्रक्रिया केवल तभी तक चलती है जब तक

कि कीमत लागत के समान (P=AC) नही हो जाती । संक्षेप में दीर्घकाल में साम्य कीमत पर प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है तथा बाजार में फर्मो की इष्टतम संख्या भी निर्धारित हो जाती है ।

14.7.2 फर्मों के पैमाने का विस्तार एवं दीर्घकालीन साम्य (Expansion of Scale and Long Run Equilibrium)

एक कहावत है कि उद्योग के कप्तान बोल्ड मार्शल बनना चाहते है। यदि अल्पकाल में बाजार में प्रचलित साम्य कीमत पर प्रत्येक फर्म को पर्याप्त अधिक लाभ प्राप्त हो रहा हो तो यह भी संभव है कि वह अपने पैमाने का पर्याप्त विस्तार करने का प्रयास करे। जैसा कि आप जानते है, पैमाने का विस्तार करने पर प्रारम्भ मे फर्म को पैमाने की बचतें प्राप्त होती है तथा एक सीमा के पश्चात् अ-अचतें होने लगती है। अन्य शब्दों मे, पैमाने के विस्तार के साथ जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है, फर्म को दीर्घकालीन उत्पादन लागत मे एक सीमा तक कमी होगी और तत्पश्चात् उत्पादन लागत बढ़ना प्रारम्भ कर देगी।

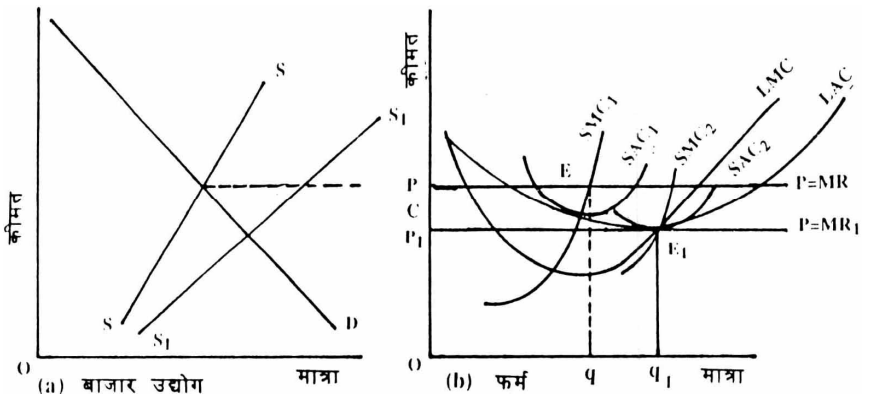

चित्र 14.6 पैमाने का विस्तार एव दीर्घकालीन साम्य

चित्र 14.6(b) मे बाजार की प्रारम्भिक साम्य कीमत op निर्धारित होती है। इस कीमत पर प्रत्येक फर्म oq इकाइयों का उत्पादन करते हुए प्रति इकाई pc रुपये का अधि लाभ अर्जित कर रही है। इसी उत्पादन स्तर पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।

अब यदि फर्म अपने पैमाने का विस्तार प्रारंभ कर दे तो उसे अधिकतम लाभ प्राप्ति के लिए न केवल प्लांट की (अल्पकालीन) लागत को अपितु पैमाने की (दीर्घकालीन) लागत को भी दृष्टिगत रखना होगा। फर्म द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्ति की शर्त अब निम्न प्रकार व्यक्त की जा सकती है:

$$SMC=LMC=MR=P \qquad \text{----------(14.11)}$$

समीकारण (14.11) पूर्व में प्रस्तूत समीकरण (14.9) का संशोधित रूप है तथा फर्म द्वारा दीर्घकाल में उत्पादन के उस स्तर का निर्धारण करता है जहां फर्म को दीर्घकालीन अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।

जैसा कि चित्र 14.6(b) से स्पष्ट है, फर्मो द्वारा पैमाने का विस्तार करने पर उद्योग या बाजार का पूर्ति वक्र दाई ओर आवर्तित होता है। प्रत्येक नए प्लांट की स्थापना पर पूर्ति वक्र में आवर्तन होगा तथा इससे साम्य कीमत में कमी आएगी। सुविधा के लिए, हम यह मान लेते है कि फर्म ने एक अतिरिक्त प्लांट की

ही स्थापना की है। ऐसी स्थिति में बाजार का पूर्ति वक्र SS होगा तथा साम्य कीमत OP होगी। फर्म की साम्य स्थिति 14.6(b) अब E, बिन्दु पर होगी जहां समीकरण (14.11) में प्रस्तुत शर्त पूरी होती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस स्तर पर फर्म को प्राप्त कीमत तथा दीर्घकालीन औसत लागत भी समान है यानि फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। अस्तु OQ_1 इकाइयां उत्पादन करने पर दीर्घकाल में निम्न स्थिति प्राप्त होती है:

$$SMC2=LMC=P_1=MR_1=SAC_2=LAC \qquad (14.12)$$

ऐसी स्थिति में पहुंचने के बाद फर्म पैमाने का विस्तार रोक देगी क्योंकि एक ओर पैमाने के विस्तार से कीमत में कमी होने की आशा होगी जबकि दूसरी ओर E बिन्दु के बाद पैमाने को अ-बचतें प्रारम्भ हो जाएगी।

चित्र 14.6(b) से दो बातें स्पष्ट होती है। प्रथम तो यह है कि प्रत्येक फर्म दीर्घकाल में अपने इष्टतम पैमाने पर कार्य करती है (SMC=SAC=LMC=LAC) यानी इसकी उत्पादन लागत न्यूनतम होती है। द्वितीय, फर्म को दीर्घकाल में सामान्य लाभ प्राप्त होता है(SAC=LAC=P)। फलस्वरूप फर्म द्वारा इस स्थिति के बाद नए प्लांट की स्थापना नही की जाएगी।

14.8 दीर्घकाल मे उद्योग की साम्य स्थिति (Equilibrium of Industry in the Long Run)

अब तक आपने यह देखा था कि यद्यपि बाजार में कीमत का निर्धारण मांग तथा पूर्ति दोनों के सन्तुलन पर निर्भर करता है, तथापि मांग फलन में दीर्घ काल में भी विवर्तन नहीं होता। कल्पना कीजिए कि दीर्घकाल में उस क्षेत्र की जनसंख्या तथा उपभोक्ताओं की आय में वृद्धि होने से मांग फलन में विवर्तन हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि पूर्ति फलन को बड़ी हुई मांग के अनुरूप समायोजित नहीं किया जाए तो दीर्घकाल में भी प्रतियोगी बाजार एवं प्रतियोगी फर्म साम्य स्थिति में नही रह पाएगी।

अस्तु, मांग मे वृद्धि (विवर्तन) के अनुरूप प्रत्येक फर्म को उत्पादन के साधनों का नियोजन बढ़ाना होगा। अब तक आपने यह देखा था कि फर्म द्वारा पैमाने में वृद्धि करने पर भी साधनों की कीमतों पर कोई प्रभाव नही होता। परन्तु प्रो. मार्शल ने यह तर्क दिया कि दीर्घकाल में साधनों की कीमतें यथावत् रहे, यह आवश्यक नही है।

वस्तुत: मांग फलन के विवर्तन के सन्दर्भ में पूर्ति फलन में कितना विवर्तन होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि साधनों की कीमतें दीर्घकाल में (अ) यथावत् रहती है, (ब) बढ़ जाती है, अथवा (स) कम होती है।

चित्र 14.7 दीर्घकाल

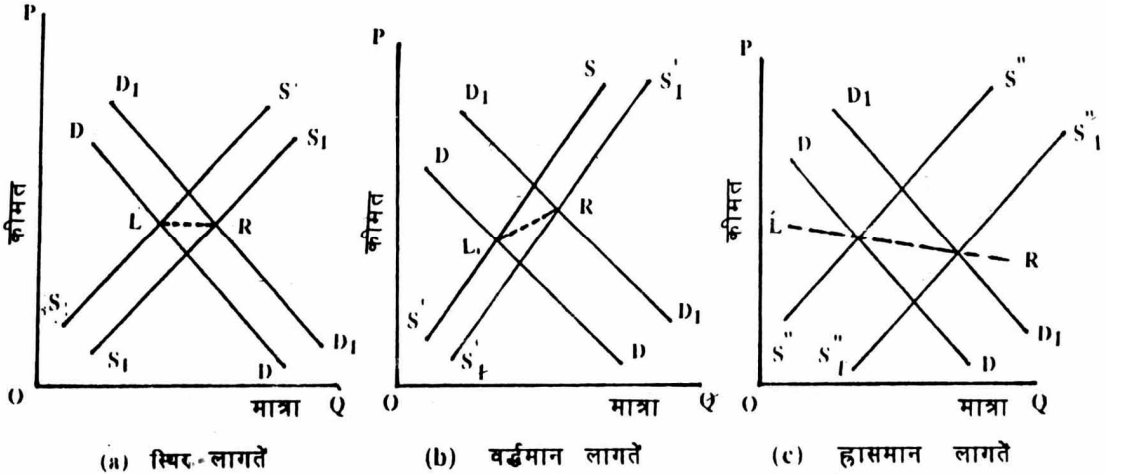

में उद्योग का साम्य

चित्र 14.7 में उपरोक्त तीनों स्थितियों को प्रस्तुत किया गया है। चित्र 14.7(a) में साधनों की कीमतें यथावत् रहने के कारण मांग फलन में जितना विवर्तन होता है पूर्ति फलन में भी उतना ही विवर्तन होने से वस्तु की कीमत पूर्ववत् बनी रहती है। अन्य शब्दों में, मांग बढ़ जाने पर भी बाजार में वस्तु की दीर्घकालीन कीमत नही बढ़ती। चित्र 14.7 मे मांग की अपेक्षा पूर्ति में बहुत कम विवर्तन होता है क्योंकि उत्पादकों को साधनों की अधिक कीमतें देनी पड़ रही है। इसी कारण उद्योग के पूर्ति वक्र LR का ढलान धनात्मक हो जाता है, यानी दीर्घकाल में मांग बढ़ने पर वस्तु की कीमत भी बढ़ जाती है। अन्त में चित्र 14.7C देखिए। इसमें यह बतलाया गया है कि दीर्घकाल मे साधनों की पूर्ति में इनकी मांग की अपेक्षा कहीं अधिक वृद्धि होने के कारण इनकी कीमतों, एवं तदनुसार उत्पादन लागत में कमी होती है। इसके फलस्वरूप वस्तु की मांग की तुलना में पूर्ति का विवर्तन अधिक होता है तथा वस्तु की दीर्घकालीन साम्य कीमत कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में उद्योग का पूर्ति वक्र LR ऋणात्मक ढलान युक्त हो जाता है।

चित्र 14.7 में मांग फलन का विवर्तन तीनों दशाओं में एक समान है परन्तु पूर्तिफलन भाग (a) में SS से S_1S_1 भाग (b) में S^1S^1 से $S^1_1S^1_1$ तथा भाग (C)में S"S"से S"$_1$S"$_1$ होता हैं तथा इन विवर्तनों का क्रम भी भिन्न-भिन्न होता है।

14.9 पूर्ण प्रतियोगिता की वांछनीयता (Desirability of Perfect Competition)

संस्थापक अर्थशास्त्रियो से लेकर आज तक सभी विद्वान इस तथ्य को स्वीकार करते है कि पूर्ण प्रतियोगिता एक आदर्श स्थिति है। बहुधा यह तर्क दिया जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता आदर्श रूप में सभी वस्तुओं व सभी साधनों के बाजारों में विद्यमान रहती है। ऐसी दशा में आर्थिक कल्याण का स्तर सर्वाधिक होता है क्योंकि :

1. उत्पादन की लागत न्यूनतम होने से उपभोक्ताओं को दीर्घकाल में न्यूनतम कीमत पर वस्तु मिल जाती है,
2. प्रत्येक फर्म अपनी क्षमता का (दीर्घकाल में) इष्टतम प्रयोग करती है (चित्र 14.6) और इसलिए अप्रयुक्त क्षमता का प्रतियोगी बाजार में कोई स्थान नही होता,
3. साधनों को पूर्ण रोजगार मिल जाता है यानि उनकी पूर्ति व मांग समान हो जाती है,
4. उपभोक्ता को प्राप्त सीमान्त उपयोगिता कीमत के समान (Mu=P) तथा साधन को प्राप्त कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के समान (Factor Price=MPP)होने के कारण समाज के किसी भी व्यक्ति का शोषण नही होता,
5. सरकारी हस्तक्षेप की अनुपस्थिति के कारण प्रत्येक आर्थिक इकाई अपने कल्याण को' अधिकतम करने हेतु स्वतंत्र रुप से निर्णय लेती है, तथा
6. विज्ञापन आदि पर अपव्यय नही होता और ना ही उपभोक्ता या विक्रेता किसी दबाव या प्रलोभन के अन्तर्गत कार्य करता है।

इन्हीं कारणों से यह माना जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी आर्थिक इकाइयों का आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है। बिल्फेडो परेटो का कल्याण अर्थशास्त्र इसी प्रमुख मान्यता पर आधारित है।

14.10 क्या पूर्ण प्रतियोगिता का बाजार वास्तविक है? (Is Perfect Competition realistic?)

यह सही है कि पूर्ण प्रतियोगिता एवं अधिकतम आर्थिक कल्याण परस्सर पर्यायवाची है। परन्तु पिछले कुछ दशको में जो प्रवृतियां दृष्टिगत हुई है उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि पूर्ण प्रतियोगिता का आदर्श रूप विश्व के किसी भी देश में विद्यमान नही है। ऊपर बिन्दु 14.4 में पूर्ण प्रतियोगिता वाले-बाजार के लिए जो मान्यताएं ली गई थी वे किसी भी अर्थव्यवस्था में दिखाई नहीं देती। प्रो. हावें लैबस्यीन की मान्यता है कि आज का उपभोक्ता किसी वस्तु की कितनी मात्रा खरीदेगा यह केवल कीमत पर नही अपितु इस बात पर भी निर्भर करने लगा है कि अन्य व्यक्ति इसकी कितनी इकाइयां खरीद रहे है। फिर विज्ञापन आदि भी उपभोक्ता की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते है।

इसी प्रकार साधनों के बाजार भी पूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित नहीं रह गए है। श्रम के बाजार में श्रमिक संघों या सरकारी कानूनों का सीधा हस्तक्षेप होंने लगा है। बाज व लगान की दरें सरकार द्वारा नियंत्रित होने लगी है तथा उद्यमी के लाभ पर सरकार द्वारा कर लगाए जाने लगे है।

अब वस्तु के बाजार को लीजिए। आज वस्तु, अथवा विक्रेता के व्यवहार में कहीं भी वह समरूपता नही दिखाई देती जिसकी मान्यता प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत ली जाती है। नए उत्पादकों का प्रवेश मौजूदा विक्रेताओं के गठबंधन या सरकारी प्रतिबंधों के कारण कठिन होता है। उपभोक्ता को बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान न होने से प्राय : उसका शोषण होने की संभावना रहती है। इन सब कारणों से दीर्घकाल मे भी फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त होते रहते है।

कुल मिलाकर यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि पूर्ण प्रतियोगिता एक आदर्श स्थिति होने पर भी व्यवहार में कही विद्यमान नही है। आज सर्वत्र हमें अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की स्थिति के ही दर्शन होते है।

14.11 सारांश

वस्तु-बाजार के चार स्वरूप होते है, पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारिक प्रतियोगिता एवं अल्पाधिकार।

पूर्ण प्रतियोगिता किसी वस्तु के बाजार की वह स्थिति है जिसमें क्रेताओं व विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होनें कें कारण कीमत निर्धारण का अधिकार एक व्यक्ति (क्रेता या विक्रेता) में निहित नही होता। कीमत का निर्धारण बाजार में वस्तु की कुल मांग व पूर्ति के आधार पर होता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत नए विक्रेताओं के प्रवेश पर कोई प्रतिबंध नही होता। यदि कीमत का साम्य स्तर लागत से अधिक हो तो नए विक्रेता इस लाभ से आकृष्ट होकर बाजार में प्रवेश करेंगे जिससे कीमत में कमी होगी तथा अनत : कीमत व लागत समान हो जाएगें। दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ की प्राप्ति वस्तुत : पूर्ण प्रतियोगिता का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है।

बहुधा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म दीर्घकाल में न्यूनतम लागत पर यानी इष्टतम स्तर पर उत्पादन करती है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधनों के स्वामियों को उत्पादन में उनके द्वारा किए गए योगदान के समान पारिश्रमिक मिलता है तथा उपभोक्ताओं द्वारा सीमान्त उपयोगिता के अनुरूप कीमत चुकाई जाती है। इन्हीं कारणों से पूर्ण प्रतियोगिता में अधिकतम आर्थिक कल्याण प्राप्त होता है।

इन सबके बावजूद विश्व में कहीं भी पूर्ण प्रतियोगिता का आदर्श स्वरूप दिखाई नही देता एवं इस विवेचन का केवल सैद्धान्तिक महत्व है।

14.12 शब्दावली

एकाधिकारिक शक्ति

कोई एक फर्म बाजार में प्राप्त वस्तु की कुल पूर्ति का कितना अंश अपनी ओर से प्रस्तुत करती है यह उसकी एकाधिकारिक शक्ति है। पूर्ण प्रतियोगिता में यह शक्ति नगण्य होती है जबकि एकाधि कार में निरपेक्ष यानि इकाई के समन होती है।

मुक्त प्रवेश : पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक ऐसी विशेषता जिसके अनुसार फर्मो के प्रवेश, बहिर्गमन, पैमाने के विस्तार या संकुचन पर कोई प्रतिबंध नही होता।

सामान्य लाभ : जब कीमत का स्तर उत्पादन की औसत लागत के समान हो तब फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होता हैं।

इष्टतम पैमाना : दीर्घकाल में जब औसत लागते (LAC) न्यूनतम होती है, तथा पैमाने की बचतें मिलना बंद हो जाता है तो वह इष्टतम पैमाने के स्तर है। इसके बाद नया प्लांट लगाने पर अ-बचतें प्रारंभ हो जाती है।

कीमत ग्रहणकर्ता व कीमत निर्धारक : यदि एक फर्म स्वयं कीमत निर्धारण करने में सक्षम न हो तथा अन्य शक्तियों (मांग व पूर्ति या सरकार) द्वारा निर्धारित कीमत पर वस्तु बेचती हो तो वह फर्म कीमत ग्रहणकर्ता कहलाती है। इसके विपरीत यदि वह फर्म इच्छानुसार कीमत में परिवर्तन करने में सक्षम हो तो उसे कीमत निर्धारक कहा जाता है।

बोध प्रश्न

अपना उत्तर लिखने के लिए प्रश्न के अन्त में छोड़ी गई जगह का प्रयोग करें।

इकाई के अन्त में प्रस्तुत उत्तर संकेतों से अपने उत्तर का मिलान करें।

1. पूर्ण प्रतियोगिता की पीभाषा दीजिए। प्रतियोगी बाजार में क्या-क्या विशेषताएं होती है?
2. एक प्रतियोगी बाजार में बाजार अवधि, अल्पकाल व दीर्घकाल मे कीमत निर्धारण की प्रक्रिया समझाइए।
3. सिद्ध कीजिए कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है। क्या पूर्ण प्रतियोगिता की अवधारणा वास्तविक है.

14.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

A.Koutsoyiannis : Modern Micro Econimics (Second Edition)1985

C.E. Ferguson : Micro Economic Theory

D.C.Hague : Pricing in Business(1971)

K.J.Cohen &R.M.Cyert : Theory of Fiem (1976)

14.14 अभ्यासो के उत्तर

पूर्ण प्रतियोगिता किसी वस्तु बाजार की वह स्थिति है जिसमें क्रेताओं व विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होने के कारण एक क्रेता या विक्रेता कीमत का निर्धारण नही कर सकता।

पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार की विशेषताएं इस प्रकार है : अनेक क्रेता व विक्रेता, समरूपी वस्तुएं, मुक्त प्रवेश, साधनों की स्वतंत्र गतिशीलता, बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान, लागत फलन की स्वतंत्रता, स्वतंत्र निर्णय प्रक्रिया, दीर्घकालीन सामान्य लाभ एवं सरकारी हस्तक्षेप का अभाव।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत का निर्धारण वस्तु की कुल मांग व पूर्ति के द्वारा होता है। बाजार अवधि में पूर्ति पूर्णत : बेलोच होती है और इसलिए मांग में जिस अनुपात में परिवर्तन होता है, कीमत में भी उतना ही परिवर्तन हो जाता है।

अल्पकाल में फर्म दिए हुए प्लांट द्वारा उत्पादन में वृद्धि कर सकती है। इस कारण पूर्ति वक्र का ढलान धनात्मक हो जाता है।

अल्पकाल में मांग व पूर्ति जहां समान होती है वही बाजार कीमत का निर्धारण होता है। फर्म इस कीमत पर उत्पादन उस स्तर पर करती है जहां कीमत सीमान्त लागत के समान हो। इस कीमत पर फर्म को लाभ हो सकता है और हानि भी।

दीर्घकाल में नई फर्मो के प्रवेश करने तथा अथवा उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन के फलस्वरूप कीमत में तब तक परिवर्तन होता रहता है जब तक सामान्य लाभ प्राप्त नहीं हो जाता।

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म व उपभोक्ता स्वयं निर्णय लेने में सक्षम है, प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण को अधिकतम करने का प्रयास करता है। उपभोक्ता निर्दिष्ट कीमत पर अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करता है जबकि फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करती है। प्रत्येक फर्म इष्टतम स्तर पर उत्पादन करती है, अत: साधन बेकार नही रहते। साधनों को उनके उत्पादन में योगदान के समान पारिश्रमिक मिलने के कारण उनका शोषण नही होता।

परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता के लिए आवश्यक शर्ते आधुनिक संदर्भ में कही भी पूरी नही होती और इसलिए यह बाजार अवास्तविक बाजार माना जाता है।

इकाई – 15

एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

Determine the Price and Production Monopoly

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 एकाधिकार का अर्थ, उदय एवं विशेषतायें

15.2.1 एकाधिकार एवं क्रेताधिकार का अन्तर

15.2.2 एकाधिकार विषयक भ्रांतियां

15.3 एकाधिकार बाजार में मांग व पूर्ति वक्र

15.4 एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

15.4.1 एकाधिकारिक कीमत निर्धारण के नियम

15.4.2 एकाधिकारी एवं लाभ

15.4.3 एकाधिकारी फर्म को हानि

15.5 दीर्घ काल में एकाधिकारी फर्म की स्थिति

15.5.1 अल्पकालीन हानि से दीर्घकालीन लाभ की ओर

15.6 एकाधिकार का आर्थिक कल्याण पर प्रभाव

15.7 सरकार द्वारा एकाधिकारिक फर्म पर नियंत्रण

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.11 अभ्यासों के उतर

15.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने बाजार की विभिन्न स्थितियों का परिचय प्राप्त किया था तथा साथ ही यह भी पढ़ा था कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में एक फर्म अल्प तथा दीर्घकाल मे निर्दिष्ट कीमत पर वस्तु के उत्पादन का निर्धारण किस प्रकार करती है । इस इकाई में आप एकाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण की प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन के द्वारा आप :

1. यह जान सकेंगे कि एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत का निर्धारण कौन करता है;
2. यह समझ सकेंगे कि एकाधिकारी की शक्तियों की सीमा क्या है;
3. यह ज्ञात करेंगे कि एकाधिकारी फर्म अपने उत्पादन के स्तर का निर्धारण अल्प व दीर्घकाल में किस प्रकार कर सकती है;
4. यह समझ पाएंगे कि एकाधिकारी किन परिस्थितियों में भिन्न भिन्न क्रेताओं से एक ही वस्तु की भिन्न कीमतें ले सकता है;
5. यह देखेंगे कि एकाधिकार का आर्थिक कल्याण पर कितना प्रभाव पड़ता है, तथा
6. यह समझ सकेंगे कि सरकार द्वारा एकाधिकारी फर्म की कीमत का नियंत्रण कितना प्रभावी हो सकता है ।

15.1 प्रस्तावना

अपने पिछली इकाई में यह देखा था कि यदि वस्तु की बाजार मांग दी हुई हो तो पूर्ति की दृष्टि से बाजार में चार स्थितियों में से कोई एक विद्यमान हो सकती है । जहां पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म का उत्पादन स्तर समूचे उद्योग में प्राप्त पूर्ति का एक अत्यंत सूक्ष्म अनुपात होता है । आपने पहले यह पढ़ा था कि उद्योग की तुलना में एक फर्म का आकार अत्यंत छोटा होने के कारण वह वस्तु की कीमत का निर्धारण करने में कतई सक्ष्म नही है । एकाधिकार के अन्तर्गत, इसके विपरीत, एक ही फर्म का बाजार पर पूर्ण नियंत्रण होने के कारण कीमत निर्धारण का सम्पूर्ण अधिकार भी उसी फर्म में निहित होता है । जैसा कि आप इस इकाई में देखेंगे, इस अधिकार के बावजूद एकाधिकारी फर्म को कीमत निर्धारण में काफी सावधानी बरतनी होती है ।

एकाधिकारी फर्म प्राय: कीमत का निर्धारण इस प्रकार करती है कि उसका लाभ अधिकतम हो। कभी-कभी फर्म का उत्पादन लागतें ऊंची होने के कारण उसे लाभ प्राप्त नही हो पाता । ऐसी स्थिति में वह अपनी हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करती है । कुछ भी हो, दीर्घकाल में एकाधिकारी सदैव ऐसी कीमत निर्धारित करता है कि उसे अधिक से अधिक लाभ हो।

प्राय: एकाधिकारी फर्म की तुलना प्रतियोगी फर्म से की जाती है । इस इकाई में आप देखेंगे कि पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में एकाधिकार के अन्तर्गत समाज को कम आर्थिक कल्याण प्राप्त होता है । यह स्थिति तब और भी विकट हो जाती है जब एकाधिकारी भिन्न-भिन्न क्रेताओं के मध्य कीमत विभेद

प्रारंभ कर देता है । इन्ही कारणों से सरकार एकाधिकारी फर्म की कीमत को नियंत्रित करने का प्रयास करती है।

15.2 एकाधिकार का अर्थ, उदय एवं विशेषताएं

बाजार की उस संरचना को एकाधिकार कहा जाता है जिसमें किसी वस्तु का एक ही विक्रेता हो । बाजार में ऐसी वस्तुओं की स्थानापन वस्तुएं उपलब्ध नही होती तथा किसी भी अन्य फर्म के लिए बाजार में प्रवेश करना संभव नही होता ।

प्रोफेसर कांत्सोयानिस ने बतलाया है कि प्राय: बाजार में कुछ ऐसे घटक विद्यमान होते है जो एकाधिकार को जन्म दे सकते है । एकाधिकार का प्रथम कारण महत्यपूर्ण कच्चे माल पर एकाकी नियंत्रण अथवा उत्पादन की तकनीक के एकाधिकारिक ज्ञान में निहित है । एकाधिकार के उदय का दूसरा कारण किसी वस्तु का पेटेंट हो सकता है जिसके अन्तर्गत कानूनी तोर पर कोई दूसरा व्यक्ति इस फर्म द्वारा निर्मित वस्तु से मिलती-जुलती वस्तु नही बना सकता । तृतीय, सरकार की लाइसैस नीति, अथवा विदेशी प्रतियोगियों पर पाबन्दी, के कारण भी एकाधिकार का जन्म हो सकता है । इसे बाजार के विशेषाधिकार की संज्ञा दी जाती है । एकाधिकार के उदय का चौथा कारण बाजार का लघु आकार भी हो सकता है । जिसके अन्तर्गत यदि बाजार में फर्मों की संख्या बढ़ा दी जाए तो उनमें से कोई भी पर्याप्त मात्रा में. वस्तु को नहीं बेच पाएगी । ऐसी स्थिति में एक ही फर्म वस्तु का उत्पादन करती है । प्राय: प्लाट का आकार बहुत बड़ा होने पर केवल एक ही फर्म अपनी क्षमता का इष्टतम प्रयोग कर पाती है । एकाधि कार के उदय का एक और कारण सरकार की नीति हो सकती है । उपभोक्ताओं को राहत देने हेतु प्राय: सरकार वितृत व जल आपूर्ति, उचित मूल्य की दुकानों, संचार साधनों तथा परिवहन के क्षेत्रों में स्वयं एकाधिकार प्राप्त कर लेती है तथा इन महत्वपूर्ण सेवाओं को उचित कीमत पर उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराती हैं । इस प्रकार की स्थिति को सार्वजनिक क्षेत्र से सम्बन्ध एकाधिकार कहा जाता है । एकाधिकार की उत्पति का एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि विद्यमान फर्मों में से केवल एक फर्म की दक्षता का स्तर उच्चतम होने के कारण दीर्घकाल में शेष फर्में उससे प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर पाती, तथा बाजार से बाहर हो जाती है । इसे प्राकृतिक एकाधिकार कहा जाता है।

एकाधिकार की उत्पति-चाहे किसी भी कारण से हुई हो, जब तक एकाधिकारी फर्म की सरकारी संरक्षण/समर्थन प्राप्त है तथा/अथवा जब तक उसकी स्थिति अन्य फर्मों की तुलना में श्रेष्ठ बनी रहती है, नए उत्पादकों का बाजार में प्रवेश नही हो पाएगा तथा इस फर्म का बाजार पर एका एकाधिकार बना रहेगा ।

एकाधिकार की विशेषताएं -

उपर्युक्त विवेचन से आप यह समझ चुके होंगे कि एकाधिकार वाले बाजार में निम्न विशेषताएं होनी चाहिए:

1. सम्पूर्ण बाजार में निर्दिष्ट वस्तु का एक ही विक्रेता होता है। परन्तु इसके साथ ही बाजार में क्रेताओं की सखा पर्याप्त होती है।
2. एकाधिकारी द्वारा निर्मित वस्तु का या तो कोई प्रतिस्थापन नही होता, अथवा स्थानापन वस्तु की उत्पादन लागत बहुत अधिक होती है।
3. बाजार में नई फर्मों का प्रवेश संभव नहीं होने से मौजूदा फर्म के अधिलाभ दीर्घकाल में बने रहते है।
4. एकाधिकारी का वर्चस्व वस्तु के बाजार तक सीमित है, परन्तु उत्पादन के साधनों के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है।
5. एकाधिकारी को अपनी वस्तु की बिक्री बढ़ाने हेतु किसी प्रकार के विज्ञापन या प्रचार की आवश्यकता नही है।

संक्षेप में, एकाधिकारी अपनी इच्छानुसार वस्तु की कीमत निर्धारित करता है तथा यथाशक्ति, यथा सम्भव, बाजार में अपनी शक्ति को दीर्घकाल तक संरक्षित रखता है।

प्रो० ए० पी० लर्नर ने एकाधिकारिक शक्ति को निम्न रूप में आंकलित करने का सूत्र प्रस्तुत किया है -

$$a = si \ (i = 1,2,3,\text{------},n) \qquad \text{.....(15.1)}$$

$$\sum_{i=1}^{n} s_i$$

उपरोक्त सूत्र में si एकाधिकारी फर्म द्वारा उत्पादित मात्रा है जबकि εsi बाजार की कुल पूर्ति है। जैसा कि स्पष्ट है, बाजार में एक ही फर्म (n=1) होने पर a यानी एकाधिकारिक शक्ति का मान 1 के समान होगा।

15.2.1 एकाधिकार व क्रेताधिकार का अन्तर

एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें वस्तु की समूची पूर्ति पर एक ही फर्म का पूर्ण नियंत्रण होता है। ऐसी दशा में समीकरण (15.1) में प्रस्तुत a का मान 1 होता है। यदि इसके विपरीत, बाजार में वस्तु का केवल एक ही क्रेता हो तो इसे केताधिकार की स्थिति कहा जाता है। यदि बाजार में वस्तु के अनेक विक्रेता हो तथा केवल एक ही क्रेता हो तो कीमत का निर्धारण क्रेताधिकारी द्वारा ही किया जाएगा। परन्तु यदि बाजार में अनेक क्रेता तथा केवल एक ही विक्रेता हो तब भी एकाधिकारी विक्रेता को कीमत निर्धारण का अधिकार होगा।

जब तक एक क्रेताधिकारी अथवा एकाधिकारी को कीमत निर्धारण का अधिकार प्राप्त है, बाजार में कोई समस्या उत्पन नहीं होती। परन्तु यदि किसी वस्तु का केवल एक ही विक्रेता हो और उसका क्रेता भी एक ही हो तो यह द्वयाधिकार (Bilateral Monopoly) की स्थिति कहलाती है तथा ऐसी स्थिति में कीमत निर्धारण की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल हो जाती है।

15.2.2 एकाधिकार विषयक भ्रांतियां

ऊपर आप पढ़ चुके है कि एकाधिकार के अन्तर्गत एक फर्म ही समूची बाजार-पूर्ति को नियंत्रित करती है और इस कारण कीमत निर्धारण का समूर्ण अधिकार इसी फर्म में निहित होता है । कभी-कभी एकाधिकारी फर्म के इस अधिकार के कारण जन साधारण में कुछ भ्रांतियां उत्पन हो जाती है।

1. प्रथम भ्रांति तो यह है कि एकाधिकारी न केवल मनचाही कीमत वसूल कर सकता है, अपितु इच्छानुसार वस्तु की मात्रा भी बेच सकता है। वस्तुतः यह एक गलत धारणा है । भले ही वस्तु की पूर्ति पर एकाधिकारी का नियंत्रण हो, वस्तु की मांग का निरूपण उपभोक्ता या क्रेता ही करते है। यदि एकाधिकारी वस्तु की कीमत काफी ऊंची रखता है तो मांग का स्तर काफी कम होगा। चूंकि वही अकेला वस्तु का विक्रेता है, तो उसे अपनी बिक्री बढ़ाने हेतु कीमत में कमी करनी होगी। अन्य शब्दों में, एक एकाधिकारी फर्म की वस्तु का मांग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है। अन्य शब्दों में, एकाधिकारी के सामने दो विकल्प हो सकते है: या तो ऊंची कीमत पर कम मात्रा बेचे, अथवा कीमत में कमी करके बिक्री को बढ़ाए।
2. एकाधिकार के विषय में प्रचलित दूसरी भांति यह है कि एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग बेलाच होने पर ही उसे अधिक लाभ होता है । उदाहरण के तोर पर, यदि वह वस्तु की कीमत को 10 रुपये से बढ़ाकर 20 रु कर दे और मांग की मात्रा 20 से घटकर कर 15 ही रहे (मांग की लोच = 0.43) तो उसका प्राप्त कुल आगम 200 रुपये से बढ़कर 300 रुपए हो सकता है। परन्तु वस्तुत: यह भी एक भ्रांति है।
3. कभी-कभी लोग एकाधिकार के विषय में एक तीसरी धारणा बना लेते है । बहुधा यह कहा जाता है कि एकाधिकारी को सदैव ल्राभ होता है। यह भी एक प्रांति है। कभी-कभी स्थापना के बाद प्रारंभिक वर्षों में फर्म की उत्पादन लागतें ऊंची रहने के कारण अथवा मांग का स्तर नीचा रहने के कारण, फर्म को हानि (P-AC<O) भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में फर्म अपनी हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करेगी । परन्तु दीर्घकाल में फर्म वस्तु के मांग तक को विवर्तित करने, यानी मांग में वृद्धि करने हेतु अथवा लागत में कमी करने हेतु प्रयत्नशील रहेगी तथा अन्ततः अल्पकालीन हानि को दीर्घकालीन लाभ में बदल लेगी। अस्तु, यह जरूरी नही है कि एकाधिकारी सदैव लाभ ही अर्जित करें।

इसे सिद्ध करने के लिए मांग की लोच का निम सूत्र लीजिए.

$e = \frac{P}{P-MR}$ (यहाँ P = कीमत तथा MR सीमान्त आगम है।)

जैसा कि आप जानते है, बेलोच मांग के लिए MR यानी सीमान्त आगम ऋणात्मक होना चाहिए। आप पिछली इकाई में यत् पढ़ चुके है कि किसी भी फर्म को अधिकतम लाभ उत्पादन के उस स्तर पर प्राप्त होता है जहां MC = MR हों। अस्तु मांग की लोच के सूत्र को निम रूप में भी लिखा जा सकता है :

$$e = \frac{P}{P - MR}$$

यदि मांग की लोच इकाई से कम हो तो इसका अर्थ यहझहोगा कि सीमान्त लागत ऋणात्मक होगी (MC<.O) जो एक असम्भव बात है।

15.3 एकाधिकार मे मांग (आगम) व पूर्ति वक्र (Demand / Revenue and Supply curves under Monopoly)

इस खंड में आप यह देखेंगे कि एकाधिकारी फर्म का आगम फलन किस प्रकार निरूपित करता है। तालिका 15.1 यह बतलाती है कि एक एकाधिकारी फर्म क्यों कर कीमत में कमी करते हुए अपनी बिक्री को बढ़ा सकती है। इस तालिका में यह बतलाया गया है कि कीमत तथा मांग में प्रतिकूल सम्बन्ध है। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि कीमत घटने पर मांग तो बढ़ती ही है। परन्तु उस सीमा (5 रुपए कीमत के बाद) के पश्चात् मांग में कीमत घटने पर भी इतनी कम वृद्धि होती है कि कुल आगम में कमी होने लगती है। जहां तक सीमान्त आगम का प्रश्न है, इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध कुल आगम से है। सीमान्त आगम को निम रूप से परिभाषित किया जाता है :

$$MR = \frac{dTR}{dq} \qquad \text{---------(15.2)}$$

जहां dTR कुल आगम में हुए परिवर्तन तथा तप कीमत के परिवर्तन से हुए मांग के परिवर्तन का प्रतीक है।

तालिका 15.1 एकाधिकारी फर्म की कीमत तथा सीमांत आगम कीमत

कीमत (P) (रुपए प्रति इकाई)	मांग (q)	कुल अगाम (TR)	सीमांत आगाम (MR)
10	1	10	-
9	2	18	8
8	3	24	6
7	4	28	4
6	5	30	2
5	6	30	0
4	7	28	-2
3	8	24	-4
2	9	18	-6
1	10	10	-8

तालिका 15.1 के अंतिम कॉलम में सीमान्त आगम को दिखाया गया है। कुल कॉलम में दो महत्वपूर्ण बाते दिखाई देती हैं। प्रथम, कीमत में कमी के साथ-साथ सीमान्त आगम में होने वाली कमी उससे दो गुनी होती है। उदाहरण के तोर पर, प्रत्येक बार कीमत में एक रुपए की कमी होती है जबकि सीमांत आगम में दो रुपए की कमी होती है। दूसरी बात यह है कि कीमत प्राय: धनात्मक, अथवा अपवाद स्वरूप स्थिति में शय, होती है। परन्तु जैसा कि तालिका से सट है, सीमाज्ञ आगम शून्य तक गिरने के बाद ऋणात्मक होने लगता है तथा इसी के साथ कुल आगम में भी कमी होती जाती है। जिस स्तर पर सीमान्त आगम शून्य होता है वहां कुल आगम अधिकतम होता है।

एकाधिकार के अन्तर्गत पूर्ति वक्र

आप इससे पूर्व यह पढ़ मुके है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का सीमान्त लागत वक्र ही इसका पूर्ति वक्र होता है। मरन्तु एकाधिकारी फर्म के सन्दर्भ में यह मान्यता लागू नही होती।

इससे पूर्व इकाई 13 में आप यह पढ़ पुके है कि अधिकतम लाभ या न्यूनतम हानि के लिए यह आवश्यक है कि फर्म का सीमान्त आगम उत्पादन की सीमान्त लागत के समान हो (MR=MC) तथा यह कि सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे से काटता हो।

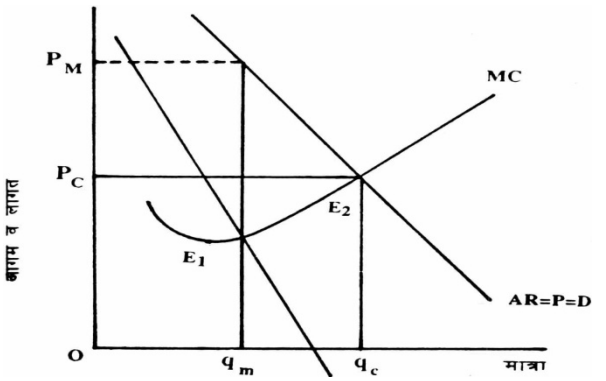

चित्र 15.1 एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

कीमत या मांग का समीकरण इस प्रकार है :

$$P = a - bq$$

कुल आगम का समीकरण निम्न होगा

$$TR = Pq = aq - bq^2$$

तथा सीमान्त आगम का समीकरण इस प्रकार होगा :

इस प्रकार यदि मांग वक्र का ढलान -b है तो सीमान्त आगम वक्र का ढलान -2b होगा।

चित्र 15.1 ये दोनों शर्ते R बिन्दु पर पूरी होती है और इसी के करूप एकाधिकारी फर्म oq इकाइयों को op कीमत पर बेचकर अधिकतम लाभ अर्जित कर सकती है। अन्य शब्दों में, op कीमत पर वस्तु की op है।

यदि अब यह मान लें कि कीमत बढ़ कर op_1 कर दी जाती है। यदि MC वक्र को पूर्ति वक्र माना जाए तो इस कीमत पर वस्तु की पूर्ति oq_1 होनी चाहिये। परन्तु यहां एक विरोधाभास उतन हो जाता है। एकाधिकार के अर्न्तगत अधिक मात्रा में बिक्री करने थे कीमत में कमी होनी चाहिए। जैसा कि आप चित्र 15.1 में देखते है, op_1 मात्रा पर सीमान्त आगम ऋणात्मक है जबकि सीमान्त लागत op मात्रा के पश्चात् काफी बढ़ जाती है। इसका यह अर्थ हुआ कि अतिरिक्त इकाइयों का उत्पादन करने पर फर्म को qq_1 भारी हानि होती है। कोई भी फर्म अतिरिक्त उत्पादन तभी करना चाहेगी जबकि ऐसा करने पर उसके लाभ में वृद्धि हो। अस्तु, एकाधिकारी फर्म को उत्पादन का स्तर q से अधिक करने में कोई रुचि नही होगी। सक्षेप में, दी हुई परिस्थितियों में एकाधिकारी फर्म अधिकतम' लाभ प्राप्ति हेतु, op कीमत पर oq मात्रा की ही पूर्ति करना चाहेगी। यदि कीमत बढ़ाते हुए MC के अनुरूप पूर्ति बढ़ाने का प्रयास (जैसा कि एक प्रतियोगी फर्म करती है) किया भी जाए तो यह एकाधिकारी फर्म को मान्य नहीं होगा क्योंकि Oq के बाद प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन पर उसे हानि होती है। (MC<MR)।

इस प्रकार एकाधिकारी फर्म के लिए कोई पूर्ति वक्र नही होता। वह अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु उत्पादन का एक ही स्तर चुनता है जहां ऊपर वर्णित दोनों शर्तें पूरी होती है।

15.4 एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

इससे पूर्व आपने देखा था कि एकाधिकारी फर्म अपनी बिक्री बढ़ाने हेतु वस्तु की कीमत में कमी करती है परन्तु एक सीमा के पश्चात् वस्तु की बिक्री से प्राप्त कुल आगम (TR) में कमी होने लगती है, यानी सीमान्त आगम (MR) ऋणात्मक हो जाता है। प्रस्तुत खण्ड में आप यह देखेंगे कि एक एकाधिकारी फर्म वस्तुतः किस कीमत पर अपनी वस्तु बेचना चाहता है। इसके लिए इस खण्ड में पहले आप यह देखेंगे कि एकाधिकार के अर्न्तगत कीमत निर्धारण की सैद्धान्तिक शर्तें क्या है। तत्पश्चात् आप एकाधिकारी फर्म किस प्रकार अधिकतम लाभ अथवा न्यूनतम हानि से संबद्ध उत्पादन स्तर का निर्धारण करती है, इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

15.4.1 एकाधिकारिक कीमत निर्धारण के नियम

यद्यपि व्यवसाय में बनी रहने थे किसी फर्म के समक्ष अनेक उद्देश्य हो सकते है, तथापि प्राय: यही माना जाता है कि या तो फर्म अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती है अथवा अपनी हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करती है। जैसा कि पिछली इकाई में समीकरण (13.9) (13.10) के माध्याम से आपने पड़ा था, सैद्धानिक दृष्टि से उपरोक्त दोनों उद्देश्य एक ही सिक्के दो पहलू मात्र है।

आगम व लागत के धनालक अन्तर को लाभ की संज्ञा दी जाती है। अस्तु फर्म का लाभ उत्पादन के उस स्तर पर अधिकतम होता है जहां यह धनात्मक अन्तर (TR-TC) अधिकतम हो। इसी बात को चित्र 15.2 (a) के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

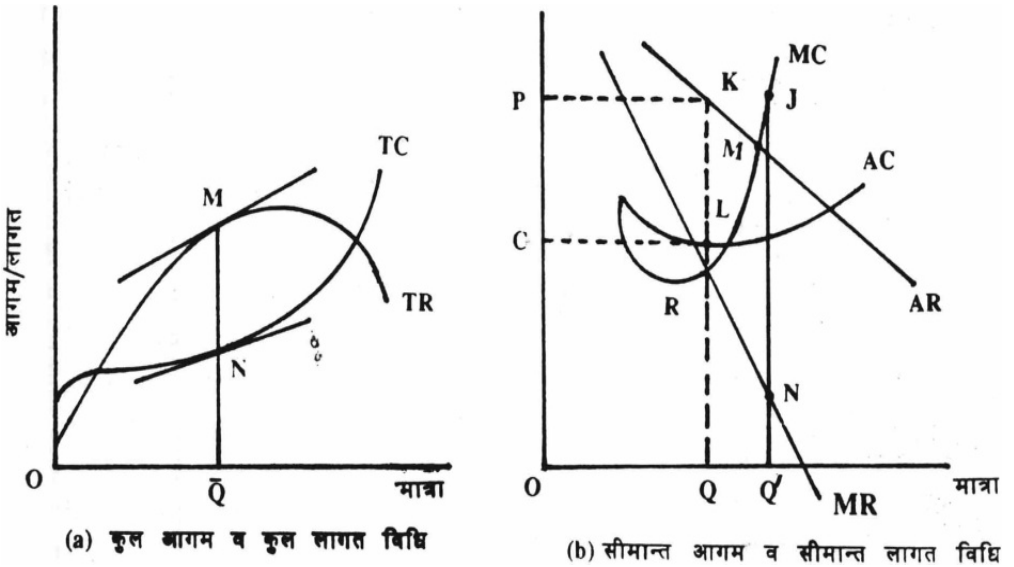

चित्र 15.2 एकाधिकारी फर्म द्वारा कीमत निर्धारण

चित्र 15.2 (a) में एकाधिकारी फर्म के कुल आगम को TR तथा कुल लागत को TC के रूप में व्यक्त किया गया है। जैसाकि चित्र से लाट है OQ इकाइयों का उत्पादन करने पर TR तथा TC का धनात्मक अन्तर, यानी लाभ अधिकतम है। इस विधि के माध्यम से हम यह ज्ञात करते है कि एकाधि कारी लाभ को अधिकतम करने हेतु कितनी इकाइयों का उत्पादन करता है।

चित्र 15.2 (a) में पिछली इकाई के समीकरण 13.9 व 13.10 के अनुरूप फर्म द्वारा अधिकतम लाभ हेतु कितना उत्पादन किया जाएगा यह बतलाया गया है। अस्तु एकाधिकारी फर्म स्वेच्छा से कीमत निर्धारण करने को समर्थ होने पर भी कीमत का वह स्तर तय करना चाहेगी जिस पर उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो।

चित्र 15.2 में उत्पादन का स्तर $O\bar{Q}$ होने पर कीमत का स्तर OP निर्धारित होगा जहां (अ) सीमान्त लागत तथा सीमान्त आगम समान है। (MR=MC) तथा (ब) सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम रेखा को नीचे से काटती है। इस प्रकार एकाधिकारी अधिकतम लाभ प्राप्त करते हुए इन दो शर्तों के अनुरूप उत्पादन की मात्रा तथा कीमत का निर्धारण करता है।

यदि उत्पादन का स्तर OQ से अधिक हो तो एक ओर तो सीमान्त आगम में कमी होगी जबकि दूसरी ओर सीमान्त लागत बढ़ जाएगी। उदाहरण के तोर पर उत्पादन की मात्रा OQ_1 होने पर MR भार घटकर Q_1, रह जाता है जबकि MC बढ़कर Q_1J हो जाती है। इसका यह अर्थ हुआ कि अतिरिक्त उत्पादन OQ_1, पर फर्म को RJN के समान हानि होगी। इसी प्रकार आप यह भी सिद्ध कर सकते है OQ से कम उत्पादन करने पर भी एकाधिकारी का लाभ कम हो जाएगा।

यदि लाभ फलन II = TR – TR TC हो तथा TR व TC दोनों उत्पादन की मात्रा से सम्बद्ध हों तो अधिकतम लाभ की शर्तें उत्पादन के उस स्तर पर पूरी होगी, जहां

$$\frac{DII}{dq} = \frac{dTR}{dq} = \frac{dTC}{dq} = 0, \text{ तप तथा}$$

$$\frac{D^2II}{dq^2} = \frac{d^2TR}{dq^2} = \frac{d^2TC}{dq^2} < 0, \text{की स्थिति हो}$$

इस प्रकार एकाधिकारी अधिकतम लाभ प्रदान करने वाले उत्पादन स्तर एवं कीमत का निर्धारण करता है।

15.4.2 एकाधिकार एवं लाभ

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, यथा संभव एकाधिकारी अपने लाभ की राशि को अधिकतम करने का प्रयास करता है। चित्र 15.2b में उसे OQ इकाइयों का उत्पादन करने पर OP कीमत पर प्रति इकाई KL रुपए का लाभ प्राप्त होता है। उसका कुल लाभ इस मात्रा का उत्पादन करने पर KLCP है। आप यह देख चुके है कि किसी भी अन्य मात्रा के उत्पादन पर उसके लाभ में कमी हो जाएगी। यही कारण है कि प्राय: एकाधिकारी दीर्घकाल में भी अपने उत्पादन का स्तर यथावत् रखता है।

15.4.3 एकाधिकारी फर्म को हानि

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, कभी कभी मांग का स्तर कम होनें, अथवा लागत का स्तर ऊंचा होने (अथवा दोनों कारणों से) के फलस्वरूप एकाधिकारी को लाभ नही हो पाता, अपितु उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर उसे हानि होने की संभावना रहती है।

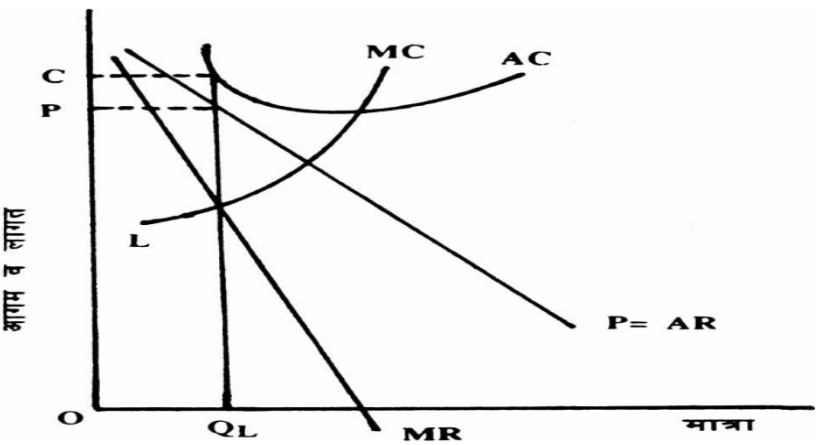

चित्र 15.3 एकाधिकारी फर्म को हानि

चित्र 15.3 में औसत लागत का स्तर कीमत अथवा मार की तुलना में उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर अधिक है। ऐसी स्थिति में एकाधिकारी अपनी हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा। हानि को न्यूनतम करने की शर्ते भी वही है जो लाभ को अधिकतम करने की थी। अस्तु उत्पादन के उस स्तर फर्म की हानि न्यूनतम होती है जहां (अ) MR = MC हो, तथा (आ) MC वक्र MR रेखा को नीचे से काटता है। यह बिन्दु L है जहां उत्पादन की मात्रा OQ_2, कीमत का स्तर OP है, तथा एकाधिकुारी को प्रति इकाई PC

रुपए के बराबर हानि होती है। आप चित्र 15.3 में यह भी देख सकते है कि उत्पादन का स्तर OQ_2 से कम या अधिक होने पर फर्म की कुल हानि में वृद्धि हो जाएगी।

15.5 दीर्घकाल मे एकाधिकारी फर्म की स्थिति

ऊपर यह बतलाया गया था कि यदि एकाधिकारी को अल्पकाल में लाभ हो रहा हो तो उसे यह लाभ दीर्घकाल तक मिलता रहता है, क्योंकि नई कर्मों के प्रवेश की कोई भी संभावना एकाधिकार वाले बाजार में नही होती।

परन्तु बहुधा एकाधिकारी फर्म अपने लाभ की राशि को दीर्घकाल में कई गुना बढ़ाने का प्रयास करती है। ऐसी दशा मे वह अपने पैमाने का विस्तार करके कम लागत पर अधिक उत्पादन प्राप्त करेगी। चित्र 15.4 में यह बतलाया गया है कि अल्पकाल में साम्य स्थिति (अधिकतम लाभ की दशा) मे पहुंचने के बाद फिर एकाधिकारी पैमाने का विस्तार करके किस प्रकार दीर्घकालीन साम्य स्थिति में पहुंचती है।

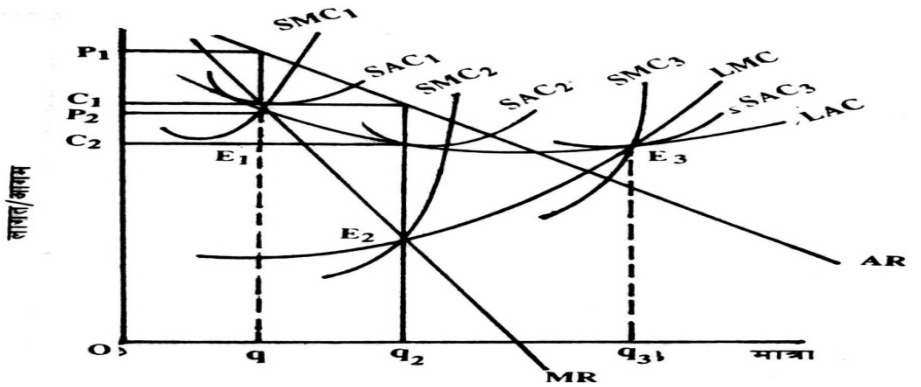

चित्र 15.4 एकाधिकारी फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति

जैसा कि इकाई 13 मे बतलाया गया था, किसी भी फर्म की अल्प तथा दीर्घकालीन साम्य स्थितियों की शर्तें इस प्रकार होती है

1. अल्प काल में

$$MR = MC$$

2. दीर्घकाल में

$$MR = SMC = LMC$$

अन्य शब्दों मे, दीर्घकाल में फर्म पैमाने तथा प्लांट दोनों की दृष्टि से अधिकतम लाभ अर्जित करने का प्रयास करती हैं। चित्र 15.4 में फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति E_1 से ज्ञात होती है जहां SMC_1 = MR से सम्बद्ध oq_1 इकाईयों का उत्पादन किया जाता है। कुछ इस स्तर पर कीमत का स्तर OP_1 तथा कुल $P_1C_1N_1,J$ है। जैसा कि आप देख सकते है, उत्पादन का यह स्तर प्रथम प्लांट से सम्बंद्ध है।

अब मान लीजिए, फर्म एक औंर प्लांट स्थापित करती है। इस प्लांट से सम्बंद्ध औसत व सीमान्त लागतें क्रमश: SAC_2 व SMC_2 है। जैसा कि चित्र 15.4 में देखा जा सकता है। E_2 बिन्दु पर SMC_2, LMC_2

तथा MR समान है। यही फर्म का दीर्घकालीन साम्य बिन्दु है जहां उत्पादन का स्तर oq_2 हे तथा कीमत OP_2 है तथा कीमत OP_2 है इस स्तर पर फर्म का लाभ P_2C_2LK है।

क्या फर्म दीर्घकाल मे इष्टतम पैमाने पर उयादन कर सकती है :

इकाई 13 में आपने पढ़ा था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अर्न्तगत फर्म दीर्घकाल में उस स्तर पर उत्पादन करती है जहां LAC न्यूनतम हो, यानी जहां LAC = LMC = SAC = SMC की स्थिति हो। एकाधिकारी फर्म के लिए उस स्तर पर उत्पादन बढ़ाना संभव नहीं है। जैसा कि आप चित्र 15.4 में देख सकते है, पैमाने का इष्टतम स्तर oq_3 इकाईयों के उत्पादन पर होगा परन्तु इस स्तर पर LAC व SAC का स्तर कीमत से अधिक है और इस कारण फर्म को दीर्घकाल में पेशने के विस्तार के बावजूद हानि होती है। आप यह भी देख सकते है कि oq_3 इकाइयों का उत्पादन करने पर फर्म का सीमान्त आगम ऋणात्मक हो जाता हैं। इसलिए प्राय: यह कहा जाता है कि दीर्घ काल में एकाधिकार फर्म के लिए पैमाने के इष्टतम स्तर पर उत्पादन करना आवश्यक नहीं है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत यह एक अनिवार्य शर्त होती है।

15.5.1 अल्पकालीन हानि से दीर्घकालीन लाभ की ओर

आपने ऊपर यह देखा कि कभी-कभी अल्पकाल में एकाधिकारी को हानि भी वहन करनी पड़ सकती है। ऐसी स्थिति में उसका लक्ष्य हानि को न्यूनतम करना होगा। परन्तु कोई भी एकाधिकारी दीर्घकाल तक हानि कदापि वहन नही करेगा। वह इस प्रकार के उपाय अपनाता है जिससे उसकी अल्पकालीन हानि दीर्घकालीन लाभ के रूप में परिवर्तित हो जाए।

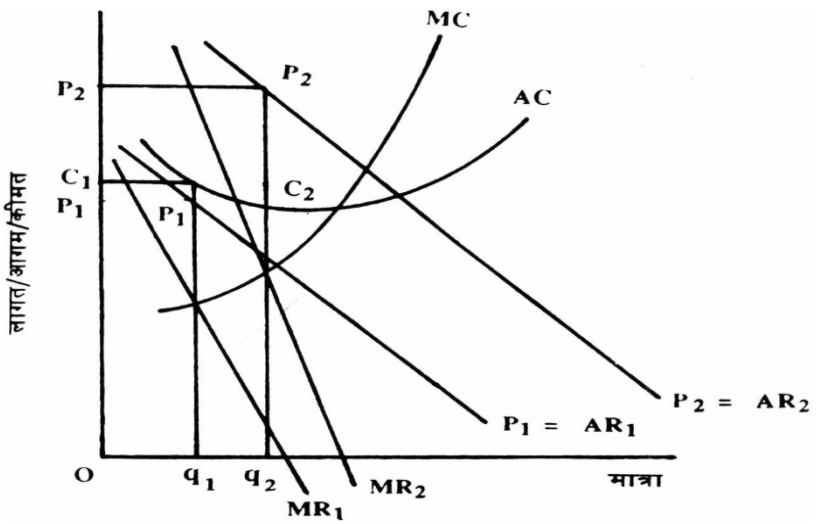

चित्र 15.5 एकाधिकारी द्वारा अल्पकालीन हानि को दीर्घकालीन लाभ के रूप में परिवर्तित करना

चित्र 15.5 में मूलत: मांग का स्तर कम होने के कारण उसकी आगम रेखाएं क्रमश AR_1 एवं MR_2 थी तथा न्यूनतम हानि वाला उत्पादन स्तर oq_1, था जहां उसे प्रति इकाई C_1P_1, हानि हो रही थी। दीर्घकाल में एकाधिकारी मांग में वृद्धि करने हेतु विभिन्न उपाय करता है जिसके फलस्वरूप आगम रेखाएं विवर्तित होकर क्रमश: AR_2 मार व MR_1 हो जाती है। फर्म की साम्य स्थिति अब oq_2 उत्पादन स्तर पर होती है

जहां कीमत OP_1 से बढ़ कर OP_2 हो जाती है। आप यह देख सकतें है कि मांग मे वृद्धि के फलस्वरूप कीमत में भी वृद्धि होती है, तथा इसके कारण (दीर्घकाल में) फर्म साम्य उत्पादन स्तर को बढ़ाकर oq_2 कर देती है। फर्म का प्रति इकाई लाभ झा स्वर पर P_2 C_2 हो जाता है।

आप चित्र 15.5 में एक महत्वपूर्ण बात यह स्पष्टतः देख सकते है कि मांग में वृद्धि होने पर जब कीमत बढ़ती है, तभी फर्म का उत्पादन स्तर भी बढ़ता है और अल्पकालीन हानि दीर्घकालीन लाभ मे बदल जाती है।

15.6 एकाधिकार का आर्थिक कल्याण पर प्रभाव

यदि एकाधिकार की तुलना एक पूर्ण प्रतियोगिता घोल बाजार से की जाए तो यह सहज मे स्पष्ट हो जाता है कि जहां पूग प्रतियोगिता के अर्न्तगत आर्थिक कारण अधिकतम होता है (पिछली इकाई देखिए) वही एकाधिकार के कारण उपभोक्ताओं को भारी उठानी पड़ती है।

चित्र 15.6 में एकाधिकार व पूग प्रतियोगिता से सम्बद्ध कीमतों तथा उत्पादन की तुलना की गई है।

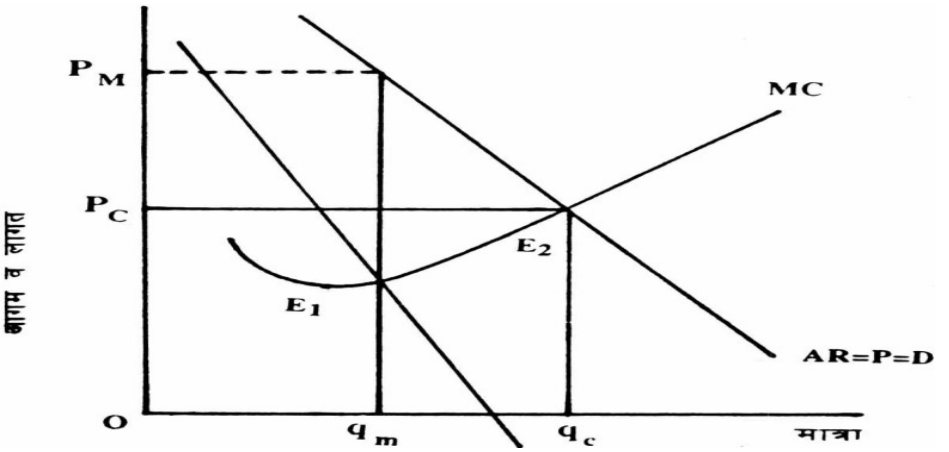

चित्र 15.6 प्रतियोगिता एवं एकाधिकारी बाजारों की तुलना

चित्र 15.6 में E_1 बिन्दु पर एकाधिकारी को साथ स्थिति प्राप्त होती है क्योंकि यही पर फर्म की MR व MC में समानता है। इससे सम्बंद्ध उत्पादन की (अधिकतम लाभ वाली) मात्रा Oqm एवं कीमत Opm होगी। अब मान लीजिए, यही बाजार प्रतियोगी बाजार के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। जैसा कि आप पिछली इकाइयों में पढ़ चुके है, यदि पूरे बाजार पर एक फर्म का अधिकार हो तो बाजार मांग व फर्म से संबद्ध मांग में कोई अन्तर नही होता। अस्तु मार या कीमत रेखा को बाजार का मांग वक्र भी माना जा सकता है।

आप यह भी जानते है कि प्रतियोगी बाजार में, बाजार या उद्योग का पूर्ति वक्र वस्तुत फर्मो की सीमान्त लागत का क्षेतिज योग ही होता है। इस प्रकार प्रतियोगी बाजार की साम्य स्थिति पर प्राप्त होगी जहां मांग (AR = P = D) एवं पूर्ति (MC) समान है। इस दृष्टि से प्रतियोगी बाजार की कीमन OPc एवं साम्य मात्रा oqc होगी।

दोनों बाजारों की तुलना करने पर दो प्रमुख बात स्पष्ट होती है।

1. प्रतियोगी बाजार में वस्तु की कीमत एकाधिकार वाले बाजार से कम होती है। (OPc<OPm)
2. प्रतियोगी बाजार में वस्तु का कुल उत्पादन एकाधिकार वाले बाजार की तुलना में अधिक हाता है। (oqc>oqm)

इसके अलावा प्रतियोगी बाजार की तुलना में एकाधिकार के अर्न्तगत दो अन्य देभ और भी उतन हो जाते है

इसके अलावा प्रतियोगी साधन के स्वामी को उसके उत्पादन में योगदान के अनुरूप पारिश्रमिक नहीं चुकाता जो वस्तुत: शोषण का प्रतीक है।

एकाधिकारी द्वारा कम उत्पादन करने के कारण साधनों का प्रयोग भी कम मात्रा में किया जाता है। प्राय: एकाधिकार की प्रवृत्ति बढ़ने के साथ साधनों की बेरोजगारी भी बढ़ती है।

कुल मिलाकर यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि एकाधिकार के फलस्वरूप आर्थिक कल्याण में हास होता है।

15.7 सरकार द्वारा एकाधिकारी फर्म पर नियंत्रण

आपने ऊपर देखा कि प्रतियोगी बाजार की तुलना में एकाधिकारी फर्म अधिक कीमत वसूल करती है तथा वस्तु की उत्पादन की मात्रा भी कम होती है। एक प्रश्न उठता है क्या सरकार एकाधिकारी कीमत पर नियंत्रण लागू कर सकती है? यदि हां, तो किस सीमा तक यह नियंत्रण संभव है : प्रस्तुत खण्ड में आप यही पढ़ेंगे कि एकाधिकारी फर्म को सरकार किस प्रकार तथा किस सीमा तक नियंत्रित कर सकती है।

सरकार एकाधिकारी फर्म पर दो प्रकार के नियंत्रण लागू कर सकती है : प्रथम, उस पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कर लगाकर और द्वितीय, कीमत पर नियंत्रण लागू करके।

करारोपण - यदि एकाधिकारी फर्म के उत्पादन पर कर लगाया जाए तो उससे वस्तु की कीमत में वृद्धि हो जाती है। कर का कितना अंश उपभोक्ता वहन करेंगे और कितना एकाधिकारी, यह वस्तु की मांग की लोच पर निर्भर करता है। मांग की लोच जितनी कम होगी, कर का उतना ही अधिक भाग उपभोक्ता पर अन्तरित किया जाएगा। यानी वस्तु की कीमत उतने ही अनुपात में बढ़ जाएगी।

इसके विपरीत एकाधिकारी के लाभ पर भी सरकार कर लगा सकती है उस दशा में कर की समूची राशि उस फर्म को ही वहन करनी होगी तथा वस्तु की कीमत भी यथावत् रहेगी।

कीमत पर नियंत्रण

यदि सरकार इस बात से आश्वस्त हो जाती है कि एकाधिकारी बाजार में उपभोक्ताओं का शोषण रोकने हेतु कीमत नियंत्रण आवश्यक है तो वह कीमत नीति की घषणा करके एकाधिकारी को इस बात के लिए बाध्य कर सकती है कि वह नियंत्रित कीमत पर ही वस्तु को बेचे। इससे अधिक कीमत लेने पर फर्म को दंडित किया जा सकता है।

चित्र 15.7 में एकाधिकारी अपनी वस्तु के लिए OPm एक कीमत वसूल करता है तथा oqm मात्रा बेच कर अधिकतम लाभ अर्जित करता है। यहां एकाधिकारी की साम्य स्थिति Eo बिन्दु पर होती है।

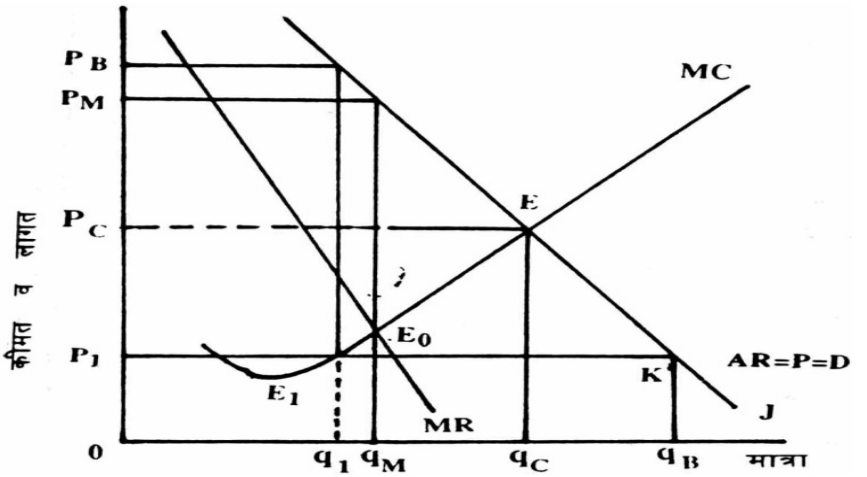

चित्र 15.7 एकाधिकारी कीमत पर नियंत्रण

अब मान लीजिए, सरकार OPm के बदले OP_1 कीमत पर एकाधिकारी को वस्तु बेचन के लिए बाध्य करती है। इस दशा में एकाधिकारी की वस्तु का मांग वक्र P_1KJ हो जाता है जो K बिन्दु तक क्षैतिज इसलिए है कि फर्म स्थिर कीमत पर ही वस्तु बेचने को बाध्य हो, इससे अधिक पर नहीं। इस कीमत पर फर्म साम्य स्थिति में E_1 बिन्दु पर होगी जहां अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु वह oq_1 इकाइयां ही बेचना चाहेगी। परन्तु जैसा कि आप देख सकते है, इस कीमत (OP_1) पर वस्तु की बाजार मांग $P_1K = oqB$ है। अन्य शब्दों में, OP_1 पर बाजार में पूर्ति की अपेक्षा मांग बहुत अधिक है। चूंकि एकाधिकारी ऐसी स्थिति में कानूनी दृष्टि से कीमत नही बढ़ा सकता, वह छिपे तौर पर oq_1 मात्रा के लिए OBP कीमत वसूल करेगा। यह कीमत काला बाजार की कीमत भी कही जा सकती है। अस्तु, सरकार द्वारा बहुत कम कीमत निर्धारित करने पर काला बाजार प्रारंभ हो जाता है।

इस स्थिति में सरकार यदि उपभोक्ताओं को वस्तुत: राहत देने हेतु कीमत-नियंत्रण करना चाहती है तो जिस न्यूनतम सीमा तक कीमत को कम करना वांछनीय है वह OPc है। यह कीमत एकाधिकारी कीमत से कम है। ($OPc < OP_M$ तथा फर्म पर इस अधिक मात्रा भी बेचने को सहमन हो जाती है। आप यह समझ गए होंगे कि वस्तुत: OPc प्रतियोगी बाजार की कीमत है, क्योकि इस पर बाजार पूर्ति वक्र (MC) तथा मांग वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं तथा साम्य मात्रा OPc का निर्धारण होता है।

बोध प्रश्न

अपना उत्तर लिखने के 'लिए प्रश्न के अन्त में छोड़ी गई खाली जगह का प्रयोग करे।

इकाई के अन्त में प्रस्तुत संकेतों से अपने उत्तर का मिलान करें।

1. एकाधिकार की उत्पत्ति के कारण बताइए। एकाधिकार के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रातिया कौन सी है?

2. एकाधिकार वाले बाजार में कीमत निर्धारण किस प्रकार होता है? इस बाजार की पूर्ण प्रतियोगिता से तुलना कीजिए।
3. कीमत विभेद का अर्थ एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए। एक एकाधिकारी किस प्रकार कीमत विभेद करता है?

15.8 सारांश

जिस बाजार में वस्तु की समूची पूर्ति एक ही फर्म या विक्रेता द्वारा नियंत्रित हो उसे एकाधिकार कहा जाता है। एकाधिकारी स्वयं ही वस्तु की कीमत का निर्धारण करता है। परन्तु कीमत निर्धारण इस प्रकार किया जाता है। कि निर्दिष्ट मात्रा की बिक्री करने पर उसका लाभ अधिकतम हो या हानि न्यूनतम हो।

एकाधिकार के अर्न्तगत फर्म का कोई पूर्ति वक्र नही होता। वह फर्म साम्य कीमत पर उतनी मात्रा बेचती है जहां उसे अधिकतम लाभ हो। कीमत बढ़ने पर फर्म की बिक्री कम होगी। इसके विपरीत बिक्री की मात्रा बढ़ाने पर उसें कीमत में कमी करनी होगी जिससे सीमान्त आगम भी कम होगा जबकि उत्पादन की सीमान्त लागत बढ़ जाएगी। इस प्रकार अधिकतम लाभ वाले स्तर से अधिक उत्पादन करने पर प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से उसे हानि होगी।

यदि एकाधिकारी को अल्पकाल में लाभ हो रहा है तो प्राय : ये लाभ दीर्घकाल में भी मिलते रहते है। कभी-कभी अल्पकाल में एकाधिकारी को हानि हो सकती है। उस स्थिति में फर्म मांग में वृद्धि करके हानि को दीर्घकालीन लाभ में बदल लेती है। एकाधिकारी फर्म यदि पैमाने का विस्तार करती है तो दीर्घकालीन साम्य वहां स्थापित होगा जहां सीमांत आगम, दीर्घकालीन सीमांत लागत तथा अल्पकालीन (प्लांट) सीमान्त लागत में समानता हो।

कभी-कभी एकाधिकारी के समक्ष दो या अधिक बाजार होते है तथा इनकी मांग की लोच में अन्तर पाया जाता है। ऐसी दशा में वह भिन्न भिन्न कीमतों पर वही वस्तु बेचता है। जिस बाजार में मांग की लोच अपेक्षाकृत कम है वहां अधिक कीमत वसूल की जाती है। इसे कीमत विभेद की नीति कहा जाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकार वाले बाजार में कीमत अधिक होती है तथा उत्पादन की मात्रा कम होती है। तब साधनों का शोषण होता है तथा उनकी काफी मात्रा उपयुक्त रहती है। इसी कारण सरकार करारोपण या कीमत-नियंत्रण की नीति अपनाती है।

यदि सरकार एकाधिकारी पर अंकुश लगाने हेतु बहुत कम कीमत निर्धारित करती है तो इससे काला बाजार की स्थिति उत्पन हो जाती हैं।

15.9 शब्दावली

क्रेताधिकार : बाजार की वह स्थिति, जिसमें वस्तु का केवल एक क्रेता ही समूची बाजार मांग को नियंत्रित करता है, क्रेताधिकार कहलाती है।

द्वयाधिकार : जब किसी बाजार में एक क्रेता तथा एक ही विक्रेता हो तो वह द्वयाधिकार की स्थिति मानी जाती है। द्वयाधिकार के अन्तर्गत वस्तु की कीमत निर्धारण प्रक्रिया काफी अनिश्चित एवं जटिल होती है।

सीमान्त आगत : किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई की बिक्री से कुल आगम में जो वृद्धि होती है वह सीमान्त आगम है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के लिए वस्तु की कीमत यथावत् रहती है और इस कारण कीमत व सीमान्त आगम समान रहते है। (MR=P) परन्तु एकाधिकारी बिक्री बढ़ाने हेतु कीमत में कमी करता है और उससे दो गुनी कमी सीमान्त आगम में होती हैं।

कीमत विभेद : यदि एक ही वस्तु की अलग-अलग क्रेताओं से अलग ली जाए अथवा एक ही क्रेता से थोक व रिटेल कीमतें अलग-अलग वसूल की जाएं तो यह कीमत विभेद की नीति कहलाती है।

काला बाजार : सरकार कभी-कभी किसी वस्तु की कीमत निर्धारित इतने कम स्तर पर करती है कि वस्तु के उत्पादक उसकी पूर्ति को काफी घटा देते है। परन्तु दूसरी ओर कीमत कम होने से मांग काफी अधिक हो जाती हैं। इस अभाव की स्थिति से लाभ उठाकर उत्पादक छिपे तोर पर वस्तु की बहुत ऊँची कीमत वसूल करते है। यह स्थिति काला बाजार की स्थिति कहलाती है।

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तके

A.Koutsoviannis,Modern Microeconomics (Second Edition)1985

William Sher and Rudy Pinola,Micro Economic Teory (Edward Arnold)

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर संकेत

एकाधिकार का प्रारंभ प्राय : इसलिए होता है कि किसी वस्तु के एक उत्पादक को जो विशिष्टताएं प्राप्त है वह किसी अन्य उत्पादक को उपलब्धि नही है। ये विशिष्ट घटक निम्न हो सकते है कच्चे माल पर नियंत्रण, तकनीकी वर्चस्व, पेटेंट कानून, सरकारी नीति एवं संरक्षण, मांग का छोटा आकार, सार्वजनिक एकाधिकार तथा उच्चस्तरीय दक्षता।

अनेक बार एकाधिकार के विषय में भांतियां प्रचलित हो जाती है। कुछ लोग कहते है कि एकाधिकारी मनमानी कीमत पर मनचाही मात्रा बेच सकता है। कुछ ऐसा मानते है कि एकाधिकारी द्वारा निर्मित वस्तु की मांग बेलोच होती है। कुछ अन्य ऐसा प्रचार करते है कि एकाधिकारी फर्म सदैव लाभ ही अर्जित करती है। वस्तुत : ये सभी धारणाएं निर्मूल है।

एकाधिकारी अधिकतम लाभ या न्यूनतम हानि की प्राप्ति हेतु उस स्तर पर उत्पादन करता है जहां सीमान्त अगम व सीमान्त लागत में समानता होती है तथा सीमान्त लागत वक्र सीमान्त अगम वक्र को नीचे से काटता है। इससे अधिक या कम उत्पादन होने पर फर्म के लाभ में कमी हो जाएगी।

एकाधिकार में सीमान्त आगम प्राय : कीमत से काफी कम होता है। (MR<P) जबकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के लिए दोनों में समानता होती है।(MR=P) यही कारण है कि अधिकतम लाभ वाले

उत्पादन स्तर पर पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत का स्तर एकाधिकारिक कीमत से कम होता है। यही नही, बाजार में वस्तु का उत्पादन भी एकाधिकार के अन्तर्गत पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा कम होता है।

कीमत विभेद के अन्तर्गत एक विक्रेता एक ही वस्तु की अलग-अलग क्रेताओं से अलग कीमत लेता है। परन्तु यह नीति तभी सफल हो पाती है जबकि कम से कम एक बाजार में फर्म को एकाधिकार प्राप्त हो। यह भी जरूरी है कि भिन्न-भिन्न बाजारों में मांग की लोच भिन्न हो तथा कम कीमत वाले बाजार से वस्तु की पुन : बिक्री अधिक कीमत वाले बाजार में न हो सकें।

जब एकाधिकारी एक ही बाजार में वस्तु को बेचता है तो सीमान्त लागत व सीमान्त आगम में समानता होने पर उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। परन्तु कीमत विभेद के अन्तर्गत अधिकतम लाभ तब प्राप्त होता है जब सभी बाजारों का सीमान्त आगम, सीमान्त लागत के समान हो (MR=MR=MC) कीमत विभेद के संदर्भ में मांग की लोच व किसी बाजार में ली गई कीमत में परस्पर विपरीत संबंध होता है।

इकाई – 16

विभेदकारी एकाधिकार के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन का निर्धारण

Determine the **P**rice and **P**roduction of **D**iscriminating **M**onopoly

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 विभेदकारी एकाधिकार, विभेदकारी एकाधिकारी एवं कीमत विभेदीकरण की धारणा

16.3 कीमत विभेदीकरण के विभिन्न स्वरूप

- 16.3.1 व्यक्तिगत
- 16.3.2 सामूहिक
- 16.3.3 उपज

16.4 कीमत विभेदीकरण के प्रकार

- 16.4.1 प्रथम स्तर
- 16.4.2 द्वितीय स्तर
- 16.4.3 तृतीय स्तर

16.5 कीमत विभेदीकरण के संभव होने एवं लाभकारी होने की शर्तें

- 16.5.1 कीमत विभेदीकरण संभव होंने की शर्तें
- 16.5.2 कीमत विभेदीकरण के लाभकारी होने की शर्तें

16.6 विभेदीकरण एकाधिकार के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन का निर्धारण

- 16.6.1 विभेदकारी एकाधिकारी का उद्देश्य
- 16.6.2 संतुलन शर्तें
- 16.6.3 विभिन्न मान्यताओं पर संतुलन बिन्दुओं का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

16.7 कीमत विभेदीकरण का औचित्य

16.8 सारांश

16.9 शब्दावली

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.11 अभ्यासों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

एकाधिकार बाजार में एकाधिकारी अपने उत्पादित वस्तुओं की मात्रा एवं कीमत किस प्रकार निर्धारित करता है उसकी विस्तृत जानकारी आप को इसके पहले वाले इकाई में हो गई है। इस इकाई में हम आप का परिचय एक विशेष प्रकार के एकाधिकारी से करायेंगे जिसे विभेदकारी एकाधिकारी के नाम से जाना जाता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

1. एकाधिकारी, विभेदकारी एकाधिकारी एवं कीमत विभेदीकरण को परिभाषित कर सकेंगे;
2. कीमत विभेदीकरण के संभव होने एवं लाभकारी होने के लिए निर्धारित शर्तों की जानकारी प्राप्त करेंगे;
3. संतुलन शर्तों को समझेंगे
4. संतुलन बिन्दुओं को रेखाचित्रों द्वारा दिखा पायेंगे; एवं
5. कीमत विभेदीकरण के औचित्य पर अपना मन्तव्य देने में सक्षम होंगे।

16.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम कीमत विभेदीकरण से संबंधित विषयों पर विचार करेंगे। कीमत विभेदीकरण के सहारे एकाधिकारी अपना लाभ बढ़ाने में सफल होता है। वस्तुत: कीमत विभेदीकरण हर स्थिति में संभव नही होता है। आप को कुछ विशेष शर्तों से अवगत कराया जायेगा जिसकी मौजूदगी में ऐसा करना संभव होता है और लाभदायक होता है। कीमत विभेदीकरण के विभिन्न स्वरूप एवं प्रकारों की व्याख्या आप इसी इकाई में पायेंगे। एक वस्तु उत्पादन एवं अनेक वस्तु उत्पादन की मान्यता पर विभेद एकाधिकारी किस प्रकार संतुलन स्थिति को प्राप्त करता है, इसकी विस्तृत जानकारी होगी। इसी इकाई में आप को राशिपातन की धारणा से भी अवगत कराया जायगा एवं इस स्थिति में विभेदकारी एकाधिकारी के व्यवहार पर प्रकाश डाला जायगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह निर्णय लेने के स्थिति में हो जायेंगे कि कीमत विभेदीकरण हितकर है या नही।

16.2 विभेदकारी एकाधिकारी, विभेदकारी एकाधिकार एवं कीमत विभेदीकरण की धारणा

आप यह जानते ही है कि एकाधिकारी (Monopolist) बाजार में किसी वस्तु विशेष का एक मात्र उत्पादक होता है। यही कारण है कि प्राय: एकाधिकारी अपने वस्तु का उत्पादन कम करता है और मूल्य अधिक रखता है। साधारणत: एकाधिकार बाजार में कीमत सभी के लिए एक ही होती है; कोई भी क्रेता

उस कीमत पर उस वस्तु को खरीद सकता है। कुछ विशेष परिस्थितियों में वह एक ही वस्तु का अलग-अलग कीमत वसूलने में भी समर्थ हो जाता है और ऐसा करना कभी-कभी लाभदायक ही होता है। इस तरह एकाधिकारी द्वारा एक वस्तु को विभिन्न क्रेताओं से भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेचना ही कीमत विभेदीकरण (Price Discrimination) कहलाता है। चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में वस्तु की कीमत प्राय: स्थिर होती है, कीमत विभेदीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता। अत: स्पष्ट है कि कीमत विभेदीकरण अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में ही संभव होता हैं एकाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार का ही एक रूप है। लेकिन इसका यह अभिप्राय: नही है कि कीमत विभेदीकरण के बिना अपूर्ण प्रतियोगिता संभव ही नही। सत्य तो यह है कि कीमत विभेदीकरण अपूर्ण प्रतियोगिता की कोई आवश्यक शर्त नही है। वस्तुत : कीमत विभेदीकरण बाजार में प्रचलित परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि एकाधिकारी किसी एक वस्तु को एक ही उपभोक्ता से विभिन्न कीमतों पर बेचने में सफल हो जाता है तो यह कीमत विभेदीकरण की चरम सीमा है जिसे पूर्णतया कीमत विभेदीकरण की संज्ञा दी जाती है। वैसे इस प्रकार की स्थिति व्यवहारिक जगत में प्राय: नही पायी जाती है।

अगर कोई एकाधिकारी अधिकतम लाभ कमाने के उद्देश्य से बाजार में कीमत विभेदीकरण की नीति अपनाता है तो ऐसे बाजार को विभेदकारी एकाधिकार (Discriminating Monopoly) कहते है। व्यक्ति विशेष जो इस तरह के बाजार में उत्पादन का काम संभालता है विभेदकारी एकाधिकारी Discriminating Monopolist) कहलाता है। इस तरह साधारण एकाधिकार और विभेदकारी एकाधिकार बाजार में उत्पादक निश्चित रूप से एकाधिकारी होता है और प्राय: एक ही वस्तु का उत्पादन करता है। अंतर केवल इस बात का है कि साधारण एकाधिकार बाजार में एक वस्तु की एक ही कीमत होती है लेकिन विभेदकारी एकाधिकार बाजार मे एक से अधिक कीमतें होती है और एकाधिकारी एक ही वस्तु विभिन्न क्रेताओं को भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेचने में समर्थ होता है।

16.3 कीमत विभेदीकरण के विभिन्न स्वरूप

कीमत विभेदीकरण के विभिन्न रूप होते है। कुछ विशेष तरह के कीमत विभेदीकरण जो एकाधिकारी को लाभ बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते है। ये इस प्रकार है -

16.3.1 व्यक्तिगत (Personal)

कीमत विभेदीकरण व्यक्तिगत होता है जब एक विक्रेता विभिन्न क्रेताओं से वस्तु की भिन्न-भिन्न कीमतें प्राप्त करता हैं। विभेदीकरण का आधार मुखत: क्रेताओं की आमदनी होती है। जैसे-एक वकील अपने विभिन्न मुवक्किलों से प्राय: एक ही तरह के काम के लिए अलग-अलग फीस लेता है, गरीबों से कम और अमीरों से अधिक।

16.3.2 सामूहिक (Group)

कीमत विभेदीकरण सामूहिक होता है जब विक्रेता क्रेताओं के एक समूह विशेष से एक ही कीमत लेता है लेकिन उन्हीं क्रेताओं के अलग-अलग समूहों से अलग-अलग कीमतें लेता है। इस तरह कें विभेदीकरण

का आधार क्रेताओं की उम्र, लिंग, स्थानीय एवं वस्तु का प्रयोग। जैसे - बच्चों एवं बडों के रेल किराये में अंतर, घरेलू प्रयोग एवं उद्योगों में प्रयोग के लिए बिजली-दर में अंतर इत्यादि।

16.3.3 उपज (Product)

कीमत विभेदीकरण उपज के अनुसार तब होता है जब वस्तु का उत्पादन एक ही क्रिया से करने के बाद उसमें थोड़ा अंतर कर अलग-अलग कीमतें ली जाती है।

उपज के अंतर परिमाणात्मक या गुणात्मक वृद्धि कर के, व्यावसायिक चिन्ह लगाकर या मौसम विशेष में प्रयोग आने वाली वस्तुओं का दूसरे मौसम में छूट देकर किया जा सकता है। जैसे -डी-लक्स मॉडल की वस्तुओं की अधिक कीमत होना एवं बिना व्यावसायिक चिन्ह के वस्तुओं का कम मूल्य होना।

16.4 कीमत विभेदीकरण के प्रकार

ऊपर के अध्ययन से स्पष्ट है कि एकाधिकारी कीमत विभेदीकरण के द्वारा अपना लाभ बढ़ाने का प्रयत्न करता है। एक एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत में कितना विभेद कर सकता है और ऐसा कर के शुद्ध लाभ को किस हद तक बढ़ा सकता है? इन्हीं प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए ए.सी. पीगू ने विभेदीकरण के स्तरों (Degree of Discrimination) के बारे में सोचा और कीमत विभेदीकरण को तीन स्तरों में रखा- प्रथम स्तर, द्वितीय स्तर और तृतीय स्तर।

16.4.1 प्रथम स्तर (First Degree)

प्रथम स्तर के कीमत विभेदीकरण में एकाधिकारी को यह जानकारी होती है कि उसकी वस्तु के लिए क्रेता अधिक से अधिक कितनी कीमत दे सकता है और तब वह अपनी वस्तु की कीमत उसी के अनुसार रखता है। इस तरह प्रथम स्तर के कीमत विभेदीकरण में उपभोक्ता को बचत का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु इस तरह के विभेदीकरण के लिए यह जरूरी है कि क्रेताओं की संख्या कम हो और सभी क्रेताओं के बारे में एकाधिकारी को पूर्ण जानकारी हो।

16.4.2 द्वितीय स्तर (Second Degree)

द्वितीय स्तर के कीमत विभेदीकरण में एकाधिकारी क्रेताओं के उपभोक्ता की बचत का एक हिस्सा ही ले पाता है; संपूर्ण नही। इस तरह का कीमत विभेदीकरण प्राय: ऐसे बाजारों में पाया जाता है; जहां बहुत अधिक क्रेता ही और एकाधिकारी कोई आम आदमी नहीं हो कर सरकार होती है जैसे-टेलीफोन सर्विस। टेलीफोन के लिये एक निर्धारित कॉल कें लिए एक न्यूनतम दर सभी उपभोक्ताओं पर लागू होती है। इसके बाद के कॉल का कीमत उपभोक्ताओ, द्वारा इसके प्रयोग पर निर्भर करेगी।

16.4.3 तृतीय स्तर (Third Degree)

तृतीय स्तर के कीमत विभेदीकरण में एकाधिकारी उपभोक्ताओं को दो या दो से अधिक वर्गों में बांट देता है और एक ही वस्तु के लिये उनसे अलग-अलग कीमत वसूल करता है। वर्गों से यहां अर्थ बाजारों से है

। तृतीय श्रेणी का कीमत विभेदीकरण ही प्राय: प्रचलन में पाया जाता है। अत: हम इसी तरह के कीमत विभेदीकरण का यहां विस्तृत अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न

अपने उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी हुई खाली जगह का प्रयोग करें।

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. कीमत विभेदीकरण क्या है ? यह अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में ही संभव होता है; क्यों?
2. व्यक्तिगत कीमत विभेदीकरण एवं सामूहिक कीमत विभेदीकरण में सोदाहरण अंतर बताइये।
3. प्रथम श्रेणी के कीमत विभेदीकरण में उपभोक्ता की बचत का प्रश्न ही नही उठता; ऐसा क्यों?

16.5 कीमत विभेदीकरण के संभव होने एवं लाभकारी होने की शर्तें

कीमत विभेदीकरण कहने से इसका अर्थ तृतीय श्रेणी के कीमत विभेदीकरण से ही होता है जिसमें क्रेताओं को विभिन्न समूहों में बांट कर भिन्न भिन्न कीमत ली जाती है। यहां हम इस बात का अध्यय न करेंगे कि किन परिस्थितियों में ऐसा करना संभव होता है और किन परिस्थितियों में लाभदायक होता है। पहले हम उन शर्तों का विवेचन करेंगे जिनमें कीमत विभेदीकरण संभव होता है एवं बाद में उन परिस्थितियों की व्याख्या करेंगे जिनमें ऐसा करना लाभदायक होता है।

16.5.1 कीमत विभेदीकरण संभव होने की शर्तें

कीमत विभेदीकरण के लिए निम्नलिखित शर्तो का होना जरूरी है, इसके अभाव में यह संभव ही नही होगा कि एकाधिकारी कीमत विभेदीकरण कर सके -

1. बाजारों के बीच की दूरी एक ही वस्तु को दो बाजारों में अलग-अलग कीमत पर बेचना तभी संभव हो सकेगा जब दो बाजारों के बीच की दूरी इतनी अधिक हो कि एक बाजार के क्रेता को दूसरे बाजार में जा कर खरीद करना अनार्थिक हो अर्थात् दोनों बाजारों में कीमतों में अंतर परिवहन व्यय से कम हो। जैसे दिल्ली का एक निर्माता अपनी वस्तु को दिल्ली में 10 रु0 में बेचता हो तो उसी 'वस्तु को वह कलकत्ता बाजार में 15 रु0 में बेच सकता है क्योंकि दिल्ली से कलकत्ता की दूरी इतनी अधिक है कि क्रेताओं को उस वस्तु की खरीद करने के लिए, कलकत्ता आना अनार्थिक होगा क्योंकि 5 रु0 बचाने के लिए उसे उससे अधिक व्यय करने होगा जो कि एक विवेकशील क्रेता के लिए उचित नही है।
2. वस्तु अथवा सेवा की प्रकृति : वस्तु अथवा सेवा की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए कि उसे एक बाजार से दूसरे बाजार में हस्तांतरित करना संभव नही हो; अन्यथा कीमत विभेदीकरण संभव नही होगा। जैसे-एक सर्जन किसी विशेष ऑपरेशन के लिए निर्धन एवं धनी व्यक्तियों से भिन्न-भिन्न फीस लेने में समर्थ होता है क्योंकि सर्जन को अपनी सेवा की पूर्ति करने के लिए स्वयं को व्यक्तिगत रूप से कार्य करना पड़ता है और इसलिए उसकी सेवा का हस्तांतरण नही हो सकता

और न ही धनी व्यक्तियों के लिए यह संभव हो सकता है कि वे कम फीस देने के लिए निर्धन बन जाये।

3. आयात-निर्यात करो की स्थिति आयात-निर्यात करों का संबंध विदेशी व्यापार से होता है। अगर यह मान ले कि एकाधिकारी अपने वस्तु का एक हिस्सा घरेलू बाजार में बेचता है और शेष हिस्सा विदेशों में निर्यात करता है। यदि स्थिति ऐसी हो कि स्वदेश में विदेशी वस्तुओं पर आयात कर लगता हों और विदेश में जहां वह निर्यात करता है वहां आयात कर नहीं लगा हुआ हो तो स्वदेश में लगे आयात कर का लाभ उठाकर, अपने देश के बाजार में वस्तु को अधिक कीमत पर और विदेशी बाजार में कम कीमत पर बेचने में सफल हो सकता है। इस तरह की स्थिति को राशिपातन (Dumping) की संज्ञा दी जाती है।
4. कानूनी आधार. कई हालतों में कीमत विभेदीकरण कानूनी आधार पर किया जाता है। विभिन्न श्रेणियों में रेल यात्रा करने का भिन्न-भिन्न किराया चुकाना पड़ता है। द्वितीय श्रेणी का टिकट लेकर आप प्रथम श्रेगी में यात्रा नही कर सकते है; क्योंकि ऐसा करना कानूनी अपराध है। यही कारण है कि रेल कम्पनी समान दूरी के लिए विभिन्न श्रेणी में यात्रा करने वालों से भिन्न-भिन्न किराया वसूल करने में समर्थ होती हैं।
5. क्रेताओं की अभिरूचि बहुत से क्रेता अपनी जरूरत की चीजों को वातानुकूलित बाजार में ही खरीदना पसंद करते है और सुंदर-सुंदर पैकेटों में भरी चीजों की मांग करते है। ऐसी स्थिति में विक्रेता भी इसका लाभ उठाकर एक ही वस्तु को विभिन्न रंग-बिरंगे पैकेटों मे भर कर वातानुकूलित बाजारों में अपेक्षाकृत ऊँची कीमतो पर बेच कर कीमत विभेदीकरण कर पाने में समर्थ होते है।
6. क्रेताओं की अज्ञानता एवं आलस्यपन : कभी-कभी क्रेताओं की अज्ञानता एवं आलस्यपन भी कीमत विभेदीकरण को संभव कराता है। जैसे - कोई विक्रेता एक ही शहर के दो बाजारों में विभेदीकरण कर रहा है। परन्तु ऊंची कीमत वाले बाजार के क्रेताओं को इस बात का ज्ञान नही हो कि वही वस्तु पास वाली बाजार में कम कीमत पर उपलब्ध है तो विक्रेता कीमत विभेदीकरण का लाभ उठाता रहेगा। यदि इसका ज्ञान हो भी जाय और आलस्यवश वह सस्ते बाजार में खरीदने के लिए नही जाना चाहे तो भी कीमत विभेदीकरण लागू रहेगा। इस तरह इन परिस्थितियों में यदि अज्ञानता दूर हो जाय अथवा आलस्य त्याग दिया जाय तो कीमत विभेदीकरण संभव नही हो सकेगा।
7. प्रयोग विशेष के लिए सेवाओं की मांग यदि एक ही सेवा की जरूरत विभिन्न प्रयोजनों के लिए होती हो तो विभिन्न प्रयोजनों के लिए एक ही सेवा की कीमत अलग-अलग हो सकती है। जैसे रेलवे,रुई और कोयला के परिवहन के लिए भिन्न-भिन्न दरें प्राप्त करती हैं। ऐसा करना संभव भी होता है क्योंकि रूई की गांठ को कोयले में बदल कर कोयले की परिवहन की कम दरों का लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

16.5.2कीमत विभेदीकरण के लाभकारी होने की शर्तें :

ऊपर वर्णित शर्तों की उपस्थिति में कीमत विभेदीकरण संभव होगा, इसमें कोई दो मत नही हैं। लेकिन संभव होने का यह मतलब नही है कि वह एकाधिकारी के लिए लाभदायक भी सिद्ध होगा। इसलिए अब हम उन शर्तों के बारे में आप को अवगत करायेंगे जो कीमत विभेदीकरण के लाभकारी होने के लिए जरूरी है। यहां हम दो मुख्य शर्तो के बारे में बतायेंगे-

1. मांग की लोच के आधार पर बाजार का विभाजन बाजार का विभाजन कीमत विभेदीकरण के लिए आवश्यक है। बाजार का विभाजन कई तरह से किया जा सकता है। जैसे मांग की लोच के अनुसार, दिशा के आधार पर, जाति के आधार पर, जनसंख्या के घनत्व के आधार पर। अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए विभेदकारी एकाधिकारी को मांग की लोच के अनुसार ही बाजार का विभाजन करना होगा क्योंकि एकाधिकारी के लाभ का सीधा संबंध वस्तु के कीमत से होता है और कीमत मांग की लोच से संबंधित होती है। इस तरह मांग की लोच में विभिन्नता एक जरूरी शर्त है क्योंकि इसके बिना बाजार का वर्गीकरण तो संभव हो सकता है लेकिन लाभदायक नही।
2. उप-बाजारों के कीमत में विभिन्नता. मांग की लोच के आधार पर बाजार को विभाजित कर अलग-अलग बाजारों में एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न कीमतो पर बचा जा सकता है। मान लिया जाय कि एकाधिकारी अपने बाजार को दो ही भागों में बांटता है - पहला जिसमें मांग की लोच इकाई से कम (बेलोचदार) और दूसरा जिसमें मांग की लोच इकाई से अधिक (लोचदार) है। ऐसी स्थिति में कीमत विभेदीकरण नीति का अनुसरण करना एकाधिकारी फर्म के लिए सिर्फ संभव ही नही, लाभदायक भी होगा। एकाधिकारी पहले बाजार में वस्तु की कीमत को बढ़ा देगा क्योंकि इस बाजार में मांग लोचदार है। अत: कीमत में की गई वृद्धि से वस्तु की मांग में अधिक गिरावट नही होगी। इसी तरह वह दूसरे बाजार में वस्तु की कीमत को कम कर देगा क्योंकि इस बाजार में मांग बेलोचदार है। मांग लोचदार होने का कारण दूसरे बाजार के कीमत में की गयी कमी से वस्तु के मांग में सराहनीय वृद्धि हो जायगी। इस तरह पहले बाजार में जहा मांग बेलोंचदार है, बिक्री में हुए कमी से आमदनी थोड़ी घट जाएगी। लेकिन दूसरे बाजार में जहां मांग लोचदार है, कीमत कटौती के परिणामस्वरूप बिक्री बढ़ेगी और आमदनी में काफी वृद्धि होगी। इस तरह वस्तु के अधिकांश स्टॉक का स्थानान्तरण बेलोचदार भाग वाले पहले बाजार से लोचदार मांग वाले दूसरे बाजार में करना एकाधिकारी के हित में होगा। अब प्रश्न यह उठता है कि एकाधिकारी कब तक वस्तु को एक बाजार से दूसरे बाजार में हस्तांतरित करता रहेगा? संतुलन की स्थिति क्या होगी? अर्थात् विभेदकारी एकाधिकार बाजार में कीमत एवं उत्पादन का निर्धारण किस प्रकार होता है? इन सारी बातों की विस्तृत जानकारी यहां प्राप्त करेंगे?

16.6 विभेदकारी एकाधिकारी के अंतर्गत कीमत एवं ऊत्पादन का निर्धारण

विभेदकारी एकाधिकारी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कीमत विभेदीकरण का सहारा लेता है। वह कितनी वस्तु का उत्पादन करेगा ओर किस कीमत पर बचेगा; यह उसके संतुलन बिन्दु पर निर्भर करता है । अत: संतुलन क्या है? इसकी क्या शर्तें है? और किसी खास परिस्थिति में वह किसी वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन करेगा इसकी विस्तृत जानकारी आवश्यक है । इस खण्ड में हम इन्हीं बातो पर विचार करेंगे ।

16.6.1 विभेदकारी एकाधिकारी का उद्देश्य

चूंकि विभेदकारी एकाधिकारी का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है; उत्पादन के दौरान उत्पादित वस्तु की मात्रा में तब तक स्थिरता नहीं आती जब तक कि एकाधिकारी के उद्देश्य की प्राप्ति नही हो जाती है । स्थिरता का मतलब उद्देश्य की पूर्ति हो जाना होता है और ऐसी स्थिति को संतुलन की संज्ञा दी जाती है । संतुलन की स्थिति को प्राप्त करने कें लिए विभेदीकरण कर रहे एकाधिकारी को यह निर्णय लेना पड़ता है कि वह वस्तु की कितनी मात्रा उत्पादित करे, उत्पादित वस्तु को विभिन्न बाजारों में किस प्रकार बाटे और उन उप-बाजारों में मूल्य कितना रखे?

16.6.2 संतुलन शर्तें

अधिकतम लाभ सिद्धान्त के अनुसार किसी भी बाजार में संतुलन की स्थिति वही प्राप्त होती है; जहां उत्पादन की सीमान्त आय (आगम) सीमान्त व्यय (लागत) के बराबर होती है । विभेदीकरण करने वाला एकाधिकारी भी इसी सिद्धान्त के अनुसार अपना निर्णय लेता है । सुविधा के लिए यह मान लें कि एकाधिकारी अपने बाजार को दो ही भागों में बांटेगा - बाजार - A और बाजार - B । कुल सीमान्त आय दो बाजारों के सीमान्त आय वक्रों को साथ-साथ रख कर जोड़ने से प्राप्त हो जायेगी । अब कुल उत्पादन की संतुलन मात्रा वहां निर्धारित होगी जहां कुल सीमान्त आय फर्म के सीमान्त व्यय के बराबर होगा । इस तरह कुल उत्पादन मात्रा निश्चित करने के पश्चात् अब विभेदकारी एकाधिकारी को अपने कुल उत्पादन को दो बाजारों में बांटने की समस्या है । वह इसे दो बाजारों में इस तरह बांटेगा कि उसे दोनों उफ्बाजारों से मिलने वाली सीमान्त आय बराबर हो । यदि यह बराबर नहीं हो तो उसके लिए यह लाभकर होगा कि वह वस्तु की कुछ मात्रा को कम सीमान्त आय प्राप्त हो रहे उस बाजार से ऐसें बाजार में हस्तांतरित करे जहां उसे सीमान्त आय अधिक प्राप्त हो और यह कम तब तक चलता रहेगा जब तक कि दोनों बाजारों से प्राप्त होने वाली सीमान्त आय बराबर नही हो जाती । बराबर हो जाने के बाद उसे हस्तांतरण का कोई लाभ नही मिलेगा । इस तरह हम देखते है कि विभेदकारी एकाधिकारी के संतुलन के लिए निम्न दो शर्तों का होना जरूरी है-

कुल सीमान्त आय (आगम) - सीमान्त व्यय (लागत)

बाजार - A की सीमान्त आय = बाजार - B की सीमान्त आय = सीमान्त व्यय (लागत)

16.6.3 विभिन्न मान्यताओ पर संतुलन बिन्दु ओं का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

इस खण्ड में हम रेखाचित्र की सहायता से सतुलन बिन्दु का प्रदर्शन विभिन्न मान्यताओं के आधार पर करेंगे। इस संदर्भ मे तीन मान्यताएं उल्लेखनीय है- एक वस्तु उत्पादन स्थिति, अनेक वस्तु उत्पादन स्थिति एवं राशिपातन की स्थिति।

1. एक वस्तु उत्पादन स्थिति

यदि हम यह मान लें कि एकाधिकारी एक ही वस्तु का उत्पादन कर रहा है तो सबसे पहले वह अपने बाजार को मांग की लोच के अनुसार विभाजित करेगा। यदि यह मान लें कि वह बाजार को दो ही भागों में बांटता है तो वे बाजार क्रमश: उप-बाजार-A और उप-बाजार-B होंगे। इन बाजारों कें औसत आय एवं सीमान्त आय के स्थिति को 16.1 में दिखाया गया है -

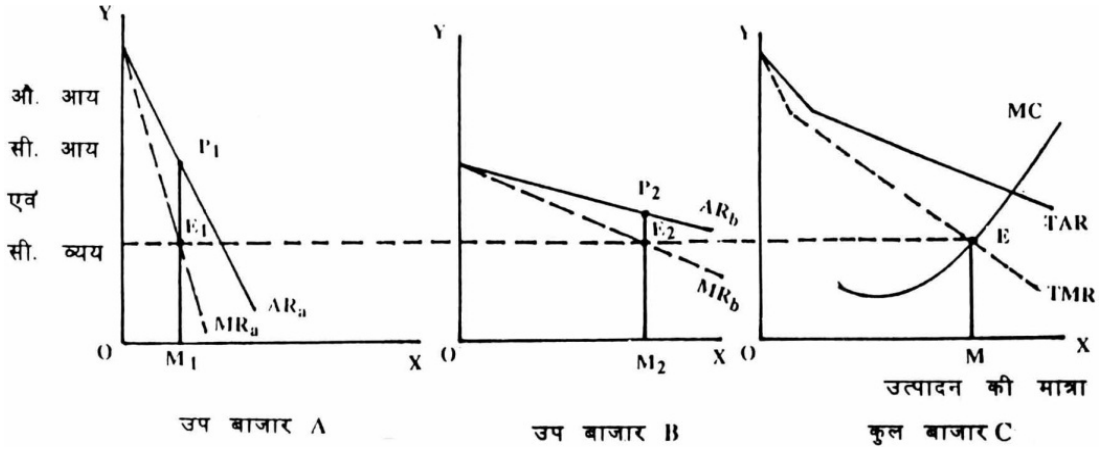

चित्र 16.1 में उप-बाजार-A और उप-बाजार-B मे औसत आय एवं सीमान्त आय रेखा को क्रमश: ठोस रेखा एवं बिन्दुओं से चिन्हित रेखा से चित्र (a) और चित्र (b) में दिखाया गया है। चित्र (c) में कुल बाजार की स्थिति को दिखाया गया है। रेखा चित्र 16.1 में E संतुलन बिन्दु है जहां कुल सीमान्त आय रेखा (TMR) फर्म की सीमान्त रेखा (MC) को काटती है। अत: संतुलन की स्थिति में कुल उत्पादन की मात्रा OM है। चित्र 5(a) और चित्र 5(b) में E_1 और E_2 बिन्दु क्रमश: उप-बाजार-A एवं उप-बाजार-B के संतुलन स्थिति को दिखाता है; क्योंकि इन बिन्दुओं पर दोनों उप-बाजारों की सीमान्त आय बराबर है और यह फर्म के सीमान्त व्यय के बराबर है। यह स्पष्ट है कि विभेदकारी एकाधिकारी अपने कुल उत्पादन की OM मात्रा में से OM_1 मात्रा उप-बाजार-A में M_1P_1 कीमत पर बेचेगा और शेष OM_1मात्रा उप-बाजार- B मे M_2P_2 कीमत पर बेचेगा। इस तरह वह कम लोचदार मांग वाले बाजार में कीमत अधिक और अधिक लोचदार मांग वाले बाजार में कीमत कम रखेगा और ऐसा करके वह अपने लाभ को अधिकतम करने में सफल होता है।

2. अनेक वस्तु उत्पादन स्थिति

यदि हम यह मान लें कि विभेदकारी एकाधिकारी एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करता है तो ऐसी स्थिति में प्रत्येक वस्तु के लिए एक एक बाजार होगा। वस्तुत: अधिकतर फर्में एक से अधिक वस्तुओं

का उत्पादन करती है । अनेक वस्तु उत्पादन स्थिति मे कीमत विभेदीकरण की व्याख्या का श्रेय ई0 डबल्यू0 क्लीमेन्स ई0 डबल्यू0 (E.W.Clemens) को जाता है । क्लीमेन्स का मानना है कि फर्म एक ही वस्तु से उत्पादन शुरू करती है । यदि यह मान लें कि उस प्लान्ट की कुल क्षमता का सिर्फ 60 प्रतिशत ही उपयोग में आ रहा है। अब एकाधिकारी अपने उत्पादन क्षमता का ही उपगोग कर सीमान्त व्यय में बिना किसी विशेष वृद्धि के उस वस्तु के उत्पादन को बढ़ा सकता है। कुछ बेकार साधनों का प्रयोग कर वह दूसरी बाजार के लिए दूसरी वस्तु का भी उत्पादन कर सकता है और इसी तरह तीसरे बाजार के लिए तीसरी वस्तु का निर्माण इत्यादि। सुविधा के लिए हम यह मान लेते है कि तीन ही वस्तुओं का उत्पादन करता है। ऐसी स्थिति में संतुलन बिन्दु को रेखाचित्र 16.2 से दिखाया जा सकता है।

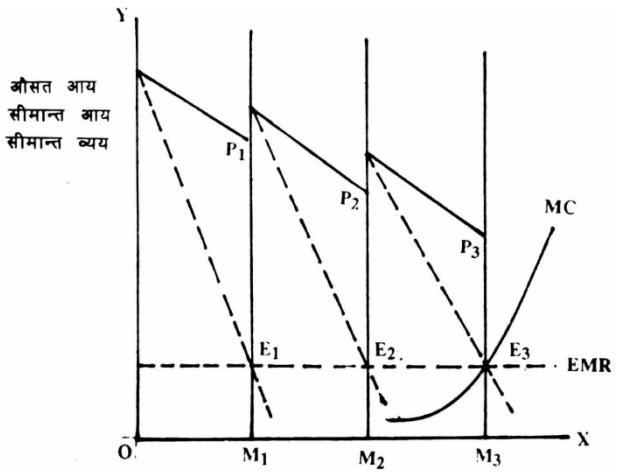

चित्र 16.2

रेखाचित्र 16.2 में बाजार A,B और C की स्थिति को प्रदर्शित किया है। तीनों बाजारों की औसत आय एवं सीमान्त आय को क्रमश: "ठोस रेखा" एवं "बिन्दुओं से चिन्हित रेखा" से प्रदर्शित किया है। MC फर्म की सीमान्त व्यय रेखा है। EMR समान सीमान्त आय की रेखा है। अब अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए विभेदकारी एकाधिकार तीनों बाजार में मात्रा एवं वस्तु की कीमत इस प्रकार निर्धारित करेगा कि तीनों बाजारों की सीमान्त आय बराबर हो और वह सीमान्त व्यय के बराबर भी हो। अत: E_1 ,E2 और E_3 तीनों बाजारों की संतुलन बिन्दुएं है; जो यह बतलाती है कि एकाधिकारी तीनों वस्तुओं का कितना उत्पादन करेगा और किस कीमत पर बेचेगा? यह स्पष्ट है कि वह पहले वस्तु का O M_1 मात्रा, उत्पादन करेगा और M_1 P_1कीमत पर बेचेगा। इसी तरह दूसरे और तीसरे वस्तु की मात्रा क्रमश : M_1 M_2 और M_2 M_3 एवं कीमत क्रमश: M_2 P_2 और M_3 M_3 होगी।

3. राशिपातन की स्थिति

यह ज्ञातव्य है कि किसी वस्तु को विदेशों में अपने देश की अपेक्षा सस्ती कीमत पर बेचने की क्रिया को राशिपातन कहते है। यह कीमत विभेदीकरण का एक विशिष्ट प्रकार है। कोई उत्पादक घरेलू बाजार (Domestic market) में एकाधिकारी हो सकता है। लेकिन विदेशी बाजार (Foreign Market) में उसे प्रतियोगिता का सामना करना ही पड़ता है। यदि हम यह मान लें कि कोई एकाधिकारी अपने वस्तु का

निर्यात करता है तो स्वाभाविक रूप से उसके उत्पादन के दो बाजार होंगे-एक घरेलू बाजार, जिसमें वह एकाधिकारी है और दूसरा विदेशी बाजार, जिसमें उसे प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा। राशिपातन की स्थिति में संतुलन बिन्दु को रेखा चित्र 16.3 में प्रदर्शित किया है।

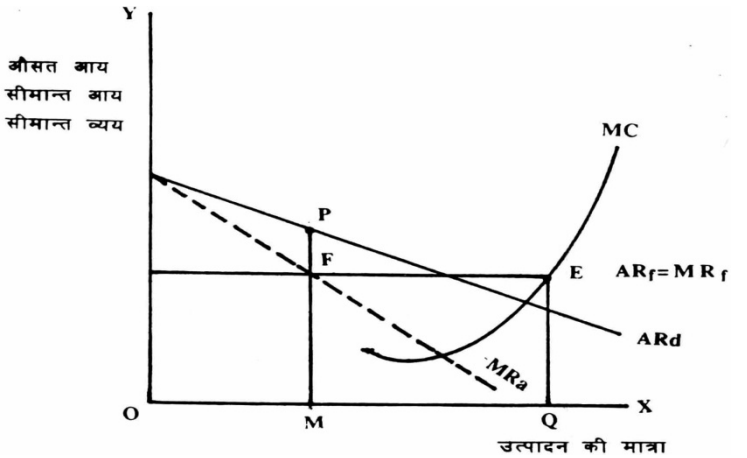

रेखाचित्र 16.3 में ARd और MRd घरेलू बाजार की औसत आय एवं सीमान्त आय की रेखा है। ARI और MRI विदेशी बाजार की औसत आय एवं सीमान्त आय की रेखा है। MC फर्म की सीमान्त व्यय रेखा है इस स्थिति में AFE फर्म की कुल सीमान्त आय रेखा है जो MRd और MRf का योग है। E फर्म की संतुलन बिन्दु है क्योंकि उसी बिन्दु पर फर्म की कुल सीमान्त आय रेखा सीमान्त व्यय रेखा को काटती है। OQ फर्म का संतुलन उत्पादन है। संतुलन शर्त के अनुसार दोनों बाजारों में संतुलन की स्थिति तभी होगी जब दोनों बाजारों की सीमान्त आय बराबर हो और वह फर्म के सीमान्त व्यय के बराबर हो। स्पष्ट है कि वह वस्तु की OM मात्रा को घरेलू बाजार में MP मूल्य पर बेचेगा। उत्पादन की शेष मात्रा अर्थात् MQ को वह विदेशी बाजार में QE कीमत पर बेचेगा। इस तरह घरेलू बाजार में विदेशी बाजार की तुलना में कीमत अधिक होगी।

16.7 कीमत विभेदीकरण का औचित्य

कीमत विभेदीकरण उचित है या नही इसको जानने के लिए इसके आर्थिक एवं सामाजिक पहलुओं पर विचार करना होगा। प्राय: कीमत विभेदीकरण के स्थिति में वस्तु का उत्पादन साधारण एकाधिकार से अधिक होता है। अत: कीमत विभेदीकरण से उत्पादन की मात्रा बढ़ती है तो यह काफी लाभदायक सिद्ध होगा। उत्पादन बढ़ने से रोजगारी में भी वृद्धि होगी। अत: ऐसी स्थिति में यह आर्थिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से वांछित है। परन्तु यदि कीमत विभेदीकरण से उत्पादन में वृद्धि नही हो रही है तो एक ही वस्तु का विभिन्न ग्राहकों से भिन्न-भिन्न कीमत लेना असामाजिक होगा। परन्तु यदि निर्धन ग्राहकों को ध्यान में रखते हुए सारी उत्पादन की मात्रा को एक ही कीमत पर बेचा जाय तो सम्भव है कि उत्पादन व्यय भी पूरी न हो सके और फलस्वरूप कर्म को ही बन्द करना पड़े अथवा उत्पादन को कम करना होगा। दोनों ही स्थितिया अवांछनीय होगी।

ऐसी स्थिति की समीक्षा करते हुए श्रीमती जॉन रोबिन्सन ने "Employment of Imperfect Competition" में ठीक ही लिखा है कि सामाजिक दृष्टिकोण से यह बताना कठिन है कि कीमत विभेदीकरण उचित है अथवा नही। एक दृष्टिकोण से कीमत विभेदीकरण साधारण एकाधिकार से उन सब अवस्थाओं में श्रेष्ठ समझा जाता है जब इससे उत्पादन मे वृद्धि होती हैं और कीमत विभेदीकरण ऐसी अवस्थाओं में अधिक प्रचलित भी है। परन्तु इसके विपरीत कीमत विभेद करने का एक हानिप्रद फल यह होता है कि इससे साधनों का आवंटन संतोषजनक न हो कर हानिप्रद हो जाता है। अत: यह बताने से पहले कि कीमत विभेदीकरण उचित है या नही, यह आवश्यक हैं कि उससे होने वाली हानि या लाभ की तुलना कर ली जाय। जब कभी भी कीमत विभेदीकरण के फलस्वरूप उत्पादन कम हो जाय तब कीमत विभेदीकरण दोनों दृष्टियो से ही हानिप्रद होता है।

16.8 सारांश

विभेदीकारी एकाधिकार साधारण एकाधिकार बाजार की ही एक विशेष स्थिति है; जिसमें एकाधि कारी एक ही वस्तुओं को अलग-अलग क्रेताओं से भिन्न-भिन्न कीमतों में बेचने में समर्थ होता है। एकाधिकारी द्वारा एक ही वस्तु का भिन्न-भिन्न कीमत रखने की क्रिया को कीमत विभेदीकरण कहते है। कीमत विभेदीकरण व्यक्तिगत या सामूहिक हो सकता है। वस्तुओं के उपज में थोड़ा अंतर कर के भी कीमत विभेदीकरण किया जा सकता है। कीमत विभेदीकरण को तीन श्रेणियों में रखा जाता है। - प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी एवं तृतीय श्रेणी। प्रथम श्रेणी के कीमत विभेदीकरण में कीमत इतनी अधिक होती है कि उपभोक्ता के बचत का प्रश्न ही नहीं उठता। जबकि दूसरी श्रेणी के कीमत विभेदीकरण में इसकी कुछ गुंजायश होती है। साधारणत: तृतीय श्रेणी का ही कीमत विभेदीकरण व्यवहारिक जीवन में पाया जाता है; जिसमें बाजार का विभाजन कर मांग की लोच के अनुसार कीमत का निर्धारण होता है। कीमत विभेदीकरण हर स्थिति में संभव नहीं होता। इसके संभव होने के लिए यह जरूरी है कि बाजारों की दूरी अधिक हो, वस्तुओं का एक बाजार से दूसरे बाजार में हस्तांतरण नही हो, आयात-निर्यात कर की दरों में अंतर हो, कानूनी आधार हो, इत्यादि। यदि कीमत विभेदीकरण संभव हो भी गया तो यह जरूरी नही कि वह लाभदायक भी हो। इसे लाभदायक होने के लिये वस्तु के विभिन्न बाजारों में मांग की लोच में अंतर होना जरूरी है। यह भी जरूरी है कि विभिन्न बाजारों को सीमान्त आय बराबर हो और वह फर्म की सीमान्त व्यय के भी बराबर हो।

कीमत विभेदीकरण का लाभ एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेचकर लिया जा सकता हैं। एकाधिकारी एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन कर उसे अलग-अलग बाजारों में अलग-अलग कीमतों पर बेच कर भी कीमत विभेदीकरण का लाभ उठा सकता है। राशिपातन कीमत विभेदीकरण की एक विशेष स्थिति है जिसके अंतर्गत एक ही वस्तु को घरेलू बाजार में अधिक कीमत पर एवं विदेशी बाजार में कम कीमत पर बेचा जाता है। कीमत विभेदीकरण के फलस्वरूप यदि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है तो यह आर्थिक एवं सामाजिक दोनों दृष्टियों से वांछित है।

बोध प्रश्न – 2

इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर ले।

1. एकाधिकारी कीमत विभेदीकरण क्यों करता है? कीमत विभेदीकरण किन परिस्थितियों में संभव होता है।
2. कीमत विभेदीकरण के सहारे एकाधिकारी किन परिस्थितियों में अधिकतम लाभ कमाने में समर्थ होता है?
3. कीमत विभेदीकरण कब वांछनीय होता हैं?

16.9 शब्दावली

एकाधिकारी (Monopolist) : एकाधिकार बाजार के उत्पादक को एकाधिकारी कहते है। एकाधिकार बाजार में एक मात्र विक्रेता और अनेक क्रेता होते है।

विभेदकारी एकाधिकारी (Discriminating Monopolist) : साधारण एकाधिकारी जब कीमत विभेदीकरण करने में समर्थ होता है तो उसे विभेदकारी एकाधिकारी कहते है।

कीमत विभेदकरण (Price Discrimination) : एक ही वस्तु को विभिन्न क्रेताओं को भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेचने की क्रिया को कीमत विभेदीकरण कहते है।

संतुलन (Equilibrium) : परिवर्तन के बाद की ऐसी स्थिति जिसमें पुन: परिवर्तन की गुंजाइश नही हो, संतुलन की स्थिति होती है। इस संदर्भ में संतुलन के स्थिति का मतलब विभेदकारी एकाधिकारी के उस कीमत एवं उत्पादन की मात्रा से है जो अधिकतम लाभ प्रदान करता हो।

संतुलन शर्तें (Conditions of Equilibrium) : ऐसी शर्ते जो विभेदकारी एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए जरूरी हों, जैसे - बाजार का विभाजन, उप-बाजारों के मांग की लोच में अंतर, सभी बाजारों की सीमान्त आय का बराबर होना और साथ ही फर्म के सीमान्त व्यय के बराबर भी होना।

राशिपातन (Dumping) : एक ही वस्तु को घरेलू बाजार की तुलना में विदेशी बाजार में कम कीमत पर बेचना राशिपातन कहलाता है।

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एच.एल. आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस. चाँद एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली-1984.

D.S. Watson,Price Theory and its uses,Scientific Book Agency (Indian Edition)Calcutta 1967.

Joan Robinson,The Economics of Imperfect Competiton (2nd Edition)The Macmillan Press Ltd.,London,1969.

W.J.Baumol,Economic Theory and Operational Analysis,Prentice-Hall of Indian Pvt.,New Delhi,1982.

एम.एल. सेठ : अर्थशास्त्र के सिद्धान्त एल.एन. अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा 1981.

16.11 अभ्यासो के उत्तर

बोध प्रश्न 1

एकाधिकारी द्वारा एक ही वस्तु को विभिन्न क्रेताओं से भिन्न-भिन्न कीमत पर बेचना ही कीमत विभेदीकरण है। यह अपूर्ण प्रतियोगिता-बाजार में ही संभव है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कीमत प्राय: दिया हुआ रहता है।

व्यक्तिगत कीमत विभेदीकरण में एक ही वस्तु का विभिन्न व्यक्तियों से अलग-अलग कीमत लिया जाता है जबकि सामूहिक कीमत विभेदीकरण में एक समूह विशेष के सभी व्यक्तियों से एक ही कीमत लिया जाता है। जैसे-एक डाक्टर एक ही तरह के ऑपरेशन के लिए अलग-अलग मरीजों से अलग-अलग फीस लेता है। उसके चेम्बर की फीस अगर 25 रु0 है तो मरीज के घर जाकर इलाज करने की फीस 50 रु0 होना चाहिए। यह उन सभी मरीजों पर लागू होता है जो उनके चेम्बर में जाते है या घर बुलाते है।

क्योंकि ऐसी स्थिति में क्रेताओं की संख्या कम होती है और विक्रेता प्रत्येक की क्रय शक्ति के बारे में पूर्ण जानकारी रखता है और वस्तु की कीमत उतनी ही रखता है जितना कि क्रेता दे सके। अत: उपभोक्ता के बचत का प्रश्न ही नही उठता।

बोध प्रश्न 2

एकाधिकारी अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से कीमत विभेदीकरण करता है। यह हमेशा संभव नही होता है। यदि ऐसा होता तो एकाधिकारी और विभेदकारी एकाधिकारी में कोई अंतर नही होता। कीमत विभेदीकरण के लिए यह आवश्यक है कि दो बाजारों की दूरी इतनी अधिक हो कि विक्रेता के लिए वस्तु को एक बाजार से दूसरा बाजार में भेजना अथवा क्रेता को एक बाजार से दूसरे बाजार में जाकर खरीद करना व्यावहारिक नहीं हो। अर्थात् निर्यात की नीति एवं क्रेताओं की अज्ञानता कभी कभी कीमत विभेदीकरण को संभव कराता है।

यदि (क) बाजार का उप विभाजन संभव हो, (ख) उप बाजारों के मांग की लोच मे अंतर हो, (ग) उप-बाजारों की सीमांत आय बराबर हो एवं (घ) फर्म की सीमान्त आय सीमान्त बय के बराबर हो।

कीमत विभेदीकरण के परिणाम स्वरूप उत्पादन में वृद्धि होना सदैव वांछनीय है।

इकाई - 17

एकाधिकार प्रतियोगिता में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

Determine the Price and Production Under Monopolistic Competition

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ

17.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताएं

17.3.1 विक्रेताओं की अपेक्षाकृत कम संख्या

17.3.2 वस्तु विभेद

17.3.3 उद्योग की अवधारणा का कोई औचित्य नही

17.3.4 स्वतंत्र प्रवेश या बहिर्गमन

17.3.5 बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान

17.3.6 विपणन लगतों की अनिवार्यता

17.4 एकाधिकारी प्रतियोगिता तथा दो मांग वक्रों की अवधारणा

17.5 अल्पकाल में एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का साम्य

17.6 फर्म का दीर्घकालीन संतुलन

17.6.1 फर्मो की इष्टतम संख्या के साथ दीर्घकालीन साम्य

17.6.2 नई फर्मो का प्रवेश तथा दीर्घकालीन साम्य

17.7 समूह साम्य की अवधारणा

17.8 एकाधिकारिक प्रतियोगिता एवं आर्थिक कल्याण

17.9 अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता में अन्तर

17.10 सारांश

17.11 शब्दावली

बोध प्रश्न

17.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.13 अभ्यासों के उत्तर संकेत

17.0 उद्देश्य

आपने पिछली इकाईयों मे पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार वाले बाजारो के विषय में पढ़ा था। आपने यह जाना कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में एक फर्म या उत्पादक का स्थान बाजार या उद्योग की तुलना में गौण रहता है, और इस कारण वस्तु की कीमत का निर्धारण कुल मांग तथा कुल फर्म के संतुलन पर निर्भर करता है। ऐसी दशा में फर्म केवल वही मूल्य ले सकती है जिसका मांग व पूर्ति के आधार पर निर्धारण हो चुका है । आपने यह भी पड़ा था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी फर्मे समरूपी वस्तुओं का उत्पादन करती हैं तथा प्रवेश / बहिर्गमन की पूर्ण स्वतंत्रता के कारण दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त हो पाता है।

पूर्ण प्रतियोगिता का सर्वथा विलोम एकाधिकारी बाजार है। इसमें कीमत का निर्धारण एकाधिकारी ही करता है तथा उसे दीर्घकाल में भी नए विक्रेताओं के बाजार में प्रवेश का कोई भय नही रहता। यही कारण है कि एकाधिकारी को दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ प्राप्त होता रहता है। एकाधिकारी फर्म जिस वस्तु का उत्पादन करती है, कोई भी अन्य फर्म उससे मिलती-जुलती वस्तु का उत्पादन नही कर सकती।

परन्तु वास्तविक जीवन में न तो किसी बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता दिखाई देती है और न ही पूर्ण-एकाधिकार। वस्तुत. हमें बाजार में बहुधा जो स्थिति दिखाई देती है उसमें पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार का मिश्रण दिखाई देता है। जैसा कि आप इस इकाई में देखेंगे, बाजार में विद्यमान प्रत्येक फर्म किसी अर्थ में अंशत: एकाधिकारी है। यदि पर्याप्त संख्या में ऐसे "एकाधिकारी" बाजार में विद्यमान हों तो ऐसे बाजार को ' 'एकाधिकारिक प्रतियोगिता " का नाम दिया जा सकता है। आप इस इकाई में एकाधिकारिक प्रतियोगिता वाले बाजार का अध्ययन करेंगे।

इसमें आप-

1. यह देखेंगे कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार से एकाधिकारिक प्रतियोगिता वाला बाजार कितना भिन्न है?
2. इस बात की जानकारी प्राप्त करेंगे कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता की प्रमुख विशेषताएं क्या है तथा उनका वस्तु की कीमत-निर्धारण पर क्या प्रभाव होता है?
3. यह पढ़ेंगे कि एक एकाधिकारिक प्रतियोगी की स्थिति में अल्प व दीर्घकाल में क्या अन्तर होता है?
4. यह जान सकेंगे के एकाधिकारिक प्रतियोगिता का आर्थिक कल्याण पर क्या प्रभाव पड़ता है?

17.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप अब तक समझ गए होंगे, वस्तु की कीमत निर्धारण के संदर्भ में पूर्ण प्रतियोगिता से सर्वथा व विपरीत स्थिति एकाधिकार के अन्तर्गत पाई जाती है । आप ने इससे पूर्व यह पढ़ा है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म की स्थिति बाजार की तुलना में गौण या अणु के समान होती है, जबकि एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म का बाजार पर पूर्ण वर्चस्व होता है । ये दोनों ही दशाएं काल्पनिक प्रतीत होती है, क्योंकि वास्तव में न तो किसी फर्म का अस्तित्व सर्वथा गौण होता है ओर न हो वह (एकाधिकार में) निरंकुश रूप में कीमत वसूल करने की स्थिति में होती है ।

वस्तुत: प्रत्येक फर्म की वस्तु-उत्पादन तथा इसकी बिक्री की दृष्टि से अपनी एक (स्वतंत्र) शैली होती है, और इस कारण किसी अंश तक उसे बाजार में एकाधिकार प्राप्त हो जाता है । उदाहरण के तोर पर, कुछ उपभोक्ता कोलगेट टूथपेस्ट पसंद करते है तो कुछ सिबाका लेना चाहते है । इसी प्रकार-लिप्टन, टाटा या बुक बॉड कम्पनियों की अपनी-अपनी साख बनी हुई है । इसी प्रकार साफा बनाने वाले प्रत्येक फर्म की अपनी अलग शैली या डिजाइन होती है । इन सभी दशाओ में न तो कोई फर्म पूर्णत: एकाधिकारी होने का दावा कर सकती है और न ही उसकी स्थिति सर्वथा गौण होती है । यह प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की एक मिश्रित स्थिति है जिसे कुछ अर्थशास्त्रियो ने "अपूर्ण प्रतियोगिता" की संज्ञा दी है जबकि अन्य ने इसे "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" का नाम दिया है । यह एक संयोग ही था कि 1933 में समानान्तर रूप से इंग्लैड व अमरीका में अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता से सम्मन्धित दो पुस्तको का क्रमश: श्रीमती जॉन राबिन्सन तथा ई0एच0 चैम्बरलिन द्वारा प्रकाशन किया गया । यद्यपि हम इन दोनों विद्वानो द्वारा प्रस्तुत आवधारणाओं से आपको अवगत कराऐगे, तथापि इस इकाई में प्रो. चेम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की ही प्रधानत: चर्चा की जाएगी ।

17.2 एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ

आपने इससे पूर्व जब पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार वाले बाजारो का अध्ययन किया था तो आपने उन बाजारों का अर्थ समझने में किसी भी कठिनाई का अनुभव नही हुआ होगा । इन दोनों से भिन्न स्थिति, अर्थात एकाधिकारिक प्रतियोगिता या अपूर्ण प्रतियोगिता, को सीमित शब्दों में परिभाषित करना संभव नहीं है । वस्तुत: एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ समझने हेतु उसकी विशेषताओ को समझना आवश्यक है । इन सभी विशेषताओं का विवरण आप अगले खण्ड मे पढ़ेंगे। यहां इतना समझना पर्याप्त होगा कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है जिसमें प्रत्येक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु बाजार में विद्यमान अन्य फर्मो की वस्तुओं से भिन्न होती है । अन्य शब्दों मे, बाजार में भिन्न-भिन्न वस्तुएं उपभोक्ताओ को उपलब्ध होती है ।

वस्तुत: एकाधिकारिक प्रतियोगिता से हमारा आशय बाजार की उस स्थिति से है जिसमे मिलती-जुलती वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मो के बीच स्पर्द्धा हो रही हो । इस प्रकार न तो इस बाजार में किसी एक फर्म का विशुद्ध एकाधिकार होता है और न ही विद्यमान फर्मो के मध्य पूर्ण प्रतियोगिता ही होती है ।

यहां प्रतियोगिता भी है तथा आंशिक रूप में एकाधिकार भी, और इसीलिए इस बाजार को एकाधिकारिक प्रतियोगिता वाला बाजार कहा जाता है।

आपने ऊपर पढ़ा था कि श्रीमती जॉन रॉबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता की अवधारणा का प्रतिपादन किया था। उनके मतानुसार अनेक कारणो से बाजार में सभी फर्मो द्वारा समरूपी वस्तुओ का उत्पादन करने पर भी बिक्री की शैली, उपभोक्ताओ को दी जाने वाली सुविधाओं तथा दूरी के कारण भिन्न-भिन्न विक्रेता उसी वस्तु की भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल कर लेते है और इसलिए बाजार मे विद्यमान फर्मो के बीच पूर्ण प्रतियोगिता होती है। इसके विपरीत, प्रोफेसर चैम्बरलिन का यह मानना है कि प्रत्येक विक्रेता एक भिन्न वस्तु का उत्पादक होने के कारण एक सीमा तक एकाधिकारी तो है, परन्तु विभिन्न वस्तुओं के बीच क्वालिटी या प्रकृति का अन्तर इतना कम है कि उसी एकाधिकारिक शक्ति का प्रयोग एक छोसी-सी सीमा के बाद नही हो पाता। आपको खण्ड 17.1 में अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अन्तर बतलाया जाएगा। इससे पूर्व यह उपयुक्त होगा कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ भली-भांति समझने हेतु आप इसकी विशेषताओं से परिचित हो जाएं।

17.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताएं

आपने पिछली इकाइयों में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की विशेषताओं का विक्रेताओं (तथा क्रेताओ) की संख्या, वस्तु की स्थानापन्नता, नई फर्मो के प्रवेश की स्वतंत्रता, दीर्घकाल में प्राप्त लाभ आदि के आधार पर अध्ययन किया था। इस खण्ड में भी आप एकाधिकारिक प्रतियोगिता की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

17.3.1 विक्रेताओं की अपेक्षाकृत कम संख्या- : पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक विक्रेता की बाजार में स्थिति नगण्य हो जाती है। इसके विपरीत एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का सम्पूर्ण बाजार में केवल एक ही विक्रेता होता है। एकाधिकारिक प्रतियोगिता वाले बाजार में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादकों की संख्या इतनी विशाल नही होती है कि एक विक्रेता की स्थिति नगण्य हो जाए। प्रत्येक विक्रेता का एक सीमा तक वर्चस्व होता है परन्तु यदि वह उपभोक्ताओं का शोषण करने लगता हैं तो वे मिलती-जुलती दूसरी वस्तु को खरीदना प्रारम्भ कर सकते है। इस प्रकार एकाधिकारी प्रतियोगिता वाले बाजार में एकाधिकार भी है तथा प्रतियोगिता भी। परन्तु इसके साथ ही आपको यह भी याद रखना होगा कि इस बाजार में भी अन्य बाजारों की भांति क्रेताओं की संख्या काफी अधिक होती है।

17.3.2 वस्तु-विभेद- : जैसा कि आपने ऊपर देखा था, एकाधिकार प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक विक्रेता एक भिन्न प्रकार की वस्तु का उत्पादन करता है। विभिन्न वस्तुओं की यह भिन्नता निम्न रूप ले सकती है. (1) ट्रेडमार्क (2) डिजाइन (3) पैकिंग (4) रंग तथा (5) प्रस्तुतीकरण की शैली। परन्तु इस सन्दर्भ में चैम्बरलिन ने निम्न बातें स्पष्ट की है :

वस्तुओं की इस भिन्नता (वस्तु विभेद) का इसकी क्वालिटी से कोई सम्बन्ध नही होता और इस कारण विभिन्न फर्मो. की उत्पादन लागतें समान रहती है, तथा

वस्तु-विभेद वास्तविक हो सकता हैअथवा मनोवैज्ञानिक भी। चैम्बरलिन ने स्पष्ट किया है कि प्राय: जिन वस्तुओं में ट्रेड मार्क, डिजाइन या रंग की भिन्नता संभव नहीं हो पाती, वहां यदि कुछ उपभोक्ताओं के मानस में यदि यह बात बैठ जाए कि फर्म "अ" द्वारा निर्मित वस्तु फर्म "ब" की वस्तु से बेहतर है तो यह भी वस्तु विभेद का कारण बन सकता है तथा "अ" अपनी वस्तु की "ब" की तुलना में ऐसे उपभोक्ताओं से कुछ अधिक कीमत ले सकता है संक्षेप में, वस्तु विभेद यथार्थ अथवा काल्पनिक दोनों प्रकार का हो सकता है।

17.3.3 उद्योग की अवधारणा का कोई औचित्य नही

चैम्बरलिन की ऐसी मान्यता है कि उद्योग से हमारा आशय विभिन्न फर्मो के ऐसे समूह से है, जो समरूपी वस्तुएं बनाती है। परन्तु उन्होंने कहा है कि वस्तु विभेद के कारण एकाधिकारिक प्रतियोगिता मे उद्योग की अवधारणा महत्वहीन हो जाती है। उदाहरण के तोर पर, विभिन्न डीजाइन के वस्त्र बनाने वाली कपड़ा मिलों को मिलाकर वस्त्र उद्योग की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसी प्रकार साबुन, टैल्कम पाउडर या मोटर कार, उद्योग का भी इसी आधार पर कोई अस्तित्व नही होता। प्रोफेसर चैम्बरलिन ने मिलती-जुलती (विभेदीकृत) वस्तुओं के उत्पादकों को उद्योग की अपेक्षा समूह का नाम दिया है।

17.3.4 स्वतंत्र प्रवेश अथवा बहिर्गमन- : प्रो. चैम्बरलिन ने यह भी कहा है कि यदि अल्पकाल में विभेदीकृत वस्तुओं के निर्माताओं को लाभ हो रहा हो तो इससे नए उत्पादकों को बाजार में प्रवेश करने से प्रोत्साहन मिलेगा और इसके फलस्वरूप सभी फर्मो को प्राप्त कीमत में कमी होगी। इसके विपरीत, अल्पकाल में फर्मो को हानि हो पर उनमें से कुछ का बहिर्गमन होगा, जिससे विभेदीकृत वस्तुओं की कीमत बढ़ेगी। अन्ततःप्रवेश तथा बहिर्गमन की इस स्वतंत्रता के फलस्वरूप दीर्घकाल को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। परन्तु, चैम्बरलिन ने यह भी स्पष्ट किया है कि प्रत्येक नई फर्म भी एक नई प्रकार की वस्तु को ले कर ही बाजार में प्रवेश करती है तथा मौजूदा फर्मो की उत्पादन लागत पर इस प्रवेशाबहिर्गमन का कोई प्रभाव नही होता।

17.3.5 बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान- : पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की भांति एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत भी सभी क्रेताओं व विक्रेताओं को बाजार में उपलब्ध वस्तुओं तथा उनकी कीमतों की पूरी जानकारी रहती है। इसके फलस्वरूप कोई भी फर्म या उपभोक्ता इस स्थिति में नही है कि वह दूसरे पक्ष का शोषण कर सके। चैम्बरलिन ने यह भी कहा है कि इस प्रकार के बाजार में यदि एक उपभेक्ता किसी वस्तु के लिए कुछ अधिक कीमत देता है तो वह इसलिए कि उसे अपनी पसंद की यानी विभेदीकृत वस्तु की आवश्यकता है।

17.3.6 विपणन लागतों की अनिवार्यता- : चैम्बरलिन ने यह भी कहा है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु की विशिष्टता का विज्ञापन करता है ताकि उसकी बिक्री बड़े। वस्तुत: विज्ञापन के फलस्वरूप वस्तु के मांग वक्र में विवर्तन होता है और उससे फर्म का

सीमान्त आगम भी बढ़ता है, परन्तु सीमान्त आगम की यह वृद्धि उत्तरोत्तर धीमी गति से होती है। इसके विपरीत बिक्री बढ़ाने हेतु किए जाने वाले विज्ञापन पर उस फर्म को उत्तरोत्तर वर्द्धमान दर से लागत वहन करनी होती है।

इस प्रकार आपने इस खण्ड में एकाधिकारिक प्रतियोगिता वाले बाजार की प्रमुख विशेषताओं का विवरण पढ़ा। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, श्रीमती जॉन राबिन्सन ने भी यह बतलाया है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों ही अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। प्रश्न है, क्या चेंम्बरलिन तथा जॉन राबिन्सन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त एक जैसे है अथवा इनमें कोई अन्तर है? इस प्रश्न का उत्तर आपको खण्ड 19.9 में मिलेगा।

17.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा दो मांग वक्रो की अवधारणा

प्रो. चैम्बरलिन ने एकाधिकारिक प्रतियोगिता के संदर्भ में एक नई अवधारणा का प्रतिपादन किया और वह है प्रत्याशित एवं वास्तविक मांग वक्रो की अवधारणा। आपने पिछली इकाईयों में यह पड़ा है कि एकाधिकारी फर्म अपनी वस्तु की बिक्री बढ़ाने हेतु कीमत मे कमी करती है ओर इस कारण उसकी वस्तु का मांग वक्र ऋणात्मक ढलान-युक्त होता है। इसके विपरीत पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म को बाजार मांग व पूर्ति द्वारा निर्धारित साम्य कीमत पर ही वस्तु को बेचना होता है और इस कारण फर्म का मांग वक्र क्षैतिज होता है।

जैसा कि आपने ऊपर पढ़ा है, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी फर्मे मिलती-जुलती वस्तुएं बनाती है और इस कारण इन विभेदीकृत वस्तुओं में निकट की रथानापन्नता होती है। चैम्बरलिन ने कहा है कि इस स्थिति में प्रत्येक विक्रेता की यह धारणा होती है कि वह अपनी वस्तु की कीमत में थोड़ी सी कमी करके भी बिक्री में काफी वृद्धि कर सकता है। इस धारणा के पीछे उसकी मान्यता यह रहती है कि उसके प्रतिद्वन्दी अपनी-अपनी वस्तुओं की कीमतों को यथावत रखेंगे। अन्य शब्दों में, प्रत्येक फर्म का एक प्रत्याशित मांग वक्र होता है जो वस्तु की मांग की ऊँची लोच (E>1) का प्रतीक है तथा इस मान्ता पर आधारित होता है कि इस फर्म द्वारा कीमत में कमी किए जाने पर प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा अपनी-अपनी कीमतें यथावत रखी जाएगी।

परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि प्रतिद्वन्दी इस फर्म की गतिविधियों से अनभिज्ञ नही है और जैसे ही यह फर्म कीमत मे कमी करती है वे (प्रतिद्वन्दी) भी कीमतों में उतनी ही या अधिक कमी कर देंगे। इसका परिणाम यह होगा कि कीमत में कमी करने के बावजूद उस फर्म को आशानुरूप लाभ नही हो पाएगा। अन्य शब्दों में, वास्तविक मांग वक्र वस्तुत: प्रत्याशित मांग वक्र की अपेक्षा कम लोच का प्रतीक होगा (E<1)।

चित्र 17.1 में DD फर्म का वास्तविक मांग वक्र है जबकि dd प्रत्याशित मांग वक्र (जैसा कि आप चित्र 17.1) में देख सकते है dd का ढलान DD की तुलना में कम है। जैसा कि आप चित्र 17.1 में देख सकते है, फर्म मूलरूप में अपनी वस्तु के लिए OP_0 कीमत लेकर Oq_0, मात्रा बचेती थी। इस आशा के साथ कि उसके प्रतिद्वन्दी उसकी ओर से उदासीन है, वह कीमत को OP_1तक कम करके विक्री की मात्रा को oq_1 तक बढ़ाना चाहती है। परन्तु जैसा कि आपने ऊपर देखा है, प्रतिद्वन्दी सतर्क है और वे भी अपनी-

अपनी वस्तुओं की कीमतों में कमी कर देने हैं। चुंकी सभी वस्तुएं निकट की स्थानापन्न है, फर्म को कीमत में कमी करने का कोई लाभ नही मिल पाता क्योकि उसकी बिक्री oq_1 तक बढ़ने की अपेक्षा (प्रतिद्वन्दियो की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप) केवल oq_1 तक बढ़ पाती है। इस प्रकार OP पर जहां प्रत्याशित या अपेक्षित बिक्री oq'_1 थी, वास्तविक बिक्री oq_1 ही रह पाती है।

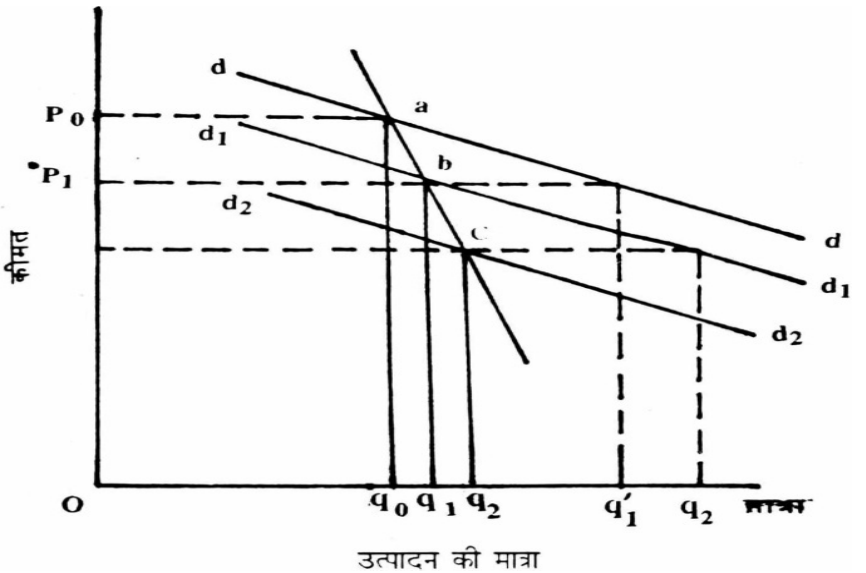

चित्र 17.1 प्रत्याशित तथा वास्तविक मांग वक्र

परन्तु फर्म अपनी अपेक्षा के अगुरूप बिक्री न बढ़ा पाने के बावजूद यह अनुभव नही कर पाती कि प्रतिद्वन्दी फर्मो की कीमतों में कमी होने के कारण उसकी अपनी बिक्री आशानुरूप नही बढ़ पाई है। वह अब d_1d_1 को अपना (प्रत्याशित) मांग वक्र मानकर कीमत को op_2 तक कम करने का प्रयास करती है ताकि बिक्री oq'_2 तक बढ़ सके। एक बार पुन: उसकी आशाओ पर तुषारापात होता है और प्रतिद्वन्दियों की कीमतों में कमी के कारण उसकी बिक्री oq_2 तक ही बढ़ पाती है।" हर बार उसकी मांग प्रत्याशित मांग वक्र के अनुरूप न बढ़कर वास्तविक मांग वक्र के अनुरूप बढ़ती है क्योकि फर्म का प्रत्याशित मांग वक्र (dd) वास्तविक मांग वक्र (DD) के सहारे खिसकता रहता है। वस्तुत: इसका प्रधान कारण वह अघोषित कीमत युद्ध है जो प्रतिद्वन्दी विक्रेताओं में चलता रहता है।

17.5 अल्पकाल मे एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म की साम्य

जैसा कि आपने खण्ड 17.4 में देखा है एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म इस अपेक्षा से कीमत में कमी करती है कि उसकी वस्तु की मांग काफी लोचदार है तथा कीमत में थोड़ी सी कमी करके बिक्री को काफी अधिक बढ़ाया जा सकता है। परन्तु प्रतिद्वन्दी फर्मो की जवाबी कार्यवाही के कारण उसकी बिक्री में अनुपात से कम वृद्धि हो पाती है। वस्तुत: फर्म द्वारा कीमत का निर्धारण उसके प्रत्याशित मांग वक्र के अनुरूप किया जाता है परन्तु यह मांग वक्र वास्तव में मौजूद नहीं है।

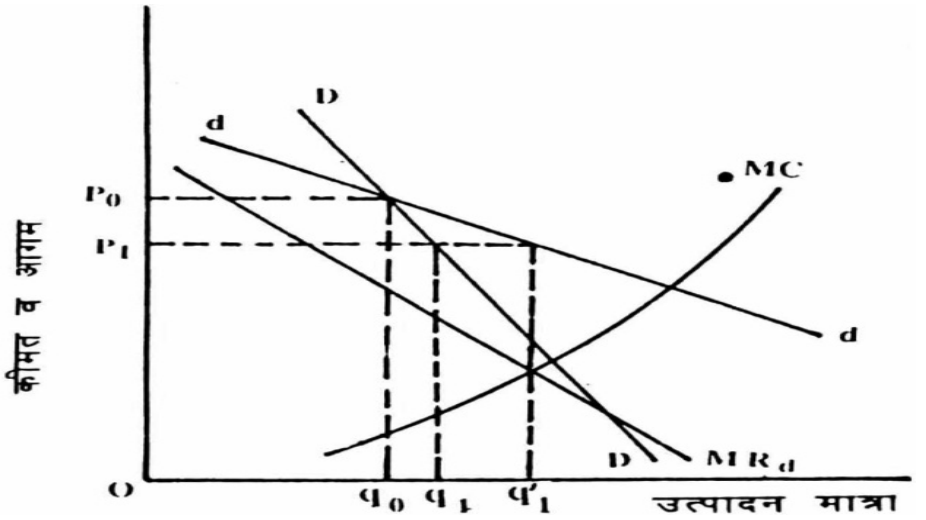

चित्र 17.2 एकाधिकारिक प्रतियोगिता व अल्पकालीन साम्य

चित्र 17.2 में यदि फर्म वास्तविक मांग वक्र DD की पूर्णतया उपेक्षा कर दे तो वह op_1 कीमत पर oq'_1 मात्रा बेचकर अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकती है क्योंकि इसी स्तर पर फर्म का (प्रत्याशित) सीमान्त आगम (MRd) वस्तु की सीमान्त लागत (MC) के समान हे। परन्तु वास्तविकता यह है कि dd ही वह मांग वक्र है जो प्रतिद्वन्दी फर्मो की प्रतिक्रियाओं के संदर्भ में वस्तु की कीमत तथा विक्री के वास्तविक सम्बन्ध निरूपित करता है।

इस प्रकार फर्म DD के अस्तित्व को स्वीकार नही करती है जबकि यही मांग वक्र वास्तविक है। वस्तुत : कीमत का निर्धारण वही होगा जहां DD तथा dd परस्पर काटते है, हालांकि यह कीमत अधिकतम लाभ के अनुरूप नहीं है। फर्म इस प्रकार OP_0 कीमत पर वस्तु बेचती है जो अधिकतम लाभ वाली कीमत op_1 से अधिक है। वस्तुत: फर्म स्वयं यह जान लेती है कि OP_1 कीमत पर उसकी बिक्री oq_1 नही हो पाएगी, हालांकि वह इसके बावजूद प्रतिद्वन्दी फर्मो की प्रतिक्रियाओं को स्वीकार नही करती। यही कारण है कि अल्पकालीन साम्य कीमत OP_1 न होकर OP_0 ही होती है, परन्तु जैसा कि आप अगले खण्ड मे देखेंगे, OP_0 का कीमत स्तर अत्यंत अल्पकालीन रहता है, तथा फर्मो द्वारा की जाने वाली परस्पर कीमत स्पर्द्धा के कारण इसमें तब तक (दीर्घकाल में) कमी होती जाती है जब तक कि प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ (P=AC) ही प्राप्त नही हो जाता।

17.6 फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन

जैसा कि इसके पूर्व आपने पढा है एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत बाजार में नए विक्रताओं के प्रवेश पर सामान्य तोर पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता और न ही फर्मो द्वारा अपनी-अपनी वस्तुओं की कीमत में कमी करनें पर किसी प्रकार की पाबन्दी होती है। ऐसी दशा में दीर्घकाल में वस्तु की कीमत का निर्धारण उस स्तर पर होता हैं जहाँ प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही मिल पाता है। हम फर्म के दीर्घकालीन साम्य का दो प्रकार से विश्लेषण करेंगे : प्रथम, हम यह मान लेंगे कि बाजार में फर्मो की सख्या पहले से इष्टतम है तथा फर्मो में कीमत-युद्ध की प्रवृत्ति के कारण कीमत में कमी होती जाती है।

द्वितीय चरण मे हम यह देखेंगे कि यदि अल्पकाल में फर्मो की संख्या इष्टतम न हो और नई फर्मो का प्रवेश खुला हो और साथ ही कीमत-युद्ध की प्रक्रिया भी चल रही हो तो दीर्घकालीन साम्य कहां स्थित होगा।

17.6.1 फर्मो की इष्टतम संख्या के साथ दीर्घकालीन साम्य

चित्र 17.3 में एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकालीन साम्य की वह स्थिति दर्शायी गई है जब फर्मो की संख्या इष्टतम हो। हमारी (प्रतिनिधि) फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति a पर भी जहां कीमत का स्तर OP_0 है तथा फर्म को प्रति इकाई लाभ ar प्राप्त हो रहा है। जैसा कि पूर्व में आपने पड़ा, फर्म d_1d_1 को अपना मांग वक्र समझते हुए कीमत को घटाकर इस अपेक्षा के साथ op_1 तक लाती है कि जिसके फलस्वरूप बिक्री मे पर्याप्त वृद्धि होगी तथा कुल लाभ भी बहुत अधिक बढ़ जाएगा। परन्तु जैसा कि आपने देखा फर्म की वास्तविक बिक्री DD के अनुरूप ही बढ़ पाती है तथा फर्म की नई साम्य स्थिति b हो जाती है। अब फर्म d_2d_2 को अपना (प्रत्याशित) मांग वक्र मानकर कीमत में पुन : कमी करती है और पुन : उसकी अपेक्षा के अनुरूप मांग में वृद्धि नहीं हो पाती। उसका प्रत्याशित मांग वक्र फिर DD के सहारे खिसकता है। प्रतिनिधि फर्म तथा इसकी प्रतिद्वन्दी फर्मो के बीच जब तक यह अघोषित कीमत युद्ध चलता है तब तक प्रत्याशित मांग वक्र अर्थात् वास्तविक मांग वक्र के सहारे नीचे की ओर खिसकता जाएगा। अन्त में cबिन्दु तक पहुंचते ही प्रतिनिधि फर्म को यह अनुभव होता है कि c बिन्दु पर औसत लागत तथा कीमत OP_2 समान है तथा इससे नीचे कीमत में कमी करने पर उसे हानि होने लगेगी। इस प्रकार c बिन्दु ही फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति का प्रतीक बन जाता है।

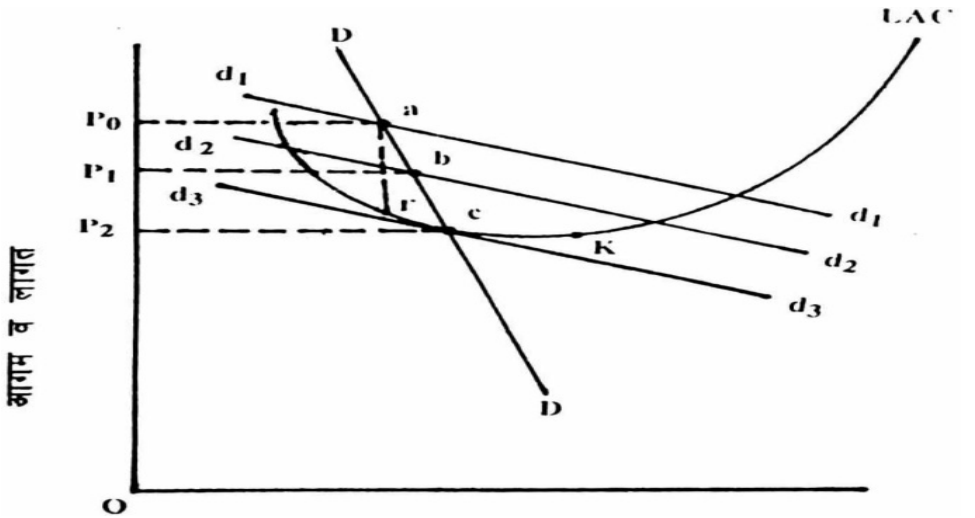

चित्र 17.3 इष्टतम फर्म संख्या एवं दीर्घकालीन साम्य

17.6.2 नई फर्मो का प्रवेश तथा दीर्घकालीन साम्य

अब यह मान लीजिए कि बाजार का आकार तो वही है लेकिन नई फर्मो को प्रवेश की छूट प्राप्त है। चित्र 17.4 में प्रतिनिधि फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति a पर है। इसके अनुरूप कीमत OP0 तथा उत्पादन की औसत लागत के मध्य काफी अन्तर होने के कारण विद्यमान प्रत्येक फर्म को काफी लाभ मिल रहा है। इससे आकर्षित होकर नई फर्मे बाजार में प्रवेश करेंगी। जब-जब किसी नई फर्म का प्रवेश होगा, विद्यमान फर्म का बाजार में हिस्सा कम होगा और इसके फलस्वरूप वास्तविक मांग वक्र DD से अन्तरित होकर बाई ओर खिसक जाएगा। जब वास्तविक मांग वक्र D*D*हो जाएगा तो वह स्थिति ऐसी होगी जहां कीमत वक्र op* तथा औसत लागत में समानता होने के कारण प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होगा तथा नई फर्मो का प्रवेश रूक जाएगा।

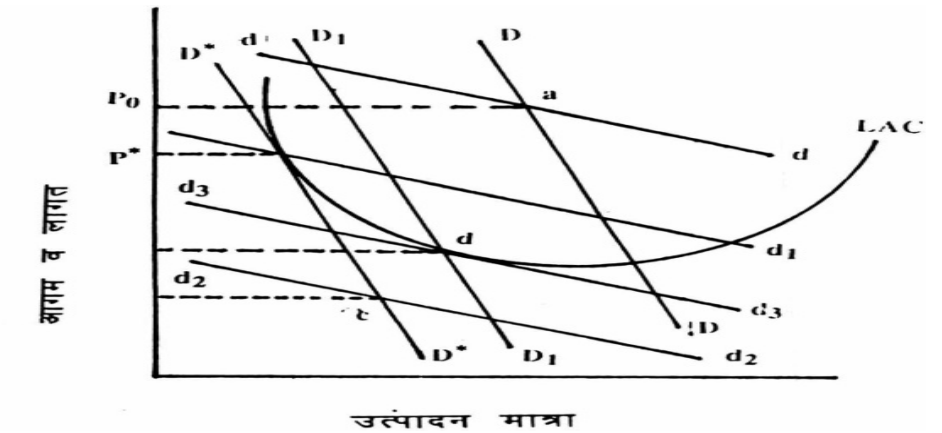

चित्र 17.4 नई फर्मो का प्रवेश तथा फर्म का दीर्घकालीन साम्य

यह स्थिति b है तथा इस पर पहुंचने के बाद ऐसा ऊपर से आभास हो सकता है कि यही फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति है। वस्तुत: यह दीर्घकालीन सान्य स्थिति नहीं है क्योंकि फर्म d_1d_1 को अपना (प्रत्याशित) मांग वक्र मानकर कीमत में कमी करना चाहेगी ताकि उसकी बिक्री में पर्याप्त वृद्धि हो और उसे असामान्य लाभ भी मिलने लगे। परन्तु जैसा कि आप जानते है यही से अघोषित कीमत युद्ध प्रारम्भ होता है तथा प्रत्याशित मांग वक्र D*D* के सहारे खिसकता जाता है। मान लीजिए यह खिसकता हुआ d_2d_2 तक पहुंच जाए तथा फर्म की साम्य स्थिति। पर स्थित हो जाए तो उस दशा में बाजार में विद्यमान प्रत्येक फर्म को हानि होगी क्योंकि op_1 कीमत औसत लागत से कम हो जाती है। ऐसी दशा में कुछ फर्मे बाजार से बहिर्गमन करेंगी जिसके फलस्वरूप वास्तविक मांग वक्र खिसकता हुआ D_1D_1 तक पहुंच जाएगा जहां d बिन्दु पर फर्म को दीर्घकालीन साम्य स्थिति प्राप्त हो जाती है। इस स्तर पर कीमत op_2 है तथा इस पर पहुंचने के बाद न केवल फर्मो का प्रवेश / बहिर्गमन रूक जाता है अपितु उनके बीच चलने वाला कीमत युद्ध भी समाज हो जाता है, क्योंकि d पर प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर पाती है।

17.7 समूह साम्य की अवधारणा

आपने खण्ड 17.3 में यह पढ़ा है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग की अवधारणा का कोई औचित्य नही होता क्योंकि प्रत्येक फर्म एक विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन करती है । प्रोफेसर चैम्बरलिन ने विभेदीकृत वस्तुओं का निर्माण करने वाले उत्पादको को "समूह" की संज्ञा दी आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग के दीर्घकालीन साम्य को उस स्थिति के रूप में देखा है जहां फर्मे अपनी इष्टतम संख्या में हो और साथ ही बाजार में विद्यमान प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त हो । ठीक इसी रूप में समूह साम्य भी वह दीर्घकालीन स्थिति है जहा फर्मों का प्रवेश / बहिर्गमन बंद हो जाए तथा प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ की प्राप्ति हो ।

चित्र 17.3 तथा 17.4 में क्रमश: c व d बिन्दु समूह साम्य की स्थितियों के परिचायक है।

17.8 एकाधिकारिक प्रतियोगिता एवं आर्थिक कल्याण

एकाधिकारिक प्रतियोगिता से सम्बंद्ध उपर्युक्त विवरण को पढ़ने के बाद आप यह समझ चुके होंगे कि बाजार की आदर्श स्थिति अर्थात पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में इस बाजार में आर्थिक कल्याण का स्तर कम होता है । इस खण्ड में आप एकाधिकारिक प्रतियोगिता के आर्थिक कल्याण पर होने वाले प्रभावों का अध्ययन करेंगे।

इस बाजार का प्रथम प्रभाव वस्तु की कीमत पर होता है । पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु की कीमत का निर्धारण मांग तथा पूर्ति द्वारा किया जाता है तथा फर्म के लिए मांग वक्र क्षैतिज होता है । प्राय: दीर्घकाल में प्रत्येक विक्रेता न्यूनतम औसत लागत के अनुरूप कीमत पर वस्तु को बेचता है । इसके विपरीत एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्याशित तथा वास्तविक, दोनों ही मांग वक्रों का ढलान ऋणात्मक होता है और इसलिए वस्तु की कीमत पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार की तुलना में अधिक रहती है, इसके बावजूद दीर्घकाल में फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होता है ।

द्वितीय, पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में एकाधिकारिक प्रतियोगिता वाले बाजार में उत्पादन का स्तर नीचा होता है । जैसा कि आप जानते है, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म दीर्घकाल में इष्टतम स्तर तक उत्पादन बढ़ा लेती है । परन्तु ऋणात्मक ढलानयुक्त मांग वक्र होने से फर्म न्यूनतम लागत वाले स्तर (चित्र 17.3 में k) तक उत्पादन नही कर पाएगी । यही कारण है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन अपेक्षाकृत कम होता है ।

तृतीय, कम उत्पादन होने के फलस्वरूप एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म के पास अधिक्षमता (इष्टतम स्तर तथा वास्तविक उत्पादन स्तर का अन्तर) मौजूद रहती है । चैम्बरलिन ने स्पष्ट रूप में कहा है कि यह अधिक्षमता एकाधिकारिक प्रतियोगिता की एक अनिवार्य बुराई है, परन्तु कुछ लोग विभेदीकृत वस्तुएं चाहते हैं, इस बुराई को समाप्त करना संभव भी नहीं है ।

चौथी व अन्तिम बात यह है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत विभेदीकृत उत्पादों के कारण सभी विक्रेता अपनी-अपनी वस्तुओं का विज्ञापन करते है । जैसा कि आप जानते है, पूर्ण प्रतियोगिता

तथा एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का विज्ञापन करने की आवश्यकता नही होती। इस प्रकार समाज के साधनों का (एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत) अपव्यय होता है।

17.9 अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता मे अन्तर

आपने ऊपर यह पता था कि 1933 में श्रीमती जॉन रॉबिन्सन तथा प्रोफेसर चैम्बरलिन की दोनों ही पुस्तकों का प्रकाशन हुआ था। जहां श्रीमती रॉबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, वही प्रोफेसर चैम्बरलिन द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त का केन्द्र बिन्दु एकाधिकारिक प्रतियोगिता रहा है। ऊपर से देखने पर यह पता चलता है कि दोनों ही विद्वानों ने प्रचलित कीमत सिद्धान्त मे पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकार की अवधारणाओं को चुनौती दी तथा कहा है कि वास्तविक बाजार न तो पूर्ण रूप से प्रतियोगितात्मक है और न ही विशुद्ध एकाधिकारात्मक। दोनों ही यह मानते हैं कि प्रवेश / बहिर्गमन की स्वतंत्रता के कारण दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है।

परन्तु विस्तार से देखने पर ज्ञात होता है कि दोनों के विचारों एवं उनके प्रस्तुतीकरण में काफी अन्तर है। इन्हें संक्षेप मे निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है -

1. श्रीमती रॉबिन्सन प्रतियोगी बाजार में अपूर्णताओं के आविर्भाव से अपना विश्लेषण प्रारम्भ करती है, जबकि चैम्बरलिन यह मानते है कि बाजार में विद्यमान फर्मो में अंशत: प्रत्येक एक एकाधिकारी फर्म है और इन "एकाधिकारी" फर्मो में परस्पर प्रतियोगिता होती है।
2. श्रीमती रॉबिन्सन यह मानती है कि विभिन्न फर्मो द्वारा समरूपी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, परन्तु उनकी विक्रय शैली प्रदत्त सुविधाओं तथा व्यवहार में भिन्नता के कारण बाजार में अपूर्णताएं प्रारम्भ हो जाती है। चैम्बरलिन के सिद्धान्त में वस्तु-विभेद को एक अनिवार्यता के रूप में स्वीकार किया गया है चाहे यह वस्तु विभेद वास्तविक हो (क्वालिटी) या काल्पनिक।
3. श्रीमती रॉबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता के सिद्धान्त का विश्लेषण परम्परागत रेखा चित्रा के आधार पर ही करना उचित समझा तथा मांग वक्र का ढलान एकाधिकारी फर्म की अपेक्षा कम रखा। उन्होंने सीमान्त लागत तथा सीमान्त आगम की परम्परागत अवधारणाओं के आधार पर फर्म के अल्प व दीर्घकालीन साम्य का विश्लेषण किया। परन्तु, प्रोफेसर चैम्बरलिन ने वास्तविक तथा प्रत्याशित मांग वक्रों की चर्चा की और बतलाया कि इनके कारण परम्परागत उपादानों व नियमों को फर्म की साम्य स्थिति के निरूपण हेतु प्रयुक्त करना संभव नही होता।
4. श्रीमती रॉबिन्सन ने कुल मिलाकर पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार में उत्पन्न अपूर्णताओ पर ही विचार किया, लेकिन चैम्बरलिन ने अपने सिद्धान्त में विपणन लागतों, अधिक्षमता, समूह साम्य, आदि नवीन अवधारणाओं का प्रतिपादन किया।

निष्कर्ष स्वरूप हम यही कह सकते है कि चैम्बरलिन का एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त श्रीमती रॉबिन्सन द्वारा प्रस्तुत अपूर्ण प्रतियोगिता के सिद्धान्त की तुलना में अधिक व्यापक एवं गत्यात्मक है।

17.10 सारांश

इस इकाई में आपने पड़ा है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकारी बाजारों का वस्तुत: कोई अस्तित्व नही होता। आपने यह भी पड़ा है कि 1933 में प्रोफेसर चैम्बरलिन ने यह बतलाया है कि वस्तु के बाजार में प्राय: एकाधिकारिक प्रतियोगिता पाई जाती है। इस बाजार में अनेक विक्रेता मिलती जुलती (विभेदीकृत) वस्तुओं का उत्पादन करते है। चूंकि इन वस्तुओं के मध्य ट्रेड, ब्रांड, रंग, पैकिंग अथवा डिजाइन का ही अन्तर होता है। इनकी उत्पादन लागतों में कोई अन्तर नही होता। प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु का विज्ञापन करके उसे प्रचारित करने का प्रयास करता है।

आपने इस इकाई में यह भी पढ़ा है कि वस्तुओं के बीच निकट की स्थानापन्नता होने के कारण प्रत्येक फर्म को एक भ्रांति रहती है कि कीमत में थोड़ी सी कमी करके वह अपनी वस्तु की बिक्री को काफी अधिक अनुपात में बढ़ा सकता है। उस भ्रम के पीछे फर्म की यह मान्यता रहती है कि जब वह कीमत में कमी करेगी तो अन्य विक्रेता अपनी-अपनी कीमतों को यथावत् रखेंगे। वास्तव में अन्य विक्रेता भी इस फर्म की कीमत में कमी किए जाने के साथ ही कीमतो में कमी कर देते है और इस प्रकार फर्म की मांग प्रत्याशित मांग वक्र के अनुरूप न बढ़कर वास्तविक मांग वक्र के अनुरूप बढ़ती है। विभिन्न फर्मो के बीच यह अघोषित कीमत युद्ध तभी समाप्त होता है, जब अन्तत: प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ की प्राप्ति हो। इसी स्तर पर बाजार में फर्मो का प्रवेश अथवा बहिर्गमन भी रूक जाता है। यह स्थिति समूह साम्य की स्थिति कहलाती है जो दीर्घकाल में ही प्राप्त होती है।

आपने इस इकाई में यह भी पड़ा है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का आर्थिक कत्याण पर (पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में) प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वस्तु की कीमत अधिक तथा उत्पादन कम होता है, अधिकतम दक्षता वाला उत्पादन नही हो पाने से फर्म के पास अधि-क्षमता रहती है तथा विपणन लागतों के कारण साधनों का अपव्यय होता है। अन्त मे, आपने इस इकाई में श्रीमती जॉन राबिन्सन की अपूर्ण प्रतियोगिता तथा चैम्बरलिन की एकाधिकारिक प्रतियोगिता वाली अवधारणाओं का अन्तर भी पढ़ा।

17.11 शब्दावली

एकाधिकारिक प्रतियोगिता (Monopolistic Competition)

बाजार की वह स्थिति जिसमें अनेक विक्रेता मिलती-जुलती लेकिन विभेदीकृत वस्तुओं को बिक्री हेतु प्रस्तुत करते है तथा जिसमें प्रत्येक विक्रेता अपनी बिक्री को बढ़ाने हेतु सामान्य लाभ मिलने तक कीमत में कमी करता है।

वस्तु विभेद (Product Differentiation)

यदि बाजार में विद्यमान वस्तुओं में क्वालिटी की अपेक्षा केवल ट्रेडमार्क, ब्रान्ड, रंग, पैकिंग या डिजाइन का ही अन्तर हों अथवा उपभोक्ताओं को यह भ्रांति हो कि दो अथवा भिन्न वस्तुओं में अन्तर है (भले ही वास्तव में न हो) तो ऐसी स्थिति वस्तु विभेद की स्थिति कहलाती है।

समूह साम्य (Group Equilibrium)

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु विभेद के कारण उद्योग की अवधारणा का कोई औचित्य नहीं होता अपितु विभिन्न वस्तुओं के उत्पादकों को मिलाकर एक समूह के रूप में माना जाता है। अल्पकाल के लाभ से प्रेरित होकर नए विक्रेता बाजार में प्रवेश करते है और साथ ही फर्मो का पारस्परिक कीमत युद्ध भी चलता है। दीर्घकाल में जब प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है तो फर्मो का प्रवेश / बहिर्गमन भी रूक जाता है। यह स्थिति समूह साम्य की स्थिति है।

अधिक्षमता (Excess Capacity)

न्यूनतम औसत लागत पर प्राप्त होने वाले उत्पादन को इष्टतम उत्पादन कहा जाता है। इष्टतम से जितना भी कम उत्पादन होता है वह अन्तर अधि-क्षमता कहलाती है। प्राय: एकाधिकार या एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत ऋणात्मक ढलान युक्त मांग वक्र के कारण अधि-क्षमता पाई जाती है।

बोध प्रश्न

अपना उत्तर लिखने हेतु प्रश्न के अन्त में छोड़ी गई खाली जगह का प्रयोग करें।

इकाई के अन्त में प्रस्तुत उत्तर संकेतों से अपने उत्तर का मिलान करें।

1. एकाधिकारिक प्रतियोगिता की प्रमुख विशेषताएं बताइए। बाजार की इस स्थिति में फर्म का अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य कहां स्थापित होता है?
2. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए :
   समूह साम्य
   प्रत्याशित तथा वास्तविक मांग वक्र
   विपणन लागतें
   अधिक्षमता
3. अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता में अन्तर बतलाइए। क्या आप इस कथन से सहमत है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का विश्लेषण अधिक व्यापक एवं नई अवधारणाओं पर आधारित है?

17.12 कुछ उपयोगी पुस्तके

Chamberlin,E.H,The Theory of Monopolistic Competition.

Gould,J.P. and E.P.Lazear,Ferguson &Gould-Micro-economic Theory (1989)

Sher,William and Rudy Pinola,Microeconomic Theory,Edward Arnold,Chapter 8

17.13 अभ्यासों के उत्तर संकेत

प्रश्न के उत्तर में सबसे पहले एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ बतलाइए तथा फिर इकाई के खण्ड 17.3 में प्रस्तुत विशेषताओं- विक्रेताओं की अपेक्षाकृत कम संख्या, वस्तु विभेद, समूह की अवधारणा, स्वतंत्र प्रवेश आदि का विवरण दीजिए। उत्तर के द्वितीय भाग में फर्म की अल्पकालीन व दीर्घकालीन साम्य स्थिति का रेखाचित्रों सहित विवरण दीजिए।

इनमें से प्रत्येक पर आपको उदाहरण सहित टिप्पणी लिखनी है। यथासंभव रेखाचित्र सहित व्याख्या करें। समूह साम्य के लिए खंड 17.6.1 व 17.6.2 में प्रस्तुत चित्रों को संक्षेप में समझाइए। प्रत्याशित तथा वास्तविक मांग वक्र खण्ड 17.4 मे उदाहरण सहित प्रस्तुत किए गए है। इन्हें रेखाचित्र सहित समझाइए।

विपणन लागतों की व्याख्या खण्ड 17.3.6 में की गई है। वस्तुत: विभेदीकृत वस्तु की बिक्री बढ़ाने हेतु फर्म विज्ञापन पर मुद्रा व्यय करती है जिससे वस्तु का मांग वक्र विवर्तित होता हैं। मांग वक्र का विवर्तन लागत में हुए विवर्तन की तुलना में प्रारम्भ में अधिक रहता है और बाद में कम होता जाता है। जिस स्तर पर TRa तथा TCa का अन्तर सर्वाधिक हो, वही विपणन लागत से प्राप्त होने वाला लाभ अधिकतम होता है।

अधिक्षमता का विवरण खण्ड 17.8 में किया गया है। इसका अर्थ बताइए तथा चित्र 17.3 द्वारा इसकी व्याख्या कीजिए।

अपूर्ण प्रतियोगिता की अवधारणा श्रीमती जॉन रॉबिन्सन ने दी थी। यद्यपि उनके तथा चैम्बरलिन के विचारों में पर्याप्त समानताएं है और दोनों ने परम्परागत बाजारों के विश्लेषण को चुनौती दी हैं तथापि दोनों के दृष्टिकोण एवं फर्म द्वारा अल्प व दीर्घकाल में कीमत निर्धारण की प्रक्रिया का विश्लेषण भिन्न है। खण्ड 17.9 में इस अन्तर को समझाया गया है।

इकाई – 18

गैर सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूप

(DIFFERENT MODELS OF NON-COLLUSIVE OLIGOPOLY)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 अल्पाधिकार का अर्थ

18.3 अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों के निर्धारक तत्व

18.4 अल्पाधिकार का कुर्नो स्वरूप

18.4.1 पुर्वधारणाएं

18.4.2 सन्तुलन स्थिति

18.4.3 प्रतिक्रिया वक्र

18.4.4 सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाऐं

18.5 अल्पाधिकार का बरतरां स्वरूप

18.6 अल्पाधिकार का चेम्बरलिन स्वरूप

18.7 कुर्नो, बरतरां तथा चेम्बरलिन स्वरूपों की परस्पर तुलना

18.8 अल्पाधिकार का स्टेकलवर्ग स्वरूप

18.9 विकुंचित मांग वक्र स्वरूप

18.10 सारांश

18.11 शब्दावली

18.12 कुछ उपयोगी पुस्तके

18.13 अभ्यासों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के बाद आप-

4. अल्पाधिकार का अर्थ बना सकेंगे, या

5. अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों के निर्धारक तत्व बता सकेंगे, या
6. गैर संधिपूर्ण तथा सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार में भेद कर सकेंगे, या
7. कुर्नो (COURNOT)के अल्पाधिकार स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे, या
8. बरतरां (BERTRAND)के अल्पाधिकार स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे, या
9. कुर्नो, बरतरां तथा चेम्बरलिन स्वरूपों की पारस्परिक तुलना कर सकेंगे, या
10. स्टेकलबर्ग (STACKELDERG) के अल्पाधिकार स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे, या
11. चेम्बरलिन का अल्पाधिकार स्वरूप समझा सकेंगे, तथा
12. विकुंचित मांग वक्र अल्पाधिकार स्वरूप समझा सकेंगे, या

18.1 प्रस्तावना

आपने पहले कुछ इकाइयों में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजारों के बारे में पढ़ा है। इन दोनों विश्लेषणो की पीछे एक महत्वपूर्ण पूर्वधारणा यह है कि "अन्य बातें पूर्ववत हैं "। इसका अर्थ यह है कि यदि कोई फर्म उत्पादन या मूल्य के बारे में निर्णय लेती है तो यह मान कर चलती है कि अन्य फर्मों द्वारा कोई प्रतिक्रिया नहीं होंती। ऐसी स्थिति में फर्म अपना लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से स्थिर सन्तुलन को प्राप्त कर लेनी है। बाजार की एक और स्थित है "अल्पाधिकार"। इस स्वरूप में फर्म यह पूर्वधारणा नहीं करती है कि अन्य बातें रहे। इसमें यह माना जाता है कि अन्य फर्में किसी फर्म द्वारा लिए गये निर्णय पर प्रतिक्रिया जाहिर करती है । ये प्रतिक्रियाएं विभिन्न प्रकार की हो सकती है तथा इन के बारे में सफलता पूर्वक पूर्वानुमान लगाना किसी भी फर्म के लिये सरल नही होता हैं। फलस्वरूप फर्म को निर्णय लेने में हिचकिचाहट होता हैं तथा अनिश्चितता स्थिति बनी रहती है। इसके दो परिणाम होते हैं। प्रथम, मूल्य युद्ध प्रारम्भ हो जाना है जिससे फर्मों के लाभ पर बुरा असर पड़ता है। दूसरे या फिर इस युद्ध से बचने के लिए फर्में आपस में कोई मूक या लिखित समझौता करने का प्रयत्न करती है। इन सभी बातों का वर्णन अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों में किया जाता है।

18.2 अल्पाधिकार का अर्थ

अल्पाधिकार किसी वस्तु के बाजार की वह स्थिति है जिसमें उत्पादकों की संख्या कम रहती है और इसमें आपस में प्रतियोगिता होती है। संख्या कम होने का अभिप्राय: यह है कि वस्तु के उत्पादक केवल इतने है कि सभी एक दूसरे की नीतियों के बारे में कुछ न कुछ जानकारी रखते हैं। स्पष्ट है कि उत्पादकों की संख्या जितनी कम होगी आपस मे एक दूसरे की नीति के बारे में जानने की या एक दूसरे के बारे में सही अनुमान लगाने की संभावना भी उतनी ही अधिक होगी। ऐसी स्थिति में प्रत्येक उत्पादक की मूल्य तथा उनगदन निर्धारण सम्बन्धी गतिविधियां अन्य प्रतियोगी उत्पादकों की गतिविधियों तथा संभावित प्रतिक्रियाओं पर निर्भर करती है। प्रत्येक उत्पादक कोई भी निर्णय लेते समय यह ध्यान रखता है कि उसके किसी भी निर्णय का अन्य प्रतियोगी उत्पादकों पर क्या प्रभाव होगा और उनकी क्या संभावित प्रतिक्रियाएं हो सकती है। प्रतियोगी उत्पादकों की संभावित प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखकर ही वह यह निर्णय लेगा कि वह अपनी वस्तु या मूल्य या उत्पादन या दोनों घटाएं या बढ़ाए।

18.3 अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपो के निर्धारक तत्व

प्रत्येक अल्पाधिकारी यह अनुमान लगाने का प्रयत्न अवश्य करता है कि उसके प्रतियोगियों की संभावित प्रतिक्रियाएं क्या होगी? साथ साथ यह भी ठीक है कि किसी भी अल्पाधिकार का अर्थ के लिए प्रतिक्रियाओं के बारे में निश्चित अनुमान लगाना बहुत ही कठिन है। यही कारण है कि इन प्रतिक्रियाओं के स्वरूप के बारे में कोई स्पष्ट तथा निश्चित सिद्धांत नही बन पाये है। प्रतिक्रियाओं की विविधता के कारण अलग अलग प्रतिक्रियाओं पर आधारित अल्पाधिकार बाजार के बहुत से स्वरूपों की कल्पना की जा सकती है। इन स्वरूपों के निर्धारक तब निम्नलिखित है :-

(1) उत्पादकों की संख्या : उत्पादकों की संख्या जितनी कम होगी उतनी ही अधिक इस बाते की संभावना रहती है कि मूल्य निर्धारण एकाधिकार बाजार के निकट हो। संख्या कम होने से उत्पादक आसानी से आपस में सन्धि कर सकते है और बाजार में एकाधिकार की सी स्थिति ला सकतें है। जैसे जैसे संख्या बढ़ती जाती है अल्पाधिकार बाजार का स्वरूप प्रतियोग़िता बाजार के निकट आता हुआ चला जाता है।

(2) वस्तु समरूप या विभिन्नता : इस तब का अल्पाधिकार बाजार के विश्लेषण पर कोइ विशेष प्रभाव नही पड़ता है। वही प्रभाव पड़ता है जो कि अन्य प्रकर के बाजारों में है। यदि सभी अल्पाधिकार एक समान वस्तु बना रहे है तो सन्तुलन की स्थिति में सभी उत्पादकों को एक समान मूल्य ही प्राप्त होगा। यदि कोई उत्पादक अधिक मूल्य प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा तो वह कुछ भी नहीं बेच पायेगा। दूसरी ओर यदि विभिन्न अल्पाधिकार के उत्पादकों में विभिन्नता है तो उपभोक्ता एक सीमा तक किसी अल्पाधिकारी के उत्पाद के लिए अधिक मूल्य देने कों भी तैयार हो जानें है क्योंकि वे अन्य अल्पाधिकारियों के उत्पादन की अपेक्षा इस अल्पाधिकारी के उत्पाद कों प्राथमिकता देते है या अधिक पसंद करते है। इस प्रकार उत्पादों-विभिन्नता वाले अल्पाधिकार में विभिन्न अल्पाधिकारी एक सीमा तक अपने आने उत्पादों के अलग-अलग मूल्य प्राप्त करनें में सफल हो सकते है।

(3) अल्पाधिकारी आपस मे प्रतियोगी है या सहयोगी : अल्पाधिकार का स्वरूप इस बात पर भी निर्भर है कि अल्पाधिकारी आपस में प्रतियोगिता करते है या प्रतियोगिता कम करने के लिए एक दूसरे से सहयोग करते है। इसलिए अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों को प्राय दो विस्तृत वर्गो अर्थात् संधिपूर्ण अल्पाधिकार तथा गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार में बाँटा जाता है। प्रत्येक स्वरूप इस बात पर निर्भर होना है कि किस सीमा तक प्रतियोगिता या सहयोग किया जाना है।

(4) कोई भी अल्पाधिकारी अन्य अल्पाधिकारी की अपेक्षा कितना छोटा है या बड़ा है : यदि किसी अल्पाधिकारी फर्म का वस्तु के कुल उत्पादन में बहुत अधिक अनुपात होना है तो उसकी प्रतियोगिता शक्ति भी अन्य अल्पाधिकारी फर्मो की अपेक्षा अधिक रहती है। यह बड़ी फर्म अपना उत्पादन कम या अधिक करके बाजार मूल्य पर प्रभाव डाल सकती है। ऐंसी फर्म प्राय किसी वस्तु के बाजार में मार्गदर्शक फर्म की भूमिका निभाती है। अन्य फर्में इस फर्म द्वारा निश्चित मूल्य को अपनाने में अपनी भलाई समझती है। कोई लिखित या मौखिक समझौता होने की दशा में यह बड़ी फर्म अपने,

अनुकूल शर्ते मनवाने में भी सफल हो सकती है। अल्पाधिकार का ' 'मूल्य मार्गदर्शन " स्वरूप इसी तत्व पर आधारित है।

(5) एक अल्पाधिकारी फर्म को अन्य फर्मों के बारे मे कितनी जानकारी उपलब्ध है?: अल्पाधिकार प्रतिक्रियाओं का खेल है। प्रत्येक फर्म अपने निर्णयों के कारण उत्पन्न अन्य फर्मो द्वारा संभावित प्रतिक्रियाओं का अनुमान लगाती है। यह अनुमान किस सीमा तक सही निकलेगा, ऐसा इस बात पर निर्भर है कि अन्य फर्मो के बारे में उसे कितनी सही सही जानकारी है? जानकारी पूरी न होने के कारण उसके अनुमान गलत भी हों सकते है, ।जिससे उसकी मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण नीति पर प्रभाव पड़ता है। अल्पाधिकार का कुर्नो (Cournot) द्वारा प्रतिपादित स्वरूप, जो कि एक कलासिकि स्वरूप माना जाता है, अल्पाधिकारी फर्म द्वारा ऐसे पूर्वानुमानों पर आधारित है, जो गलत निकलते है। एक और क्लासिकी स्वरूप जो कि बरतरां द्वारा सुझाया गया है, गलत पूर्वानुमानों पर आधारित है।

प्रतिक्रियाओं के बारे में अनिश्चितता तथा अल्पाधिकार की अनेकों परिस्थितियां होने के कारण अल्पाधिकार बाजार के विश्लेषण उतने स्पष्ट नही है जितने कि बाजार के अन्य स्वरूप । इसीलिए अल्पाधिकार के बारे में कोई व्यापक सिद्धांत नहीं है। प्रतिक्रियाओं की अनिश्चितता से बचने के लिए यह आवश्यक है कि प्रतियोगिता का अंश कम किया जाए। यह तभी संभव है कि प्रतियोगी आपस में मिल जाएं और मूल्य या उत्पादन या दोनों के बारे में कोई लिखित या मौखिक संधि कर लें। व्यवहार में कुछ उद्योगों में ऐसा होता भी है।

कुल मिलाकर अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों को दो वर्गों में रखा जाता है यदि फर्में आपस में प्रतियोगिता करती है तो इसे प्रतियोगी या गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार (Non-Collusive Oligopoly) कहा जाता है । यदि फर्में प्रतिक्रियाओं की अनिश्चितता को कम करने के लिए और अपनें लाभों को बढ़ाने के लिए आपस में साठगांठ या कोई सन्धि कर ले तो इसे संधिपूर्ण अल्पाधिकार (Collusive Oligopoly) की संज्ञा दी जाती है। आइये अल्पाधिकार बाजार को इन दो रूपों के बारे में अलग-अलग पढ़े। इस पाठ (इकाई 17) में हम गैर-सन्धिपृर्ण अल्पाधिकार के बारे में पढ़ेंगे। अगले पाठ (इकाई 18) मे हम सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के बारे में पढ़ेगे।

गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूप (Models) है जो समय-समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने प्रतिपादित किये है। प्रत्येक स्वरूप में प्रतियोगी उत्पादकों की अलग-अलग संभावित प्रतिक्रियाएँ ली गयी है। इनमें से कुछ प्रमुख स्वरूपों का वर्णन नीचे करेंगे। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इनमें से कुछ स्वरूपों में यह माना गया है कि उत्पादकों की संख्या केवल दो है। अल्पाधिकार की इसी स्थिति को द्वि-अधिकार (Duopoly) कहा जाता है। द्वि-अधिकार अल्पाधिकार की निचली सीमा है।

18.4 अल्पाधिकार का कुर्नो स्वरूप (COURNOT MODEL)

यह स्वरूप फ्रांसिसी अर्थशास्त्री अगस्ती कुर्नो के सन 1838 में प्रतिपादित किया। इसे परम्परागत स्वरूप (Classical) कहा जाता है। इसमें उत्पादकों , की संख्या केवल दो ली गयी हैं, जो कि केवल विश्लेषण

को सरल बनाने के लिए किया गया है। इसके निष्कर्ष दो से अधिक उत्पादकों वाले अल्पाधिकार पर भी लागू किये जा सकते है।

18.4.1 पूर्वधारणाएँ (Assumption)

कुर्नो का स्वरूप निम्नलिखित पूर्वधारणाओं पर आधारित है: -

1. उत्पादकों की वस्तुएँ एक समान है। इसके पीछे आशय यह है कि प्रत्येक उत्पादक संतुलन की स्थिति में एक जैसा मूल्य ही प्राप्त कर पाता है।
2. उत्पादकों की लागतें एक समान है। यह पूर्वधारणा विश्लेषण को सरल बनाने के लिए की गयी है। यदि लागतें भिन्न-भिन्न हों तो भी कुर्नो के स्वरूप के निष्कर्षों पर कोई अंतर नहीं पड़ता है।
3. प्रत्येक फर्म यह मान कर अपने उत्पादन या मूल्य तय करती है कि प्रतियोगी फर्म अपने उत्पादन की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं करेगी। यह अवधारणा प्रतियोगियों की आपस में एक-दूसरे की प्रतिक्रिया के बारे में है। जैसा कि हम नीचे विश्लेषण में देखेंगे कि यह पूर्वधारणा सही नहीं निकलती है।

18.4.2 संतुलन स्थिति (Equilibrium)

कुर्नो यह मान कर चला है कि उद्योग में केवल दो फर्में हैं। मान लीजिए ये दो फर्में A और B है जिसमें प्रत्येक के पास खनिज पानी का कुंआ है। प्रत्येक की उत्पादन लागत शून्य है। बाजार का मांगवक्र नीचे की ओर ढालान लेती सीधा रेखा है।

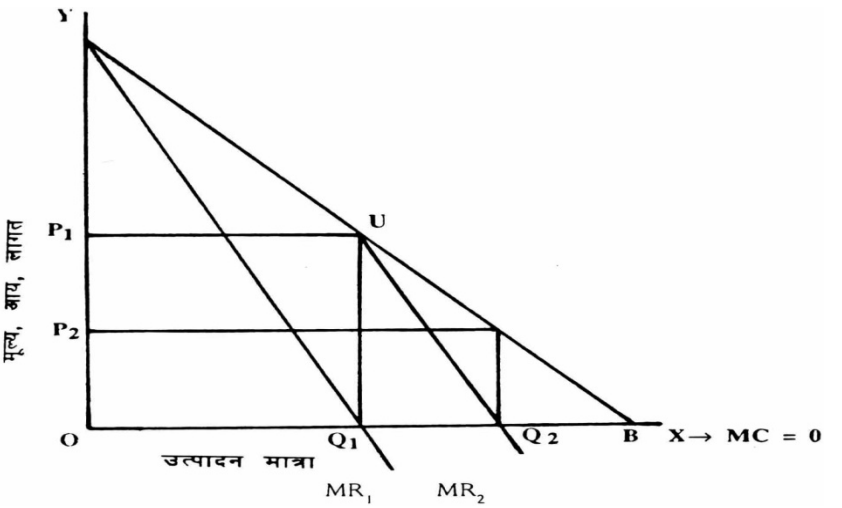

चित्र 18.1

मान लीजिए फर्म A पहले खनिज पानी का उत्पादन प्रारंभ करती है। क्योंकि अभी केवल फर्म A ने ही उत्पादन प्रारंभ किया इसीलिए यह अपने आप को एकमात्र फर्म समझकर सारे बाजार को अपना समझती है। उसका संतुलन स्तर वही होगा जो कि एकाधिकारी का होता है। एकाधिकार के बारे में पाठ में आपने पढ़ा होगा किं लागत यदि शून्य है तो संतुलन माँग वक्र के उस बिन्दु पर होगा जहाँ कि मूल्य लोच एक के

बराबर है। रेखाचित्र 18.1 में माँग वक्र AB पर यह बिन्दु U है जो कि मांग वक्र के ठीक मध्य में है। चित्र में 18.1 में सीमान्त लागत X- रेखा पर है; क्योंकि लागत शून्य है। ऐसी स्थिति में यह औसत लागत वक्र भी है। सीमान्त आय और सीमान्त लागत Q बिन्दु पर एक समान है। यही संतुलन बिन्दु है। इस पर कुल उत्पादन OQ_1 है जो कि पूरे बाजार (OB) का 1/2 भाग है। मूल्य OP है इस प्रकार फर्म A सम्पूर्ण बाजार का 1/2 भाग पूर्ति करती है।अब फर्म B उत्पादन प्रारंभ करती है और यह मान कर चलती है कि फर्म A बाजार में OQ_1 मात्र पर ही स्थिर रहेगी। ऐसे में फर्म B के लिए Q_1B बाजार शेष बचता है। उसका मांग वक्र केवल UB है और सीमान्त आय वक्र MR_2 है। उसका संतुलन स्तर Q_2 बिन्दु पर है जो कि Q_1B के मध्य में है। मूल्य QP_2 है। इस प्रकार फर्म शेष बाजार (Q_1B =OB-OQ) का 1/2 (=Q_1Q_2) पूर्ति करती है। यह कुल बाजार का 1/4 भाग है। अब फर्म A मान कर चलती है कि फर्म B बाजार का केवल 1/4 भाग ही बेचेगी। शेष 3/4 बाजार को अपना समझते हुए ऊपर बताये गये तर्क के आधार पर इसका आधा यानि (3/8=1/2 × 3/4) पूर्ति करती है। अब हालांकि फर्म B की फर्म A के बारे में यह पूर्व धारणा है कि वह अपना उत्पादन स्थिर रखेगी; जो गलत निकलती है, फर्म B इससे कोई सबक सीखने की बजाय फिर एक बार यह पूर्वधारणा करती है कि फर्म A अब अपना उत्पादन बाजार के 3/8 भाग पर स्थिर रखेगी और शेष 5/8 बाजार को अपना समझती है और संतुलन पर इसका आधा यानि 5/16 (=1/2×5/8) पूर्ति करती है। फर्म A पुन: अपनी गलत पूर्वधारणा से कोई सबक न लेते हुए, पुन: यह बात मानकर चलती है कि फर्म B अपना उत्पादन 5/16 भाग पर रिथर रखेगी और शेष बाजार (1-5 / 16 = 11/16) का आधा भाग यानि 11 /32(=1/2×11/16) पूर्ति करती है। दोनों फर्मों की यह क्रिया और प्रतिक्रिया निरंतर चलती रहती है। फर्म A का उत्पादन निरन्तर गिरता रहता है जबकि फर्म B का उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहता है। यह प्रवृति उसी समय समाप्त होती है जब तक कि दोनों एक समान उत्पादन न कर रहे हो। यह स्थिति उस समय आती है जबकि प्रत्येक उत्पादक कुल बाजार का 1/3 भाग की पूर्ति कर रहा होता है। यही संतुलन की स्थिति है। दोनों फर्मों का अवधि दर अवधि उत्पादन परिवर्तन तालिका 18.। में दिखया गया है।

तालिका 18.1

कुर्नों के स्वरूप मे दो अल्पाधिकारी फर्मों की अवधि दर अवधि कुल बाजार के अनुपात मे परिवर्तन

अवधि	फर्म A का अनुपात	फर्म B का अनुपात
प्रथम	1/2 (1)=1\2	1\2 (1-1/2)=1/4
द्वितीय	1/2(1-1/4)=3/8	1/2 (1-3/8)=5/16
तृतीय	1/2 (1-5/16)=11/32	1/2 (1-11/32)=21\64
चौथी	1/2(1-21/64)=43\128	1/2(1-43 /128)=85/256
संतुलन स्तर	1/2(1-1/3)=1/3	1/2(1-1/3)=1/3

नोट : तालिका 18.1 में तीर का निशान यह संकेत करता है कि बाजार के अनुपात में परिवर्तन न चौथी के बाद पांचवी, छठी, सातवीं आदि अनेक और अवधियों सें गुजरकर अंतत: संतुलन स्तर की स्थिति में पहुँच जाता है। अवधियों की संख्या कितनी होगी इसके बारे कुर्नो के स्वरूप में कुछ नहीं कहा गया है।

यदि फर्मों की संख्या 2 हो तो कुर्नो के अनुसार प्रत्येक फर्म कुल बाजार की 1/3 भाग पूर्ति करेगी। प्रत्येक फर्म एक जैसे मूल्य पर वस्तु बेचेगी और यह मूल्य एकाधिकार मूल्य से कम जबकि पूर्ण प्रतियोगिता मूल्य से अधिक होगा।

कुर्नो द्वारा सुझाये गये हल को दो से अधिक उत्पादकों के संख्या वाले अल्पाधिकार बाजार पर भी लागू किया जा सकता है। यदि उद्योग में उत्पादकों की संख्या दो है तो प्रत्येक उत्पादक बाजार का 1/3 यानि 1/n + =(जहाँ n= उत्पादकों की संख्या) भाग पूर्ति करेगा। यदि संख्या 3 है तो प्रत्येक उत्पादक बाजार का 1/3 यानि 1/n+1 =(जहाँ n= उत्पादकों की संख्या) भाग पूर्ति करेगा। इस प्रकार

एक उत्पादक द्वारा पूर्ति =1/n+1

कुल बाजार द्वारा पूर्ति = n (1/n+1)=n/n+1

उत्पादकों की संख्या जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक उत्पादन होगा और उतना ही कम मूल्य होगा और यह मूल्य पूर्ण प्रतियोगिता मूल्य की ओर अग्रसर होगा।

18.4.3प्रतिक्रिया वक्र (Reaction Curves)

कुर्नो के द्वि-अधिकार के इस स्वरूप को प्रतिक्रिया वक्रों की सहायता से भी समझाया जा सकता है।

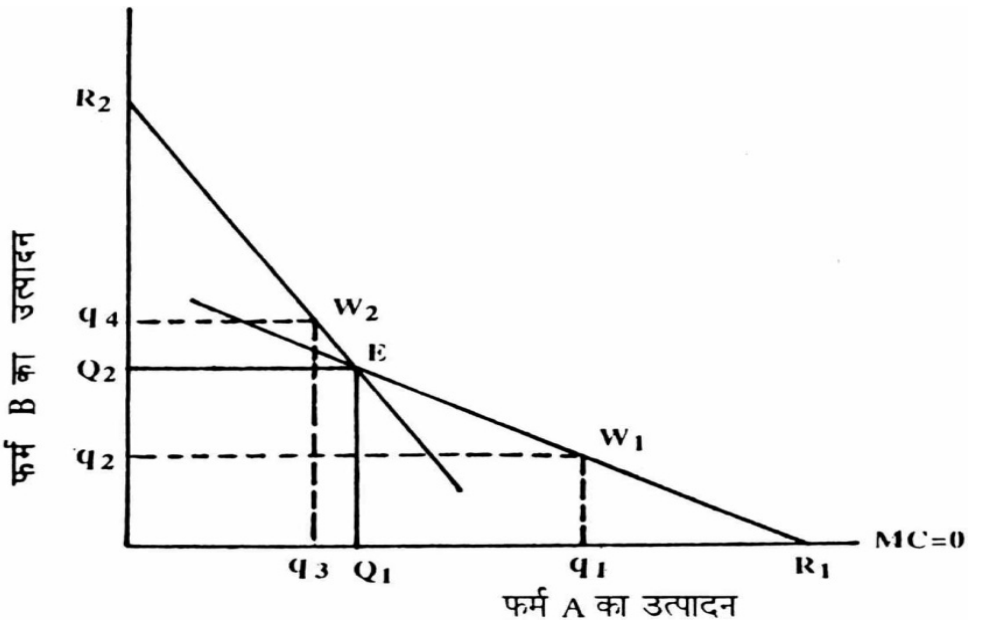

चित्र 18.2

चित्र 18.2 में X-रेखा पर R_1 से आरम्भ होने वाला वक्र फर्म A का प्रतिक्रिया वक्र है जबकि Y-रेखा पर R_2 से आरम्भ वक्र फर्म B का प्रतिक्रिया वक्र है।R_1 प्रत्येक बिन्दु यह दिखाता है कि यदि फर्म B अपना उत्पादन स्थिर रखे तो फर्म A का वह कोन-सा उत्पादन स्तर है। जिस पर कि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होते है। उदाहरणत: W_1 बिन्दु यह दिखाता है कि यदि फर्म B अपना उत्पादन OQ_2 पर स्थिर रखे तो फर्म A,OQ_1, उत्पादन कर अधिकतम लाभ कमा सकती है। लेकिन इसके विपरीत की स्थिति ठीक नही है अर्थात् यदि फर्म A अपना उत्पादन OQ_1, पर स्थिर रखे तो फर्म B का OQ_2 उत्पादन स्तर अधिकतम लाभ वाला नही है। ऐसा फर्म B के प्रतिक्रिया वक्र से स्पष्ट है। ऐसे में पारस्परिक प्रतिक्रियाओं के कारण दोनों के अधिकतम लाभ वाले उत्पादन स्तरों में परिवर्तन आता रहेगा जब तक कि दोनों कि प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप दोनों का उत्पादन एक जैसा न हो। यह स्थिति उस समय आती है जब दोंनों के प्रतिक्रिया वक्र एक-दूसरे को काटते है। यह स्थिति E बिन्दु पर है। इस पर यदि फर्म B अपना उत्पादन OQ_2 पर स्थिर रखे तो फर्म A का अधिकतम वाला उत्पादन स्तर OQ1 होंगा। इसके विपरीत यह भी ठीक है कि यदि फर्म A का अधिकतम लाभ वाला उत्पादन स्तर OQ_2 स्थिर रखे तो B का अधिकतम लाभ वाला उत्पादन स्तर OQ_2 होगा। बिन्दु E पर प्रतिक्रियाओं पर आधारित दोनों फर्मो का उत्पादन एक समान होने के कारण संतुलन स्तर प्राप्त हो जाता है और यह संतुलन स्तर स्थिर भी रहता है।

18.4.4 सिद्धांत की मुख्य आलोचनाएं

अल्पाधिकार कें कुर्नो स्वरूप की मुख्य आलोचनाएं इस प्रकार है-

1. प्रथम, प्रतियोगी फर्म की प्रतिक्रिया के बारे में यह पूर्वधारणा कि फर्म अपना उत्पादन स्थिर रखेगी गलत सिद्ध होने पर भी अल्पाधिकारी फर्म कोई सबक नही सीखती है और निरन्तर फिर वही पूर्वधारणा करती रहती है। हालांकि इस पूर्व धारणा के अनुसार प्रत्येक फर्म को अपना उत्पादन स्थिर रखना चाहिए लेकिन फिर भी दोनों फर्म उत्पादन की मात्रा निरन्तर परिवर्तित करती रहती है और इसके द्वारा निरन्तर प्रतियोगिता करती रहती है।
2. दूसरे, कुर्नो का स्वरूप अल्पकाल के लिए ही ठीक है; क्योंकि इस स्वरूप में फर्मों की संख्या सम्पूर्ण संतुलन प्रक्रिया के दौरान स्थिर रहती है। नयी फार्मों का उद्योग में आने की तथा पुरानी फर्मों को उद्योग छोड़ने की संभावना समाप्त कर दी गयी है। इस प्रकार कुर्नो का यह स्वरूप एक बंद स्वरूप (Closed Model) बन कर रह जाता है।
3. तीसरे, कुर्नो के स्वरूप मे यह नही कहा गया है कि संतुलन स्तर कितनी अवधियों के पश्चात् प्राप्त हो जायेगा।
4. चौथे, यह पूर्वधारणा कि लागत शन्य है; यह अवास्तविक है। इस आलोचना का बहुत अधिक महत्व नही है क्योंकि यदि यह भी मान लें कि लागत शून्य नही है तो भी कुर्नो कें स्वरूप पर कोर विशेष प्रभाव नही पड़ता है।

बोध प्रश्न 1

1. अल्पाधिकार बाजार की मुख्य विशेशताऐ संक्षेप में समझाइये।

2. संधिपूर्ण अल्पाधिकार तथा गैर- संधिपूर्ण अल्पाधिकार में अंतर बताइये।
3. प्रतियोगी फर्म की क्या प्रतिक्रिया होगी? इस बारे में कुर्नो स्वरूप में क्या पूर्वधारणा की गयी है?
4. मान लीजिए एक अलाधिकार बाजार में 4 फर्मे है। बताइये कि कुर्नो स्वरूप के, अनुसार संतुलन स्तर पर प्रत्येक फर्म के हिस्से में कुल बाजार का कितना भाग आएगा?

18.5 अल्पाधिकार का बरतरां स्वरूप

बरतरां ने अल्पाधिकार के अपने स्वरूप का प्रतिपादन सन 1883 में किया। यह भी एक परम्परागत स्वरूप माना जाता है। यह कुर्नो के स्वरूप से मिलता-जुलता है। दोनों स्वरूपों में मुख्य अंतर प्रतियोगी फर्म की प्रतिक्रिया के बारें में पूर्वधारणा में है। कुर्नो के स्वरूप में यह पूर्वधारणा है कि प्रतियोगी अपना उत्पादन स्थिर रखती है, जबकि बरतरां के स्वरूप में यह पूर्वधारणा है कि प्रतियोगी फर्म अपना मूल्य स्थिर रखती है। बाकी पूर्वधरनाए वही है जो कि कुर्नो कें स्वरूप में है।

बरतरा का यह स्वरूप प्रतिक्रिया वक्रों की सहायता से समझाया जा सकता है।

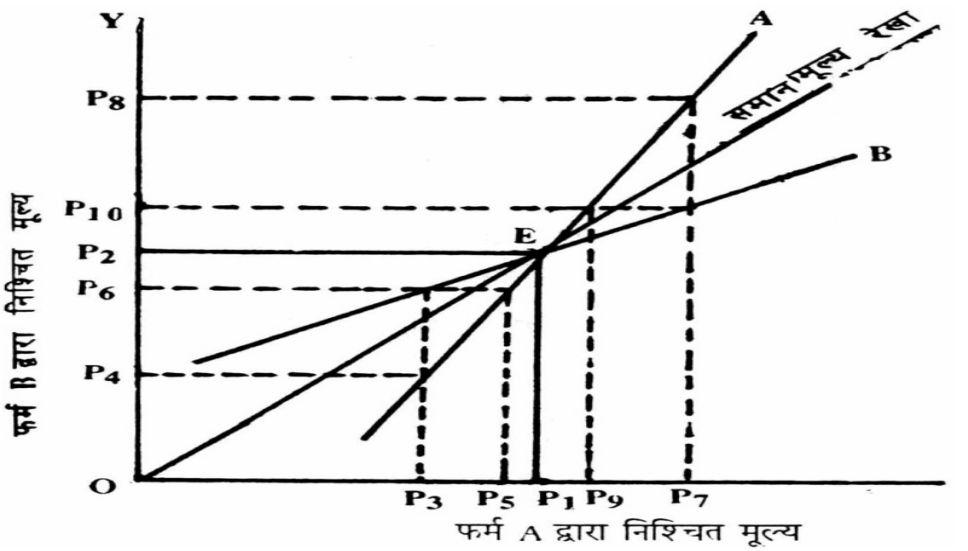

चित्र 18.3

चित्र 18.3 में वक्र A तथा B कमशः फर्म A तथा B के मूल्य प्रतिक्रिया वक्र है। वक्र A पर प्रत्येक बिन्दु यह दिखाता है कि यदि फर्म B अपना मूल्य स्थिर रखे तो फर्म A क्या मूल्य निश्चित करेगी कि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। उदाहरण 3 यदि फर्म B अपना मूल्य OP_4 पर स्थिर रखे, तो फर्म A अपने लाभ अधिकतम करने के लिए OP_3 पर मूल्य निश्चित करेगी। अब फर्म B भी यह मान करे कि फर्म A अपना मूल्य OP_3 पर स्थिर रखेगी तो यह OP_6 मूल्य निर्धारित करेगी। ऐसा वक्र B पर दिखाया गया है। अब फर्म A यह मानकर कि फर्म B अपना मूल्य OP_6 पर स्थिर रखेगी, OP_5 मूल्य निश्चित करती है। यह प्रतिक्रिया जब तक चलती रहेगी जब तक कि दोनों एक जैसा मूल्य निश्चित न कर दे। यह स्थिति बिन्दु E पर आती है जहां दोनों वक्र एक-दूसरे को काटते है। ध्यान रहे बिन्दु E 45^0 की "सामान्य मूल्य रेखा" पर होगा, क्योंकि इस रेखा पर पड़ने वाला प्रत्येक बिन्दु दोनों फर्मों के लिए एक जैसा मूल्य दिखायेगा। यह

हम पहले ही कह चुके है कि दोनों फर्मों के उत्पाद एक समान है। अत: संतुलन स्तर पर दोनों फर्मों के एक जैसा मूल्य ही मिलेगा।

आइये अब देखें कि यदि मूल्य E बिन्दु से ऊपर हो तो क्या होगा? मान लीजिए फर्म B अपना मूल्य OP_8 निर्धारित करती है। यह मान कर कि फर्म B अपना मूल्य नही बदलेंगी। फर्म A अपने लाभ अधिकतम करने के लिए OP_7 मूल्य निश्चित करती है। ऐसा वक्र A पर स्पष्ट है। अब फर्म B प्रतिक्रिया करती है। यह मान कर कि फर्म A अपना मूल्य OP_7 पर स्थिर रखेगी। फर्म B अपना मूल्य परिवर्तित कर देती है और अपने लाभ अधिकतम करने के लिए OP_{10} मूल्य निश्चित करती है जो उसके पहले मूल्य OP_8 से कम है। अब फर्म A पुन: प्रतिक्रिया करती हुए जो उसके पहले मूल्य OP_8 से कम है। अब फर्म A पुन: प्रतिक्रिया करती है और यह मान कर कि फर्म B अपना मूल्य OP_{10} पर स्थिर रखेगी। OP_9 मूल्य निश्चित करती है। इस प्रकार हर प्रतिक्रिया पर मूल्य निरन्तर E बिन्दु की और अग्रसर होता है। जब यह E बिन्दु पर पहुंचता है तों दोनों फर्मों की प्रतिक्रियाओं के परिणाम एक जैसे निकलते है और मूल्य संतुलन की स्थिति में आ जाता है।

चित्र 18.3 के वर्णन से यह स्पष्ट है कि E बिन्दु से अधिक या कम कोई भी मूल्य ऐसी प्रतिक्रियाओं को जन्म देगा कि मूल्य फिर वापस E बिन्दु पर आ जायेगा। यही दोनों,' फर्मो का संतुलन मूल्य होगा। क्योंकि दोनों में तीव्र मूल्य प्रतियोगिता है, यह मूल्य वही होगा जैसा कि पूर्णप्रतियोगिता की स्थिति में होता है। मूल्य औसत लागत के समान होगा। प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होंगे। (यदि कुर्नो की तरह यह मान ले कि लागत शून्य है तो मूल्य भी शून्य होगा)।

बरतरां के स्वरूप की भी मुख्य आलोचना यह है कि फर्में फर्म अपना यह पूर्वानुमान कि प्रतियोगी अपना मूल्य स्थिर रखेगी; गलत सिद्ध होंने पर भी सबक नही सीखती और निरन्तर पूर्वानुमान को ठीक मान कर प्रतिक्रिया करती है। कुर्नो की अपेक्षा बरतरां का स्वरूप अधिक वास्तविक माना जाता है, क्योंकि यह मूल्य-प्रतियोगिता पर आधारित है और वास्तविक बाजार में मात्रा-प्रतियोगिता की बजाय मूल्य-प्रतियोगिता अधिक पायी जाती है।

18.6 अल्पाधिकार का चेम्बरलिन स्वरूप (Chamberlin Model)

ऊपर बताये गये दों परम्परागत स्वरूपों की मुख्य आलोचना (फर्म अपने प्रतियोगी के बारे में पूर्वानुमान के गलत सिद्ध होने पर भी कुछ नही सीखती है) को चेम्बरलिन नें दूर किया है। चेम्बरलिन के अपने स्वरूप में यह पूर्वधारणा कि है कि शुरू में तो फर्में यही मानकर चलती है कि प्रतियोगी अपनी उत्पादन की मात्रा को स्थिर रखेगी (जैसा कि कुर्नो स्वरूप मे है) लेकिन शीघ्र ही उन्हें एहसास हो जाता है कि उनकी पूर्वधारणा ठीक नहीं है। वे जान जाते है कि वै एक-दूसरे पर निर्भर है और प्रतियोगिता करने कें बजाय पहले से ही इतना उत्पादन करें कि दोनों में कोई प्रतियोगिता न हो और दोनों को ही अधिकतम संभव लाभ प्राप्त हों सके जैसा कि एकाधिकार बाजार में होते है।

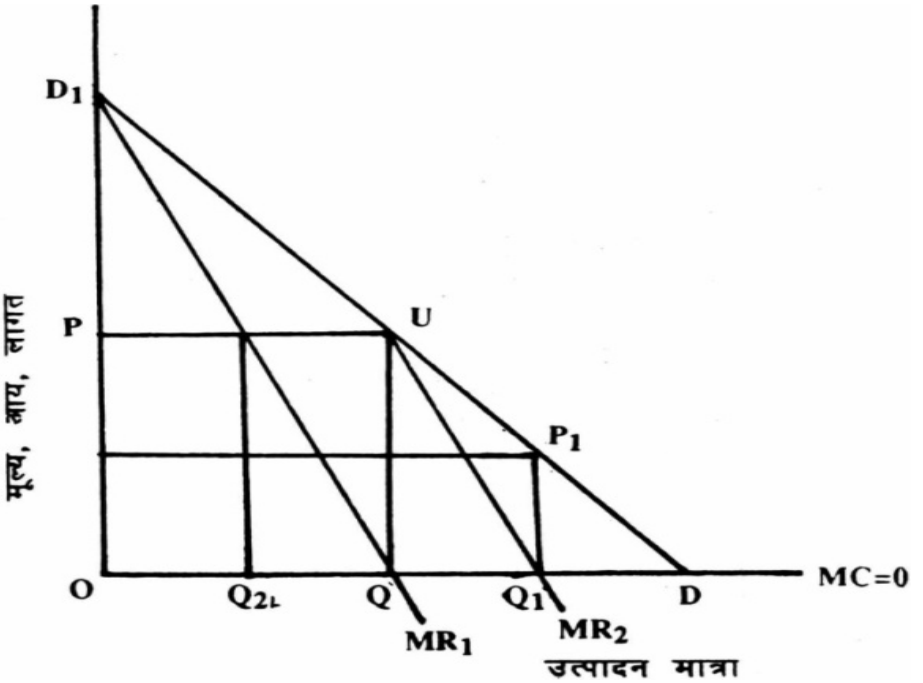

चित्र 18.4

ऊपर दिया गया चित्र (18.4) वही है जो हमने कुर्नो का स्वरूप समझाने के लिए प्रयोग किया था। इसमें DD1 बाजार का मांग वक्र है। D1Q सीमान्त आय वक्र है। फर्म A पहले उत्पादन प्रारम्भ करती है और सारे बाजार को अपना मानकर (कुलों स्वरूप की तरह) OQ मात्रा बनाने का निश्चय करती है जो कि OP मूल्य बिकता है। यह मूल्य एकाधिकार मूल्य है। अब फर्म B यह मानकर कि फर्म A अपने उत्पादन मात्रा OQ पर स्थिर रहेगी, शेष बाजार कों अपना समझ (यह भी कुर्नो स्वरूप की तरह) मात्रा निश्चित करती है जो कि Q_1P_1 मूल्य पर बिकता है।

यहाँ से चेम्बरलिन स्वरूप कुर्नो स्वरूप से भिन्न हो जाता है। चेम्बरलिन ने यह पूर्वधारणा करने की बजाय कि फर्मे अपनी पूर्वधारणा गलत सिद्ध हो जाने पर भी कुछ नही सीखती है, यह पूर्वधारणा है कि उन्हें अपनी गलती का एहसास हो जाता है और वे शीघ्र ही अपनी गलती सुधार लेती है और एक-दूसरे पर निर्भरता कों मान लेती है। फर्म A ये सब बाते मानकर पहले से ही वह OQ_2 मात्रा उत्पादन करने का निश्चित करती है। फर्म B भी ये सब बाते मानकर Q_2Q मात्रा निश्चित करती है। ऐसी स्थिति में दोनों अपना उत्पादन OP मूल्य पर बेचते है।

यदि हम ध्यान से देखें तो पायेंगे कि चेम्बरलिन द्वारा सुझाया गया अल्पाधिकार संतुलन वास्तव में एकाधिकार सन्तुलन है। इसके पीछे कारण यह है कि दोनों फर्मे यह समझ गयी है कि प्रतियोगिता करने से दोनां को ही हानि है। अत: यदि दोनों एक हो जायं और एकाधिकार के समान मूल्य निर्धारित होने दे और बाजार को बराबर-बराबर बांट ले तो दोनों ही अपने संयुक्त लाभों को अधिकतम कर सकते है। ऐसा ही चेम्बरलिन के स्वरूप में दिखाया गया है। रेखाचित्र 18.4 से स्पष्ट है कि यदि सारे बाजार में केवल एक ही उत्पादक होता तो कुल संतुलन उत्पादन OQ तथा संतुलन मूल्य OP होता। अब क्योंकि

दो उत्पादक है और वे प्रतियोगिता से बचना चाहते है तो मूल्य अभी भी OP है जबकि कुल एकाधिकार उत्पादन को दो समान भागों में बाँट लेते है। इस प्रकार दोनों को एकाधिकारी लाभ प्राप्त हो जाते है।

चेम्बरलिन के स्वरूप की तुलना कुर्नो स्वरूप से करने पर हम पाते है कि एक अर्थ में यह कुरुनों स्वरूप से श्रेष्ठतर है। कुरना स्वरूप की यह कमी है कि फर्में अपनी पूर्वधारणा गलत सिद्ध हो जाने पर भी कुछ नही सीखती है इसको चेम्बरलिन ने दूर किया है। चेम्बरलिन के स्वरूप में यह पूर्वधारणा की गयी है कि फर्मो को प्रतिक्रिया संवंधी अपने गलत अनुमानों का एहसास हो जाता है। इसको छोड़ कर चेम्बरलिन के स्वरूप में बाकी वही सारी कमियां हैं, ओर इन कमियो के आधार पर वैसे ही उसकी आलोचना को जाती है जैसा कि कुर्नो के स्वरूप की जाती है।

18.7 कुर्नो, बरतरां तथा चेम्बरलिन स्वरूपों की परस्पर तुलना

आइये अब देखे कि गैर संधिपूर्ण अल्पाधिकार के इन तीन स्वरूपों में सुझाये गये संतुलन हलों में आधारभूत अंतर क्या है? प्रतियोगी फर्म द्वारा प्रतिक्रिया के बारे में पूर्वधारणा को छोड्कर तीनों स्वरूपों में बाकी सभी पुर्णधारणाएं लगभग एक समान है। इन तीनों स्वरूपों के संतुलन हलों में जो अंतर आता है; वह प्रतिक्रिया के बारे में पूर्वधारणा के अंतर के कारण है। पूर्वधारणा और संतुलन हल में अंतर तालिका 18.2 में दिखाए गए है।

तालिका - 18.2

कुर्नो, बरतरां तथा चेम्बरलिन स्वरूपो का तुलना विवरण

स्वरूप	प्रतिक्रिया सम्बंधी पूर्वधारणा	संतुलन स्थिति
कुर्नो	प्रतियोगी फर्म अपनी उत्पादन मात्रा निश्चित रखती है लेकिन पूर्वधारणा गलती सिद्ध होने पर भी सबक नही सीखती।	प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के बीच की स्थिति
बरतरां	प्रतियोगी फर्म अपने उत्पादक का मूल्य निश्चित रखती है।लेकिन यह पूर्वधारणा गलत सिद्ध होने पर भी कोई सबक नही सीखती।	प्रतियोगिता स्थिति
चैम्बरलिन	प्रतियोगी फर्म अपनी उत्पादन मात्रा निश्चित रखेगी, लेंकिन पूर्वधारणा गलत सिद्ध होने पर सबक सीखती है ओर वह ऐसी उत्पादन मात्रा निश्चित करती है जिसमें कोई प्रतियोगिता न हो।	एकाधिकार स्थिति

तालिका 18.2 से स्पष्ट है कि कुर्नो के अनुसार अल्पाधिकार मूल्य पूर्ण प्रतियोगिता मूल्य तथा एकाधिकार मूल्य के बीच कही होंगा। बरतरां कें अनुसार यह मूल्य पूर्ण प्रयोगिता मूल्य होगा चैम्बरलिन कें अनुसार यह एकाधिकार मूल्य होगा। इन तीनों में यह याद रखना आवश्यक है कि जो भी मूल्य होगा

वह सभी उत्पादकों के लिए एक समान होगा; क्योंकि सभी में यह पूर्वधारणा भी है कि सभी फर्मे एक समान वस्तुएं बना रही है।

18.8 अल्पाधिकार स्टेकलबर्ग स्वरूप (STACKELBERG MODEL)

1952 में जर्मन अर्थशास्त्री स्टेकलबर्ग ने गैर-संधिपूर्ण अल्पाधिकार का एक और स्वरूप प्रतिपादित किया जो कि कुर्नो स्वरूप का एक विस्तार माना जाता है। कुर्नो स्वरूप की पूर्वधारणा को ध्यान में रखते हुए इस स्वरूप में स्टेकलबर्ग ने यह पूर्वधारणा की है कि दोनों में से एक अल्पाधिकारी[विवेकी है और दूसरा सीधा सादा। सीधा सादा अल्पाधिकारी तो कुलों की पूर्वधारणा कि प्रतियोगी फर्म अपना उत्पादन निश्चित रखेगी के आधार अपनी उत्पादन मात्रा तय करता है। दूसरी ओर विवेकी अल्पाधिकारी इस बात को भली भांति समझता है कि सीधा सादा अल्पाधिकारी तो कुर्नो की पूर्वधारणा के आधार पर ही अपनी नीति तय करेगा। इसीलिए इस तथ्य को ध्यान में रखकर वह प्रारम्भ से ही इतनी उत्पादन मात्रा का निर्णय लेता है; जिससे कि उसे अधिकतम लाभ हों। विवेकी अल्पाधिकारी इस तरह अगुआ बन कर लाभ उठता है। जब अगुआ अल्पाधिकारी अपने लिये पहले से ही अधिकतम लाभ वाली उत्पादन मात्रा चुन लेता है, तो सीधा सादा अल्पाधिकारी उसकी इस उत्पादन मात्रा को निश्चित मान कर अपनी उत्पादन मात्रा निश्चित करता है। वह केवल अनुकरण कर लेता है। अब क्योंकि विवेकी अल्पाधिकारी पहले से ही अपने लिए सबसे अच्छी स्थिति चुन लेता है; वह कोई भी प्रतिक्रिया जाहिर नही करता है क्योंकि वह तो केवल अनुकरण करता है और वह प्रतिक्रिया केवल उसी स्थिति में करेगा जबकि विवेकी अल्पाधिकारी अपनी उत्पादन मात्रा में कोई परिवर्तन करे। अत: न तो सीधा सादा अल्पाधिकारी कोई प्रतिक्रिया करता है और न ही विवेकी अल्पाधिकारी। इससे संतुलन की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

स्टेकलबर्ग के स्वरूप में संतुलन की स्थिति आने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों में से एक अल्पाधिकारी विवेकी और अगुआ हो जो कि 'कुर्नो पूर्वधारणा" को न माने। यदि दोनों विवेकी होंगे तो दोनों ही अगुआ बन कर लाभकारी स्थिति चुनना चाहैगे; इससे असंतुलन की स्थिति पैदा होगी। परिणामस्वरूप या तो मूल्य प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जायगी अथवा दोनों आपस में कोई संधि कर लेंगे। स्टेकलबर्ग का स्वरूप कुर्नो के स्वरूप से दो प्रकार भिन्न है। प्रथम, कुर्नो के स्वरूप में दोनों ही अल्पाधिकारी सीधे सादे तथा अनुकरणी है। स्टेकलबर्ग के स्वरूप में एक अल्पाधिकारी विवेकी तथा अगुआ है; जबकि दूसरा सीधा सादा तथा अनुकरणी है। दूसरे, कुर्नो के स्वरूप में संतुलन स्तर पर दोनों ही अल्पाधिकारी अपने-अपने उत्पादों का एक समान मूल्य प्राप्त करते है और एक समान मात्रा बेचते है। स्टेकलबर्ग स्वरूप में विवेकी अल्पाधिकारी सीधे सादे अल्पाधिकारी की अपेक्षा अधिक मूल्य प्राप्त करने और अधिक उत्पादन करने में सफल होता है।

18.9 विकुंचित मांग वक्र स्वरूप
(KINKED DEMAND CURVE MODEL)

इस स्वरूप का अल्पाधिकार विश्लेषण में महत्वपूर्ण स्थान है। विकुंचित मांग वक्र की अवधारणा तीन अर्थशास्त्रियों के नाम से जुड़ी है। 1939 में आर. एल. हॉल (R.L.Hall) एवं सी. आई हीच (C.I.Hitch) द्वारा एक साथ लिखी गयी पुस्तक में इस अवधारणा का प्रयोग यह समझाने के लिए किया है कि अल्पाधिकार बाजार में मूल्य दृढ़ (Sticky) क्यों रहते है? उसी वर्ष पाल स्वीजी (Paul Sweezy) ने इस अवधारणा का प्रयोग अल्पाधिकार बाजार में मूल्य निर्धारण समझाने के लिये किया। इसीलिए विकुंचित मांग वक्र स्वरूप पाल स्वीजी के नाम से अधिक जुड़ा हुआ जाना जाता है।

जैसा कि आप जानते है कि अल्पाधिकार का कोई भी स्वरूप प्रतियोगियों की प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। आइये देखे कि विकुंचित मांग वक्र में प्रतियोगियों की प्रतिक्रियाओं के बारे में क्या पूर्वधारणा है। विकुंचित मांग वक्र में यह माना गया है कि यदि कोई उत्पादक संतुलन मूल्य से कम मूल्य पर बेचना चाहे तो प्रतियोगी भी मूल्य कम कर देते है, और यदि अधिक मूल्य पर बेचना चाहे तो प्रतियोगी मूल्य में वृद्धि नहीं करते। अल्पाधिकारियों का ऐसा व्यवहार प्राय: मन्द बाजार (Depressed) में पाया जाता है। इस प्रकार मूल्य कम होने पर प्रतियोगियों की प्रतिक्रिया एक होती है और मूल्य अधिक होने पर दूसरी। इस स्वरूप में एक समान उत्पाद की पूर्वधारणा को त्याग दिया गया है। इसमें विभिन्न उत्पादकों के उत्पादों में विभिन्नता हो सकती है।

प्रतियोगियों की इस प्रतिक्रिया का फर्म यह प्रभाव पड़ता है कि वह अपने आप का मूल्य कम या अधिक करने की स्थिति में नही रह पाता है। यदि वह मूल्य कम करती है तो सभी प्रतियोगी भी कम कर देते है। कम मूल्य पर बड़ी हुई मांग सभी प्रतियोगियों में बंट जाती है और फर्म के पक्ष में बाजार की कुल बढ़ी हुई मांग का केवल थोड़ा भाग ही हिस्से में आता है। ऐसे में फर्म को मूल्य कम करने में कोई विशेष लाभ प्रतीत नहीं होता। दूसरी ओर, यदि फर्म मूल्य में वृद्धि करती है तो प्रतियोगी फर्में मूल्य में वृद्धि नहीं करती। ऐसी स्थिति में फर्म के बहुत सारे ग्राहक टूट कर प्रतियोगी फर्मों के पास चले जाने का भय रहता है। ऐसी स्थिति में फर्म को मूल्य में वृद्धि करने का कोई औचित्य दिखायी नहीं देता। कुल मिलाकर फर्म न तो मूल्य कम करने की स्थिति में होती है ओर न ही अधिक। बाजार में मूल्य दृढ़ रहता है और यह आसानी से नही बदलता है।

प्रतियोगियों की इन प्रतिक्रियाओं का प्रभाव फर्म के मांग वक्र (जो कि औसत आय वक्र भी है) पर पड़ता है। फर्म द्वारा मूल्य कम करने पर मांग पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता; क्योंकि मांग कम लचीली (Less elastic) होती है। फर्म द्वारा मूल्य में वृद्धि करने पर मांग पर अधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि मांग अधिक लचीली (More elastic) होती है। इस फर्म के मांग वक्र के दो भाग होते है, एक कम लोचदार तथा दूसरा अधिक लोचदार। जहां ये दोनों भाग मिले है।, वहां किंक बन जाता है। यही किंक बिन्दु बाजार मूल्य भी होता है।

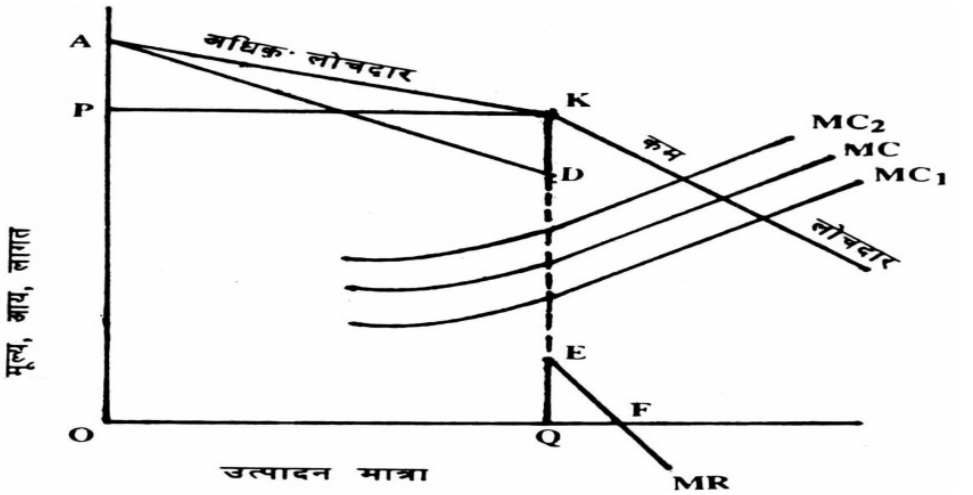

चित्र 18.5

चित्र 18.5 में मांग वक्र AKC का AK भाग अधिक लोचदार, जबकि KC भाग इसकी अपेक्षा कम लोचदार। किंक बिन्दु K पर है। मूल्य इसी बिन्दु पर निर्धारित होता है जो कि OP(=KQ) है। मांग वक्र में किंक होने का कारण सीमान्त आय वक्र सीमन्तर (discontinuous) हो जाता है। मांग वक्र के दो भाग होने के कारण सीमान्त आय वक्र में के भी वक्र कें भी दों भाग बनते है। सीमान्त आय वक्र ADEF है। इसमें AD भाग मांग वक्र AK के आधार पर है। EF भाग मांग वक्र KC के आधार पर है। दोनों भागों के बीच एक अन्तराल (gap) है जो कि DE है। मांग वक्र के दोनों भागों के लोचो में जितना अन्तर होगा यह अन्तराल भी उतना ही बड़ा होगा। विकुंचित मांग वक्र विश्लेषण के अनुसार फर्म का सीमान्त लागत वक्र इसी अन्तराल में से गुजरता है। इस अन्तराल का महत्व यह है कि यदि अन्य बातें पूर्वतत् रहे तो फर्म की सीमान्त लागत कम (MC_1) या अधिक (MC_2) होने पर भी जब तक सीमान्त लागत वक्र अन्तराल से गुजरता है, सन्तुलन मूल्य तथा उत्पादन पर कोई प्रभाव नही पड़ता। इसका अर्थ यह नही लेना चहिए कि किसी भी स्थिति में लागत बढ़ने पर संतुलन पर प्रभाव नही पड़ेगा। यदि केवल एक फर्म की लागत बढ़ती है तो संतुलन पर कोई प्रभाव नहीं होगा। लेकिन यदि सभी फर्मो की लागतों में एक साथ वृद्धि होती है (जैसा कि सरकार द्वारा कोई नया उत्पादन कर लगाने पर हो सकता है।) तो सन्तुलन स्तर बदल जायेगा और एक नया किंक स्थापित होगा।

किंक मांग वक्र विश्लेषण की कई ओलाचनाएं है । प्रथम् इसमें यह नहीं बताया गया है कि किंक, मूल्य के किस स्तर पर स्थापित होता है? किंक कितनी ऊँचाई पर होता है? दूसरे, इसमें यह भी नही बताया गया है । कि फर्म उत्पादन और मूल्य के बारे में निर्णय कैसे लेती है? तीसरे, इसमें अधिकम लाभ की स्थिति अनिश्चित है । यह स्थिति अनिश्चित इसलिए है कि सीमान्त लागत और सीमान्त आय में समानता (जो कि अधिकतम लाभ की स्थिति निर्धारित करती है) एक न होकर, अनेक है इसलिये विकुंचित मांग वक्र सिद्धांत एक अनिर्धारित सिद्धांत (indeterminate theory) कहा जाता है ।

बोध प्रश्न 2

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. प्रतियोगी फर्म की क्या प्रतिक्रिया होगी? इस बारे में बरतरां स्वरूप की क्या पूर्वधारणा है? यह कुर्नो स्वरूप में की गयी पूर्वधारणा से किस प्रकार भिन्न है?
2. चेम्बरलिन स्वरूप में प्रतियोग़ी फर्म की प्रतिक्रिया के बारे में क्या पूर्वधारणा की गयी है? यह कुर्नो द्वारा की गयी पूर्वधारणा से किस प्रकार भिन्न है?
3. कुर्नो, बरतरा तथा चेम्बरलिन स्वरूपों में विभिन्न सन्तुलन स्थितियों में आधारभूत अन्तर क्या है? स्टेकलबर्ग स्वरूप में अत्यधिकारी फर्मो के बारे में क्या पूर्वधारणा है?

18.10 सारांश

अल्पाधिकारी बाजार की दो मुख्य विशेषताएं है। प्रथम, फर्मो की संख्या थोड़ी होती है। दूसरे, फर्म की कार्यवाही का अन्य फर्मो पर प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप प्रतियोगी फर्मो द्वारा प्रतिक्रिया होती है। इन प्रतिक्रियाओं के बारे में कोई निश्चित सिद्धांत नही है, न ही इनका कोई निश्चित स्वरूप है भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं हो सकती है। इन्हीं प्रतिक्रियाओं के आधार पर अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूप (Models) बने है।

इन विभिन्न स्वरूपों के निर्धारक तत्व है। (1) उत्पादकों की संख्या (2) वस्तु समस्पता या विभिन्नता (3) फर्म प्रतियोगिता करती है या सहयोग करती है। (4) फर्म छोटी है या बड़ी (5) फर्मों की आपस में एक दूसरे के बारे में जानकारी। उद्योग में प्रतियोगी फर्मो की अनिश्चितताओं से बचने के लिए फर्म प्राय: आपस में सन्धि का सहारा लेती है अल्पाधिकार के इस स्वरूप को सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार (Collusive oligopoly) कहा जाता है । अन्य स्वरूपों को गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार (Non- Collusive oligopoly) कहा जाता है।

गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूप विभिन्न आर्थशास्त्रियों द्वारा सुझाये गये है। इसमें प्रमुख कुर्नो, बरतरां, चेम्बरलिन, स्टेकलबर्ग तथा स्वीजी के है ये विभिन्न प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। कुर्नो के स्वरूप में यह पूर्वधारणा पर फर्म अपनी उत्पादन मात्रा तय करती है। हालंकि यह पूर्वधारणा गलत निकलती है। लेकिन फिर भी इस पूर्वधारणा को सही मानते हुए फर्मे निरन्तर उत्पादन मात्रा में परिवर्तन करती रहती है कुर्नो के स्वरूप में स्थिर सन्तुलन प्राप्त हो जाता है यह संतुलन पूर्ण प्रतियोगीता तथा एकाधिकार के बीच कहीं होता है।

बरतरां के स्वरूप (Bertrand's Model) में यह माना गया है कि प्रतियोगी फर्म अपना मूल्य स्थिर रखती है। यह पूर्वधारणा भी गलत निकलती है, लेकिन फर्म इससे कोई सबक नहीं लेती और अगली बार फिर यही पूर्वधारणा मानकर निर्णय लेती है। इसमें भी अन्तत: संतुलन स्तर प्राप्त हो जाता है, यह संतुलन पूर्ण प्रतियोगिता जैसा होता है।

चेम्बरलिन के स्वरूप (Chamberlin's Model) में यह पूर्वधारणा की गयी है कि प्रारम्भ में तो यही समझा जाता है कि प्रतियोगी फर्म अपना उत्पादन मात्रा सम्बन्धी निर्णय नहीं बदलेगी लेकिन शीघ्र ही फर्म को अपनी गलती का एहसास हो जाता है और फर्म अगली बार जो निर्णय लेती है, वह यह मानकर लेती है कि प्रतियोगी फर्म अपना निर्णय बदलेगी । ऐसी स्थिति में संतुलन स्तर वही होता है जो कि एकाधिकार की स्थिति में होता है ।

स्टेकलबर्ग स्वरूप (Stackel berg's Model) कुर्नो स्वरूप का विस्तार माना जाता है इसमें एक अल्पाधिकारी विवेकी तथा दूसरा सीधा माना जाता है । विवेकी अल्पाधिकारी यह मान कर कि सीधा सादा अल्पाधिकारी तो कुर्नो पूर्वधारणा के अनुसार निर्णय लेगा ही वह अपने लिये पहले से ही ऐसी उत्पादन मात्रा चुन लेता है कि उसे अधिकतम लाभ हो । फलस्वरूप प्रथम अवधि में ही सन्तुलन स्तर प्राप्त हो जाता है।

स्वीजी का स्वरूप (Sweezy's Model) विकुंचित मांग वक्र (Kinkeed Demand Curve) के नाम से प्रसिद्ध है । इसमें प्रतियोगी फर्मो की प्रतिक्रिया के बारे में यह अवधारणा है कि यदि फर्म मूल्य कम करती है तो प्रतियोगी फर्म भी मूल्य कम कर देगी और यदि फर्म मूल्य बढ़ाती है तो वे मूल्य नहीं बढाएगी । ऐसी स्थिति में फर्म के दो मांग वक्र होते है । जहां ये दोनों मिलते है वहां एक किंक बनता है और वही फर्म का सन्तुलन मूल्य होता है । यह एक मजबूरी का सन्तुलन हो ता है, फर्म मूल्य घटाने और बढाने दोनों से ही डरती है, क्योंकि प्रतियोगियों की प्रतिक्रियाएं उसे ऐसा करने से रोकती है इस स्वरूप में कोई निश्चित "अधिकतम लाभ स्तर " नहीं होता, क्योंकि एक सीमा में लागत घटने या बढ़ने का मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं होता । अत: इसे एक अनिश्चित सिद्धांत कहा जाता है ।

18.11 शब्दावली

अल्पाधिकार (Oligopoly)	किसी वस्तु के बाजार की वह स्थिति जिसमें थोड़ी फर्मे होती है और एक फर्म द्वारा लिये गये निर्णयों का प्रभाव प्रतियोगी फर्मो पर पड़ता है
सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार(Collusive Oligopoly)	अल्पाधिकार का वह स्वरूप जिसमें प्रतियोगी फर्मो की अनिश्चितता, प्रतियोगिता, नयी फर्मो के उद्योग में आने से बचने के लिए फर्मे आपस में कोई औपचारिक या अनौपचारिक समझौता कर लेती है।
गैर-सन्धिपुर्ण अल्पाधिकार(Non-Collusive Oligopoly)	अल्पाधिकार का वह स्वरूप जिसमें फर्मे आपस में कोई समझौता न कर प्रतियोगिता करती है ।
प्रतिक्रिया वक्र (Reaction Curve)	प्रतियोगी फर्मो की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखकर किसी फर्म के उत्पादन या मूल्य वक्र ।

विकुंचित मांग वक्र (Kinked Demand Curve)	दो अलग लोच वाले मांग वक्रों को जोड़ कर बनाया गया किसी अल्पाधिकार फर्म का मांग वक्र जिसके जोड़ने वाले बिन्दु को किंक कहा जाता है।

18.12 कुछ उपयोगी पुस्तके

A.KOUTSOYIANNIS	modern Microeconomics (Second Edtion)The Macmillan Press Ltd.
W.FELLNER	Competition Among the Few (1960) Augustus M.Kelley,New York.
R.H.LEFTWICH	The Price System and Resource Allocaton Third Edition Holt,Rinehart and Winston,New York.
J.HIRSHLEIFER	Price Theory and Applicatons (Third Edition),Prentice Hall of India,Private Limited,New Delhi.

18.13 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

अल्पाधिकार बाजार की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें उत्पादकों की संख्या थोड़ी होंती है । संख्या थोड़ी होने से अभिप्राय: यह है कि उत्पादक एक दूसरे की संभावित प्रतिक्रियाओं के बारे में कुछ न कुछ अनुमान लगा सकते है । इस अनुमान के आधार पर वे मूल्य या उत्पादन सम्बन्धी निर्णय लेते है।

गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार में प्रतियोगी फर्मो के द्वारा संभावित प्रतिक्रिया के बारे में पूर्वानुमान के आधार पर फर्मे आपस में प्रतियोगिता करती है । संभावित प्रतिक्रियाओं के बारे में सही सही अनुमान लगाना एक कठिन कार्य है । अत: सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार में प्रतिक्रियाओं की अनिश्चितता से बचने के लिए ,प्रतियोगिता कम करनें के करने लिये, तथा नयी फर्मो का उद्योग में आने से रोकने कें लिए, फर्मे आपस में कोई मूक या लिखित समझौता कर लेती है ।

कुर्नो स्वरूप में यह पूर्वधारणा है कि प्रतियोगी फर्म जो उत्पादन मात्रा निश्चित करती है उस पर स्थिर रहती है । हालांकि यह पूर्वधारणा गलत सिद्ध होंती है : लेकिन फिर भी फर्मे ऐसी पूर्वधारणा करती रहती है ।

कुर्नो स्वरूप के अनुसार प्रत्येक फर्म के हिस्से में कुल बाजार का अनुपात निम्नलिखित साथ के आधार पर होगा

फर्म का कुल बाजार में अनुपात = 1/फर्मो की संख्या +1

= ¼+1=1/5 भाग

बोध प्रश्न 2

बरतरां स्वरूप की पूर्वधारणा यह है कि प्रतियोगी फर्म एक बार मूल्य निश्चित कर लेने के बाद इसमें परिवर्तन नहीं लायेगी। कुर्नो स्वरूप में यही पूर्वधारणा उत्पादन की मात्रा के बारे में की गयी थी। कुर्नो की तरह बरतरां स्वरूप की पूर्वधारण भी गलत सिद्ध होती है : लेकिन फर्मे फिर भी इसे मानती रहती है।

चेम्बरलिन स्वरूप में पहले तो यह (कुर्नो की तरह) पूर्वधारणा की गयी है कि प्रतियोगी फर्म अपनी उत्पादन मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं लायेगी। लेंकिन बाद में अपनी पूर्वधारणा गलत सिद्ध होने पर वे सबक सीख लेती है और इस पूर्वधारणा को छोड़ देती है। कुर्नो स्वरूप में यह पूर्वधारणा गलत सिद्ध होने पर भी फर्मे इस पूर्वधारणा का त्याग नही करती है।

कुर्नो सन्तुलन प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के बीच कही होता है। बरतरा स्वरूप में यह सन्तुलन पूर्ण प्रतियोगिता के स्तर पर होता है। चेम्बरलिन स्वरूप में यह एकाधिकार के स्तर पर होता है।

स्टेकलबर्ग स्वरूप में एक अल्पाधिकारी विवेकी है और दूसरा सीधा सादा। सीधा सादा अल्पाधिकारी कुर्नो पूर्वधारणा के आधार पर निर्णय लेता है। विवेकी अल्पाधिकारी यह समझकर कि सीधा सादा अल्पाधिकारी तो कुर्नो पूर्वधारणा के आधार पर निर्णय लेगा, अपने लिए पहले से ही वह उत्पादन स्तर चुन लेता है जिसमें अधिकतम लाभ हो।

इकाई – 19

सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूप

(DIFFERENT MODELS OF COLLISIVE OLIGOPOLY)

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 संधिपूर्ण अल्पाधिकार का अर्थ

19.3 सन्धिपूर्ण अल्पाधिकर के विभिन्न स्वरूपों के निर्धारक तत्व

19.4 पूर्ण सन्धि तथा अपूर्ण सन्धि में भेद

19.5 कार्टेल (पूर्ण सन्धि)

19.5.1 संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु कार्टेल

19.5.2 बाजार बांटने हेतु कार्टेल

19.6 मूल्य मार्गदर्शन (आर्ण सघि)

19.6.1 कम लागत वाली मूल्य मार्गदर्शक

19.6.2 मूल्य मार्गदर्शक प्रमुख फर्म

19.6.3 बैरोमीटर मार्गदर्शक फर्म

19.7 सारांश

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.9 अभ्यासों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार का अर्थ बना सकेंगे ।
2. सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के निर्धारक तत्व समझा सकेंगे।
3. पूर्ण सन्धि तथा अपूर्ण सन्धि में भेद कर सकेंगे।
4. पूर्ण सन्धि के संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु कार्टेल स्वरूप को समझा सकेगे।

5. पूर्ण सन्धि के बाजार बाँटने हेतु कार्टेल के गैर-मूल्य प्रतियोगिता स्वरूप को समझा सकेंगे।
6. पूर्ण सन्धि के बाजार बाँटने हेतु कार्टेल के कोटा निर्धारण स्वरूप को समझा सकेंगे।
7. अपूर्ण सन्धि के "मूल्य लागत वाली मूल्य मार्गदर्शक फर्म" के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।
8. अपूर्ण सन्धि के "मूल्य मार्गदर्शक प्रमुख फर्म" के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।
9. अपूर्ण सन्धि के "मार्गदर्शक बैरोमीटर फर्म" का स्वरूप समझा सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

आपने पिछली इकाई 17 में गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के बारे में पड़ा है। इसमें आपने यह भी पाया होगा कि प्रतियोगी फर्मो की आपस में एक दूसरे के प्रतिक्रियाओं के बारे में पूर्वधारणा गलत भी सिद्ध होती है। फलस्वरूप एक अनिश्चितता की स्थिति बनी रहती है और तीव्र प्रतियोगिता होने की संभावना अधिक रहती है, जिससे लाभों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अनिश्चितता, प्रतियोगिता तथा लाभ पर बुरे प्रभाव समाज या कम करने के लिए उत्पादक आपस में सन्धि करने का प्रयत्न करते है। यह सन्धि केवल मूल्य के बारे में या केवल उत्पादन के बारे या उत्पादन के अन्य किसी पहलू के बारे में या उत्पादन के एक साथ सभी पहलुओं के बारे मे हो सकती है। इससे सन्धि के कई विभिन्न स्वरूप उभरते है। वास्तव में अर्थशास्त्र में सन्धि के कई स्वरूपों की चर्चा की जाती है लेकिन इस इकाई में हम उन सभी मुख्य स्वरूपीं का वर्णन करेंगें जिनकी चर्चा प्रया: सभी पुस्तको मे की जाती है।

19.2 सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार का अर्थ

गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों मे (देखिये पाठ इकाई 17) हमने नोट किया कि अल्पाधिकारी अपने प्रतियोगियों की संभावित प्रतिक्रियाओं का पूर्वानूमान सही सही नहीं लगा पाता है। इससे उसे अपने उत्पादन और मूल्य के बारे में निर्णय लेने में बड़ी कठिनाई होती है। एक अनिश्चितता की स्थिति बनी रहती है। ऐसे में प्रतियोगिता करना सभी अल्पाधिकारियो के लाभों पर बुरा प्रभाव डाल सकता है। अत: अनावश्यक प्रतियोगिता से बचने के लिए यें फर्मे आपस में कोई सन्धि करने में अपना भला समझती है। अल्पाधिकारियों द्वारा इस प्रकार आपस में साठगांठ करने को सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार की संज्ञा दी जाती है।

अल्पाधिकारियों द्वारा आपस में सन्धि करने के पीछे, कई उद्देश्य होते है। प्रथम; वे प्रतियोगियों की संभावित प्रतिक्रियाओं का पूर्वानुमान लगाने की कठिनाई से बच सकती है और अनिश्चितता की स्थिति को दूर कर सकती है। दूसरे ; आपस में प्रतियोगिता की तीव्रता को कम कर सकती है ताकि एकाधिकार की स्थिति लाकर अपने लाभों में वृद्धि कर सकें। तीसरे; कई बार सन्धि करने के पीछे एक और उद्देश्य होता है। वह उद्देश्य है, नयी फर्मो को उद्योग में आने से रोकना। यदि वर्तमान अल्पाधिकारी फर्म अधिक लाभ कमा रही है तो नयी फर्मो को उद्योग में प्रवेश करने को प्रोत्साहन मिलता है। यदि ये फर्मे उद्योग में आ जाती है तो पुरानी फर्मों के लाभ पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। इस नयी फर्मो को उद्योग मे आने से

रोकने के लिए पुरानी फर्मे आपस में साठगाँठ कर मूल्य और उत्पादन नीति अपना सकती है जिससे नयी फर्मो को उद्योग में प्रवेश पाने में कठिनाइ हो।

19.3 सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों के निर्धारक तत्व

सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूप हो सकते है। इन स्वरूपों के निर्धारक तत्व निम्न है:-

1. सन्धि के पीछे उद्देश्य क्या है?

सन्धि के पीछे मुख्यत : उद्देश्य तो यही होता है कि प्रतियोगिता से बचा जावे ताकि अधिक से अधिक लाभ कमा सके। लेकिन कई बार ऐसा भी होता है कि यदि वर्तमान अल्पाधिकार फर्मो को अधिक लाभ हो रहे हो तो नयी फर्म की उद्योग में प्रवेश की संभावना रहती है। यदि यह फर्म प्रवेश कर जावे तो वर्तमान फर्मो के लाभ पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। अत: वर्तमान फर्मे आपस में सन्धि कर नयी फर्मो का उद्योग में प्रवेश रोक सकती है।

2. फर्मे एक दूसरे की तुलना मे कितनी बड़ी या छोटी हैं?

यदि सभी फर्मे एक समान है तो सन्धि की शर्त भी एक समान हो सकती है। यदि कुछ फर्मे बड़ी है तो वे अपने पक्ष में बेहतर शर्त मनवा सकती है। छोटी फर्मो के पास इन बड़ी फर्मो की शर्ते मानने के अतिरिक्त कोई चारा नही होता। इस प्रकार सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार का स्वरूप क्या होगा यह फर्म के छोटे बड़े होने पर भी निर्भर करता है?

3. विभिन्न फर्मों के तुलनात्मक लागत ढाँचे क्या है?

यदि सभी अल्पाधिकारी. फर्मो की औसत लागते लगभग एक समान है तो उनकी प्रतियोगिता करने की शक्ति भी लगभग एक समान होगी। यदि किसी फर्म की औसत लगत अन्य फर्मो की तुलना में बहुत कम है तो इस फर्म की प्रतियोगिता करने की शक्ति अधिक हो जाती है। सन्धि करते समय यह फर्म अपने लिए बेहतर शर्ते मनवा सकती है।

4. क्या देश का कानून प्रतियोगिता से बचने के लिए सन्धि करने की आज्ञा देता है ?

प्राय : सभी देशों के कानून ऐसी सन्धि करने की आज्ञा नहीं देते। क्योंकि उत्पादकों में आपस में सन्धि मूल्य वृद्धि को बढ़ावा देती है; जो कि उपभोक्ता के हित में नही है। इसके विपरीत सभी देशों में ऐसे कानून होते है जो कि एकाधिकार प्रवृति को रोकते है। ऐसे कानून होने के बावजूद भी फमें कानून की कमियों का लाभ उठा कर कुछ सन्धि करने में सफल हो जाती है। सन्धि का स्वरूप क्या होगा यह इस बात पर निर्भर है कि कानून किस प्रकार के है और उनको कितनी कड़ाई से लागू किया जाता है?

5. क्या फ़र्मे अपनी पूर्ण स्वतंत्रता छोडने के लिए तैयार है या कुछ स्वतंत्रता

प्राय: सन्धि करते समय अपने उत्पादन सम्बन्धी निर्णयों के बारे में पूर्ण स्वतन्त्रता छोड़ने को तैयार नहीं होती है जब तक कि उनके सामने बहुत अधिक मजबूरी न हो। वे उत्पादन के किसी एकाध पहलू के बारे में अपनी स्वतन्त्रता त्यागना पसंद करती है। वे केवल मूल्य के बारे में या केवल उत्पादन मात्रा के बारे

और या केवल बाजार बाँटने के बारे में समझौता करने के बारे में सरलता से तैयार हो सकती है । सभी पहलुओं के बारे में सन्धि करना और उसे प्रभाव में लाना कठिन होता है।

ऊपर बताये गये प्रमुख कारकों के अतिरिक्त और बहुत से ऐसे कारक हो सकते है जो सन्धि अल्पाधिकार के स्वरूप पर प्रभाव डाल सकते है, जैसे-उत्पादकों की संख्या, उनका आपस में एक दूसरे पर विश्वास आदि ।

19.4 पूर्ण सन्धि तथा अपूर्ण सन्धिमे भेद

1. पूर्ण सन्धि पूर्ण अल्पाधिकार

सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों को दो वर्गो में बांटा जाता है ।ये है, पूर्ण सन्धि अल्पाधिकार तथा अपूर्ण सन्धि अल्पाधिकार । यदि सन्धि औपचारिक तोर पर की जाती है तो इसे पूर्ण सन्धि की संज्ञा दी जाती है । यह औपचारिकता लिखित भी हो सकती है या मौखिक भी । क्योंकि सभी देशों के कानून ऐसे है जो कि लिखित सन्धि की आज्ञा नही देते, प्राय: ऐसी सन्धि मौखिक अथवा किसी अप्रत्यक्ष औपचारिकता द्वारा की जाती है । उत्पादक प्राय व्यापार संघ बना लेते है और इस संघ का प्रयोग आपस में की गयी मौखिक सन्धि को लागू करने के लिये करते है । ये अपनी पत्रिका छापते है; जिसके द्वारा ये अपने सदस्यों को सन्धि से संबन्धित सूचनाएं भिजवाते रहते है ।

उत्पादक मिलकर एक ऐसा संघ बना लेते है जिसमें उत्पादकों में आपस में समझौता प्राय: गुण तोर पर होता है ऐसे संघ को कार्टेल (Cartel) कहा जाता है । सभी फर्मे इस आशा में होती है कि ऐसा करने से लाभ अधिक होंगे और अपने उत्पादन तथा मूल्य करने की शक्ति को कार्टेल को सौप देते है । कार्टेल का स्वरूप इस बात पर निर्भर होता है कि उत्पादकों ने कोन-कोन से अधिकार कार्टेल को सौपे है ।

3. अपूर्ण सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार

इस अल्पाधिकार में कोई औपचारिक समझौता नही होता । प्राय: देशो के कानून औपचारिक समझौते की आज्ञा नही देते । अत: कानून से बचने के लिए अनौपचारिक तौर पर आपस में एक प्रकार का मूक समझौता रहता है । इस प्रकार के समझौता को "अपूर्ण सन्धि" की संज्ञा दी जाती है । अनौपचारिक समझौतों में से कई बार तो आपस में बिना मिले ही उत्पादक ये समझ जाते है कि कोन सी नीति अपनानी चाहिए; जिससे आपस में प्रतियोगिता न हो । अल्पाधिकार का मूल्य मार्गदर्शन (Price Leadership) स्वरूप इसका एक अच्छा उदाहरण है ।

इसके अतिरिक्त, ऐसे समझौते भी होते है जिनकी शर्तो के बारे में किसी सभा में बातचीत नही होती । ये उत्पादक जब किसी निजी अथवा सामाजिक उत्सवों पर या क्लबों आदि में मिलते है तो ये शर्ते तय कर लेते है ।

इस प्रकार के सभी समझौतों को अपूर्ण इसलिये कहा जाता है; क्योंकि इसके मानने वालों पर कोई औपचारिक बन्धन नही होता । वे जब चाहे इसकी शर्तो का उल्लंघन कर सकते है । अत: ऐसे समझौतों

की टूटने की संभावना बहुत अधिक होती है । दूसरी ओर पूर्णसन्धि पूर्ण अल्पाधिकार औपचारिक समझौतों के टूटने की संभावना कम रहती है ।

19.5 कार्टेल (पूर्ण सन्धि)

कार्टेल से अभिप्राय ऐसे औपचारिक उत्पादक संघ से है जो कि किसी उद्योग के अल्पाधिकारी आपस में मिलकर बनाते है प्राय: ये कार्टेल आपस मे प्रतियोगिता की तीव्रता को कम करने के लिए या बिल्कुल ही समाप्त करने के लिए बनाये जाते है । कार्टेल का स्वरूप क्या होगा, यह इस बात पर निर्भर है कि कार्टेल बनाने के पीछे प्रतियोगिता के किस पहलू को समाप्त करना है? एक उद्देश्य यह हो सकता है प्रतियोगिता पूर्ण रूप से समाज की जाये और अल्पाधिकारियों के संयुक्त लाभ को अधिकतम किया जावे । एक उद्देश्य यह भी हो सकता है कि केवल मूल्य के बारे में, या केवल उत्पादन के बारे में, या किस किस बाजार में कौन-कौन सा उत्पादक कितना उत्पादन बेचेगा; इस बारे में कोई समझौता किया जावे । कार्टेल इसलिये भी बनाया जा सकता है ताकि नये उत्पादकों को उद्योग में प्रवेश करनें से रोका जा सके । कुल मिलाकर उद्देश्य प्रतियोगिता की तीव्रता को कम करना ही होता है । अर्थशास्त्र में कार्टेल के बहुत से स्वरूपों का वर्णन किया जाता है । हम इकाई 19 में कार्टेल के दो मुख्य स्वरूपों का वर्णन करेंगे । ये है : (1) संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु बनाये गयें कार्टेल तथा (ii) बाजार बाँटने हेतु बनाये गये कार्टेल । प्रथम प्रकार के कार्टेल में कार्टेल के व्यवस्थापकों को उत्पादक सदस्यों की उत्पादन गतिविधियों के बारे में निर्णय लेने की बहुत अधिक शक्ति होंती है । अल्पाधिकारी अपने कार्य करने के पूर्ण स्वतंत्रता को कार्टेल के हाथ में दे देता है । दूसरे प्रकार के कार्टेल में ये सदस्य अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता कार्टेल को न सौप कर उसे केवल सीमित निर्णय लेने का ही अधिकार सौपते है ।

19.5.1 संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु कार्टेल (Joint Profit Maximization Cartel)

इस स्वरूप में प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन तथा मूल्य निर्धारण करने के अधिकारों को कार्टेल कों सौप देती है । कार्टेल के पास प्रत्येक फर्म की उत्पादन लागत सम्बन्धी सूचना होती है । इसके आधार सभी फर्मो की लागतों को जोड़ उद्योग की संयुक्त लागत ज्ञात की जाती है । कार्टेल की प्रबन्ध समति इस बात का भी अनुमान लगाती है कि यदि फर्मो में आपस में कोई प्रतियोगिता न हो तो विभिन्न मूल्यों पर सभी के उत्पादनों की कुल संयुक्त मांग क्या होगी । इसके आधार पर संयुक्त मांग वक्र (अर्थात् औसत आयवक्र) और सीमान्त आय वक्र बनाया जा सकता है । उत्पादन के जिस बिक्री मूल्य पर संयुक्त सीमान्त आय तथा संयुक्त सीमान्त लागत एक समान हो जाने है तो वही अल्पाधिकार उद्योग का सन्तुलन स्तर और अधिकतम संयुक्त लाभ की स्थिति होंती है । इस सन्तुलन स्वर पर जो भी मूल्य और सीमान्त आय होती है वही प्रत्येक फर्म को अपनानी पडती है और यह तय किया जाता है कि कोन-सी फर्म कितना-कितना उत्पादन करेगी। इस स्वरूप में मूल्य, उत्पादन तथा लाभ का निर्धारण किस प्रकार होगा यह हम रेखाचित्र 19.1 की सहायता से समझा सकते है ।

मान लीजिए अल्पाधिकारी उद्योग में केवल दो, फर्म क तथा ख है। रेखा चित्र 19.1(a), तथा 19.1(b) तथा 19.1 (c) क्रमशः फर्म क, फर्म ख तथा उद्योग के बारे में है। चित्र 19.1(c) दोनों फर्मो की आय तथा लागत की स्थितियों के आधार पर बनाया गया है।

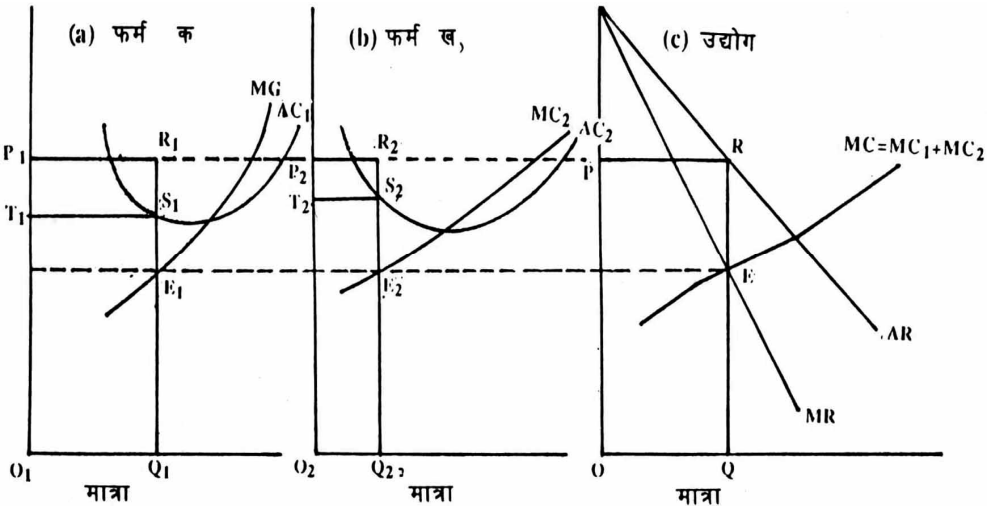

चित्र 19.1

सन्तुलन स्थिति

अब क्योकि फर्म क तथा ख ने अपने सारे अधिकार कार्टेल को सोप दिये है तो संतुलन स्थिति का निर्धारण यह मान कर होगा कि अब दोनों फर्मे एक है। दोनों फर्म मिलकर उद्योग कहलाती है। अतः अब सन्तुलन स्तर उद्योग स्तर पर तय होगा, न कि फर्म स्तर पर। उद्योग की आय तथा लागत स्थिति दोनों फर्मो की आय तथा लागत स्थितियों का जोड़ होगी। यह स्थिति चित्र 19.1 (c) में दिखायी गयी है, जहाँ कि वक्र MC उद्योंग का सीमांत लागत वक्र है और फर्म क तथा ख के सीमान्त लागत वक्रों (Mc_1 तथा MC_2) को जोड़ कर बनाया गया है। इसी प्रकार वक्र AR तथा MR उद्योग के क्रमशः संयुक्त औसत आय वक्र तथा सीमान्त आय वक्र है, जो कि फर्म क तथा ख के आय वक्रों को जोड़ कर बनाये गये है (हमने फर्म क तथा ख के चित्रों के आय वक्र नही दिखाये है। हमने ऐसा रेखाचित्र 19.1 को जटिल न बनाने के लिये किया है)

हम कई बाजारों के संतुलन विश्लेषण में यह पढ़ चुके है कि सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत की समानता ही संतुलन की मुख्य शर्त है। रेखाचित्र 19.1 (c) में यह शर्त E बिन्दु पर पूरी होती है। जहाँ कि सीमान्त लागत वक्र (MC) तथा सीमान्त आय वक्र (MR) एक दूसरे को काटते है। E बिन्दु संतुलन बिन्दु है। इसके, अनुसार उद्योग का सन्तुलन या अधिकतम लाभ प्राप्त करने वाला मूल्य RQ अर्थात OP है। फर्मो ने क्योंकि अपनी निर्णय लेने की पूरी शक्ति कार्टेल को सौप दी है। अतः वे उद्योग द्वारा निर्धारित सन्तुलन बिन्दु तथा सन्तुलन मूल्य अपनाने को बाध्य है। अब केवल यह निर्णय करना बाकी है कि कौन सी फर्म कितना उत्पादन करें। E बिन्दु X- रेखा समानन्तर रेखा खींचने पर उत्पादन का बंटवारा ज्ञात हो सकता है। ऐंसी रेखा फर्म ख के सीमान्त लागत वक्र MC2 कों E_2 पर तथा फर्म क के सीमान्त लागत

वक्र MC_1 को E_1 पर काटती है। इसी प्रकार P बिन्दु से रेखा के समानान्तर एक और रेखा खींचकर संतुलन मूल्य को फर्म क तथा ख के रेखाचित्रों में दिखाया जा सकता है। इन दोनों समानान्तर रेखाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि फर्म क O_1Q_1 मात्रा तथा फर्म ख O_2Q_2 मात्रा बेचेगी। फर्म क के उत्पादन पर कुल लाभ $P_1R_1S_1T_1$ तथा फर्म ख के उत्पादन पर $P_2R_2S_2T_2$लाभ होंगे,। उद्योग के कुल लाभ इनका जोड़ अर्थात $P_1R_1S_1T_1 + P_2R_2S_2T_2$होंगे।

फर्म क के उत्पादन पर $P_1R_1S_1T_1$ लाभ होने का अर्थ यह नहीं है कि फर्म क के हिम्से में $P_1R_1S_1T_1$ लाभ आऐगे। इसी प्रकार यह भी कहना ठीक नही है कि फर्म ख के हिस्से मे $P_2R_2S_2T_2$लाभ आएगें। वास्तव में उद्योग के कुल लाभों कें बंटवारे के बारे में कार्टेल बनाते समय समझौता हो जाता है और इसी निश्चित समझौते के अनुसार लाभ का वितरण होता है। हो सकता है कि फर्म क के हिस्से में $P_1R_1S_1T_1$ से अधिक या कम लाभ मिले। यही स्थिति फर्म ख की भी है।

कार्टेल के इस स्वरूप में उत्पादन, मूल्य तथा लाभों का निर्धारण तथा बंटवारा उसी प्रकार होगा जैसा कि ऊपर बताया गया है इस बारे में बहुत सी शंकाए व्यक्त की जाती है। संक्षेप में ये शंकाए इस प्रकार है

प्रथम-संयुक्त बाजार मांग तथा सीमान्त लागत का अनुमान लगाने में त्रुटि हो सकती है। दूसरें, समझौता करने में अनावश्यक देरी होने से बाजार तथा लागत की परिस्थितियाँ बदल सकती है। तीसरे, फर्म समझौता करने की अवधि के दौरान फर्म मूल्य गिराकर अधिक माल बेचने का प्रयास कर सकती है ताकि उन्हें समझौते के फलस्वरूप बाजार का अधिक भाग मिले। चौथे, कीमत स्थिर हो जाने से ऊंची लागत वाली फर्मो को अपना फर्म बन्द करनी पड़ सकती है और वे समझौते को मानने से इंकार कर सकती है। पाँचवे, कार्टेल गैर कानूनी होते है जिससे सरकारी हस्तक्षेप का भय होने कें कारण कठिनाई आ सकती है। छठे, नयी फर्मो का उद्योग में प्रवेश करने का भय समझौते कों कमजोर कर सकता है। इन कारणों से संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु बनाये गये कार्टेल की सफलता पर संदेह व्यक्त किया जा सकता है।

19.5.2 बाजार बाँटने हेतु कार्टेल (MARKET SHARING CARTEL)

संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु कार्टेल की सफलता संदेहात्मक होने के कारण व्यवहार में सीमित शर्तो वाला कार्टेल ही बनाया जाता है । जिसमें या तो केवल मूल्य के बारे में या उत्पादन की मात्रा के बारे में कोई समझौता कर लिया जाता है । और बाकी सभी निर्णय लेने के बारे में फर्म स्वतन्त्र रहती है । ऐसे कार्टेल को बाजार बांटने हेतु कार्टेल की संज्ञा दी जाती है । इसके निम्न दो मुख्य स्वरूप है :

(1) गैर-मूल्य प्रतियोगिता तथा (2) कोटा (QUOTA) निर्धारण ।

1. गैर-मूल्य प्रतियोगिता (NON- PRICE COMPETITION)

कार्टेल के इस स्वरूप की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें सभी उत्पादक आपस में एक निश्चित मूल्य पर उत्पादन बेचने के लिए समझौता कर लेते है । समझौता करते समय कम लागत वाली फर्मो का प्रयत्न रहता है कि सन्धि मूल्य कम हो क्योंकि इससे ऊंची लागत वाली फर्मो की अपेक्षा प्रतियोगिता शक्ति

अधिक हो जाती है। ऊँची लागत वाली फर्मो का प्रयत्न रहता है कि सन्धि मूल्य कुछ अधिक हो ताकि लागत निकाल लेने के बाद उन्हें कुछ तो लाभ प्राप्त हो। लेकिन एक बार सन्धि मूल्य निश्चित हो जाने के बाद प्रत्येक फर्म को इसे मानना पड़ता है।

कार्टेल के इस स्वरूप को गैर-मूल्य प्रतियोगिता इसलिये कहा जाता है क्योंकि इसमें कार्टेल के सदस्यों को मूल्य प्रतियोगिता छोड़ कर किसी भी अन्य प्रकार की प्रतियोगिता करने पर कोई पाबन्दी नही होती। ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए फर्म आकर्षक डिजाइन, रंग, पैकिंग, विज्ञापन आदि का सहारा ले सकती है। उन पर केवल सन्धि मूल्य को मानने का ही बन्धन होता है।

गैर-मूल्य प्रतियोगिता में कार्टेल के सफलता के बारे में कई संदेह व्यक्त किए जाते हैं। यदि सभी अल्पाधिकारियों की लागत एक समान हो तो सबकी प्रतियोगिता करने की शक्ति भी एक समान होती है। यदि विभिन्न उत्पादकों की लागतें भिन्न-भिन्न हो तो कम लागत वाली फर्मो की प्रतियोगिता शक्ति अधिक तथा अधिक लागत वाली फर्मो की प्रतियोगिता शक्ति कम होती है। इस बात की संभावना रहती है कि कम लागत वाली फर्म चोरी छिपे अपने ग्राहकों को सन्धिमूल्य से कम मूल्य पर उत्पादन बेचे या उन्हें इस प्रकार की रियायतें या कटौतिया दे कि जिनसे ग्राहक उनकी ओर आकर्षित हो। इससें अप्रत्यक्ष तौर पर एक मूल्य प्रतियोगिता चालू हो जाती है। अधिक लागत वाली फर्मो कों जब इसका आभास होता है तो वे भी ग्राहको को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये, रियायतें अथवा कटौतियाँ देना प्रारंभ कर देते है। इससें वह उद्देश्य जिसकी पूर्ति के लिये कार्टेल की स्थापना की गयी थी समाज हो जाता है। मूल्य प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जाती है।

चोरी छिपे मूल्य प्रतियोगिता प्रारम्भ होंगी या नही, यह इस बात पर निर्भर है कि फर्मो की उत्पादन लागतों में तुलनात्मक अन्तर क्या है। जितने अधिक ये अन्तर होंगे उतना ही अधिक कार्टेल की सफलता पर संदेह रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि यदि सभी की लागतें एक समान ही तो कार्टेल अवश्य ही सफल होगा। लागतें समान होने पर भी यदि किसी अल्पाधिकारी की नीयत यह है कि वह अन्य अल्पाधिकारियों को बाजार से बाहर कर दे, तो वह मूल्य प्रतियोगिता प्रारम्भ कर सकता है। यदि उसमें काफी समय तक हानि सहन करने की क्षमता है तो वह यह कार्य आसानी से कर सकता है।

3. कोटा सन्धि द्वारा बाजार को बांटना

कार्टेल के गैर-मूल्य प्रतियोगिता स्वरूप में हमने पाया है कि इसकी सफलता पर काफी संदेह रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि समझौता केवल मूल्य के बारे में किया जाता है; जबकि अन्य निर्णयों के बारे में अल्पाधिकारी स्वतत्र रहते है। कार्टेल के कोटा सन्धि (Agreement on Quota)

रूप में सफलता में संदेह को कम करने के लिये मूल्य के अतिरिक्त उत्पादन मात्रा के बारे में भी सन्धि कर ली जाती है।

कार्टेल के कोटा सन्धि रूप में मुख्य सीमा बाजार को बाँटने के बारे में होती है। प्रत्येक अल्पाधिकारी सदस्य कें बारे में यह समझौता हो जाता है कि कौन कितना उत्पादन करेगा। अर्थात् प्रत्येक के कुल उत्पादन में कोटा निर्धारित कर दिया जाता है। इसके साथ-साथ इस बारे में भी समझौता किया जाता है

कि प्रत्येक किस मूल्य पर उत्पादन बेचेगा। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक एक समान मूल्य पर ही उत्पादन बेचे। अलग-अलग अल्पाधिकारियों के लिये, अलग-अलग मूल्यों के बारे में भी समझौता हो सकता है।

कौन अल्पाधिकारी कितनी मात्रा का उत्पादन करेगा और किस मूल्य पर बेचेगा; यह उनकी लागतों के ढाँचे पर निर्भर है। स्पष्ट है कि यदि सभी की लागत एक समान हो तो प्रत्येक के हिस्से में बाजार का एक समान अनुपात आयेगा और प्रत्येक एक समान मूल्य पर ही उत्पादन बेचेगा। यदि लागतों में अन्तर हो तो उत्पादन कोटा और मूल्य में भी अन्तर आ सकता है। प्रत्येक के हिस्से में उत्पादन का कितना कोटा आयेगा और उनके लिये क्या-क्या मूल्य निर्धारित होंगे ये सब प्रत्येक फर्म की समझौता होने से पहले बिक्री का स्तर, उत्पादन क्षमता तथा समझौते करने के दौरान सौदा करने की शक्ति पर निर्भर होता है।

कई बार प्रान्तों या देशों के आधार पर भी कोटा निश्चित होते हैं। जैसे-एक फर्म केवल दिल्ली में माल बेचे, दूसरी राजस्थान में।

कार्टेल की स्थिरता के निर्धारक तत्व

अल्पाधिकार का कार्टेल स्वरूप स्थिर होगा या नही, ऐसा मुख्यत: इस बात पर निर्भर है कि कार्टेल नयी फर्मो को उद्योग में आने से रोक सकता है या नहीं। इस हेतु कार्टेल एक ऐसी मूल्य नीति अपना सकता है। जिससे नयी फर्मो कों उद्योग में प्रवेश करने का आकर्षण ही न हो। यदि फिर भी नयी फर्मे प्रवेश करती है तो या तो कार्टेल उससे भी अपनी शर्ते मनवा सकता है, या फिर न मानें की दशा में इन फर्मो से तीव्र मूल्य प्रतियोगिता कर इन्हें उद्योग से बाहर जाने के लिए मजबूर कर सकता है। कार्टेल ऐसा करने में सफल होगा या नही, यह नयी फर्मो के लग़त ढाँचे तथा वित्तीय बल पर निर्भर है। यदि नयी फर्म प्रतियोगिता से होने वाली हानि कों सहन कर पाती है और उद्योग में बनी रहती है तो वे कार्टेल के अस्तित्व को खतरे में डाल सकती है।

बोध प्रश्न 1

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने का मिलान करो।

1. सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न निर्धारक तत्वों को संक्षेप में बताइये।
2. पूर्ण सन्धि तथा अपूर्ण सन्धि में भेद बताइये।
3. संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु कार्टेल तथा बाजार बाँटने हेतु कार्टेल में आधारभूत अन्तर क्या है?
4. अल्पाधिकार के "गैर-मूल्य प्रतियोगिता" स्वरूप तथा "कोटा निर्धारण" स्वरूप में क्या अन्तर है?

19.6 मूल्य मार्गदर्शन (अपूर्ण सन्धि) PRICE LEADERSHIP (IMPERFECT COLLUSION)

अपूर्ण सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार का यह एक प्रारम्भिक स्वरूप है। कार्टेल की अपेक्षा सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार का एक अधिक व्यवहारिक रूप है । इसका मुख्य कारण यह है कि इसमें प्राय: कोई लिखित या मौखिक औपचारिकता नहीं होती और न ही उसमें उत्पादक मिल बैठ कर कोई विचार विमर्श करते है । यह एक प्रकार की मौन सन्धि है जिसमें की फर्में किसी एक फर्म द्वारा निश्चित किये गये मूल्य को अपनाती है । जिस फर्म के द्वारा निर्धारित मूल्य को बाकी सभी फर्में अपनाती है, उस फर्म को 'मूल्य मार्गदर्शक' की संज्ञा दी जाती है ।

मूल्य मार्गदर्शक फर्म अन्य फर्मो को बाध्य नही करती है कि वे उसके द्वारा निर्धारित मूल्य ही आपनाऐ । बल्कि अन्य फर्में अपनी भलाई इसी में समझती है कि मार्गदर्शक फर्म द्वारा निर्धारित मूल्य अपनाएँ । वे ऐसा इसलिए करती है क्योंकि वे मार्गदर्शक फर्म से प्रतियोगिता करने की स्थिति में नहीं होती । हाँलाकि मार्गदर्शक फर्म का मूल्य अपनाने से इनके लाभ अधिकतम नहीं हो पाते है, लेकिन फिर भी ये समझते है कि प्रतियोगिता करने से इनके लाभों पर और भी बुरा असर पड़ सकता है । वे प्रतियोगिता इसलिये नही कर सकते है क्योंकि मार्गदर्शक फर्म की या तो लागत बहुत कम होती है और या फिर उत्पादन बहुत अधिक होता है। इन कारणों से मार्गदर्शक फर्म की प्रतियोगिता करने की शक्ति अन्य फर्मो की अपेक्षा बहुत अधिक होती है ।

जैसा कि हमने ऊपर कहा है सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के इस स्वरूप में एक फर्म मूल्य मार्गदर्शक (Price Leader) का कार्य करती है और बाकी सभी फर्मे उस मूल्य को अपनाने मे अपना भला समझती है । उन्हें किसी भी मामले में कोई भी निर्णय लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है, फिर भी वे स्वतंत्र मूल्य रीति न अपनाकर मार्गदर्शक द्वारा निर्धारित मूल्य अपनाती है । मूल्य-मार्गदर्शक फर्म अपने उत्पादन का कुछ सीमान्त लागत-सीमान्त आय के सिद्धान्त के अनुसार ही तय करती है । इस प्रकार वह ऐसा मूल्य निर्धारित करती है जिसमें उसके लाभ अधिकतम हो । बाकी फर्मे इस मूल्य को अपनाती है चाहे उनके लाभ अधिकतम हो या न हो।

मूल्य-मार्गदर्शक फर्म कई प्रकार की हो सकती है । प्रथम, कम-लागत वाली फर्म जिसकी उत्पादन लागत अन्य फर्मो की अपेक्षा कम होती है । यह फर्म अन्य फर्मो की अपेक्षा अधिक प्रतियोगिता शक्ति रखती है । अत: अन्य फर्मे इसके द्वारा तय की गयी कीमत को अपनाने में ही अपना भला समझती है । दूसरे, बड़ी या प्रमुख (Dominant) फर्म जिसका कि कुल उत्पादन में बहुत बड़ा योगदान होता है । इन फर्मो का उसकी अपेक्षा कुल बाजार में थोड़ा-थोड़ा ही योगदान होता है । यह फर्म इस स्थिति में होती है कि अपने उत्पादन को कम या अधिक कर बाजार मूल्य पर प्रभाव डाल सके । अत: अन्य फर्मे इस फर्म द्वारा निश्चित मूल्य को अपनाना ठीक समझती है ।

अल्पाधिकार उद्योग में किसी फर्म को मार्गदर्शक फर्म के लिए यह आवश्यक है नही है कि यह फर्म कम-लागत वाली हो या अधिक उत्पादन करने वाली ही हो । कई बार कुछ फर्मे ऐसी भी होती है जिनमें ये

विशषताऐ नही होती। फिर भी अपनी मूल्य नीति के लिए प्रसिद्ध हो जाती है और अन्य फर्म इसी फर्म द्वारा तय किये गये मूल्य को सही मान कर अपना लेती है। ऐसी फर्म को 'बैरोमीटर फर्म' कहते हैं।

19.6.1 कम लागत वाली मूल्य मार्गदर्शक (LOW COST PRICE LEADER)

इस पारपम्परिक स्वरूप में यह पूर्वधारणा की जाती है कि उद्योग में केवल दो फर्मे है। दोनों एक समान उत्पादन बनाती है। दोनों की उत्पादन करने की लागतें भिन्न-भिन्न है लेकिन दोनों एक ही मूल्य पर उत्पादन बेचती है। कम लागत वाली फर्म अगुआ बन कर मूल्य निर्धारित करती है। यह ऐसा मूल्य निर्धारित करती है जिससे उसके लाभ अधिकतम हो। अधिक लागत वाली फर्म इस मूल्य को अपनाती है। चाहे इस मूल्य पर लाभ अधिकतम हो या न हो। इस कों अपनाने को इसलिए बाध्य होती है क्योंकि अधिक लागत होने के कारण इसकी प्रतियोगिता शक्ति कम लागत वाली फर्म के अपेक्षा कम होती है। यदि यह फर्म अगुआ या मार्गदर्शक फर्म का मूल्य न अपनाकर मूल्य प्रतियोगिता प्रारम्भ कर दे तो इससे कम लागत वाली फर्म की अपेक्षा इसके लाभों पर अधिक बुरा प्रभाव पड़ सकता है। अत: अधिक लागत वाली फर्म इसी में अपनी भलाई समझती है कि वह कम लागत वाली फर्म द्वारा निश्चित मूल्य कों अपना ले और उसका अनुसरण करे। ऐसी स्थिति मार्गदर्शक फर्म तो अपने लाभ अधिकतम कर लेंगी। जबकि अनुकरणी फर्म अपने लाभ अधितकम नही कर पायेंगी। इस स्वरूप को रेखा-चित्र 19.2 द्वारा भी दर्शाया जा सकता है।

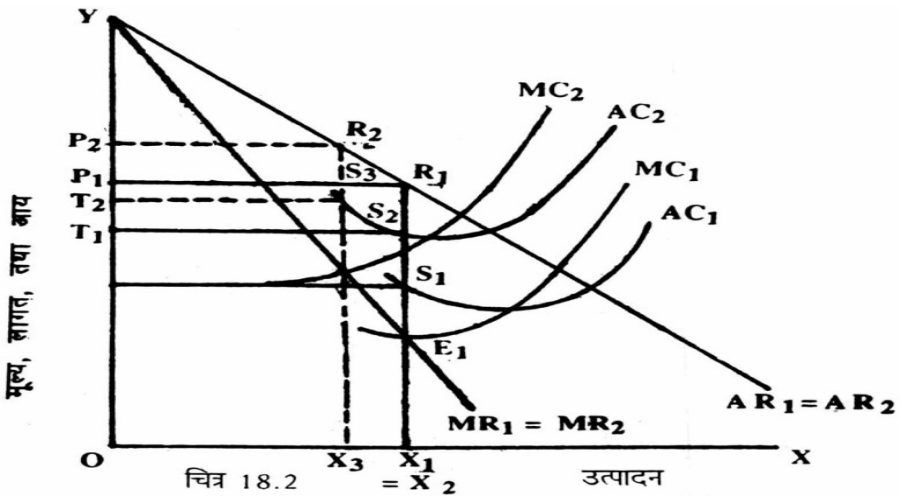

चित्र 18.2

रेखाचित्र 19. 2 में हमने यह पूर्वधारणा की है कि दोनों फर्मो का मांग वक्र एक ही है जो कि AR है। इससें आशय यह है कि दोंनों फर्मो की मांग स्थिति एक जैसी है। अर्थात किसी निश्चित मूल्य पर दोंनों फर्मो की मांग एक समान है। यह पूर्वाधारणा रेखाचित्र 19.2 को जटिल न बनाने के लिये की गयी है। यदि दोनों के मांग वक्र भिन्न-भिन्न हो तो भी विश्लेषण की आधारभूत बातों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अन्तर केवल इतना होता है कि अगुआ फर्म द्वारा निर्धारित मूल्य पर दोनों उत्पादकों की मांग भिन्न होती है। दूसरी ओर रेखाचित्र 19. 2 में हमने यह पूर्वधारणा की है कि प्रत्येक मूल्य पर दोनों अल्पाधिकारियों की मांग एक समान है।

रेखाचित्र 19.2 में दोनों फर्मो के औसत आय वक्र (AR_1=AR_2) तथा सीमान्त आय वक्र (MR_1=MR_2) एक समान है। क्योंकि हमने यह पूर्वधारणा की है कि दोनों की मांग स्थिति एक समान है। कम लागत वाली फर्म के औसत लागत वक्र तथा सीमान्त लागत वक्र क्रमश: AC_1 तथा MC_1 है। अधिक लागत वाली फर्म के ये वक्र क्रमश: AC_2 तथा MC_2 है। अब क्योंकि कम लागत फर्म अगुआ या अन्य शब्दों में मार्गदर्शक फर्म है, यह फर्म मूल्य निर्धारित करेंगी। यह फर्म वह मूल्य निर्धारित करेगी जिससे इसे अधिकतम लाभ हों। यह तो आप जानते ही है कि अधिकतम लाभ उस उत्पादन पर होते है जिस पर कि सीमान्त लागत = सीमान्त आय। कम लागत वाली फर्म की यह स्थिति बिन्दु E_1 पर है। जहाँ MC_1 वक्र तथा MR_1 वक्र एक दूसरे को काटते है। इस सन्तुलन के अनुसार कम लागत वाली फर्म R_1X_1 मूल्य जो कि OP_1 के समान है, तय करेगी। संतुलन उत्पादन है, OX_1 है जबकि कुल लाभ $P_1R_1S_2T_2$ है।

अब अधिक लागत वाली अनुकरणी फर्म इस मूल्य को अपनायेगी अर्थात् यह भी OP_1 मूल्य पर ही उत्पादन बेचेगी। इस मूल्य पर उसके उत्पादन की भी मांग OX_2 (=OX_1) होगी जो कि कम लागत वालों फर्म की है। अन्तर केवल इतना होगा कि अधिक लागत वाली फर्म के लाभ कम लागत वाली फर्म की अपेक्षा कम होंगे। इसके कुल लाभ $P_1R_1S_2T_2$ होंगे। ये लाभ कम लागत वाली फर्म के लाभों $P_1R_1S_1T_1$की अपेक्षा कम है। अधिक लागत वाली फर्म को इसी लाभ से संतोष करना पड़ता है। अन्यथा मूल्य प्रतियोगिता शुरू होने का खतरा रहता है जिससे लाभ इससे भी कम हो सकते है। यह फर्म मूल्य प्रतियोगिता को शुरू करने का प्रयत्न नहीं करती। क्योंकि अधिक लागत होने के कारण इसकी प्रतियोगिता शक्ति कम लागत वाली फर्म के अपेक्षा कम है।

रेखाचित्र 19.2 में बिन्दुकित रेखाएं यह दिखाती है कि यदि अधिक लागत वाली फर्म का सन्तुलन E_2 बिन्दु पर होता तथा मूल्य R_2X_2 अर्थात OP_2 होता और इसके कुल लाभ $P_2R_2S_3P_1$ होते। स्पष्ट है कि इस स्थिति में अधिक लागत वाली फर्म का मूल्य कम लागत वाली कर्म की अपेक्षा कम होता और या फर्म अपना उत्पादन नही बेच पाती। अत: इसके पास दो विकल्प है। या तो यह कम लागत वाली फर्म द्वारा निर्धारित मूल्य को अपना ले अथवा फिर मूल्य प्रतियोगिता करे। इसकी तुलनात्मक मूल्य प्रतियोगिता शक्ति कम होने के कारण यह पृथक विकल्प अपनाने में ही अपनी भलाई समझती है।

अल्पाधिकार के इस स्वरूप की सफलता केवल इसी बात पर निर्भर नही है कि अधिक लागत वाली फर्म द्वारा निर्धारित मूल्य अपनाती है या नहीं, उतना उत्पादन भी करें जितना कि उसके मांग वक्र के अनुसार हो। यदि अधिक लागत वाली फर्म के लिए कठिनाइयां उत्पन्न कर सकती है और मूल्य पर प्रभाव डाल कर उसे अधिकतम लाभ की स्थिति से डिगा सकती है। कम लागत वाली फर्म अधिक लागत वाली फर्म के व्यवहार को देखकर प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसी मूल्य नीति अपना सकती है कि अधिक लागत वाली फर्म उसके द्वारा निर्धारित मूल्य को मानने के लिए बाध्य हो जाए। अत: अल्पाधिकार के इस स्वरूप को सफल बनाने के लिए यह बेहतर है कि मूल्य के साथ-साथ उत्पादन मात्रा के बारे में कोई मूल्य या अन्य किसी रूप में कोई सन्धि हो जाए।

19.6.2 मूल्य मार्गदर्शक प्रमुख कर्म (DOMINANT FIRM PRICE LEADER)

पूर्व धारणाएं

इस स्वरूप में ये पूर्व धारणाएं है। प्रथम उद्योग में एक प्रमुख फर्म है जिसका कि उद्योग के कुल बाजार में भी बड़ा भाग है। बाकी सभी फर्म छोटी और प्रत्येक का कुल बाजार में बहुत थोड़ा योगदान है। दूसरे, प्रमुख फर्म अगुआ बन कर अपने उत्पादन का मूल्य निर्धारित करती है। जबकि छोटी फर्म इस मूल्य को अपनाती है। अगुआ फर्म वह मूल्य निर्धारित करती है जिस पर कि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो।

तीसरे, मार्गदर्शक फर्म को सभी छोटी फर्मो की सीमान्त लागतों के बारे में ज्ञान है। आपको यह तो विदित ही है कि किसी फर्म का सीमान्त लागत वक्र उस फर्म का पूर्ति वक्र होता है। अत: मार्गदर्शक छोटी फर्मो के सभी सीमान्त लागत वक्रों को जोड़कर, इनका कुल पूर्ति वक्र ज्ञात कर सकता है इससे उसे यह पता चल जाता है कि किस किस मूल्य पर ये फर्म कुल कितना-कितना उत्पादन पूर्ति करने को तैयार है।

चौथे, इस पूर्ति वक्र के आधार पर प्रमुख फर्म यह ज्ञात करती है कि किस-किस मूल्य पर उसके उत्पादन की कितनी मांग होगी। अर्थात छोटी फर्मो के पूर्ति वक्र के आधार पर यह अपना मांग वक्र मालूम करती है। आइये देखें कि प्रमुख फर्म अपना मांग वक्र कैसे ज्ञात करती है।

प्रमुख फर्म का मांग वक्र

प्रमुख फर्म अपना मांग वक्र निम्नलिखित आधार पर ज्ञात करती है -

प्रमुख फर्म की किसी मूल्य पर मांग = उस मूल्य पर उद्योग की कुल मांग

उस मूल्य पर छोटी फर्मो की कुल पूर्ति

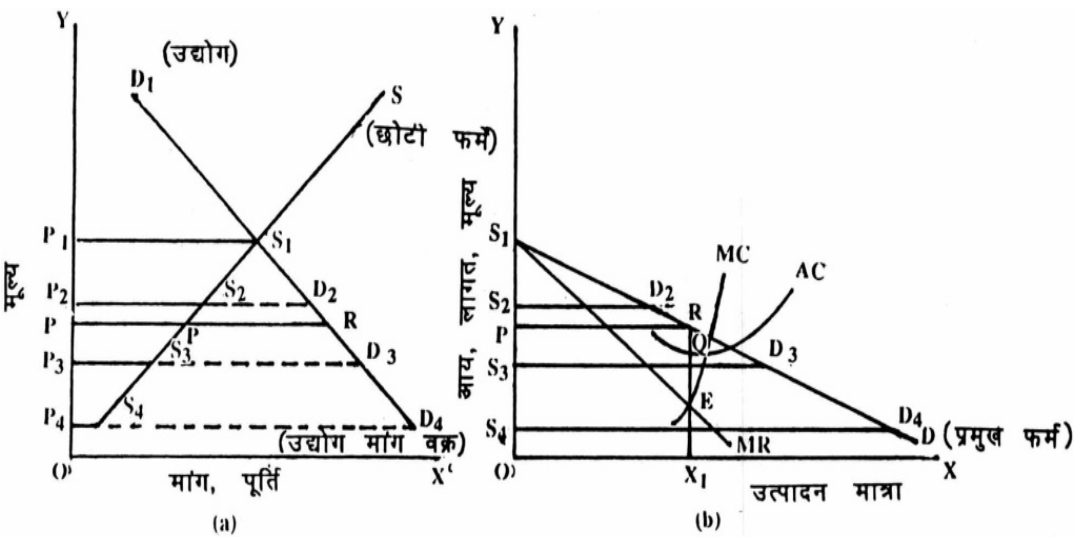

चित्र 19.3

रेखा चित्र 19.3 (a) में वक्र D_1 उद्योग का मांग वक्र है। अन्य शब्दों में यह मांग वक्र प्रमुख फर्म तथा छोटी फर्मो की विभिन्न मूल्यों पर कुल मांग को दर्शाता है। वक्र S केवल छोटी फर्मो का पूर्ति वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि किन-किन मूल्यों पर छोटी फर्मे कितनी-कितनी पूर्ति करेंगी? प्रत्येक मूल्य पर उद्योग की कुल मांग तथा छोटी फर्मो द्वारा पूर्ति का अन्तर प्रमुख फर्म की मांग है। उदाहरणत: OP_1 मूल्य पर उद्योग की कुल मांग P_1S_1 जबकि छोटी फर्मो द्वारा पूर्ति भी P_1S_1 है। अत: इस मूल्य पर प्रमुख फर्म की मांग शून्य होंगी। OP_2 मूल्य पर उद्योग की मांग P_2D_2। जबकि छोटी फर्मो की पूर्ति P_2D_2 है। अत: प्रमुख फर्म की मांग S_2D_2 ($=P_2D_2 - P_2S_2$) होगी। इस तरह विभिन्न मूल्यों पर प्रमुख फर्म अपने उत्पादन की मांग ज्ञात करती है। रेखा चित्र 19.3 (a) के आधार पर प्रमुख फर्म की मांग के बारे में सूचना तालिका 19.1 मे इकट्ठी की गयी है।

तालिका 19.1

प्रमुख फर्म की मांग तालिका

मूल्य	उद्योग की मांग	छोटी फर्मो की कुल पूर्ति	प्रमुख फर्म की कुल मांग
(1)	(2)	(3)	(4=2-3)
OP_1	P_1S_1	P_1S_1	शून्य
OP_2	P_2D_2	P_2S_2	S_2D_2
OP3	P_3D_3	P_3S_3	S_3D_3
OP_4	P_4D_4	P_4S_4	S_4D_4

चौथे कालम में प्रमुख फर्म की कुल मांग के बारे में सूचना को हमने एक अलग रेखा चित्र 19.3 (b) में रेखांकित किया है। इससे प्रमुख फर्म का मांग वक्र D ज्ञात हो जाता है। आप जानते है कि फर्म का मांग वक्र उसका औसत आय वक्र AR भी होता है। इसके आधार पर हम प्रमुख फर्म का सीमान्त आय वक्र (MR) भी ज्ञात कर सकते है।

प्रमुख फ़र्म द्वारा निर्धारित मूल्य

प्रमुख फर्म वह मूल्य निर्धारित करती है जिस पर कि उसे अधिकतम लाभ हो। यह स्थिति उस उत्पादन पर होती है जहां कि फर्म की सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत एक समान हो। ऊपर (प्रमुख फर्म) खींचे गये रेखा चित्र 19.3 का सरल रूप चित्र 19.4 में प्रस्तुत कर रहे है ताकि मूल्य निर्धारण को समझाया जा सके।

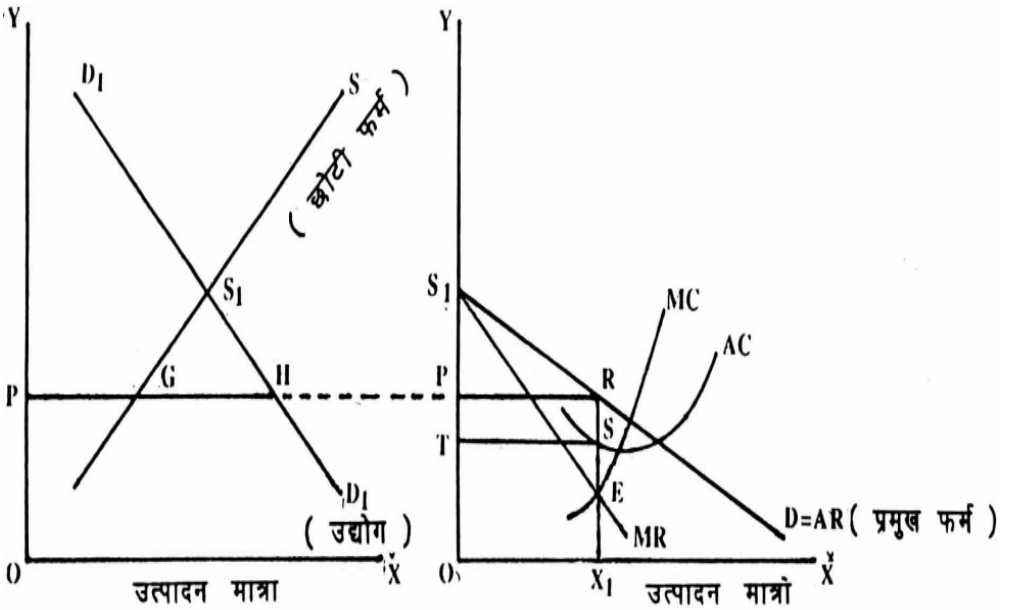

रेखा चित्र 19.4

रेखा चित्र 19.4 (b) में प्रमुख फर्म का सन्तुलन E बिन्दु पर है जहां सीमान्त लागत वक्र MC तथा सीमान्त आय वक्र MR एक दूसरे को काटते है। संतुलन मूल्य RX_1 है, जो कि op के समान है। संतुलन उत्पादन अर्थात् सबसे अधिक लाभ वाला उत्पादन OX_1 है। प्रमुख फर्म के कुल लाभ PRSTहै।

प्रमुख फर्म द्वारा निर्धारित मूल्य OP छोटी फर्मे भी अपनाती है। P बिन्दु से X- रेखा के समानान्तर एक रेखा खींचने से हमें यह ज्ञात हों जायेगा कि इस मूल्य पर छोटी फर्मे कितनी मात्रा का उत्पादन करेगी। रेखा चित्र 20.4 (a) को यह समानान्तर रेखा H,G तथा P पर काटती है। इससे स्पष्ट है कि छोटी फर्मे कुल PG उत्पादन करेगी। जबकि बड़ी फर्म का उत्पादन GH होगा जो कि चित्र 19.4(b) में PR या OX के समान है।

उपर्युक्त रेखा चित्रों से स्पष्ट है कि उद्योग का कुल उत्पादन PH होगा। इसमें से प्रमुख फर्म GH($PR=OX_1$) पूर्ति करेगी, जबकि छोटी फर्म PG मात्रा का उत्पादन करेगी। ऐसी स्थिति में प्रमुख फर्म तो अपने लाभ अधिकतम कर लेती है, जबकि यह आवश्यक नहीं है कि छोटी फर्मे ऐसा पर पायेगी। प्रमुख फर्म के लाभ अधिकतम से अधिकतम बने रहे इसके लिये यह आवश्यक है कि छोटी फर्मे केवल मात्रा का ही उत्पादन करें। यदि वे इससे भिन्न मात्रा का उत्पादन करती है तो प्रमुख तथा मार्गदर्शक फर्म के अधिकतम लाभ वाली स्थिति डिग सकती है। अत: अल्पाधिकार के इस मार्गदर्शक स्वरूप की सफलता तथा स्थिरता के लिये यह आवश्यक है कि छोटी फर्मों तथा प्रमुख फर्म के बीच मात्रा के बारे में कोई सन्धि हो जाये। ऐसा न होने की दशा में मार्गदर्शन के इस स्वरूप की सफलता में संदेह बना रहेगा।

19.6.3 बैरोमीटर मार्गदर्शक (BAROMETRIC PRICE LEADER) फर्म

ऊपर बताये गये मूल्य मार्गदर्शन के दो पारम्परिक स्वरूपों में हमने पाया है कि मार्गदर्शक फर्म होने के लिए यह आवश्यक है कि फर्म या तो कम लागत वाली हो अथवा प्रमुख हो। व्यवहार में कभी-कभी ऐसा

भी होता है कि ऐंसी फर्म भी मूल्य मार्गदर्शक की भूमिका अदा करती है, जो कि न तो कम लागत वाली होती है और न ही प्रमुख। यह एक ऐसी विशेष फर्म होती है, जिसके बारे में ऐसा विश्वास हो जाता है कि इस फर्म को बाजार के बारे में बहुत अच्छा ज्ञान है और बाजार का रूख किस ओर जाने वाला है, उसके बारे में विश्वासपूर्वक अनुमान लगा सकती है। ऐसी फर्म की मूल्य नीति अन्य फर्मे इस विश्वास पर अपना लेती है कि यह फर्म मूल्य निर्धारण के बारे में सही निर्णय लेती है, इसलिए नही कि यह फर्म अधिक प्रतियोगिता शक्ति रखती है। इस प्रकार फर्मे बार-बार लागत, आय तथा बाजार का कमान लगाने के झंझटों से बच जाती है। कई बार उद्योग में कम लागत वाली या कई प्रमुख फर्मे होती है और उनमें मूल्य मार्गदर्शक फर्म कौन हो, चुनने की समस्या खड़ी हो जाती है। एक समान प्रतियोगिता शक्ति वाली फर्म आपस में किसी भी एक को मूल्य-मार्गदर्शक मानने में आनाकानी करती है। ऐसे में यदि एक फर्म ऐसी हो जिसकी मूल्य नीति पर सबको विश्वास है, चाहे यह फर्म कम लागत की या प्रमुख हो या न हो, तो मूल्य मार्गदर्शक का चुनाव आसान हो जाता है। क्योंकि अन्य फर्मो के लिए यह फर्म बाजार के एक बैरोमीटर की भूमिका अदा करती है। अत: इस स्वरूप को बैरोमीटर मूल्य मार्गदर्शक (Barometric Price Leadership) की संज्ञा दी जाती है। यह आवश्यक नही है कि ऐसी फर्म उद्योग में से ही कोई फर्म हो। उद्योग के बाहर की फर्म भी बैरोमीटर मूल्य मार्गदर्शक फर्म की भूमिका अदा कर सकती है। उदाहरणार्थ डबलरोटी उद्योग क्या मूल्य नीति अपनाए ? इस बात पर निर्भर हो सकता है कि मैदा बनाने वाली कोई विशेष फर्म मैदा के बारे में क्या मूल्य नीति अपनाती है?

निष्कर्ष

ऊपर बताये गये मूल्य मार्गदर्शक के दो पारम्परिक स्वरूपों में हमने यह जाना है कि मार्गदर्शक फर्म बनने के लिए किसी फर्म का या तो अन्य फर्मो की अपेक्षा लागत कम होना या उत्पादन का आकार बहुत बड़ा होना आवश्यक है। साथ-साथ हमने यह भी पाया है कि अनुकरणी फर्मो द्वारा केवल मूल्य अपना लेने से ही मार्गदर्शन स्वरूप की स्थिरता प्राप्त नहीं की जा सकती। यह भी आवश्यक है कि अनुकरणी फर्म उतना ही उत्पादन बेचे जितना कि स्थिरता के लिए आवश्यक है। अत: मूल्य के साथ-साथ उत्पादन मात्रा के बारे में भी आपस में कोई सन्धि या समझौता होना आवश्यक है। मान लीजिए मूल्य और उत्पादन दोनों के बारे में समझौता हो जाता है, क्या फिर भी विश्वास के साथ यह कहा जा सकता है कि यह समझौता स्थिर रहेगा? उत्तर यह है कि केवल सन्धि करना ही काफी नही है, इस सन्धि को लागू करवाना भी अत्यन्त आवश्यक है। एक सही मार्गदर्शक उसी फर्म को माना जा सकता है जो कि अपनी अनुकरणी फर्मो से केवल मूल्य या उत्पादन या दोनों ही मनवाकर संतोष न कर ले। यह भी निश्चय करे कि यह समझौता निरन्तर लागू रहे। मूल्य मार्गदर्शन के पारम्परिक स्वरूपों की आलोचना यह है कि इनमें समझौते को निरन्तर बने रहने के बारे में कुछ नही का गया है।

इन स्वरूपों की एक ओर प्रकार से आलोचना की जाती है। हमने ऊपर पाया है कि इन स्वरूपों की स्थिरता के लिए यह आवश्यक है कि समझौता मूल्य तथा उत्पादन दोनों के बारे में हो। ऐसा समझौता व्यावहारिक तभी बन सकता है, जबकि मूल्य मार्गदर्शक केवल कम लागत वाली फर्म या प्रमुख फर्म न होकर दोनों ही हो। यदि यह केवल कम लागत वाली फर्म है तो उद्योग में वे फर्मे जिनकी उत्पादन मात्रा

बहुत अधिक है प्रतियोगिता द्वारा कम लागत वाली फर्म को अपने सन्तुलन से डिगा सकती है और यदि यह केवल प्रमुख फर्म है तो कम लागतवाली फर्मे प्रतियोगिता कर स्वरूप को अस्थिर बना सकती है। अत: एक प्रभावशाली मूल्य मार्गदर्शक फर्म वही हो सकती है जो कि कम लागत वाली भी हो और प्रमुख भी। इस प्रकार पारम्परिक स्वरूपों को अपूर्ण का जा सकता है, क्योंकि इनमें कहा गया है कि केवल कम लग़ात वाली फर्म होने से या केवल प्रमुख फर्म होने से ही कोई फर्म मूल्य-मार्गदर्शक फर्म बन सकती है।

एक ओर आलोचना है स्वरूपों की सफलता इसके लिए यह आवश्यक है कि नयी फर्मो का उद्योग में प्रवेश न ही। यदि ये फर्मे प्रवेश पा जाती है तो मूल्य मार्गदर्शक फर्म के लिये आवश्यक है कि वे इन फर्मो को अपने द्वारा निर्धारित मूल्य मानने को बाध्य करे। यदि नयी फर्मे मूल्य-मार्गदर्शक फर्म का अनुकरण करने के लिए राजी नही है और वे इस स्थिति में है कि प्रतियोगिता कर सके तो मूल्य मार्गदर्शक के संतुलन को डिगा सकती है। अत: स्थिरता के लिये यह आवश्यक है कि मूल्य मार्गदर्शन फर्म ऐसी नीति अपनाए, जिससे नयी फर्मो के प्रवेश को रोका जा सके।

निष्कर्षत : हम कह सकते है स्वरूप को प्रभावशाली बनाने के लिये मूल्य मार्गदर्शक फर्म में विशेषताएं होनी चाहिए। प्रथम, यह कम लागत वाली तथा प्रमुख दोनों ही हो। दूसरे, यह न केवल अनुकरणी फर्मो का मूल्य और उत्पादन के बारे में सन्धि करने को बाध्य करें बल्कि यह भी सुनिश्चित करे कि यह सन्धि दीर्घकाल तक लागू रहे। तीसरे, यह नयी फर्मो का उद्योग में प्रवेश रोके। यदि प्रवेश न रोक पाये तो फर्मो को मूल्य तथा उत्पादन के बारे में सन्धि मानने को मजबूर है।

दो पारम्परिक स्वरूपों से यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि किसी उद्योग एक से अधिक कम लागत वाली या प्रमुख फर्म हो तो अल्पाधिकार का मूल्य-मार्गदर्शक स्वरूप नहीं बन पायेगा। लेकिन व्यवहार में देखा गया है कि दो पारम्परिक स्वरूपों की शर्ते ही न होने पर भी कोई फर्म मूल्य मार्ग दर्शन फर्म की भूमिका निभाती है। ऐसा हमने ऊपर बैरोमीटर मूल्य मार्गदर्शक के स्वरूप में वर्णन किया है।

बोध प्रश्न

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरो का मिलान करें।

1. अल्पाधिकार के कम लागत वाले मूल्य मार्गदर्शक स्वरूप में क्या अगुआ तथा अनुकरणी सभी फर्मो को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है?
2. अल्पाधिकार के मूल्य मार्गदर्शक प्रमुख फर्म तथा कम लागत वाली मूल्य मार्गदर्शक स्वरूपों में क्या समानता है और क्या अन्तर है?
3. बैरोमीटर फर्म की अवधारणा क्या है? अल्पाधिकार के संदर्भ में इसे संक्षिप्त में समझाइये।
4. मूल्य मार्गदर्शक के विभिन्न स्वरूपों की सफलता में संदेह उत्पन्न करने वाले कौन से मुख्य कारक है?

19.7 सारांश

अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों के दो विस्तृत वर्ग है :- (i)गैर सन्धिपूर्ण तथा (ii) सन्धि पूर्ण। आप जानते है कि अल्पाधिकार प्रतिक्रियाओं का खेल है। यदि मूल्य निर्धारण इन प्रतिक्रियाओं के आधार पर हो और इनसे बचने का कोई प्रयत्न न हो तो इसे गैर-सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार कहा जाता है और यदि इनसे बचने के लिये उत्पादक आपस में समझौता या सन्धि कर लेते है तो इसे सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार की संज्ञा दी जार्ती है।

सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के मुख्य निर्धारक तब ये है। प्रथम, सन्धि के पीछे उद्देश्य क्या है? दूसरे, फर्म एक दूसरे की तुलना में कितनी बड़ी या छोटी है? फर्मो के तुलनात्मक लागत ढांचे क्या है? क्या देश का कानून प्रतियोगिता से बचने के लिए सन्धि की मात्रा देता है? क्या उत्पादन अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता त्यागने के लिए राजी है या केवल कुछ स्वतन्त्रता।

सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार के विभिन्न स्वरूपों को आगे दो भागों (i) पूर्ण तथा (ii) अपूर्ण- में बांटा जाता है। यदि उत्पादकों द्वारा आपस मे सन्धि औपचारिक विधि से की गयी हो तो इसे पूर्ण सन्धि और यदि अनौपचारिक विधि से की हो तो इसे "अपूर्ण सन्धि" कहा जाता है।

पूर्ण संधिपूर्ण अल्पाधिकार में प्रतिक्रियाओं की अनिश्चितता को समाप्त करने के लिए उत्पादक आपस में एक संघ बनाते है। इसे कार्टेल की संज्ञा दी जाती है। कार्टेल के विभिन्न स्वरूप होसकते है। यह कार्टेल के उद्देश्य पर निर्भर है। पारम्परिक तौर पर अर्थशास्त्र में कार्टेल के दो मुख्य स्वरूपों का वर्णन किया जाता है। प्रथम, संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु कार्टेल तथा दूसरे बाजार बांटने के उद्देश्य से बनाये गये कार्टेल।

संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु काले कार्टेल में सभी फर्मो को एक मान कर उनकी संयुक्त मांग तथा लागत का अनुमान लगाया जाता है। संयुक्त सीमान्त आय तथा संयुक्त सीमान्त लागत की समानता के आधार पर पूरे उद्योग का संतुलन मूल्य तथा उत्पादन ज्ञात किया जाता है। यह मूल्य सभी फर्मो को मानना होता है। कार्टेल यह भी तय करता है कि कौन सी फर्म कितना-कितना उत्पादन करेगी? फर्मों के आपस में लाभ का बंटवारा उत्पादन के आधार पर न होकर, कार्टेल के सदस्यों के आपसे में किसी पूर्व निश्चित अनुपात के आधार पर होता है। कार्टेल के इस स्वरूप की सफलता के बारे में कई शंकाएं व्यक्त की जाती है जैसे- संयुक्त मांग तथा संयुक्त लागत के अनुमान में त्रुटि, समझौते में अनावश्यक देरी, ऊंची लागत वाली फर्मो को बन्द करने की नौबत, सरकारी हस्तक्षेप का भय, नयी फर्मो का प्रवेश आदि।

बाजार बांटने हेतु कार्टेल के दो मुख्य स्वरूप है (1) गैर-मूल्य प्रतियोगिता तथा (2) कोटा निर्धारण। गैर-मूल्य प्रतियोगिता में केवल मूल्य के बारे में सन्धि होती है। बाकी अन्य मामलों में फर्मो को स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। इस स्वरूप की सफलता में कई संदेह है। कम लागत वाली फर्म चोरी छिपे मूल्य गिराकर या ग्राहकों को कटौती आदि देकर मूल्य प्रतियोगिता प्रारम्भ कर सकती है और कार्टेल को खतरे में डाल सकती है। कोटा निर्धारण स्वरूप में मूल्य तथा उत्पादन मात्रा दोनों के बारे में सन्धि की जाती है। प्रत्येक

सदस्य के बारे में यह समझौता हो जाता है कि कोन कितना-कितना उत्पादन कितने-कितने मूल्य पर बेचेगा?

कार्टेल का स्वरूप कुछ भी हो, इसका अस्तित्व इस बात पर भी निर्भर है कि उद्योग में नयी फर्मे प्रवेश कर पाती है या नही और यदि वे प्रवेश पाती है तो क्या वे कार्टेल की शर्तो को मानती है या नही? यदि वे नहीं मानती है तो कार्टेल के अस्तित्व को खतरे में डाल सकती है।

अपूर्ण सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार में फर्मो में आपस में कोई औपचारिक समझौता न हो कर, अनौपचारिक समझौता है। उद्योग. में सभी फर्मे उन्हीं में से किसी एक फर्म को अगुआ मान कर उसके द्वारा निर्धारित मूल्यों को अपनाती है। इस स्वरूप को "मूल्य मार्गदर्शन स्वरूप " कहा जाता है। यदि अगुआ या मार्गदर्शक फर्म वह है जिसकी लागत अन्य फर्मो की तुलना में कम है तो इस स्वरूप को कम लागत वाला मूल्य मार्गदर्शक कहा जाता है। अनुकरणी फर्मे इस फर्म से प्रतियोगिता करने की स्थिति में न होने के कारण इसके द्वारा निश्चित मूल्य अपनाने में अपना भला समझती है। मूल्य मार्गदर्शन का एक और स्वरूप है-बैरोमीटर मार्गदर्शन। इसमें यह आवश्यक नही है कि फर्म कम लागत वाली हो या अधिक उत्पादन वाली। कोई भी फर्म जो कि अपनी मूल्य नीति के लिए प्रसिद्ध है मूल्य मार्ग दर्शक फर्म बन जाती है। मूल्य मार्गदर्शन को स्वरूप कोई भी हो। इसकी सफलता के लिए आवश्यक है कि अनुकरणी फर्मे केवल मूल्य ही न अपनायें बल्कि इस मूल्य पर जितना उत्पादन बिकना चाहिए केवल उतना ही बेंचें, कम या अधिक नहीं। अत: सफलता के लिये यह आवश्यक है कि समझौता मूल्य तथा उत्पादन की मात्रा दोनों के बारे में हो। साथ-साथ यह भी आवश्यक है या तो नयी फर्मो का उद्योग में प्रवेश रोका जाय या उन्हें भी समझौता मानने के लिए बाध्य किया जाय।

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

A.Koutsoyiannis	Modern Microeconomics (Second Edition)
W.Fellner	Competition Among the Few (1960),Augustus M.Kelley,New York.
R.H.Leftwich	The Price System and Resource Allocation (Third Edition),Holt,Rinehart and Winston,New York.
J.Hirsh Leifer	Price Theory and applications (Third Edition) Prentice Hall of India,Private Limited,New Delhi.

बोध प्रश्न 1

मुख्य निर्धारक तत्व है. (1) सन्धि के पीछे उद्देश्य (2) फर्मो का तुलनात्मक आकार। बड़ी फर्मे अपने पक्ष में बेहतर शर्ते मनवा सकती है। (3) फर्मो का तुलनात्मक लाग़त ढांचा। कम लागत वाली फर्मे अपने

लिये बेहतर शर्ते मनवा सकती है । (4) प्रतियोगिता से बचने के लिए सन्धि करना कानूनी है या गेर कानूनी । (5) फर्मे अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता छोड़ने को तैयार है या केवल कुछ अंश।

पूर्ण सन्धि में उत्पादक आपस में मिलकर औपचारिक तौर पर समझौता करते है । यह समझौता लिखित भी हो सकता है और मौखिक भी । क्योंकि प्राय: लिखित समझौते गैर-कानूनी होते है, ऐसे अधिकतर समझौते मौखिक होते है । अपूर्ण सन्धि में आपस में समझौते में कोई औपचारिकता नहीं होती। फर्मे स्वयं ही किसी फर्म को अगुआ या मूल्य-मार्गदर्शक मान लेती है और उसके द्वारा निर्धारित मूल्य को अपनाने में ही अपनी भलाई समझती है ।

संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु कार्टेल में उत्पादन के सभी पहलुओं के बारे में समझौता किया जाता है । फर्मे अपनी पूरी स्वतन्त्रता कार्टेल को सौंप देती है । बाजार बांटने हेतु कार्टेल में फर्मे आपस में या तो केवल मूल्य के बारे अथवा मूल्य तथा उत्पादन दोनों के बारे में समझौता करती है। वे अपनी पूरी स्वतन्त्रता को न छोड़ कर, केवल सीमित स्वतन्त्रता ही त्यागती है ।

गैर-मूल्य प्रतियोगिता स्वरूप में केवल मूल्य के बारे में समझौता किया जाता है । शेष सभी बातों के बारे में फर्मे स्वतंत्र रहती है । वे मूल्य प्रतियोगिता छोड़ कर किसी अन्य प्रकार से प्रतियेग़िता करने के लिए स्वतन्त्र होती है । कोटा निर्धारण स्वरूप में मूल्य तथा उत्पादन मात्रा दोनों के बारे में समझौता किया जाता है ।

प्रश्न 2

केवल कम लाग़त वाली फर्म को ही अधिकतम लाभ प्राप्त होते है, क्योंकि उसका मूल्य निर्धारण सीमान्त लागत तथा सीमान्त आग़म की समानता के आधार पर होता है । अन्य फर्मे इस मूल्य को अपनाती है, चाहे उनके लाभ कितने भी हों ।

दोनों स्वरूपों में यह समानता है कि दोनों में ही मार्गदर्शन फर्म मूल्य निश्चित करती हैं और अन्य फर्मे इसको मानने. में अपनी भलाई समझती है । अन्तर यह है कि एक स्वरूप में कम लाग़त वाली फर्म अगुआ फर्म है, जबकि दूसरे अधिक उत्पादन करने वाली या प्रमुख फर्म अगुआ फर्म होती है ।

बैरोमीटर फर्म एक ऐसी फर्म है जो कि अपनी मूल्य नीति के लिये प्रसिद्ध हो जाती है अन्य फर्मे इसे आदर्श मान कर इसका अनुसरण करती है । उन्हें ऐसा करने के लिए को परिस्थिति मजबूर नही करती । अल्पाधिकार में मूल्य मार्गदर्शन का यह एक स्वरूप है ।

सफलता में संदेह उत्पन्न करने वाले दो कारक है । प्रथम, यदि उत्पादन मात्रा के बारे में को सन्धि नहीं होती तो मात्रा, प्रतियोगिता प्रारम्भ होने का भय रहता है । दूसरे, यदि नयी फर्मो का प्रवेश नही रूकता और यदि नयी फर्मे मूल्य मार्गदर्शक का अनुकरण करने को राजी न हों मूल्य मार्गदर्शक स्वरूप का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है ।

इकाई – 20

द्विपक्षीय एकाधिकार
(BILATERAL MONOPOLY)

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 द्विपक्षी-एकाधिकार का अर्थ

20.3 विक्रेता एकाधिकार विश्लेषण

20.4 क्रेता एकाधिकार विश्लेषण

20.4.1 क्रेता एकाधिकार का अर्थ

20.4.2 क्रेता एकाधिकार की सन्तुलन दशा

20.4.3 सीमान्त व्यय वक्र

20.4.4 सीमान्त आय उत्पादन वक्र

20.4.5 क्रेता एकाधिकार का सन्तुलन

20.5 द्विपक्षी-एकाधिकार विश्लेषण

20.5.1 भूमिका

20.5.2 सन्तुलन सीमाएं

20.6 अनधिमान वक्रों द्वारा द्विपक्षी एकाधिकार विश्लेषण

20.6.1 भूमिका

20.6.2 क्रेता-एकाधिकारी का अनधिमान वक्र

20.6.3 विक्तो-एकाधिकयि का अनधिमान वक्र

20.6.4 एजवर्थ बाक्स रेखाचित्र

20.6.5 विश्लेषण

20.7 द्विपशी एकाधिकार: यदि एक ही फर्म क्रेता और विक्रेता दोनों हो

20.8 सारांश

20.9 शब्दावली

20.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.11 अभ्यासों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

1. द्विपक्षी एकाधिकार का अर्थ विक्रेता एकाधिकार की सन्तुलन दशाओं का संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे।
2. द्विपक्षी एकाधिकार में आय. तथा लागत वक्रों की सहायता से सन्तुलन की अनिश्चितता समझा सकेंगे।
3. द्विपक्षी एकाधिकार में कबन्ध वक्र की सहायता से सन्तुलन की अनिश्चितता समझा सकेंगे।
4. द्विपक्षी क्रेता-एकाधिकार और विक्रेता-एकाधिकारी मिलकर एक हो जायं तो सन्तुलन की स्थिति समझा सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

मूल्य निर्धारण के सिद्धांत के संदर्भ में किसी वस्तु के बाजार के विभिन्न स्वरूपों के बारे में पड़ा है। इनमें मुख्य पूर्णप्रतियोंगिता, एकाधिकारी प्रतियोगिता, अत्याधिकार तथा एकाधिकार है। इन सभी स्वरूपों में भेद प्राय: उत्पादकों की संख्या और उनके द्वारा बनायी गयी वस्तुओं में भिन्नता के आधार पर किया जाता है। इन सबमें प्रतियोगिता का अंश भी इसी आधार पर तय होता है। पूर्ण प्रनियोगिना तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता में उत्पादकों की बड़ी संख्या, अल्पाधिकार में उत्पादकों की थोड़ी संख्या तथा एकाधिकार में केवल एक ही उत्पादक होता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन सभी में क्रेताओं की संख्या, के बारे में विशेष कुछ नही कहा गया है। बिना व्यक्त किये ऐसी पूर्व धारणा है कि इन सिद्धान्तों में क्रेताओं की संख्या बड़ी है।

क्रेताओं की संख्या के आधार पर मूल्य सिद्धांत में बाजार के दो स्वरूपों का वर्णन किया जाता है। इनमें से एक है क्रेता-एकाधिकार (monopsony) जिसमें किसी वस्तु का केवल एक क्रेता होता है। दूसरा है द्विपक्षी-एकाधिकार जिसमें केवल एक क्रेता और एक ही विक्रेता होता है। इस स्थिति की संभावना उपभोक्ता वस्तुओं में न होकर उत्पादक वस्तुओं जैसे -कच्चा माल, श्रम आदि में पायी जा सकती है। इस पाठ में हम बाजार के इस स्वरूप का मूल्य-निर्धारण के सिद्धान्त के संदर्भ में विश्लेषण करेंगे।

20.2 द्विपक्षी एकाधिकार का अर्थ

इस में एक ही क्रेता होता है। द्विपक्षी-एकाधिकार में किसी भी वस्तु या सेवा का केवल एक विक्रेता तथा एक ही क्रेता होता है। अन्य शब्दों में किसी वस्तु या सेवा का मूल्य निर्धारण करने वाले दोनों ही पक्ष,

उत्पादक और उपभोक्ता, एकाधिकारी होते है । इस प्रकार द्विपक्षी एकाधिकार ' विक्रेता-एकाधिकार बनाम क्रेता-एकाधिकार " या ' एक क्रेता बनाम एक विक्रेता" की स्थिति है ।

द्विपक्षी एकाधिकार की स्थिति व्यवहार में असामान्य अवश्य लगती है लेकिन असंभव नहीं है । विक्रेता एकाधिकार की कल्पना असामान्य नही लगती जितनी कि क्रेता-एकाधिकार की । क्रेता वर्ग को दो भागों में बांटा जा सकता है (i) उपभोग वस्तुओं व सेवाओं के क्रेता तथा (ii) उत्पादन साधानों जैसे-कच्चा माल, श्रम आदि के क्रेता । किसी वस्तु का व्यक्तिगत सन्तुष्टि के लिए उपयोग करने वाला केवल एक ही क्रेता हो; ऐसी स्थिति बहुत ही असामान्य लगती है लेकिन किसी उत्पादन साधन का प्रयोग करने वाली केवल एक ही फर्म हो, ऐसी स्थिति बहुत असामान्य नहीं लगती है । देश में ऐसा संभव है कि कच्चा माल बनाने के केवल एक ही फर्म हो और उस कच्चे माल को उत्पादन में प्रयोग करने वाली भी केवल एक ही फर्म हो । श्रम बाजार में भी ऐसा संभव है कि एक विशेष कोशल के श्रमिकों को किसी विशेष फर्म में ही रोजगार मिल सकता हो । ऐसे में श्रमिक यदि अपनी एक यूनियन बना ले तो यह यूनियन श्रम विक्रेता-एकाधिकारी का रूप ले लेती है । इनको रोजगार देने वाली एक मात्र फर्म जो कि इस यूनियन से श्रमिक लेती है ' क्रेता-एकाधिकारी फर्म" कहलाती है ।क्योंकि द्विपक्षी-एकाधिकार की स्थिति उपभोक्ता वस्तु-बाजार की अपेक्षा उत्पादन साधन -बाजार में अधिक संभव प्रतीत होती है; इसलिये व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में इसका वर्णन उत्पादन साधनों के बाजार के संदर्भ में ही किया जाता है ।

किसी भी बाजार में विक्रेता के उद्देश्य एक दूसरे के विपरीत होते है । क्रेता का यह प्रयत्न रहता है कि वह कम से कम मूल्य पर वस्तु खरीदे । विक्रेता का यह प्रयत्न रहता है कि वह अधिक से अधिक मूल्य पर वस्तु बेचे क्योंकि वह अधिक से अधिक लाभ - कमाना चाहता है । द्विपक्षी-एकाधिकार में क्रेता और विक्रेता दोनों ही एकाधिकारी है । दोनों भाव तोल में प्रतियोगिता करते है । स्पष्ट है कि क्रेता द्वारा कम से कम मूल्य देने की और विक्रेता द्वारा अधिक से अधिकमूल्य प्राप्त करने की रस्साकशी होती है । वास्तव में किस मूल्य पर सौदा होगा यह दोनों की तुलनान्तक मोल-तोल करने की शक्ति पर निर्भर होगा। इसका कोई माप नही है कि क्रेता तथा विक्रेता तथा विक्रेता में से किसकी मोल-तोल करने की शक्ति अधिक है और किसकी कम। यह शक्ति आर्थिक कारकों पर निर्भर न होकर गैर-आर्थिक कारकों, जैसे-मनोवैज्ञानिक दबाव, सौदा करने में दक्षता आदि पर अधिक निर्भर है । इस कारण वश द्विपक्षी-एकाधिकार विश्लेषण में कोई एक विशेष संतुलित मूल्य की परिकल्पना नही की जा सकती है । इस विश्लेषण में केवल दो सीमाएं निर्धारित की जा सकती है; जिनके बीच कही भी यह सन्तुलित मूल्य हो सकता है । निचली सीमा में वह कम से कम मूल्य है जो क्रेता देना चाहता है तथा ऊपरी सीमा में वह अधिक से अधिक मूल्य है जो विक्रेता पाना चाहता है । बाजार में वास्तव में किस मूल्य पर सौदा होगा; यह इनकी तुलनात्मक मोल-तोल करने की शक्ति पर निर्भर करेगा । इस प्रकार द्विपक्षी-एकाधिकार में मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण को जानने के लिये यह आवश्यक है कि पहले हम विक्रेता-एकाधिकार में मूल्य निर्धारण तथा क्रेता-एकाधिकार में मूल्य निर्धारण को अलग-अलग जानें । इनके बारे में आप पहले भी अन्य इकाइयों में पढ़ चुके होंगे । अत: इनका वर्णन हम संक्षेप में ही करेंगे ।

20.3 विक्रेता-एकाधिकार विश्लेषण

व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में किसी भी बाजार का विश्लेषण इस आधार पर किया जाता है। कि विक्रेता का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है। उस मूल्य और उत्पादन को जिस पर कि विक्रेता को अधिकतम लाभ प्राप्त होते है,' सन्तुलन" कहा जाता है। यह तो आप' अब तक जान ही चुके होंगे कि किसी भी विक्रेता फर्म के सन्तुलन की दो मुख्य शर्त है। प्रथम, सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय एक समान हो। दूसरे, इस समानता के पश्चात उत्पादन स्तर पर सीमान्त आय की अपेक्षा सीमान्त लागत अधिक हो। इन शर्तों को रेखाचित्र 20.1 में दिखाया गया है।

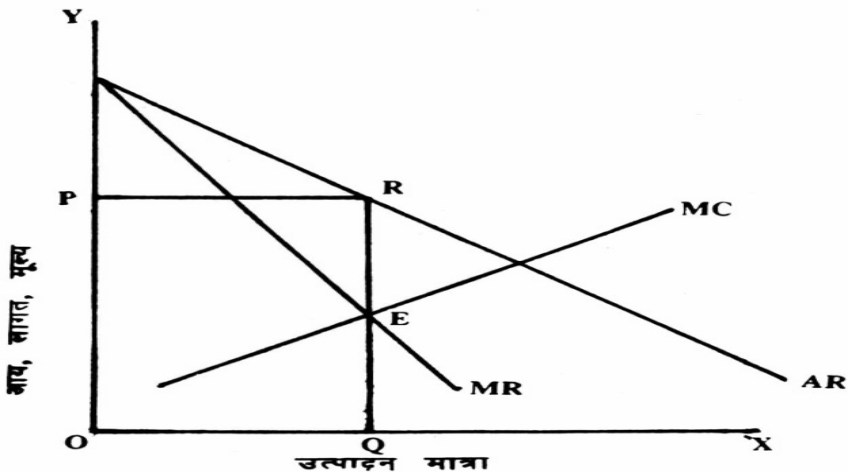

चित्र 20.1

चित्र 20.1 में AR वक्र औसत आय वक्र है। MR वक्र सीमान्त आय वक्र है तथा MC वक्र सीमान्त लागत वक्र है। मृख्य दोनों शर्ते E बिन्दु पर पूरी उतरती है। सन्तुलन मूल्य OP है, जबकि उत्पादन OR है। चित्र 20.1 में हमने औसत-लागत वक्र नही दिखाया है; क्योंकि हमारा उद्देश्य लाभ दिखाना नही है, केवल सन्तुलन की स्थिति ही दिखाना है। साथ-साथ यह भी उद्देश्य है कि रेखाचित्र 20.1 अधिक से अधिक सरल हो। इससे द्विपक्षी एकाधिकार को समझने में भी सहायता मिलेगी।

रेखाचित्र 20.1 में विक्रेता-एकाधिकारी का सन्तुलन मूल्य OP है। इसमें हम हम यह मान कर चल रहे है। कि क्रेताओं की संख्या एक से अधिक है। विक्रेता-एकाधिकारि का उत्पादन खरीदने वाले बहुत से क्रेता है। स्पष्ट है कि यदि ये क्रेता आपस में मिल जायं और इकट्ठे मिल कर एक क्रेता के रूप में विक्रेता एकाधिकारी से भाव तोल करें तो OP से कम मूल्य पर वस्तु प्राप्त कर सकते है। यह स्थिति द्विपक्षी एकाधिकार बन जाती है। इससे एक निष्कर्ष तो स्पष्ट यह निकलता है कि द्विपक्षी-एकाधिकार में वस्तु का सन्तुलन मूल्य विक्रेता-एकाधिकार की अपेक्षा कम होता है। यह निष्कर्ष द्विपक्षी-एकाधिकार में सन्तुलन की स्थिति समझने में बहुत सहायक होगा।

20.4 क्रेता-एकाधिकार विश्लेषण

20.4.1 क्रेता-एकाधिकार का अर्थ

क्रेता-एकाधिकारी किसी वस्तु का बाजार में एकमात्र खरीदार होता है । जैसा कि हम पहले कह चुके है यह स्थिति कच्चा माल, श्रम आदि आगतों के बाजार में पायी जा सकती है । ऐसा संभव है कि किसी विशेष आगत (जैसे कन्टग माल) का प्रयोग करने वाली केवल एक ही फर्म हो । ऐसी स्थिति में यह फर्म उस आगत के बाजार में क्रेता-एकाधिकारी फर्म कहलायेगी, क्योंकि उस आगत का खरीदार केवल यही फर्म है ।

किसी वस्तु के क्रेता-एकाधिकार की स्थिति में हम यह मान कर चलते है कि उस वस्तु के उत्पादन या विक्रेता एक से अधिक है । ये सभी विक्रेता इस प्रयत्न में होते है कि उनके द्वारा बनायी गयी वस्तु का एकमात्र क्रेता उन्हीं से वह वस्तु खरीदे । इस प्रकार यह 'खरीदार एक बेचने वाले अनेक" की स्थिति है । यह तर्कसंगत ही है कि ऐसी दशा में एक मात्र खरीदार अनेक बेचने वालों की अधिक संख्या से लाभ उठा कर उनसे कम से कम मूल्य पर वस्तु खरीदने का प्रयत्न करेगा ।

20.4.2क्रेता-एकाधिकारी की सन्तुलन दशा

मांग के सिद्धान्त में हम यह पढ़ चुके है कि कोई भी क्रेता वस्तु खीदते समय उस वस्तु के बाजार मूल्य पर होने वाले सीमान्त व्यय की तुलना उस वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता से करता है । जब तक वस्तु पर होने वाला सीमान्त व्यय सीमान्त उपयोगिता के अपेक्षा कम है : तब तक खरीदारी करते रहने में उसको लाभ है । जिस मात्रा पर सीमान्त व्यय और सीमान्त आय एक समान . हो जाती है वह उतनी ही खरीददारी करता है ।

यदि यह एकमात्र क्रेता किसी आगत (जैसे-कच्चा माल, श्रम आदि) का है तो वह इस आगत पर होने वाले सीमान्त व्यय की तुलना इस आगत से प्राप्त सीमान्त आय उत्पादन से करता है । आगत की अतिरिक्त इकई उत्पादन में प्रयोग करने से प्राप्त अतिरिक्त आय सीमांत आय उत्पादन. कहलाती है (इस अवधारणा का विस्तृत वर्णन वितरण के सिद्धान्त में सीमान्त उत्पत्ति सिंद्धात में किया गया है) । क्रेता आगत की उतनी ही मात्रा खरीदता है, जिस पर आगत पर होने वाला सीमान्त व्यय आगत से प्राप्त सीमान्त आय उत्पादन एक समान है । इसी में उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होता है ।

व्यवहार में उपभोक्ता वस्तु की अपेक्षा किसी आगत की खरीददारी में, क्योंकि एकाधिकार होने की संभावना अधिक है, इसलिये आगत के संदर्भ में ही क्रेता-एकाधिकार सन्तुलन की शर्त को समझाएगें। आगत के क्रेता-एकाधिकारी की सन्तुलन शर्त इस प्रकर है -

सीमान्त व्यय = सीमांत आय उत्पादन

20.4.3 सीमान्त व्यय वक्र

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में वस्तु का मूल्य सीमान्त लागत के स मान होता है। इस प्रकार यदि क्रेता-एकाधिकारी अपनी एकाधिकारी शक्तियों को पूरे तोर पर असर में ला पाये तो वह विक्रेताओं में प्रतियोगिता का लाभ उठाकर उनको उनकी सीमान्त लागत के बरबार में ही मूल्य देना पसन्द करेगा।

पूर्ण-प्रतियोगिता की इकाई में हम यह भी देख चुके है कि किसी फर्म का सीमांत लागत वक्र ही उसका पूर्ति वक्र होता है अर्थात् प्रतियोगिता विक्रेता किस मूल्य पर कितनी पूर्ति करने को तैयार है, यह हमें सीमान्त लागत वक्र से ही ज्ञात हो सकता है। क्रेता-एकाधिकार को विक्रेता के सीमान्त लागत वक्र से यह ज्ञान हो जाता है कि उसें वस्तु की कोई मात्रा खरीदने के लिए उसे प्रति इकाई क्या मूल्य देना होगा अर्थात् उस वस्तु पर उसका औसत खर्चा क्या होगा ? हम यह भी देख चुके है कि यह पूर्ति वक्र बांये से दाँये ऊपर की ओर ढलवां होता है। ढलान इस बात का प्रतीक है कि अधिक मूल्य प्राप्त होने की दशा में उत्पादन अधिक पूर्ति करने को तैयार है। क्रेता-एकाधिकारी के लिए यह इस बात का सूचक है कि यदि वह वस्तु की अधिक मात्रा खरीदना चाहता है तो वह उसे प्रति इकाई ऊँचे मूल्य पर ही प्राप्त हो सकती है अर्थात उसका प्रति इकाई औसत व्यय अधिक होगा। उस विश्लेषण से स्पष्ट है कि विक्रेता का सीमांत लागत (Marginal Cost या MC वक्र क्रेता-एकाधिकारी के लिए" औसत व्यय (Average Expense या AE) वक्र है। क्योंकि विक्रता के सीमान्त लागत वक्र से ही क्रेता को अपनी खरीद पर होने वाले औसत-व्यय के बारे में पता चलता है।

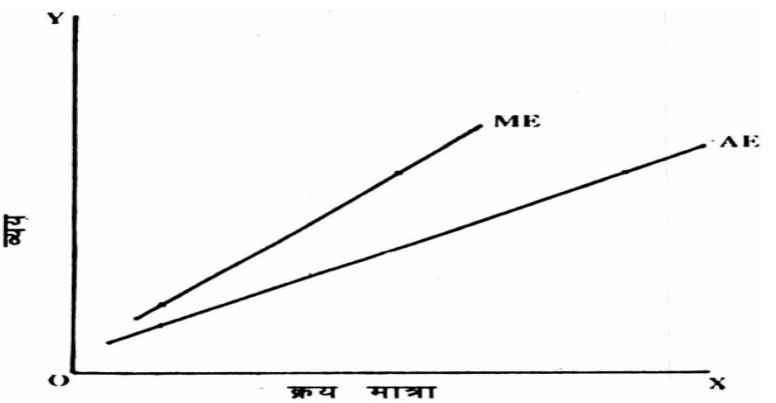

चित्र 20.2

आइये अब देखें क्रेता-एकाधिकरी का सीमान्त व्यय वक्र (Marginal Expense या ME) वक्र कैसा होगा? आप जानते है कि औसत आय में वृद्धि उसी दशा में होगी, जब सीमांत व्यय औसत व्यय से अधिक हो। अत: सीमान्त व्यय वक्र ME औसत व्यय वक्र ME से ऊपर होगा। यह Y- रेखा और AE वक्र के मध्य होगा।

20.4.4 सीमान्त आप उत्पाद वक्र

यदि यह क्रेता किसी आगत जैसे-कच्चा मात, का खरीदार है तो वह इस आगत की उतनी मात्रा खरीदेगा जिस पर कि आगत का मूल्य आगत के सीमान्त आय उत्पादन (Marginal Revenue Product या

MRP) के समान हो। आगत की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन में प्रयोग करने के कारण उत्पादक को प्राप्त अतिरिक्त आय, सीमान्त आय उत्पादक है। किसी भी आगत का सीमान्त आय उत्पाद "सीमान्त ह्रास प्रतिफल नियम" (Law of Diminishing Returns) पर आधारित है। सीमान्त आय उत्पादन वक्र भी बाँये से दाँये नीचे की और ढलवाँ होता है। यह इस बात का प्रतीक है कि आगत के मूल्य आगत की मांग में विपरीत संबंध है अर्थात आगत मूल्य कम तो आगत की मांग अधिक होगी। यह एक सामान्य मांग का नियम है। यहां यह भी बताना आवश्यक होगा कि क्रेता का आगत मांग वक्र विक्रेता का औसत आय वक्र होता है। इस वक्र से विक्रेता के यह पता चलता है कि वह अपनी वस्तु की कितनी मात्रा किस मूल्य पर बेच सकता है।

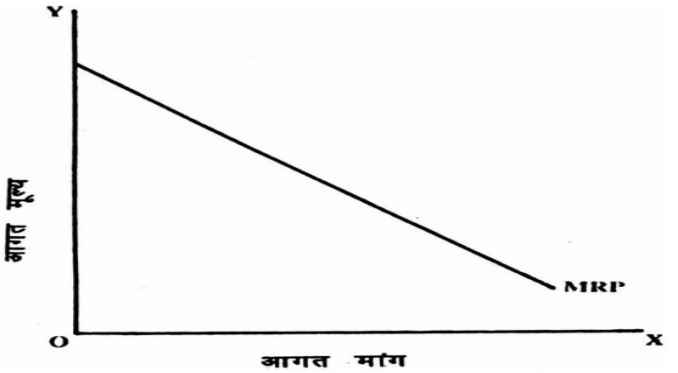

चित्र 20.3

20.4.5 क्रेता-एकाधिकारी का सन्तुलन

व्यवहार में उपभोक्ता वस्तु की अपेक्षा किसी आगत के क्रेता-एकाधिकार की संभावना अधिक रहती है। अत:आगत के संदर्भ में ही क्रेता-एकाधिकारी का सन्तुलन समझायेंगे। क्रेता एकाधिकरी का सन्तुलन आगत की उस मात्रा और मूल्य पर होगा।

जहां आगत का सीमान्त व्यय = आगत का सीमान्त आय उत्पादन होगा। रेखचित्र 20.4 यह स्थिति बिन्दु B पर है जिस पर कि आगत मांग वक्र (MRP) तथा सीमान्त व्यय वक्र (ME) एक दूसरे से काटते है।

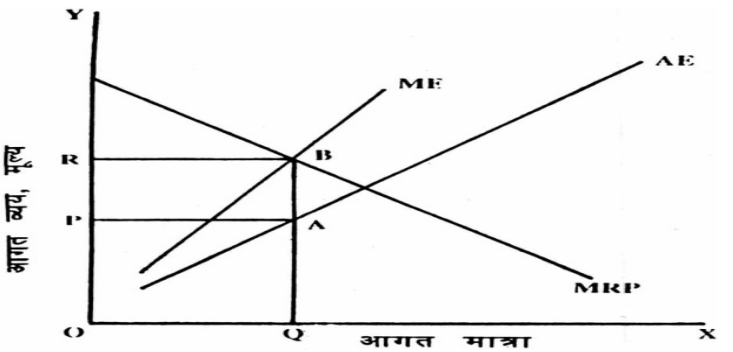

चित्र 20.4

बिन्दु B से खींचा हुआ लम्ब औसत व्यय AE वक्र को A बिन्दु पर और X- रेखा को Q बिन्दु पर काटता है। इससे यह पता चलता है कि क्रेता-एकाधिकारी यदि आगत की 00 मात्रा खरीदे तो उसे इस आगत को उत्पादन में प्रयोग करने से सर्वाधिक लाभ होगा तथा उसे प्रति इकाई AQ मात्रा के लिए BQ मूल्य चुकाना पड़ेगा। उसके मांग वक्र MRP के अनुसार वह आगत की OQ मात्रा के लिए BQ अर्थात् OR प्रति इकाई मूल्य तक देने को तैयार था जबकि बाजार में उसे यह मात्रा केवल OP मूल्य पर ही प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार क्रेता-एकाधिकारी का प्रति इकाई लाभ AB और कुल लाभ RPAB है।

यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि क्रेता-अधिकारी के यह लाभ उसी स्थिति में होगा, जबकि वह अपनी एकाधिकार शक्ति का पूरा उपयोग कर पाये। उसकी एकाधिकार शक्ति में यदि थोड़ी भी कमी आती है तो उसका कुल लाभ भी कम हो जायेगा। यदि विक्रेता के पास भी कुछ एकाधिकारी शक्ति है, तो वह क्रेता एकाधिकारी की शक्ति को कम कर सकता है। यह शक्ति कितनी कम होगी, इस बात पर निर्भर है कि दोनों की भाव तोल करने की तुलनात्मक शक्ति कितनी है। यह टिप्पणी हमें द्विपक्षी-एकाधिकार के विश्लेषण की ओर ले जाती है।

20.5 द्विपक्षी-एकाधिकार विश्लेषण

20.5.1 भूमिका

यह 'विक्रेता एक क्रेता एक" की स्थिति है। इसमें विक्रेता-एकाधिकार का सामना क्रेता-एकाधिकारी से होता है। विक्रेता का उद्देश्य है अधिकतम मूल्य वसूल करना, जबकि क्रेता का उद्देश्य है न्यूनतम मूल्य देना। द्विपक्षी-एकाधिकार में सन्तुलन मूल्य इसी अधिकतम मूल्य तथा न्यूनतम मूल्य के बीच कहीं होता है जो कि दोनों की भाव-तोल करने की शक्ति पर निर्भर करता है। आइये दखें कि ये अधिकतम और न्यूनतम मूल्य किसी प्रकार निर्धारित होते है।

ऊपर खण्डों में हम देख चुके है कि विक्रेता-एकाधिकार तथा क्रेता-एकाधिकार में सन्तुलन स्थिति की क्या शर्ते है। आइये, संक्षेप में इनका एक बार पुन: ध्यान कर ले।

विक्रेता-एकाधिकारी के सन्तुलन की मुख्य शर्त-

1. "सीमान्त लागत = सीमान्त आय"
2. विक्रेता-एकाधिकारी का सीमान्त लागत वक्र उसका पूर्ति वक्र भी होता है। यह बाँये से दांये ऊपर की ओर ढलवां होता है। इसका अर्थ यह है कि अधिक मूल्य मिलने पर ही अधिक करता है।
3. विक्रेता-एकाधिकारी के औसत आय तथा सीमान्त- आय वक्र बांये दांये नीचे की ओर ढलवां होता है। विक्रेता-एकाधिकारी का औसत आय वक्र क्रेता-एकाधिकारी का मांग वक्र भी होता

क्रेता एकाधिकारी (आगत) के सन्तुलन की मूख्य शर्त

1. 'सीमान्त व्यय = सीमांत आय उत्पाद"

2. क्रेता-एकाधिकारी का औसत-व्यय वक्र वही है जो कि विक्रेता एकाधिकारी का सीमान्त-लागत वक्र अथवा पूर्ति वक्र है। इस औसत-व्यय वक्र के आधार पर उसका सीमान्त-व्यय वक्र ज्ञात किया जा सकता है। यह भी बांये से दांये ऊपर की ओर ढलवां होता है।
3. क्रेता-एकाधिकारी का मांग वक्र सीमान्त-आय उत्पाद वक्र कहलाता है तथा बांये से दांये नीचे की ओर ढलवां होता है। विक्रेता-एकाधिकारी के लिए यही वक्र 'औसत आय वक्र बन' जाता

20.5.2 सन्तुलन सीमाएं

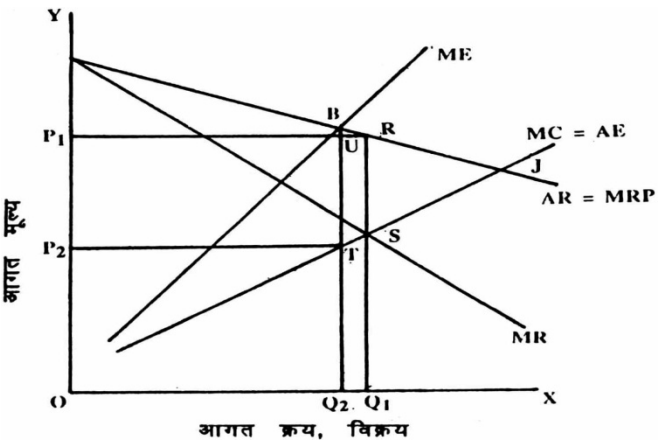

चित्र 20.5

इस रेखा चित्र 20.5 में विक्रेता-एकाधिकारी का सन्तुलन बिन्दु S पर है, जहां उसके सीमान्त लागत MC वक्र तथा सीमांत आय MR वक्र एक दूसरे को काटते है। S बिन्दु पर विक्रेता की सीमान्त लागत = सीमान्त आय। S बिन्दु से लम्ब खींचने पर यह औसत आय AR वक्र को R बिन्दु पर तथा X-रेखा को Q. बिन्दु पर काटता है। R, बिन्दु से पता चलता है कि विक्रेता यदि अपनी एकाधिकारी शक्ति पूर्णतया असर में लाने में सफल हो जाये तो वह RQ_1, मूल्य प्राप्त करना चाहेगा और इस मूल्य पर OQ_1, मात्रा बेचना चाहेगा।

क्रेता-एकाधिकारी का सन्तुलन बिन्दु B पर है जहां क्रेता का सीमान्त व्यय वक्र डम् आगत का सीमान्त आय उत्पादन वक्र MRP एक दूसरे को काटते है। B बिन्द से खींचा गया लम्ब औसत व्यय वक्र AB (जो कि विक्रेता का पूर्ति वक्र भी है।) को T बिन्दु पर, और X- रेखा को Q_Z बिन्दु पर काटता है। T बिन्दु से पता चलता है कि यदि क्रेता-एकाधिकारी एक मात्र खरीदार होने के नाते यदि अपनी सर्च शक्ति असर में ले आय तो वह TQ2 अथवा OP2 मूल्य पर आगत खरीद सकता है। इस मूल्य पर वह OQ2 मात्रा खरीदना चाहेगा।

विक्रेता-एकाधिकारी तथा क्रेता एकाधिकारी के सन्तुलन विश्लेषण के परिणामों को एक साथ देखने पर यह पता चलता है कि द्विपक्षी-एकाधिकारी विक्रता-एकाधिकारी OP_1 मूल्य प्राप्त करके OQ_1 मात्रा बेचना चाहेगा: जबकि क्रेता-एकाधिकारी OP_2 मूल्य देकर OQ_2, मात्रा खरीदना चाहेगा । इससे हमें

संभावित आगत के बाजार-मूल्य और क्रय-विक्रय की मात्रा की दो सीमाओं का पता चलता है । हम द्विपक्षी-एकाधिकार के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते है -

सन्तुलन मूल्य OP_1 और OP_2, के बीच कही होगा । यदि विक्रेता पूर्णतया प्रभावशाली हो और क्रेता पूर्णतया प्रभावहीन तो मूल्य OP_1 होगा। दूसरी ओर यदि विक्रेता पूर्णया प्रभावहीन हो और क्रेता पूर्णतया प्रभावशाली तो मूल्य OP होगा । यदि दोनों ही प्रभावशाली हो तो मूल्य OP_1 और OP के बीच कहीं होगा । जो कि इस बात पर निर्भर है कि तुलनात्मक तोर पर किसका कितना प्रभाव है?

सन्तुलन मात्रा OQ_1 तथा OQ_2, के बीच कही होगी । वास्तवियक खरीदी गयी और बेची गयी मात्रा इस बात पर निर्भर होगी कि तुलनात्मक प्रभाव से सन्तुलन मूल्य कितना होता है । रेखा चित्र 20.5 में RS TU क्षेत्र को भाव-तोल क्षेत्र कहा जाता है । तुलनात्मक भाव-तोल के परिणामस्वरूप जो मूल और मात्रा तय होगी वह RSTU क्षेत्र के अन्दर ही कही होगी ।

इस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र द्विपक्षी-एकाधिकार सन्तुलन की केवल दो सीमाएं निश्चित करता है । यह बताने में असमर्थ है कि वास्तव में सन्तुलन मूल्य और मात्रा क्या होगा क्योंकि यह मूल्य आर्थिक कारकों पर निर्भर न होकर क्रेता तथा विक्रेता की तुलनात्मक भाव-तोल करने की दक्षता तथा शक्ति पर निर्भर करता है । इसलिए द्विपक्षी-एकाधिकार सिद्धान्त को अनिश्चित (Indeterminate) सिद्धांत कहा जाता है।

20.6 अनधिमान वक्रों द्वारा द्विपक्षी एकाधिकार विश्लेषण

20.6.1 भूमिका

आपने उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त के संदर्भ में अनधिमान वक्र विश्लेषण तो अवश्य ही पढ़ा होगा। ऐसे ही अनधिमान वक्रों को हम द्विपक्षी-एकाधिकार सन्तुलन की अनिश्चितता को समझाने में प्रयोग में ला सकते है । आपको याद होगा कि इसमें कोई उपभोक्ता दो वस्तुओं के ऐसे जोड़े बनाता है जिसमें प्रत्येक जोड़े से उसे एक समान उपयोगिता प्राप्त होती है । इन सभी जोड़ों को रेखांकित कर हम उपभोक्ता का अनधिमान वक्र प्राप्त करते है। आपको यह भी याद होगा कि यह वक्र नीचे की ओर ढलवा और उन्नतोदर (Convex) होता है प्रत्येक ऊँचा वक्र उपयोगिता का ऊँचा स्तर दिखाता है ।

इन्हीं सभी विशेषताओं को लेकर हम क्रेता-एकाधिकारी तथा विक्रेता-एकाधिकारी के अनधि मान वक्र की कल्पना करते है । अन्तर इतना है कि दो वस्तुओं के स्थान पर हम एक ओर मुद्रा तथा दूसरी और आगत लेते है।

20.6.2 क्रेता-एकाधिकारी अनधिमान वक्र

क्रेता-एकाधिकारी के बारे में हम यह मान कर चलते है कि उसके पास एक निश्चित मात्रा में रूपया है और वह आगत खरीदना चाहता है । उसे यह निर्णय लेना है कि वह इस मुदा में से कितनी मुद्रा आगत पर खर्च करे कि उसे इस आगत को उत्पादन में प्रयोग करने से अधिकतम लाभ हो । अर्थात् उसे यह फैसला लेना है कि वह कितनी मुद्रा रूपये के रूप में अपने पास रखे और कितनी आगत यदि वे अधिक मुद्रा रखता है तो कम आगत रख पायगा और जैसे-जैसे वह मुद्रा की मात्रा कम करता जाता है, उसके बदले में वह

अधिक आगत पाता जायेगा। इस प्रकार क्रेता-एकाधिकयि का अनधिमान वक्र बनाने के लिए जिन दो वस्तुओ की आवश्यकता है उनमे से एक मुद्रा और दूसरी आगत है अब हम यह मानकर चलने है। कि क्रेता एकाधिकार मुद्रा और आगत के ऐसे जोड़ बनाने में सफल है जिनमें प्रत्येक जोड़े से उसे एक समान लाभ प्राप्त होता है।

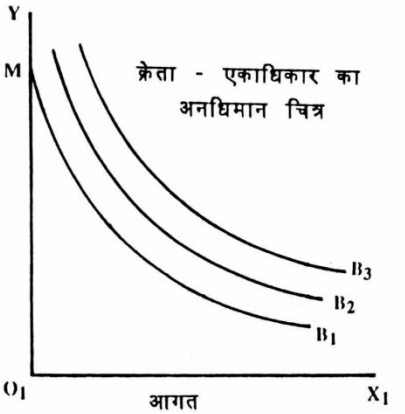

चित्र 20.6

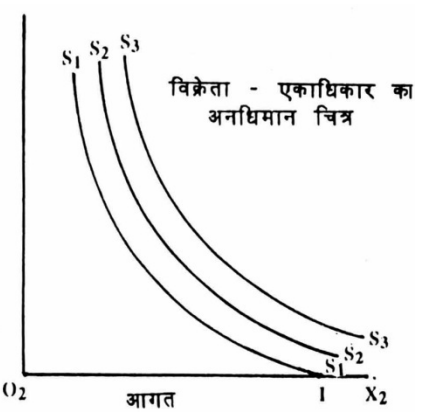

चित्र 20.7

क्रेता-एकाधिकारी के ये सभी जोड़ और इसके आधार पर बनाया गया अनधिमान चित्र रेखाचित्र 20.6 में दिखाया गया है। किसी अनधिमान वक्र जैसे B, के प्रत्येक बिन्दु पर उसे एक समान लाभ प्राप्त होता है। इसलिए इन्हें समान-लाभ वक्र (ISO Profit Curves) भी कहा जाता है। इस तरह B_2 वक्र के भी प्रत्येक बिन्दु पर भी समान लाभ परन्तु B_1 वक्र के प्रत्येक बिन्दु से अधिक लाभ प्राप्त होता है। B_3 वक्र पर और भी अधिक लाभ मिलता है। क्रेता-एकाधिकारी का प्रयत्न होगा है। वह ऊँचे से ऊँचे समान-लाभ वक्र प्राप्त करे। चित्र 20.6 में B_1 वक्र Y - रेखा को बिन्दु M पर छू रहा है। M बिन्दु पर क्रेता-एकाधिकारी के पास मुद्रा की O_1M, मात्रा तथा आगत की शून्य मात्रा है। इसका अर्थ यह है कि क्रेता ने इस बिन्दु पर व्यापार प्रारम्भ नही किया है,, क्योंकि उसकी OM मुद्रा सारी की सारी उसके पास है। M बिन्दु को इसलिये "व्यापार नही बिन्दु" (NO Trade Point)भी कहा जाता है। जब वह M बिन्दु से नीचे सीधे हाथ की ओर आना प्रारम्भ होगा तो व्यापार चालु होगा।

20.6.3 विक्रेता-एकाधिकारी का अनधिमान वक्र

इसी आधार पर विक्रता-एकाधिकारी के अनधिमान चित्र की भी कल्पना की जा सकती है उसकी दो वस्तुएं मुद्रा और आगत है। वह आगत बेचकर मुद्रा प्राप्त करना चाहता है। उसके भी S_1, S_2, S_3 वक्र समान-लाभ वक्र है। उसकी भी नियत ऊँचे से ऊँचे अनधिमान वक्र तक पहुंचने की है। उसका 'व्यापार-नहीं बिन्दु" I है। I बिन्दु पर उसके पास Q_2I आगत तथा शून्य मुद्रा है। जब वह। बिन्दु से बांयी की ओर ऊपर बढ़ेगा तो व्यापार प्रारम्भ होगा।

20.6.4 एजवर्थ बाक्स रेखा-चित्र (Edgeworth Box Diagram)

जब ये दोनों व्यापार प्रारम्भ करते है तो इनकी तुलनात्मक स्थिति का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि हम दोनों के अनाधिमान चित्रों को एक रेखाचित्र पर ले आए। इन दोंनों को हम एक सीधे सादे आयताकर रेखाचित्र में मिला सकते है। ऐसा करने में हम क्रेता एकाधिकारी के रेखाचित्र को तो वर्तमान स्थिति में रखते है जबकि विक्रेता-एकाधिकारी के रेखा चित्र को उल्टा क्रेता-एकाधिकारी के चित्र से इस प्रकार मिलाने है कि । बिन्दु M बिन्दु से जा मिलता है। क्योंकि ये दोनों के "व्यापार नही बिन्दु" है। यह नया बिन्दु N है। y_1 बिन्दु X_1 बिन्दु से जा मिलता है और मिलकर नया बिन्दु N_1 बन जाता है OQ_2 बिन्दु तिरछे तोर पर O_1 बिन्दु के सामने आ जाता है। ऐसा रेखा चित्र 20.8 में दिखाया गया है।

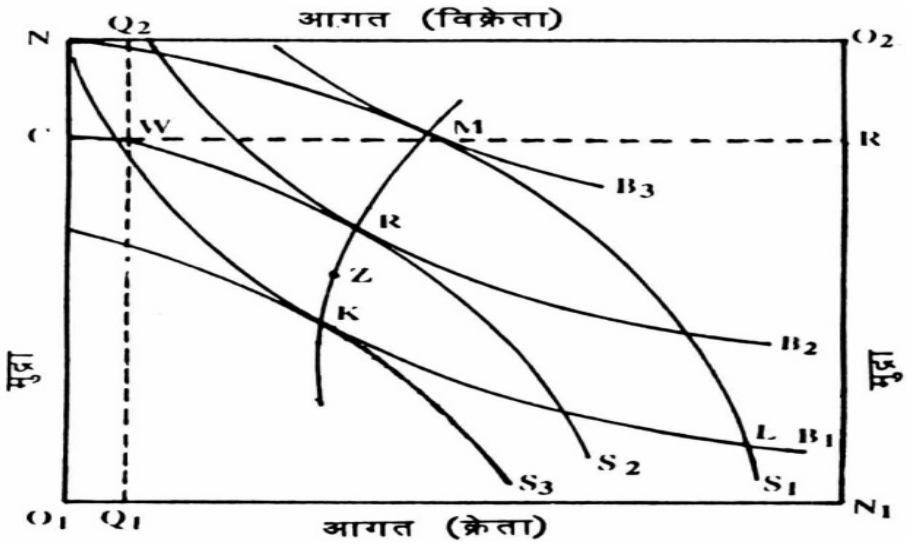

चित्र 20.8

दो व्यक्तियों के अनधिमान चित्रों को मिलाकर बनी आयत एजवर्थ बाक्स (Edgeworth Box) कही जाती है। तुलनात्मक व्यापार स्थिति का विश्लेषण करने की यह तकनीक तथा अवधारणा अनुबन्ध वक्र (Contract - Curve) के नाम से जाना जाता है। इसका आविष्कार एजवर्थ (Edgeworth) ने सर 1881 में किया था।

20.6.5 विश्लेषण

इस चित्र 20.8 में बिन्दु N क्रेता-एकाधिकारी और विक्रेता-अधिकारी दोनों का ही 'व्यापार -नहीं बिन्दु" है इस बिन्दु पर क्रेता के पास O_1M मुद्रा है विक्रेता के पास O_2N आगत है। NKLM व्यापार क्षेत्र है जो कि N_1 और S_1 अनधिमान वक्रों के एक दूसरे के काटने के बीच का क्षेत्र है। इस क्षेत्र से नीचे क्रेता व्यापार नही करेगा क्योंकि B_1 वक्र उसका सबसे कम लाभ वाला वक्र है। इससे नीचे व्यापार करने का प्रश्न ही नही उठता । इसी तर्क के आधार पर विक्रेता NKLM क्षेत्र से ऊपर व्यापार नहीं करेगा। व्यापार

केवल NKLM क्षेत्र में ही होगा। इस क्षेत्र में भी दोनों को इस बात में लाभ है कि वे व्यापार केवल उन विन्दुओं पर करें जिन पर कि एक दूसरे के अनधिमान वक्र स्पर्शी (tengent) होते है।

मान लीजिए व्यापार W बिन्दु पर होता है। इस बिन्दु पर क्रेता -एकाधिकारी NC मुद्रा देकर O_1 Q_1 आगत खरीदता है जबकि विक्रेता-एकाधिकारी NQ_2(जो कि OQ_1 के बराबर है) आगत बेचकर O_2R (जो कि NC के बराबर है) आय प्राप्त करता है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि W बिन्दु पर क्रेता-एकाधिकारी का लाभस्तर B_1, जबकि विक्रेता-एकाधिकारी का लाभ स्तर S_2, है। क्योंकि इस बिन्दु पर ये दोनों वक्र मिलते है। अब यदि ये व्यापार R पर करे जहां कि दोनों के वक्र स्पर्शी है तो क्रेता B_2, लाभ स्तर प्राप्त कर लेगा जवकि विक्रेता S_2 पर बना रहेगा। इससे विक्रेता के लाभ में कोई कमी नही आयी है, जबकि क्रेता का लाभ स्तर ऊंचा हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि दोनों के लाभों को- जोड़कर देखा जाय तो लाभ ही है । फिर भी यह स्थिति क्रेता के लिये अधिक आकर्षक है । दूसरी ओर विक्रेता चाहेगा कि W की अपेशा K पर व्यापार करे, क्योंकि वहां उसका लाभ स्तर होगा, जबकि क्रेता का लाभ स्तर B_1 पर बना रहेगा।

अब क्रेता R पर पहुंचने में सफल होता है । यहां विक्रेता K पर यह दोनों की तुलनात्मक भाव-तोल करने की शक्ति पर निर्भर होगा । यह भी संभव है कि न तो क्रेता R पर और न ही विक्रेता K पर पहुंच पाये और दोनों में अनुबंध वक्र पर R और K के मध्य कही समझौता हो जाये । अनुबंध वक्र के RK रेखा पर R और K के बीच कोई भी बिन्दु दोनों के लिए लाभकारी होगा । उस बिन्दु पर (जैसे कि Z पर) क्रेता का लाभ स्तर B से अधिक, जब कि विक्रेता का लाभ स्तर S_2, से अधिक होगा । इसीलिए कहा जाता है कि कपार क्षेत्र में अनुबंध वक्र पर कोई भी बिन्दु क्षेत्र में किसी भी बिन्दु के अपेक्षा अधिक लाभकारी होगा । क्योंकि या तो दोनों के लाभ अधिक होंगे या कम से कम किसी एक का लाभ अधिक हेगा और दूसरे का लाभ में कोई कमी नही आयेगी ।

निष्कर्ष यह है कि क्रेता-एकाधिकारी और विक्रेता एकाधिकारी में जो भी व्यापारिक समझौता होगा, वह अनुबन्ध वक्र पर ही होना लाभदायक है । यदि क्रेता-एकाधिकारी अपनी समर्ण भाव-तोल करने की शक्ति को असर में लाने में सफल हो जाये तो वह अपने उच्चतम लाभ स्तर पहुंच सकेगा । दूसरी ओर यदि विक्रेता अपनी सम्पूर्ण भाव-तोल करने की शक्ति में सफल हो जाये तो वह अपने उच्चतम लाभ स्तर बिन्दु पर पहुँच सकेगा । यदि दोनों अपनी थोड़ी-थोड़ी शक्ति असर में लाने में सफल हो जाये तो समझौता अनुबंध रेखा पर कही भी हो सकता है जो कि दोनों की भाव-तोल करने की तुलनात्मक शक्ति पर निर्भर है । इसी अनिश्चितता के कारण द्विपक्षी-एकाधिकार सन्तुलन एक सिद्धांत कहा जाता है ।

20.7 द्विपक्षी-एकाधिकार : यदि एक ही कर्म क्रेता और विक्रेता दोनों हो

अब तक हम मानते आए है कि क्रेता-अधिकारी और विक्रेता-एकाधिकारी अलग-अलग फर्मे है और वे भाव-तोल करने में एक दूसरे से प्रतियोगिता करते है । इनके व्यवहार का विश्लेषण कर हम इस परिणाम पर पहुंचे है कि इन फर्मो के सन्तुलन स्तर की केवल दो सीमाएं ही जान सकते है, निश्चित स्तर नही जान

सकते। इनका सन्तुलन स्तर अनिश्चित है, क्योंकि यह दोनों की तुलनात्मक भाव-तोल करने की शक्ति पर निर्भर है।

द्विपक्षी-एकाधिकार में एक विशेष परिस्थिति की कल्पना की जाती है, जिसमें एक निश्चित सन्तुलन स्तर की संभावना होती है। इसमें हम यह मान कर चलने है कि एक ही फर्म क्रेता-एकाधिकार भी है और विक्रेता एकाधिकारी भी। इसमें फर्म आगत बनाने की एकमात्र फर्म है और यही फर्म इस आगत को प्रयोग करने वाली एक मात्र फर्म है। इस प्रकार क्रेता और विक्रेता एक ही व्यक्ति है। जब ये दोनों एक ही व्यक्ति है तो प्रतियोगिता या भाव-तोल का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। लेकिन फिर भी फर्म यह अवश्य चाहेगी कि अपने ही द्वारा बनायी गयी आगत इस प्रकार प्रयोग करे कि उसे अधिकतम लाभ हो। इस उद्देश्य से यह सीमान्त लागत की तुलना सीमान्त आय उत्पाद से करेगी। यह उस सीमा तक आगत को प्रयोग में लायेगी जिस सीमा तक आगत की सीमान्त लागत सीमान्त आय उत्पाद एक समान हो जाये। इस प्रकार इसे विशेष परिस्थितियों में फर्म, जो कि क्रेता-एकाधिकारी और विक्रेता-एकाधिकारी दोनों ही है, की सन्तुलन की शर्त है :

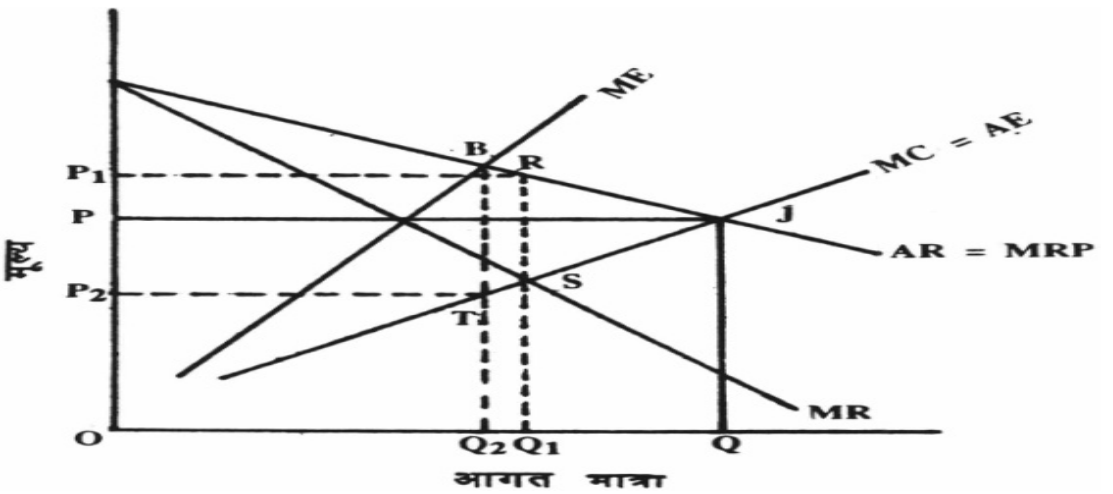

चित्र 20. 9

रेखा चित्र 20.9 में सीमान्त लागत=सीमान्त आय उत्पाद J बिन्दु पर है। जहां क्रेता-एकाधिकारी तथा विक्रेता-एकाधिकारी दोनों एक हो जाने पर उनके संयुक्त लाभ अधिकतम होंगे। आगत का सन्तुलन मूल्य OP और इस मूल्य पर आगत की मात्रा OQ होगी। ऐसे इस विशेष परिस्थिति मे द्विपक्षी-एकाधिकार में सन्तुलन का एक निश्चित हल निकल सकता है। लेकिन ध्यान रहे कि यह निश्चित हल उसी दशा में होगा कि दोनों प्रकार के एकाधिकारी एक हो जाये और उनकी आपस में कोई भाव-तोल न हो (जैसा कि रेखा चित्र 20.9 की खंडित रेखाओं से स्पष्ट है कि यदि भाव-तोल होता है तो क्रेता का प्रयत्न OP_1 मूल्य देने का तथा विक्रेता का प्रयत्न OP_1 मूल्य वसूल करने का होगा। वास्तविक मूल्य OP_1 और OP_2 के बीच कहीं पर होगा जो कि दोनों की तुलनात्मक भाव-तोल शक्ति पर निर्भर होगा। इस परिस्थिति का विस्तृत विश्लेषण इस इकाई के खंड 20.5 में किया गया है।

20.8 सारांश

द्विपक्षी-एकाधिकारी बाजार की ऐसी स्थिति है जिसमें किसी वस्तु या सेवा का केवल एक क्रेता ओर केवल एक ही विक्रेता होता है। क्रेता का यह प्रयत्न रहता है कि कम से कम मूल्य दे जबकि विक्रेता का यह प्रयत्न रहता है कि वह अधिक से अधिक मूल्य ले। वास्तव में सौदा किस मूल्य पर होगा यह दोनों की तुलनात्मक मोल-भाव करने की शक्ति पर मिर्भर होगा। इस बाजार में सन्तुलन को समझने के लिए विक्रेता-एकाधिकार में मूल्य-निर्धारण तथा क्रेता-एकाधिकार में मूल्य निर्धारण को अलग-अलग समझना आवश्यक है। इस स्थिति की संभावना किसी आगत वस्तु के बाजार में अधिक होती है।

विक्रेता-एकाधिकार बाजार में सन्तुलन-मूल्य की मुख्य दशा है :

1. सीमान्त लागत = सीमान्त आय
2. क्रेता-एकाधिकार में सन्तुलन-मूल्य की मुख्य दशा है : सीमान्त व्यय = सीमान्त आय उत्पादन

क्रेता-एकाधिकार का सीमान्त-व्यय वक्र विक्रेता-एकाधिकार के सीमान्त लागत वक्र पर आधारित है। यह सीमान्त लागत वक्र (जो कि पूर्ति वक्र भी है) क्रेता एकाधिकगि के लिए औसत व्यय वक्र बन जाता है। इसी के आधार पर उसका सीमान्त व्यय वक्र प्राप्त किया जा सकता है। सीमान्त आय उत्पाद आगत की एक अतिरिक्त इकाई को प्रयोग करने से प्राप्त अतिरिक्त आय है। यह वक्र सीमान्त हस प्रतिफल आगत की मांग करता है। विक्रेता के लिए यह वक्र औसत आय वक्र कहलाता है। क्रेता-एकाधिकारी तथा विक्रेता-एकाधिकारी की सन्तुलन दशाओं के आधार पर द्विपक्षी-एकाधिकार सन्तुलन की दो सीमाएं ज्ञात होती है। ऊपरी सीमा में विक्रेता द्वारा इच्छित वह सर्वाधिक मूल्य है जो कि वह अपनी समस्त भाव-तोल करने की शक्तियों को असर में ला कर प्राप्त करना चाहता है। निचली सीमा में क्रेता द्वारा इच्छित वहे न्यूनतम मूल्य है जिस पर कि वह अपनी समस्त भाव-तोल करने की शक्तियों को असर में ला कर खरीदना चाहता है। वास्तविक मूल्य इन दो सीमाओं के बीच कहीं होगा। वह क्या होगा यह दोनों की तुलनात्मक भाव-तोल करने की शक्ति पर निर्भर होगा? इसीलिए द्विपक्षी-एकाधिकार का सिद्धांत एक अनिश्चित सिद्धांत कहाजाता है।

द्विपक्षी एकाधिकार के सिद्धान्त की अनिश्चितता एजवर्थ द्वारा आविष्कार किये गये अनधिमान वक्रों पर आधारित अनुबन्ध वक्र (Contract-Curve) की सहायता से भी दिखायी जा सकती है।

द्विपक्षी-एकाधिकार की एक विशेष परिस्थिति में एक निश्चित सन्तुलन मूल्य भी ज्ञात किया जा सकता है। इस परिस्थिति में एक ही फर्म एक मात्र क्रेता और एक मात्र विक्रेता दोनों ही होती है। ऐसी फर्म का सन्तुलन सीमांत लागत = सीमांत आय उत्पाद की स्थिति में होता है। यह निश्चित हल इसीलिए निकल आता है क्योंकि क्रेता और विक्रेता एक होने के कारण भाव-तोल करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बोध प्रश्न

अपना उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का इस्तेमाल करें।

इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलना करें।

1. द्विपक्षी एकाधिकार का अर्थ समझाइये।
2. द्विपक्षी एकाधिकार सिद्धांत को एक अनिश्चित सिद्धांत क्यों कहा जाता है?
3. द्विपक्षी एकाधिकार की वह विशेष स्थिति बताइये जिसमें एक निश्चित सन्तुलन संभव है।

20.9 शब्दावली

क्रेता-एकाधिकारी (Monopsony)	बाजार की वह स्थिति जिसमें किसी वस्तु का केवल एक क्रेता हो।
विक्रेता-एकाधिकारी (Monopoly)	बाजार की वह स्थिति जिसमें किसी वस्तु का केवल एक विक्रेता हो।
द्विपक्षी-एकाधिकारी(Latreal Monopoly)	बाजार की वह स्थिति जिसमें किसी वस्तु का केवल एक क्रेता और केवल एक ही विक्रेता हो।
नाप-तोल (Bargaining)	क्रेता और विक्रेता के बीच मूल्य निर्धारण करने सम्बन्धी बहस।
उन्मूलन (Equilbrium)	क्रेता या विक्रेता का वह मूल्य और मात्रा जिस पर कि उसे अधिकतम लाभ हो
अदा (Input)	उत्पादन में प्रयोग होने वाली कोई भी वस्तु या सेवा जैसे-कच्चा माल, श्रम आदि।
सीमांत आय उत्पाद (Marginal Revenue Product)	उत्पादन में किसी आगत की अतिरिक्त इकाई से प्राप्त अतिरिक्त आय। यह सीमान्त भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Product) को सीमान्त आय से गुणा करने पर मालूम होती है।
अनिश्चित सिद्धान्त (Indeterminate Theory)	वह सिद्धान्त जिसमें कोई निश्चित परिणाम निकालना संभव न हो।
अनुबंध वक्र (Contract-Curve)	एजवर्थ द्वारा आविष्कार किया गया वक्र जो कि अनधि मान वक्रों (Indifference Curves) पर आधारित है।
सीमान्त ह्रास प्रतिफल नियम (Law of Diminishing Returns)	इस नियम के अनुसार जैसे-जैसे किसी आगत की अतिरिक्त इकाई उत्पादन में लगाते है उससे प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन की मात्रा घटती चली जाती है।

20.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

A. Koutsoyiannis “Modern Microeconomics” (Second Edition)

R.A. Bilas “ Microeconomic Theory (Second Edition)

20.11 अभ्यासों के उत्तर

द्विपक्षी एकाधिकार से अभिप्राय: बाजार की उस स्थिति से है जिसमें किसी वस्तु या सेवा केवल एक विक्रेता और एक ही क्रेता होता है। यह वस्तु बाजार में कम तथा सेवा बाजार में अधिक पायी जाती है। उदाहरणत: यह संभव है कि किसी विशेष प्रकार के मजदूरों की यूनियन है और उन मजदूरों को रोजगार देने वाली केवल एक ही फर्म हो।

द्विपक्षी एकाधिकार का सिद्धांत कोई निश्चित सन्तुलन मूल्य तथा मात्रा बताने में सफल नही है। यह सन्तुलन मूल्य की केवल दो सीमाओं को निश्चित करता है। एक मूल्य वह है विक्रेता -एकाधिकारी प्राप्त करना चाहता है तथा दूसरा मूल्य वह जो कि क्रेता-एकाधिकारी देना चाहता है। इसीलिये इसे अनिश्चित सिद्धांत कहा जाता है।

द्विपक्षी एकाधिकार में निश्चित सन्तुलन उसी दशा में संभव है जबकि किसी वस्तु या सेवा की केवल एक ही फर्म विक्रेता भी हो और क्रेता भी। ऐसी स्थिति दोनों में भाव-तोल शक्ति परीक्षण नही होगा और एक निश्चित सन्तुलन मूल्य तथा मात्रा तय हो जायेगी।

इकाई - 21

एकाधिकार तथा केन्द्रीयकरण का अंश

(Degree of Monopoly and Concentration)

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 अध्ययन की आवश्यकता

21.3 एकाधिकार अंश के निर्धारक तब

21.4 फर्मों की संस्का

21.5 नियंत्रण का केत्रीयकरण

21.5.1 माप

21.5.2 माप की सीमाएं

21.6 लाभ दर

21.6.1 माप

21.6.2 माप की सीमाएं

21.7 मूल्य तथा सीमान्त लागत में अन्तर

21.7.1 माप

21.7.2 माप का मूल्य मांग लोच से सप्तम

21.7.3 माप की सीमाएं

21.8 फर्म तथा उद्योग के मांग वको के ढलानों का अपूगत

21.8.1 माप

21.8.2 माप में कमी

21.9 प्रतिलोच मांग

21.9.1 माप

21.9.2 माप में कमियां

21.10 अन्य माप

21.10.1 अपसरण सूचकांक

21.10.2 मूल्य दृढता

21.10.3 सकल लाभ तथा बिक्री का अनुपात

21.11 निष्कर्ष

21.12 सारांश

21.13 शब्दावली

21.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

21.15 अभ्यासों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. एकाधिकार अंश के अध्ययन की आवश्यकता समझा सकेंगे।
2. एकाधिकार अंश के निर्धारक तत्व बता सकेंगे।
3. नियन्त्रण का केन्द्रीकरण माप की व्याख्या कर सकेंगे।
4. लाभ-दर माप समझा सकेंगे।
5. मूल्य तथा सीमान्त लागन में अन्तर आधारित माप की व्याख्या कर सकेंगे।
6. फर्म तथा उद्योग के मांग वक्रों के ढलानों के अनुपात पर आधारित माप समझा सकेंगे।
7. मांग-प्रतिलोच माप बता सकेंगे।
8. एकाधिकार के अन्य माप सक्षेप में बता सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

आप प्रतियोगिता बाजार व बाजार के अन्य रूप जैसे-एकाधिकारी प्रतियोगिता, अत्पाधिकार, एकाधिकार आदि के बारे में पढ़ चुके है। अपने इस बात पर ध्यान दिया होगा कि बाजार के इस विभिन्न स्वरुपों में फर्म की बाजार मूल्य पर प्रभाव डालने की शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। प्रतियोगिता की स्थिति में कोई एक उत्पादक अपनी उत्पादन योजनाओं में परिवर्तन कर के वस्तु के बाजार मूल्य पर प्रभाव नही डाल सकता है, क्योंकि एक फर्म का उद्योग की कुल पूर्ति में नगण्य मात्र योगदान होता है, और इसीलिए इस बाजार में दीर्धकाल में असामान्य लाभ की संभावना समाप्त हो जाती है दूसरी ओर एकाधिकार में क्योंकि केवल एक ही उत्पादन होता है और उसका पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है, इसलिए वह पूर्ति का या अधिक कर वस्तु के बाजार मूल्य को काफी प्रभावित कर सकता है। इन दोनों चरम सीमाओं के बीच बाजार के अन्य स्वरुप आते है, जिनमें एकाधिकार प्रतियोगिता और अल्पाधिकार प्रमुख है जिसमें प्रभाव

तो डाल सकता है लेकिन एक एकाधिकार बाजार की अपेक्षा कम। कुल मिलाकर हम यह कह सकने है कि बाजार मूल्य पर प्रभाव डालने की शक्ति एकाधिकार शक्ति है। किसी फर्म के लिए पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में यह शक्ति शून्यमात्र होती है , जबकि बाजार के अन्य स्वरुपों में प्राय शून्य से अधिक।

21.2 अध्ययन की आवश्यकता

मूल्य निर्धारण सिद्धांत में हम यह मान कर चलते है कि कोई भी उत्पादक केवल लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य को अपने सामने रखना है। उसका उद्देश्य अधिकतम मात्र बेचना नही होना। उसका उद्देश्य अपने ग्राहकों सस्ते दामों पर उपलब्ध कराना भी नहीं होता है। उसका उद्देश्य केवल अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। इसलिए वह अपनी एकाधिकारी शक्ति को अपने लाभ को अधिकनम करने के लिए प्रयोग में लाता है। इस प्रयत्न में वह अर्थव्यवस्था पर कई बुरे प्रभाव डाल देना है। प्रथम, जैसे-जैसे किसी वस्तु के बाजार में एकाधिकार का अंश (Degree of Monopoly) बढ़ता जाता है, उपभोक्ता को वस्तु महंगी मिलनी शुरु हो जाती है। यह बात आपने बाजार की प्रनियोगिता बाजार में तुलना करते समय पढ़ी होगी दूसरे, यह भी पढ़ा होगा की पूर्ण प्रनियोगिना की अपेक्षा एकाधिकार बाजार में उत्पादन की मात्र कम रहती है। एकाधिकारी अपनी उत्पादन क्षमता का पूर्ण प्रयोग नहीं करना। अर्थव्यवस्था के लिए यह एक हानि है। तीसरे, एकाधिकाग शक्तियों के कारण देश की आय व सम्पति में कुछ व्यक्तियों या वर्गो के हाथ में केन्द्रित हो जाती है और असमानताएं बढ़ती जाती है। इन सभी बातों के कारण प्रत्येक अर्थव्यवस्था का यह प्रयत्न रहता है कि एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर रोक लगायी जाये। भारत में एकाधिकार तथा प्रतिबंधात्मक व्यापार नियंत्रण आयोग (Monopoly and Restrictive Trade Practices Commission) भी इसी दिशा में एक कदम है।

एकाधिकार शक्तियों पर रोक लगाने के लिए यह आवश्यक है कि किस फर्म में, अथवा उद्योग में एकाधिकार शक्तियों का कितना अंश है, इसका अनुमान लगाया जायें? विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न आधार लेकर एकाधिकार अंश को मापने की विधियां सुझाई है। इस इकाई में इनमें प्रमुख विधियों का वर्णन किया गया है।

21.3 एकाधिकार अंश के निर्धारक तत्व

एकाधिकार का को बोध इसको जन्म देंने वाले कारणों और इसमें उत्पन्न प्रभावों से होता है। एकाधिकार के कारण क्या है, तथा एकाधिकार के प्रभाव क्या है, इस बारे में बहुत से सिद्धांत हो सकते है। जहां तक कारणों का सम्बंध है, एकाधिकार को जन्म देने वाले बहुत से कारण हो सकते है। इनमें से बहुत से कारण ऐसे है जिनके बारे में जानकारी मिलना ही कठिन होता है, जैसे-उत्पादकों के बीच कोई गुण समझौता इत्यादि। फिर भी दो कारण ऐसे है जिनको मापा जा सकता है। ये है (1) उद्योग में फर्मों की संख्या तथा (2) पूर्ति पर नियंत्रण का केन्द्रीयकरण।

जहां तक प्रभावों का प्रश्न है, मूल्य तथा लागत के सम्बन्ध एकाधिकार के अंश के माप का आधार हो सकते है। एकाधिकारी कितना प्रभावशाली है यह इस बात पर निर्भर है कि मूल्य को प्रभावित कर

सामान्य स्तर से अधिक कितना लाभ कमा सकता है। मूल्य पर आधारित हम दो प्रकार के सम्बन्धों की बात कर सकते है। प्रथम, मूल्य और औसत लागत में क्या संबंध हैं? ये संबंध लाभ की मात्र तय करते है। दूसरे, मूल्य तथा सीमान्त लागत में क्या सम्बंध है? ये संबंध उत्पादन की मात्रा को तय करते है।

एकाधिकार को मापा जा सकता है या नही, यह कारण तथा इसके प्रभावों से संबन्धित सिद्धांतों के बारे में कई बातों पर निर्भर है। प्रथम, क्या ये सिद्धांत तर्कसंगत हैं? दूसरे, क्या सिद्धांत पूर्ण है ' तीसरे, क्या ये वास्तविक है? और चौथे क्या इनके बारे में आँकड़े उपलब्ध है? यदि सिद्धांत तर्कसंगत हो, हो, वास्तविक हों, तथा इनके बारें में आँकड़े भी उपलब्ध हो तो भी एकाधिकार अंश मापने में दो अन्य प्रकार की कठिनाइयां आती है। प्रथम, हमें यह मालूम नहीं पड़ सकता कि उत्पादक ने अपनी एकाधिकारी शक्तियों का पूरा उपयोग किया है या नही? दूसरे, हो सकता है कि जिस कारण या प्रभाव को एकाधिकार-अंश मापने का आधार बनाया गया है, उसके अतिरिक्त अन्य बाते भी हों, जिन्होंने, एकाधिकार शक्ति को प्रभावित किया हो।

अत: यह जानने से पहले कि एकाधिकार-अंश को कैसे मापते है, यह समझ लेना आवश्यक है कि एकाधिकार अंश को मापना कोई सरल कार्य नही है और न ही कोई माप अपने आप में शत-प्रतिशत सही माना जा सकता है।

एकाधिकार को जन्म देने वाले कारणों तथा एकाधिकार शक्ति के प्रयोग कें कारण होंने वालें प्रभावों के आधार पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने समय समय पर विभिन्न माप सुझाये है। उनमें से निम्नलिखित प्रमुख है जिनका वर्णन हम इस इकाई में करेंगे।

1. फर्मो की संख्या।
2. नियंत्रण का केन्द्रीयकरण।
3. मूल्य की सीमान्त लागत पर अधिकता।
4. ताप की दर।
5. फर्म तथा उद्योग के मांग वक्रों के ढलानों का अनुपात।
6. मांग प्रतिलोच।

इनमें से प्रथम दो एकाधिकार के कारणों पर आधारित है जबकि अन्य एकाधिकार के प्रभावों पर आधारित है।

21.4 फर्मो की संख्या

आपको ध्यान होगा कि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार और बाजार के अन्य स्वरुपों में भेद का एक मुख्य आधार फर्मों की संख्या है। प्राय: वह समझा जाता है कि फर्मों की संख्या कितनी अधिक होगी उद्योग में प्रतियोगिता का अंश उतना ही अधिक और एकाधिकार का अंश उतना ही कम होगा।

व्यवहार में, फर्मों की संख्या कम होने से उद्योग में एकाधिकार का अंश अधिक ही हो ऐसा आवश्यक नही है। सभी फर्में एक आकार की नही होती है। यह सम्भव है कि किसी एक बड़ी फर्म का उद्योग के

कुल उत्पादन में बहुत अधिक अनुपात हो जबकि बाकि छोटी छोटी फर्मो का नगण्य मात्र ही योगदान हो । ऐसी स्थिति में फर्मों की संख्या अधिक होते हुए भी उद्योग में एकाधिकार का अंश काफी हो सकता है। इस तरह किसी उद्योग में केवल फर्मो की संख्या को ही उस उद्योग में एकाधिकार अंश का सूचक नही कहा जा सकता है।

21.5 नियंत्रण का केन्द्रीयकरण (Concentration of Control)

21.5.1 माप

इस माप में यह देखा जाता है कि किसी उद्योग में कुछ बड़ी फर्मों का उद्योग के कुल उत्पादन, बिक्री, उत्पादन क्षमता, परिसंपत्तियों का मूल्य, कर्मचारियों की संख्या आदि में क्या अनुपात है। यह अनुपात जितना अधिक होगा एकाधिकार का अंश उतना ही अधिक होगा।

'नियंत्रण का केन्द्रीयकरण" मापने के लिये प्राय. कुल उत्पादन को ही आधार लिया जाता है, क्योंकि इसके बारे में अन्य तत्वों की अपेक्षा विश्वसीनय आँकड़े प्राप्त करना सरल होता है। उत्पादन क्षमता, परिसम्पत्तियों आदि के बारे में सही सही जानकारी प्राप्त करना कठिन होता है। सबसे बड़ी कितनी फर्मो को लिया जाये यह उद्योगों में फर्मो की कुल संखग पर निर्भर हो सकता है। अत. इस माप के अनुसार :

$$\text{एकाधिकार का अंश} = \frac{\text{सबसे बड़ी कुछ फार्मों का उत्पादन}}{\text{उद्योग का उत्पादन}}$$

सयुंक्त राज्य अमेरिका का 'वाणिज्य विभाग' उद्योगों की सबसे बड़ी 4, सबसे बड़ी 6, सबसे बड़ी 20, तथा सबसे बड़ी 50 कम्पनियों का इनका उद्योग के कुल उत्पादन में अनुपात के आधार पर एकाधिकार का अंश मापता है।

21.5.2 माप की सीमाएं

मेंकलम (Machlup) ने "नियंत्रण के केन्द्रीयकरण" विधि के बारे निम्न तीन आपत्तियाँ प्रकट की है:

1. **फर्म तथा उद्योग की अस्पष्ट परिभाषा :**

   प्रथम प्राय फर्म का परिभाषा कानूनी स्वामित्व के आधार पर होनी चाहिए। यदि फार्मों के मालिक अलग –अलग हो लेकिन उन फर्मो की नीतियों पर नियंत्रण एक का ही हो तो एसी सभी फर्मो को मिलाकर एक फर्म समझना चाहिए। व्यवहार में नियंत्रण के आधार पर वर्गिकरण करना संभव नहीं होता क्योंकि इमके बारे में सूचना मिलना कठिन होता है। कई बार फर्मो में अनौपचारिक समझौते भी होते है जिनके बारे में जानकारी रखना तो बिल्कुल संभव नहीं होता ।फर्मो के वर्गीकरण में कठिनाई के साथ साथ उद्योगों के वर्गीकरन में भी कठिनाई आती है। काफी फर्मे एक में अधिक वस्तुएं बनाती है। ऐसी फर्मो की गनिविधियो को विभिन्न उद्योगों में स्पष्ट रूप से बाँटना संभव नही होना।

2. देशीय तथा विदेशी उत्पादों मे संभावित प्रतियोगिता की अनदेखी :

इम माप में किसी उद्योग की केवल उन फर्मो को लिया जाना है जो कि देश के अन्दर स्थित है। यह संभव है कि इस उद्योग को देश या विदेश के अन्य मिलते जुलते उद्योगो मे प्रतियोगिता करना पड़े। उदाहरण: मान लीजिये सूती कपड़ा उद्योग तथा टेरीन कपड़ा विदेशो से भी आयात किया जाता है। ऐसी स्थिति को टेरीन कपड़ा उद्योग के अन्दर की फर्मो को न केवल आपस में प्रतियोगिता पड़ सकती है बल्कि देश के सूती वस्त्र उद्योग की फर्मो मे विदेशी टेरीन वस्त्र उद्योग का फर्मो से प्रनियोगिता करनी पड़ सकती है। ऐसी स्थिति कोई भी उद्योग जिनमें नियंत्रण का केन्द्रीकरण सूचक ऊंचा होते हुए भी यह संभव हैं कि प्रनियोगिना अधिक हो, क्योंकि इसे अन्य उद्योगों मे भीं प्रनियोगिता करनी पड़ती है। ऐसें में इस उद्योग मे नियंत्रण यूचकांक ऊँचा होने हुए भी एकाधिकार का अंश नीचा हो सकता है।

3. इस बात की अनदेखी कि फर्मो का वाजार राष्ट्रीय, प्राज्ञीय या स्थानीय है :

यह संभव है कि कुछ उद्योगों की फर्मो का बाजार सारा देश है। कुछ का केवल प्रान्त और कुछ का केवल स्थानिय। ऐसे में यह संभव है कि एक उद्योग जिसमें एक हजार फर्मे है कम प्रतियोगी हो उस उद्योग की अपेक्षा जिसमें केवल पचास फर्मे है। ये पचास फर्में सारे देश में एक साथ माल बेचकर एक दूसरे से प्रतियोगिता कर सकती है। दूसरी और एक हजा र फर्मो वाले उद्योग का बाजार एक हजार स्थानीय बाजारों में इस प्रकार बंटा हुआ हो कि प्रत्येक स्थानीय बाजार में केवल एक ही फर्म हो और वह उस बाजार की एकाधिकारी हो। ऐसी स्थिति में एक हजार फर्मो वाले उद्योग में एकाधिकार अंश बहुत अधिक जबकि फर्मो वाले उद्योग में एकाधिकार अंश बहुत कम होगा।

मैकलप के अनुसार ऊपर बनायी गयी यदि तीन आपत्तियों का समाधान किया जाए तो ही "नियंत्रण का केन्द्रीयकरण" सूचकांक एकाधिकार अंश का एक अच्छा माप कहा जा सकता है।

21.6 लाभ दर (Rate of Profit)

21.6.1 माप

पहले हम यह स्पष्ट करें कि लाभ-दर मे क्या अभिप्राय है? लाभ की हम यहाँ परिभाषा ले रहे है जो कि मूल्य-सिधान्त में लि जाती है। "सामान्य लाभ" तो लागत का भाग हैं जबकि 'सामान्य से ऊपर लाभ" को ही लाभ माना जाता है। लाभ-दर से अभिप्राय न तो वस्तु के प्रति ईकाई लाभ से है और न ही कुल लाभ से है। इससे अभिप्राय " पूंजी से प्राप्त प्रतिशत प्रतिफल" (Rate of Return on Capital) से है।

अब क्योंकि एकाधिकारी अपनी शक्ति का प्रयोग अधिक लाभ कमाने के लिए करता है, क्या हम यह कह सकते कि पूँजी प्राप्त प्रतिशत प्रतिफल एकाधिकार अंश से सूचक है? वास्तव में इसे एक अच्छा सूचक नहीं माना जा क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि लाभ-दर केवल एकाधिकार शक्ति का प्रयोग करने कारण ही ऊँची हो। यह बाजार में वस्तू की माँग अधिक होने के कारण भी हो सकता है। यह इसलिए

भी हो सकता है कि पूँजी गत पदार्थों का खाता मूल्य बहुत कम हो। इसी प्रकार कम लाभ दर के विपरीत कारण हो सकते है।

लाभ दर माप को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए जो एस. बेन (Joe. S. Bain) ने एक सुझाव दिया हैं कि खातों पर आधारित लाभ को अपनाने में आवश्यक कमियाँ है, उन्हें दूर किया जाये। प्राप्तियाँ उत्पादन खर्चे, स्थिर खर्चे मूल्यवान उत्पादन के लिये वास्तव में आवश्यक पदार्थो का मृत्याकंन आदि का परीक्षण कर कुछ आवश्यक परिवर्तन कर एक नयी लाभ दर निकली जाये। इस लाभ दर को उसने "सैद्धांतिक लाभ दर" (Theoretical Rate of Profit) कहा है। इस तरह बेन के सुझाव के आधार पर एकाधिकार अंश का माप निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता हैं

$$\text{एकाधिकार अंश} = \frac{\text{सैद्धांतिक लाभ}}{\text{आवश्यक शुद्ध परिसम्पत्ति का मूल्य}}$$

21.6.2 माप की सीमाएं

बेन (Bain) के इस माप की भी कुछ सीमाएं हैं। यह सैद्धांतिक लाभ दर पर केवल एकाधिकार शक्ति का ही नहीं, बल्कि अन्य कई शक्तियों का प्रभाव हो सकता है, जिनकों अलग करना आसान नही है। यह माप बनाने मे सफल है कि अधिक लाभ-दर बिक्री के एकाधिकार होने के कारण है या उत्पादन साधनों को खरीदने में एकाधिकार होने के कारण है। लाभ दर पर प्रभाव डालने वाली अन्य शक्तियां भी हो सकती हैं। फिर भी बेन (Bain) का यह 'सैद्धान्तिक लाभ दर " पर आधारित माप 'खाता-लाभ दर" आधारित माप की अपेक्षा श्रेष्ठतर है।

21.7 मूल्य तथा सीमान्त लागत में अन्तर

21.7.1 माप

यह माप ए.पी लर्नर (A.P. Lerner) द्वारा सुझाया गया है और कमियों के उपरान्त भी एकाधिकार अंश मापने में इसे सबसे महत्वपूर्ण माना गया है।

लर्नर के अनुसार किया फर्म क् सन्तुलन स्तर मूल्य की सीमांत लागत पर अधिकता तथा का मूल्य का अनुपात उस फर्म के एकाधिकार अंश का एक माप कहा जाता है।

$$\text{एकाधिकार अंश} = \frac{\text{मूल्य सीमांत लागत}}{\text{मूल्य}}$$

पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में फर्म केवल सीमांत लागत के बराबर ही मूल्य प्राप्त कर पाती है। ऐसे में मूल्य की सीमांत लागत पर अधिकता शून्य (मूल्य-सीमांत लागत = 0) होती है। अत: एकाधिकार की शक्ति का अंश भी शून्य होता है। जैसे–जैसे प्रतियोगिता का अंश कम होता है , उत्पादक सीमांत लागत से अधिक मूल्य प्राप्त करने में सफल होता है। जितना अधिक मूल्य प्राप्त कर पाता है उतनी ही अधिक उसकी एकाधिकार की शक्ति समझी जाती है। लर्नर के अनुसार एकाधिकार का अंश शून्य और एक के

बीच कहीं भी हो सकता है जितना यह शून्य के समीप होगा उतनी एकाधिकारी शक्ति कम होगी जितना यह एक के समीप होगा उतनी ही एकाधिकारी शक्ति अधिक होगी।

उदाहरण

यदि किसी फर्म के सन्तुलन स्तर पर मूल्य 10 रुपये और सीमान्त लागत 6 रुपये हो तो:- एकाधिकार का अंश = 10-6 / 10=4 / 10=40

21.7.2 माप का मूल्य मांग-लोच से सम्बन्ध

लर्नर के इस माप को हम एक और प्रकार से व्यक्त कर सकते है आप यह जानते है कि सन्तुलन स्तर पर सीमान्त लागत और सीमान्त आय एक समान होते है । आप यह भी जानते है कि मूल्य और औसत आय एक समान होते है ।

अत: -

सीमान्त लागत = सीमान्त आय

मूल्य = औसत आय

$$\text{एकाधिकार का अंश} = \frac{\text{मूल्य} - \text{सीमान्त आय}}{\text{मूल्य}}$$

$$\text{एकाधिकार का अंश} = \frac{\text{औसत आय} - \text{सीमान्त आय}}{\text{मूल्य}}$$

आप यह भी जानते हो कि मांग की मूल्य लोच, औसत आय और सीमान्त आय में एक विशेष सम्बंध जो कि इस प्रकार है

$$\text{. मांग की मूल्य लोच} = \frac{\text{औसत आय}}{\text{औसत आय} - \text{सीमांत आय}}$$

हम इस सम्बन्ध को इस प्रकार भी लिख सकते हैं : -

$$\frac{1}{\text{मांग की मूल्य लोच}} \quad , \quad \frac{\text{औसत आय}}{\text{औसत आय} - \text{सीमांत आय}}$$

इस समीकरण का सीधा हाथ का भाग लर्नर के एकाधिकार के अंश का माप ही है । अत:-

एकाधिकारक अंश = 1 / मांग की मूल्य लोच

इस तरह लर्नर का एकाधिकार शक्ति का माप वस्तु की मांग के मूल्य-लोच के प्रतिलोच के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है ।

लर्नर के इस माप के पीछे यह उद्देश्य प्रतीत होता है कि फर्म का वास्तविक उत्पादन इष्टतम उत्पादन स्तर (Optimum Output Level) से कितना कम है यह तो आप जानते ही है कि एकाधिकार की स्थिति में

उत्पादन स्तर इष्टतम स्तर से नीचें होता है। अब यदि मूल्य = सीमान्त लागत तो उत्पादन का स्तर इष्टतम से कम होगा जो कि इस वात का प्रतीक है कि एकाधिकारी ने अपनी शक्ति का प्रयोग कर उत्पादन के स्तर को कम रखा है, ताकि वह अधिक से अधिक लाभ कमा सके।

21.7.3 माप की सीमाएं

लर्नर के द्वारा सुझाये गये माप की कई सीमाएं है, जो कि इस प्रकार है : - प्रथम, मूल्य तथा सीमांत लागत का अंतर यह बताता है कि वास्तविक उत्पादन स्तर इष्टतम उत्पादन स्तर से कम है लेकिन यह नही बताता कि कितना कम है दूसरे, यह आवश्यक नही है कि मूल्य तथा सीमान्य लागत में अन्तर केवल एकाधिकार के कारण हो यह अन्य कारणों से भी हो सकता है। यह भी संभव है कि एकाधिकार होने के बावजूद भी मूल्य और सीमान्त लागत में अन्तर बहुत कम हो। तीसरे, यह स्पष्ट नही है कि सीमान्त लागत दीर्घकालीन या अल्पकालीन। दोनों में अन्तर होता है लर्नर ने अल्पकालीन सीमान्त लागत को ठीक माना है चौथा, इस माप की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इसके बारे में आंकड़े आसानी से उपलब्ध नही हो सकते।

21.8 फर्म तथा उद्योग के मांग वक्रों के ढलानों का अनुपात

21.8.1 माप

यह माप के डब्ल्यू. रोदसचाइलड (K.W. Rothschild) द्वारा सुझाया गया है। इस माप में फर्म के मांग वक्र के ढलान की तुलना उद्योग के मांग वक्र के ढलान से की जाती है। इसके अनुसार-

$$\text{एकाधिकार अंश} = \frac{\text{फर्म के मांग वक्र का ढलान}}{\text{उद्योग के मांग वक्र का ढलान}}$$

इसका मूल्य शून्य से लेकर एक तक हो सकता है। यह माप का उद्देश्य यह बताना है कि उद्योग की मांग पर किसी फर्म का कितना नियंत्रण हैं? एक चरम सीमा पर यदि एक ही फर्म सारे उद्योग के बाजार पर नियंत्रण रखती है, तो फर्म का मांग वक्र तथा उद्योग का मांग वक्र एक समान हो जाते है। ऐसी स्थिति में दोनों के मांग वक्रों के ढलानों का अनुपात 1:1 हो जाता है और एकाधिकार अंश का माप का मूल्य 1 होता है। यहां पूर्ण एकाधिकार नियंत्रण की स्थिति है।

दूसरी चरम सीमा पर, यदि एक फर्म उद्योग की कुल मांग के बहुत छोटे से भाग पर नियंत्रण रखती है और उसके उत्पाद को उद्योग की अन्य फर्मो के उत्पादों से भिन्न नही समझा जाता, तो ऐंसी फर्म के मांग वक्र का ढलान शून्य होता है। क्योंकि ऐसी फर्म का मांग वक्र पूर्णतया लोचदार होता है। ऐसी अवस्था में उद्योग के मांग वक्र का ढलान कुछ भी हो, फर्म तथा उद्योग के मांग वक्रों के ढलानों का अनुपात का मूल्य शून्य होगा। इसका अर्थ है फर्म का नाममात्र का भी एकाधिकार नियंत्रण नही है। ऐसा पूर्ण प्रतियोगिता में पाया जाता है।

इन दो चरमसीमाओं को छोड़कर शेष सभी अवस्थाओं में कोद्सचाइल्ड का माप शून्य और एक के मध्य होगा।

21.8.2 माप में कमी

इस माप की सबसे बढी कमी यह है कि कुछेक अवस्थाओं में वह अर्थ हीन हो जाता है। उदाहरणत: यदि किसी उद्योग में फर्में आपस में मूल्य निश्चित करने के बारे में समझौता कर लें तो वे निश्चित मूल्य पर जितना चाहे माल बेच सकते है। ऐसी स्थिति में फर्म का मांग वक्र पूर्णतया लोचदार हो जाता है। और इसका ढलान शून्य हों जाता है हांलाकि यह एक एकाधिकार की स्थिति है लेकिन रोदसचाइल्ड का मूल्य शून्य होगा, जो कि अर्थहीन कहलायेगा।

21.9 माप प्रतिलोच (Cross Elasticities of Demand)

21.9.1 माप

यह माप रॉबर्ट ट्रिफिन (Robert Triffin) द्वारा सुझाया गया है। आप जानते है एक फर्म द्वारा बनायी गयी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के कारण दूसरी वस्तु की मांग में परिवर्तन हो तो इस परिवर्तन को मांग प्रतिलोच की अवधारणा की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है।

मान लीजिए एक फर्म A है अब यदि इस फर्म की उद्योग में अन्य फर्मो में प्रतियोगिता है तो इन फर्मो द्वारा किये गये मूल्य परिवर्तन का फर्म A की मांग पर प्रभाव पड़ेगा। ऐसी अवस्था में प्रतिलोच मांग का माप शून्य से अधिक होगा। दूसरी अवस्था में यदि फर्म 4 के पास एकाधिकार शक्ति है इस अवस्था मे प्रतिलोच मांग का माप शून्य होगा।

ट्रिफिन के माप के अनुसार यदि किसी फर्म द्वारा बनायी गयी वस्तु की, अन्य सभी फर्मो द्वारा बनायी गयी वस्तुओं के मूल्यों के संदर्भ में, प्रतिलोच मांग शून्य हो तो यह फर्म एकाधिकार फर्म कहलायेगी। जैसे-जैसे प्रतिलोच मांग शून्य से अधिक होती जायेगी, एकाधिकार अंश कम होता जायेगा। प्रतिलोच मांग अनन्त (Infinity) होने की दशा में फर्म पूर्ण प्रगतियोगी फर्म कहलाएगी, जिसमें एकाधिकार का अंश शून्य होगा।

21.9.2 माप मे कमियाँ

इस माप की दो मुख्य कमियाँ है। प्रथम, ऐसा कोई अर्थपूर्ण तरीका नहीं है, जिससे किसी फर्म की अलग-अलग फर्मो के मूल्यों के संर्दभों के अलग-अलग प्रतिलोच के विभिन्न मापों की औसत निकाली जाये या उन्हें किसी अन्य प्रकार सें मिलाया जाये। दूसरे, यह केलव एकाधिकार-अंश की केवल चरम सीमाओं (शून्य व अनन्त) का ही बोध कराता है, बीच की स्थितियों का नहीं।

21.10 अन्य माप

एकाधिकार अंश के प्रमुख मापों का वर्णन करने के बाद, आइये अब कुछ अन्य मापों का भी संक्षेप में वर्णन करें।

21.10.1 अपसरण सूचकांक (Index of Divergence)

यह माप "नियंत्रण का केन्द्रीयकरण" माप का स्पष्टीकरण करता है। इसमें यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि केन्द्रीयकरण किस कारण से है? क्या यह बड़े स्तर पर उत्पादन करने से है अथवा अधिक उत्पादन इकाईयों पर नियंत्रण के कारण है? अन्य शब्दों में क्या उत्पादन कुछ कारखानों प्लांटों में केन्द्रित है या अधिकतर कारखाने कुछ कमनियों के नियंत्रण में है?

यह माप जोन ब्लेयर (John Blair) द्वारा सुझाया गया इसमें उसने " प्लांट केन्द्रीयकरण" तथा ' 'कम्पनी केन्द्रीयकरण " के आधार पर ' 'अपसरण सूचकांक " बनाया है, जो कि दोनों के अन्तर पर आधारित है। यह माप यह संकेत करता है कि केन्द्रीयकरण जो एकाधिकार अंश है, वह किस सीमा तक बड़े स्तर पर उत्पादन करने के कारण है और किस सीमा तक उत्पादन पर केवल कुछ कमनियों के नियंत्रण के कारण है?

21.10.2 मूल्य दृढता (Price Inflexibility)

इस माप के अनुसार यदि कोई उद्योग बाजार की बदलती हुई दिशाओं के बावजूद अपनी वस्तु के मूल्यों को काफी लम्बी अवधि तक दृढ रखने में सफल होता है तो वह ऐसा उद्योग में एकाधिकार की परिस्थितियों के कारण ही कर सकता है। जितनी लम्बी अवधि तक वह बाजार में होने वाले परिवर्तनों एवं विशेषताओं, जब बाजार मंदा हो, के प्रभावों से अपने आप को मुक्त रख सकता है, उसमें एकाधिकार का अंश उतना ही अधिक कहा जा सकता है।

21.10.3 सफल लाभ तथा बिक्री का अनुपात (Ratio of Profit to Sale)

यह मॅप एम0 कलैसकी (M.Kalecki) द्वारा सुझाया गया है। इसमें सफल लाभ के तीन भाग माने गये है (1) व्यवस्थापकों के वेतन (S) (2) मूल्य ह्रास (D) तथा पूँजीपति की आय (C) यह माप इप्र प्रकार है-

$$\text{एकाधिकार अंश} = C + D + S / T$$

जिसमें से अभिप्राय फर्म की बिक्री से है। यह एक फर्म के एकाधिकार अंश का माप है यदि किसी उद्योग की सभी फर्मो के आँकड़े (C,D,S, और T के बारे में) एक साथ जोड़ दें तो हम उद्योग का एकाधिकार अंश का माप मालूम कर सकते है। और यदि हम देश के समस्त उद्योगों के आँकड़े को एक साथ मिला दें तो सारी अर्थव्यवस्था में एकाधिकार अंश का माप भी ज्ञात कर सकते है।

21.11 निष्कर्ष

ऐसा विचार व्यक्त किया जाता है कि एकाधिकार अंश मापने की सभी विधियों में "मूल्य तथा सीमान्त लागत में अन्तर" पर आधारित लर्नर द्वारा सुझायी गयी विधि ही सबसे अधिक तर्कसंगत है। लेकिन साथ-साथ यह भी कहा जाता है कि केवल यह विधि काफी नहीं है। मूल्य तथा सीमान्त लागत में अन्तर के साथ-साथ ' 'लाभ-दर " की स्थिति देखना भी आवश्यक है।

वास्तव में कोई भी विधि अपने आप में पूर्ण नही है किसी फर्म की या उद्योग की एकाधिकार शक्ति को निर्धारित करने वाले इतने भिन्न-भिन्न और जटिल तत्व होते है कि इन सब के मिले जुले प्रभावों को एक साथ मापना एक असम्भव कार्य है। हम इन तत्वों कों अलग-अलग देखें तो शायद माप सकते है। लेकिन इन सबकों मिलाकर एकाधिकार अंश का एक अकेला माप बनाना सम्भव नही है।

बोध प्रश्न

अपना उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का इस्तमाल करें।

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. क्या फर्मो की संख्या के आधार पर एकाधिकार अंश का अनुमान लगाया जा सकता है? संक्षेप में कारण दीजिए।
2. एक उद्योग में सन्तुलन स्तर पर एक फर्म की वस्तु मूल्य 20 रुपये तथा सीमान्त लागत 15 रुपये है उसी उद्योग में दूसरी फर्म की वस्तु का मूल्य 30 रुपये है जबकि सीमान्त लागत 24 रुपये है। दोनों फर्मो के एकाधिकार अंश के बारें में आप क्या कह सकते है?
3. दो फर्मो के सन्तुलन स्तरों पर मूल्य-मांग लोच क्रमश : 3 व 2 है। इसके एकाधिकार अंश के बारे में आप क्या कह सकते है?
4. एक फर्म सन्तुलन की स्थिति में औसत आय 15 रुपये है तथा सीमान्त आय 10 रुपये है इस फर्म की एकाधिकार अंश का माप बताइये।
5. क तथा ख उद्योग है। प्रत्येक में 100 के लगभग फर्मे है। उद्योग क में सबसे बड़ी चार फर्मे उद्योग के कुल उत्पादन का 15 प्रतिशत बनाती है, जबकि उद्योग में सबसे बड़ी चार फर्मो 2 रु प्रतिशत बनाती है। दोनों उद्योगों की तुलनात्मक एकाधिकार अंश के बारें में क्या निश्चित तोर पर कुछ कह सकते है।

21.12 सारांश

एकाधिकार के तत्व अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव डालते है। उपभोक्ता को वस्तु मंहगी मिलती है उत्पादन क्षमता का पूरा प्रयोग नहीं होता। उत्पादन स्तर नीचा रहता है कुछ ही लोगों के हाथ में नियंत्रण होने के कारण आय तथा सम्पत्ति की विषमताओं को बढ़ावा मिलता है इसीलिए प्रत्येक सरकार एकाधिकार प्रवृत्तियों को समाप्त करने के लिये तत्पर रहती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि यह जाना जाये कि एकाधिकार अंश कैसे मापा जा सकता है।

एकाधिकार अंश के निर्धारक तत्व इसे जन्म देने वाले कारणों और इससे उत्पन्न प्रभावों में पाये जाते है। इसे मापने की मूख्य विधियाँ इन्हीं तत्वों पर आधारित है। ये है। (1)फर्मो की संख्या (2) नियंत्रण का केन्द्रीयकरण (3) लाभ दर (4) मूल्य तथा सीमान्त लागत में अन्तर (5) फर्म तथा उद्योग के मांग-वक्रों के ढलानों का अनुपात (6) प्रतिलोच मांग।

फर्मो की संख्या पर आधारित माप एक ठीक माप नहीं है, क्योंकि सभी फर्मो एक आकार की नही होती है। "नियंत्रण का केन्दीकरण" माप इससे श्रेष्ठ है। इसमें कुछ बड़ी-बड़ी फर्मो का उद्योग के कुल उत्पादन में योगदान का अनुपात देखा जाता है यह माप भी पूर्ण नही है। इसमें तीन कमियाँ है। प्रथम, इसमें फर्म तथा उद्योग की परिभाषा स्पष्ट रूप से नही की गयी है। दूसरे, किसी उद्योग की अन्य उद्योगों से संभावित प्रतियोगिता की अनेदेखी की गयी है तीसरे, इस बात की भी अनदेखी की गयी है कि बाजार राष्ट्रीय है, प्राज़ीय है या स्थानीय है।

लाभ दर माप में "पूंजी से प्राप्त प्रतिशत, प्रतिफल" देखा जाता है। इसमें लाभ और पूँजी की परिभाषा फर्मो के खातों में दिखये गये आंकड़ों के आधार पर न कर के विशेष रूप से की गयी है। यह माप भी पूर्ण नहीं है। ये यह बताने में असफल है कि ऊँची लाभ दर केवल एकाधिकार के ही कारण है। अन्य शक्तियाँ भी इसे प्रभावित कर सकती है।

"मूल्य तथा सीमान्त लागत में अन्तर" पर आधारित एक और माप है। इसे मूल्य मांग लोच के आधार पर भी व्यक्त कर सकते है। इस माप में भी कमियां है। अपनी कमियों के उपरान्त भी इस माप को सबसे अधिक तर्कसंगत माना जाता है

फर्म के मांग वक्र के ढलान की तुलना उद्योग के मांग वक्रके ढलान से करके भी एकाधिकार अंश मापा जा सकता है। यदि इसका मूल्य शून्य है तो एकाधिकार अंश भी शून्य होता है। मूल्य 'शून्य से लेकर एक ' तक कुछ भी हो सकता है। कुछ परिस्थितियों में यह माप भी अर्थहीन हो जाता है।

"प्रतिलोच मांग" माप में एक फर्म की अन्य सभी फर्मो के मूल्यों के संदर्भ में, प्रतिलोच मांग मापी जाती है यदि इसका मूल्य शून्य है तो फर्म एकाधिकारी कहलाती है। यदि शून्य से अधिक है तो एकाधिकार का अंश कम होता हुआ चला जाता है इस माप में भी कुछ कमियाँ है।

एकाधिकार अंश मापने के कुछ अन्य माप भी है जैसे-अपसरण सूचकांक, मूल्य दृढता, सकल लाभ बिक्री का अनुपात माप।

ऊपर बतायी गयी सभी विधियों में से "मूल्य तथा सीमान्त लागत में अन्तर विधि " को सबसे अधिक तर्कसंगत कहा जाता है। लेकिन अपने आप में यह विधि पर्याप्त नही है। इसके साथ-साथ लाभ दर की स्थिति देखना भी आवश्यक है।

21.13 शब्दावली

सामान्य (Normal Profit)- वह न्यूनतम अपेक्षित लाभ जो कि लागत का भाग बन जाता है।

सीमान्त लागत (Marginal Cost)- वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बनाने की अतिरिक्त लागत।

मूल्य मांग लोच (Price : Elasticity Of Demand) : मांग में प्रतिशत परिवर्तन तथा मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात।

प्रतिलोच मांग (Cross Elasticity of Demand): एक फर्म की मांग में प्रतिशत परिवर्तन तथा किसी अन्य फर्म द्वारा मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात।

मांग वक्र ढलान (Slope Of Demand Curve) : जिस गति से मांग वक्र गिरता है, यह मूल्य में परिवर्तन तथा मांग में परिवर्तन का श्वपात कहलाता है

इष्टतम उत्पादन स्तर (Optimum Output Level)- वह उत्पादन स्तर जिस पर औसत लागत न्यूनतम होती है।

21.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Fritz Machlup, "The Political Economy of Monopoly" (1952) Chapter 12.

A.Hunter, "The Measurement of Monopoly Power" in "Monopoly and Competition" (1970) Edited by A. Huntev.

M.L. Jhingan "Advanced Economics Theory" (1986)

R.A. Bilas "Micro Economics Theory"(1971) Page 26-269

21.15 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1 निश्चित तोर पर कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता क्योंकि सभी फर्मे एक आकार की नही होती। प्रत्येक फर्म का उद्योग के उत्पादन में एक जैसा योगदान नहीं होता।

बोध प्रश्न 2 पहली फर्म का एकाधिकार अंश 20 - 1 पु 720 न् 25

दूसरी फर्म का एकाधिकार अंश g 30 - 24730 न्. 25

लर्नर द्वार सुझायी विधि के अनुसार दोंनों फर्मो का एकाधिकार अंश एक समान है

बोध प्रश्न 3 प्रथम फर्म का एकाधिकार अंश =1/मूल्य मांग लोच=33

दूसरी फर्म का एकाधिकार अंश =.50;

अत: दूसरी फर्म का एकाधिकार अंश अधिक है।

बोध प्रश्न 4 'नियंत्रण का केन्द्रीयकरण' " माप के अनुसार उद्योग ' ऊ " में एकाधिकार अंश अधिक है। लेकिन ऐसा निहित तोर पर नही कहा जा सकता, क्योंकि इस माप में कुछ कमियां है प्रथम, इस माप में फर्म तथा उद्योग की परिभाषा स्पष्ट नही है दूसरे, इस उद्योग की अन्य उद्योगों में संभावित प्रतियोगिता की अनदेखी की गयी हैं। तीसरे, इस बात की अनदेखी की गयी है कि बाजार राष्ट्रीय है, प्रान्तीय है अथवा स्थानीय है।

इकाई - 22

फर्म की वृद्धि एवं विलय
The Firm's Growth and Merger

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 फर्म की वृद्धि की धारणा

- 22.2.1 जीवन चक्र सिद्धांत
- 22.2.2 जीवन क्षमता विश्लेषण
- 22.2.3 यथास्थिति

22.3 फर्म की वृद्धि के सिद्धांत

- 22.3.1 परम्परागत सिद्धांत
- 22.3.2 प्रबन्धात्मक सिद्धांत

22.4 पेनरोज (Penrose) सिद्धांत

- 22.4.1 वृद्धि पर प्रतिबन्ध
- 22.4.2 अन्य प्रतिबन्ध
- 22.4.3 मांग पर प्रतिबन्ध

22.5 वृद्धि की विधियाँ

- 22.5.1 विलय बनाम ग्रहण
- 22.5.2 विलय के प्रकार
- 22.5.3 लम्ब विलय
- 22.5.4 समस्तरीय विलय
- 22.5.5 विविधीकरण विलय

22.6 निष्कर्ष

22.7 अभ्यास

22.8 शब्दावली

22.9 उपयोगी पुस्तकें

22.10 अभ्यास के उत्तर

22.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक फर्म वृद्धि के सिद्धांत के निम्नलिखित पहलु समझने की स्थिति में होगा -

1. कारोबार वृद्धि अथवा फर्म वृद्धि की धारणा।
2. इस विषय में जीव विज्ञान के सादृश्य।
3. कारोबार वृद्धि पर विवाद।
4. प्रबन्ध सिद्धांतों का पुनरावलोकन।
5. पेनरोज का सिद्धांत
6. विलय और ग्रहण
7. अग्रवर्ती और पश्चगमन विलय
8. संस्तरीय विलय
9. विविधीकरण विलय यद्यपि विविधीकरण विलय फर्म वृद्धि से सम्बन्धित एक मुख्य पहलु है। उसका अध्ययन इस व्याख्या के बाहर रखा गया है।

22.1 प्रस्तावना

फर्म वृद्धि के सिद्धांत का अध्ययन क्षेत्र बहुत फैला हुआ है और इसे समझने के लिए आर्थिक सिद्धांत कें कुछ मूल धारणाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। यह धारणाएं है-लागत फलन, बाजार के स्वरूप, फर्म के उद्धेश्य, पैमाना प्रतिफल इत्यादि। इनके अतिरिक्त संगठन व्यवहार सिद्धांत के मूल तत्वों की जानकारी भी आवश्यक है। विशेष तौर पर आधुनिक (निगमों के ढाँचे और प्रबन्ध की जानकारी होनी चाहिये। जीव विज्ञान से लिये गये सादृश्यों के विषय में छात्रों का पूर्वाज्ञान होना आवश्यक नही है। अगले अंश में दिये गये सादृश्यों और उनसे जुड़ी हुई व्याख्या से अतिरिक्त जानकारी होना भी आवश्यक नहीं है। इस अध्ययन को तीन मूल सूत्रों में बाँटा जा सकता है-कारोबार वृद्धि की धारणा, कारोबार वृद्धि के सिद्धांत, विलय और उसके प्रकार।

22.2 फर्म की वृद्धि की धारणा

फर्म की वृद्धि की धारणा को कारोबार वृद्धि भी कहा जा सकता है। वर्तमान समय में व्यवसाय वृद्धि की धारणा दो भिन्न विचार धाराओं के विवाद में जकड़ा हुआ है। परंपरागत अर्थशास्त्र में फर्म को एक ऐसी इकाई माना गया है जिसका मूल उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है और जो सामान्यत: पूर्ण प्रतियोगिता के सांचे में ढला है। परन्तु आज की स्थिति यह है कि कारोबार का स्वरूप बदल चुका है। "आधुनिक

निगम" (Modern Corporation) की धारणा परंपरागत फर्म से भिन्न है। यह निगम बहुत बड़े पैमाने के फर्म है जिनका फैलाव अनेक देशों में देखा जा सकता है । इन्हें बहुउद्देशीय निगम (Modern Corporation) कहते है। इस अमृतपूर्व अस्तित्व को परंपरागत अर्थ-शास्त्र के माध्यम से समझ पाना लगभग असम्भव है। यही कारण है कि फर्म वृद्धि के संदर्भ में नई धारणाओं की उत्पत्ति हुई है। इन धारणाओं को ठोस सिद्धांत का स्थान नहीं दिया जा सकता है परन्तु इनके बगैर कारोबार वृद्धि को समझ पाना कठिन है। वास्तव में यह सिद्धान्त नही है बल्कि जीवन-विज्ञान से लिये गये सादृश्य है।

ये तीन सादृश्य इस प्रकार है:-

1. जीवन चक्र सिद्धांत
2. जीवन क्षमता विश्लेषण
3. यथा-स्थिति

पहले दो सिद्धांत दीर्घ-कालीन वृद्धि की व्याख्या करते है और तीसरा सिद्धांत केवल अल्प काल से सम्बन्धित है। इन सभी सिद्धांतों में अधिकतम लाभ को मूल उद्धेश्य नही माना गया है।

22.2.1 जीवन चक्र सिद्धांत (Life Cycle Theory)

एल्फ्रेड मार्शल (Alfred Marshall) इस सिद्धांत के प्रतिपादक है। इनके पश्चात् अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी इस विषय में अपने विचार व्यक्त किये है। इस सिद्धांत में यह कहा जाता है कि फर्म वृद्धि जीवन वृद्धि चक्र भांति ही होती है। यह समझा जाता है कि जीवन चक्र अर्थात जन्म, वृद्धि और मृत्यु की अवस्थाएं फर्म वृद्धि जीवन में भी पाये जाते है। मार्शल ने इस धारण को व्यक्त करने के लिये जंगल के बड़े वृक्षों के सादृश्य का उपयोग किया है। कारोबार वृद्धि के विषय में यह कहा गया है कि बड़े वृक्षों की तरह इनका जन्म होता है, ये पनपते है और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

यह सुचारू और सत्यभाषी व्याख्या कारोबार वृद्धि की धारणा को उभारता है। परन्तु इस व्याख्या में कई कमियाँ है। प्रथम, जीव वृद्धि की अवस्थाओं के विषय में निर्धारित नियम विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में निहित है किन्तु फर्म वृद्धि के विषय में समानान्तर नियम नही है। इस सिद्धांत में इन अवस्थाओं से सम्बन्धित नियमों को मान लिया गया है। द्वितीय, यदि ऐसी अवस्थाएँ वास्तविक रुप में पायी जाये तो भी यह नही कहा जा सकता है कि जीवन चक सिद्धांत एक मूल भूत सिद्धांत है। इसको सिद्धांत की श्रेणी में तभी माना जा सकता है जब फर्म के विषय में अवस्थाओं से सम्बन्धित निश्चित नियम स्थापित किये जायें। तृतीय, केनेथ बोल्डिंग (Kenneth Boulding) के अनुसार, कारोबार का जीवन काल निश्चित है और अन्तत: उसकी समाप्ति भी निश्चित है। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि जीवन चक्र से सम्बन्धित अवस्थाएं कारोबारों के विषय में नही पाये जाते है। अन्त में इस सिद्धांत के अनुसार पूर्व निर्धारित जीवन चक्र ही कारोबार वृद्धि का आधार है, अत: मानवीय इच्छा और योगदान का कोई स्थान नही है। यदि ऐसा हो तो कारोबार योजना और नीति निरर्थक हो जाते है। इस सिद्धांत की सबसे बड़ी कमी यह है कि मार्शल के अनुसार यह सिद्धांत "आधुनिक निगमों" पर लागू नही होता है। बहुउद्देशीय निगमें (MNCs) के संदर्भ में इस सिद्धांत का महत्व स्तुत कम हो जाता है।

22.2.2 जीवन क्षमता विश्लेषण

चार्लस डार्विन (Charles Darwin) नामक वैज्ञानिक ने जैव क्रमिक विकास (Organic Evolution) के सिद्धांत की स्थापना की थी। डार्विन की मूल धारणाओं में से सबसे प्रमुख है- "प्राकृतिक चयन" (Natural Selection) इसका तात्पर्य यह है कि जीव जन्तु गुणोत्तर गति से बढ़ते है, परन्तु प्रकृति केवल एक निश्चित प्रकारों की संख्या (Number of Species) को झेल पाती है। इस प्रतिबन्ध के कारण जीवित प्रकारों में होड़ लग जाती है। इस प्रतियोगिता के होते हुए केवल वही जीव प्रकार विद्यमान रहते है, जो अपने वातावरण के अनुकूल अपने आप को ढाल पाते है। इस प्रक्रिया को 'योग्यतम का जीवित रहना" (Survival of the fittest) अथवा प्राकृतिक चयन कहते है। जैव क्रमिक विकास दो अन्य धारणाओं पर निर्भर है- (क) अपेक्षित परिवर्तन (Mutation) (ख) जननिक आनुवंशिकता (Genetic Heredity) अपेक्षित परिवर्तन एक आकस्मिक घटना है जिसमें वंश के लक्षण पैत्रिकता से भिन्न हो जाते है। उदाहरणत : कभी-कभी काली ऑखों वाले माता-पिता भूरी ऑखों वाले सन्तान को जन्म देते है। जननिक आनुवंशिकता प्रकृति की वह प्रकिया है जिसमें सन्तान सामान्य तौर पर पैतृकता द्वारा अपने माँ - बाप के गुण प्राप्त करते है। जिस प्रकार सामान्यत: गोरे मॉ-बाप की सन्तान भी गोरी होती है।

आरमेन आलकेन (Armen Alchain) में इन तीन सिद्धांतों को सादृश्य के रूप में उपयोग किया है और इनके माध्यम से कारोबार वृद्धि के विषय में जीवन क्षमता विश्लेषण की स्थपना की है। आलकेन ने स्वय ही इसे सिद्धांत का दर्जा नही दिया है। वे केवल इसे एक "विश्लेषण" मानते है। फर्म का वातावरण आनिश्चित होता है। भविष्य की कीमतें, लागत और बाजार का स्वरूप वर्तमान समय में अनिश्चित दिखाई देते है। अधिकतम लाभ की स्थिति और फर्म का संतुलन इस अनिश्चित वातावरण में निर्धारित नही हो पाता है। अनगिनत फर्म जीवित रहने के लिये इस अनिश्चित वातावरण से जूझती है परन्तु केवल कुछ फर्मे लाभ कमा पाती है। वे फर्म जो लाभ नहीं कमा पाती है, वे समाप्त हो जाती है। अर्थात् सकारात्मक लाभ (Positive Profit) ही जीवित रहने के लिये एक अनिवार्य शर्त है। प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया द्वारा अकुशल फर्म कारोबार वातावरण को झेल नही पाते है और समाप्त हो जाते है।

इस विश्लेषण की सबसे बड़ी कमी इसका चक्रीय तर्क है। सकारात्मक लाभ कमाने वाली फर्मे कारोबार वातावरण के अनुरूप अपने आप को ढाल पाती है। और जीवित रहती है। यदि यह प्रश्न उठाया जाये कि वे कौन सी फर्मे है जो सकारात्मक लाभ कमाती है तो इस विश्लेषण से उत्तर यही प्राप्त होता है कि वे उस प्रकार की फर्मे है जो अपने आप को ढाल पायी है। सकारात्मक लाभ कमाने का आधार इस सिद्धांत में नही बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त यह आलोचना भी की जा सकती है कि फर्म को निष्क्रिय इकाई माना गया है। यह समझा गया है कि वातावरण पर फर्म का कोई प्रभाव नही होता है, जो उचित नही है। फर्म का वातावरण के साथ दो-तरफा सम्बन्ध होता है।

इस विश्लेषण में उत्तीर्ण फर्म वे है जो नव परिवर्तन (Innovation) द्वारा लागत में कमी ला पाती है और नयी विधियों और वस्तुओं का आविष्कार कर पाती है। इसलिये नव परिवर्तन को अपेक्षित परिवर्तन माना गया है जो कि विद्यमान लागत-राजस्व ढाँचे या कारोबार वातावरण से समन्धिता नही है।

यह स्पष्ट किया गया है कि अन्य फर्म इस उत्तीर्ण फर्म की नीतियों की नकल (Imitation) करती है। और इस प्रकार उनके गुण प्राप्त करती है। जननिक आनुवंशिकता और इस प्रकार के नकल में केवल यह अन्तर है कि नकल की प्रक्रिया स्वचलित नही है बल्कि प्रत्यक्ष नीतियों द्वारा अपनाई गयी है।

इस प्रकार, जीवन क्षमता विश्लेषण ने अपेक्षित ने अपेक्षित परिवर्तन (Mutation) जननिक आनुवंशिकता (Genetic Heredity) एवं प्राकृतिक चयन (Natural Selection) के सादृश्यों द्वारा नव परिवर्तन (Innovation) नकल (Imitation) एवं सकारात्मक लाभ (Positive Profits) की धारणओं के आधार पर कारोबार वृद्धि की व्याख्या की है।

22.2.3 यथास्थिति (Homecostasis)

यह सिद्धांत प्राणियों के आन्तरिक संतुलन के सादृश्य पर निर्भर है। उदाहरणत: मानव शरीर का ताप सामान्यत : 98.6F डिग्री होता है। शरीर मे. असंतुलन होने पर ताप बढ़ जाता है और सामान्य स्थिति पुन: स्थापित होने पर ताप भी सामान्य हो जाता है इस सिद्धांत में यह बतलाया गया है कि फर्म का संतुलन उसके पक्के चिट्ठे में प्रकट होता है और यदि आन्तरिक या बाहरी तत्वों से असंतुलन हो, तो पक्का चिट्ठा भी असंतुलित हो जाता है। शरीर के ताप की तरह पुन : संतुलन भी स्वचलित है। इस सिद्धांत के विषय में आलोचना यह है कि मानवीय हस्ताक्षेप की आवश्यकता अनिर्वाय नही है, अर्थात् प्रबन्ध का कोई महत्व नही समझा जाता है।

जीव विज्ञान से लिये गये इन सादृश्यों द्वारा फर्म वृद्धि के विषय में काफी स्पष्टीकरण प्राप्त हो पाया है, परन्तु इन धारणाओं को सिद्धांत का स्थान नही दिया जा सकता है।

22.3 फर्म की वृद्धि के सिद्धांत

फर्म की वृद्धि के सिद्धांत में मूल प्रश्न यह है कि किसी फर्म की वृद्धि निरन्तर हो सकती है अथवा उसके आकार पर कोई निर्धारित प्रतिबन्ध है। इस प्रश्न का सीधा उत्तर ढूँढ पाना संभव नहीं है बल्कि इस विषय में व्यक्त किये गये विभिन्न सिद्धांतों पर गौर करने के पश्चात् ही कुछ निष्कर्ष निकाला जा सकता है। मूलत: यह व्याख्या दो हिस्सों में बंटी हुई है। परम्परागत अर्थशास्त्र में कारोबार वृद्धि को भिन्न ढंग से देखा जाता है: जब कि प्रबन्धात्मक अथवा व्यावहारिक सिद्धांत (Managerial or Behavioral theories) में कारोबार वृद्धि को अन्य दृष्टिकोण से देखा गया है। पहले इन दोनों विचार धाराओं में मूल अन्तर जानना आवश्यक है जिसके पश्चात् परम्परागत विचारों को संक्षिप्त रूप में समझा जा सकता है और फिर अन्य सिद्धांत की व्याख्या की जायेगी। अन्य सिद्धांतों में प्रमुख है श्रीमती पेनरोज (Mrs. Penrose) का सिद्धांत है।

22.3.1 परम्परागत सिद्धांत

सामान्य अर्थ-शास्त्र के अनुसार फर्म के आकार और वृद्धि पर दो प्रकार के प्रतिबन्ध है पहला प्रतिबन्ध लागत के पहलू से सम्बन्धित है और दूसरा प्रतिबन्ध मांग के पहलू से। पिछली इकाईयों में आपने अल्प-

कालीन व दीर्घ-कालीन लागत वक्रों का अध्ययन गहन रूप से किया है। इस विश्लेषण में उन धारणाओं के आधार पर हम फर्म वृद्धि को समझ सकते है।

अल्पकाल मे निश्चित साधन पूंजी समझा जाता है जिसकी मात्रा बढ़ाई नही जा सकती है। ऐसी अवस्था में तकनीकी की अविभाजितता के कारण लागत में वृद्धि होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादक वर्तमान कीमत पर अनिश्चित मात्रा में उत्पादन करने योग्य है परन्तु अल्पकालीन लागत में वृद्धि के कारण वे केवल उस सीमा तक उत्पादन को बढ़ा पाते है जहां बढ़ती हुई सीमान्त लागत सीमान्त आय के समान हो। इस प्रकार अल्पकाल में फर्म के आकार पर एक निश्चित प्रतिबन्ध होता है।

दीर्घकाल में सभी साधनों को निरन्तर बढ़ाया जा सकता है जिसके कारण दीर्घ-कालीन लागत वक्र भिन्न होता है। पूंजी और परिवर्तनशील साधनों के निश्चित मिश्रण को पैमाना (Plant) कहते है। सामान्य तौर पर दीर्घकाल में पैमाने में वृद्धि के साथ-साथ बड़े पैमाने के बचत के कारण हर इकाई से सम्बन्धित अल्पकालीन लागत का स्तर लगातार कम होता जाता है। परन्तु कुछ समय बाद बड़े पैमाने के हानियों के कारण यह प्रक्रिया विपरीत हो जाती है और लागत वक्रों का स्तर बढ़ने लगता है। इससे स्पष्ट है कि दीर्घकालीन लागत वक्र अल्प-कालीन लागत वक्रों को स्पर्श करता है। और U- आकार का होता है। इससे यह भी सष्ट हो जाता है कि किसी निश्चित इकाई के सहारे उत्पादन का स्तर उस सीमा तक पहुँच जाता है जहां दीर्घकालीन लागत न्यूनतम स्तर पर होता है (चित्र 22.1A पैमाना 3) इस उत्तम रचना के माध्यम से परम्परागत अर्थ-शास्त्रियों ने दीर्घकालीन आकार और अल्पकालीन आकार के बीच एक निश्चित सम्बन्ध स्थापित कर दिया। दीर्घकालीन औसत-लागत (LAC) के न्यूनतम स्तर पर फर्म आकार में वृद्धि के कारण होने वाले लाभ और उसके फलस्वरूप होने वाली हानियां आपस में संतुलित हो जाती है। ऐसी अवस्था में अत्याधिक वृद्धि से फर्म को प्राप्त हानियां (Diseconomies) लाभ से अधिक हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि दीर्घकाल में एक निश्चित आकार पर पहुँचने के बाद, फर्म वृद्धि पर एक निहित प्रतिबन्ध लग जाता है ऐसे आकार को अनुकूलतम आकार समझा जाता है। इस स्थिति में फर्म को पैमान के स्थिर प्रतिफल Constant Returns to scale उपलब्ध होते है।

परंपरागत सिद्धांत के निष्कर्ष को व्यावहारिक अर्थशास्त्रियों ने चुनौती दी है उनका कहना यह है कि दीर्घ-कालीन लागत वक्र वास्तव में न्यूनतम स्तर पर आने के वाद बढ़ता ही नही है (चित्र 22.B पैमाना 3,4,5)

परीक्षणो के आधार पर परिणाम यह बतलाते है कि दीर्घकालीन लागत वक्र U - आकार के नही बल्कि लगभग L- आकार के है। (चित्र,22.1 B) इसका तात्पर्य यह हुआ कि फर्म के आकार पर कोई निहित प्रतिबन्ध नही है जिसके कारण स्वंय ही फर्म वृद्धि समाप्त हो जाये।

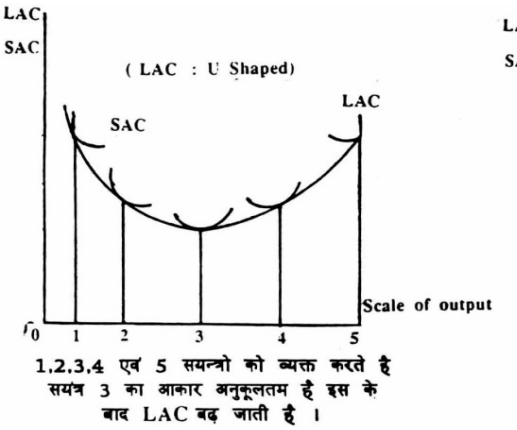

चित्र 22.1(A)

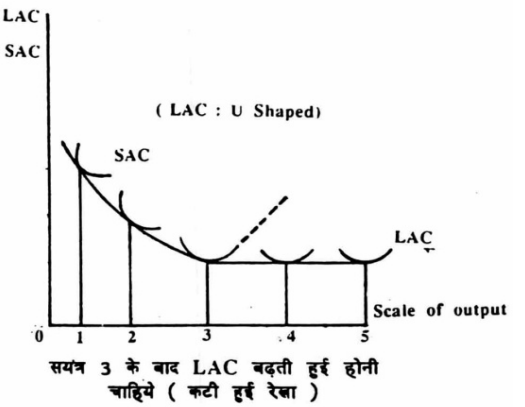

चित्र 22.1(B)

इस चुनौती को स्वीकार करते हुए और यह मानते हुए कि पैमाने स्थिर प्रतिफल यदि कायम रहे तो फर्म आकार पर लागत के दृष्टिकोण सें कोई प्रतिबन्ध नही होगा, परम्परागत अर्थ-शास्त्रियों ने मांग की ओर ध्यान आकर्षित किया। मांग के विषय में सामान्य तोर पर व्यक्तिगत उत्पादक को निष्क्रिय समझा जाता था। पूर्ण प्रतियोगता में कीमतों पर ऐसे उत्पादक का कोई प्रभाव नही होता है पूर्ण प्रतियोगिता के स्वरूप में परिवर्तन लाते हुए उसे वास्तविकता के निकट लाया गया। इस संदर्भ में मुख्य भूमिका चेम्बरलिन (Chamberlin) और जोन राबिन्सन (Joan Robinson) की रही है। मूल परिवर्तन यह था कि मांग वक्र पूर्णत: लोचदार न होकर नीचे की दिशा में हो जाती है। इस अवस्था में उत्पादक उत्पादन कों संकुचित करके कीमतों को बढ़ा पाता है। ऐसे बाजार अवस्था को अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect competition) या एकाधिकारगत प्रतियोगिता (Monopolistic competition) कहा जाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकालीन वक्र लगभग L- Shaped होने पर भी उत्पादन या फर्म का आकार अनिश्चित नही होता है। इसका करण यह है कि लागत- राजस्व समानता दीर्घकालीन लागत वक्र के गिरते हुए क्षेत्र में स्थापित हो जाता है। अनुकूलतम आकार, दीर्धकालीन लागत का न्यूनतम स्तर और निहित प्रतिबन्ध (Intrinsic Limitation) यह सभी बातें असंगत हो जाती है। दो प्रकार की आलोचनायें इस सिद्धांत के बारे में कहीं जा सकती है। प्रथम यह है कि परम्परागत अर्थशास्त्रियों का विश्लेषण स्थैतिक है और फर्म वृद्धि के विषय में गतिशील विश्लेषण अधिक महत्वपूर्ण है। द्वितीय यह है कि विविधीकरण के साथ-साथ फर्म की स्थिति बदल जाती है और. इस प्रकार के विश्लेषण का महत्व नही रह जाता है।

22.3.2 प्रबन्धात्मक सिद्धांत

आधुनिक निगम के विकास के साथ-साथ दो मूल परिवर्तन कारोबार के क्षेत्र में नजर आते है। अधिकतम लाभ कमाना एक मात्र उद्देश्य नहीं होता है और वास्तविक स्थिति यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता की तरह उत्पादक सूक्ष्म और निष्क्रिय नही होते है। फर्म के आकार और वृद्धि में प्रबन्ध का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इन निगमों में निवेश अन्य लोग करते है अर्थात् अंशधारी (Share holders) करते है, जिनका उद्देश्य लाभांश (Dividend) कमाना होता है और प्रबन्ध या नियंत्रण (Control) अन्य वर्ग अर्थात् प्रबन्धकों

के हाथ में होता है। इन परिस्थितियों में साधारण सिद्धांत जो कि पूर्ण प्रतियोगिता और अधिकतम लाभ के शर्तों पर आधारित है, ये नही लागू होते है।

वैकल्पिक विचारधारा में पहला सिद्धांत बोमल (Baumol) का है जो "अधिकतम विक्रय के सिद्धांत" में विक्रय, उत्पादन का पैमाना और लाभ, सभी चीजें एक सीमा तक बढ़ती है और उसके पश्चात् विक्रय में वृद्धि के साथ लाभ कम हो जाते है। अब में विक्रय में भी कमी आ जाती है। इस सिद्धांत का यह योगदान है कि सीमान्त लागत-राजस्व सिद्धांत (Marginal cost-Revenue Principle) के बदले अधिकतम विक्रय (TR = Maximum, MR=Zero) सिद्धांत को स्थापित किया गया है परन्तु इन तत्वों में बतलाये गये सम्बन्ध गतिशील ढांचे में इस प्रत्यक्ष ढंग से स्पष्ट नही हो पाते है।

वास्तव में व्यावहारिक सिद्धांतों में मुख्य भूमिका सायरेट और मार्च (Cyret & March) आर. एल. मेंरिस (R.L. Marris) और एडिथ पेनरोज (Edith Penrose) की रही है। सायेरट व मार्च का सिद्धांत आधुनिक संगठन के ढांचे पर निर्भर है, परन्तु साधनों के बँटवारे के विषय में इनका सिद्धांत विफल रहा है। परन्तु यह कहना पड़ता है कि यह सिद्धांत यथार्थ स्थिति के निकट है। प्रबन्धात्मक सिद्धांतों में प्राय किसी बढ़ते हुए फर्म के अनुभव के आधार पर विश्लेषण किया जाता है। इससे विपरीत मेंरिस जैसे अर्थशास्त्रियों ने मॉडल के सहारे कारोबार वृद्धि को समझने की चेष्टा की है। पेनरोज, जो कि आधुनिक सिद्धांतों के लिये पथ-प्रदर्शक रही है। उन्होंने किसी ठोस विश्लेषणात्मक मॉडल का सहारा नही लिया परन्तु कारोबार वृद्धि की प्रक्रिया का गहन अध्ययन करके ऐसे सिद्धांत की स्थापना की है जिसके आधार पर आने वाले कई सिद्धांत बने है। पेनरोज के सिद्धांत का गहन अधययन अगले अंश में किया जा रहा है। परन्तु यहां यह कहना आवश्यक है कि पेनरोज के सिद्धांत के पश्चात् फर्म के अस्तित्व में एक मूलभूत परिवर्तन आ चुका है परम्परागत ढंग से फर्म को निष्क्रिय इकाई समझा जाता था, जो स्वचालित ढंग से व्यावसायिक वातावरण से प्रभावित होता है। पेनरोज के अनुसार वृद्धि का तात्पर्य केवल उत्पादन में वृद्धि नही है, बल्कि वृद्धि का फर्म के जैव अस्तित्व के साथ गहरा सम्बन्ध है। पेनरोज के सिद्धांत का यह सबसे बड़ा योगदान है।

मेंरिस का मॉडल आधुनिक निगम के संगठन सम्बन्धी ढांचे में निहित स्वामित्व और नियंत्रण के विभाजन पर आधारित है। मेंरिस की समझ यह है कि ग्रहण हो जाने का खटका प्रबन्ध पर सबसे प्रबल प्रतिबन्ध है उनका मॉडल शेयर बाजार, शेयर कीमतें, लाभ इत्यादि पर निर्भर है। मैरिस के सिद्धांत के फलस्वरूप फर्म वृद्धि के वित्तीय पहलुओं पर ध्यान आकर्षित हुआ है। इस सिद्धांत में विविधकरण और उससे सम्बन्धित लागत पर ध्यान दिया गया है।

कारोबार वृद्धि के विषय में कुछ मुख्य बाते अन्य अर्शशास्त्रियों ने व्यक्त की है। शुम्पीटर (Schumpeter) ने "आधुनिक आर्थिक प्रेरणा के विरोधाभास" को महत्व दिया है। विरोधाभास यह है कि प्रबन्धकों का उद्देश्य फर्म की वृद्धि है जब अंशधारियों की प्रेरणा "व्यक्तिगत और धन-सम्बन्धी" (Personal and pecuniary) होती है। दूसरी तरफ वृद्धि के लिये अविभाजित लाभ (Undistributed Profits) को बढ़ाना पड़ता है जिसके द्वारा निवेश बढ़ाया जा सके और फर्म की वृद्धि हो। गॉलब्रेथ का यह कहना है कि वृद्धि के लिये व्यक्तिगत धन-सम्बन्धी प्रेरणा का होना अनिवार्य है, अर्थात् वृद्धि और अधिकततम लाभ

में एक मूल विरोधामभास है। इस पुनरावलोकन के अन्त में मार्टिन सालटर (Martin Salter) के कथन को दोहराना आवश्यक है। सालटर के अनुसार ऐसे सिद्धांत की आवश्कता है जो व्यावहारिक हो, सामान्य तौर पर उपयोग किया जा सके, आधुनिक संगठन और अर्थ-व्यवस्था के यथार्थ पर आधारित हो और साथ-साथ परम्परागत ढांचे को ध्यान में रखता हो परन्तु कुल मिलाकर किसी विशेष फर्म की सफलता की गाथा न हो।

22.4 पेनरोज सिद्धांत

फर्म के आकार के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण यह रहा है कि किसी विशेष आकार में होने के लाभ व हानियां फर्म के वृद्धि को निर्धारित करता है। इससे ठीक विपरीत, पेनरोज के सिद्धांत में फर्म की वृद्धि को एक सामान्य जैव प्रक्रिया माना गया है। पेनरोज ने वृद्धि की प्रक्रिया को महत्व दिया है, जो कि एक निरन्तर विकास की प्रक्रिया है। इस पद्वति में फर्म का आकार द्धितीयक है और वृद्धि प्राथमिक है। फर्म वृद्धि के निहित गुणों, के कारण आकार निर्धारित हों पाता है। पिछले अंशों में जीव विज्ञान से लिये गये सादृश्यों का केन्द्र बिन्दु भी जैव वृद्धि रही है परन्तु पेनरोज के सिद्धांत और इन सादृश्यों में मूल अन्तर यह है कि इस सिद्धात में मानवीय प्रेरणा को केन्द्रीय स्थान दिया गया है, जबकि उन सादृश्यों में संगठन और मानव को कोई महत्व नही दिया गया है पेनरोंज ने अपने पद्धति में वृद्धि कों साहसी कें लाभ की खोज से जोड़ा है। "फर्म में निहित वृद्धि" (Growth inherent in the very nature of the Firm) पर बल दिया गया है।

22.4.1 वृद्धि पर प्रतिबन्ध

फर्म वृद्धि पर दों प्रकार के कारणों से प्रतिबन्ध लग सकते है। कुछ कारण फर्म के बाहर है और कुछ फर्म के स्वरूप में निहित है। इन दो प्रकार कें कारणों का मिश्रण होना भी सम्भव है। प्रतिबन्धों की व्याख्या तीन मदों के अन्तर्गत की जा सकती है।

1. प्रबन्ध की योग्यता
2. लागत व साधन बाजार
3. अनिश्चितता व जोखिम

आरम्भ के विश्लेषण में यह मान्यता है कि दोहरी प्रतिबन्ध लागु नही होता हैं। प्रथम, यह है कि पूँजी, श्रम और प्रबन्ध व्यक्तियों का अभाव नहीं हैं, अर्थात् साधनों की पूर्ति लोचदार है। द्धितीय, यह है कि वर्तमान कीमतों और ब्याज की दर पर लाभदायक निवेश के अवसर उपलब्ध है। इन परिस्थितियों में किसी फर्म के वृद्धि-पथ पर तीन प्रकार के तत्वों का प्रभाव होगा।

माने गये शर्तो के आधीन फर्म के फैलाव को रोकने वाले तत्वों का स्वरूप अर्थात् प्रबन्ध सीमा।

इन तत्वों का बदलते हुए परिस्थितियों के अधीन आयोजित फैलाव पर वास्तविक प्रभाव ।

इनसे सम्बन्धित फैलाव योजना (Expansion programme) की संरचना (Composition)

यद्यपि वर्तमान कीमत पर सभी साधन उपलब्ध माने गये है, फिर भी फैलाव पर एक सीमा होती हे। सबसे मुख्य बात यह है कि प्रबन्ध व्यक्ति बाजार में उपलब्ध होने पर भी, "अनुभवी प्रबन्धकों" का अभाव रहता है। इस विषय में समस्या यह है। कि प्रबन्धकों के दल (Team of managers) में बाहर से लाये गये प्रबन्धक आसानी से समा नही पाते है इसके फल स्वरूप प्रबन्ध के समन्वयन और कार्य कुशलता में कमी आती है। परम्परागत सिद्धांत में प्रबन्ध सम्बन्धी हानियों (Managerial diseconomics) के कारण यह समझा जाता है कि फर्म वृद्धि के साथ-साथ लागत बढ़ने लगती है और ये हानियाँ, लाभों से अधिक हो जाती है। यह विचार दो बातों पर निर्भर है प्रथम, यह है कि प्रबन्ध व्यक्ति मानव होने के नाते एक ही समय पर अलग-अलग स्थानों पर उपस्थित नही हो पाते है, इसलिये फैलाव की योजनाओं पर कोई सीमा न होने पर भी प्रबन्ध क्रिया सीमित हो जाती है। द्वितीय, यह है कि फर्म के फैलाव के साथ-साथ समन्वयन की समस्याएं बढ़ती हे। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि फैलाव की योजनाओं के साथ-साथ यदि प्रबन्ध सम्बन्धी परिवर्तन भी लाये जायें तो इस प्रकार की समस्याएं नही होगी। इसके अतिरिक्त, यदि फैलाव के साथ विकेन्द्रीकरण भी लाया जाये तो यह सम्भव हे कि वृद्धि के साथ लागत नही बढेगी। फैलाव के दौरान योजना आवश्यक है। उत्पादन के निर्णयों में और फैलाव के निर्णयों में अन्तर होता है। वर्तमान प्रबन्ध का दल ऐसे फर्म के आकार की योजना नही कर सकते है जो उनकी सीमाओं से बाहर हो। विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये प्रबन्धकों का कुछ हिस्सा योजना की प्रक्रिया में व्यस्त होगे। वर्तमान प्रबन्ध दल का दायित्व वर्तमान उत्पादन और भविष्य की योजनाएं दोनों है। एक तरफ इसके कारण फैलाव के साथ-साथ प्रबन्ध की सेवाओं को पूरी तरह उपयोग में नही लया जा सकता है। जिस समय फैलाव का कार्य सम्पन्न हो जाता है, प्रबन्ध का वह हिस्सा जो योंजनाओं में जुटा हुआ है, अन्य कार्यो के लिये उपलब्ध हो जाता है। एक स्वाभाविक प्रश्न यह है कि किसी फर्म में अतिरिक्त सेवाएं (Surplus services) कैसे उपलब्ध हों पाती है। यह कहा गया है कि नये पैमाने पर उत्पादन के साथ अन्य साधनों को उसी अनुपात में बढ़ाया जा सकता है, परन्तु प्रबन्ध की सेवाओं को पूरी तरह उपयोग करने के लिये वर्तमान क्रियाओं का स्तर उचित नही हो पाता है। तकनीकी व प्रबन्ध व्यक्तियों की एक न्यूनतम संख्या होती है, जो एक दल की तरह से कार्य करते है। सामान्य तौर पर उत्पादन का स्तर इस प्रकार का होता है जिसके कारण प्रबन्धकों को तरह से उपयोग नही किया जा सकता है। इस विश्लेषण के अनुसार फर्म वृद्धि अतिरिक्त साधनों की उपलब्धिता और वर्तमान प्रबन्ध के फैलाव को आयोजित करने की क्षमता सीमाओं निर्भर है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि फर्म का आकार लाभ व हानियों पर निर्भर नही है, बल्कि अपने भीतर छिये हुइ वृद्धि की प्रवृत्तियों पर निर्भर है।

22.4.2 अन्य प्रतिबन्ध

फर्म के बाहर पूर्ति और मांग के पक्ष में प्रतिबन्ध सम्भव है। पूर्ति के पक्ष में मुख्य समस्या यह है कि वर्तमान प्रबन्ध व्यक्ति अपने कार्य-अवधि में अनुभव प्राप्त करते है जो कि विशेष अथवा सामान्य हो सकता है। साधनों के बाजार में तकनीकी और प्रबन्ध व्यक्तियों की कमी न होने, पर भी इस प्रकार के, अनुभवी व्यक्ति उपलब्ध नहीं हों पाते है, जो वर्तमान प्रबन्ध का हिस्सा बन सके। इस अभाव के कारण फर्म वृद्धि पर एक सीमा होती है। इस स्थिति कों पेनरोज प्रभाव (Penrose effect) कहा जाता है

22.4.3 मांग पर प्रतिबन्ध

फैलाव के लिये नये वस्तुओं का विकास करना आवश्यक है। प्रबन्ध का इस विषय में जागरूक, निपुण और लोचदार होना आवश्यक है। नये बाजारों का अध्ययन करे, वे अपनी योजनएं बना सकते है। प्रबन्धकों के निपुण होने पर भी नये उत्पादन के बाजारों में अगुमव न होने के कारण फर्म वृद्धि के साथ लागत जुड़ी हुई है। इस लागत के कारण फर्म की वृद्धि पर एक सीमा होती है। इसे फैलाव लागत (Expansion Cost) कहते है। पेनरोज सिद्धांत कें अनुसार आकार "वृद्धि" को निर्धारित नही करती है बल्कि आकार "वृद्धि" को निर्धारित करती है। फर्म की विशेष परिस्थितियों के अनुसार वृद्धि होना या न होना सम्भव हो पाता है। परन्तु कुल मिलाकर फर्म के वृद्धि पर सीमाएं है जिसके कारण अनिश्चित आकार या निरन्तर वृद्धि समव नहीं है।

22.5 वृद्धि की विधियाँ

कारोबार वृद्धि निम्नलिखित विधियों द्वारा संभव है।

1. ग्रहण
2. विलय
3. बिना विलय के फैलाव

इससे पूर्व किये गये विश्लेषण में तृतीय प्रकार की विधि द्वारा विकास की व्याख्या की गयी है। भविष्य में ये विश्लेषण अन्य विधियों के बारें में भी किये जावेंगे

22.5.1 विलय बनाम ग्रहण:

विलय औंर ग्रहण (Takeover) के बीच भेद जानना आवश्यक है। विलय (Merger) को संयुक्त होना (Combine) भी कहते है।

यदि दो फर्म अपनी इच्छा से अपने अस्तित्व को संयुक्त बना ले तो उसे 'विलय' कहा जाता है। इसके विपरीत यदि एक फर्म किसी अन्य फर्म की संपत्ति और सद्भाव (Goodwill) को प्राप्त कर ले उसे 'ग्रहण' कहा जाता है। सरकार भी कमी-कभी फर्मो को ग्रहण कर लेती है परन्तु वे ऐसा प्राय: बीमार इकाइयों के विषय में किया जाता है। इसका उद्देश्य श्रमिकों के रोजगार को कायम रखना अथवा उद्योग के उत्पादन को जारी रखना होता है जो कि सामाजिक उद्देश्य है इन परिस्थितियों में ग्रहण के होने पर भी फर्म के आकार में वृद्धि नहीं होती है। कुछ परिस्थितियों में ग्रहण किये गये अनेक बीमार इकाइयों का विलय कर, उन्हें एक निगम में परिवर्तित कर दिया जाता है ऐसा होने पर एक ही समय पर ग्रहण और विलय दोनों बाते होती है और इसका परिणाम कारोबार वृद्धि भी हो सकता है।

22.5.2विलय के प्रकार :

विलय तीन प्रकार के होते है:-

1. लम्ब विलय

2. समस्तरीय विलय
3. विविधीकरण विलय

22.5.3 लम्ब विलय (Vertical Integration)

लम्ब विलय दो प्रकार के होते है:

1. अग्रवर्ती विलय (Forward integration)
2. पश्चगमन विलय (Backward integration)

उत्पादन की प्रक्रिया में आगे की दिशा में कड़ियों (Forward Linkages) होती है और इसी प्रकार पीछे की दिशा में कड़ियाँ (Backward Linkages) होती है। उदाहरण के तौर पर यदि इस्पात मिल (Steel mill) का विलय इस्पात निर्माण (Steel Fabrication) के किसी इकाई से हो तो उसे अग्रवर्ती विलय कहा जाता है। इसी प्रकार, यदि जूतों के, उत्पादक का विलय किसी चमड़े के उत्पादन की इकाई से हो तो उसे पश्चगमन विलय कहा जाता है अग्रवर्ती कड़ी में अन्तिम उत्पादन (final Product) किसी अन्य वस्तु के निर्माण में काम आती है। और इस प्रकार अनके वस्तुओं के उत्पादन में भी काम आती है। पश्चगमन कड़ी में किसी विशेष वस्तु के उत्पादन में काम आने वाला कच्चा माल उस वस्तु विशेष के उत्पादन से जुड़ जाता है। इस रूप में पश्चगमन विलय कच्चे माल की कड़ियों से सम्बन्धित है, और अग्रवर्ती विलय अन्तिम उत्पादन की अग्रणी कड़ियों से सम्बन्धित है। कूल मिलाकर इन विलयों को "लम्ब विलय" कहा जाता है।

लम्ब विलय के तीन कारण है:-

1. सुरक्षा एक महत्वपूर्ण कारण है जिससे लम्ब विलय प्रेरित होता है। अपनी वस्तु के लिये एक सुरक्षित बाजार प्राप्त करना विलय के विषय में प्रमुख उद्देश्य बन जाता है।
2. विलय कें कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन हो पाता है और इसके फलस्वरूप संयुक्त फर्म को बड़े पैमाने के बचत हासिल होते हो बड़े पैमाने के बचत चार प्रकार के होते है:-
   - i. इंजीनीयरिंग बचत
   - ii. वित्तीय बचत
   - iii. बाजारीकरण बचत
   - iv. प्रबन्ध सम्बन्धी बचत

   i. इंजीनीयरिग बचत- विलय के पुर्व अलग-अलग इकाइयों में तकनीकी अविमाजन के कारण इकाई लागत अधिक स्तर पर होते है । विलय के पश्चात् बड़े पैमाने के कारण लागत में कमी आती है, अर्थात् बचत होती है।

   ii. वित्तीय बचत: विलय के कारण फर्म के संचय लागत-(Inventory Cost) में कमी आती है। इसके अतिरक्त जोखिम कम हो जाती है। जिससे ऋण प्राणि में सरलता होती है। अधिक ऋण कम लागत पर प्राप्त हो पाता है। अन्य बचतों के कारण लाभदायकता बढ़ती है जिसके

फल-स्वरूप फर्म के ऋण की पुन: भुगतान की योग्यता (Credit worthiness) बढ़ जाती है। इससे भी वित्तीय बचत प्राप्त होती है।

iii. बाजारीकरण बचत-विलय का सीधा प्रभाव बाजारीकरण सम्बन्धी प्रबन्ध व्यय पर होता है और इसमें कमी आती है। इसके अतिरिक्त विज्ञापन व्यय और अन्य विक्रय लागतों में भी अनुपात से अधिक कमी आती है।

iv. प्रबन्ध सम्बन्धी बचत-फर्म के आकार में वृद्धि के साथ देख-रेख (Supervision) का व्यय कम हो जाता है और स्थिर व्यय (overhead cost) में कटौती होती है।

3. संयुक्त फर्म के बड़े आकार के साथ बाजार पर उसका नियंत्रण बढ़ जाता है और प्रतिद्वन्दी फर्म (Rival Firms) का बाजार में प्रवेश करना कठिन हो जाता है। इन परिस्थितियों में विलय से फर्म की बाजार शक्ति में वृद्धि हो जाती है।

लम्ब विलय कें कई प्रभाव होते है-सकारात्मक प्रभाव, लागत में कमी और कुशलता में वृद्धि है। इसके कारण अधिक पूर्ति की सम्भावना होती है और कीमतें भी कम हो सकती है। ऐसा होंने पर उपभोक्ताओं को लाभ पहुँचता है। दूसरी ओर आकार में वृद्धि के साथ यदि भीतरी समन्वयन जटिल हो जाये तो कुशलता में कमी भी आ सकती है। कुल प्रभाव सकारात्मक होगा या नकारात्मक, यह अन्य बातों पर भी निर्भर करता है। इस संदर्भ में बाजार शक्ति का दुरूपयोग न होना आवश्यक है, अन्यथा उपभोक्ता का शोषण उत्पादन बाजार द्वारा सम्भव है और साधनों का शोषण श्रम बाजार में एकाधिकार के कारण हो सकता है।

22.5.4 समस्तरीय विलय

समस्तरीय विलय में एक ही उत्पादन बाजार में विक्रय करने वाले फर्म आपस में जुड़ जाते है। यदि ऐसे फर्मो का विलय हो जिनके पुर्जे और कच्चा मात्र एक ही प्रकार के हों, तो उस विलय को 'पार्श्विक् विलय (Lateral) कहते है।

समस्तरीय विलय के कारण निम्नलिखित है-

i. धन सम्बन्धी बचत
ii. स्थिर लागत
iii. तकनीकी तत्व
iv. बाजार शक्ति

आदानों की लागत में कटौती होती है जिससे अधिक लाभ कमाया जा सकता है। अधिक लाभ से पुन: भुगतान की योग्यता बढ़ती है और ऋण की लागत कम होने की सम्भावना होती है।

विभिन्न प्रकार के स्थिर व्यय, जैसे प्रबन्ध व्यय, शोध और विकास व्यय आदि बँट जाते है और औसत लागत में कमी आती है। उत्पादन के मिश्रण (Rationalization of product mix) को अधिक उचित बनाया जा सकता है। आकार में वृद्धि के साथ विशेषीकरण बढ़ती है और उसके फलस्वरूप कार्यकुशलता में भी वृद्धि होती है।

लम्ब विलय की भांति विलय के पश्चात् संयुक्त फर्म का आकार अधिक हो जाता है और इससे फर्म की शक्ति बढ़ जाती है। प्रतिद्धदियों का बाजार मे प्रवेश कठिन हो जाता है। समस्तरीय विलय के प्रभाव अलग-अलग प्रकार के है। इसका लाभदायक पहलू यह है कि लागत में कमी अती है, तकनीकी सुधार होता है और कुशलता बढ़ती है परन्तु बाजार शक्ति बढ़ने से अपभोक्ताओं और साधनों का शोषण समस्तरीय विलय में लम्ब विलय से अधिक तीव्र होता है।

22.5.5विविधीकरण विलय

इस प्रकार के विलय में गैर सम्बन्धित फर्मो का आपस में विलय होता है। विलय के पूर्व उनका कार्य क्षेत्र अलग-अलग बाजारों में होता है। और सामान्य तौर पर विलय कें पश्चात, वे दोनों बाजारों में विक्रय करते है। विविधीकरण विलय का मुख्य कारण यह है कि इसे नई वस्तुओं के विकास का विकल्प माना जाता है। अपने परिश्रम या शोघ व विकास कार्य द्वारा नव परिवर्तन लाने के बजाय, किसी ऐसे फर्म के साथ विलय किया जाता है, जो किसी अन्य वस्तु का उत्पादन कर रहा हो। विविधीकरण विलय और नव परिवर्तन द्वारा विकास की शर्तो में भेद जानना आवश्यक है।

नव परिवर्तन की शर्ते :

1. इस प्रकार के विकास के लिये प्रबन्ध का प्रबल होना और उचित देख-रेख की आवश्यकता है। ऐसा न होने पर उचित ढंग से और समय पर नव परिवर्तन नही हो पाता है।
2. नव परिवर्तित वस्तुए इस प्रकार की होनी चाहिये जो फर्म के वर्तमान ढाँचे में समा सके।
3. विविधीकरण विलय उन वस्तुओं के विषय में सम्भव नही है, जिनका उत्पादन पहले कभी नहीं हुआ हो। ऐसी नवीनतम वस्तुओं का विकास केवल भीतरी शोध और नव परिवर्तन द्वारा सम्भव है।

विविधीकरण विलय की शर्ते:

1. नयी वस्तु के उत्पादन में अनुभव अथवा सद्भाव न होने पर फर्म की यह प्रवृत्ति होगी कि वह किसी अन्य ऐसी फर्म से विलय करे जो इस नयी वस्तु के उत्पादन में सक्षम हो।
2. विलय योग्य फर्मो के ढांचों का आपस में अनुकूल होना बहुत आवश्यक है।
3. विलय की आवश्यकता उन परिस्थितियों में हो सकती है जब नयी वस्तु का विकास कार्य विद्यमान प्रबन्ध के नियंत्रण के बाहर हो।

विविधीकरण विलय के प्रभाव

सामान्य तौर पर विविधीकरण के नकारात्मक प्रभाव नहीं होते है क्योंकि वह अलग-अलग बाजारों में विद्यमान है। विलय के पश्चात् अन्य प्रकार के विलय की भांति, स्वयं ही बाजार शक्ति नहीं बढ़ती है। सकारात्मक प्रभाव यह है कि खोज और विकास व्यय में कमी आने की सम्भावना होती है और प्रबन्ध का ढाँचा व आकार उत्तम हो जाता है।

22.6 निष्कर्ष :

परम्परागत सूक्ष्म अर्थशास्त्र का केन्द्र बिन्दु पूर्णत : प्रतियोगी फर्म का स्थैतिक विश्लेषण रहा है। कारोबार वृद्धि एवं विलय का सिद्धांत कई नये पहलुओं पर प्रकाश डालता है जो परम्परागत सिद्धांत के केन्द्र बिन्दु से बाहर है। मूल प्रश्न यह उठाया गया है कि क्या फर्म की वृद्धि और आकार पर कोई सीमा होती है? परम्परागत अर्थशास्त्र के विचार के विरूद्ध आधुनिक व्यावहारिक अथवा प्रबन्ध सिद्धांतों का उत्तर नकारात्मक है परन्तु गतिशील विश्लेषण में यह देखा गया है कि अन्त में सीमा स्वयं ही निर्धारित हो जाती है। फर्म बुद्धि की अन्य विधियां विलय में पायी जाते है। इस अध्ययन के क्षेत्र में कई और महत्वपूर्ण विषय है जैसे-फर्म का विविधीकरण और समानगति वृद्धि (Steady state growth) कारोबार वृद्धि के अनेक पहलुओं को जोड़ते हुए कई मॉडल बनाये गये है। परन्तु इनका अध्ययन भी इस इकाई के विषय क्षेत्र के बाहर है।

22.7 अभ्यास

प्र01. कारोबार वृद्धि के क्षेत्र में धारणाओं और जीव विज्ञान के सादृश्यों का स्पष्टीकरण, समानता द्वारा कीजिये।

प्र02. संक्षिप्त में "पेरनोज प्रभाव" की व्याख्या कीजिये।

प्र0 3. निम्नलिखित कथनों को समतुल्य बनाइयें

लम्ब विलय	अलग बाजारों में कार्य क्षेत्र
समस्तरीय विलय	उत्पादन प्रक्रिया में कड़ियां
विविधीकरण विलय	एक ही बाजार में कार्य क्षेत्र 318

22.8 शब्दावली (Glossary)

जैव क्रमिक विकास (Organic Evolution)- आदि काल के जीवाणुओं से वर्तमान समय तक प्राणियों में विकास की प्रक्रिया।

प्रकार (Species)- प्राणियों के मूल वर्गो के भीतर विशेष वर्ग जैसे-बिलनी परिवार के भीतर शेर, बाघ आदि।

नव परिवर्तन (Innovation)- उत्पादन प्रक्रिया में नई विधियों द्वारा लागत में कटोती अथवा नये वस्तुओं का विकास।

निहित (Intrinsic or internal)-किसी इकाई के भीतर या उसके स्वरूप में छुपा हुआ गुण।

अन्तिम उत्पादन (Final product)-कच्चे माल के उपयोग से विनिर्मित वस्तु।

बाजार शक्ति (Market Power)- एकाधिकार की शक्ति।

विविधीकरण (Diversification)-एक विशेष फर्म का अनेक वस्तुओं के उत्पादन की ओर फैलाव

सद्भाव (Goodwill)- किसी फर्म का नाम, पहचान और उसकी वस्तुओं का बाजार में स्थान।

22.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

"Edith T. penrose, Growth of the Firm, Middle East Oil Companies and other Essays, Chapter-1 (Review)

Benjamin Wall, Managerial Economics, M & E Professional Studies, London,1985, PP 225-258. (Integration).

Edith T. Penrose "Biologocal Analogies in the theory of the Firm" American Economic Review, Vol. XI.II No. 5. Dec. 1952, pp 804-819.

Edith T. Penrose, Theory of the Growth of the Firm, Foreward and other chapters (Penrose's Theory).

William J. Baumol Economic Theory and Operational Analysis, II Edition, Chapter- III, (objectives of the Firm).

22.10 अभ्यास के उत्तर

उ01. जीवन क्षमता विश्लेषण में कारोबार वृद्धि के क्षेत्र में नव परिवर्तन, सकारात्मक लाभ और नकल की तुलना जीव विशन के इन समान धारणाओं से की गई है। अपेक्षित परिवर्तन, प्राकृतिक चयन और जननिक आनुवंशिकता।

उ02. फर्म वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान अगुभवी प्रबन्ध व्यक्तियों का अभाव होता है, यद्यपि सभी साधनों की उपलब्धता पूर्णत: लोचदार मानी गई है, और इसके फलस्वरूप फर्म वृद्धि से लागत जुड़ी हुई है जो फर्म के आकार पर प्रतिबन्ध लगा देती है इस भीतरी प्रतिबन्ध को "पेनरोज प्रभाव" कहते है।

उ03.	लम्ब विलय	उत्पादन प्रक्रिया में कड़ियाँ
	समस्तरीय विलय	एक ही बाजार में कार्य क्षेत्र
	विविधीकरण विलय	अलग बाजारों में कार्य क्षेत्र

इकाई – 23

क्षमता उपयोग की धारणा

The Concept of Capacity Utilization

इकाईयो की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

23.1 परिचय

23.2 क्षमता उपयाग ओर लागतें

23.2.1 अल्पकालीन

23.2.2 दीर्घकालीन

23.3 क्षमता उपयोग ओर बाजार के प्रकार

23.3.1 बाजार के प्रकार

23.3.2 पूर्ण प्रतियोगिता

23.3.3 एकाधिकारी प्रतियोगिता

23.3.4 एकाधिकारी

23.4 पूँजी उपयोग का सिद्धान्त

23.4.1 परिचय

23.4.2 अप्रयुक्त पूँजी के कारण

23.4.3 ताल अनुसार आगत मूल्य

23.5 अतिरिक्त क्षमता पुनरावलोकन

23.5.1 अप्रयुक्त पूँजी का आकार

23.6 निष्कर्ष

23.7 अभ्यास प्रश्न

23.8 शब्दावली

23.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

23.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

इस इकाई का निर्माण विद्यार्थियों को निम्नलिखित धारणाओं से अवगत कराने हेतु किया गया है:

1. अल्कालीन और दीर्घकालीन लागतों और क्षमता के उपयोग के बीच सम्बन्ध
2. बाजार के विभिन्न प्रकारों में अतिरिक्त क्षमता की धारणा
3. प्रत्याशित और यथार्थ तत्व
4. आगत मूल्य और क्षमता उपयोग
5. पूर्ण क्षमता ओर अतिरिक्त क्षमता

23.1 प्रस्तावना

इस इकाई की विषय-वस्तु को समझने के लिये विद्यार्थियों की निम्नलिखित धारणाओं से अवगत होना आवश्यक है

1. अस्थिर और परिवर्तनशील पूँजी
2. अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागत वक्र रेखाएं
3. पैमाने का प्रतिफल
4. लाभ अधिकतमकरण की शर्ते
5. विभिन्न प्रकार के बाजारों में संतुलन
6. प्रत्याशित और यथार्थ निर्णय
7. उत्पादन समोत्पाद और आगत मूल्ये।

इस इकाई को मुख्य रुप से तीन भागों में बांटा जा सकता है, यथा

1. लागत वक्र और क्षमता उपयोग,
2. बाजार के प्रकार और क्षमता उपयोग तथा,
3. क्षमता उपयोग में नवीन विकास।

23.2 क्षमता उपयोग और लागतें

जैसा कि आप जानतें है, फर्म के साथ दो प्रकार के होते है- अल्कालीन और दीर्घकालीन। अल्पकालीन अवधि से अभिप्राय : है, जिसमें कम से कम उत्पादन का साधन यथा-पूँजी, स्थिर या अंशत : स्थिर रहता है। पूँजी, उत्पादन में प्रयुक्त संयंत्र, उपकरण, भवन आदि है। जिस सीमा तक स्थिर पूँजी का उपयोग होता है, उसे क्षमता उपयोग कहते है। उसे पूँजी उपयोग भी कहते है। इसी प्रकार उत्पादन करने की पूरी क्षमता का पूर्ण उपयोग न हो रहा हो तो इसे क्षमता का अपूर्ण उपयोग या अप्रयुक्त पूँजी कहते है।

23.2.1 अल्पकालीन

अल्पकाल में जब सीमांत लागत वक्र ऊपर उठ रही हो तो, मांग में कमी और परिणामत: बाजार मूल्य या सीमांत आगत में इस के परिणामस्वरुप उत्पादन के एक निचले स्तर पर लागत और आगत मे समानता

उत्पन्न होगी। इसे अस्थाई साम्य कहते है। चित्र 23.1 अस्थायी साम्य की स्थिति में अतिरिक्त क्षमता का अस्तित्व समझाता है।

अल्पकाल में पूँजी की मात्रा स्थिर रहती है। परिवर्तनशील साधन, श्रम, के सयोग की बदलकर अल्कालीन लागत वक्र 'यू' आकार ('U' shape) प्राप्त करता है। चित्र 23.1 में (SRUCO) का अर्थ है 'O' अवधि मे अल्कालीन इकाई या औसत लागत (Short Run Unit Cost at period 'O')। यह साधन के हासशील प्रतिफल का विवरण है। साधारणत: दीर्घकालीन लागत वक्र भी 'U' आकार की होती है। यह एक "प्रच्छद वक्र" होती है। जो समस्त अल्पकालीन इकाई लागत वक्रों को जो विभिन्न संयंत्रो या उत्पादन के विभिन्न पैमानों से सम्बन्धित है नीचे वाले हिस्से में छूती है (यह आवश्यक नही है कि यह न्यनतम बिन्दु पर छुए ही)। यदि यह मान लें कि पैमाने का स्थिर प्रतिफल क्रियाशील हो रहा है तो दीर्घकाल लागत वक्रों का दाल शून्य हो जाता है और वे 'X' अक्ष के समानान्तर हो जाती हैं। (इकाई 21 का चित्र 21.1 देखे) वास्तव मे व्यावहारिक लागत वक्र एक वक्राकार 'L' जैसी होती है। यदि टीर्घकालीन औसत लागत LAC ($LRUC_0$) शून्य अवधि मे दीर्घकालीन इकाई लागत चित्र 23.1 देखें) को प्रत्येक अवधि या संयंत्र के सम्बन्ध में स्थिर दरों पर देखा जावे तो वह सीधी होगी।

उत्पादन के yo^0 स्तर पर $SRUC_0$ रेखा CO^0 के न्यूनतम बिन्दु पर पहुच जाती है। उत्पादन का यह स्तर फर्म के उत्पादन की क्षमता का 'रतर' कहलाता है। सामान्य U आकार वाली दीर्घकालीन लागतों के साथ अल्कालीन लागत वक्र पर यह बिन्दु बेकार होता है। क्योंकि अल्पकालीन और दीर्घकालीन वक्रों का स्पर्श न्यूनतम बिन्दु के बाई ओर होगा। यह उत्पादन का स्तर YO^0 पर रखना है तो कारखाने को अपने अर्द्ध-स्थाई आगतों, जेंसे - पूँजी की मात्रा बदल उत्पादन की तकनीक बदलने के लिए कोई आर्थिक प्रेरणा नही मिलेगी। इसके विपरीत यदि उत्पादन का स्तर इस स्तर से ऊंचा है तो फर्म-पूजी के स्टॉक मे वृद्धि कर इकाई लागतों को कम करेगी। जिससे उसकी अल्कालनीन लागतें एक नये स्तर पर सरकेंगी (चित्र 23.1 में SRUC) जो नीचा होगा और जहां एक बड़े हुए उत्पादन स्तर पर इकाई लागत (CO^0) का वही स्तर प्राप्त होगा। यह YO_1 के आगे होगा जो बड़े पूँजी स्टाक का न्यूनतम लागत उत्पादन है।

सरलता हेतु हम मान लेते हैं कि प्रत्याशित आशाएं वास्तविक हो जाती है। ऐसी स्थिति में क्षमता उपयोग की दर को वास्तविक उत्पादन को क्षमता उत्पादन से विभाजित कर परिभाषित किया जा सकता है।

एक महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि जब भी 'Y''YO' से बड़ा होगा तो न केवल U एक से अधिक होगा ZK पूँजी का किराया-छाया मूल्य PK पूँजी के बाजार मूल्य से अधिक होगा। इस प्रकार कि OK=ZK/PK.

इसका अर्थ है कि जब U एक से बड़ा है तो QK भी 1 से बड़ा होगा, और यदि U एक गे छोटा है तो QK भी 1 से छोटा होगा और यदि U एक के बराबर है (YO^0 पर) तो दोनों U और QK इकाई के बराबर होगे। इसका अर्थ है कि पूँजी की व्यक्तिगत और सामाजिक लागत (छाया मूल्य) बराबर होते है और साधनों का गलत निर्धारण नही हो सकता। निजी साहसी बाजार मूल्य से निर्देशित होते है, छाया

मूल्यों से नही । दोनो में कोई भी अन्तर बाजार में गलत संकेतों के कारण गलत निर्धारणो (Misallocations) को जन्म देना ।

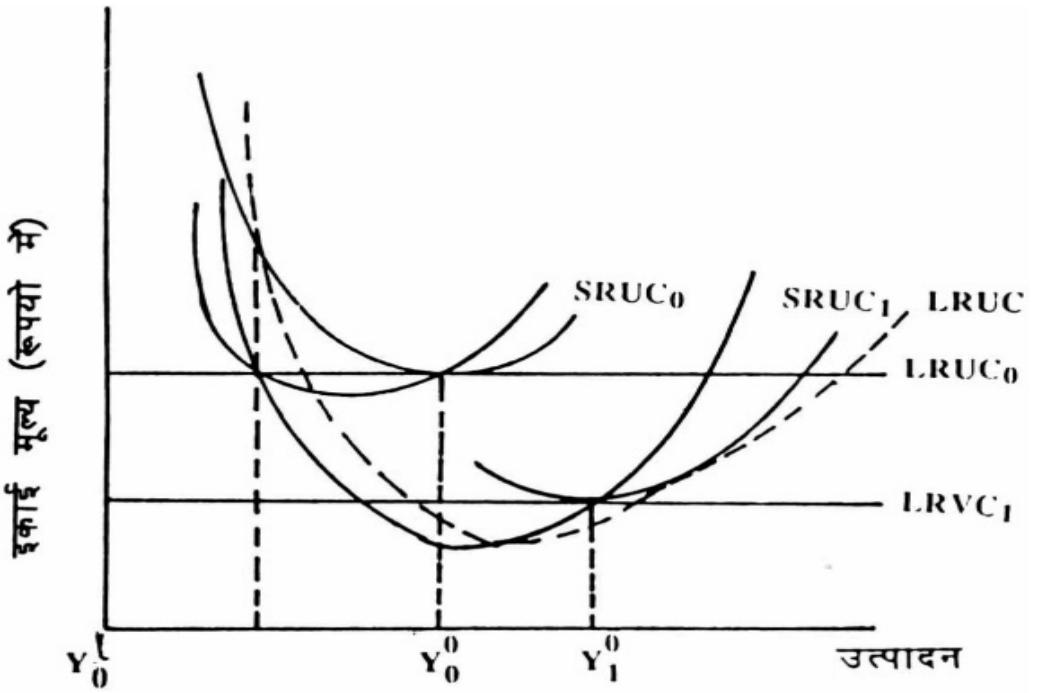

चित्र 23.1

23.2.2 दीर्घकालीन

LRUC अथवा LAC को चित्र-23.1 चित्र मे टूटन रेखा (Dotted lines) द्वारा दिखाया गया है। प्रच्छद वक्र $SRUC_0$ को Yo^1 मात्रा में उत्पादन स्तर पर छूती है। तब लागत Co^1 है जो न्यूनतम (CO^0) नही हैं। YO^0 उत्पादन का न्यूनतम लागत स्तर प्राप्त नही होता क्योकि उत्पादन की अगले संयंत्र पर स्थानान्तरित कर दिया जाता है। अब $Y1^0$ पर साधानों का न्यूनतम लागत सयोग उपलब्ध हो जाता है। यह "उत्पादन का सर्वोतम क्षमता स्तर" है। यहा भी QK=U=1 यह दर्शाता है कि सामान्य सन्तुलन की स्थिति में यदि लागत वक्र U आकार की हो तो अल्पकाल मे साधना के अनुचित उपयोग के कारण अक्षमता की स्थिति हो सकती है। परन्तु दीर्घकाल मे ऐसा नही होगा। अल्पकाल में पूँजी की क्षमता से कम उपयोग हो सकता है पर दीर्घकाल में सर्वोत्तम उपयोग होगा यदि अस्थिर असन्तुलन के कारण उत्पादन $Y1^0$ से अधिक होता है तो अधिक उत्पादन के कारण कार्यक्षमता घटेगी और LAC CO^0 बिन्दु के ऊपर स्पर्श करेगी (सम्बन्धित SRUC नही दिखाई गई है)। नये साम्य में यद्यपि उत्पादन न्यूनतम स्तर पर होगा। चूंकि U एक से बड़ा है और QK एक से बड़ा है, साधनों का अनुचित उपयोग होगा।

ध्यान रखने योग्य महत्वपूर्ण बिन्दु (भाग 23.4 में आगे का संदर्भ) यह है कि क्षमता के सर्वाधिक या पूर्ण प्रयोग वाला बिन्दु आवश्यक रूप से उत्पादन का वांछित स्तर नहीं होता (लागत और साधन उपयोग के दृष्टिकोण से)।

23.3 क्षमता उपयोग और बाजार के प्रकार

लागत वक्रों और पूँजी उपयोग का सम्बन्ध देखने के बाद हम उपयोग के अन्य महत्वपूर्ण प्रभावक्र अर्थात् बाजार के स्वभाव पर ध्यान देगे।

23.3.1 बाजार के प्रकार

बाजार में प्रचलित परिस्थितियों, जिनमें उत्पादक कार्यशील होते है यहां बाजार के विभिन्न प्रकार परिभाषित किये गए है। निम्नलिखित तालिका 23.1 में बाजार के विभिन्न प्रकार सक्षेप में वर्णित किये है:

तालिका 23.1 मे बाजार के प्रकार : तुलना

बाजार का प्रकार परिस्थितियां	पूर्ण प्रतियोगिता	एकाधिकार प्रतियोगिता	एकाधिकार
क्रेताओं की संख्या एवं विक्रेताओं की संख्या	क्रेताओं और विक्रेताओं की अधिक संख्या	क्रेताओं और विक्रेताओं की अधिक संख्या	अनेक क्रेता एक विक्रेता
उत्पादन	सभी उत्पादकों द्वारा समान उत्पादक	हर उत्पादक का विभिन्न उत्पाद	एक उत्पाद। प्रस्तिस्थापक नही
बाजार में प्रवेश	दीर्घकाल में नये उत्पादकों को स्वतंत्र प्रवेश	पूर्ण प्रतियोगिता के समान	प्रवेश नही

23.3.2 पूर्ण प्रतियोगिता

विभिन्न बाजार परिस्थितियों में उत्पादन के साम्य की तुलना चित्र-23.2 में दर्शायी गई है।

1. पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकालीन साथ बिन्दु E पर होता है। व्यक्तिगत विक्रेता मूल्य को बदल नही सकता परन्तु दिये हुए मूल्य पर कितनी भी मात्रा बेच सकता हैं। (AR3=MR3) ऐसा होनें के कारण लाभ अधिकतम करने का बिन्दु OY1 है जहां सीमांत लागत MC सीमांत लागत MR के बराबर है। मूल्य या औसत लागत $E'Y'_1$ है और औसत लागत $S'Y'_1$ है। अत: E'S' लाभ अधिसामान्य है। यद्यपि OY_1 पर साम्य की स्थापना होती है, अल्पकालीन लागत (दिखाई नही है) ऐसे स्तर पर होगी जो उत्पादन के अल्पकालीन क्षमता स्तर से ऊंचा होगा। उत्पादन का एक उच्चतर स्तर भी क्षमता के सर्वश्रेठ उपयोग को सुनिश्चित नह करेगा। उत्पादन OY^0_1से अधिक है जहां दीर्घकालीन लागत न्यूनतम है और क्षमता प्रयोग की दर $'V^{1}'$-1 है।

2. दीर्घकाल में, पूर्ण प्रतियोगिता में, बाजार में स्वतंत्र प्रवेश होता है। सामान्य लाभ जो लागत में शामिल है, के ऊपर प्राप्त अधिसामान्य लाभ जो मौजूदा उत्पादकों को मिल रहा है, अन्य उत्पादकों को बाजार में

आकर्षित करता है। जब इनकी संख्या बढ़ती है तो बाजार की पूर्ति बढ़ती है (बाजार के मांग व पूर्ति वक्र नही दर्शाए गए है) और मूल्य OP_0 तक गिर जाता है। OP मूल्य साम्य E पर स्थापित होता है। । E दीर्घकालीन साम्य बिन्दु है जो $MC=MR_0$ दर्शाता है। यहां उत्पादन का न्यूनतम लागत पैमाना क्रियाशील है। क्षमता उपयोग की दर एक के बराबर है। $Y_1^{0'}$ के दोनों ओर उत्पादन का स्तर सर्वोत्तम के समान है। यह लागत वक्र और बाजार के प्रकारों को ध्यान में रखते हुए क्षमता उपयोग के दृष्टिकोण से उत्पादन का आर्दश स्तर है। प्रचलित अर्थ में E पर सन्तुलन उत्पादन का उच्चतम स्तर दर्शाता है, OY_1से नीचे उत्पादन का कोई भी स्तर अतिरिक्त क्षमता की उपस्थिति को दर्शाता है। इस संकेत से $Y_1^{O}Y_1$ को क्षमता के न्यून उपयोग के रूप में समझा जाना चाहिए। इस प्रकार उत्पादन की सामर्थ्य क्षमता OY_1 है, और उत्पादन का वास्तविक स्तर OY^0_1 है। ऐसी धारणा इस तथ्य को भुला देती है कि क्षमता का उपयोग पूँजी जैसे अल्प साधन के उपयोग का आर्थिक प्रश्न है। भौतिक उत्पादन के रुप में संयंत्र के क्षमता उपयोग का यांत्रिक प्रश्न नही है। उत्पादन का सर्वोतम स्तर OY^0_1 है। अत: उपयोग क्षमता का उत्पादन के ऐसे स्तर के सम्बंध में परिभाषित किया जाना चाहिए) यह स्थिति दीर्घकाल में भी नही बदलती, यदि लागत वक्र उत्पादन का क्षमता स्तर दर्शनी वाली अल्पकालीन लागत वक्रों के न्यूनतम बिन्दुओं को स्पर्श करे (चित्र-23.1 देखें) । अत: निष्कर्ष यह है कि पूँजी उपयोग के सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार के बाजारों में समुचित तुलना पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकालीन साम्य द्वारा करनी होगी ।

23.3.3एकाधिकारी प्रतियोगिता

चेम्बरलिन और श्रीमती जोन राबिन्सन ने अपने-अपने सिद्धान्त बनाये जिन्हें 'एकाधिकार प्रतियोगिता ' और अपूर्ण प्रतियोगिता कहा जाता है । वर्तमान विश्लेषण मुख्यत: चेम्बरलिन के सिद्धान्त पर आधारित है । उनका बिश्लेषण मुख्यत: चार मान्यताओं पर आधारित है जो इस प्रकार है

1. बाजार में स्वतंत्र उत्पादकों की एक बड़ी संख्या कार्यशील होती है जिनके उत्पाद भिन्न नहीं होते परन्तु गुण, पैकिंग, भौगोलिक स्थिति, रुचि और रिवाज की दृष्टि से भिन्नता की जाती है ।

2. उपभोक्ताओं की पसन्दगियां समान रूप से वही रहती है जिससे हर व्यक्तिगत फर्म समान रुप से प्रभावित होती है ।

3. किसी भी उत्पादक का संस्थागत एकाधिकार नहीं होता जैसे किसी ट्रेड मार्क का पेटेन्ट जिससे दीर्घकाल में प्रवेश प्रतिबन्धित हो जाता है ।

4. सभी उत्पादको की मांग और लागत वक्र समान होती है । LAC वक्र एक बिन्दु तक नीचे गिरती है ।

एकाधिकारी प्रतियोगी उत्पादक के लिये मांग वक्र AR_1 नीचे की ओर गिरती हुई होती है । सीमांत आय MR,AR से हमेशा आधी होती है और औसत आगम रेखा नीचे होती है । हर व्यक्तिगत उत्पादक की मांग वक्र दूसरे उत्पादकों से स्वतंत्र होती है । उपभोक्ता की पसन्दगी इस प्रकार समान रुप से वितरित होती है कि मांग में कोई भी कमी सभी उत्पादकों को साथ-साथ प्रभावित करती है । यद्यपि लागत वक्र की रेखाएं समान होती है, नये प्रवेशकर्ता अपने उत्पाद की मांग बढ़ाने हेतु विक्रय लागतें (विज्ञापन लागतें) बढ़ाते है इससे दीर्घकाल में लागत बढ़ती है । मांग वक्र समान होती है परन्तु उत्पादन अपने उत्पाद को

अलग करने के लिये पैकिंग और गुण के अन्तर कर सकता है । वह एक सीमा तक अपने उत्पाद का मूल्य निर्धारित कर सकता है। भौगोलिक स्थिति, रीति रिवाज और आदत के कारण अधिमान मूल्य के ऊपर कुछ नियंत्रण प्रदान करता है। इस अर्थ में वह एक स्वतंत्र उत्पादक है (पूर्ण प्रतियोगित के असदृश) । अलबत्ता शुद्ध एकाधिकार की तरह उसे मूल्य निर्धारण पर पूर्ण अधिकार नही होता।

1. अल्पकाल में उत्पादक का साम्य P पर परिभाषित होता है जहां (MR_1=MC चित्र 23. 2 में) और मूल्य OP_1 है। अल्पकालीन लागत (दिखाई नही हैं) YO'S है। और अधिसामान्य लाभ SPहै। उत्पादन OY^0 है जो Y^0_1 सर्वोत्तम उत्पादन स्तर से कम है। यहां स्पष्टत: OY^0 Y^0_1 अतिरक्त क्षमता है। S बिन्दु पर दीर्घकालीन लागत वक्र सम्बन्धित अल्पकालीन वक्र (दिखाई नही है) को ऐसे बिंदु पर स्पर्श करती है जो निम्नतम बिन्दु के बांई ओर है। क्षमता उपयोग की दर 1 से कम है और QKभी एक से कम है। अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों मे उत्पादन का अक्षम व अकुशल स्तर है।

2. दीर्घकाल में स्थिति अधिक जटिल होती है। दीर्घकाल साम्य को समझने हेतु हमें पूर्ण प्रतियोगिता में बाजार शक्तियों की क्रियाशीलता देखनी होगी । उदाहरणार्थ एक पूर्ण प्रतियोगी बाजार में मांग में अल्पकालीन बुद्धि अधिसामान्य लाभ उत्पन करती है (E^1 पर) शीघ्र ही नये उत्पादक आकर्षित होता है । वे बाजार में प्रवेश करते है, पूर्ति बढ़ती है और मूल्य AR_3 से गिरकर AR_0 हो जाता है। इससे E पर सामान्य लाभ में स्थिति उत्पन्न होती है। अब नये उत्पादक आकर्षित नहीं होते और उत्पादन OY^0_1 पर सर्वोत्तम स्तर पर आ जाता है। एकाधिकारी प्रतियोगिता में अल्पकाल में P_1 पर अधिसामान्य लाभ उत्पन्न होता है। इससे नये उत्पादक आकर्षित होते है। उपभोक्ता के अधिमान सम रुप से वितरित होते है । जिससे नये उत्पादक कम प्रभावित होते है। पहले से, विद्यमान उत्पादन की मांग घट सकती है (AR_1 से AR_2)। अब नया साम्य N पर है, उत्पादन OY_1 है, मूल्य OP_1 है और औसत लागत Y^1OWहै जो AR_2 के बराबर है और कोई अधिसामान्य लाभ नही है। यद्यपि यह स्पर्श का बिन्दु है और दीर्घकालीन साम्य को दर्शाता है, पूर्ण प्रतियोगिता के असदृश्य न अल्पकाल में और न दीर्घकाल में वह सक्षम उत्पादन को दर्शाता है।

सबसे खास बात यह है कि अब उत्पादन OY^O_1 है जो अल्पकाल से भी कम है। अधिकांशत: अतिरिक्त क्षमता दीर्घकाल में अल्पकाल की अपेक्षा अधिक होती हैं। ($Y^1OY^OYO_1$>YO^0Y_1) पूर्ण प्रतियोगिता की तरह बाजार के इस प्रकार में बाजार शक्तियां सन्तुलन नही होती है । लाभ के स्तर में गिरावट उत्पादको को बाजार छोड़ने के लिए मजबूर नही करती, वे बाजार के एक छोटे भाग को वस्तु विभेद और विज्ञापन द्वारा प्रभावित कर सकते है। इससे अन्तत: उनकी स्थिति बिगड़ती है क्योंकि लागतें बढ़ जाती है। फिर भी हर उत्पादक स्वतंत्र होता है और पूर्ण प्रतियोगिता की तरह मूल्य स्वीकार करने वाला नही होता। अक्षम फर्मे कार्यशील रहती है। परिणामत: बाजार में अक्षम और सक्षम उत्पादकों का सम्मिश्रण होता है। सामूहिक रूप से बाजार में अक्षमता और अतिरिक्त उत्पादन क्षमता उत्पन्न होती है। सब उत्पादक स्वयं को स्थापित क्षमता से कम का प्रयोग करते हुए पाते है।

उनका लाभ घटता है और उन्हे कम क्षमतावान संयंत्र का आकार ग्रहण करना पड़ता है। विक्रय लागत भी लाभ सीमा को घटाती है । इसके बावजूद भी उत्पादको की अधिकता जारी रहती है और एकाधिकारी प्रतियोगिता में क्षमता आधिक्य के निर्माण की स्थिति बनी रहती है।

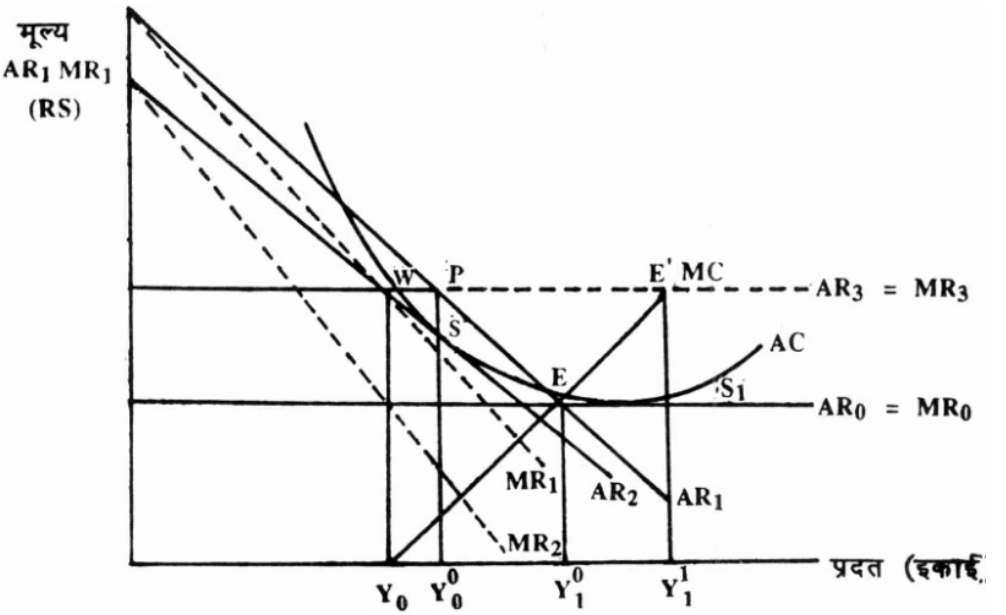

चित्र 23.2

23.3.4 एकाधिकार

एकाधिकार में मांग और लागत वक्रों का स्वभाव एकाधिकारी प्रतियोगिता के समान ही होता है । सुविधा के लिये हम मान लें कि अल्पकाल में एकाधिकार का साम्य P बिन्दु पर उत्पन्न होता है। यहां एकाधिकार को SP के बराबर अधिसामान्य लाभ होता है। यहां मूल्य OP_1 है और उत्पादन Y^0_0 है। एकाधिकार के उत्पादन की मांग बेलोच होती है, एकाधिकार प्रतियोगिता वाले उत्पादंक के सन्दर्भ में ऐसा नहीं होता। चूंकि उसके उत्पाद का कोई प्रतिस्थापक नही होता और दीर्घकाल में कोई प्रवेश नहीं होता, एकाधिकारी के सम्बन्ध में अल्पकाल और दीर्घकाल में कोई भेद नहीं होता, विशेषकर बाजार शक्तियों की क्रियाशीलता के सन्दर्भ में। अन्य बातें समान रहते पर, दीर्घकाल में एकाधिकारी की स्थिति भिन्न होती है क्योंकि तकनीकी प्रगति और पैमाने की मितव्ययिता के कारण दीर्घकाल में लागत गिर सकती है । यदि इससे तकनीकी क्षमता हो तो भी एकाधिकारी OY^0_1 (पूर्ण प्रतियोगिता में सर्वोत्तम उत्पादन) से कम उत्पादन करेगा। इस अर्थ में एकाधिकार में अवधि के अपरिप्रेक्ष्य में हमेशा अतिरिक्त क्षमता बनी रहती है। आवश्यक रुप से एकाधिकारी ऐसे लागत पर क्रियाशील रहेगा जहां U और QK दोनों एक से कम हो। यह साधनों के अनुचित उपयोग का प्रतीक है।

उपर्युक्त विचार-विमर्श से यह स्पष्ट हो जाता है कि लागतों और बाजारों के प्रकार इन दोनों दृष्टिकोणो से "क्षमता उपयोग" सिर्फ "कितना उत्पादन किया जा सकता है इसकी तुलना में कितना उत्पादन किया जा

रहा है" का प्रश्न नही है । क्षमता अधिक्य की मात्रा विभिन्न बाजारों में अलग-अलग होंती है और एकाधिकरी प्रतियोगिता की स्थिति में सर्वाधिक होती हैं ।

23.4 पूँजी उपयोग का सिद्धान्त

पूँजी उपयोग का वर्तमान सिद्धान्त सचमुच में ऐसे तत्वों (जैसे-दिनों, रातों, मौसमों और लोगों द्वारा सामान्य घंटों में काम करने की पसन्द आदि) का समावेश करता है जबकि पूँजी उपस्कर का कोई समय अधिमान नहीं होता । हम पूंजी उपयोग के सिद्धान्त का वर्णन करेंगे और सिद्धान्त द्वारा प्रभावित आर्थिक धारणाओं के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों का परीक्षण करेंगे ।

23.4.1परिचय

1960 के दशक के आरम्भ में प्रकाशित दो अध्ययनों ने क्षमता उपयोग की हमारी समझ को काफी बदल दिया है । 1963 में मूरे फीस ने यूनाइटेड स्टेट्स के पूँजी स्टाक के उपयोग समय और खाली समय का अनुमान किया । उन्होंने पाया कि करीब 75 प्रतिशत समय तक पूंजी स्टाक खाली पड़ा रहता है । इसी प्रकार 1964 में राबिन मॉरिस ने ब्रिटिश उद्योग का अध्ययन किया और पाया कि फर्मे प्रत्याशित रुप से और जानबूझकर पूँजी को खाली या निष्क्रिय रखने की योजना बनाती है। फीस का अध्ययन "पूँजी उपयोग के निम्न स्तर पर मौजूदगी" को दर्शाता है जबकि मॉरिस का अध्ययन "उसका कारण" समझाता है ।

23.4.2 निष्क्रिय पूँजी के कारण

(अ) स्वैच्छिक निष्क्रिय पूंजी, वास्तविक प्रतिकूलताए और अप्रत्याशित घटनाएं । एक संयंत्र की स्थापना कर लेने के बाद फर्मे अप्रत्याशित घटनाओ, के कारण अपनी पूँजी को न्यून प्रयुक्त रखने के लिए मजबूर हो जाती है । सर्वाधिक प्रचलित प्रतिकूलन: मांग की अल्पता के उत्पन्न उत्पादन-मांग की प्रतिकूलता है । कम विकसित देशों में एक महत्वपूर्ण कारण लागत पूर्ति की कमी है जिससे अतिरिक्त क्षमता उत्पन्न होती है । अन्त में निष्क्रिय पूँजी सीधे तोर पर मांग व पूर्ति के गलत अनुमान के कारण उत्पन्न होती है ।

(ब) स्वैच्छिक निष्क्रिय पूंजी नवीन विचार विनियोग योजनाओं में व्याप्त प्रत्यशित निष्क्रिय पूँजी के आर्थिक विवेचना पर ध्यान केन्द्रित करते है । ऐसा इसलिए कि उपयोग की उच्चतर दर पर क्रियान्वयन सीधे तौर पर लाभों को कम करेगा । प्रथमत: एक फर्म क्षमता का सृजन कर सकती हैँ और निष्क्रियता को कुछ समय के लिये सहन कर सकती है, इस उम्मीद के साथ कि भविष्य में इसकी उच्चतर मांग और पैमाने की मितव्ययिताओं से उसकी जरुरत से ज्यादा क्षतिपूर्ति हो जायेगी । यह निष्क्रियता एक दीर्घकालीन वृद्धि की प्रवृत्ति द्वारा समर्थित होती है और गतिशील सन्दर्भ में निष्क्रियता है । दूसरे, प्रत्याशित परिवर्तन विकासशील उत्पादों और सेवाओं के लिये परिवर्तनशील मांग के सन्दर्भ में निष्क्रिय पूँजी का समर्थन करते है यद्यपि इसका अर्थ है न्यूनतम सम्भव इकाई लागत का त्याग । हां, यह उसके अचानक उच्चावचनों और अनिश्चितताओं से सम्बन्धित है परन्तु कदाचित माप द्वारा अनुमानित रुप से

सर्वाधिक सर्वव्यापी उत्पादन मांग में होने वाले उच्चावचन है जो अप्रत्याशित नही होते बल्कि नियमित और अत्याशित उच्च मार की तरंगे होती है जो निष्क्रिय क्षमता को समझती है।

23.4.3 ताल अनुसार आगत मूल्य

मॉरिस की प्रत्याशित निष्क्रिय पूँजी की विवेचना श्रम की दरों में होने वाले प्रत्याशित परिर्वतनों पर, आधारित है । उनके विश्लेषण में रात और दिन की पालियों में और सप्ताह और सप्ताहान्त के दिनों में मजदूरी के दिनों में मजदूरी की दरों में अन्तर लागत मूल्यों के उच्चावचनों का आधार है । अन्य में से विकंसटन और जारगेनसन तथा गिलिचेस ने मॉरिस के अध्ययन को परम्परागत उत्पादन सिद्धान्त से जोड़ा है । क्षमता उपयोग सिद्धान्त में आगत मूल्य के सन्दर्भ में हुई प्रगतियों को विन्स्टन ने सारांशित किया है ।

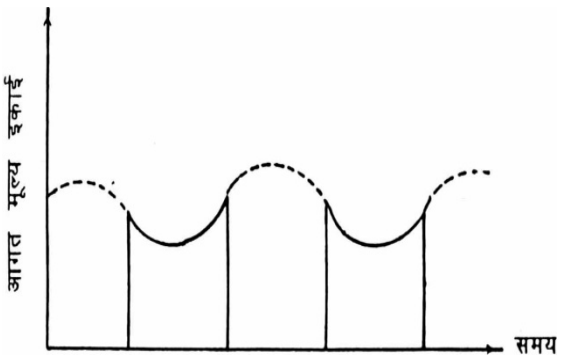

चित्र 23.3

चार सम्बन्धित आयामों के साधन आगतें महत्वपूर्ण से अलग है ।ये निम्न है :

1. पूँजी एक विशिष्ट साधन है जिसे स्टाक के रूप में अपने अधीन रखा जाता है जबकि श्रम निरन्तर सेवा साधन के रुप में खरीदा जाता है ।
2. साधन के स्वामी की स्वेच्छा से साधन के स्टाक का उपयोग बदला जा सकता है ।
3. परिवर्तनशील, साधन के प्रयोग से अवधि मशीनों के प्रयोग की अवधि के समान नहीं होती।
4. कुछ साधन सेवाओं के मूल्य ताल के अनुसार इकाई समय में नियमित रुप से परिर्वतन होते रहते है।

किसी फर्म के स्वामित्व में होने वाली पूँजी के श्रेष्ठतम उपयोग पर आगत मूल्यों के तादानुसार परिर्वतनों , का प्रभाव आसानी से देखा जा सकता है । चूंकि वह प्रत्याशित होता है क्योंकि फर्म के जीवनकाल में अर्जित का मूल्य नियमित रुप से तादानुसार बदलता है । फर्म अपने वांछित वार्षिक उत्पादन को अनावश्यक रुप से बड़ा संयंत्र होने की दशा में इस प्रकार नियोजित करेगी कि वह नीचे लागत मूल्यों वाली अवधि में काम करे (चित्र 23.3 में बनी लागत मूल्य वक्र निरन्तर भाग पर) और ऊंचे लागत मूल्यों वाली अवधि में कारखाना बन्द कर दे (चित्र 23.3 बनी लागत मूल्य वक्र के टूटे हूए भाग पर) चाहे कार्य विछिन्न समय में (पाली कार्य) हो रहा हो या निरन्तर समय में (मौसम के समावेश सहित), विश्लेषण का निष्कर्ण नही हेगा ।

23.5 अतिरिक्त क्षमता का पुनरावलोकन

आगत मूल्य मॉडल और प्रत्याशित ओर अप्रत्याशित निष्क्रियता क्षमता का तुरन्त लाभ "क्षमता उपयोग की धारणा" को है। "पूर्ण क्षमता" फर्म के नियोजित (स्वेच्छित, वांछित, आदर्श) उपयोग स्तर का वर्णन करती है। यह स्तर पूँजी स्टाक में निर्मित सन्तुष्ट प्रत्याशाओं को प्रतिबिम्बित करता है और सामान्य क्रिया के कार्यक्रम में निहित है। इससे अधिक उपयोग नवीन विनियोग को प्रोत्साहित करेगा। "अतिरिक्त क्षमता" उपयोग के एच्छिक स्तर को प्राप्त करने में असफलता से अस्वैच्छिक विलगाव का वर्णन करती है।

चित्र 23.4 पूर्ण क्षमता और अतिरिक्त क्षमता के बीच सम्बन्ध को दर्शाता है। मान लो किसी संयंत्र के अधिकतम उपयोग की अवधि 8760 घंटे हैं। देखभाल करने के लिए कुछ घंटे अलग रखने पर उत्पादन करने के लिए उपलब्धि समय M है। संयंत्र में नियोजित और निर्मित और सामान्य कार्यक्रम में दर्शित उपयोग का सर्वोत्तम स्तर U है। संयंत्र1 में सर्वोत्तम और अधिकतम उपयोग लगभग समान है जबकि संयंत्र2 में "अधिकत, " "सर्वोत्तम" से काफी अधिक है। दोनों परिस्थितियों में किसी वर्ष में उपलब्धि उपयोग का वास्तविक स्तर A द्वारा दर्शित है जो सर्वोत्तम U से कम है। अत: 'U' पूर्ण क्षमता है और U-A अतिरिक्त क्षमता है। क्षमता उपयोग की दर A/U प्रतिशत है।

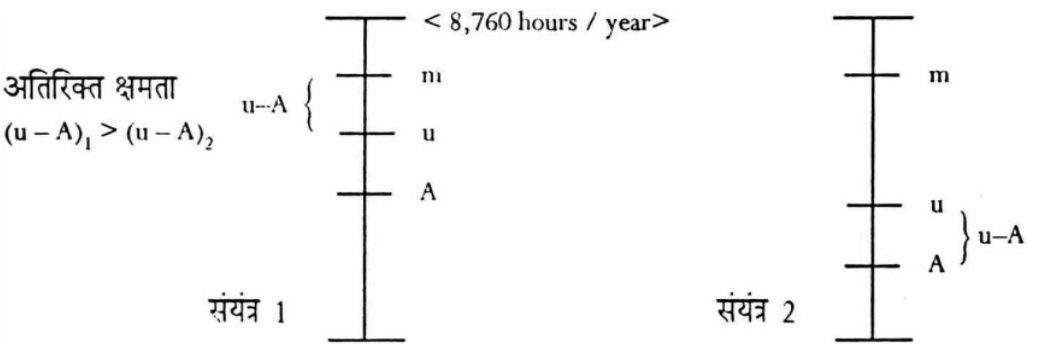

चित्र 23.4

23.5.1 अप्रयुक्त पूँजी का आकार

क्षमता उपयोग के अनेक मात्रात्मक तरीके विकसित हुए है, जैसे यूनाइटेड स्टेट्स में वाटन सूचकांक, भारत मे रिजर्व बैक ऑफ इण्डिया का सूचकांक। ये सूचकांक ऐच्छिक और अनैच्छिक अप्रयुक्त क्षमता के बीच अन्तर नही करते। विस्टन का यूनाइटेड स्टेट्स का अध्ययन बताता है कि कमजोर कुल मांग वर्ष में भी लगभग 90 प्रतिशत अप्रयुक्त क्षमता प्रत्याशित (M------U) या नियोजित कारणों से थी। सिर्फ 10 प्रतिशत अतिरिक्त क्षमता उपयो के वांछित स्तर (U--------A) में कमी के कारण थी। यह, यह दर्शाने थे नही है कि ये आकार प्रयुक्त क्षमता के दोनों प्रकारों का सापेक्षिक महत्व दशति है। बल्कि यह बताने हेतु है कि प्रत्येक आर्थिक और नीति सम्बन्धों तत्वों की विभिन्न स्थितियों हेतु समुचित है और विभिन्न प्रकार के आकड़ों द्वारा समझे जा सकते है।

23.6 निष्कर्ष

क्षमता प्रयोग की धारणा पूँजी के प्रयोग और अप्रयोग से सम्बन्धित है। प्रचलित विश्वास के विपरीत वह पूँजी के प्रदत्त के मात्र उत्पादन को अधिकतम करने का प्रश्न नही है। अल्पकाल में पूँजी का सक्षम उपयोग लागत को घटाता है और क्षमता उत्पादन को सुनिश्चित करता है परन्तु दीर्घकाल में उपयोग की धारणा आवश्यक रूप से बाजार के प्रकार के प्रश्न से जुड़ जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता, क्षमता का सर्वोत्तम उपयोग प्रदान करती है। बाजार शक्तियों से ऐसा होता है। एकाधिकारी प्रतियोगिता में अतिरिक्त क्षमता निहित होती है। और दीर्घकाल में भी बाजार की शक्तियां उसे हटा नही सकती। एकाधिकार में अतिरिक्त क्षमता का स्वभाव भिन्न होता है। क्षमता उपयोग के सिद्धान्त में आधुनिक विकास बताता है कि सभी अतिरिक्त क्षमता अनैच्छिक नहीं होती है। विनियोग योजनाओं में स्वेच्छिक अतिरिक्त क्षमता निर्माण का काफी मात्रा होती है। ऐसा करने का एक मुख्य कारण आगतों के मूल्यों में होने वाले सामयिक उच्चावचन है। अन्त में क्षमता उपयोग की धारणा इस तथ्य पर निर्भर है कि 'वांछित उपयोग दर' आवश्यक रूप से "अधिकतम उपयोग दर" नहीं होती और उससे कम हो सकती है। अत: सर्वोत्तम क्षमता में भेद करना आवश्यक है।

23.7 अभ्यास प्रश्न

प्र. 1. उत्पादन के क्षमता स्तर और उत्पादन के सर्वोत्तम स्तर में भेद कीजिए (सकेत - चित्र 23.1 देखें)

प्र. 2. दर्शाइए कि एकाधिकारी प्रतियोगिता में दीर्घकाल में अतिरिक्त क्षमता बचती है। (चित्र- 23.2 देखें)

प्र. 3. क्षमता के अधिकतम उपयोग और क्षमता के सर्वोत्तम उपयोग में भेद कीजिए। (चित्र- 23.4 देखिये)

23.8 शब्दावली

अर्द्ध स्थित	अंशत: स्थिर
छाया मूल्य	सामाजिक कीमत
साधनों का अनुचित उपयोग	साधनों का गलत उपयोग
समरूप	एक ही प्रकार
भेदीकरण	भेद करना
अधिक्य	अधिक संख्या या मात्रा
स्वैच्छिक	जानबूझकर

ताल अनुसार	एक निश्चित क्रम से दोहराना
सर्वव्गपी	बार-बार घटित
अप्रत्याशित	अचानक, अनावशित

23.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Garden,C.Windton-The Theory of Capital Utilization and Idealness: Journal of Economic Literature Vol.XII,1974 PP.1301-1320

Nicolos Kaldor-Essays on Value and Distribution chapter-4,Market Inperfection and Excess Capacity: Gerald Daworth& Company,London 1966.

Wenston D.S. Price Theory and its uses: Scientific Book Agency,Calcutta,1967

23.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1 - उत्पादन का क्षमता स्तर उत्पादन का वह है जहा अल्कालीन लागत न्यूनतम हो जबकि उत्पादन का सर्वोत्तम स्तर वह है जहां दीर्घकालीन लागतें न्यूननतम बिन्दु पर ही।

उत्तर 2 - एकाधिकार प्रतियोगिता में अतिरिक्त क्षमता $Y^0Y^0_1$ है। दीर्घकाल में अतिरिक्त क्षमता $Y^1_0Y^0_1$है। यह स्पष्ट है कि $Y^0Y^0_1 > Y^0_0Y^0_1$

उत्तर 3 - अधिकतम क्षमता वह भौतिक सीमा है जिसके पार संयंत्र को नही चलाया जा सकता और क्षमता प्रत्याशित वांछित स्तर है।

इकाई -24

मूल्य विभेदीकरण एवं मार्क-अप मूल्य निर्धारण
Price Differentiation and Mark-Up Pricing

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 मूल्य विभेद की अर्थ

24.3 मूल्य विभेद की दशाएँ

24.4 मूल्य विभेद की श्रेणिया

24.5 मूल्य विभेदक फर्म केए संन्तुलन

24.6 अन्य सन्तुलन परिस्थितियॉ

24.6.1 यदि एक बाजार प्रतियोगी और दूसरा एकाधिकारी हो

24.6.2 मूल्य मांग लोच भिन्न होने हुए भी मूल्य विभेद संभव न हो

24.7 मूल्य माग लोच, सीमांत आय तथा विभेदी मूल्य

24.8 मार्क-अप मूल्य निर्धारण – प्रवेश

24.9 मार्क अप का अर्थ

24.9.1 मार्क-अप गुणांक

24.9.2 मार्क-अप जोड़ गुणांक

24.9.3 मार्क-अप गुणांक तथा मार्क-अप जोड़ मे अन्तर

24.10 मार्क-अप मूल्य निर्धारण तथा आधुनिक लागत सिद्धांत

24.11 मार्क-अप मूल्य निर्धारण की व्यवहारिकता

24.12 मार्क-अप तथा मूल्य विभेदक फर्म

24.13 सारांश

24.14 शब्दावली

24.15 कुछ उपयोगी पुस्तके

24.16 अभ्यासों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

1. मूल्य विभेद का अर्थ समझा सकगे।
2. मूल्य विभेद की दशाएं बता सकेंगे।
3. मूल्य विभेद की श्रेणियो बता सकेंगे।
4. मूल्य विभेदक फर्म का सन्तुलन समझा सकेंगे।
5. मार्क-अप मूल्य निर्धारण का अर्थ बता सकेंगे।
6. मार्क-अप गुणांक तथा मार्क-अप जोड़ का अर्थ तथा दोनों में अंतर बता सकेंगे।
7. आधुनिक लागत सिद्धांत संदर्भ में मार्क-अप मूल्य निर्धारण को समझा सकेंगे।
8. मार्क-अप मूल्य निर्धारण की व्यावहारिकता पर प्रकाश डाल सकेंगे।
9. मूल्य विभेदक फर्म द्वारा मार्क-अप मूल्य निर्धारण समझा सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

अपने इकाई 15 में विभेदक एकाधिकार (Discriminating Monopoly) के बारे में पढ़ा होगा। आपने यह भी पढा होंगा कि एकाधिकारी अलग-अलग ग्राहकों से या बाजारों से अलग-अलग मूल्यों पर उत्पादन क्यों बेचना पसन्द करता है? सबको एक जैसे मूल्य पर उत्पादन क्यों नही बेचता? यह आप जानते ही है कि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में हम यह पूर्व धारणा करने है कि प्रत्येक उत्पादक अधिकतम लाभ कमाना चाहता है। स्पष्ट है कि एक मूल्य पर बेंचने की अपेक्षा यदि अलग-अलग मूल्यों पर बेचने से अधिक लाभ होगा तो वह " एक मूल्य" पर बेचने की बजाय अलग-अलग बाजारों में अलग-अलग मूल्यों पर अपना उत्पादन बेचेगा । इस प्रकार अधिक लाभ प्राप्त करने की प्रेरणा ही उसे "मूल्य विभेदक" नीति अपनाने की ओर आकर्षित करती है।

आपने अब तक "मूल्य विभेदक"' कों एकाधिकार के संदर्भ में ही पड़ा है। इस संदर्भ में कुछ बातें बताना आवयश्यक है। मूल्य विभेद की नीति केवल एकाधिकार में ही नहीं बल्कि किसी भी बाजार जिसमें उत्पादक मूल्य पर प्रभाव डाल सकता हो अपनायी जा सकती है। अन्य शब्दों में अपूर्ण प्रतियोगिता परिस्थितियों में भी यह नीति अपनायी जा सकता है। दूसरे, यह भी आवश्यक नही है कि मूल्य विभेद की नीति अपनाने के लिये दोनों या अधिक बाजारों में एकाधिकार के तत्व होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि एक बाजार में एकाधिकार की स्थिति और दूसरे में प्रतियोगिता की स्थिति हो तो भी मूल्य विभेदक नीति अपनायी जा सकती है। तीसरे, यह भी आवश्यक नही है कि उत्पादक का उद्देश्य "अधिकतम लाभ " कमाना ही हो । प्राय: सरकारी एकाधिकार वाले उद्योगों में अधिकतम लाभ कमाने की अपेक्षा जन-कल्याण या राष्ट्र हित का उद्देश्य अधिक होता है। ऐसे सरकारी-एकाधिकारी के मुख्य उदाहरण-रेलवे, डाक-तार, सड़क परिवहन, आदि में पाये जाते है। ये उद्योग भी मूल्य विभेदक नीति अपनाते है लेकिन

मूल्य निर्धारण का आधार अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करने का न होकर ' उचिन मूल्य " प्राप्त करने का होता है। यह आधार क्या होता है इसका वर्णन हम इकाई 25 में करेंगे ।

इकाई 23 में हम अधिकतम लाभ के उद्देश्य पर आधारित "मूल्य विभेद" के बारे में पढ़ेगे। हम जानेगे कि मूल्य विमेद का अर्थ क्या है' किन-किन परिस्थितियो में यह संभव हैं' ऐसी स्यिति में सन्तुलन की क्या-क्या दशाएं हैं? इसकी विभिन्न श्रेणियां क्या हैं? अन्त में हम देखेगे कि भिन्न-भिन्न बाजारों में भिन्न-भिन्न मूल्य निर्धारण करने के क्या मापदंड है? इस अन्तिम प्रश्न का उत्तर इस पाठ के एक अलग भाग मार्क-अप मूल्याकन (Mark up Pricing) में पढ़ेंगे।

24.2 मूल्य विभेद का अर्थ

यह बाजार की वह स्थिति है जिसमें कोई उत्पादक अलग-अलग ग्राहकों या बाजारों को अपना उत्पादन अलग-अलग मूल्यों पर बेचता है। इसके पीछे दो पूर्वधरनाए है। प्रथम, उत्पादन एकरुप (Homogeneous) है। दुसरे, सभी बाजारों में उस उत्पाद को बेचने की लागत एक जैसी है। यह लागत अगर भिन्न भी है तो भी अगर मूल्यों में विभिन्नना इससे भी अधिक है तो यह भी मूल्य विमेद की स्थिति ही मानी जायेगी।

24.3 मूल्य विभेद की दशाएं

मूल्य विभेद विभेद संभव हो सके इसके लिए यह आवश्यक है कि निम्नलिखित बातें पूरी हो।

1. उत्पादक का पूर्ति पर नियंत्रण हो। यह उपनी इच्छा से पूर्ति कम या अधिक कर सके।
2. इस बात पर नियन्त्रण रखे कि एक बाजार में बेचा गया उत्पादन दूसरे बाजार में जा कर न बिक सकें। यदि अधिक मूल्य वाले बाजार से ग्राहक कम मूल्य वाले बाजार में जा सकें और उत्पादन खरीद सके तो थोड़े समय में ही दोनों बाजारों में एक जैसा मूल्य हो जायेगा और मूल्य विभेद की नीति असफल हो जाएगी।
3. विभिन्न बाजारों में मांग की मूल्य लोच भिन्न-भिन्न होनी चाहिए। मूल्य मांग लोच उपभोक्ता_ की मांग की तीव्रता बताती है। अधिक लोच का अर्थ "कम तीव्रता" और कम लोच का अर्थ अधिक तीव्रता से होता है। मूल्य मांग लोच भिन्न भिन्न होगी तब ही उपभोक्ता एक जैसे उत्पादक के लिए अलग-अलग मूल्य देने को तैयार होंगे और तब ही मूल्य विभेद की नीति सफल भी हो सकती है।
4. कई बार केवल मूल्य मांग लोच में विभिन्नता ही काफी नही होती। यह भी आवश्यक है कि उत्पादक को सभी बाजारों में बेंचने से लाभ होंना चाहिए। अर्थात सभी बाजारों में सीमान्त आय (Marginal Revenue) सीमान्त लागत से या तो बराबर हो और या अधिक हों। यदि ऐसा नही हो तो प्रथम तीन शर्ते यदि पूरी भी हो जायें तो भी मूल्य विभेद नहीं हो सकेगा।

24.4 मूल्य विभेद की श्रेणियाँ (Degrees of Price Discrimination)

मूल्य विभेद की श्रेणियों को प्राय: तीन वर्गो में बाटा जाता है। यह वर्गीकरण दो बातो पर आधारित है। प्रथम, बाजारों की संख्या कितनी है। दूसरी, कितना उपभोक्ता बचत (Consumer's Surplus) उत्पादक उपभोक्ता से छीन पाने में सफल हो जाता है।

1. प्रथम श्रेणी मूल्य विभेद (First Degree Price Discrimination)

यदि कोई उत्पादक इस प्रकार मूल्य विभेद की नीति अपनाता है कि वह समस्त उपभोक्ता बचत छीनने में सफल हो जाता है, तो इसे प्रथम श्रेणी मूल्य विभेद की संज्ञा दी जाती है। ऐसी स्थिति में उत्पादन की प्रत्येक इकाई अलग-अलग मूल्यों पर बेचता है। यह मूल्य विभेद का सबसे शक्तिशाली स्वरूप है। व्यवहार में ऐसा स्वरूप पाना कठिन है।

2. द्वितीय श्रेणी मूल्य विभेद (Second Degree Price Discrimination)

जब उत्पादक दो से अधिक बाजारों में मूल्य विभेद का नीति अपनाने में सफल है लेकिन उपभोक्ता बचत का कुछ भाग ही ले पाय तो इसे द्वितीय श्रेणी के मूल्य विभेद की संज्ञा दी जाती है। प्रथम श्रेणी की अपेक्षा द्रितीय श्रेणी में यही अन्तर है कि उत्पादक प्रथम श्रेणी में समस्त उपभोक्ता बचत छीन लेता है जबकि द्वितीय श्रेणी में केवल एक भाग ही दोनों ही श्रेणियों में बाजारों की संख्या दो से अधिक होती है।

3. तृतीय श्रेणी मूल्य विभेद (Third Degree Price Discrimination)

जब उत्पादक केवल दो बाजारों में ही मूल्य विभेद की नीति अपना पाता है, तो इसे तृतीय श्रेणी के मूल्य विभेद की संश दी जाती है। स्पष्ट है कि इस स्थिति में उत्पादक समस्त उपभोक्ता बचत प्राप्त करने में सफल नही होगा। अर्थशास्त्र में मूल्य विभेद का सिद्धांत समझाते समय प्राय: इसे श्रेणी के मूल्य विभेद का ही विश्लेषण किया जाता है।

24.5 मूल्य विभेदक फर्म का सन्तुलन

यह तो आप जानते ही है कि फर्म के सन्तुलन से अभिप्राय: फर्म के उस उत्पादन स्तर से है जिस पर कि फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होते है। आइये देखें कि एक मूल्य विभेदक फर्म किन दशाओं में सन्तुलन प्राप्त करती है। इस संदर्भ में हम निम्नलिखित बातें मान कर चलते है:-

पूर्व धारणाएँ

फर्म का उल्गदन दो बाजारों में विक्रेता है। मान लीजिये ये बाजार A तथा B है। हम यह भी मानते है कि बाजार A को बना गया माल B को बेचा गया माल बाजार A में आकर नही बिक सकता है। अन्य शब्दों में दोनो बाजारों में वस्तु का आदान प्रदान नही है।

हम यह भी पूर्वधारणा करते है कि बाजार बाजार की आपेक्षा अधिक लोचदार है।

दोनों बाजारों में लागत एक समान है।

सन्तुलन शर्ते

मूल्य विभेदक फर्म द्वारा सन्तुलन प्राप्त करने की शर्ते दो है।

1. सीमान्त लागत= समग्र सीमान्त आय
2. जहाँ सीमान्त लागत तथा समग्र सीमान्त आय एक समान हो उसके बाद के उत्पादन स्तर पर सीमान्त लागत सीमान्त आय से अधिक होनी चाहिए।

आइये इन शर्तो का विस्तार पूर्वक अध्ययन करें।

सीमान्त लागत = समग सीमान्त आय

सीमान्त लागत से अभिप्राय एक अतिरिक्त इकाई कें उत्पादन पर होने वाली अतिरिक्त लागत से है। इसे दोनों बाजारों में एक समान मानते है।

समग्र सीमान्त आय (Aggregate Marginal Revenue) से अभिप्राय दोनों बाजारों की सीमान्त आय के योग से है। मान लीजिए वस्तु का एक इकाई बेचने से यदि बाजार A से 10) तथा B से 12 रुपयें प्राप्त होने है और दो इकाई बेचने से यदि बाजार A तथा B से क्रमश: 19 तथा 23 रुपये प्राप्त होते है। इस प्रकार बाजार A से प्राप्त सीमान्त आय (9=19-10) तथा बाजार से प्राप्त सीमान्त आय 11 (=23-12)है। दोनों बाजारों के सीमान्त आयों का योग (20=9+11) है। इस प्रकार 4 इकाई बेचने पर (2 बाजार A में तथा 2 बाजार B)मे संयुक्त सीमान्त आय 20 कहलायेगी। इसी तरह दोनों बाजारों के प्रत्येक उत्पादन स्तर पर सीमान्त आय जोड़ लेने पर हम फर्म की समग्र सीमान्त आय तालिका ज्ञात कर सकतें है। इसी प्रकार हम समग्र औसत आय मांग तालिका भी ज्ञात कर सकते हैं।

फर्म के उस उत्पादन स्तर पर जिस पर की फर्म की सीमान्त लागत तथा समग्र सीमान्त आय एक समान हो फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होने है। इस प्रकार निश्चित की गयी सीमान्त लागत से बाजार A तथा बाजार B की सामान्त आयों का एक समान कर दोनों बाजारो, का अलग-अलग सन्तुलन मालूम किया जा सकता है। सन्तुलन स्थिति को चित्र 24.1 द्वारा हम इस प्रकार दिखा सकते है।

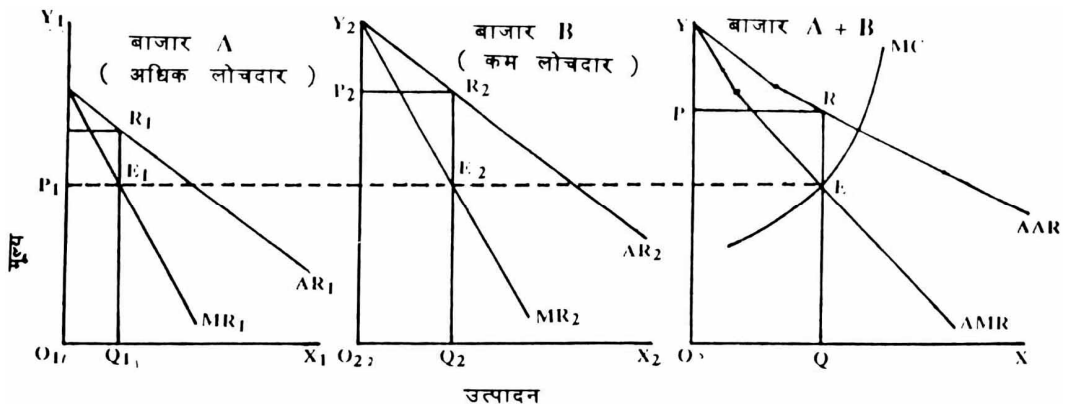

चित्र 24.1.1 चित्र 24.1.2 चित्र 24.1.3

ऊपर दिये गये संयुक्त (चित्र 24.1) मे चित्र 24.1.1 बाजार A का चित्र 24.1.2 बाजार B का तथा 24.1.3 दोनों बाज़ारों का जोड़ है। भाग 24.1.3 में AMR वक्र दोनों बाजारों का समग्र सीमान्त आय वक्र है। यह MR_1 तथा MR_2, वक्रों का जोड़ है। सज़ुलन की शर्त है:

सीमान्त लागत=समग्र सीमान्त आय

यह शर्त बिन्दु E पर पूरी होती है जहाँ कि MC वक्र AMR वक्र को काटता है। यह बिन्दु हमें यह बताता है कि:-

सन्तुलन स्तर पर सामान लागत = EQ

सन्तुलन स्तर कुल उत्पादन = OQ

अब प्रश्न यह उठता है कि इस उत्पादन का कितना भाग वह बाजार A मे तथा कितना भाग बाजार B में और किन-किन मूल्यों पर बेचेगा। दोनों बाजारों का अलग-अलग सन्तुलन हम इस प्रकार ज्ञात कर सकते है।

बाजार A का सन्तुलन स्तर वहाँ होगा जहाँ-

"सन्तुलन स्तर पर समिाज लागत" बाजार के सीमान्त आय के समान हों'। इसी तरह बाजार B का सन्तुलन स्तर वहाँ होगा जहाँ सन्तुलन स्तर पर सीमान्त लागत बाजार B की सीमान्त आय के समान हो। अन्य शब्दों में

सन्तुलन सीमान्त लागत = $MR_1 = MR_2$

यह स्थिति हम E बिन्दु से बॉयें हाथ की ओर X- रेखा के समानानर एक ऐसी रेखा बना कर सकते है। यह रेखा जहाँ MR_2, को काटेगी तो यह बाजार B का सन्तुलन होगा और जहाँ यह MR_1 को काटेगी वह बाजार ,A का सन्तुलन होगा। इस तरह E_1 और E_2 क्रमश: बाजार A तथा B के सन्तुलन बिन्दु है। इन बिन्दुओं से y- रेखाओं के सामान्तर लम्ब खीचने पर हम दोनों बाजारों का सन्तुलन मूल्य तथा सन्तुलन बिक्री पता लगा सकते है। परिणाम इस प्रकार है:

	बाजार A	बाजार B
मूल्य	O_1P_1	O_2P_2
बिक्री	O_1Q_1	O_2O_2

उपयुक्त परिणामों से स्पष्ट है कि बाजार A में मूल्य (O_1P_1) बाजार B में मूल्य (O_2P_2) की आरेश्रग़ कम है क्योकि बाजार A की मूल्य मांग लोच बाजार B की अपेक्षा अधिक है। (यदि दोनों बाजारों मे एक जैसी मूल्य माग लोच होती तो मूल्य भी एक जैसा ही होता। ऐसी स्थिति में मूल्य विभेद की कोई आवश्यकता ही नही होनी)

यदि मूल्य विभेदक फर्म दोनों बाजारों मे एक जैसा मूल्य लेती तो यह मूल्य (चित्र 24.1) होता। यह मूल्य बाजार A के विभेदक मूल्य से अधिक तथा बाजार B के विभेदक मूल्य से कम है ऐसा चित्र में बिन्दियों

वाली टूटन रखा (Dotted Lines) से स्पष्ट है। एक जैसे मूल्य पर बेचने से विभेदक मूल्यों पर बेचने की अपेक्षा फर्म के लाभ कम होते। अत: वह विभेदक मूल्यों ही उत्पादन बेचेंगी।

सन्तुलन उत्पादन के बाद के स्तर पर सीमान्त लागत सीमान्त आय से अधिक हो

यदि ऐसा नहीं होगा नो इसका अर्थ यह है कि यदि फर्म और अधिक उत्पादन बेचे तो और अधिक लाभ कमा सकती है। इस प्रकार पहली शर्त (सीमान्त लागत = समग्र सीमान्त आय) आवश्यक तो है लेकिन काफी नही है। दूसरी शर्त का पूरा होना भी अत्यन्त आवश्यक है। चित्र 24.1.3 मे यह शर्त I बिन्दु पर पूरी उतरती है। I बिन्दु के पश्चात सीमान्त लागत समग्र सीमान्त आय से अधिक हो जाती हैं।

24.6 अन्य सकलन परिस्थितियाँ

24.6.1 यदि एक बाजार प्रतियोगी एवं दूसरा एकाधिकारी हो

ऊपर बतायी गयी सन्तुलन स्थिति से ऐसा लगता है जैसे मूल्य विभेद नीति अपनाने कें लिए यह आवश्यक है कि फर्म को दोनों बाजारों मे एकाधिकार की सी स्थिति हो। व्यवहार में यदि एक बाजार में प्रतियोगिता हो और दूसरे बाजार में एकधिकार के तत्व हो तो भी मूल्य विभेदी नीति अपनायी जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में ऐसी परिस्थिति देखने में आती है। कई बार कोई फर्म अपने देश में एकाधिकारी होती है जबकि विदेशों मे उत्पादन बेचने के लिये विदेशी फ़र्मों से प्रतियोगिता करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में भी मूल्य विभेद की नीति अपनायी जा सकती है। सन्तुलन का शर्त भी वही होगी। इसे हम चित्र 24.2 द्वारा समझा सकते है।

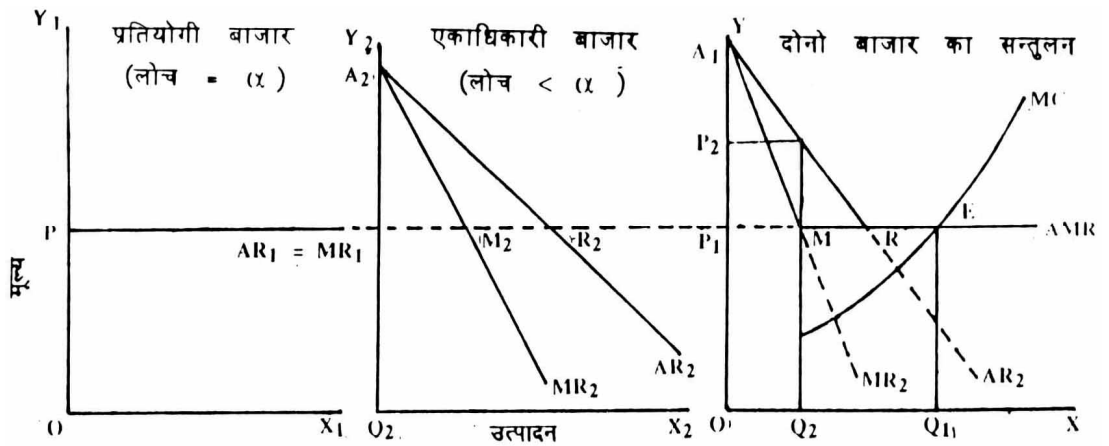

चित्र24.2 (a) चित्र 24.2 (b) चित्र 24.2(c)

चित्र24.2 (a) मूल्य विभेदक फर्म का वह बाजार है जहाँ इसे प्रतियोगिता करनी पड़ती है। 24.2 (b) उसका दूसरा बाजार है जिसमे वह एकाधिकारी है। फर्म के दोनों बाजारों को मिलाकर जो स्थिति बनती है उसको रेखा चित्र 24.2 (c) में दिखाया गया है। इसमें AME समग्र सीमान्त आय वक्र द्रै। इसक AM भाग एकाधिकारी बाजार के A_1M_1, भाग के बराबर है। इसका ME तथा आगे का लगभग प्रतियोगी बाजार से लिया गया है। एकाधिकारी फर्म का A_1M_1, से आगे का भाग बेकार हो जाना है क्योंकि

प्रतियोगी बाजार मे इसके बाद के हर उत्पादन स्तर पर सीमान्त आय अधिक होती है। अत समग्र सीमान्त आय वक्र (AMR Curve) बनाने के लिए एकाधिकारी बाजार का भाग तथा इसके आगे केवल प्रतियोगी बाजार में इसके बाद के सीमान्त आय वक्र का भाग लिया जाता है। चित्र-24.2(c) मे ARE वक्र समग्र औसत आय वक्र है जो कि उसी आधार पर बनाया गया है जिस पर AMR वक्र बनाया गया हैं। इसके AR भाग एकाधिकारी बाजार का A_1R_1, भाग है जबकि बाकी भाग प्रतियोगी बाजार के AR वक्र का भाग है। मूल्य विभेदी फर्म का सन्तुलन चित्र 24.2 (c) में E बिन्दु पर है जहाँ MC' वक्र AMR वक्र को काट रहा है। इस प्रकार सन्तुलन सीमान्त लागत EQ, है। कुल सन्तुलन उत्पाद OQ है। E बिन्दु से खीची गयी रेखा के समान्तर रखा MR_2, वक्र को M बिन्दु पर काटती है। यह एकाधिकारी बाजार के सन्तुलन का स्थिति है। इसका सन्तुलन मूल्य OP_2 है तथा सन्तुलन उत्पादन OQ_2 है। शेष उत्पादन प्रतियोगी बाजार में बिकेगा क्योंकि प्रतियोगी बाजार में मूल्य OP_1, उत्पादक जितनी अधिक मात्रा चाहे बेच सकता है। एकाधिकारी बाजार में OQ_2 से अधिक बेचने पर उसके कुल लाभ घटेंगे। यहाँ यह ध्यान दिलाना आवश्यक है कि प्रतियोगी बाजार मे सन्तुलन मूल्य पर मूल्य मांग लोच α है जबकि एकाधिकारी बाजार में इससे कही कम अत: प्रतियोगी बाजार में मूल्य कम है जबकि एकाधिकारी बाजार में अधिक। यह निष्कर्ष हमें मार्क -अप मूल्य निर्धारण(Mark –up-Pricing) के अध्ययन में सहायक सिद्ध होगा।

24.6.2मूल्य मांग लोच भिन्न होते हुऐ भी मूल्य विभेद संभव न हो।

केवल दोंनों बाजारो में मूल्य मांग लोच भिन्न भिन्न होने से ही मूल्य विभेद कर पाना सम्भव हो आवश्यक नही है। इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि "सन्तुलन सामान लागत" प्रत्येक बाजार की सीमान्त आय के सामान हो। यदि किसी बाजार मे सन्तुलन सीमान्त लागत सीमान्त आय मे अधिक है तो उस बाजार में उत्पादन बेचने से हानि होगी। एसी परिस्थिति में उत्पादक या तो कवल एक हीं बाजार में उत्पादन बेचेगा या दोनों बाज़ारों को एक मान कर उत्पादन बनेगा। यह परिस्थिति चित्र 24.3 मे दिखाई गया हैं।

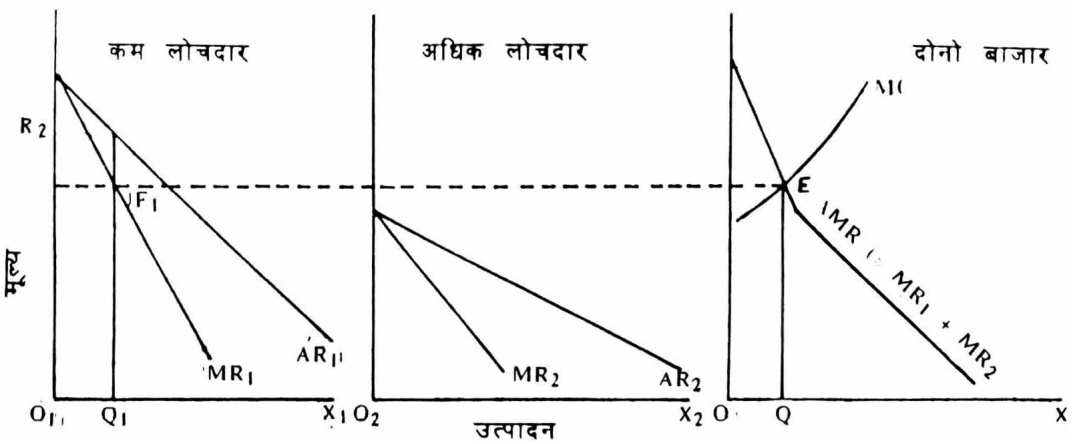

चित्र 24.3(a) चित्र 24.3 (b) चित्र 24.3(c)

इस चित्र 24.3 में सन्तलन बिन्दु E है। सन्तुलन सीमाद्ख्त आय EQ तथा उत्पादन OQ है। E से X रेखा के समानान्तर रेखा खींचने मे मालूम पड़ता है कि सन्तुलन सीमान्त लागत दूसरे बाजार 24.6 (b) में सीमान्त आय के प्रत्येक स्तर से ऊँची है। अतः इस बाजार में उत्पादन बेचने से उत्पादक को हानि होगा वह केवल प्रथम बाजार (चित्र 24.3 (a) में ही आना उत्पादनप O_1P_2 मूल्य पर बेचेगा। इस प्रकार दोनों बाजारों में भिन्न माग लोच होते हुए भी मूल्य विभेद की नीति अपनाना संभव नहीं है। अतः मूल्य विभेद के लिए केवल भिन्न मूल्य मांग लोच होना ही काफी नही है।

24.7 मूल्य मांग लोच, सीमान्त आय तथा विभेदी मूल्य

यदि हमें किसी उत्पादक का सन्तुलन सीमान्त आय ज्ञात हो तथा उसके नियन्त्रण मे जो विभिन्न बाजार है उनकी मूल्य माग लोच मालूम हो तो हम यह ज्ञात कर सकते है कि विभिन्न बाजारों में कौन-कौन से मूल्य सन्तुतन मूल्य होंगे। यह तो आप जानते ही होंगे कि मूल्य लोच, सीमान्त आय तथा मूल्य में निम्नलिखित सम्बन्ध है.-

$$\text{सीमान्त आय} \times \frac{(E)}{(E)-1}$$

जहाँ (E) = मूल्य मांग लोच का अचर मूल्य (इसमें के साथ लगे हुए घटा के चिन्ह को छोड़ दिया जाता है)

मान लीजिए दो बाजार क तथा ख है, जिनके बारे में निम्नलिखित सूचना उपलब्ध है।

उत्पादन की सन्तुलन सीमान्त आय =50 रुपये

बाजार क की मूल्य मांग लोच = - 5

बाजार ख की मूल्य की मांग लोच = -3

इन सूचनाओं के आधार पर हम दोनों बाजारों के मूल्य ज्ञात कर सकते है।

बाजार क का मूल्य = सीमान्त आय

= 50X5/5 1 =50 X 1.25 = 62.50 रुपये

बाजार ख का मूल्य= 50X3/3-1=50X1.50=75.00 रुपये

परिणाम से स्पष्ट है कि अधिक मूल्य लोच वाले बाजार में मूल्य कम (65.50 रुपये) जबकि कम मूल्य लोच वाले बाजार में मूल्य अधिक (75.00 रूपये) है।

बोध प्रश्न 1

इकाई के अन्त में दिये गये उनरो से आने उतरों के मिलान करें।

1. मूल्य विभेदक फर्म द्वारा किसी वस्तु की मूल्य निर्धारण नीति अपनाने के लिए क्या दशाएँ आवश्यक है?

2. मूल्य निपट की विभिन्न श्रेणियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. मूल्य विभेद की सन्तुलन शर्तो को संक्षेप में बताइये,
4. एक मूल्य विपदा फर्म की सन्तुलन स्थिति में सीमान्त आय 40 रूपये है तथा दो बाजारों में मूल्य माग लोच क्रमश: 2 तथा - 4 है। दोनों बाजारों का सन्तुलन मूल्य मालूम कीजिए।

24.8 मार्क -अप मूल्य निर्धारण (Mark- up Pricing);

विषय प्रवेश

अब तक आप बाजारों के विभिन्न स्वरूपों जैसे-पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकारी प्रतियोगिता अल्पाधिकार, एकाधिकार आदि के बारे में पढ़ चुके है। इस पाठ के अब तक के पृष्ठों में आपने यह भी पढा है कि आपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में किस प्रकार कोई उत्पादक अपने उत्पाद का अलग-अलग बाजारों से अलग-अलग मूल्य प्राप्त कर सकता है बशर्त कि इन बाजारो में मूल्यमाग लोच भी अलग-अलग हो । इन सभी परिस्थितियों में मूल्य निर्धारण के पीछे एक ही उददेश्य था कि लाभ अधिकतम किये जाएँ। इनके पीछे एक ही सिद्धान्त था कि केवल "सीमान्त लागत= सीमान्त आय की स्थिति में ही ऐसा मूल्य निर्धारित होता है जिससे कि फर्म को अधिकतम लाभ हो।

इनकों पढ़ने से कई बार ऐसा लगता है कि ये सब सिद्धान्त की बाते है जबकि व्यवहार मे ऐसा कुछ नही होता है। व्यवहार में तो उत्पादक पहले लागत का अनुमान लगाता है और फिर उसमें कुछ जोड़ कर अपनी वस्तु का मूल्य निर्धारित करता है। उसके ऐसा करने को "मार्क अप मूल्य निर्धारण "की संज्ञा दी जाती है। पाठ के इस भाग में हम देखेगे कि मार्क-अप मूल्य निर्धारण ' और कुछ नही बल्कि "सीमान्त लागत = सीमान्त आय " सिद्धान्त का एक दूसरा रूप है।

24.9 मार्क अप का अर्थ

लागत का अनुमान लगा कर, मूल्य निर्धारण करने के लिए इसमें जोड़ी गयी राशि को मार्क-अप की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण कें तोर पर मान लीजिए कोई फर्म अपने उत्पादनन की लागत 10 रुपये प्रति इकाई पाती है इसमें वह 2 रुपये जोड़ कर उस वस्तु को 12 रुपये में बेचते है। इस दो रुपये जाड़ने को "मार्क-अप" कहा जाता है। इस उदाहरण में यह मार्क-अप2 रुपये या लागत का 20 प्रतिशत है। भिन्न-भिन्न फर्म भिन्न मार्क-अप जोड़ सकती है। एक फर्म जा कि एक से अधिक बाजारों में उत्पादन बेचती है, उसी वस्तु का भिन्न-भिन्न बाजारों में भिन्न मार्क-अप जोड़ सकती है। अब प्रश्न यह है कि कोई भी फर्म यह कैसे निर्धारित करती है कि कितना मार्क-अप जोड़ा जाये?

24.9.1 मार्क अप गुणांक

मूल्य निर्धारण के सिद्धान्त मे हम यह देख चुके है कि "सीमान्त लागत = सीमान्त आय" के आधार पर ही अधिकतम लाभ वाला मूल्य निर्धारित होता है। आप यह भी जानतें हैं कि मूल्य, सीमान्त आय तथा मूल्य मांग लोच' में सम्बन्ध इस प्रकार है:

मूल्य = सीमान्त आय $\times\left[\frac{(E)}{(E)-1}\right]$

जहाँ (E) = मूल्य मांग लोच का अगर मूल्य

मार्क-अप का सीधा सम्बन्ध मूल्य माग लोच अर्थात् E से है। किस वस्तु का कितना मार्क-अप होगा यह हम सीधा E से ज्ञात कर सकते है। लेकिन ऐसा कैसे है यह हम इस प्रकार देखने है। यह हम जानते है कि किसी फर्म के सन्तुलन की स्थिति में दो बाते होती है।

प्रथम सीमान्त लागत = सागान आप ----------(1)

तथा दूसरे मूल्य = सामान आय $\left[\frac{(E)}{(E)-1}\right]$ ----------(2)

अब क्योंकि सन्तुलन की स्थिति मे सीमान्त लागत, सीमान्त आय के समान है अत: हम टूसरे साम्य में सीमान्त आय के स्थान पर सीमान्त लागत लिख सकतें है। अत: सन्तुलन की स्थिति में-

मूल्य = सन्तुलन सीमान्त लागत $\left[\frac{(E)}{(E)-1}\right]$

इस साम्य को 'इष्टतम मार्क-अप साम्य" कहा जाता है तथा $\left[\frac{(E)}{(E)-1}\right]$

को 'इष्टतम मार्क-अप गुणांक (Optimum Mark-up-Multiplier) कहा जाता है।

उदाहरणत: मान लीजिए किसी वस्तु की सन्तुलन सीमान्त लागत 100 रुपये है तथा उस वस्तु की मूल्य मांग लोच अर्थात E=-5 है। इष्टतम मार्क-अप साम्य के अनुसार उस वस्तु का मूल्य इस प्रकार निर्धारित होगा:

$$\text{मूल्य} = \text{सन्तुलन सीमान्त लागत } X\left[\frac{(E)}{(E)-1}\right]$$

=100 X 5/5-1

=100 x 5/4 या 100 x 1.25

= 125 रुपये

उपर्युक्त उदाहरण में सन्तुलन सीमान्त लागत 100 है जबकि निर्धारित मूल्य 1.25, अर्थात् मूल्य सीमान्त लागत का 1.25 गुणा है। यही 1.25 जो कि [E]/[1E1-1] के बराबर है, इष्टतम मार्क-अप गुणांक है यह केवल मूल्य मांग लोच के मूल्य पर आधारित है।

इष्टतम मार्क-अप गुणांक [E1/[1E1-1] से स्पष्ट है कि 1E1 का मूल्य जितना अधिक हागा मार्क-अप गुणांक भी उतना ही कम होगा । जब (E[E]=5 थी तो मार्क-अप गुणाक 1.25, था। अब मान लीजिए [E] का मूल्य 10 है, ऐसे में

मार्क-अप गुणांक [E]/[E]=1] =10/10=$\frac{10}{9}$=1.1 लगभग

इस प्रकार हम देखते है कि E तथा मार्क-अप गुणांक में विपरीत सम्बन्ध है। यदि E का मूल्य अधिक होता जायेगा उतना ही मार्क-अप गुणांक का मूल्य कम होता जायेगा।

24.9.2 मार्क-अप जोड़ (Mark-up Addition) गुणांक

मार्क-अप की अवधारणा एक और प्रकार से प्रस्तुत की जा सकती है। ऊपर हमने देंखा है कि-

निर्धारित मूल्य = सीमान्त लागत X मार्क-अप गुणांक

= सीमांत लागत x 1E1 / [1E1-1].....(1)

अब यदि इस साम्य (i) में से हम एक बार सीमान्त लागत घटा दें और फिर सीमान्त लागत जोड़ दे तो साम्य के मूल्य पर कोई प्रभाव नही होगा, केवल उसका स्वरूप बदल जायेगा। मान लीजिए सीमान्त लागत को हम MC कहते है। इस प्रकार-

निर्धारित मूल्य =MC [1E1/1E1-1]-MC+MC

= MC [1E1/1E1-1-1]+MC

= MC [1/1E1-1]+MC

= MC+MC[1/1E1-1]

इस साम्य में 1/1E-1 मार्क अप जोड़ (Mark-up Addition) कहलायेगा। इसे हम यदि 100 से गुणा कर दें तो इसे हमें प्रतिशत मार्क अप जोड़ (Percentage Mark-up Addition) भी कह सकते है। अत:

प्रतिशत मार्क्कप जोड़ =1/ 1E1-1X100 है।

24.9.3 मार्क- अप गुणांक तथा मार्क अप जोड़ मे अन्तर

संक्षेप में मार्क अप गुणांक तथा मार्क अप जोड़ के सम्बन्ध इस प्रकार है:

मार्क अप जोड़ = मार्क अप गुणांक -1

उदाहरणत: यदि E=-5 है तो

मार्क अप गुणांक =1E1/1E1-1=5/5-1=5/4=1.25

मार्क अप जोड़ = 1/ 1E1-1 = 1/5-1=1/4=0.25

अत: मार्क अप जोड़ = मार्क अप गुणांक -1

= 1.25-1 = 0.25 है।

मार्क अप की कोई सी भी विधि अपनाएं मूल्य निर्धारण पर कोई अन्तर नही आयेगा। मान लीजिए सन्तुलन सीमान्त लागत 100 रुपये है। दोनों विधियों के अनुसार मूल्य निर्धारण इस प्रकार होगा :-

निर्धारित मूल्य = सन्तुलन सीमान्त लागत X मार्क अप गुणांक

= 100x 1.25 =125

निर्धारित मूल्य = सन्तुलन सीमान्त लागत X (सीमान्त लागत X मार्क अप जोड़)

= 100+ (100x0.25)

= 100+25=125

यदि हम चाहे तो मार्क-अप गुणांक तथा मार्क-अप जोड़ को 100 से गुणा कर उन्हें प्रतिशत में व्यक्त कर सकते है:

मार्क-अप गुणांक प्रतिशत = मार्क-अप गुणांक x100

= 1.25 x 100=125%

मार्क अप जोड़ प्रतिशत = मार्क-अप जोड़ X 100

= 0.25 x 100 = 25%

दोनों के अन्तर और अधिक स्पष्ट करने के लिए तथा इनका मूल्य मांग लोच से सम्बन्ध बताने के लिए हम कुछ काल्पनिक मूल्य मांग लोच लेते है और परिणामों को तालिका 24.1 के रूप में प्रदर्शित है।

तालिका 24.1

निर्धारित मूल्य मार्क अप गुणांक और मार्क अप जोड़ मे सम्बन्ध

सन्तुलन सीमान्त लागत	मूल्य मांग लोच	मार्क-अप गुणांक	मार्क-अप जोड़	निर्धारित मूल्य MCx1E1/1E1-1
(MC)	(E)	1E1/1E1-1	1/1E1-1	MC+MC(1/1E1-1)
100	-2	2/2-1=2.00	1/2-1=1.00	200
100	-3	3/3-1=1.50	1/3-1=0.50	150
100	-4	2/4-1=1.33	1/4-1=0.33	133
100	-5	5/5-1=1.25	1/5-1=0.25	125

इस तालिका 24.1 सें यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे मूल्य मांग लोच अधिक होती जाती है वैसे-वैसे मार्क-अप गुणांक तथा मार्क-अप जोड़ गिरते जाते है तथा साथ-साथ निर्धारित मूल्य भी गिरता जाता है।

23/10 मार्क-अप मूल्य निर्धारण तथा आधुनिक लागत सिद्धान्त

आधुनिक लागत सिद्धांत में अल्पकाल नथा दीर्घकाल में औसत परिर्वतनीय लागत को काफी उत्पादन सीमा तक स्थिर माना गया है। ऐसी स्थिति में सीमान्त लागत "औसत परिवर्तनीय लागत" के समान होती है। अत: यदि औसत परिवर्तनीय लागत (Average Variable Cost) स्थिर हो और यदि सन्तुलन वहाँ हो जहाँ यह स्थिर है तो मार्क-अप साम्य में सीमान्त लागत के स्थान पर औसत परिवर्तनीय लागत (AVC) को भी रखा जा सकता है। आधुनिक लागत सिद्धांत के अनुसार उत्पादन उस सीमा में होता है जहाँ MC = AVC होता है । अत: संतुलन स्तर पर MR = MC =AVC की स्थिति होती है । इस स्थिति मे मार्क=अप साम्य इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता हैं -

मूल्य निर्धारण = सन्तुलन AVC (1E1/1E1-1)

= सन्तुलन AVC + सन्तुलन AVC (1/1E1-1)

यही यह बता देना आवश्यक है कि आधुनिक अर्थशास्त्री परारम्भिक लागत सिद्धांत कें अपेक्षा आधुनिक लागत सिद्धांत को अधिक व्यवहारिक मानते है क्योकि यह सिद्धांत तथ्यों परआधारित है।

24.11 मार्क-अप मूल्य निर्धारण की व्यावहारिकता।

मार्क-अप मूल्य निर्धारण की धारणा हमें यह बताने में सहायक है कि किसी भी फर्म के प्रबंधक अपने द्वारा बनाये गये वस्तु का मूल्य निर्धारण कैसे करते है। मूल्य निर्धारण के सिद्धान्तो की प्राय: यह कह कर आलोचना की जाती है कि ये व्यावहारिक नही है। कोई भी व्यापारी या उत्पादक सीमान्त लागत व सीमान्त आय की गणना नही करता है और न ही वह मूल्य मांग लोच आदि का अनुमान लगाता है । शायद उसे इन सैद्धान्तिक अवधारणाओं के बारे में ज्ञान भी नही होता है। वह तो सीधा साधा लागत का अनुमान लगाता है और उसमें कुछ और जोड़ कर मूल्य निर्धारित कर देता है । यह 'कुछ और जोड़ना " वही है, जिसे हमने "मार्क-अप" की संज्ञा दी है।

हम यह मान सकते है कि प्रत्येक उत्पादक सीमान्त आय, सीमान्त लागत, मूल्य मांग लोच आदि के संदर्भ में नही लोचता हैं। लेकिन यह तो सब मानते है कि लगभग प्रत्येक उत्पादक लागत का अनुमान लगाता है औंर उसमें मार्क-अप जोड़ कर मूल्य निर्धारित करता है। अब प्रश्न यह है कि वह मार्क्कप के बारे में निर्णय किस आधार पर लेता है। क्योंकि वह किसी वस्तु में मार्क-अप कम और किसी मे अधिक लगाता है? क्योंकि अलग-अलग बाजारों में अलग-अलग मार्क-अप लगाता है? क्योंकि वह मौसम के अनुसार मार्क-अप कम या अधिक करता रहता है? इन सब का उत्तर एक ही है कि जाने या अनजाने उसके मार्क-अप के बारे में निर्णय का आधार मूल्य-मांग लोच ही है । हो सकता है कि वह मूलय मांग लोच की अवधारणा के बारे में जानता भी न हो लेकिन फिर भी उसके मार्क-अप के बारे में निर्णय का आधार मूल्य मांग लोच ही है।

आइये देखें कि किसी उत्पादक का मार्क-अप के बारे में निर्णय का आधार मूल्य-मांग लोच किस प्रकार है? उत्पादक उपभोक्ता की मांग का तीव्रता को देख कर मार्क-अप निर्धारित करता है। जिस वस्तु की

उपभोक्ता अधिक तीव्रता से मांग करता है उस वस्तु का मार्क-अप भी उतना ही अधिक होगा। अधिक तीव्रता का अर्थ है कि थोड़ा मूल्य बढ़ा देने पर भी उस वस्तु की मांग पर कोई विशेष प्रभाव नही पड़ने वाला है क्योंकि उपभोक्ता उस वस्तु कों खरीदने को उतावला है। उपभोक्ता की इस तीव्रता को यदि हम मूल्य-मांग लोच में अनुवाद करें तो हम कहेंगे कि वस्तु की मूल्य-मांग लोच कम है। मूल्य मांग लोच कम होने का अर्थ यही होता है कि मूल्य में थोड़ा वृद्धि होने पर मांग पर कोई विशेष प्रभाव नही पड़ता है। इस प्रकार मांग तीव्रता और मांग लोच में एक दूसरे के विपरीत है। अधिक मांग तीव्रता का अर्थ कम मांग लोच जबकि कम तीव्रता का अर्थ अधिक मांग लोच है। यदि मांग की तीव्रता कम है(अर्थात् मांग लोच अधिक हैं) तो मार्क-अप भी कम होगा क्योंकि मूल्य अधिक रखने से मांग के तेजी से गिरने की संभावना अधिक रहती है।

उपयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि मार्क-अप सम्बन्धी निर्णय मांग की तीव्रता को देखकर लिए जाते है। जब उत्पादक मांग की तीव्रता का अनुमान लगा रहा होता है तो वह एक प्रकार से मूल्य मांग लोच का ही अनुमान लगा रहा होता है। अत: मार्क-अप के बारे में निणर्य के पीछे जानें या अनजाने मूल्य-मांग लोच ही होती है।

24.12 मार्क- अप तथा मूल्य विभेदक फर्म

उपर्युक्त विश्लेषण से अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि एक मूल्य विभेदक फर्म अपने उत्पाद का मूल्य विभिन्न बाजारों में किस प्रकार तय करती है। जिस बाजार में मांग की तीव्रता अधिक होगी (अर्थात् मूल्य मांग लोच कम होगी) मार्क-अप अधिक होगा तथा मूल्य ऊँचा निर्धारित होगा। जिस बाजार में मांग का तीव्रता कम होगी (अर्थात मूल्य मांग लोच अधिक होगी) मार्क-अप कम होगा और मूल्य नीचा निर्धारित होगा।

मान लीजिए मूल्य विभेदक फर्म के दो बाजार "क " तथा 'ख' है जिनमें मूल्य मांग लोच क्रमश: 3 और 5 है। मान लीजिए उसकी सीमान्त लागत 10 रुपये है। दोनों बाजारों का "मार्क-अप जोड़" इस प्रकार होगे:-

बाजार "क" का मार्कमा जोड़ प्रतिशत = $\frac{1}{(E)-1}$ X 100 = 1/3-1x100= 50 %

बाजार " ख" का मार्क-अप जोड़ प्रतिशत =1/1E1-1x10015-1x100 =25%

इन "मार्क-अप" "जोडे" के आधार पर बाजार मूल्य इस प्रकार होंगे:-

बाजार "क" का मूल्य = सीमान्त लागत + (सामाज़ लागन S मार्क आ जोड़ प्रतिशत)

= 10+ (10 x 50%)

= 10+5= 15 रुपये

बाजार "ख " का मूल्य = 10 + (10 x 25%)

= 10+2.50 =12.50 रुपये।

इस प्रकार कम मूल्य मांग लोच वाले बाजार में मूल्य 15 रुपये तथा अधिक मूल्य मांग लोच वाले बाजार में मूल्य 12.50 रुपये निर्धारित होना है।

बोध प्रश्न 2

इकाई के अन्त में दिये गयें उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. मार्क आ गुणांक का अर्थ संक्षेप में बताइये।
2. मार्क अप जोड़ का अर्थ संक्षेप में बताइये।
3. निम्नलिखित तालिका में रिक्त स्थान भरिये:

सन्तुलन सीमान्त आय	सन्तुलन सीमान्त लागक	मूल्य मांग लोच	मार्क-अप गुणांक	मार्क-अप जोड़
200		-7		
200		-8		
200		-9		
200		-10		

4. एक फर्म की हर उत्पादन स्तर पर औसत लागत एक समान है और वह 500 रु. है। यदि उस फर्म के उत्पादन की मूल्य मांग लोच -11 हो, तो उस. फर्म का मार्क-अप गुणांक. प्रतिशत मार्क का जोड़ तथा निर्धारित मूल्य ज्ञात ज्ञात कीजिए।

24.13 सारांश

मूल्य-विभेद

मूल्य विभेद से अभिप्राय एक ही फर्म द्वारा एकरूप उत्पादन को भिन्न-भिन्न बाजारों में भिन्न-भिन्न मूल्य पर बेचना है जबकि सभी बाजारों में फर्म की लागत एक समान है। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि (1) फर्म की लागत एक समान है। (2) एक बाजार का उत्पादन दूसरे बाजार में न बिक पाये। (3) विभिन्न बाजारों की मांग की मूल्य लोच भिन्न-भिन्न हो। (4) प्रत्येक बाजार में बेचना लाभदायक हों।

जब उत्पादक समस्त उपभोक्ता बचत छीन पाये तो यह प्रथम श्रेणी का मूल्य विभेदन है। यदि दो से अधिक बाजार हों और उपभोक्ता बचत का केवल कुछ भाग ही ले पाये तो यह द्वितीय श्रेंणी का मूल्य विभेदन है। और यदि केवल दो ही बाजार हो तों इसे तृतीय श्रेणी का मूल्य विभदेन कहते हैं।

मूल्य विभेदन फर्म द्वारा सन्तुलन प्राप्त करने की निम्न मुख्य शर्तें है :- (1) सीमान्त लागत = समग्र सीमान्त आय। (2) सन्तुलन स्तर कें पश्चात् सीमान्त लग़त समग्र सीमान्त आय से अधिक होनी चाहिए। (3) सन्तुलन सीमान्त लागत = प्रथम बाजार की सीमान्त आय = दूसरे बाजार की सीमान्त आय।

मूल्य विभेद के लिए यह आवश्यक नही है कि उत्पादक को सभी बाजारों में एकाधिकार हो। लेकिन मूल्य मांग लोच में अन्तर अवश्य होना चाहिए। साथ-साथ यह भी आवश्यक नही है कि केवल मूल्य मांग लोच विभिन्न होने से ही मूल्य विभेदन सफल व लाभदायक हो सकता है। मूल्य विभेद की स्थिति में कम लोचदार बाजार में अधिक मूल्य जबकि लोचदार बाजार में कम मूल्य होता है।

मार्क अप मूल्य निर्धारण :

मूल्य निर्धारण के लिए सीमान्त लागत का अनुमान लगा कर उसमें जोड़ी गयी राशि को मार्क-अप की संज्ञा दी जाती है। इस अवधारणा को मार्क-अप गुणांक तथा मार्क अप जोड़ दो रूपों में व्यक्त किया जा सकता है। दोनों से मूल्य निर्धारण एक समान होना है।

आधुनिक लागत सिद्धान्त में सन्तुलन स्तर उत्पादन सीमा में होता जिसमें औसत लागत स्थिर होती है। अत: सीमान्त लागत भी स्थिर रहती है। इस प्रकार मार्क-अप अवधारणा में सीमान्त लागत के स्थान पर औसत लागत भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

मार्क अप मूल्य निर्धारण की अवधारणा व्यवहारिक है। प्रत्येक फर्म मूल्य निर्धारण करते समय पहले लागत का अनुमान लगाती है और फिर उसमें कुछ राशि जोड़ कर मूल्य निर्धारित करनी हैं। यही मार्क-अप है। यह मार्क-अप कितना हेगा यह उपभोक्ता की मांग की तीव्रता पर निर्भर करता है। अधिक तीव्रता का अर्थ है अधिक मार्क-अप। अधिक तीव्रता का अर्थ कम मूल्य मांग लोच भी हैं। अत: जाने अनजाने उत्पादक मूल्य मांग लोच ध्यान में रखकर ही मार्क अप की राशि तय करता है। इसी आधार पर कोई मूल्य-विभेदक फर्म विभिन्न बाजारों में विभिन्न मूल्य निर्धारित करती है।

24.14 शब्दावली

मूल्य विभेदीकरण (Price Discrimination)	एक ही फर्म एक ही उत्पादन के भिन्न भिन्न बाजारों से भिन्न भिन्न मूल्य प्राप्त करना।
समग्र सीमान्त आय (Aggregate Marginal Revenue)	एक ही फर्म द्वारा बेचे गये उत्पादन के भिन्न-भिन्न बाजारों की सीमान्त आयों का जोड़
मार्क-अप (Mark-up)	मूल्य निर्धारण करते समय उत्पादन द्वारा लागत में जोड़ी गयी राशि।

24.15 कुछ उपयोगी पुस्तके

A.Koutsoyiannois: Modern Microeconomics(Second Edition), The Macmillan Press Ltd.

D.S. Watson and M.Getz: Price Theory and its uses (Fifth Edition) Houghton Mifflin Co.

24.16 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(क) उत्पादक का पूर्ति पर नियन्त्रण हो।

(ख) एक बाजार का माल दूसरे बाजार में आकर न बिक सकता हो।

(ग) भिन्न-भिन्न बाजारों में मूल्य मल लोच भिन्न-भिन्न हो।

(घ) प्रत्येक बाजार में उत्पादन बेचना लाभदायक हो।

(क) प्रथम श्रेणी: मूल्य विभेदी उल्गदन समस्त उपभोक्ता बचत छीन लेने में सफल होता है। बाजारों की संख्या दो से अधिक होती है।

(ख) द्वितीय श्रेणी: उत्पादक उपभोक्ता बचत का केवल कुछ भाग ही छीन पाता है। बाजारों की संख्या दो से अधिक होती है।

(ग) तृतीय श्रेणी: बाजारों की संख्या केवल दो होती है।

तीन बातें आवश्यक है। (1) सीमान्त लागत = समग्र सीमाज्ञ आय (2) सन्तुलन के बाद सीमान्त लागत समग्र सीमान्त आय से अधिक है। (3) सन्तुलन सीमान्त लागत = प्रथम बाजार की सीमान्त आय = द्वितीय बाजार की सीमान्य आय।

प्रथम बाजार का मूल्य = 40x2/2-1 =80 रुपये

दूसरें बाजार का मूल्य = 40x4/4-1 =53.33रुपये

बोध प्रश्न 2

वह अनुपात जिसे सीमान्त लागन से गुणा कर मूल्य निर्धारित करते है उसे मार्क-अप गुणांक कहने है। इसका माप मूल्य मांग लोच पर आधारित है जौ कि इस प्रकार है:-

मार्क अप गुणांक=1E1 / 1E1-1

सीमान्त लागत का वह अनुपात जिसे सीमान्त लागत में जोड़ कर मूल्य निर्धारित करते हैं, उसे मार्क-अप जोड़ कहते हैं। इसका माप इस प्रकार हैं:-

मार्क अप जोड़ =1/1E1-1

सन्तुलन सीमान्त आय	सन्तुलन सीमान्त लागत	मूल्य मांग लोच	मार्क-अप गुणांक	मार्क-अप जोड़
200	200	-7	7/6=1.67	1/6=1.67
200	200	-8	8/7=1.14	1/7=1.14
200	200	-9	9/8=1.13	1/8=1.13
200	200	-10	10/9=1.11	1/9=1.11

( ) 1.10 ( ) 10% ( ) 550 रुपये

इकाई – 25

सीमान्त उत्पादकता -सिद्धान्त-पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत

Marginal Productivity Principle: Under Perfect Competition

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 साधन कीमत निर्धारण-प्रारम्भिक स्पष्टीकरण एवं मान्यताएं

25.3 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

25.3.1 जे.बी. क्लार्क का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

25.3.2 मार्शल एवं हिक्स की व्याख्या

25.4 प्रतियोगी बाजार में साधन कीमत निर्धारण

25.4.1 फर्म द्वारा एक परिवर्तनशील साधन की मांग

25.4.2 अनेक परिवर्तनशील साधनों की स्थिति में फर्म की साधन संबंधी मांग

25.4.3 फर्म की साधन माँग को प्रभावित करने वाले तत्व

25.4.4 एक साधन सम्बन्धी बाजार की मांग

'25.4.5 परिवर्तनशील साधन-श्रम की पूर्ति

25.4.6 बाजार का श्रम पूर्ति वक्र

25.4.7 प्रतियोगी बाजार में संतुलन कीमत निर्धारण

25.5 यूलर प्रमेय तथा योगीकरण की समस्या अथवा उत्पाद नि:शेषण प्रमेय

25.6 सारांश

25.7 शब्दावली

25.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

25.9 अभ्यासों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

पिछली इकाइयों में हम उत्पादन प्रक्रिया व साधन एवं पैमाने के प्रतिफलों का अध्ययन कर चुके है और उत्पादन कीमत निर्धारण के सका में भी पढ़ चुके है। इसके बाद यह प्रश्न: स्वत: सामने आता है कि उत्पादन से प्राप्त आय का उत्पादन में लगे साधनों के बीच किस प्रकार वितरण किया जाता है। हम इस इकाई में साधन कीमत निर्धारण पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे और इस संदर्भ में हम:

साधन कीमत निर्धारण सम्बंधी मान्यताओं पर विचार करेंगे।

- वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की जे. बी. क्लार्क द्वारा प्रस्तुत व्याख्या का अध्ययन करेंगे तथा उसकी संक्षिप्त समीक्षा करेंगे।
- सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मार्शल तथा हिक्स द्वारा प्रतिपादित विवेचन के आधार पर
- एक परिवर्तनशील साधन की मांग के निर्धारक तत्वों पर विचार करेंगे।
- अनेक परिवर्तनशील साधनों की स्थिति में एक साधन की मांग के निरूपण का अध्ययन करेंगे।
- साधन पूर्ति के संदर्भ में श्रम की पूर्ति का विवेचन करेंगे।
- बाजार स्तर पर मांग तथा पूर्ति वक्रों के आधार पर साधन बाजार में संतुलन का अध्ययन करेंगे।
- अब में हम साधनों को सीमान्त उत्पादकता के आधार पर किए गए भुगतानों से सम्बन्धित यूलर प्रमेय को समझने की चेष्टा करेंगे।

25.1 प्रस्तावना

साधन बाजार में कीमत निर्धारण का विवेचन आय वितरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साधन कीमत की विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों के बीच साधन आवंटन के अन्तर्गत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साथ ही इसका प्रभाव साधनों के स्वामियों की आय तथा जीवन स्तर पर पड़ता है। हम इस इकाई में प्रतियोगी साधन बाजार के अन्तर्गत साधन कीमत निर्धारण के सामान्य वितरण सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे। पहले हम क्लार्क के द्वारा प्रतिपादित वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त पर विचार करेंगे और फिर हम मार्शल तथा हिक्स द्वारा प्रतिपादित साधन कीमत के मांग और पूर्ति सिद्धान्त पर विचार करेंगे। एक फर्म की साधन मांग के संदर्भ में एक परिवर्तनशील साधन तथा अनेक परिवर्तनशील साधन दोनों प्रकार की स्थितियों पर विचार करेंगे और देखेंगे कि साधन की सीमान्त उत्पादकता उसकी मांग को किस प्रकार निर्धारित करती है। फर्मों के मांग वक्रों से, हम देखेंगे कि किस प्रकार बाजार के साधन मांग वक्र का निरूपण किया जा सकता है।

साधन पूर्ति के सन्दर्भ में हम प्रमुख परिवर्तनशील साधन श्रम के पूर्ति वक्र के निरूपण का वैयक्तिक तथा बाजार स्तर पर करेंगे। बाजार स्तर पर मांग एवं पूर्ति के द्वारा साधन की संतुलन कीमत के निर्धारण की व्याख्या करेंगे।

अन्त में हम वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त से सम्बन्धित एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या पर विचार करेंगे। यह समस्या है साधनों के द्वारा प्राप्त योगीकरण की। हम यह जानने के चेष्टा करेंगे कि सीमान्त उत्पादकता आधारित साधनों के भुगतान का योग किन दशाओं मे उत्पादन के बराबर होता है, क्या समस्त उत्पादन मूल्य उत्पादन में लगे साधनों के बीच वितरित हो जाता है यदि साधनों को उनके सीमान्त उत्पादन मूल्य के बराबर पारिश्रमिक मिलता हो?

25.2 साधन कीमत निर्धारण : प्रारम्भिक स्पष्टीकरण एवं मान्यताएं

साधन कीमत निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्त पर विचार करने से पहले कुछ बातों को भली भांति समझ लेना उचित होगा। हमें प्रारम्भ में ही यह समझ लेना चाहिए कि साधन कीमत से तात्पर्य साधन की सेवा की कीमत से होता है न कि साधन की स्वयं की कीमत से। एक श्रमिक को एक दिन में आठ घण्टे की जो मजदूरी मिलती है, वह उसकी सेवाओं की कीमत होती है न कि स्वयं की। मजदूर अपने श्रम को बेचता है न कि स्वयं को। इसी प्रकार लगान, भूमि की कीमत नही वरन् उसके प्रयोग को किराया मात्र होता है। अत:, ' 'साधन कीमत " का अर्थ हम साधन की सेवाओं, उनके प्रयोग के मूल्य के रूप में ही लेंगे, अन्यथा नहीं।

यह भी स्पष्ट करना उचित होगा कि वितरण सिद्धान्त का तात्पर्य वैयक्तिक वितरण (Personal distribution) से नही वरन कार्यात्मक वितरण (Functional distribution) से है। कार्यात्मक वितरण के अन्तर्गत विभिन्न साधनों की सेवाओं की कीमतों के निर्धारण की व्याख्या की जाती है न कि इस बात की कि समाज के विभिन्न समुदायों के बीच राष्ट्रीय आय का वितरण किस प्रकार का है?

जैसा कि हम जानते है कि सैद्धांतिक विवेचनों में प्राय: कुछ मान्यताएं निहित रहती है। अत. यहां भी यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कार्यात्मक वितरण पर भी दो दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है : व्यष्टि वादी एवं समष्टिवादी। व्यष्टि वादी दृष्टिकोण से उत्पादन के साधनों के पारिश्रमिक की दरों के निर्धारण की व्याख्या की जाती है। जैसे श्रमिकों की मजदूरी की दर, भूमि पर लगान अथवा पूंजी के आज की दर। इसके विपरीत समष्टिवादी दृष्टिकोण से अध्ययन करते समय हम राष्ट्रीय आय में विभिन्न साधनों के समग्र भागों पर विचार करने है और देखने है कि राष्ट्रीय आय का कितना प्रतिशत साधन को मिलता है। हम यहां व्यष्टि वादी दृष्टिकोण से साधनों की पारिश्रमिक दरों के निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त की विवेचना करेंगे। यद्यपि पुराने अर्थशास्त्रियों में साधनों को चार श्रेणियों में विभाजित करने और उनके पारिश्रमिकों का निर्धारण लगान, मजदूरी, आज एवं लाभ के रूप में व्याख्या करने की परम्परा रही है। परन्तु हम इनके पारिश्रमिक अथवा कीमत निर्धारण के लिए एक सामान्य सिद्धान्त की रचना का प्रयास करेंगे।

साथ ही हम यह मानकर चलेंगे कि वस्तु बाजार एवं साधन बाजार दोनों में प्रतियोगिता की स्थिति है। इसका तात्पर्य यह है कि एक और प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन को बाजार में प्रचलित कीमत पर बेचती है और इस कीमत की कोई एक फर्म प्रभावित नहीं कर सकती और दूसरी ओर प्रत्येक फर्म साधन बाजार में प्रचलित कीमत पर साधन को काम में लगाती है। साधन बाजार में एक ही कीमत होने की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कोई एक फर्म साधन की थोड़ी सी मात्रा ही लेती है और दूसरी ओर साधन की पूर्ति करने वाला भी साधन की इतनी पूर्ति नही कर सकता कि वह कीमत को प्रभावित कर सके। इसके विभिन्न उपयोगों के बीच साधन की गतिशीलता की मान्यता भी निहित रहती है। परिणाम स्वरूप प्रतियोगी साधन बाजार में एक प्रकार के साधन की एक समय में एक ही कीमत प्रचलित होती है जिस पर प्रत्येक फर्म उस साधन को अपनी आवश्यकतानुसार मात्रा में नियोजित कर सकती है।

यहां यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि साधन की मांग व्युत्पन्न मांग(derived demand) कही जाती है। अर्थात् उस वस्तु की मांग से व्युत्पन्न होती है, जिसको उत्पादित करने में साधन की सेवाओं का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से वस्तु की कीमत तथा साधन की कीमत के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यथार्थ में वितरण मूल्य सिद्धान्त का विस्तार ही है और कीमत निर्धारण चाहे वस्तु का हो अथवा साधन का, मूल रूप से दोनों में काफी साहश्य है।

अन्ततः उत्पादन फलन के दो लक्षणों का साधन कीमत निर्धारण के सन्दर्भ में विशेष महत्व है। ये लक्षण है असमान सीमान्त उत्पादकता तथा साधनों के बीच प्रतिस्थापन्नता। पहला लक्षण फर्म के द्वारा साधन के प्रयोग की मात्रा की सीमा निश्चित करता है और दूसरा लक्षण सीमान्त उत्पादकता की गणना के लिए आवश्यक है। यथार्थ में साधन प्रतिफलों की जब व्याख्या करते है तो यह मानते है कि अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रखकर एक साधन की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। यह तभी संभव हो सकता है जब साधनों के बीच प्रतिस्थापन संभव है। जब साधनों का निश्चित अनुपात में प्रयोग किया जाता है तब सीमान्त उत्पादन का अनुमान ही नही लगाया जा सकता।

25.3 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

25.3.1 जे.बी. क्लार्क का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त :

यद्यपि वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के विकास के साथ अमरीकी अर्थशास्त्री का नाम जुड़ा हुआ है तथापि इनसे पहले भी कुछ एक लेखों में सीमान्त उत्पादकता के विश्लेषण के संकेत मिलते है। क्लार्क ने स्वयं अपनी पुस्तक ' 'धन का वितरण " (The Distribution of Wealth) में हैनरीजार्ज के प्रति आभार व्यक्त किया है और उनके वितरण सम्बन्धी विचारों का सारांश भी दिया है। हम जे. बी. क्लार्क की सीमान्त उत्पादकता सम्बन्धी प्रस्तुति पर विचार करेंगे। क्लार्क ने अपने सिद्धान्त को निम्न धारणाओं के आधार पर प्रस्तुत किया है

(1) वे एक गतिहीन समाज की कल्पना करते है जिसमें-जनसंख्या, पूंजी के स्टॉक व उत्पादन तकनीक में कोई परिवर्तन नही होता है।

(2)श्रम (साधन) बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।

(3)श्रम पूर्णतया गतिशील है, तथा

(4)पूर्ण रोजगार की स्थिति है अर्थात् सभी उपलब्ध श्रमिकों, को संतुलन की अवस्था में रोजगार मिल जाता है। इन उपर्युक्त मान्यताओं के साथ अपने सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत को प्रस्तुत करते है। उनका मत है कि प्रत्येक विवेकशील उद्यमी पूंजी की उपलब्ध मात्रा के साथ उतने ही श्रमिक काम पर लगाएगा। जितने श्रमिकों से उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। एक उद्यमी अथवा एक उद्योग पूंजी की दी हुई राशि के साथ ज्यों- ज्यों श्रम की मात्रा बढ़ाता है, सीमान्त उत्पादकता अर्थात् अतिरिक्त श्रम से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि घटती जाती है। एक उद्यमी (अथवा उद्योग) श्रमिकों को तब तक काम पर लगाता रहेगा, जब तक कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता घट कर प्रचलित मजदूरी दर बराबर नहीं हो जाती। दोनों बराबर होने पर ही उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। चित्र 25.1 को देखिए जिसमें X अक्ष पर श्रम की मात्रा तथा Y अक्ष पर सीमान्त उत्पादकता दर्शायी गई है और MP सीमान्त उत्पादकता वक्र है। मजदूरी पर OW हो तो OL श्रमिकों को लगाना अधिकतम लाभदायी होगा। इसी मजदूरी दर पर OL से कम या OL से अधिक श्रम लगाने से लाभ अपेक्षाकृत कम हो जायेगा। यह ध्यान रहे कि कोई उद्यमी (फर्म अथवा उद्योग) अकेले मजदूरी को प्रभावित नही कर सकता।

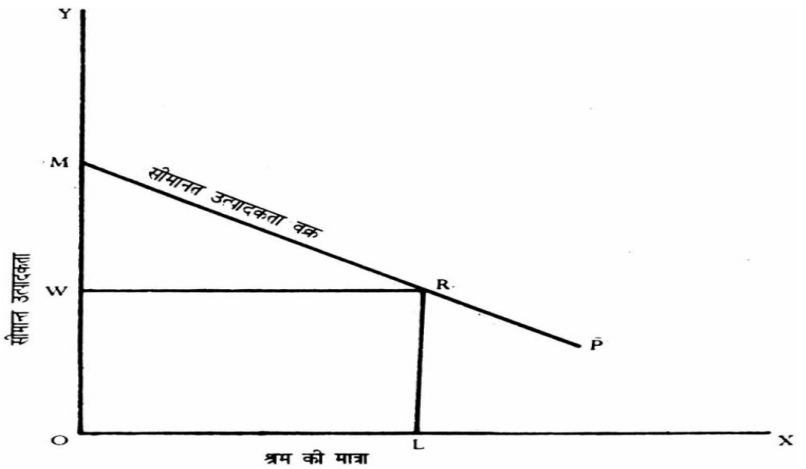

चित्र 25.1

अत: उसे केवल यह निश्चय करना होता है कि इस प्रचलित मजदूरी दर पर कितने श्रमिक लगाये कि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट नही होता है कि प्रचलित मजदूरी की दर कैसे निर्धारित होती है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए क्लार्क ने अर्थ-व्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति मानते हुए बतलाया कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी की वह दर निश्चित होगी, जो अर्थ-व्यवस्था में उपलब्ध श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता के समान हो। यदि श्रमिकों की उपलब्ध मात्रा की सीमान्त

उत्पादकता की तुलना में मजदूरी की दर अधिक हो तो सभी श्रमिकों को रोजगार नहीं मिल सकेगा। परिणाम यह होगा कि बेकार श्रमिकों की प्रतियोगिता के कारण मजदूरी की दर घटकर उपलब्ध श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। इसकी विपरीत यदि मजदूरी की दर कुल उपलब्ध श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उद्यमी लाभ की आकांक्षा से श्रमिकों की संख्या बढ़ाना चाहेंगे। पर उपलब्ध श्रमिक तो पहले से ही काम पर लगे होंगे और उद्यमियों की मांग के कारण मजदूरी की दर बढ़कर उपलब्ध श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जाती है। इसी तर्क को रेखा चित्र 25.2 दिखलाया गया है।

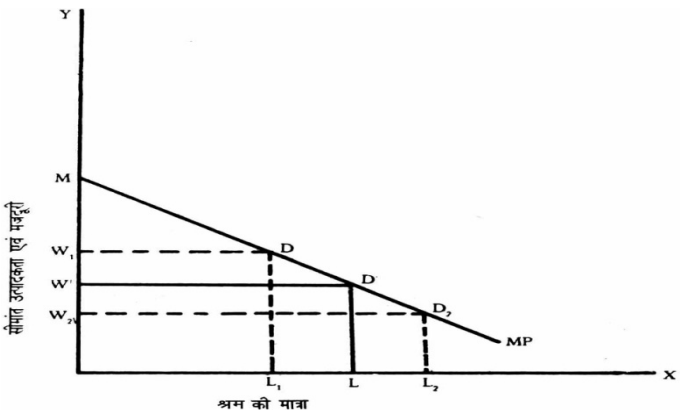

चित्र 25.2

मान लीजिए कि MP श्रम का सीमान्त उत्पादकता वक्र है और अर्थव्यवस्था में श्रम की कुल मात्रा OL है जिसकी सीमान्त उत्पादकता LD है। अत: मजदूरी की दर LD के बराबर अर्थात् OW_1 निर्धारित होगी न इससे कम और न ज्यादा। यदि मजदूरी दर $0W_1$ हो तो इस दर पर श्रम की OL मात्रा को ही रोजगार मिल सकेगा। क्योंकि OL_1 श्रम की सीमान्त उत्पादकता ही मजदूरी दर OW_1 के बराबर होगी और परिणाम स्वरूप LL_1 श्रम को रोजगार नही मिलेगा। इन बेरोजगार श्रमिकों के कारण मजदूरी दर घटकर पुन: OW हो जायेगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी दर OW_2 हो तो श्रम की OL_2 मात्रा को उद्यमी काम देना चाहेंगे। क्योंकि OL_2 की ही सीमान्त उत्पादकता मजदूरी दर OL_2 के बराबर होगी। परन्तु कुल श्रम मात्रा OL ही उपलब्ध है। अत: उद्यमियों की अधिक श्रम को काम देने की चेष्टा का परिणाम यह होगा कि मजदूरी की दर बढ़ी हुई मांग के कारण पुन: OW हो जायेगी। इस प्रकार हम इस' निष्कर्ष पर पहुंचते है कि मजदूरी की दर समस्त अर्थ-व्यवस्था में उपलब्ध श्रम की सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही निर्धारित होगी।

द्वारा की क्लार्क का व्याख्या के उपरान्त हम मार्शल तथा हिक्स के दृष्टिकोण पर विचार करेंगे। परन्तु इससे पहले समीक्षात्मक दृष्टिकोण से यह अंकित कर देना उचित होगा कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की काफी आलोचना की गई है। इस सम्बन्ध में जो आपत्तियाँ उठाई गई है, वे सिद्धान्त की पूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण रोजगार स्थैतिक समाद्र आदि मान्यताओं को लेकर ही उठाई गई है। आक्षेप ये है कि ये सभी मान्यताएँ वास्तविकता से परे है। परन्तु इन आपत्तियों का औचित्य इसलिए नही है कि प्रत्येक

सिद्धान्त की सार्थकता उसकी मान्यताओं के अन्तर्गत ही आंकी जानी चाहिए। इसकी मान्यताएं एक आदर्श स्थिति का प्रतिमान प्रस्तुत करती है। जिसके आधार पर वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन कर सकते है। उदाहरण के लिए जब बाजार में एकाधिकार होता है तो शोषण की बात कही जाती है। लेकिन शोषण का अर्थ लगाने के लिए हमें सीमान्त उत्पादन का सहारा लेना पड़ता है और कहना होना है कि मजदूरी जितनी सीमान्त उत्पादन मूल्य से कम हो उतना ही शोषण होगा। यथार्थ में वास्तविक स्थिति के मूल्यांकन के लिए हमें आदर्श प्रतिमानों की आवश्यकता होती है और इसी में इनकी सार्थकता होनी है। इस दृष्टि से सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनाओं का औचित्य नही है।

25.3.2 मार्शल एवं हिक्स की व्याख्या

यद्यपि क्लार्क द्वारा प्रतिपादित सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की अधिकांश आलोचनाएँ उचित प्रतीत नही होती। फिर भी इस सिद्धान्त की यह कमी है कि यह पूर्ति पक्ष पर ध्यान नहीं देता है। पहले मार्शल ने तथा बाद में हिक्स ने इसे साधन कीमत निर्धारण सिद्धान्त न मानते हुए यह मत व्यक्त किया है कि किसी भी मूल्य के निर्धारण में मांग और पूर्ति दोनों की भूमिका होती है और सीमान्त उत्पादकता केवल साधन (श्रम) की मांग को निर्धारित करती है। हम यहां मार्शल एवं हिक्स द्वारा प्रस्तुत साधन कीमत निर्धारण के मांग व पूर्ति विवेचन का अध्ययन करेंगे। यथार्थ में साधन कीमत निर्धारण को सामान्य मूल्य निर्धारण सिद्धान्त की स्थिति विशेष के रूप में ही माना जाता है। हम यहां पहले एक फर्म की साधन सम्बन्धी मांग का विश्लेषण करेंगे और फिर फर्मों की मांग को जोड़कर बाजार की समग्र मांग ज्ञान करेंगे। इसी विधि से पूर्ति का निर्धारण करेंगे।

25.4 प्रतियोगी बाजार में साधन कीमत निर्धारण

25.4.1 फर्म द्वारा एक परिवर्तनशील साधन की मांग

(i) केवल एक वस्तु X का उत्पादन होता है और बाजार पूर्ण प्रतियोगी है :
(ii) फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है
(iii) केवल एक साधन-श्रम का प्रयोग किया जाता है जिसका बाजार भी पूर्ण प्रतियोगी है अर्थात् बाजार में एक ही साधन कीमत अर्थात् मजदूरी दर प्रचलित है और एक फर्म के लिए श्रम का पूर्ति वक्र असीम लोच वाला क्षैतिज अक्ष के समान्तर है।
(iv) तकनीकी स्थिति यथावत रहती है।

इन उपयुक्त मान्यताओं के आधार पर एक फर्म की मांग को स्पष्ट करने के लिए एक विस्तृत तालिका बनाई गई है। इसे ध्यान पूर्वक देखें और साधन के सीमान्त उत्पादन के मूल्य के आंकलन पर विचार करें। हमें तालिका 25.1 को देखने से ज्ञात होता है कि फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से परिवर्तनशील साधन (श्रम) की इकाइयों को उस बिन्दु तक काम में लगायेगी जब तक कि श्रम की अगली इकाई से अपनी आमदनी में होने वाली वृद्धि लागत से अधिक है। यह बात सीधी सी है। यह स्पष्ट है कि मजदूरी की दर तो यथावत रहती है और ज्यों-ज्यों श्रमिकों की मात्रा बढ़ती है

तालिका सं० 25.1

फार्म की साधन (श्रम) संबंधी मांग का व्युत्पत्ति

उत्पादन फलन							लागत, आय व लाभ आदि					
स्थिर सामान्य पूंजी (इकाइयों में)	श्रम की इकाइयां	कुल उत्पादन (इकाइयों में)	श्रम का भौतिक सीमान्त उत्पादन	उत्पादन कीमत	कुल औगम (रु०)	भौतिक सीमान्त उत्पादन मूल्य (रु०)	कुल स्थिर लागत (रु०)	मजदूरी दर (रू०)	कुल परिवर्तनशील लागत (रु०)	कुल लागत (रु०)	सीमान्त लागत	लाभ (रु०)
K	L	X	MPP_L	P_x	R_zXP_x	VMP_L	TFC	W	$TVC=N_1L$	TC=TFC+TVC	$\frac{MC = \Delta TC}{\Delta X}$	$\prod$ =R-TC
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)	(13)
5	0	0	0	2	0	0	10	8	0	10	--	-10
5	1	20	20	2	40	40	10	8	8	18	0.40	22
5	2	38	18	2	76	36	10	8	16	26	0.44	50
5	3	54	16	2	108	32	10	8	24	34	0.50	74
5	4	68	14	2	136	28	10	8	32	42	0.57	84
5	5	80	12	2	160	24	10	8	40	50	0.66	110
5	6	90	10	2	180	20	10	8	48	58	0.80	122-
5	7	98	8	2	196	16	10	8	56	66	1.00	130
5	8	104	6	2	208	12	10	8	64	74	1.33	134
5	9	108	4	2	216	8	10	8	72	82	2.00	134
5	10	110	2	2	220	4	10	8	80	90	4.00	130

नोट- (a) ऊपर दी हुई तालिका में कॉलम सं. 3 में पूंजी की 5 इकाइयों के साथ बढ़ती हुई श्रम की वैकल्पिक मात्राओं से प्राप्त भौतिक उत्पादन मात्राएँ दी गयी हैं और सं. 4 में श्रम की सीमान्त उत्पादन की इकाइयां अंकित है। (b) श्रम के सीमान्त उत्पादन की कीमत (कॉलम सं. 5) 2 से गुणा करके श्रम के सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) को कॉलम 7 में दिखलाया गया है। (c) मजदूरी की दर (साधन कीमत) कॉलम सं. 9 में दिखलाई गई हैं। 9 वें मजदूर के सीमांत उत्पादन का मूल्य मजदूरी के बराबर हैं। श्रम की इस मात्र के प्रयोग से फर्म को अधिकतम लाभ रु. 134 होता है। (d) फर्म जब पूंजी की 5 इकाइयों के साथ श्रम की 9 इकाइयां लगाकर 108 इकाइयों का उत्पादन करती है तो इसकी सीमान्त लागत तथा कीमत (सीमान्त आय) के बराबर हो जाती है और फर्म संतुलन प्राप्त करती है।

अगले श्रमिक से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि अर्थात् सीमान्त उत्पादन घटता जाता है- उत्पत्ति ह्रास नियम के कारण। फलस्वरूप सीमान्त उत्पादन मूल्य $VMP_L=MPP_L$. P_L भी घटता है और अन्ततः मजदूरी की दर के बराबर हो जाता है। अतः सीमान्त उत्पादन मूल्य वक्र जिसको आगे हम VMP वक्र ही फर्म का साधन सम्बन्धी मांग का वक्र होता है जैसा कि रेखाचित्र 25.3 में दिखलाया गया है।

चित्र 25.3 को तालिका 25.1 के आधार पर बनाया गया है और इसमें S_L रेखा जो X अक्ष के क्षैतिज है श्रम का पूर्ति वक्र है और यह व्यक्त करता है कि फर्म ज्यों-ज्यों श्रम को काम पर लगाती है उसे प्रति श्रम की इकाई रू. 8.00 खर्च करने पड़ते है। (कालम सं0 9) दूसरी ओर VMP वक्र बतलाता है कि हर अगला श्रमिक कितना कमा कर देता है। इसको प्राप्त करने के लिए हम उत्पादन, जो अगले श्रमिक से प्राप्त होता है। अर्थात् सीमान्त उत्पादन को वस्तु की कीमत (कालम सं. 5) से गुणा किया गया है।

---

1. यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि साधन मांग वक्र को कई लेखकों द्वारा सीमान्त आय उत्पादन (MRP) के रूप में व्यक्त किया गया है। यथार्थ में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत (VMP) तथा (MRP) में कोई अन्तर नहीं होता क्योंकि सीमान्त आगम MR=Price होता है। अपूर्ण प्रतियोगिता में MR<P होता है। पूर्ण तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में अन्तर स्पष्ट रखने के लिए हमने यहां VMP का प्रयोग किया है।

2. यथार्थ में यह बात कि "सीमान्त उत्पादन मूल्य साधन कीमत" फर्म के वस्तु बाजार में अधिकतम लाभ की शर्त में निहित रहती है-

   मान लीजिए उत्पादन फलन है : $X=(L)\overline{K}$

   अर्थात् उत्पादन X फलन है श्रम L का जहां पूंजी $\overline{K}$ की मात्रा स्थिर है। कुल लागत C परिवर्तनशील लागत W.L तथा स्थिर लागत F का योग है: C=WL+F

   फर्म का आगम (आय) $R= X.P_X$ अर्थात् वस्तु की मात्रा X कीमत

   अब हम लाभ (Profit) (पाई) =R-C अर्थात्(कुल आगम-कुल लागत $\pi=RB-C_iX$ के स्थान पर (L) लिखने पर $d\pi /dl=P_X(f(L)-(W.L.F)$

   $d\pi =Px (dx/D_L)-W=0$ अर्थात् कुल लाभ अधिकतम होगा जब सीमान्त लाभ शून्य हो।

   $P_x (MPP_1)=W$ जहां d_x/d_L श्रम का सीमान्त उत्पादन है।

   अर्थात् $VMP_L \leq W$

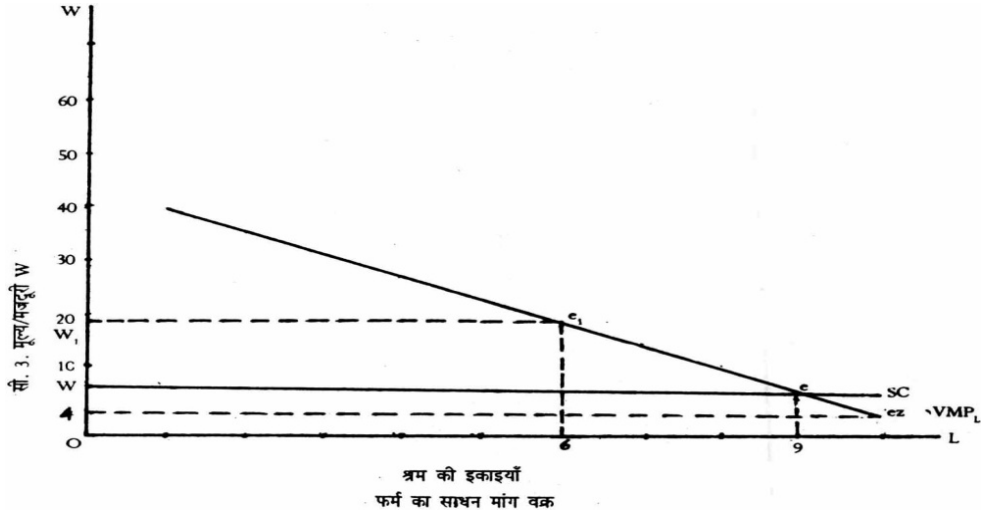

फर्म का साधन मांग वक्र

एक परिवर्तनशील साधन के सीमान्त उत्पादन का मूल्य साधन की सीमान्त उत्पत्ति गुणित वस्तु की कीमत के बराबर होता है। ($VMP=MPP_1XP_X$)

चित्र 25.3 में VMP वक्र श्रम पूर्ति वक्र को e पर काटता है जहां फर्म श्रम की 9 इकाइयों को नियोजित करके अधिकतम लाभ प्राप्त करती है। (1) यथार्थ में एक प्रतियोगी फर्म एक परिवर्तनशील साधन की सेवाओं का उस बिन्दु तक प्रयोग करती है जहां साधन के सीमान्त उत्पादन का मूल्य साधन की कीमत के बराबर होता है। यहां यह पुन: दोहरा देना उचित होगा कि एक फर्म का साधन सम्बन्धी मांग वक्र साधन सीमान्त उत्पादन मूल्य वक्र द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

25.4.2 अनेक परिवर्तनशील साधनों की स्थिति मे कर्म की साधन सम्बन्धी मांग :

एक से अधिक परिवर्तनशील साधनों के प्रयोग की स्थिति में फर्म का सीमान्त उत्पादन मूल्य वक्र (VMP Curve) फर्म का मांग वक्र नही रह जाता। यह इसलिए होता है कि जब अनेक साधनों का उत्पादन में एक साथ प्रयोग होता है तो एक साधन की कीमत बदलने पर अन्य साधनों की प्रयुक्त मात्राओं में भी अन्दर पड़ जाता है और फलस्वरूप उस साधन का सीमान्त उत्पादन वक्र (MPP Curve) जिसकी कीमत बदली थी, भी सरक जाता है।

इस स्थिति को स्पष्ट करने तथा नये मांग वक्र का नियंत्रण करने के लिए हम समोत्पादन विश्लेषण का प्रयोग करेंगे। जब किसी साधन, मान लीजिए श्रम की कीमत (मजदूरी), में परिवर्तन होता है तो सामान्यतया इसके तीन प्रभाव होते है :

एक प्रतिस्थापन प्रभाव दूसरा उत्पादन प्रभाव और तीसरा लाभ अधिकतमकरण प्रभाव इनको समझने के लिए रेखाचित्र 25.4 को ध्यान से देखिए.

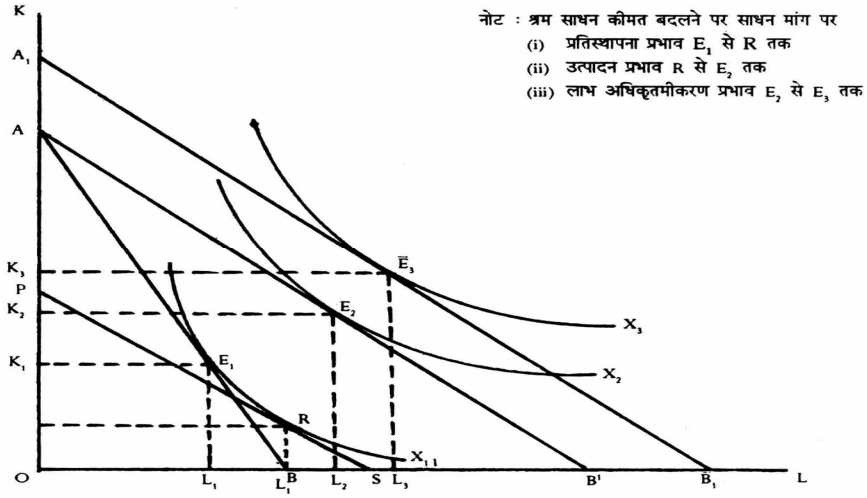

मान लीजिए की फर्म अधिकतम लाभ वाली उत्पादन मात्रा X_1 का K_1,L_1 साधन संयोग से प्राप्त करती है जिसकी कीमतें है W_1 तथा r_1 जिनका अनुपात समलागत वक्र (isocost) AB के ढाल को व्यक्त करता है। अब मान लीजिए कि पूंजी की कीमत अपरिवर्तन रहती है और श्रम की कीमत (मजदूरी दर) घट जाती है और समानलागत वक्र अब AB^1 हो जाता है। मजदूरी घटने के कारण अब फर्म उतने ही व्यय में अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन X_2 पूंजी K2 व श्रम L_2 की सहायता से करने में समर्थ होता है। मजदूरी कम होने पर अब फर्म अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में साधन लगाकर X_2 समोत्पादन वक्र पर उत्पादन करती है जिसे नई सम लागत रेखा AB^1 स्पर्श करती है।

फर्म का E_1 से E_2 पर पहुंचना यथार्थ में दो प्रभावों के योग से होता है जिनको अलग-अलग करना उचित होगा। ये प्रभाव है-प्रतिस्थापन (Substitution) तथा उत्पादन (Output) प्रभाव।

इन दोनों प्रभावों को अलग करने के लिए हम एक अन्य समलागत रेखा इस प्रकार खींचते है कि यह AB^1 के समानान्तर हो और साथ ही पुराने समोत्पादन वक्र X_1 को स्पर्श करती हो। क्योंकि यह सम लागत रेखा AB^1 समानान्तर है यह भी AB^1 के नये कीमत अनुपात को व्यक्त करती है। सम लागत रेखा PS पुराने समोत्पादन वक्र X_1 को R बिन्दु पर स्पर्श करती है। E_1 से R पर पहुँचना ही प्रतिस्थापन प्रभाव है। फर्म अब अपेक्षाकृत सस्ते श्रम का पूँजी के स्थान पर प्रतिस्थापन करती है। चाहे उत्पादन पहले वाली मात्रा में ही करना हो। इस प्रकार हम देखते है कि फर्म श्रम की मात्रा L_1 से L_1तक बढ़ाती है प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण।

लेकिन फर्म R बिन्दु पर ही नही रहेगी क्योंकि मजदूरी घटने के कारण अब फर्म अधिक श्रम या अधिक पूँजी या दोनों साधनों की अधिक मात्राएं लगा सकती है और पूँजी की K_2 मात्रा व श्रम की L_2 मात्रा लगाकर X_2 का उत्पादन कर सकती है। तो ऐसा करने से फर्म R से E_2 पर पहुँचती है और यह उत्पादन प्रभाव है।

फिर भी E_2 फर्म के अन्तिम संतुलन को नहीं बतलाता है। यह अन्तिम संतुलन की स्थिति हो सकती थी। यदि फर्म पहले जितना ही व्यय करती। लेकिन कुल व्यय को यथावत रखने से फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त नही करती और उसे अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए अपना यदि हो सके तो, कुल व्यय तथा उत्पादन बढ़ना होगा। इसका अर्थ यह होगा कि सम लागत रेखा Ab^1 अपने समानान्तर आगे की ओर खिसक जायेगी। नई सम लागत रेखा A_1B_1 पुरानी रेखा AB^1 से उस अतिरिक्त कुल व्यय के अनुरूप होगी जो फर्म अधिक लाभ की दृष्टि से बढ़ायेगी। यह नयी समलागत रेखा समोत्पादन वक्र X_3 की E_3 बिन्दु पर स्पर्श करती है जहाँ फर्म को अधिकतम लाभ होता है जिसे हम लाभ अधिकतमीकरण प्रभाव कहेंगे।

मजदूरी घटने पर फर्म को अधिकतम लाभ के उद्देश्य से अपने कुल व्यय एवं उत्पादन क्यों बढ़ाना पड़ेगा, इस बात को समझने के लिए हम चित्र 25.5 पर ध्यान देंगे। माल लीजिये कि शुरू में फर्म बिन्दु पर संतुलन में है जहाँ उसकी सीमान्त लागत (MC) वस्तु की कीमत P_X के बराबर है। मजदूरी के घटने पर सीमांत लागत वक्र MC दाहिनी ओर नीचे को खिसक जायेगा। अत: फर्म उत्पादन बढ़ाकर X_3 (चित्र 2 5. 4 के अनुसार) अधिकतम लाभ प्राप्त करेगी। इसके लिए उसे कुल व्यय में गहरे रंग वाले क्षेत्र X_1TNX_3 के बराबर वृद्धि करनी होगी। इस अतिरिक्त व्यय में पूँजी के किराये r तथा मजदूरी w का भाग देकर ही हमने चित्र 25. 4 की समलागत रेखा A_1B_1 का निरूपण किया है। जिसका ढाल पिछली AB^1 के समानान्तर होने के कारण नई साधन कीमतों के अनुपात का ही है। अत: मजदूरी घटने पर फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए कुल व्यय एवं उत्पादन बढ़ाकर अन्तिम संतुलन बिन्दु E_3 पर पहुँचती है।

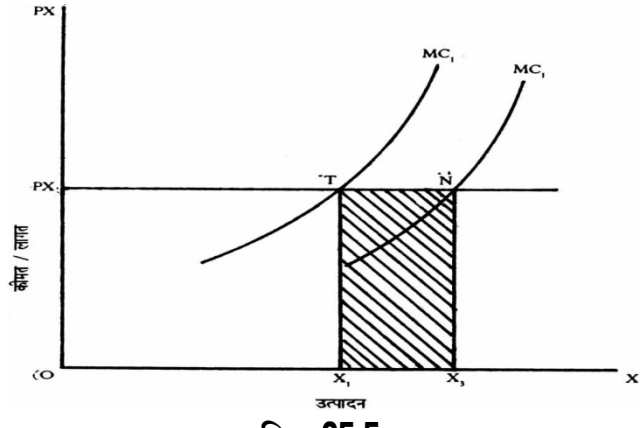

चित्र 25.5

अन्तत: जब अनेक परिवर्तनशील साधनों की स्थिति में एक साधन की कीमत घटती है तो प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण साधन की सीमान्त उत्पत्ति (MPP) घट जाती है क्योंकि सहयोगी साधनों की अपेक्षाकृत कम मात्रा उपलब्ध होती है। हमारे उदाहरण में MPP_L घटती है क्योंकि पूँजी की मात्रा कम हो जाती है। इसके विपरीत उत्पादन एवं लाभ अधिकतमीकरण दोनों प्रभाव श्रम के सीमान्त उत्पादन MPP_1 वक्र को दाहिने ऊपर की ओर बढ़ाते है और दोनों का प्रभाव मिलकर प्रतिस्थापन प्रभाव

से अधिक होता है। कुल मिलाकर वस्तु कीमत P_X यथावत रहने पर MPP_L वक्र अत: VMP_1 वक्र दाहिनी ओर ऊपर को सरक जाता है। यह प्रक्रिया चित्र 25.6 की सहायता से समझने की चेष्टा करेंगे। चित्र 25. 6 में अनेक साधनों के परिवर्तनशील होने की स्थिति में एक साधन श्रम की कीमत (मजदूरी) घटने पर फर्म मूल्य बिन्दु A से श्रम के सीमान्त उत्पादन मूल्य वक्र VML_2 के B बिन्दु पर श्रम की मांग करती है क्योंकि तीनों प्रभावों के संयुक्त प्रभाव से नियुक्त श्रम मात्रा की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य W_2 के बराबर हो जाता है। इसी प्रकार मजदूरी पुन: घटकर W_3 होने पर $VMPL_3$ पर दिखलाया गया C बिन्दु फर्म की सन्तुलन मांग को बतलाता है।

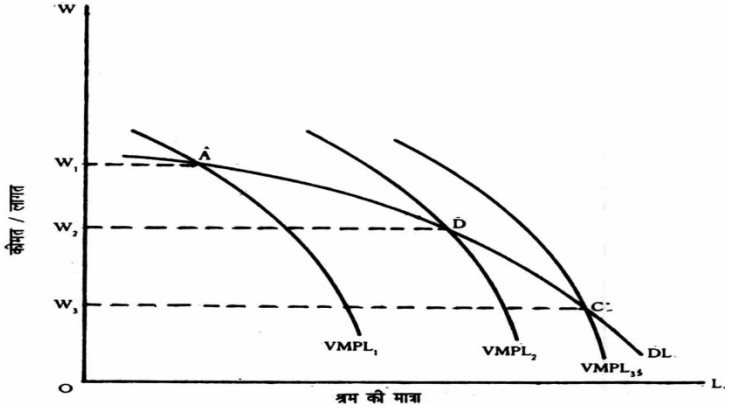

इस प्रक्रिया को बार-बार दुहराने A,B,C, जैसे अनके बिन्दु प्राप्त किये जा सकते है। जिनको मिलाने वाला रेखा पथ (Locus) एक फर्म का साधन सम्बन्धी दीर्घकालीन मांग वक्र होता है। क्योंकि एक साधन की कीमत में परिवर्तन के तीनों प्रभाव कुल मिलाकर साधन की मांग की मात्रा को कीमत के विपरीत दिशा में ले जाते है। अन्य वक्रों की भांति इसका ढाल भी ऋणात्मक होता है अर्थात् साधन माँग का साधन कीमत के साथ विपरीत सम्बन्ध होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण में साधन माँग के संदर्भ में कई महत्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आए है। उनको ध्यान में रखने के लिए उचित होगा कि फर्म की परिवर्तनशील साधन सम्बन्धी माँग के निर्धारक तत्वों पर हम आगे बढ़ने से पहले एक बार पुन: सारांश रूप में नजर डाल ले।

25.4.3 कर्म की साधन माँग को प्रभावित करने वाले तत्व :

पिछले विवरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि एक परिवर्तनशील साधन की माँग निम्न पर निर्भर होती है :

(i) साधन की स्वयं की कीमत : एक साधन की कीमत जितनी अधिक होगी उतनी ही उसकी माँग कम होगी।

(ii) साधन की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति : साधन की मात्रा का प्रथम प्रभाव उसकी सीमान्त भौतिक उत्पत्ति पर पड़ता है जिसकी मात्रा उत्पादन फलन पर निर्भर होती है। जैसा कि विदित है साधन की मात्रा बढ़ाने पर उत्पत्ति इस नियम लागू हो जाता है और सीमान्त भौतिक उत्पत्ति घटने लगती है और साधन माँग की कीमत घटाती है।

(iii) साधन द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत : साधन माँग उसकी VMP सीमान्त उत्पादन मूल्य द्वारा निर्धारित होती है और साधन की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति गुणित वस्तु की कीमत।

(iv) अन्य सहयोगी साधनों की मात्रा : वस्तु की कीमत P_X दी हुई होती है। अत: अन्य सहयोगी साधनों की मात्रा बढ़ने पर MPP_1 सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र दाहिनी ओर आगे खिसक जाता है और फलस्वरूप VMP_L बढ़ जाती है और सहयोगी साधनों के कम होने पर विपरीत भी।

(v) अन्य साधनो की कीमतें : अन्य साधनों की कीमतें उनके प्रयोग की मात्रा को प्रभावित करती है और साथ ही श्रम की मात्रा को भी क्योंकि साधनों का एक साथ प्रयोग किया जाता है।

(vi) तकनीकी प्रगति : तकनीकी प्रगति मूल रूप से साधन की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति को परिवर्तित कर देती है और फलस्वरूप उनकी माँग प्रभावित होती है।

25.4.4 एक साधन सम्बन्धी बाजार की माँग :

अभी तक हमने एक साधन की माँग का फर्म के स्तर पर विवेचन किया और अब हम फर्मों के साधन माँग वक्रों के आधार पर साधन की बाजार स्तर पर माँग का अध्ययन करेंगे।

सबसे पहले हमें यह बात समझ लेनी चाहिए कि किसी साधन के लिए बाजार की माँग अनेक फर्मों की माँग वक्रों के मात्र क्षैतिज योग से प्राप्त नहीं होती, क्योंकि जब किसी साधन की कीमत कम होती है तो सभी फर्में साधन की अधिक मात्रा लगाकर अपना उत्पादन बढ़ाना चाहती है। जिसका परिणाम यह होता है कि उत्पादन की पूर्ति बढ़ जाती है और वस्तु की पूर्ति वक्र दाहिनी और खिसक जाता है और वस्तु की कीमत px घट जाती है। परिणामस्वरूप साधन माँग वक्र, जिसकी वस्तु की कीमत एक प्रमुख घटके होती है बायीं और नीचे, को खिसक जाता है अर्थात् प्रत्येक कीमत पर साधन की माँग अपेक्षाकृत कम हो जाती है। इस बात को भलीभांति समझने के, लिए चित्र 25.7 के (a) तथा (b) चित्रों पर ध्यान देंगे :

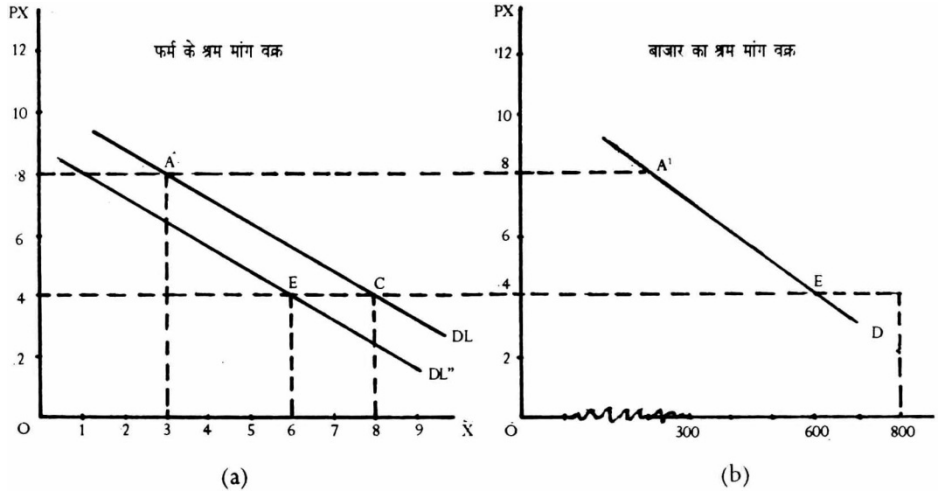

चित्र 25.7

1. तकनीकी प्रगति को तटस्थता ' (Neutral) पूंजी वाहनात्मक (Capital deepening) श्रम गहनान्तक (Labour deepening) के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसका साधना के प्रयोग व अन्य पर प्रभाव पड़ता है।

चित्र 25.7 (a) में फर्म तथा (b) में बाजार के साधन-श्रम संबंधी मांग वक्रों को प्रस्तुत किया गया है। जब मजदूरी दर रू0 8.00 प्रति इकाई है तो फर्म की 3 इकाइयों की मांग है। यदि एक जैसी 100 फर्में है तो बाजार की श्रम सम्बन्धी मांग 300 इकाइयों की होंगी जैसे कि (b) में बिन्दु (A) दिखलाता है। अब मान लीजिए कि मजदूरी की दर घटकर रू0 4.00 हों जाती है तो सभी फर्म अधिक मात्रा में श्रम का प्रयोग करेंगी, उत्पादन बढ़ेगा और वस्तु की कीमत P_x घट जायेंगी और इसका परिणाम यह होगा कि फर्म का श्रम-मांग वक्र D'_L बायीं ओर नीचे D''_L जाएगा। इस घटी हुई मजदूरी दर पर फर्म यदि श्रम की इकाइयां लगती है, जैसा कि (a) में दिखलाया गया है, तो 100 फर्मों की मांग 600 इकाइयों की होगी। चित्र के भाग (b) में इस प्रकार जो दो बिन्दु A' तथा E' उपलब्ध होंगे उन्हें मिलाने पर बाजार मांग (D) प्राप्त हो जायेगा जैसा कि चित्र (b) में दिखलाया गया है।

उपर्युक्त विवरण से जो मूलभूत बात उभरती है वह यह है कि श्रम की मजदूरी की दर घटाने पर फर्म अपने पहले बाले वक्र DD' मांग नही करती। यथार्थ में होता यह है कि मजदूरी कम होने पर सभी फर्में अधिक श्रमिकों को रोजगार देती है। अत: उत्पादन बढ़ता है और वस्तु की कीमत कम हो जाती है जिससे रोजगार के सभी स्तरों पर श्रम के सीमान्त उत्पादन का मूल्य घट जाता है और एक वक्र बन जाता है। अतएव कहना ठीक है कि बाजार मांग वक्रों फर्मों के मांग वक्रों का मात्रा क्षैतिज जोड़ नही है।

25.4.5 परिवर्तनशील साधन-श्रम की पूर्ति :

यहां इन प्रतियोगी बाजार की मान्यताओं के अन्तर्गत श्रम को सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तनशील साधन मानकर उसकी पूर्ति की वैयक्तिक तथा बाजार स्तर पर व्याख्या करेंगे। अन्य परिवर्तनशील साधन जैसे कच्चा माल, मध्यवर्ती वस्तुएँ यथार्थ में वस्तु उत्पादन के रूप में होती है और जहां तक भूमि, पूंजी और साहस का प्रश्न -है उनकी विशेषताओं को देखते हुए उनकी व्याख्या अगली इकाइयों में की जायेगी। यहां हम अपना ध्यान मूल रूप से श्रम की पूर्ति के विश्लेषण पर केन्द्रित रखेंगे।

हम यह मानकर चलेंगे कि श्रम समाजीय (homogeneous) साधन है और इसकी सभी इकाइयां समरूप होती है और श्रम गतिशील एवं अधिकतम पारिश्रमिक के उद्देश्य से एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में जाने के लिए स्वतन्त्र है। बाजार की श्रम संबंधी पूर्ति के मूल निर्धारक तत्व है :

a) श्रम की कीमत (मजदूरी)

b) उपभोक्ताओं की प्रकृति जिसके द्वारा वे काम और आराम के बीच अपना अधिमान निर्धारित करते है

c) जनसंख्या का आकार

d) जनसंख्या की श्रम सहभागिता दर,

e) जनसंख्या का पेशेवार शैक्षणिक व भौगोलिक वितरण।

बाजार की श्रम पूर्ति के अन्य निर्धारक तत्व भी हो सकते है परन्तु हम यह मान कर चलेंगे कि वे यथावत रहते है। श्रम पूर्ति तथा मजदूरी की दर के बीच जो सम्बन्ध है, उसे पूर्ति वक्र द्वारा व्यक्त किया जाता है और बाजार स्तर पर श्रम पूर्ति वक्र यथार्थ में वैयक्तिक पूर्ति वक्रों का योग होता है। अत: पहले हम एक व्यक्ति के पूर्ति वक्रों जोड़ के रूप में लेंगे।

श्रम की वैयक्तिक पूर्ति :

वैयक्तिक श्रम पूर्ति को ज्ञात करने के लिए हम उदासीनता विवेचन का प्रयोग करेंगे। चित्र 25.8 को ध्यान पूर्वक देखिए

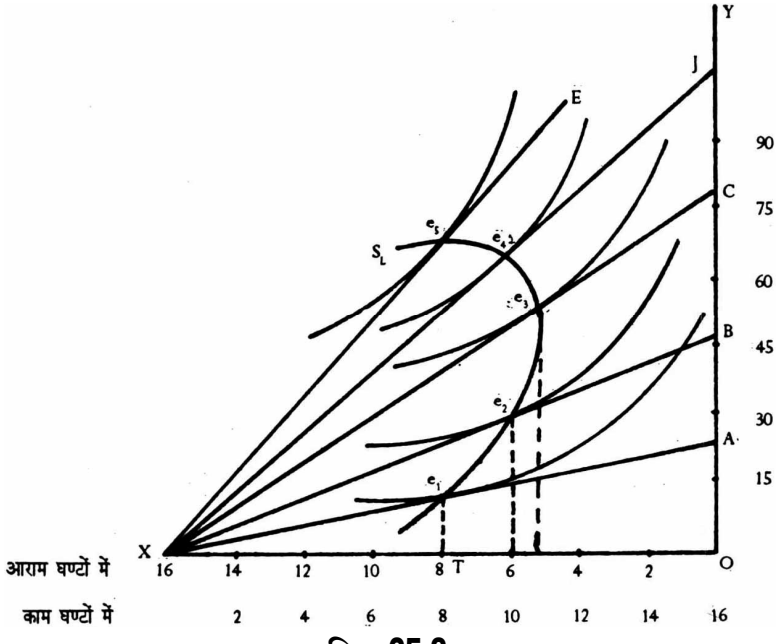

चित्र 25.8

चित्र 25.8 में ox अक्ष को बांयी ओर से दाहिनी ओर जैसा कि सामान्यतया होता है न लेकर दांयी ओर से बांयी ओर दिखलाया गया है और इस एक व्यक्ति को एक दिन में उपलब्ध घण्टेदिखलाए गए है, जिन्हें वह खाली बैठे आराम में गुजार सकता है अथवा वह उन घण्टों में काम कर सकता है और आमदनी प्राप्त कर सकता हो। oy अक्ष पर रुपयों अर्थात् आय को दिखलाया गया है । चित्र 25.8 में अंकित उदासीनता वक्र आराम के घण्टों तथा आमदनी के ऐसे संयोगों को बतलाते है जिनके प्रति, व्यक्ति उदासीन रहता है अथवा जिनसे उसे समान संतोष मिलता है । चित्र 25.8 में XA, XB, व XC आदि बजट रेखाएं है । जिस प्रकार एक बजट रेखा दी हुई कीमतों पर दो वस्तुओं के सभी संभावित उपयोग बतलाती है, जिन्हें एक निश्चित व्यय राशि में खरीदा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार इनमें से प्रत्येक रेखा आराम के घण्टों और आमदनी के सभी संभावित संयोगों को बतलाती है, जिन्हें उपलब्धों घण्टों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । इन रेखाओं का बल (उदग्र दूरी ÷ क्षैतिज दूरी) मजदूरी की दर

बतलाता है। चित्र 25. 8 में देखने से विदित होता है कि XA का ढाल OA/Ox=24/16, है जो 1.5 रु 0 प्रति घण्टा मजदूरी दर बतलाता है। इसी प्रकार XB, XC, XD तथा XE रेखाओं के ढाल क्रमश: ऊंची मजदूरी की दरों को व्यक्त करते है।

हम देखते है कि व्यक्ति e पर y जहां उदासीनता वक्र X, को स्पर्श करता है, संतुलन की स्थिति प्राप्त करता है अर्थात् वह 8 घण्टे काम और 8 घण्टे आराम करना चाहता है और काम के पारिश्रमिक के रूम में e_1T आय रु0 12.00 प्रति घण्टा 1.5 मजदूरी दर से प्राप्त करता है। आगे हम ज्यों-ज्यों ऊपर वाली बजट रेखाओं पर जाते है तो देखते है कि मजदूरी की दर बढ़ने पर पहले तो व्यक्ति अधिक घण्टे काम करने को तैयार है। परन्तु बाद में मजदूरी काफी ऊंची होने पर वह आमदनी की अपेक्षा आराम अधिक पसन्द करने लगता है। और कम घण्टे काम करने को तैयार होता है। इन संतुलन

बिन्दुओं e_1, e_2, व e_3 आदि को मिलाने से हमें वैयक्तिक श्रम का पूर्ति वक्र मिल जाता है। चित्र में श्रम पूर्ति वक्र S_2 बतलाता है कि विभिन्न मजदूरी दरों पर व्यक्ति कितने घण्टे काम करने को तैयार है। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि वैयक्तिक श्रम पूर्ति वक्र पीछे की ओर मुड़ा हुआ हो सकता है जैसा कि एक स्तर प्राप्त करने के बाद वैयक्तिक स्तर पर यह कल्पना की जा सकती है, आय हीन वस्तु हो जाय और फलस्वरूप व्यक्ति बड़ी हुई मजदूरी पर अपेक्षाकृत कम घण्टे काम करने को तैयार होगा।

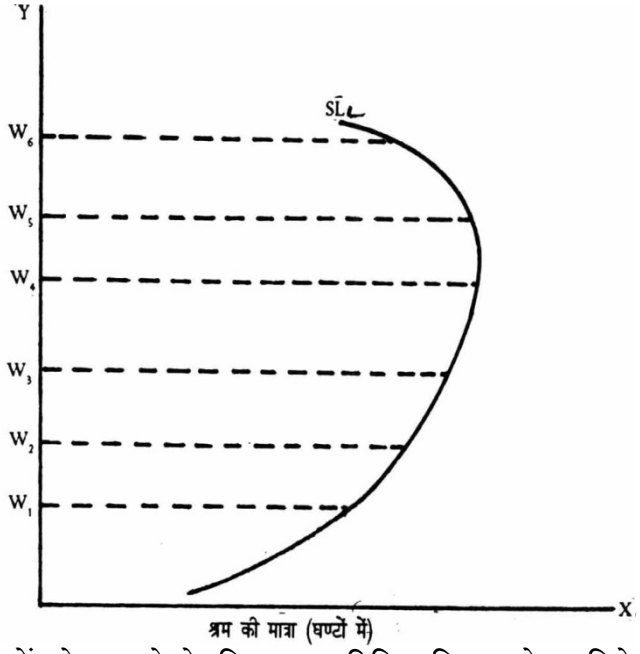

चित्र 25.9

1. इन बजट रेखाओं को समझने के लिए याद कीजिए कि उपभोक्ता विवेचन में हम किस प्रकार बजटरेखा का निरूपण करते रहे है। यदि उपभोक्ता की आय रू0 60 हो और क्रमश : PX=6 व P_Y =10 हो तो हम y अक्ष पर 6y, तथा X अक्ष पर 10x के बिन्दुओं को मिलाकर बजटरेखा बनाते रहे है। यहां हमारे पास आय की भांति ही16 घण्टे उपलब्ध है और आराम की कीमत। 1 घण्टा प्रति घण्टा है और आमदनी, कीमत भी काम के घण्टों में आंकी जा सकती है। उदाहरण के लिए यदि 16

घण्टों मे, 32 रु0 कमाए जा सकते है नो 1 रु0 की कीमत 30 मिनिट हुई जो बतलाती है कि मजदूरी 2 रु0 प्रति घण्टा है।

25.4.6 बाजार का श्रम पूर्ति वक्र

बाजार स्तर पर श्रम वक्र को वैयक्तिक श्रम पूर्ति वक्रों के योग के रूप में परिभाषित किया जाता हे। बाजार का श्रम पूर्ति वक्र घनात्मक ढाल वाला माना जाता है जो यह बतलाता है कि मजदूरी के बढ़ने के साथ श्रम की पूर्ति की मात्रा भी बढ़ती है। जहां तक अल्पकालीन बाजार का प्रश्न है यह हो सकता है कि पूर्ति वक्र का कुछ भाग घनात्मक ढाल वाला तथा कुछ भाग ऋणात्मक ढाल वाला हो परन्तु दीर्घकालीन दृष्टि से श्रम पूर्ति घनात्मक ढाल वाला ही होगा। तर्क यह है कि पर्याप्त समयावधि में मजदूरी बढ़ने पर नए श्रमिक आकर्षित होंगे और पुराने भी प्रशिक्षण प्राप्त करके उस उद्योग में आना चाहेंगे, जहां मजदूरी अधिक हो। अत: सामान्यतया बाजार श्रम पूर्ति वक्र घनात्मक ही माना जाता है। मजदूरी बढ़ने पर श्रम की पूर्ति बढ़ती है।

25.4.7 प्रतियोगी बाजार मे संतुलन कीमत निर्धारण:

बाजार की मांग की व्युत्पत्ति की व्याख्या की जा चुकी है और पूर्ति की भी। अब यदि मांग एवं पूर्ति वक्र दिये हुए है तो बाजार में साधन कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहां ये दोनो वक्र परस्पर काटते हो। चित्र 25. 10 में दिखलाया गया है कि संतुलन मजदूरी W है और रोजगार का स्तर L है।

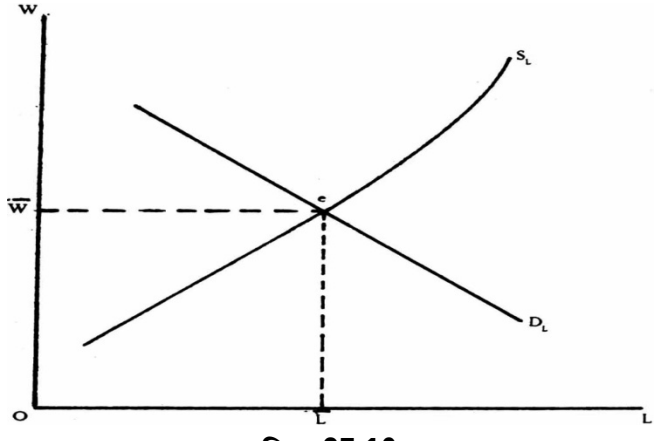

चित्र 25.10

बाजार में संतुलन मजदूरी दर W निश्चित हो जाने पर सभी फर्में इसी दर पर श्रम को काम में लगायेगी और साधन संयोजन इस प्रकार करेगी कि नियोजित श्रम के भौतिक सीमान्त उत्पादन का मूल्य इस मजदूरी की दर W के बारबार हो।

प्रतियोगी बाजार का यह मॉडल संतुलन कीमत निर्धारित के लिए तर्क संगत है चाहे कीमत वस्तु की हो अथवा साधन की। वस्तु कीमत निर्धारण तथा साधन कीमत निर्धारण के बीच जो अन्तर है वह एक और परिवर्तनशील साधनों की मांग के निर्धारक तत्वों को लेकर है और दूसरी और श्रम

1. विचार करके देखिए कि इसका अर्थ यह भी है कि आय की कीमत घण्टों में कम हो जानी है। यदि 16 घण्टों में 64 रु0 मिलते है तो इसका अर्थ होगा कि 1 रु0 की कीमत 15 मिनट या 1/4 घण्टा है।

पूर्ति वक्र को प्राप्त करने के तरीकों को लेकर है। जैसा कि विदित है साधन मांग व्युत्पन्न होती है और वस्तुओं की मांग पर निर्भर होती है। श्रम की पूर्ति की विशेषता यह है कि वस्तुओं की भांति यह लागत द्वारा निर्धारित नही होती। वरन् इस पर व्यक्ति के काम तथा आराम के प्रति दृष्टिकोण का प्रभाव पड़ता है।

25.5 यूलर प्रमेय तथा योगीकरण की समस्या अथवा उत्पाद निःशेषण प्रमेय (Eular's Theorem Adding up problem or Product Exhaustion Theorem)

अब अन्त में हम सीमान्त उत्पादकता से जुड़ी एक समस्या पर विचार करेंगे। यथार्थ में 1930 के दशक के अन्तिम चरण में इस बात पर काफी विवाद रहा कि यदि साधन कीमतों का निर्धारण उनकी सीमान्त उत्पादकता के आधार पर होता है तो क्या उनके पारिश्रमिक का योग कुल उत्पादन के बराबर होगा? क्या सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार निर्धारण साधन कीमतें लेखाविधि की मूल समानिका (identity) को संतुष्ट कर सकेगी।

[उत्पादन का मूल्य] = [श्रम की लागत] + [पूंजी की लागत]

अथवा (PQ) = (W.L) + (r.k)

इस समानिका को सिद्ध करने के लिए यह बतलाना होगा कि साधनों के सापेक्षिक भागों का जोड़ इकाई 1 के बराबर होता है। समीकरण 25.। में PQ का भाग देने पर

$$PQ/PQ = W.L /PQ+rk/PQ$$ या

1= [श्रम का भाग] + [पूंजी का भाग]

प्रश्न यह उठता है कि क्या सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त साधन कीमतों को ऐसे स्तर पर निर्धारित करता है कि सभी साधनों को उनकी भौतिक सीमान्त उत्पादकता के बराबर मिलता हो यदि ऐसा हुआ तो भौतिक उत्पादक समाज हो जायेगा अर्थात् :

$$Q= (MRR_L) .L+ (MPP_k) k \text{ हो} \quad \ldots(25.2)$$

समीकरण 2 को p से गुणा करने पर हमें प्राप्त होता है

$$PQ=(MPP_L.P)L + (MPP_k.P)k \quad \ldots(25.3)$$

लेकिन $(MPP_L.P)$= श्रम के सीमान्त उत्पादन का मूल्य

$(MPP_L.P)$= पूंजी के सीमान्त उत्पादन का मूल्य

तथा PQ उत्पादन मूल्य है।

इस प्रकार समीकरण (25.3) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि साधनों को उनके सीमान्त उत्पादन मूल्य VMP के बराबर कीमत दी जाती है तो सभी साधनों को किए गए भुगतानों का जोड़ उत्पादन मूल्य के बराबर होगा अर्थात् उत्पादन मूल्य पूरी तरह विपरीत हो जायेगा। इस प्रकार सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त साधनों के भागों का सही योगीकरण प्रस्तुत करता है।

प्रसिद्ध गणित शास्त्री ल्योन्हार्ड यूलर ने योगीकरण के संदर्भ में बतलाया है कि यदि उत्पादन फलन रैखिक हो अर्थात् उत्पादन पैमाने के समता नियम (Constant return to scale) अनुसरण करता है तो सीमान्त उत्पादकता के अनुसार प्राप्त साधन भुगतानों का योग कुल उत्पादन के बराबर होगा। इस प्रयोग को यूलर ने निम्न ढंग से सिद्ध किया है।

मान लीजिए कि उत्पादन फलन Q=f (L,K) v अंश का सजातीय है। जिसका तात्पर्य है कि यदि L तथा K दोनों साधनों को एक निश्चित अनुपात से बढ़ाया जाय तो उत्पादन λv अनुपात में बढ़ जाता है और यदि v=1 हो तो यह फलन रैखिक होगा।

$$(\lambda L, \lambda K) = (\lambda (L, K)$$

यदि इसका λ सापेक्ष अवक्रलन करने पर

$$Ld/d_L + K\, d/dk + \lambda^{V-1} (L,K)$$

और V=1 मान लेने पर

$$L (MPP_L) + K (MPP_K) = (L,K)$$

और क्योंकि ((L,K)= Q

$$Q = L(MPP_L) + (MPP_K)$$

अत: साधनों के कुल भौतिक भुगतान से कुल भौतिक उत्पादन समाज हो जाता है।

अब यदि हम उत्पादन कीमत P से गुणा कर दें

$$PQ = L(MPPL.P) + K (MPPK.P)$$

जिसका तात्पर्य है कि साधनों को यदि vMP के अनुसार भुगतान दिया जाता है तो उत्पादन मूल्य साधनों के बीच पूरी तरह बंट जायेगा और साधनों के सापेक्ष भागों का योग इकाई के बराबर होगा। पैमाने के समता नियम में लागू होने पर औसत लागत यथावत् रहती है और फर्म दीर्घकालीन औसत लागत के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करती है।

25.6 सारांश

यर्थाथ में साधन निर्धारण मूल्य- सिद्धान्त का एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण पक्ष है। साधन बाजार में कीमत निर्धारण का अध्ययन, कई दृष्टिकोणों में महत्वपूर्ण माना जाता है।

साधन कीमतें:

a. विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों के बीच सीमित साधनों का आवंटन करती है।

b. आय वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

c. उत्पादन में अनुकूलन साधन संयोजन के निर्धारण में सहायता करती है।

साधन कीमत निर्धारण के संदर्भ में सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की वितरण के सामान्य सिद्धान्त के रूप में परम्परागत मान्यता रही है। इस इकाई में हमने जे0बी0 क्लार्क के द्वारा प्रतिपादित सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को समझने की चेष्टा की। साधनों की मांग प्रत्यक्ष न होकर व्युत्पन्न मांग होती है। और उन वस्तुओं की मांग पर निर्भर होती है जिन्हें इनकी सहायता से उत्पादित किया जाता है। क्लार्क ने प्रतियोगी बाजार की दशाओं को लेकर एक स्थैतिक तथा पूर्ण रोजगार वाली स्थिति के आधार पर यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि साधन की कीमत सीमान्त उत्पादकता के बराबर निर्धारित होती है, न इससे कम, न इससे अधिक।

मार्शल तथा हिक्स ने क्लार्क की व्याख्या से असहमति व्यक्त करते हुए, सीमान्त उत्पादकता को साधन मांग का निर्धारक बतलाया है और स्पष्ट किया है कि साधन कीमत, वस्तु कीमत निर्धारण की भांति ही मांग तथा पूर्तिके संतुलन द्वारा निश्चित होती है। अत: साधन कीमत निर्धारण के संदर्भ में साधन मांग वक्र और साधन पूर्ति दोनों पर विचार करना आवश्यक है।

क्योंकि बाजार का साधन विशेष का मांग वक्र फर्मों की मांग वक्रों से व्युत्पन्न किया जाना है। हमने पहले फर्म की साधन सम्बन्धी मांग को प्रभावित करने वाले तत्वों पर विचार किया और देखा कि एक परिवर्तनशील साधन की कीमत घटने पर साधन की सीमान्त उत्पादकता और फलस्वरूप उसके सीमान्त उत्पादन मूल्य में नजर पड़ता है। एक ही परिवर्तनशील साधन की स्थिति में साधन का सीमान्त उत्पत्ति मूल्य वक्र (VMP) ही फर्म का साधन मांग वक्र होता है। लेकिन जब अनेक साधन परिवर्तनशील हो तो एक साधन जो VMP को घटाता है (2) उत्पादन प्रभाव एवं (3) लाभ अधिकतमीकरण प्रभाव। जिन दोनों प्रभावों के कारण प्रभावों के संयुक्त प्रभाव को लेकर ही फर्म के मांग वक्र का निरूपण करना होगा; यदि स्थिति अनेक परिवर्तनशील साधनों की हो।

जहां तक पूर्ति का प्रश्न है परिवर्तनशील साधनों में प्रमुख श्रम पर ध्यान केन्द्रित करना इसलिए उचित है क्योंकि कच्चे और मध्यवर्ती पदार्थो की तरह कीमत निर्धारित होती है और प्रकृतिजन्य साधनों की भी पदार्थो के रूप में कल्पना की जा सकती है। जैसे खनन प्रक्रिया और भूति को विशुद्ध रूप से परिवर्तनशील माना जाना उचित नही होगा। अत: इस इकाई में पूर्ति के संदर्भ में वैयक्तिक श्रम की पूर्ति का उस पर प्रभाव डालने वाले तत्वों आराम और काम के प्रति दृष्टिकोण को लेकर उदासीनता वक्रों की सहायता से विश्लेषण किया गया है। निष्कर्ष के रूप में वैयक्तिक पूर्ति वक्र ऊंची मजदूरी पर पीछे की ओर मुड़ा हुआ हो सकता है।

बाजार के मांग एवं पूर्ति वक्र जहां परस्पर एक दूसरे को काटते है साधन विशेष की संतुलन कीमत और उपयोग की मात्रा निर्धारित होती है। इसी संतुलन कीमत पर प्रत्येक फर्म साधन का उस

सीमा तक प्रयोग करती है, जहां तक साधन के सीमान्त उत्पादन का मूल्य (V.M.P) साधन के पारिश्रमिक के बराबर नहीं हो जाता। बाजार के मांग और पूर्ति वक्र विभिन्न साधन कीमतों पर फर्म की साधन सम्बन्धी मांग एवं वैयक्तिक पूर्ति व क्षैतिज योग के रूप में होते है।

अन्ततः सीमान्त उत्पादकता से जुड़ा हुआ एक प्रश्न उठता है कि क्या साधनों की सीमान्त उत्पादकता पर आधारित प्रतिफल की मात्रा उत्पादन की मात्रा के बराबर होती है ' अथवा क्या सीमान्त उत्पादन मूल्य के बराबर होता है। यह प्रश्न 'यूलर प्रमेय" अथवा योगीकरण की समस्या के नाम से जाना जाता है। यर्थाथ में यूलर ने समता पैमाने वाले उत्पादन फलन को लेकर यह सिद्ध किया है कि यदि प्रत्येक साधन को उसके सीमान्त उत्पादन के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता है तो पारिश्रमिक राशियों का जोड़ कुल उत्पादन के मूल्य के बराबर होगा। दूसरे शब्दों में साधनों के सापेक्षिक भागों जैसे कुल मजदूरी/कुल उत्पादन मूल्य (WL/PX) का योग 1 इकाई के बराबर होगा।

25.7 शब्दावली

अर्थशास्त्र का अध्ययन करते समय हमारे सामने अनेक प्रकार की सारणियां (तालिकाएँ) आती है। उन सभी को हमें एक ही समय बिन्दु पर उपलब्ध काल्पनिक विकल्पों के रूप में (hypothetical alternatives available at the same point of time) मानना चाहिए, न कि क्रमिक। उदाहरण के लिए इस इकाई के अन्तर्गत दी हुई तालिका 25.1 पहली चार पंक्तियों, को हम इस प्रकार पढ़ेगे जब SK (पूंजी) के साथ OL (शून्य श्रम) लगाते है तो उत्पादन शून्य होता है। यदि हमने IL लगाया होता तो उत्पादन 20 इकाई होता और यदि 5K के साथ 3L का प्रयोग करते तो उत्पादन 50 इकाई होता। न कि इस प्रकार कि पहले। इकाई श्रम लगाया फिर 2L और फिर 3L आदि। यह बात महत्वपूर्ण है क्योंकि क्रमश : आधार पर समयावादी का प्रश्न उठता है। जब आर्थिक निर्णय जैसे 3 हार्स पावर की मोटर लगाये या 5 की, 15 श्रमिक लगावें या 19 ये एक समय बिन्दु पर ही करना होता है।

दूसरा सुझाव यह है कि सीमान्त राशियों को चाहें वह सीमान्त उत्पादन हो , सीमान्त लागत हों, सीमान्त आय हो, डेल्टा अथवा Δ का प्रयोग करना चाहिये। जिसका तात्पर्य होता है बहुत थोड़ा परिवर्तन। उदाहरण के लिए सीमान्त उत्पादन (श्रम) = Δ कुल उत्पादन / Δ श्रम या $\Delta Q/\Delta L$क्योंकि यह आवश्यक नही है कि परिवर्तन क्रमानुसार 1 ,2,3 में ही हो। तालिका 25.1 का 12 कालम देखिए इसमें सीमान्त लागत ΔC / ΔQ या BC/ BX (क्योंकि हमने उत्पादन को X से व्यक्त किया है।) दिखलाया गया है। X पर X=54 है और कुल लागत (कालम 11) 34 रू0 है और अगली पंक्ति में X=68 और TC=42

अतः सीमान्त लागत = $\Delta C/\Delta X$= 42-3 /68-54=8/14 = 0.57

इस प्रकार सभी सीमान्त राशियों को समझने तथा लिखने में और सम्बन्धों का विवेचन करने में सुविधा रहेगी। उदाहरण के लिए हम जानते है कि प्रतियोगी फर्म के संतुलन की शर्त है.

MC= P(सीमान्त लागत = कीमत)

अब सीमान्त लागत यथार्थ में परिवर्तनशील साधन की अगली इकाई पर होने वाले व्यय (मजदूरी) तथा उत्पादन में अतिरिक्त उत्पादन का भाग देकर प्राप्त कर सकते है अर्थात्

$$MC = P$$

$$W. \Delta L / \Delta X = P$$

या $W = P. \Delta X / \Delta L$ जहां $\Delta X / \Delta L$ श्रम का सीमान्त उत्पादन है।

अत: मजदूरी दर = कीमत x सीमान्त उत्पादन (श्रम) = श्रम के सीमान्त उत्पादन का मूल्य

स्मरण रहे कि Δ का प्रयोग असतन (Discrete) परिवर्तन को व्यक्त करता है। जबकि d का प्रयोग सतत (Continuous) परिवर्तन को।

साधन का सीमान्त उत्पादन मूल्य व सीमान्त आय उत्पादन :

श्रम अथवा अन्य किसी परिवर्तनशील साधन की अगली इकाई से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि को साधन विशेष का सीमान्त उत्पादन माना जाता है-जैसे श्रम के सीमान्त उत्पादन को हम $\Delta X/\Delta L$ के रूप में व्यक्त कर सकते है। सतत् dX/dL अब इस अतिरिक्त उत्पादन का कीमत से गुणा कर दिया जाय तो यह सीमान्त उत्पादन का मूल्य होगा। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है कि फर्म को एक और इकाई श्रम लगाने से कुल आमदनी में जो वृद्धि होती है। इसको हम $VMP = MPP.P$ के रूप में व्यक्त करते है। प्रतियोगी बाजार में $VMP = MRP$ क्योंकि भार $MR = P$ होता है।

ध्यान रहे कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में एक ही कीमत प्रचलित रहती है। फलत: कीमत व सीमान्त आय निरन्तर समान रहते है। परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में बड़े हुए उत्पादन को घटती हुई कीमतों पर बेचना होता है। फलस्वरूप सीमान्त आय हमेशा कीमत से कम रहती है। यह विदित रहे कि कीमत ही विक्रेता की दृष्टि से औसत आय या AR (Average revenue) होती है। अब पूंजी (K) की मात्रा स्थिर मानकर 25.2 तालिका को दिखिये.

तालिका 25.2

पूर्ण प्रतियोगी बाजार					अपूर्ण प्रतियोगी बाजार / एकाधिकारी				
श्रम L	उत्पादन Q	सी.उ. MP	कीमत P	सी.उ. मू. VMP	कीमत P	कुल आगम TR	सी.आ. MR -	सी. आय उत्पादन MRP	
2	10	-	2	-	2.00	20.00	-	-	* यह 2.80 माना जा सकता है असतत् श्रेणी के कारण यह त्रुटि पैदा
3	20	10	2	20	1.80	36.00	1.60	16.00	
4	28	8	2	16	1.60	44.80	1.10	8.80	

5	34	6	2	12	1.40	47.60	0.47	2.82*	होती है।
6	38	4	2	8	1.20	45.60	(-).50	(-)2.00	
7	40	2	2	4	1.00	40.00	(-).80	(-)5.60	

ध्यान दीजिए अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में सभी बिन्दुओं पर MR<P है।

अब में एक और शब्द जिसका हमने बहुत बार प्रयोग किया है वह है वक्र का ढाल (Slope of a curve) । इस शब्द के अर्थ को भलीभांति ग्रहण कर लेना लाभदायक होगा। इसको समझ लेने पर ही समलागत रेखा, समोत्पादन वक्र तथा अन्य अनेक प्रकार के वक्रों की सार्थक जानकारी प्राप्त हो सकती है।

ढाल का सामान्य अर्थ किसी रेखा के झुकाव या चढ़ाव से होता है और इसको ज्ञात करने हेतु हम Y अक्ष पर अंकित दूरी (Y-खण्ड) में X-अक्ष पर अंकित दूरी (X-खण्ड.) का भाग देते है। भागफल हमको बतलाता है कि Y अक्ष पर एक इकाई आगे बढ़ने पर Y-अक्ष पर अंकित झुकाव या चढ़ाव में कितना अन्तर पड़ता है। मान लीजिए Y-खण्ड (Y-Intercept) 15 है और X-खण्ड (X- Intercept) 30 है और रेखा दाहिनी ओर नीचे को जा रही है तो इसका अर्थ होगा कि ढाल (Slope) 15/30=1/2 है अर्थात् Y पर दिखलाई गई मात्रा में X पर दिखलाई गई मात्रा के सापेक्ष 1/2 इकाई कमी आती है।

मान लीजिए एक फर्म 1200 /-रु व्यय करती है और पूंजी का साप्ताहिक किराया 60 रु0 प्रति इकाई है और श्रम की साप्ताहिक मजदूरी 30 रु0 है। फर्म के समलागत वक्र के निर्माण के लिए हम व्यय में किराया और मजदूरी का भाग देकर उन्हें क्रमश: Y तथा X अक्ष पर अंकित करते है। व्यय / किराया / व्यय / मजदूरी / व्यय / किराया x मजदूरी / व्यय / मजदूरी / किराया, जिसका अर्थ होगा कि यदि हम श्रम बढ़ावे तो पूंजी के प्रयोग में कितनी कमी होगी। दूसरे शब्दों में पूंजी की श्रम से प्रतिस्थापना दर ज्ञात होती है।

यदि कोई वक्र हो और इसका किसी बिन्दु पर ढाल अर्थात् वक्र पर अंकित वस्तुओं की प्रतिस्थापना दर मालूम करनी है तो इस बिन्दु को स्पर्श करती हुई रेखा खींची जा सकती है और इसी प्रकार OY/OX द्वारा ढाल ज्ञात किया जा सकता है। इस सका में चित्र 25.4 को ध्यान से देखिए।

बोध प्रश्न .1

नीचे दिये हुए प्रश्नों में जिन संकेताक्षरों का प्रयोग किया गया है, उनके अर्थ जान लेना अनिवार्य है। ये संकेताक्षर एवं उनका अर्थ निमांकित है.

OX= वस्तु X की मात्रा ; Px= वस्तु X की कीमत, L=श्रम; K=पूंजी, W=मजदूरी दर; r=पूंजी का किराया; MPP_K पूंजी का सीमान्त भौतिक उत्पादन MPP_L श्रम का सीमान्त भौतिक उत्पादन VPM_L श्रम के सीमान्त उत्पादन का मूल्य; D_L मांग वक्र श्रम S_L वक्र श्रम, TP_L =श्रम का कुल उत्पादन, MC_X=X वस्तु की सीमान्त लागत; S_L श्रम की कुल QL श्रम की मात्रा

1. निम्न दो प्रश्नों में उत्तर-विकल्प दिये हुए है सही उत्तर चुनिए।

(i) एक फर्म जो, वस्तु बाजार में प्रतियोगी फर्म है, केवल श्रम (L) का परिवर्तनशील साधन के रूप में प्रयोग करती है तो उसका श्रम (L) का मांग वक्र होगा

(ii) VMP_L वक्र (b) MPP_L वक्र (c) MC_X वक्र (d) TP_X वक्र

(iii) जब श्रम का पूर्ति वक्र (S_L) धनात्मक ढाल वाला हो तो,

(iv) QS_L स्थिर रहेगी चाहे W कुछ भी हों;

(v) सन्तुलन स्तरीय मजदूरी $\overline{w}$ का निर्धारण केवल D_L से होगा।

(vi) D_L तथा S_L जिस बिन्दु पर एक दूसरे को काटने है उस पर संतुलन मजदूरी W निर्धारित होती है श्रम रोजगार की संतुलन-संतुलन मात्रा Q_1, नही

(vii) D_L तथा S_L संतुलन मजदूरी तथा संतुलन मात्रा (श्रम) Q_L दोनों का निर्धारण करते है।

2. निम्न प्रश्नों के संक्षिप्त एवं तर्कयुक्त उत्तर दीजिए।

I. जब हम कहते है कि एक फर्म वस्तु एवं साधन दोनों बाजारों में पूर्ण प्रतियोगी है तो हमारा क्या तात्पर्य होता है?

II. एक फर्म किस प्रकार तय करती है कि साधन की अतिरिक्त इकाई लगायी जाय, या न लगायी जाय?

III. एक फर्म X वस्तु की प्रतियोगी विक्रेता और साधन L तथा K की प्रतियोगी क्रेता है।

25.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Alpha C. Chiang : Fundamentals of Mathematical Economics.
2. C.E. Ferguson: Microeconomic Theory
3. J.R. Hicks. Theory of Wages.
4. Richard H. Leftwich. The Price System and Resource Allocation.
5. Richards G. Lipsey. An Introduction to Positive Economics.
6. एच. एल. आहूजा: उच्चतर आर्थिक सिद्धांत

25.9 अभ्यासों के उत्तर

1. (a)
2. (d)
3. फर्म चाहे जितनी मात्रा निश्चित कीमत पर बेच सकती है और चाहे जितनी मात्रा साधन की खरीद सकती है। निश्चित दर पर अर्थात् उसके सामने वस्तु का मांग वक्र और साधन का पूर्ति वक्र दोनों असीम लोच वाले होते है।

4. फर्म उस समय तक साधन की अतिरिक्त मात्रा लगायेगी जब तक ऐसा करने से उसकी आय में लागत की अपेक्षा अधिक-अधिक वृद्धि होती है।

5. (i) $MC_X = P_X$ यदि MC_X बढ़ रही हो और Px > औसत लागत

   (i) $\frac{MPP_L}{W} = \frac{MPP_K}{X}$

   (ii) फर्म के संतुलन की शर्त से इसे निकालिये।

   (iii) उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तरी से शर्तों का एक उचित संयोजन का निरुपण कीजिए और तर्क दीजिए।

इकाई - 26

सीमान्त-उत्पादकता सिद्धान्त-अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत

Marginal-Productivity Theory- Under Imperfect Competition

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 साधन कीमत निर्धारण- अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त उत्पादकता,

26.2.1 प्रारम्भिक विवरण

26.2.2 साधन की मांग एवं उसकी सीमान्त भौतिक उत्पादकता

26.3 उत्पादन बाजार में एकाधिकार की स्थिति में साधन कीमत निर्धारण

26.3.1 सीमान्त आय उत्पत्ति (MRP)

26.3.2 एकाधिकारी द्वारा एक परिवर्तनशील साधन की मांग

26.3.3 अनेक परिवर्तनशील साधनों की स्थिति में एकाधिकारी की एक साधन सम्बन्धी मांग

26.3.4 साधन की बाजार स्तरीय मांग एवं पूर्ति

26.3.5 बाजार कीमत निर्धारण

26.3.6 एकाधिकारात्मक शोषण

बोध प्रश्न 1

26.4 क्रेता-एकाधिकार के अन्तर्गत साधन कीमत निर्धारण जब फर्म उत्पादन बाजार में विक्रेता एकाधिकारी भी हो और साधन बाजार के क्रेता-एकाधिकारी हो।

26.4.1 क्रेता एकाधिकारी - सामान्य परिचय एवं साधन सम्बन्धी मांग

26.4.2 क्रेता एकाधिकार में साधन पूर्ति वक्र एवं साधन की सीमान्त लागत (MFC)

26.4.3 एक परिवर्तनशील साधन व्यय प्रयोग करने वाले क्रेता एकाधिकारी का संतुलन

26.4.4 अनेक साधनों की दशा में क्रेता- एकाधिकारी संतुलन

26.4.5 क्रेता एकाधिकारी शोषण

26.4.6 क्रेता एकाधिकार एवं श्रम संघ

बोध प्रश्न 2

26.5 द्विपक्षी एकाधिकार में साधन कीमत निर्धारण

26.5.1 क्रेता एकाधिकारी तथा विक्रेता के मांग तथा पूर्ति सम्बन्धी वक्र तथा अनिर्णितता

26.5.2 सीमान्त उत्पादकता आधारित वितरण एवं कुशलता, समता तथा न्याय,

बोध प्रश्न 3

26.6 सारांश

26.7 शब्दावली

26.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

26.9 अभ्यासों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

25 वी इकाई में उत्पादन द्वारा प्रजनित आय के वितरण के संदर्भ में, हमने सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का विस्तृत अध्ययन किया और देखा कि एक फर्म के दृष्टिकोण से साधन के सीमान्त लागत मूल्य द्वारा ही उस साधन की मांग निर्धारित होती है। उपर्युक्त सम्पूर्ण विश्लेषण में यह मान्यता निहित थी कि उत्पादन तथा साधन दोनों ही बाजार प्रतियोगी है। यथार्थ में ऐसा होना अनिवार्य नहीं है। हो सकता है कि उत्पादन बाजार में एकाधिकारात्मक स्थिति हो और साधन बाजार में प्रतियोगिता की स्थिति, अथवा साधन बाजार में क्रेता एकाधिकार की स्थिति हो, अथवा साधन बाजार में क्रेता-विक्रेता दोनों की एकाधिकार की स्थिति हो। इस प्रकार यहां हमारा, इन्हीं तीन स्थितियों में साधन कीमत निर्धारण ख विश्लेषण करना मूल उद्देश्य है।

पहले हम साधन बाजार में प्रतियोगिता और उत्पादन बाजार में एकाधिकार की स्थिति के आधार पर वह समझने की चेष्टा करेंगे कि अपूर्ण प्रतियोगिता (एकाधिकार, जिसकी एक दशा है) के अर्न्तगत कीमत (औसत आय) तथा सीमान्त आय के अलग होने के कारण साधन की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य में किस प्रकार के समायोजन की आवश्यकता पड़ती है और किस प्रकार साधन की सीमान्त उत्पत्ति के कारण फर्म की कुल आय में होने वाली वृद्धि जिसे सीमान्त आय उत्पादन (Marginal Revenue Product) कहेंगे, सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) से कम होती है।

- सीमान्त आय उत्पादन (MRP) की अवधारणा को लेकर हम एकाधिकारी फर्म की एक परिवर्तनशील साधन सम्बन्धी मांग का अध्ययन करेंगे।
- एकाधिकारी फर्म द्वारा एक साधन की मांग का निरूपण करेंगे जब अनेक परिवर्तनशील साधनों का प्रयोग होता है।

- एक साधन सम्बन्धी बाजार की मांग का उपर्युक्त स्थितियों के सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे और साधन की संतुलन कीमत एवं नियोजन की मात्रा का विवेचन करेंगे।
- एकाधिकारात्मक स्थिति में शोषण का उदय क्यों होता है और इसका क्या तात्पर्य है, इसको समझने की चेष्टा करेंगे।

---

1. यह स्पष्ट है कि जब क्रेता फर्मों की संख्या कम या एक ही हो तो उत्पादन बाजार में भी अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होगी।

अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन कीमत निर्धारण सम्बन्धी दूसरी स्थिति बाजार में क्रेता एकाधिकार की हो सकती है। जैसा कहा जा चुका है कि यह अनिवार्य नहीं है कि फर्मों की संख्या इतनी अधिक हो कि कोई एक फर्म साधन की प्रचलित कीमत को प्रभावित न कर सके। हो सकता है थोड़ी सी फर्में हो अथवा एक ही फर्म हो, जैसे किसी गांव में एक ही सीमेन्ट का कारखाना हो जहां श्रमिकों को काम मिलता हो। क्रेता फर्मों की संख्या कम अथवा एक होने की

स्थिति में जो महत्वपूर्ण बात उभरती है वह यह है कि इनके सामने साधन का पूर्ति वक्र दाहिनी ओर ऊपर की ओर उठता हुआ धनात्मक ढाल वाला होता है। इस दृष्टि से हम साधन सम्बन्धी सीमान्त व्यय (Marginal Express of Input, MEI) अथवा साधन की सीमान्त लागत पर विचार करेंगे और इस मॉडल के अंर्तगत भी क्रेता, एकाधिकारी की-

- एक परिवर्तनशील साधन सम्बन्धी मांग पूर्ति को लेकर संतुलन का विवेचन करेंगे तथा,
- अनेक परिवर्तनशील साधनों की स्थिति में एक-एक क्रेता एकाधिकारी के संतुलन पर विचार करेंगे, क्रेता एकाधिकारी शोषण का, तथा क्रेता एकाधिकार में श्रम संघों की भूमिका का अध्ययन करेंगे।

अंत में हम साधन बाजार में द्विपक्षीय एकाधिकार की स्थिति का विश्लेषण करेंगे। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब साधन बाजार में एक ओर क्रेता एकाधिकारी हो और दूसरी ओर सशक्त श्रम संगठन अपने श्रम के विक्रेता के रूप में एकाधिकारी हो।

इस इकाई का समापन हम सीमान्त उत्पादकता आधारित वितरण पर कुशलता एवं न्यायोचितता की दृष्टि से टिप्पणी करते हुए करेंगे।

26.1 प्रस्तावना

सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति अपने साधनों से चाहे वह स्वयं का श्रम ही क्यों न हो, आय प्राप्त करता है। इस दृष्टि से साधन-कीमत निर्धारण और उसको प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है। साधन कीमत और साधन बाजार की स्थिति विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों के बीच साधन आवंटन को गंभीर रुप में प्रभावित करती है। यदि साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो और उत्पादन बाजार में एकाधिकार हो तो साधन को उसके

सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बराबर पारिश्रमिक नहीं. मिलता है। अत: जहां शोषण की स्थिति का उदय होता है, वहां साधन का अनुकूलतम प्रयोग भी नहीं हो पाता। इस दृष्टि से अपूर्ण प्रतियोगिता की विभिन्न स्थितियों को लेकर साधन की सीमान्त उत्पादकता की साधन कीमत निर्धारण में भूमिका को समझना आवश्यक है। हम इस इकाई के अन्तर्गत साधन बाजार की तीन स्थितियों को लेकर साधन कीमत निर्धारण प्रक्रिया का विश्लेषण करेंगे। साथ ही इस बात पर भी विचार करेंगे कि अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता किस प्रकार साधन का प्रयोग तथा साधन कीमत निर्धारण को प्रभावित करती है और शोषण तथा रोजगार की मात्रा को श्रम संघ सामूहिक सौदे बाजी द्वारा कौशल पूर्वक प्रभावित कर सकता है, विशेष रुप से क्रेता एकाधिकार की स्थिति मे।

इस सन्दर्भ में यह प्रश्न भी उठता है कि सीमान्त उत्पादकता आधारित पारिश्रमिक को कहां तक समतापूर्ण तथा न्यायोचित माना जा सकता है और क्या इसका कार्य कुशलता पर भी प्रभाव पड़ता है?

26.2 साधन कीमत निर्धारण - अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त उत्पादकता

26.2.1 प्रारम्भिक विवरण

साधन कीमत एवं रोजगार निर्धारण के सैद्धानिक विश्लेषण में कोई तात्विक अन्तर नहीं पड़ता चाहे बाजार पूर्ण प्रतियोगी हो अथवा अपूर्ण प्रतियोगी। दोनों ही स्थितियों में मांग और पूर्ति द्वारा साधन की संतुलन कीमत एवं रोजगार की मात्रा निर्धारित होती है और साधन की मांग सम्बन्धी निर्णय में मूलरुप से सीमान्त उत्पादकता पर ही विचार करना होता है। यह सब होते हुए भी अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक महत्वपूर्ण अन्तर होता है। जहां पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म कितनी भी मात्रा प्रचलित कीमत पर बेच सकती है, वहां अपूर्ण प्रतियोगिता में (चाहे एकाधिकार हो, अल्पाधिकार हो अथवा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता) फर्म को उत्पादन की बड़ी हुई मात्रा को बेचने के लिए कीमत घटानी होती है और परिणाम स्वरूप कीमत (औसत आय) और सीमान्त आय अलग-अलग हो जाती है अर्थात् सीमान्त ' आय, कीमत से कम रहती है। मान लीजिए कि एक एकाधिकारी 10 इकाइयां दस रुपया प्रति इकाई के हिसाब से बेचता है और उसकी कुल आय 100 /- रु. होती है।

और यदि वह 11 इकाइयां बेचना चाहे तो उसे रु. 9.90 प्रति इकाई के हिसाब से बेचना पड़ता है, और कुल आमदनी रु. 108.90 होती है अर्थात् अगली इकाई के कुल आय में रु. 8.90 की वृद्धि होती है, जबकि कीमत रु. 9.90 है। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता की सभी स्थितियों में सीमान्त आय, कीमत से कम रहती है।

26.2.2 साधन की मांग एवं उसकी सीमान्त भौतिक उत्पादकता

यहां इस बात को पुन: दोहरा देना उचित होगा कि साधन की मांग व्युत्पन्न मांग (Derived Demand) होती है और यह उन वस्तुओं की मांग से उत्पन्न होती है, जिनके उत्पादन में इसका प्रयोग होता है। साथ ही साधन की उत्पादकता एवं उसकी सापेक्षिक कीमत भी मांग को प्रभावित करती है। यदि

कोई साधन अपेक्षाकृत सस्ता होता है तो उसका अन्य साधनों के स्थान पर प्रतिस्थापन किया जाता है। साधन भौतिक आवश्यकता के सम्बन्ध में भी यह बात पुन. ध्यान में रखनी होगी कि ज्यों-ज्यों एक साधन की बराबर-बराबर मात्रा बढ़ायी जाती है, अन्य बातें समान रहने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि (सीमान्त उत्पत्ति) क्रमश: घटती जाती है।

26.3 उत्पादन बाजार मे एकाधिकार की स्थिति मे साधन कीमत निर्धारण

26.3.1 सीमान्त आय उत्पत्ति (Marginal Revenue Product)

हम पहले मॉडल में यह मानकर चलेंगे कि साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है और उत्पादन बाजार में एकाधिकार और यह विश्लेषण वस्तु बाजार सम्बन्धी अपूर्ण प्रतियोगिता की सभी स्थितियों के लिए होगा।

यह विदित है कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार का विक्रेता जब साधन-मान लीजिए श्रम की एक अतिरिक्त इकाई को लगता है तो उसके कुल उत्पादन में इस इकाई के उत्पादन (सीमान्त उत्पादन) के बराबर वृद्धि होती है। इसी प्रकार उसकी कुल आय में सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बराबर वृद्धि होती है, क्योंकि उत्पादन की कीमत यथावत रहती है। लेकिन जब एक एकाधिकारी श्रम की एक और इकाई का प्रयोग करता है, तो उसके उत्पादन में भी उस श्रमिक के सीमान्त उत्पादन के बराबर वृद्धि होती है, लेकिन उत्पादन बढ़ने पर उसे अपनी कीमत सम्पूर्ण उत्पादन के लिए घटानी पड़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि उसकी कुल आय में इस अतिरिक्त श्रमिक के सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बराबर वृद्धि नही होता दर उससे कम होती है। इस तथा को हम एक संख्यात्मक उदाहरण लेकर समझने का प्रयास करेंगे। तालिका 26.। को ध्यान से देखे। तालिका 26.1 पिछली इकाई की तालिका 25.1 के समान ही है, लेकिन इसमें बढ़ते हुए उत्पादन के साथ कीमत घटती हुई दिखलाई गई है।

तालिका 26.1 के पहले तीन कॉलमों में उत्पादन फलन प्रस्तुत किया गया है। कॉलम 4 में सीमान्त उत्पादन की भौतिक मात्राएं दिखलाई गयी है तथा कॉलम 5 में कीमत जिस पर प्रत्येक स्तर पर कुल उत्पादन को बेचा जा सकता है। अत: कालम 3 तथा 5 मांग फलन प्रस्तुत करते है। कॉलम 6 व 7 में कुल एवं सीमान्त आय की राशियां व्यक्त की गई है। कॉलम 8 व 9 महत्वपूर्ण है जिनमें क्रमश: श्रम का सीमान्त उत्पादन मूल्य (Value of Marginal Product=VMP_1) तथा सीमान्त आय उत्पादन (Marginal Revenue Product=MRP_1) दिखलाया गया है।

मान लीजिए कि एकाधिकारी उत्पादन की 54 इकाइयों का उत्पादन करके बेचता है और इस मात्रा का उत्पादन करने के लिए श्रम की 3 इकाईयों की आवश्यकता होती है। अब विचार कीजिए कि श्रम की 4 इकाईयों का प्रयोग करने पर क्या होता है? उत्पादन बढ़कर 68 इकाई हो जाता है अर्थात चौथी इकाई का भौतिक सीमान्त उत्पादन 14 इकाई का होता है। लेकिन प्रति समयावधि सभी

तालिका 26.1

सीमान्त आय उत्पादन की व्युत्पत्ति

स्थिर साधन पूंजी इकाइयों में	परिवर्तनशील साधन श्रम इकाइयों में	कुलउत्पादन (इकाइयों में)	सीमान्त भौतिक उत्पादन	उत्पादन कीमत(रुपयोंमें)	कुलआय(रु.)	सीमान्त आय	सीमान्त उत्पादन मूल्य श्रम	श्रम की सीमान्त आय उत्पत्ति (रु.)में	$MPP_L MR_X$ मजदूरी दर (रु.)	कुल स्थिर लागत (रु.) में	कुल परिवर्तनशील लागत(रु.) में	कुल लागत (रु.)	लाभ (रुपयों में)
X	**L**	**X**	**MPP_L**	**P_X**	**$R=P_X$**	**$.XMR_X=\Delta X /X/VMP_L$**	**$R/X/VMP_L$**	**$=MPP_L-$**	**$_XMRP.=MPP_L$**	**.MRWT**	**.F.C.TVC**	**=L.WC=**	**II=R-C**
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
5	0	-	-	-	-	-	-	-	-	50	-	50	-50
5	1	20	20	10	200	10	200	200	40	50	40	90	110
5	2	38	18	9.05	344	8	163	144	40	50	80	130	214
5	3	54	16	8.44	456	7	135	112	40	50	120	170	286
5	4	68	14	7.94	540	6	111	84	40	50	160	210	330
5	5	80	12	7.50	600	5	90	60	40	50	200	250	350
5	6	90	10	7.11	640	4	71	40	40	50	240	290	350
5	7	98	8	6.78	644	3	54	24	40	50	280	330	334
5	8	104	6	6.44	670	1	39	6	40	50	320	370	300
5	8	108	4	6.20	670	0	25	0	40	50	360	410	260
5	10	110	2	6.05	666	-2	12	-4	40	50	400	450	216

68 इकाईयों को बेचने के लिए एकाधिकारी को अपनी कीमत घटाकर रु. 7.94 करनी पड़ती है। अब यदि 54 इकाईयों का उत्पादन करता और रु. 8.44 की दर पर बेचता है तो उसे रु. 456.00 की आय होती है और यदि 68 इकाईयों को रु. 8.44 की दर पर बेचता है तो उसे रु. 540.00 की आमदनी होती है अर्थात् व इकाईयों से 84.00 अथवा 14 इकाईयों के अतिरिक्त उत्पादन से औसतन रु. 6.00 सीमान्त आय प्राप्त होती है। ऐसा इसलिए होता है कि जहां अगली 14 इकाईयों को रु. 7.94 प्रति इकाई की दर से बेचता है वहां उसे पिछली 54 इकाईयों पर 50 पैसे (8.44- 7.94=.051 प्रति इकाई कम करने पड़ते है और परिणामस्वरूप अगली 14 इकाईयों से होने वाली आय (14.7.94= 111.1) में से रु. 27 की कमी हो जाती है और एकाधिकारी को यथार्थ में रु. .84 ही प्राप्त होते है जो श्रम की अतिरिक्त इकाई (चौथाई इकाई) का योगदान होगा। इसी को श्रम की सीमान्त आय उत्पत्ति (Marginal Revenue Product of labour) कहेंगे।'

परिभाषा :

सीमान्त आय उत्पत्ति (उत्पादन) (MRP) पारिभाषिक दृष्टि के सीमान्त आय MR तथा परिवर्तनशील साधन के सीमान्त भौतिक उत्पादन (MRP) के गुणनफल के बराबर होती है अथवा यह कुल आय में होने वाली वह वृद्धि है जो परिवर्तनशील साधन की एक और इकाई बढ़ाने के कारण होती है। अन्य शब्दों में हम कह सकते है कि एक मजदूर अपने कार्य द्वारा एकाधिकारी को जो कमाकर देता है वह उस मजदूर की सीमान्त आय उत्पत्ति है।

26.3.2 एकाधिकारी द्वारा एक परिवर्तनशील साधन की मांग :

यहाँ हमारी मान्यता है कि एकाधिकारी परिवर्तनशील साधन को पूर्ण प्रतियोगी बाजार से खरीदता है अत: वह इस साधन की कितनी भी मात्रा प्रचलित कीमत पर खरीद सकता है। उसके सामने साधन पूर्ति वक्र प्रचलित कीमत स्तर पर एक क्षैतिज रेखा के रूप में होता है। इस प्रकार क्षैतिज पूर्ति वक्र SL_1, चित्र 26.1 में दिखलाया गया है, जो बाजार में प्रचलित मजदूरी दर (W) पर श्रम की असीम पूर्ति को व्यक्त करता है।

साथ ही चित्र 26.1 में एकाधिकारी फर्म का साधन सम्बन्धी सीमान्त आय उत्पादन वक्र MRP_{L1} दिखलाया गया है। MRP_L वक्र श्रम के पूर्ति वक्र को E बिन्दु का काटता है, जहां सीमान्त आय उत्पादन (MRP_L) तथा मजदूरी (W) बराबर है। तात्पर्य यह है कि एक अपूर्ण प्रतियोगी उत्पादक को एक परिवर्तनशील साधन को प्रतियोगी बाजार से खरीदता है, साधन की वह मात्रा खरीदेगा जिस मात्रा पर, साधन से प्राप्त सीमान्त आय उत्पादन की राशि, साधन की बाजार कीमत के बराबर हो। यही स्थिति फर्म के लिए अधिकतम लाभ की होगी।

---

1. बीजगणिय आधार पर यह बात सरलता से स्पष्ट की जा सकती है कि सीमान्त आया उत्पत्ति, सीमान्त आय गुणित सीमान्त भौतिक उत्पादन ($MRP_L=MR_xMPP_L$) के बराबर होती है। मान कि

MRP, TR,TP, MPP तथा Lक्रमश: सीमान्त आय उत्पत्ति, कुल आप कुल उत्पादन, सीमान्त उत्पादन व श्रम को व्यक्त करते है।

परिभाषा के अनुसार $MRP=\Delta TR/\Delta L$ .....(i)

अर्थात् अतिरिक्त श्रम के प्रयोग से होने वाली अतिरिक्त आय

जबकि $MR=\Delta TR/\Delta TP$ $\Delta TR=MR_X\Delta TP$ .....(ii)

परन्तु सीमान्त भौतिक उत्पादन परिभाषानुसार $MPP=\Delta TP/\Delta L$ होता है अत: श्रम की मात्रा में परिवर्तन को $\Delta L=\Delta TP/MPP$ कह सकते है और (1) में प्रतिस्थापन करने पर

$MRP=MR_X\Delta TP/\Delta TP=MR_X\Delta TP_XMPP/\Delta TP$

$MRP=MR_XMPP$

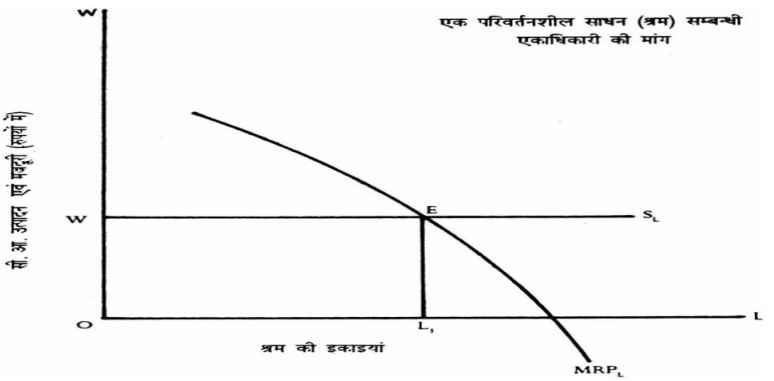

चित्र 26.1

जैसा कि चित्र 26.1 से स्पष्ट है एकाधिकारी फर्म OW मजदूरी पर OL_1 श्रम की मात्रा नियोजित करती है क्योंकि इसी स्तर पर उसका लाभ अधिकतम होता है। E बिन्दु पर $MRPL_1=W$ है। यदि OL_1 से कम श्रम की मात्रा का प्रयोग किया जाता तो एकाधिकारी को श्रम की मात्रा बहाने सें लागत की तुलना में आय में अधिक वृद्धि होती और कुल लाभ बढ़ता। ठीक इसी प्रकार E के दाहिनी ओर श्रम की मात्रा बढ़ाने से आय की तुलना में लागत में अधिक वृद्धि होती है। अत एकाधिकारी फर्म लाभ अधिकत करने के उद्देश्य से सदा परिवर्तनशील साधन को उस बिन्दु तक नियोजित करेगी जहां सीमान्त आय उत्पादन मजदूरी दर के बराबर हो?

---

2. एकाधिकारी फर्म के संतुलन बीज गणितीय स्पष्टीकरण मे अपने लाभ π(पाई) को अधिकतम करना चाहती है। $\pi=R-C$जहां R कुल आय अर्थात् P_XQ_X और (कुल लागत $=(P_XQ_X) - (W_L+F)$ एवं स्थिर लागत दिया हुआ है

$P_X=F_1(Qx)$ अर्थात् मांग फलन

तथा $Q_X=F_2(L)$ उत्पादन फलन

अधिकतम की प्रथम कोटि की शर्त है कि (L) श्रम के सापेक्ष अवक्रलज शून्य के बराबर हो,:

$$\partial R / DL = P_x \ \partial Q \ /dL+Q_XX \ [\partial P_X / \partial Q_X . \partial Q_X / \partial L]W = 0$$

पदों के समायोजन के उपरान्त प्राप्त होता है।

$$dQ_X/d_L[P_X+Q_X \ dP_X \ . \ dQ_X] = MR_X$$

हम जानते है कि

$$dQ_X/d_L = (MPP_L) \text{ और } (P_X + Q_X . \ dP_X/dQ_X) = MR_X$$

अत: $(MPP_L)\ (MR_X) = W$ या $MRP_L = W$

अर्थात् एक एकाधिकारी फर्म अधिकतम लाभ नव प्राप्त करनी हें। जब श्रम को उस बिन्दु तक नियोजित किया जाय जहां MRP तथा मजदूरी बराबर हो। इन प्रभावों का विस्मृत विवरण इकाई 25 के खण्ड 25.4.2 में प्रस्तुत किया जा चुका है। उस खण्ड को सावधानी मे पुन: अध्ययन कर लें।

26.3.3 अनेक परिवर्तनशील साधनों की स्थिति मे एकाधिकारी की एक परिवर्तनशील साधन सम्बन्धी मांग :

जब उत्पादन प्रक्रिया में एक से अधिक परिवर्तनशील साधनों का प्रयोग होता है तब सीमान्त आय उत्पादन वक्र को साधन मांग वक्र नहीं माना जा सकता क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया के बीच अन्तनिर्भरता होती है और किसी एक साधन की कीमत बदलने पर अन्य साधनों की प्रायोजित मात्राओं में असर पड़ जाता है परिणाम स्वरुप साधन विशेष की सीमान्त आय उत्पादन MRP) वक्र खिसक जाता है जैसा कि प्रतियोगिता की स्थिति में सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) वक्र के साथ होता है । यथार्थ में इस इकाई का विश्लेषण गत 25 वी इकाई के विश्लेषण के स्वरूप ही है।

मान लीजिए कि श्रम की बाजार कीमत (मजदूरी) W_1 है और श्रम का सीमान्त आय उत्पादन वक्र MRP_1 है (नीचे दिये हुए चित्र 26.2 को देखिए) । एकाधिकार फर्म A बिन्दु पर संतुलन में है और L_1 श्रम की इकाईयों का प्रयोग करती है । यदि मजदूरी दर घट कर W_2 हो जाती है तो फर्म MRP_1 वक्र पर आगे A' पर संतुलन प्राप्त कर सकती है, यदि अन्य बाते समान रहे ।

चित्र 26.2 अनेक परिवर्तनशील साधनों के प्रयोग की स्थिति में एकाधिकारी की एक साधन सम्बन्धी मांग

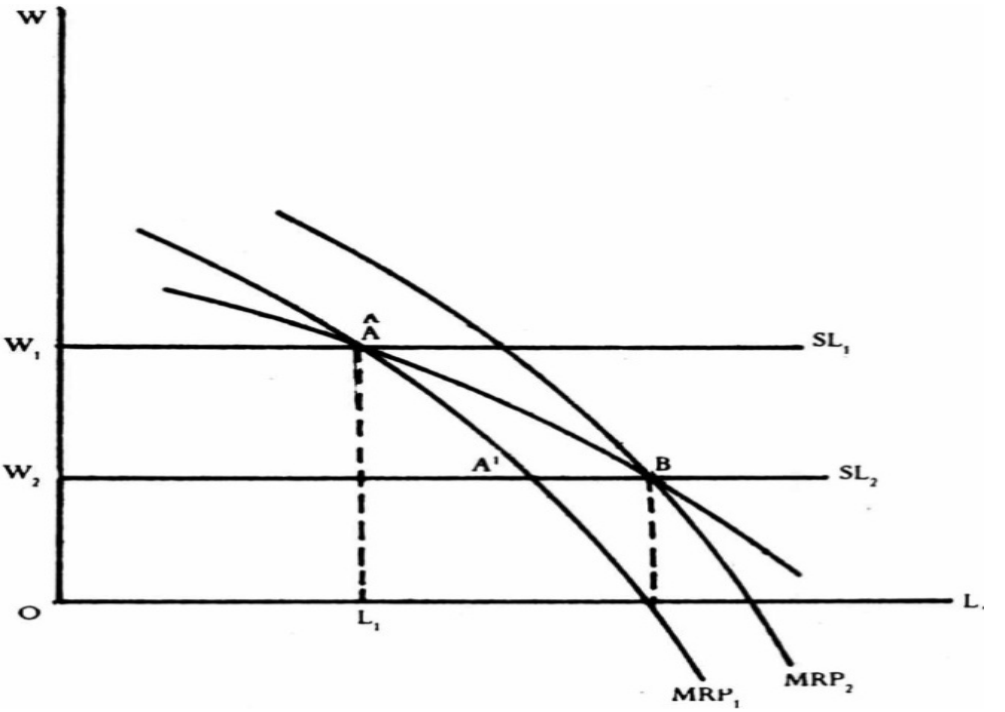

चित्र 26.2

लेकिन अन्य बाते समान नही रहती। मजदूरी घटने का (1) प्रतिस्थापन प्रभाव होता है, (II) उत्पादन प्रभाव होता है तथा (।।।) लाभ अधिकतमीकरण सम्बन्धी प्रभाव होता है। ठीक उसी प्रकार जैसा कि प्रतियोगी फर्म पर होता है। इन सभी प्रभावों के परिणाम स्वरूप सीमान्त आय उत्पादन वक्र सामान्य तथा दाहिनी ओर खिसक जाता है। जिससे फर्म MRP_2 पर स्थित B बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करती है। विभिन्न मजदूरी स्तरों को लेकर A तथा B जैसे अनेक बिन्दु प्राप्त किये जा सकते है जिन्हें मिलाकर अनेक साधनों की स्थिति में फर्म का एक साधन

1. इन प्रभावों का विस्तृत विवरण इकाई 25 के खण्ड 25.4.2 में प्रस्तुत किया जा चुका है। उस खण्ड का सावधानी से पुन: अध्ययन कर ले! सम्बन्धी मांग वक्र प्राप्त किया जा सकता है अन्तत: यह कहना उचित होगा कि जब अनेक परिवर्तनशील साधन काम में आते है तो एक परिवर्तनशील साधन की मांग प्राय: अपेक्षाकृत लोचदार होती है और फर्म का साधन सम्बन्धी मांग वक्र ऋणात्मक होता है, चाहें वस्तु बाजार प्रतियोगिता की स्थिति कैसी भी हो अर्थात् सभी स्थितियों में कीमत और मांग की मात्रा का सम्बन्ध विपरीत होता है।

26.3.4 साधन (यहां श्रम) की बाजार स्तरीय मांग एवं पूर्ति:

यदि एकाधिकारियों का कोई समूह एक ही परिवर्तनशील साधन का प्रयोग करता है तो बाजार का इस साधन सम्बन्धी मांग वक्र विभिन्न एकाधिकारी फर्मों के मांग वक्रों का क्षैतिज योग होता लेकिन एकाधिकारी फर्मों के मांग वक्रों का योग करते समय मांग वक्रों बदलाव का ध्यान रखना होगा, क्योंकि जैसे ही साधन की कीमत (मजदूरी) घटती है, सभी फर्में उत्पादन बढ़ाती है और उत्पादन कीमत घट जाती

है जिसके कारण हर एक फर्म का अपना मांग वक्र अर्थात् सीमान्त आय उत्पादन वक्र बांयी ओर खिसक जाता है। इस बात को चित्र 26.3 में दिखलाया गया है। मान लीजिए कि एक एकाधिकारी फर्म (अथवा अपूर्ण प्रतियोगी फर्म) 8 रु. मजदूरी पर 3 इकाइयों की मांग करती है और इस प्रकार 100 फर्में है तो इनके मांग (सी. या. उ) वक्रों के योग से बाजार की मांग 300 इकाइयों की होगी जैसा कि 26.3(b) में 'A' पर दिखलाया गया है।

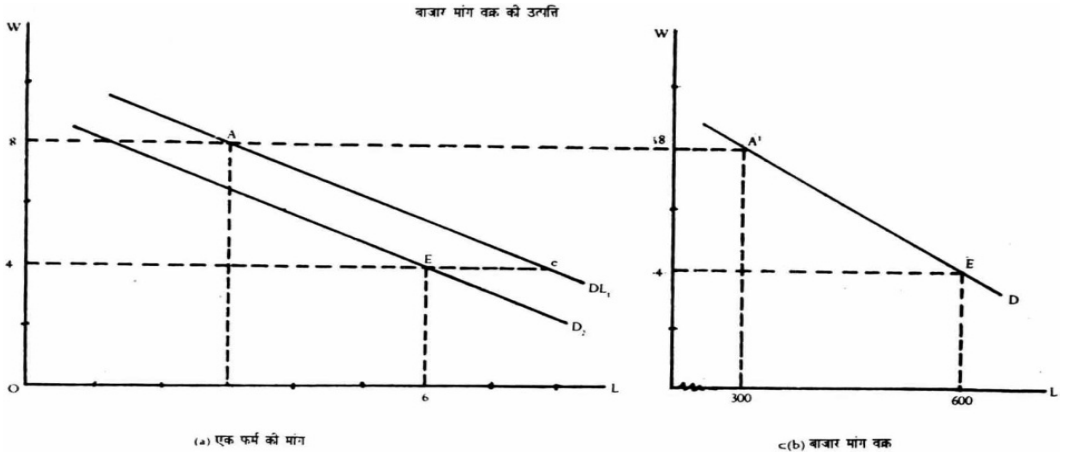

चित्र 26.3

अब मान लीजिए कि मजदूरी दर घटकर रु. 4.00 हो जाती है तो सभी फर्में अधिक मात्रा में श्रम लगायेगी, उत्पादन बढ़ेगा और उत्पादन कीमत घट जायेगी और सीमान्त आय उत्पादन भी घट जायेगा। फलस्वरूप श्रम मांग वक्र (सी. आ. उ वक्र) बांयी ओर नीचे को खिसक जायेगा (देखिए पैनल (a)) और फर्म रु. 4 की दर 8 श्रमिकों को नियोजित न करके D_2 पर श्रमिकों को काम पर लगायेगी। इस प्रकार 100 फर्में 600 श्रमिकों को लगायेगी जैसा कि पैनल b में E बिन्दु पर दिखलाया गया है अत: A'E श्रम का बाजार मांग वक्र होगा। इससे यह भी स्पष्ट है कि बाजार की मांग वक्र फर्मों के सीमान्त आय उत्पादन वक्रों का संशोधित योग होता है क्योंकि फर्मों के मांग वक्र स्वयं खिसक-जाने है। जहां तक एक बाजार स्तर पर साधन (श्रम) की पूर्ति प्रश्न है उस पर इस बात का काई प्रभाव नहीं पड़ता कि फर्में एकाधिकारात्मक है। बाजार में श्रम की पूर्ति वैयतिक्त श्रम - पूर्ति वक्रों का योग होती है और यह पूर्ति वक्र धनात्मक ढाल वाला होता है जैसा कि चित्र 26.4 से स्पष्ट है।

26.3.5 बाजार कीमत निर्धारण

साधन की बाजार कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित होती है कि जहां बाजार मांग वक्र बाजार पूर्ति वक्र को काटता है। चित्र 26. 4 में बाजार में बिन्दु पर संतुलन होता है और सभी क्रेताओं के लिए साधन की बाजार कीमत W निश्चित हो जाती है।

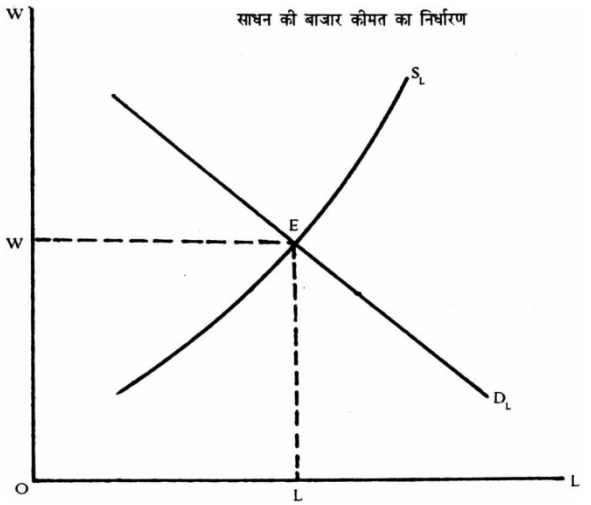

चित्र 26.4

OW कीमत पर ही सभी फर्में श्रम को नियोजित करेगी लेकिन साधन संयोजन इस प्रकार करेंगी कि श्रम की सीमान्त आय उत्पत्ति इस मजदूरी दर के बराबर हो । यहां यह बात उल्लेखनीय है कि एकाधिकारी फर्म का श्रम का (या किसी भी साधन का) मांग वक्र उसी सीमान्त आय उत्पत्ति (MRP_L) पर निर्भर होता है, न कि श्रम के सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP_L) पर। सीमान्त आय उत्पादन (MTP_L) सदा सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP_L) से कम होता है जिसे शोषण कहा जाता है।

26.3.6 एकाधिकारात्मक शोषण :

श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार जब एक उत्पादन के साधन को उसके सीमान्त उत्पादन मूल्य से कम पारिश्रमिक पर नियुक्त किया जाता है तो उसका शोषण होता है । सामान्यतया हर एक फर्म, चाहे वह प्रतियोगी हो अथवा एकाधिकारात्मक, अधिकतम लाभ की दृष्टि से एक साधन को उस बिन्दु तक नियोजित करेगी जहां साधन की एक अतिरिक्त इकाई को काम पर लगाने से, लागत ठीक उतनी ही बढ़ती है जितनी कि कुल आमदनी। लेकिन इस नियम का जब प्रतियोगी फर्म पालन करती है तो साधन को उसके सीमान्त उत्पादन मूल्य के बराबर पारिश्रमिक मिलता है। लेकिन अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में सीमान्त आय, कीमत से कम रहती है, और इसीलिए सीमान्त आय उत्पादन सीमान्त उत्पादन मूल्य से कम होता है । इस स्थिति की अनिवार्यता अपूर्ण प्रतियोगिता में निहित है । जब तक सीमान्त आय वस्तु की कीमत से कम रहती है तब तक कुछ न कुछ एकाधिकारात्मक शोषण बना ही रहेगा । और उत्पादक सामाजिक रुप से वंछित उत्पादन स्तर को प्राप्त नही कर सकेंगे।

चैम्बरलिन का मत है कि लोग उत्पादन भिन्नता स्वयं चाहते है और जहां वस्तुओं में भिन्नता होगी सीमान्त आय तथा कीमत में अन्तर भी होगा । लेकिन इस बात को अस्वीकार नही किया जा सकता कि यदि कीमत के द्वारा किसी वस्तु की सामाजिक उपादेयता प्रतिलक्षित होती है तो जब साधन को, उसके सामाजिक मूल्य में योगदान से कम पारिश्रमिक मिलता है तो यह व्यवस्था न्यायोचित नहीं होगी ।

लेकिन कठिनाई यह है कि शोषण के निवारण के उपाय, जैसे उद्योगों पर तथ्य का स्वामित्व तथा परिचालन अथवा कठोर कीमत नियंत्रण द्वारा जितनी समस्याएं खड़ी होती है उतनी का हल नहीं होता।

एकाधिकारात्मक स्थिति में निहित शोषण एवं रोजगार की मात्रा सम्बन्धी प्रभावों को चित्र 26.5 तथा 26.6 में प्रस्तुत किया गया है।

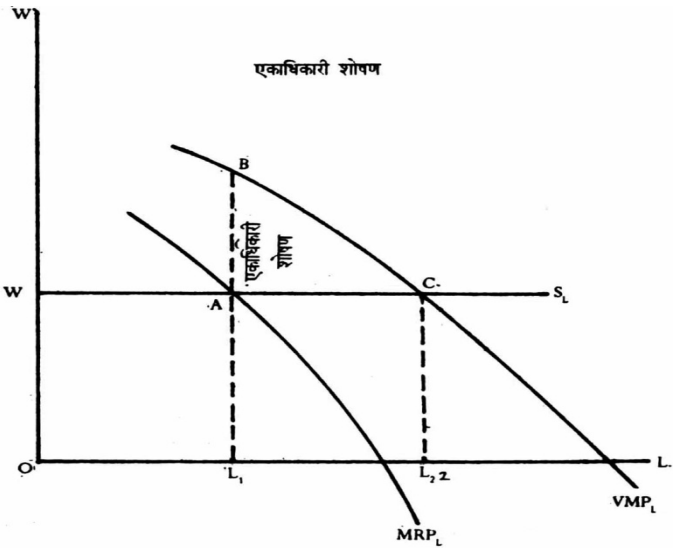

चित्र 26.5

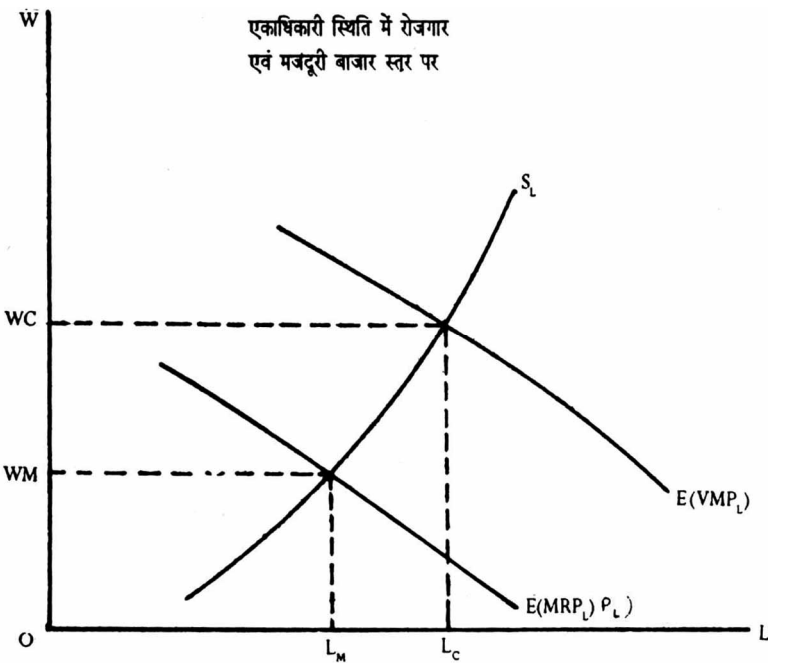

चित्र 26.6

उपर्युक्त चित्रों में क्रमश: फर्म स्तर पर (26.5) तथा बाजार स्तर पर (26. 6) शोषण की स्थिति का चित्रण किया गया है। पहले चित्र 26.5 से यह स्पष्ट है कि श्रम का सीमान्त उत्पादन मूल्य BL_1 है। लेकिन एकाधिकारी स्थिति में उसी सीमान्त आय उत्पादन के अनुसार AL1 (=O$\overline{w}$) मजदूरी मिलती है और A B मात्रा में उसका शोषण होता है।

चित्र 26. 6 में दिखाया गया है कि यदि बाजार प्रतियोगी है (जहां सीमान्त आय और कीमत बराबर रहती है) तो मजदूरी दर W_C होगी, जो सीमान्त आय उत्पादन वक्रों के योग द्वारा निर्धारित मजदूरी दर W_M से अधिक है। साथ ही यह भी स्पष्ट है एकाधिकारी स्थिति में रोजगार की मात्रा L_M है जो प्रतियोगी स्थिति में रोजगार की मात्रा L_C से कम है। ($L_M<L_C$) क्योंकि प्रतियोगी स्थिति में :

$W= VMP_L$ या $MPP_L \times P_X$

लेकिन एकाधिकार में $W= MPR_L$ या $MPP_2 \times MR$

और MR<P होता है।

---

1. हम अपने विवेचन में ' साधन की सीमान्त लागत' ' (MFC) का ही प्रयोग करेंगे यद्यपि (MFC) तथा (MEI) पर्याय अभिव्यक्तियां है।

बोध प्रश्न 1

इकाई के अन्त के दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

(i) उत्पादन बाजार में एकाधिकारात्मक फर्म के लिए यदि श्रम ही परिवर्तनशील साधन है तो फर्म की श्रम सम्बन्धी मांग व्यक्त करेगा, इसका उत्तर कौन सा है?

(a) सीमान्त उत्पादन मूल्य वक्र (VMP Curve)
(b) साधन उत्पादन मूल्य वक्र (MFC Curve)
(c) सीमान्त आय उत्पादन वक्र (MRP Curve)
(d) औसत परिवर्तनशील लागत वक्र (AVC Curve)

(ii) जब एकाधिकारी फर्म अनके परिवर्तनशील साधनों का प्रयोग करती हो तो एक साधन की कीमत घटने पर उस साधन की मांग पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख कीजिए।

(iii) एकाधिकारी शोषण किसे कहते है? इसका उदय क्यों होता है?

26.4 क्रेता-एकाधिकार (Monopsony) के अन्तर्गत साधन कीमत निर्धारण - जब फर्म उत्पादन बाजार मे विक्रेता एकाधिकारी भी हो और साधन बाजार के क्रेता-एकाधिकारी हो।

26.4.1 क्रेता-एकाधिकारी-सामान्य परिचय एवं साधन सम्बन्धी मांग:

अभी तक हमारी यह मान्यता रही है कि साधन बाजार प्रतियोगी है और कोई एक फर्म साधन बाजार में प्रचलित कीमत को अपने कार्य द्वारा प्रभावित नहीं कर सकती। यर्थाथ जीवन में ऐसा होना अनिवार्य नही है। ऐसा हो सकता है कि साधन की सेवाओं के खरीददारों की संख्या थोड़ी सी हो अथवा एक ही हो। जब बाजार में एक ही खरीददार हो तो यह क्रेता एकाधिकार की स्थिति होगी। यहां हम यह मानकर चलेंगे कि उत्पादन बाजार में फर्म अपूर्ण प्रतियोगी है। (अर्थात् विक्रेताओं की संख्या थोड़ी है, दो है अथवा एक है) और यह फर्म साथ ही साधन बाजार में क्रेता-एकाधिकारी है दूसरे शब्दों में साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है।

जहाँ एक इस फर्म की साधन सम्बन्धी मांग का प्रश्न है उपर्युक्त विश्लेषण पूरी तरह यहां भी लागू होगा और फर्म के साधन सम्बन्धी मांग सीमान्त आय उत्पत्ति द्वारा निर्धारित होती है और इसका मांग वक्र ठीक वैसा हुई होता है जैसा कि चित्र 26. 3 में दिखलाया गया है।

---

1. ग्राफ बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि व्युत्पन्न मात्राओं को मध्य बिन्दुओं पर अंकित किया जाता है जैसे 3 को। तथा 2 के बीच अर्थात् 1.5 पर तथा 11 को 5 तथा 6 के बीच अर्थात् 5.5 पर।

26.4.2 क्रेता एकाधिकार मे साधन पूर्ति वक्र एवं साधन की सीमांत लागत(MFC)

एकाधिकार की स्थिति की विशेषता यह होती है कि पूर्ण प्रतियोगी साधन बाजार के खरीददार की तरह उसके सामने साधन पूर्ति वक्र क्षैतिज नहीं होता है जिससे कि वह प्रचलित कीमत पर आवश्यकतानुसार साधन की मात्रा ले सके। वरन इसके सामने साधन पूर्ति वक्र घनात्मक ढाल वाला होता है अर्थात् जैसे-जैसे वह साधन की अधिकाधिक मात्राओं का प्रयोग करता है साधन कीमत बढ़ती जाती है। अत: क्रेता एकाधिकारी के साधन की सीमान्त लागत (Marginal Factor Cost= MFC) अथवा साधन के सीमान्त व्यय (Marginal Expenses of Input= MEI) पर विचार करना होता है। अत: हमें साधन की सीमान्त लागत (MFC) को भलीभांति समझ लेना चाहिए।

तालिका 26.2

साधन सीमान्त लागत (MFC) का परिकलन

क्रम	मजदूरी	कुल लागत	साधन की

1	2	3	4
1	1	1	-
2	2	4	3
3	3	9	5
4	4	16	7
5	5	25	9
6	6	36	11

तालिका 26.2 के कॉलम। तथा 2 साधन श्रम की पूर्ति की सारणी प्रस्तुत करते है। तालिका 26.2 से स्पष्ट है कि श्रम की अतिरिक्त पूर्ति क्रमश: बढ़ती हुई कीमत (मजदूरी) दर होती है। कॉलम 3 में श्रम की विभिन्न मात्राओं को काम में लाने की कुल लागत दिखलायी गई है, जो श्रम की इकाईयों तथा मजदूरी दर का गुणा करके प्राप्त की गई है। कॉलम 4 में साधन की सीमान्त लागत (Marginal factor cost= MFC) दी गई है जो एकाधिकारी के द्वारा श्रम की एक अतिरिक्त इकाई को नियोजित करने की लागत बतलाती है। यथार्थ में साधन की सीमान्त लागत की गणना कुल लागत में परिवर्तन साधन की मात्रा में परिवर्तन ($MFC_L = \Delta TC/\Delta L$) के रूप में की जानी चाहिए। तालिका 26.2 से यह भी विदित है कि साधन की सीमान्त लागत श्रम की मात्राओं पर साधन की कीमत से अधिक रहती है। ($MFC_L > P_W$) और फलस्वरूप साधन का सीमान्त लागत वक्र धनात्मक ढाल वाला होता है और सदा साधन पूर्ति वक्र के बांयी और ऊपर की ओर रहता है, साथ ही पूर्ति वक्र की अपेक्षा तेजी से बढ़ता है। इस तथ्य को चित्र 26.7 में प्रस्तुत किया गया है।

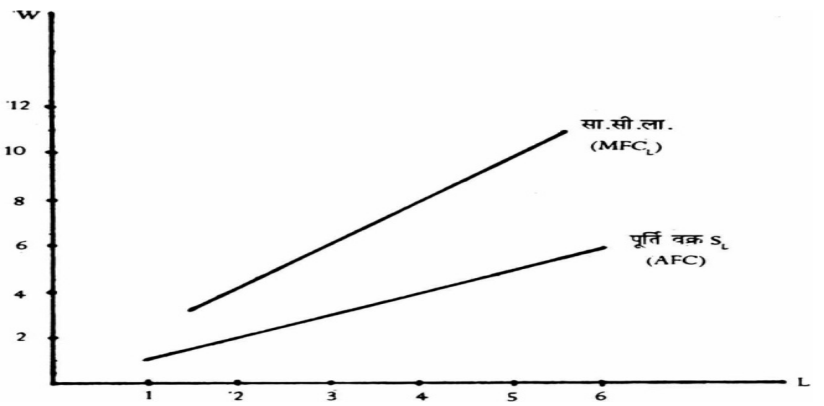

चित्र 26 .7

यहां इस तथ्य का पुन: उल्लेख करना उचित होगा कि साधन की सीमान्त लागत रोजगार के प्रत्येक स्तर पर साधन से अधिक होती है । उदाहरण के लिए रम की 3 इकाईयां रु 3. 00 प्रति इकाई की दर पर रखी जाती है और जब श्रम की इकाईयां बढ़ाकर 4 की जाती है तो मजदूरी रु. 4. 00 प्रति इकाई

हो जाती है। इस प्रकार श्रम की 3 इकाईयों पर रु 9.00 और 4 इकाईयों पर रु. 16.00 खर्च होते है, अर्थात् एक इकाई श्रम बढ़ाने में क्रेता 'एकाधिकार फर्म को रु 7. 00 खर्च करनें होते है जबकि यथार्थ में मजदूरी रु. 4.00 ही है। इसी प्रकार जब 5 इकाई श्रम का प्रयोग होता है तो पांचवी इकाई लगाने में रु 9.00 का अतिरिक्त खर्च होता है जबकि मजदूरी केवल 5 ही है। इससे स्पष्ट है कि साधन की सीमान्त लागत सदा साधन की कीमत से अधिक होती है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि क्रेता-एकाधिकारी श्रम की इन चौथी अथवा पांचवी इकाईयों का तभी प्रयोग करेगा जब इनको लगाने से उसकी कुल आय में होने वाली वृद्धि इन इकाईयों पर हुए अतिरिक्त व्यय के बराबर हो अर्थात् उसका सीमान्त आय उत्पादन साधन की सीमान्त लागत के बराबर हो।

26.4.3 एक परिवर्तनशील साधन का प्रयोग करने वाले क्रेता-एकाधिकारी का संतुलन:

क्योंकि साधन बाजार में क्रेता-एकाधिकारी एक मात्र क्रेता होता है। अत: क्रेता एकाधिकारी का मांग वक्र ही बाजार का मांग वक्र होता है। यदि क्रेताएकाधिकारी फर्म मात्र एक परिवर्तनशील साधन का प्रयोग करती है। तो उसका सीमान्त आय उत्पादन वक्र ही मांग वक्र होता है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है यह फर्म वस्तु बाजार में भी एकाधिकारात्मक है। (दूसरी ओर इसके सामने धनात्मक ढाल वाला पूर्ति वक्र) औसत लागत वक्र तथा उससे ऊपर साधन कर सीमान्त लागत वक्र होता है। इस स्थिति को चित्र 26. 8 में दिखलाया गया है।

अधिकतम लाभ के ध्येय वाला क्रेता एकाधिकारी एक परिवर्तनशील साधन की मात्रा का प्रयोग उस बिन्दु तक करेगा जब तक कि साधन की सीमान्त लागत उसके सीमान्त आय उत्पादन के बराबर नहीं हो पाती। साधन की कीमत (मजदूरी) भी उसके पूर्ति वक्र पर सम्बन्धी बिन्दु पर निर्धारित होती है।

यह स्पष्ट है कि सीमान्त आय उत्पादन का तात्पर्य कुल आय में होने वाली उस वृद्धि से जो साधन की एक इकाई और बढ़ाने के कारण होती है, जबकि साधन की सीमान्त लागत का तात्पर्य कुल लागत में होने वाली वृद्धि से है जो साधन की एक और इकाई बढ़ाने से होती है। अत: जब तक सीमान्त आय उत्पादन की राशि साधन की सीमान्त लागत से अधिक रहती है साधन की मात्रा बढ़ाने से लाभ बढ़ता है। जहां ये दोनों राशियों बराबर होती है लाभ अधिकतम होता है। चित्र 26.8 में E बिन्दु पर फर्म के लिए अधिकतम लाभ की स्थिति है क्योंकि इसी बिन्दु पर सा. आ. उ (MRP_L) तथा सी. सा. ला. (PFC_2) बराबर है। E बिन्दु बतलाता है कि फर्म OL मात्रा में श्रम का प्रयोग करेगी और इस मात्रा के लिए पूर्ति वक्र (AFC) बतलाता है कि फर्म OW मजदूरी देगी। अत: OW साधन बाजार की संतुलन कीमत होगी।

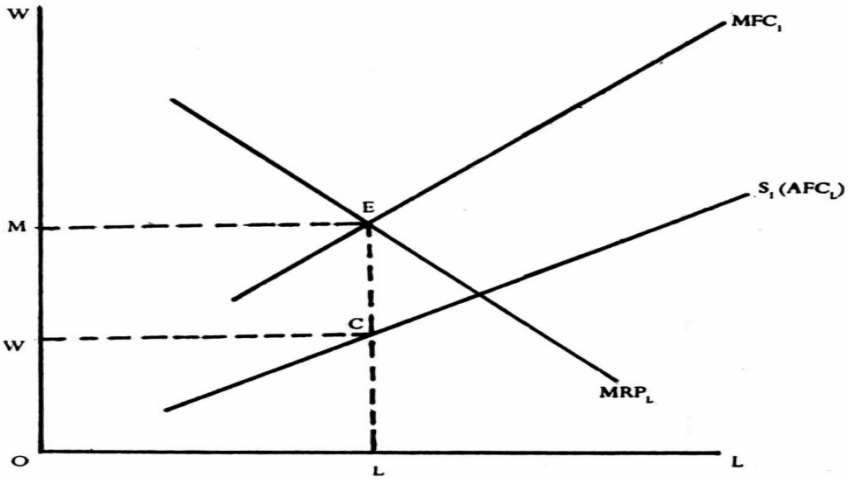

चित्र 26.8 एक परिवर्तनशील साधन का प्रयोग करने वाले क्रेता-एकाधिकारी का संतुलन

26.4.4 अनेक साधनों की दशा में क्रेता-एकाधिकारी संतुलन:

फर्म के द्वारा उत्पादन संयोजन के सन्दर्भ में हम पढ़ चुके है कि यदि साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो तो एक फर्म (चाहे उत्पादन बाजार किसी प्रकार की भी हो), न्यूनतम लागत की दृष्टि से परिवर्तनशील साधनों को ऐसे अनुपात में नियोजित करेगी कि तकनीकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर साधन कीमत अनुपात के बराबर हो

$$MRTS_{LX} = MPP_L / MPP = W/r$$

अथवा $MPP_K / r = MPP_L / W$

---

1. क्रेता एकाधिकारी के संतुलन कीं बीजगणितीय व्याख्या :

   मान लीजिए मग फलन है $P=F_i(x)$ और उत्पादन फलन है $Q_X = F_2(L,K)$ जबकि क्रेता - एकाधिकारी के सामने साधनों के प्रतिफलन है क्रमश : $W= f_3 (L)$ $r= f_4(K)$

   अत: लाभ फलन होगा $\pi = PXOX-K_X.L_W$

   और अधिकृत लाभ के लिए इन साधना के अव कलजों को शून्य के बराबर रखने पर :

जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक साधन पर किए गये प्रति रुपया व्यय से समान सीमान्त उत्पादन मिलता है तो फर्म की लागत न्यूनतम होगी और साधन संयोजन अनुकूलतम।

ऐसा होना सभी संभव है कि जब साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो और फर्म प्रचलित कीमत पर चाहे जितनी मात्रा में साधन को नियोजित कर सके। लेकिन यदि साधन बाजार एकाधिकारात्मक हों, (किसी भी प्रकार की अपूर्ण प्रतियोगिता) तो साधनों के प्रयोग की मात्राएं बदलने से उनकी कीमतें भी बदल जाती है। परिणामस्वरूप जब एक क्रेता-एकाधिकारी एक अतिरिक्त साधन का क्रय करता है तो कुल उत्पादन में तो सीमान्त लागत उत्पादन जुड़ता है परन्तु उसके कुल व्यय में मजदूरी (W) नहीं वरन्

साधन की सीमान्त लागत जुड़ती है, जो उपर्युक्त विवरण के अनुसार मजदूरी से अधिक होती है। अत साधन बाजारों में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में क्रेता एकाधिकारी अधिकतम लाभ की दृष्टि से परिवर्तनशील साधनों को इस प्रकार नियोजित करेगा कि प्रत्येक साधन की सीमान्त लागत पर होने वाले प्रति रुपया व्यय से प्राप्त प्रत्येक साधन का सीमान्त उत्पादन समान हो, (1) अर्थात्

$MPP_K/ MFC_K = MPP_L/MPP_L/MFC_L$ है

और MFC साधन की सी. सा. ला. है।

मान लीजिए कि फर्म द्वारा प्रयुक्त पूँजी श्रम अनुपात कुछ ऐसा है कि:

$MPP_K/MFC_K > MPP_L/MFC_L$

तो इसका तात्पर्य होगा कि पूँजी की सीमान्त लागत के प्रति रुपया व्यय से श्रम की तुलना में पूँजी से प्रति रुपया अधिक सीमान्त उत्पादन मिलता है। स्पष्ट ही फर्म श्रम का पूँजी द्वारा प्रतिस्थापन करेगी। जैसे ही पूँजी का प्रयोग बढ़ता है और श्रम का अपेक्षाकृत घटता है, पूँजी के सीमान्त उत्पादन में हास होगा और श्रम का सीमान्त उत्पादन बढ़ेगा साथ ही पूँजी की सीमान्त लागत बढ़ेगी और श्रम की घटेगी। यह क्रम तक चलता रहेगा जब तक कि पुन: $MPP_X/MFC_K=MPP_L/MFC_L$ नही हो जाता। इस प्रकार बहु परिवर्तनशील साधनों का प्रयोग करने वाले क्रेता एकाधिकारी अपनी साधन संरचना में उस समय तक परिवर्तन करता रहेगा। जब तक कि सभी साधनों में से प्रत्येक के सीमान्त उत्पादन तथा सीमान्त लागत (व्यय) का अनुपात समान नही हो जाता। इस प्रकार अनुकूलन साधन संयोजन तब प्राप्त 'होता है जब तकनीकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRTS) साधन सीमान्त लागतों के अनुपात के बराबर हो जाती है। दो साधनों की स्थिति में $MRTS_{K.L}=MPP_K/MPP_L=MFC_K/ MFC_L$ या $MPP_K/MFC_X= MPP_L/MFC_L$

26.4.5 क्रेता एकाधिकारी शोषण :

विक्रेता एकाधिकार के अन्तर्गत शोषण के सन्दर्भ में हमने देखा कि उत्पादन (वस्तु) बाजार में एकाधिकारी के उत्पादन का मांग वक्र दाहिनी ओर नीचे की ओर ऋणात्मक ढाल वाला होता है और इसका परिणाम यह होता है कि साधन को उसके सीमान्त आय-उत्पादन के बराबर पारिश्रमिक मिलता है, सीमान्त उत्पादन मूल्य से कम होता है, तथा यह है प्रत्येक साधन फर्म की लागत में अपने योगदान के बराबर तो पाता है परन्तु अपने सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बराबर नही।

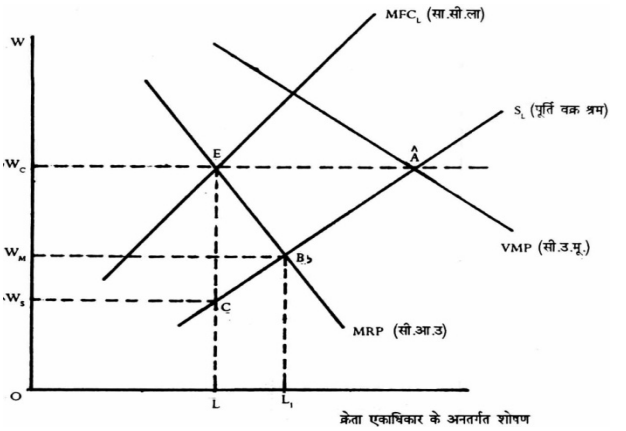

चित्र 26.9

लेकिन क्रेता-एकाधिकार में जो शोषण उभरता है वह और भी अधिक होता है, जैसा कि चित्र 26.9 में दिखलाया गया है। निहित मान्यता यह है फर्म की उत्पादन बाजार में एकाधिकारात्मक स्थिति है और साधन बाजार में वह क्रेता एकाधिकारी है। फर्म का संतुलन E बिन्दु पर होता है। जहां फर्म का साधन सीमान्त लागत (MFC) वक्र सीमान्त आय उत्पादन (MRP) वक्र को काटता है। इस प्रकार फर्म श्रम की OL मात्रा को नियोजित करती है; जिसकी पूर्ति, पूर्ति वक्र के अनुसार OWs मजदूरी पर होती है अत: क्रेता एकाधिकारी OL श्रमिकों को नियोजित करता है और OWs मजदूरी देता है। इस स्थिति में श्रम को उसके सीमान्त आय उत्पादन से भी कम मजदूरी मिलती है।

यदि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होती तो साधन को उसकी मांग एवं पूर्ति के संतुलन के आधार पर OWc मजदूरी मिलती है। अत: (Wc-Ws) का अन्तर क्रेता एकाधिकारी के शोषण को व्यक्त करता है । इसमें WcWm, विक्रेता एकाधिकार के कारण है और WsWm क्रेता एकाधिकार के कारण। यदि फर्म केवल वस्तु बाजार में विक्रेता एकाधिकारी होती तो भी संतुलन B बिन्दु पर होता और परिणाम स्वरूप Owm मजदूरी मिलती तथा OL_1 को रोजगार। इससे स्पष्ट होता है कि क्रेता-एकाधिकारी स्थिति में मजदूरी भी कम होती है और रोजगार भी। कुल मिलाकर क्रेता एकाधिकार में श्रम को उसके फर्म की आय में योगदान के बराबर भी नही मिलता।

26.4.6 क्रेता-एकाधिकार एवं श्रम संघ :

अभी तक उपर्युक्त विश्लेषण में हम यह मानकर चले है कि साधन बाजार श्रम बाजार में क्रेता-एकाधिकार है और श्रम.असंगठित है। अब हम ऐसी स्थिति पर विचार करेंगे जबकि श्रम संगठित हो जाता है और श्रम-संघ, श्रम पूर्ति को प्रभावित करके, सामूहिक सौदेबाजी में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मूल रुप से श्रम संघ की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। और वह विवेकपूर्ण नीति अपनाकर अपने सदस्यों को लाभ पहुँचा सकता है।

चित्र 26.10 क्रेता एकाधिकारी श्रम बाजार का चित्रण करता है। यदि श्रम संगठित नही है तो C बिन्दु पर संतुलन प्राप्त होगा जहां श्रम का सीमान्त आय उत्पादन श्रम की साधन सीमान्त लागत के बराबर है। इस स्थिति में संतुलन मजदूरी dW होगी तथा संतुलन रोजगार की मात्रा OL होगी

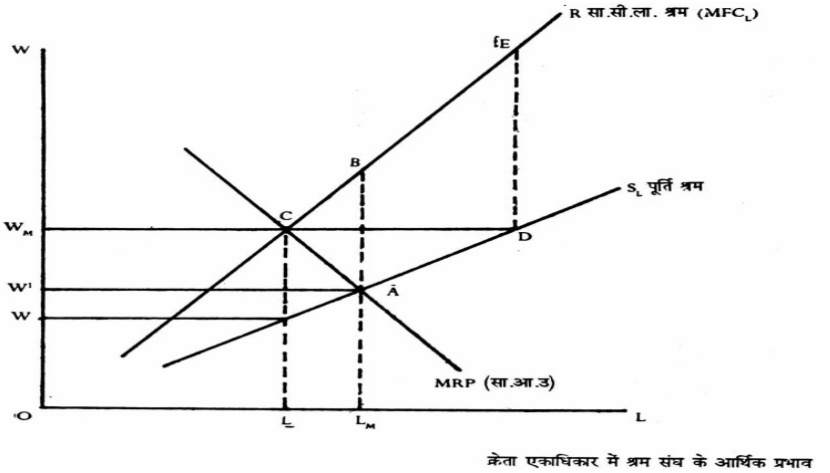

क्रेता एकाधिकार में श्रम संघ के आर्थिक प्रभाव

चित्र 26.10

अब मान लीजिए कि श्रम संगठित हो जाता है और संघ बनाकर क्रेता एकाधिकारी से सामूहिक सौदेबाजी प्रारम्भ करता है।

श्रम संघ का एक उद्देश्य अधिकतम रोजगार प्राप्त करना हो सकता है। इसके लिए वह श्रम पूर्ति को प्रभावित करके नया पूर्ति वक्र W'$_A$ S$_L$स्थापित कर सकता है जिससे A से नीचे श्रम की पूर्ति शून्य होगी। इस नये पूर्ति वक्र (AFC या S$_L$) के अनुसार अब साधन का सीमान्त लागत वक्र W' ABER हो जायेगा। सीमान्त आय उत्पादन (MRP) वक्र A बिन्दु पर साधन की सीमान्त लागत (MFC) वक्र को काटता है। अत: OW' मजदूरी पर अब OL$_M$ मात्रा रोजगार उपलब्धों होगा। इस प्रकार रोजगार में वृद्धि के साथ मजदूरी भी बसी। श्रम को उसकी सीमान्त आय उत्पत्ति के अनुसार मजदूरी मिलने से क्रेता एकाधिकारी स्थिति के कारण होने वाला विशेष शोषण समाज हो जायेगा।

श्रम संघ का एक अन्य उद्देश्य रोजगार को यथावत रखकर, अधिकतम मजदूरी प्राप्त करना हो सकता है। इसके लिए श्रम संघ नया पूर्ति वक्र W$_M$DS$_L$ स्थापित करत सकता है, जिसके अनुरूप साधन का सीमान्त लागत वक्र W$_M$DER होगा। इस नई स्थिति में C बिन्दु पर संतुलन लेगा जहां श्रम की सीमान्त आय उत्पत्ति एवं श्रम की साधन सीमान्त लागत बराबर है। अत मजदूरी OW$_M$ हो जायेगी और रोजगार OL यथावत रहेगा। यथार्थ में यह अधिकतम मजदूरी है जो श्रम अपने सदस्यों के लिए, बिना रोजगार में कभी के, उपलब्ध करवा सकता है। OW$_M$ से अधिक मजदूरी का स्तर रोजगार घटाकर ही प्राप्त किया जा सकता है जैसे कि MRP वक्र के C के ऊपर के भाग से स्पष्ट है।

इन दोनों सीमावर्ती नीतियां के अतिरिक्त समवर्ती नीतियां भी सकती है जिनके द्वारा श्रम संघ मजदूरी और रोजगारी दोनों को बढ़ा सकता है और क्रेता-एकाधिकार के विशेष शोषण (चित्र 26.9) के अनुसार W$_S$W$_M$को समाप्त कर सकता है।

बोध प्रश्न 2

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरी से अपने उत्तरी का मिलान करें।

(i) बहु परिवर्तनशील साधनों का प्रयोग करने वाली क्रेता एकाधिकारी फर्म के संतुलन की शर्तें बतलाये।

(ii) यदि सी. उ. मू. श्रम (VMP_L) सी. आ. उ (MRP) साधन कीमत (W) हो तो यह किस प्रकार के शोषण की स्थिति होगी-

1. विक्रेता एकाधिकारी शोषण
2. क्रेता- एकाधिकारी शोषण
3. क्रेता एवं विक्रेता एकाधिकारी पोषण
4. अल्पाधिकारी शोषण

(iii) सिद्ध कीजिए कि $MR=P(1-1/N)$ तथा $MFC_L=W(1+1/\theta)$

जहां n मांग की लोच तथा θL(theta) साधन पूर्ति लोच है।

26.5 द्विपक्षी एकाधिकार मे साधन कीमत निर्धारण

26.5.1 क्रेता एकाधिकारी तथा विक्रेता के मांग तथा पूर्ति संबंधी वक्र तथा अनिर्णितता

अब हम अपूर्ण प्रतियोगिता की क्रेता विक्रेता दोनों ओर चरम स्थितियों को लेकर हम तीसरी और अन्तिम मॉडल में द्विपक्षी एकाधिकार की स्थिति पर विचार करेंगे।

मान लीजिए कि एक साधन बाजार (श्रम बाजार) में साधन की सभी ग्राहक फर्में मिल जाती है और क्रेता-एकाधिकार के रुप में साधन-श्रम का क्रय करती है। दूसरी ओर मान लीजिए श्रम विक्रेता मजदूर भी संघ बना लेते है और इस प्रकार एक विक्रेता एकाधिकार के रुप में सामने आते है। चित्र 2611 को ध्यान से देखिए। चित्र 26.11 एकाधिकारी का श्रम सम्बन्धी मांग वक्र सी. आ. उ. (MRP) वक्र है। क्योंकि क्रेता-एकाधिकारी एक मात्र क्रेता है। अत यही MRP वक्र विक्रेता एकाधिकारी (Monopolist) का वक्र अर्थात् औसत आय वक्र भी है और इससे संबन्धित सीमान्त आय (MR) वक्र इसके नीचे बांयी ओर, दिखलाया गया है।

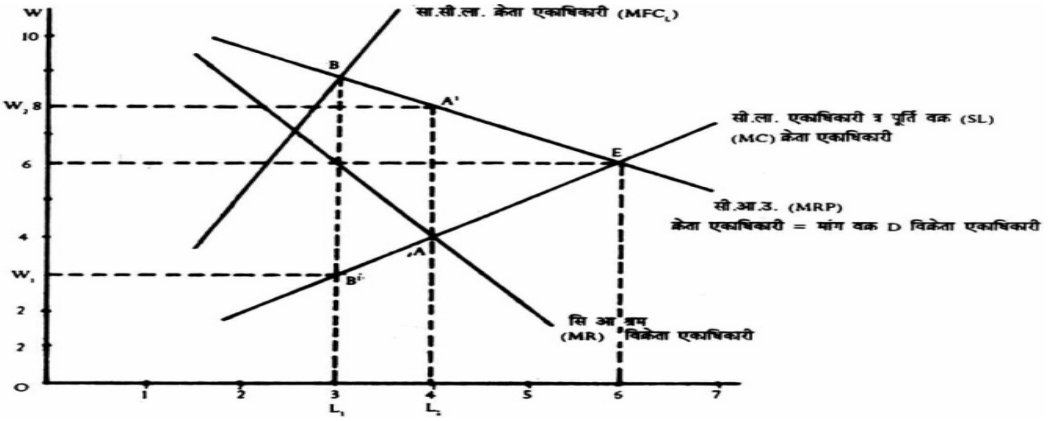

चित्र 26.11 द्विपक्षीय एकाधिकार से साधन कीमत निर्धारण

हम यह भी जानते है कि क्रेता के सामने जो पूर्ति वक्र होता है वही विक्रेता के लिए सीमान्त लागत वक्र भी होता है। साथ ही यह भी विदित है कि यदि क्रेता के लिए पूर्ति वक्र घनात्मक ढाल वाला हो अर्थात् अगली इकाईयां बढ़ती हुई कीमत पर उपलब्धों हो तो सीमान्त लागत और भी अधिक होगी। चित्र 26.11 में भी क्रेता एकाधिकारी (Monopsonist) के लिए जो पूर्ति वक्र (MFC) है। इस प्रकार वक्र से संबंधित साधन का सीमान्त लागत वक्र (MFC) भी चित्र 26.11 में दिखलाया गया है। इस प्रकार क्रेता एवं विक्रेता संतुलनों की व्याख्या के लिए सभी सामग्री उपलब्ध है।

हम पहले क्रेता एकाधिकारी के संतुलन पर विचार करें। क्रेता एकाधिकारी उस बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है जहां उसके द्वारा नियोजित श्रम का सीमान्त आय उत्पादन, श्रम की सीमान्त लागत के बराबर हो। (MRP=MFC) चित्र में बिन्दु B पर यह संतुलन होता है और श्रम की OL_1 (3 इकाईयां) मात्रा की पूर्ति OW_1, (रु0 3.00) पर उपलब्धों है। अत: क्रेता एकाधिकारी चित्र 26.11 के अनुसार श्रम की 3 इकाईयों का प्रयोग करेगा और रु0 3 प्रति इकाई मजदूरी देगा।

अब हम विक्रेता एकाधिकारी (श्रम संघ) की ओर से देखें। हम जानते है कि विक्रेता एकाधिकारी का संतुलन उस बिन्दु पर होता है जहां उसकी सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत बराबर हो ((MR=MC)। यह स्थिति चित्र 26.11 में A बिन्दु पर उपलब्ध होती है। अत: विक्रेता एकाधिकारी श्रम की OL_1 (3 इकाइयों) को बेचने को तैयार होगा और इस मात्रा के लिए अपने मांग (औसत आय AR) के अनुसार OW_2, (रु. 8) प्रति इकाई मजदूरी लेना चाहेगा।

इस प्रकार क्रेता एकाधिकारी रु. 3 प्रति इकाई मजदूरी देना चाहता है और विक्रेता एकाधिकारी (श्रम संघ) रु 8 प्रति इकाई मजदूरी चाहता है। दोनों के परस्पर विरोधी उद्देश्यों के कारण एक अनिश्चितता की स्थिति का उदय होता है और इसीलिए कहा जाता है कि द्वि-पक्षी एकाधिकार में साधन-कीमत निर्धारित नहीं हो पाता। अनत: कितनी कीमत निर्धारित होगी यह दोनों पक्षों की सौदेकारी की शक्ति पर निर्भर है। केवल इतना कहा जा सकता है कि साधन कीमत (श्रम की मजदूरी) B'AA'B परिधि में निर्धारित होगी।

26.5.2. सीमान्त उत्पादकता आधारित वितरण एवं कुशलता, समता तथा न्याय:

इसमें कोई सन्देह नही कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त द्वारा जिन सामान्य आर्थिक सम्बन्धों का विवेचन किया जाता है, वे उपयोगी है। यथार्थ में सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के सन्दर्भ में तीन बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय है:

(i) प्रथम साधनों के बीच आय का वितरण, उनके उत्पादन में योगदान के अनुरूप होता है।

(ii) सीमान्त उत्पादकता आधारित कीमतों के द्वारा बाजार संयंत्र के माध्यम से साधनों का आवंटन होता है।

(iii) क्योंकि सभी फर्में न्यूनतम लागत के उद्देश्य से साधनों का इस प्रकार समायोजन करती है कि सभी साधनों पर किये एक सीमान्त व्यय से समान सीमान्त उत्पादन प्राप्त हो, इसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक फर्म सभी साधनों का कुशलतम प्रयोग करती है।

साथ ही प्रतियोगी स्थिति में अर्थ-व्यवस्था में अपेक्षाकृत कम कुशल उद्योगों से कुशल उद्योगों में साधनों का पुनर्वितरण हो जाता है। लेकिन जहां सीमान्त उत्पादकता आधारित वितरण में ये गुण है वहां यह नही भूल जाना चाहिए कि प्रतियोगिता का आदर्श प्रतिमान यथार्थ जगत में मिलता ही नहीं। यथार्थ में साधन बाजार में काफी अपूर्णता मिलती है। अत: इस सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की उपादेयता होते हुए भी इसे उन गुणों से विभूषित नही कर देना चाहिए जो इसमें नही है। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि साधनों की मांग आर्थिक कारणों के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी प्रभावित होती है। प्रतियोगिता सम्बन्धी मान्यताएं जैसे साधन स्वामियों को उपलब्ध अवसरों का ज्ञान साधनों के बीच सजातीयता आदि जटिल स्थिति का अति सरलीकरण मात्र है। यथार्थ में साधन बाजारों में काफी अपूर्णता मिलती है जिसके कारण प्रतियोगिता से जुड़ी हुई आय वितरण में समता तथा न्याय की बात तर्क संगत प्रतीत नही होती। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में जैसा कि हम देख चुके है शोषण का उदय होता है और साधन के उसके उत्पादन में योगदान से कम पारिश्रमिक मिलता है और साधनों का अपेक्षाकृत कम प्रयोग होता है और उत्पादन भी कम होता है।

साधन कीमत निर्धारण तथा समता एवं न्याय :

सीमान्त उत्पादकता आधारित साधन कीमत कहां तक न्यायोचित हैं? यह भी विचारणीय है। यद्यपि समाज में आय वितरण में समता और न्याय सम्बन्धी समस्याओं पर सदा से विचार होता रहा है। परन्तु सीमान्त उत्पादकता आधारित साधन कीमत निर्धारण को न्याय संगत कहना और इस आधार पर बाजार तब को औचित्य प्रदान करना ठीक नहीं होगा।

वैसे, तो प्रतियोगी स्थिति होती ही नही लेकिन यदि यह आदर्श स्थिति यदि हो, तो भी साधन की सभी इकाईयों को उनके वैयक्तिक सीमान्त उत्पादन के बराबर नही वरन् अन्तिम इकाई के सीमान्त उत्पादन के अनुसार मजदूरी मिलती है। इस प्रकार अन्तिम इकाई को छोडकर शेष सभी इकाईयों को उनके सीमान्त उत्पादन से कम मजदूरी मिलती है। ऑस्कर लॉगे ने भी यह तर्क दिया है कि श्रम का शोषण इस बात में निहित है कि उसे, उसके द्वारा किए कुल उत्पादन के बराबर कुल नही मिलता। यह तो

रही प्रतियोगी बाजार की बात जो यथार्थ में मिलती ही नहीं। जो स्थिति मिलती है वह है पूर्ण प्रतियोगिता की, जिसके अन्तर्गत साधन (श्रम) को, अन्तिम इकाई के उत्पादन (सी. उ.) के मूल्य से भी कम उसके सीमान्त आय उत्पादन के बराबर पारिश्रमिक मिलता है। साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता होने पर मजदूरी और भी कम मिलती है जैसा कि हमने क्रेता एकाधिकार के विश्लेषण के अन्तर्गत देखा। अन्तत यदि सभी साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के मतानुसार भुगतान मिलता भी हो और बाजार तन में साधन आवंटन भी कुशल हो तो भी इसे समता पूर्ण या न्यायोचित कहना तथा इस पर नैतिक मूल्यों को आरोपित करना उचित नहीं होगा।

बोध प्रश्न 3

इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरी से अपने उत्तरों का मिलान करे।

(i) विक्रेता एकाधिकारी तथा क्रेता-एकाधिकारी के संतुलन की शर्तें बतलाइये।

(ii) द्वि-पक्षी एकाधिकार में साधन कीमत अनिर्णित रहती है। क्यों ' सचित्र स्पष्ट कीजिए।

(iii) क्या सीमान्त उत्पादकता आधारित साधन कीमत निर्धारक को न्यायोचित माना जा सकता है? अपना मत बतलाइये।

(iv) लाभ के अधिकतम करने की ऐसी सामान्य शर्तें बतलाइये। जो बाजार की सभी प्रकार की स्थितियों में लागू हो।

26.6 सारांश

25 वी इकाई में साधन कीमत निर्धारण के संदर्भ में सीमान्त उत्पादकता सीमान्त का विवेचन वह मान कर किया गया था कि उत्पादन बाजार एवं साधन बाजार दोनों में ही प्रतियोगिता की स्थिति है। परन्तु यथार्थ में यह आदर्श स्थिति नही मिलती। प्राय उत्पादन एवं साधन बाजारों के विभिन्न अंशों में अपूर्ण या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति मिलती है। अत: साधन कीमत निर्धारण एवं सत संबंधी गई सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की अपेक्षाकृत यर्थाथवादी धरातल का विवेचन करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रतियोगिता की शर्तों में ढील दी जाये।

सर्वप्रथम हमने माना कि उत्पादन (वस्तु) बाजार में एकाधिकारी स्थिति है और साधन बाजार में प्रतियोगिता की स्थिति। उत्पादन (वस्तु) बाजार में एकाधिकार अत्याधिकार, अथवा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता -किसी भी प्रकार की अपूर्णता का पहला परिणाम यह होता है कि फर्म अपने उत्पादन की बड़ी हुई मात्राओं को प्रचलित कीमत पर नही बन सकता?। उसे अतिरिक्त इकाईयों को बेचने के लिए कीमत घटानी पड़ती है जिसका यह होता है कि कीमत (आसन आय) और सीमान्त आय अलग-अलग हो जाने है, क्योंकि कीमत घटानी पड़ती है और इस घटी हुई कीमत उसे समस्त उत्पादित मात्रा बेचनी पड़ती है, सीमान्त आय हमेशा कीमत से कम रहती हैं।

अत: एकाधिकारी (अपूर्ण प्रतियोगी) फर्म की कुल आय में साधन के सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VPM) के बराबर वृद्धि: नहीं होता वरन् सीमान्त आय उत्पादन (MRP) के बराबर वृद्धि होनी है जो

सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) में अनिवार्यत: कम होना है। सीमान्त आय उत्पादन (MRP) यथार्थ में फर्म की कुल आय में होने वाली वह वृद्धि होती है, जो साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग के कारण होती है। स्पष्ट ही कोई फर्म किसी साधन को उसके द्वारा योगदान से अधिक पारिश्रमिक नहीं देगी। अत: एकाधिकारी (अथवा अपूर्ण प्रतियोगी) फर्म का साधन सम्बन्धी मांग वक्र सीमान्त आय उत्पादन (MRP) वक्र हो होता है।

फर्मों के सीमान्त आय उत्पादन द्वारा निर्धारित साधन मांग वक्रों को लेकर हमने एक नया अनेक परिवर्तनशील साधनों की स्थिति में बाजार मांग तथा रचना की व्यवस्था करी और इस बाजार मांग वक्र तथा साधन के धनात्मक ढाल वाले पूर्ति वक्र को लेकर साधन कीमत निर्धारण के समझने की चेष्टा की।

साथ की कीमत एवं सीमांत आय में अन्तर होने के कामा एकाधिकार की स्थिति में शोषण की व्याख्या की और हमने देखा कि शोषण इसलिए होता है कि साधन को उसके सीमान्त उत्पादन मूल्य से कम पारिश्रमिक मिलता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन कीमत निर्धारण के सन्दर्भ में हमने साधन बाजार- में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मानकर क्रेता-विक्रेता के मॉडल को लिखा। हमने देखा कि साधन बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण साधन की अगली इकाईयों को लगाने के लिए पारिश्रमिक की दर बढ़ानी पड़नी है और परिणामस्वरूप साधन का सीमान्त लागत (MEI) अलावा महान सीमान्त व्यय (MFC) साधन की कीमत से अधिक होनी है। इस प्रकार साधन की सीमान्त लागत वक्र साधन के पूर्ति वक्र (AFC) के बांयी ओरबार की ओर होता है।

हमने देखा कि क्रेता एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म, साधन की समाज उत्पादन आय तथा साधन की सीमान्त लागत के समान होने पर, संतुलन प्राप्त करती। है। तात्पर्य यह है फर्म अधिकतम लाभ की, दृष्टि से साधनों की मात्राएं इस प्रकार संयोजित करने है कि सभी साधनों के, सीमान्त उत्पादन साधन सीमांत लागत अनुमान परस्पर बराबर हो।

साथ ही हमने देखा कि क्रेता एकाधिकार में विक्रेता एकाधिकार की तुलना में शोषण की मात्रा और बढ़ जाती हूँ क्योंकि साधन को उसके सीमान्त आय उत्पादन (MRP) से भी कम पारिश्रमिक मिलता है।

इस सन्दर्भ में हमने इस बात पर भी विचार किया कि क्रेता-एकाधिकार शोषण के निवारण में श्रम-संघ की क्या भूमिका हो सकती है और वह किस प्रकार पूर्ति वक्र को प्रभावित करके रोजगार तथा मजदूरी सम्बन्धी उद्देश्यों को प्राप्त कर सकना है।

तीसरा और अन्तिम मॉडल हमने द्विपक्षीय एकाधिकार का लिया और देखा कि क्रेता-एकाधिकार फर्म तथा विक्रेता एकाधिकार (श्रम संघ) के परस्पर विरोधी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किये गए प्रयासों के कारण किस प्रकार साधन कीमत अनिर्णित रह जाना है। जहां क्रेता 'एकाधिकारी साधन सीमान्त आय उत्पादन एवं साधन कीमत आय उत्पादन एवं साधन सीमांत लागत के संतुलन स्तर पर पूर्ति कीमत के आधार पर मजदूरी देना चाहना है वहाँ विक्रेता एकाधिकारी (श्रम संघ) अपनी सीमान्त

आय तथा सीमान्त लागत के संतुलन स्तर सीमान्त आय :उत्पादन के अनुसार मजदूरी प्राप्त करना चाहता है और परिणाम स्वरुप सौदेबाजी के आधार पर ही निर्णय संभव होता है।

अन्ततः हमने सीमान्त उत्पादकता आधारित साधन कीमत निर्धारण का, साधनो के प्रयोग तथा आवंटन में कुशलता तथा आय सम्बन्धी समता एवं न्याय की दृष्टि से मूल्यांकन करने का प्रयास किया। विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से विचार करने यह निष्कर्ष निकलता है कि बाजार मन आधारित अर्थ-व्यवस्था में समाज उत्पादकता सिद्धांत की साधन कीमत निर्धारण नशा साधन आवंटन में उपादेयता होते हुए भी, इसको साधन प्रयोग में कुशलता अथवा आय वितरण में समता एवं न्याय सम्बन्धी गुणों से विभूषित करना उचित नहीं होगा।

26.7 शब्दावली

सबसे पहले यह अत्यन्त आवश्यक है कि 25 इकाई में दिये गये सुझावों पर पूरी तरह ध्यान दिया जाये और लाट किये गए प्रत्ययों (अवधारणाओ) को भलीभाँति समझ लिया जाये। इकाई 25 में सीमान्त उत्पादन मूल्य तथा सीमान्त आय उत्पादन की अवधारणाओं को खण्ड 25.7.2 के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है उन्हें पूरी तरह समझ ले।

एक अन्य तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना उचित होगा और वह है कुल, औसत और सीमान्त राशियों के बीच परस्पर सम्बन्ध। इसको स्पष्ट करने के लिए हम नीचे एक तालिका प्रस्तुत कर रहे है जिससे यह स्पष्ट होगा कि जब औसत राशि बढ़ती है तो सीमान्त राशि उसमें अधिक होता है और जब आसन राशि घटती है तो सीमान्त राशि उससे कम होती है, और जहां औसत और सामान राशियां बराबर हो, वहां औसत राशि अधिकतम या न्यूनतम होता है।

तालिका 26.3

श्रम (इकाइयां में)	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
कुल उत्पादन (1 कि.)	0	5	13	23	38	50	60	68	75	81	86	90
औसत उत्पादन	0	5	$6\frac{1}{2}$	$7\frac{1}{2}$	$9\frac{1}{2}$	10	10	$9\frac{5}{7}$	$9\frac{3}{8}$	9	$8\frac{2}{5}$	$8\frac{2}{11}$
सीमान्त उत्पादन	0	5	8	10	15	12	10	8	8	6	5	4

(नोट-सीमान्त तथा औसत राशियों पर ध्यान दीजिए)

यद्यपि तालिका 26.3 उत्पादन सम्बन्धी है पर इसमें कुल, औसत और सीमान्त राशियों के बीच जो सम्बन्ध प्रस्तुत किया है वह सभी स्थितियों में लागू होना है। यह भी ध्यान रहता चाहिए कि क्षैतिज रेखा का अर्थ = होता है।

अभ्यास

यदि कुल उत्पादन की सभी राशियों में 5 जोड़ दिये जाये तो बतलाईये औसत तथा सीमान्त राशियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? प्रत्यय : सभी प्रत्ययों को इकाई के मूल पाठ में विस्तार से समझाया गया है।

(i) सीमान्त आय उत्पादन (MRP) सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP) X सीमान्त आय (MR)

(ii) साधन सीमान्त लागत =कुल लागत / साधन की मात्रा

(iii) विक्रेता एकाधिकारी शोषण =सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) -- सीमान्त आय उत्पादन (MRP)

क्रेता एकाधिकारी शोषण= सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP)

26.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. A.M. Cartter : Theory of Wages and Employment
2. C.E. Ferguson, Microeconomic Theory.
3. Joan Robinson: The Economics of Imperfect Competition
4. K.W. Rothschild : The Theory of Wages
5. R.H. Leftwich : The Price System and Resource Allocation
6. एस.एल. आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त

26.9 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(i) प्रतिस्थापन प्रभाव, उत्पादन प्रभाव तथा लाभ अधिकतमीकरण प्रभाव (देखिए).25.4.2);

(ii) सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) सी. आय उत्पादन (MRP) (देखिए 26.3.6)

बोध प्रश्न 2

(i) सी.भौ.उ. / सा.सी.ला =सी.भो.उ / सा.सी.ला आदि-आदि।

(देखिए 26.4.4. (ii) (C); (iii) इसे आप कर चुके है।

बोध प्रश्न 3

ये विवरणात्मक प्रश्न है इनके उत्तर इकाई पाठ्य सामग्री के आधार पर स्वयं लिखिये।

इकाई 27

लागत के सिद्धान्त I: रिकार्डों का सिद्धान्त

Cost Principles I: Ricardian Theory

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 लगान का अर्थ

- 27.2.1 परम्परागत दृष्टिकोण
- 27.2.2 आधुनिक दृष्टिकोण

27.3 लगान के प्रकार

- 27.3.1 आर्थिक लगान
- 27.3.2 कुल लगान
- 27.3.3 प्रसंविदा अथवा ठेका का लगान

27.4 लगान के सिद्धान्त (लगान का निर्धारण)

27.5 रिकार्डों का लगान सिद्धान्त

- 27.5.1 सिद्धान्त की व्याख्या
- 27.5.2 विस्तृत खेती में लगान
- 27.5.3 गहरी खेती में लगान

27.6 रिकार्डों के सिद्धान्त के मुख्य तत्व

27.7 रिकार्डों के सिद्धान्त की आलोचना

27.8 सारांश

27.9 शब्दावली

27.10 उपयोगी पुस्तकें

27.11 बोध प्रश्न

27.0 उद्देश्य

आपने सामान्य बोलचाल में ' लगान " शब्द सुना होगा। इस शब्द का अर्थशास्त्र में एक विशिष्ट अर्थ है जिसे जानना अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिये आवश्यक है। उत्पादन के साधनों जैसे-भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन और साहस में से लगान भूमि का पुरस्कार है। इस अध्याय के अध्ययन से आप जान आएगे कि लगान का क्या अर्थ है, उसके कौन-कौन से प्रकार है और लगान के कितने सिद्धान्त है? यह अध्याय विशेष रूप सें रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का अध्ययन है। इस अध्याय में आप पढ़ेगे-

1. सिद्धान्त की व्याख्या
2. सिद्धान्त का उदाहरण
3. विस्तृत खेती में लगान
4. गहरी खेती में लगान
5. सिद्धान्त के मुख्य तत्व और मान्यताएं
6. सिद्धान्त की आलोचनाएं

27.1 प्रस्तावना

लगान राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो भूस्वामी को प्राप्त होता है। लगान के अर्थ के सका में निम्न दो दृष्टिकोण है

1. परम्परागत दृष्टिकोण
2. आधुनिक दृष्टिकोण

27.2 लगान का अर्थ

27.2.1 परम्परागत दृष्टिकोण

1. **रिकार्डो के अनुसार-** "लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भू-स्वामी को भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिये मिलता है।"

2. **टॉमस के अनुसार-** "लगान भूमि तथा अनेक प्रकृति प्रदत्त निश्चित उपहारों के स्वामित्व से प्राप्त होने वाली आय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

3. **कार्वर के अनुसार-** "भूमि के प्रयोग के बदले में जो उसके मालिक को दिया जाता है, उसे लगान कहते है।"

4. **मार्शल के अनुसार-** "भूमि तथा अन्य निःशुल्क प्रवृति प्रदत्त उपहारों के स्वामित्व से होने वाली आय को लगान कहते है।"

5. **सीनियर के शब्दों में- "**किसी प्रकृति प्रदत्त साधन के प्रयोग से प्राप्त की गई अतिरिक्त मे उपज ही लगान है।"

27.2.2 आधुनिक दृष्टिकोण

6. **बोल्डिंग कहते है-** "किसी भी उत्पादन के साधन की एक इकाई को उसे वर्तमान उत्पादन के कार्य में बनाये रखने के लिये, जो न्यूनतम राशि देना आवश्यक है, उससे अधिक जो भी भुगतान किया जाता है, उसे आर्थिक लगान कहते है।"

7. **बोल्डिंग ही के अनुसार-** "आर्थिक लगान वह भुगतान है जो किसी संतुलन की स्थिति में किसी उद्योग में लगें उत्पत्ति के किसी साधन की एक इकाई को दिया जाता है और यह उस न्यूनतम रकम से अधिक होता है जो किसी साधन विशेष को उसके वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिये आवश्यक होती है।"

8. **श्रीमती जान रॉबिन्सन के अनुसार-** "लगान की धारणा का सार उस आधिक्य की धारणा से है जो उत्पादन के किसी साधन की एक इकाई को उस उत्पादन कार्य में बनाये रखने के लिये आवश्यक न्यूनतम आय से अधिक है। "

इस प्रकार लगान के परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार लगान केवल भूमि का पुरस्कार है जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान एक सामान्य पुरस्कार है जो उत्पत्ति के किसी भी साधन को उसके न्यूनतम पूर्ति मूल्य के ऊपर प्राप्त होता है।

27.3 लगान के प्रकार

लगान शब्द का प्रयोग सामान्यत: निम्नलिखित तीन प्रकार से किया जाता है -

1. आर्थिक लगान
2. कुल लगान
3. प्रसंविदा अथवा ठेका का लगान

27.3.1 आर्थिक लगान

उत्पत्ति के साधन के रूप में केवल भूमि के प्रयोग के लिये दिया जाने वाला पारितोषिक आर्थिक लगान है। कृषि की कुल आय में से उत्पादन लागत को घटाने के बाद जो शेष बचता है उसे आर्थिक लगान कहते है। इस प्रकार आर्थिक लगान उस अतिरिक्त लगान को कहते है जो उत्पादन के किसी भी साधन का जिसकी पूर्ति पूर्णत: लोचदार नही होती, प्राप्त होता है।

27.3.2 कुल लगान

सामान्य बोलचाल में लगान शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया जाता है वह कुल लगान ही है। कुल लगान में आर्थिक लगान या भूमि के प्रयोग के बदले दिये जाने वाले भुगतान के अतिरिक्त निम्न तत्व भी शामिल होते है-

(अ) भूमि के सुधार के लिए लगाई गई पूँजी का आज,

(ब) भू-स्वामी द्वारा भूमि पर किये जाने वाले श्रम का पुरस्कार,

(स) भूमि के उचित प्रबन्ध का व्यय

(द) भू-स्वामी द्वारा उठाई जाने वाली जोखिम का पुरस्कार।

कुल लगान कितना होगा, यह बात पर निर्भर है कि इन तत्वों की मांग व मूल्य कितना है? कुल लगान सदैव आर्थिक लगान से अधिक होता है।

27.3.3 प्रसंविदा अथवा ठेका का लगान

प्रसंविदा लगान भू-स्वामी और काश्तकार के बीच परस्पर समझौते द्वारा तय होता है। यह लगान भू-स्वामी और काश्तकार की परस्पर प्रतियोगिता और मोल-भाव की तुलनात्मक शक्ति पर निर्भर होता है और आर्थिक लगान के बराबर, उससे अधिक या उससे कम हो सकता है। यदि दोनों पक्षों की मोल-भाव करने की शक्ति समान हुई तो यह आर्थिक लगान के बराबर होगा। यदि भू-स्वामी की मोल-भाव करने की शक्ति अधिक हुई तो यह आर्थिक लगान से अधिक होगा और यदि काश्तकार की मोल-भाव करने की शक्ति अधिक हुई तो यह आर्थिक लगान से कम होगा।

27.4 लगान के सिद्धान्त (लगान का निर्धारण)

सैद्धांतिक दृष्टि से कुल लगान और ठेके के लगान का नही, बल्कि आर्थिक लगान का महत्व है और लगान निर्धारण के अन्तर्गत आर्थिक लगान का विचार ही प्रस्तुत किया जाता है।

19 वी शताब्दी में सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने पहली बार लगान के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। जिसे ' रिकार्डो का आर्थिक लगान का सिद्धान्त " कहा जाता है। बाद में अर्थशास्त्रियों ने रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचना की और लगान का एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत किया। जिसे ' 'लगान का आधुनिक सिद्धान्त " कहते है। इस प्रकार लगान के दो सिद्धान्त है-

1. रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त
2. लगान का आधुनिक सिद्धान्त

इकाई 27 में हम रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त का अध्ययन करेगें। इकाई 28 में लगान के आधुनिक सिद्धान्त पर प्रकाश डाला जायेगा।

27.5 रिकार्डों का लगान सिद्धांत

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को लगान का प्रतिष्ठित सिद्धान्त या लगान का परम्परावादी सिद्धान्त या आर्थिक लगान का सिद्धान्त भी कहा जाता है। रिकार्डो ने अपने सिद्धान्त में बताया है कि लगान क्यों और कैसे उत्पन्न होता है? उन्होनें उत्पत्ति के साधनों के रूप में भूमि की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए केवल भूमि के सन्दर्भ में ही लगान के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। रिकार्डो के अनुसार, ''लगान भूमि की उपज का वह मांग है जो भू-स्वामी को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिये दिया जाता है। लगान एक प्रकार की भेदात्मक बचत या अन्तरमूलक लाभ का अतिरेक है जो भूमि की कुछ विशेषताओं के कारण प्राप्त होता है। लगान की मुख्य विशेषताएं है

(1)भूमि का सीमित होना यानी उसकी पूर्ति पूर्णत: बेलोचदार होना और

(2)भूमि की उर्वरा-शक्ति या स्थिति में भेद होना।

27.5.1 सिद्धान्त की व्याख्या

रिकार्डो ने भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तिओं का उल्लेख किया है। इन शक्तियों की भिन्नता यानी उपजाऊ पन एवं स्थिति सामाग्री भेद के कारण भूमि के विभिन्न टुकड़ों में विभिन्नता होती है और यही विभिन्नता आर्थिक लगान का कारण है। आरम्भ में उपजाऊपन या स्थिति की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ भूमि पर खेती की जाती है और उस भूमि की उत्पादन लागत के अनुसार अनाज का मूल्य तय किया जाता है। ऐसी स्थिति में इस भूमि पर कोइ लगान उत्पन्न नही होता है। परन्तु जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती है और परिणाम-स्वरूप ' अनाज की मांग बढ़ती है, अच्छी भूमि की मात्रा सीमित होने के कारण क्रमश: घटिया भूमि यानी कम उपजाऊ भूमि या कम अच्छी स्थिति वाली भूमि पर खेती करनी पड़ती है। इस भूमि की उपज पहली भूमि से कम होती है या दूसरे शब्दों में इसकी उत्पादन लागत पहली भूमि से अधिक रहती है। अत: मूल्य इस भूमि की उत्पादन लागत द्वारा तय होता है। इस भूमि को कोई लगान नही मिलना। परन्तु पहनी वाली भूमि पर लगान उत्पन्न हा जाता है और इसके भी पूर्व की अधिसीमान्त भूमियों पर लगान क्रमश: बढ़ता जाता है। इस प्रकार लगान बढ़िया और घटिया भूमियों की उपज के अन्तर के बराबर होता है। इस प्रकार लगान एक की भेदात्मक बचत है। रिकार्डो के अनुसार- ' लगान सीमान्त ओर अधिसीमान्त भूमियों की उपज का अन्तर है। सीमान्त भूमि के अतिरिक्त अन्य भूमियों की आय तथा उत्पादन लागत का अन्तर लगान है। " सीमान्त भूमि पर यह अन्तर शून्य होता है। अत: सीमान्त भूमि पर कोई लगान उत्पन्न नही होता है।

27.5.2 विस्तृत खेती मे लगान

रिकार्डो ने अपने आर्थिक लगान के सिद्धान्त को स्पष्ट करने हेतू कृषि का ऐतिहासिक कम प्रतिपादित किया है। उन्होंने एक ऐसे द्वीप का उदाहरण दिया है; जहां कोई नही रहता है। यदि इस द्वीप पर कुछ लोग आकर बस जाते है तो वे सर्वप्रथम ऐसी भूमि पर खेती करेगें जो सर्वश्रेष्ठ है। इसे रिकार्डो ने ' प्रथम श्रेणी की भूमि " कहा है। मान लीजिए-प्रथम श्रेणी की भूमि 5 एकड़ है और उस पर 100

क्विण्टल गेहूँ उत्पन्न होता है (यानी गेहूँ का उत्पादन 20 क्विण्टल प्रति एकड़ है। जो वर्तमान लोगों के लिये पर्याप्त है। मान लीजिए कुछ समय बाद दीप पर अधिक लोग आ गये और जनसंख्या बढ़ जाने से गेहूं की मांग बढ़ गई। प्रथम श्रेणी की भूमि सीमित होने से अब दूसरी श्रेणी की भूमि पर खेती करनी पड़ेगी। चूंकि यह भूमि अपेक्षाकृत कम उपजाऊ है या स्थिति की दृष्टि से कम सुविधाप्रद है अत: उस पर उतना ही व्यय करने से 5 एकड़ में 70 क्विण्टल गेहूं उत्पन्न होता है (यानी प्रति एकड़ 14क्विण्टल गेहूं) ऐसी स्थिति में पहली श्रेणी की भूमि पर एक प्रकार की बचत, आधिक्य या अतिरिक्त उत्पन्न होता है जो 6 क्विण्टल प्रति एकड़ है। अब दूसरी श्रेणी की भूमि पर कोई लगान नही है। परन्तु पहली श्रेणी की भूमि पर 6 क्विण्टल प्रति एकड़ का लगान उत्पन्न हो गया है। यदि जनसंख्या और बढ़ जाती है और दूसरी श्रेणी की भूमि पर खेती भी समाज हो जाती है तो तीसरी श्रेणी की भूमि पर खेती करनी पड़ेगी। मान लीजिए इसकी उत्पादनशीलता 8 क्विण्टल प्रति एकड़ है। अब यह भूमि सीमान्त भूमि हो जायेगी और मूल्य इसकी उत्पादन लागत के द्वारा तय होगा। ऐसी स्थिति में इसके पहले वाली (दूसरी श्रेणी की भूमि पर) लगान या अविरेक उत्पन्न होगा और ' 'और पहले वाली भूमि पर " लगान बढ़ जायेगा। यह कम निरन्तर चलता रहेगा। सीमान्त भूमि की प्रति इकाई उपज एवं अन्य भूमियों की प्रति इकाई उपज के अन्तर के बराबर होता है। इसे तालिका 27.1 से स्पष्ट किया जा सकता है-

तालिका 27.1

भूमि की श्रेणियां:	प्रति-हेक्टर	प्रति-हैक्टर	लागत
प्रथम श्रेणी	20	5	15
द्वितीय श्रेणी	14	5	03
तृतीय श्रेणी	8	5	03
चतुर्थ श्रेणी(सीमान्त भूमि)	5	5	00

इस प्रकार लगान विभिन्न भूमियों के प्रति हैक्टर उत्पादन में से उनकी प्रति-हैक्टर उत्पादन लागत को घटाकर ज्ञात किया जा सकता है। सीमान्त भूमि या अन्तिम भूमि पर कोई लगान नहीं है। उपर्युक्त उदाहरण रेखाचित्र 27.1 प्रस्तुत किया जा सकता है-

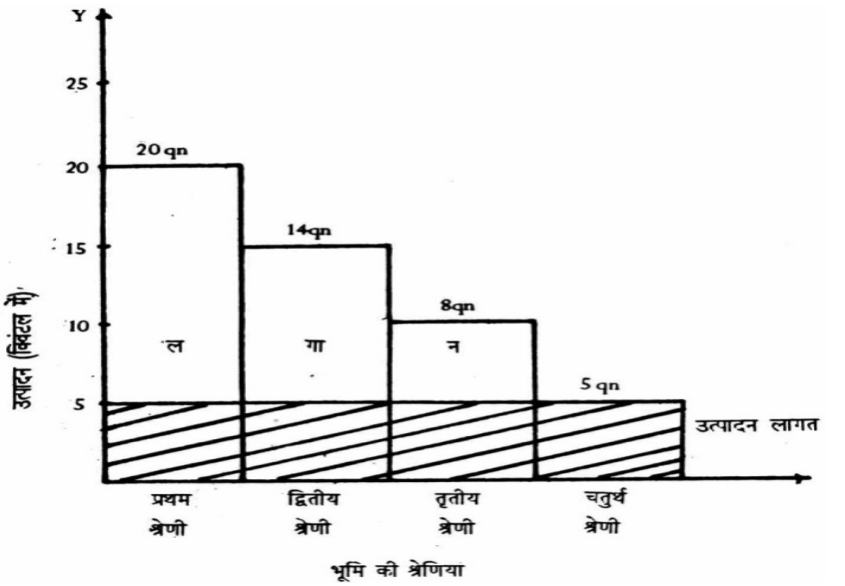

चित्र 27. 1

चित्र 27. 1 में OX अक्ष पर भूमि की श्रेणियां एवं OY अक्ष पर उत्पादन (क्विण्टल में) दर्शाया गया है। चौथा श्रेणी की भूमि लगान हीन भूमि है। क्योंकि उसका उत्पादन उत्पादन-लागत के बराबर है। प्रत्येक भूमि के उत्पादन से सीमान्त भूमि के उत्पादन के बराबर भाग को घटा देने के बाद जो शेष बचता है (जिसे तिरछी लाइनों द्वारा दर्शाया गया है), वह लगान है । यह लगान क्रमश श्रेष्ठतर भूमियों पर अधिकाधिक है।

27.5.3 गहरी खेती मे लगान

आर्थिक लगान का सिद्धान्त गहन खेती पर भी लागू होता है। गहन खेती का अर्थ है-भूमि के उसी टुकड़े पर श्रम और पूँजी की अतिरिक्त मात्राओं का प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाना भूमि की मात्रा की स्थिर रखते हुए जो-जो उस पर श्रम और पूँजी की मात्रा बढ़ाई जाती है, शुरू में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होने से प्रति इकाई उत्पादन बढ़ सकता है परन्तु अन्तत: उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता ही है और उत्तरोत्तर इकाइयों पर उत्पादन की मात्रा क्रमश: घटती जाती है और अन्त में एक जैसा बिन्दु आता है जब सीमान्त उत्पादन-लागत के बराबर हो जाता है । ऐसी स्थिति में भूमि पर लगाई गई श्रम व पूंजी की सीमान्त इकाई को कोई लगान नही मिलता परन्तु उसके की समस्त इकाइयाँ पर क्रमश: बढ़ता हुआ लगान प्राप्त होता है।

उदाहरण के लिये मानलो किसी भूमि के एक एकड़ के टुकड़े पर रूपये 1000 के श्रम व पूँजी की चार इकाइयों का प्रयोग होता है। अंतिम इकाई से प्राप्त अनाज का मूल्य भी रुपये 1000 है अर्थात् उसकी लागत के बराबर है। तब अन्तिम इकाई पर कोई लगान प्राप्त नहीं होगा परन्तु इसके पहने वाली श्रम व पूँजी इकाइयों पर जिनसे रूपये 1000 से अधिक का उत्पादन प्राप्त हो रहा है, उत्पादन एवं लागत के अन्दर के बराबर लगान प्राप्त होगा। इन्हें अधि-सीमान्त इकाइयां कहा जाता है।

तालिका 27.2

श्रम व पूंजी की इकाइयां	प्रति-हैक्टर उत्पादन का मूल्य (रुपयों में)	प्रति-हैक्टर उत्पादन लागत (रुपयों में)	लगान (रुपयों में)
पहली	2500	1000	1500
दूसरी	2000	1000	1000
तीसरी	1500	1000	500
चौथी	1000	1000	0

इस प्रकार लगान श्रम व पूँजी की इकाइयों से प्राप्त प्रति-हैक्टर उत्पादन के मूल्य में से प्रति-हैक्टर उत्पादन की लागत को घटाकर प्राप्त किया जा सकता है।

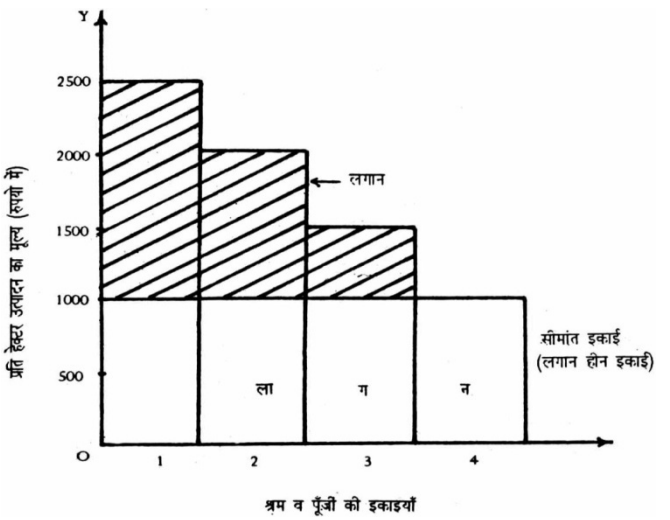

चित्र 27.2

चित्र 27.2 में OX अक्ष पर श्रम व पूँजी की इकाइयां प्रदर्शित है। और OY अक्ष पर प्रति एकड़ उत्पादन का मूल्य दिखाया गया है। श्रम व पूँजी की चौथी इकाई लगान हीन इकाई है उससे प्राप्त उत्पादन का मूल्य उसकी उत्पादन लागत के बराबर है। प्रत्येक इकाई के उत्पादन से सीमान्त इकाई के उत्पादन को घटा देने से जो शेष बचता है (जिसे तिरछी रेखाओं से दर्शाया गया है), वह लगान है। यह लगान क्रमश: पूर्व की इकाइयों पर अधिकाधिक है।

27.6 रिकार्डों के सिद्धान्त के मुख्य तत्व

रिकार्डों के लगान सिद्धान्त की कुछ महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार है-

1. लगान भूमि की सीमितता के कारण उत्पन्न होना है। इसीलिए रिकार्डो कहते है कि लगान भूमि की उदारता का नहीं; बल्कि कृपणता का परिणाम है। भूमि की मात्रा सीमित होने के कारण ही घटिया भूमि पर खेती। करनी पड़ती है और इसी कारण से गहरी खेती करनी पड़ती है।
2. लगान भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों पर परिणाम है। भूमि जितनी उपजाऊ होगी, उस पर उतना अधिक लगान प्राप्त होगा।
3. लगान अनार्जित आय है। लगान भू-स्वामी के प्रयास एवं मेहनत के फलस्वरूप उत्पन्न नहीं होता; बल्कि भूमि का मौलिक और अविनाशी शक्तियों के कारण उत्पन्न होता है।
4. लगान मूल्य में शामिल नही होता। वस्तु का मूल्य सीमान्त भूमि की ,उत्पादन लागत के बराबर होता है और सीमान्त भूमि लगानहीन भूमि होती है। अत: लगान मूल्य में शामिल नहीं होता। रिकार्डो के अनुसार लगान मूल्य को प्रभावित नही करता बल्कि स्वयं मूल्य से प्रभावित होता है और मूल्य इसलिए ऊँचा नही होता है कि लगान ऊंचा है; बल्कि लगान इसलिए ऊंचा होता है कि मूल्य ऊंचा है।"
5. लगान एक भेदात्मक बचत है। लगान इसलिए उत्पन्न होता है कि विभिन्न भूमियों में उपजाऊपन या स्थिति सम्बन्धी भेद होता है।
6. इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में रिकार्डो ने दो नियमों का सहारा लिया है। प्रथम-उत्पत्ति ह्रास नियम और दूसरा-जनसंख्या के ज्यामितिक दर से बढने का नियम।
7. यह सिद्धान्त दीर्घकालीन है और पूर्ण प्रतियोगिता को मानता है।
8. भूमियों को उनकी उर्वरता या स्थिति सम्बन्धी श्रेष्ठता के क्रम से मापा जाता है।

27.7 रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचना

रिकार्डो के सिद्धान्त की विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अनेक आधारों पर आलोचना की है।

1. भूमि की शक्तियाँ मौलिक और अविनाशी नही होती है। कृत्रिम खादों व उर्वरकों का प्रयोग करके भूमि की शक्तियों को बढाया जा सकता है। भूमि की शक्तियां कालान्तर में प्रयोग से नष्ट या कम हो जोती है।

2. कृषि का ऐतिहासिक कम मिथ्या है। रिकार्डो द्वारा बताया गया कृषि का क्रम सही नही है। यह जरूरत नहीं है कि लोग सबसे पहले सर्वाधिक उपजाऊ भूमि पर खेती करे या सबसे निकट की भूमि पर ही खेती करें।

3. सीमान्त या लगानहीन भूमि होना आवश्यक नही है। यह हो सकता है कि सीमान्त भूमि को भी कुछ लगान प्राप्त हो।

4. पूर्ण प्रतियोगिता और दीर्घकाल की मान्यताएं अव्यावहारिक है। रिकार्डों का सिद्धान्त इन दोनों मान्यताओं पर आधारित है परन्तु व्यवहार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मुश्किल है। वास्तविक जीवन में अपूर्ण प्रतियोगिता और अत्यन्त ही अधिक महत्वपूर्ण है

5. लगान भूमि की सीमितता का परिणाम है न कि उर्वरता का। श्रेष्ठतर भूमि पर लगान का आरम्भ इसलिए होता है कि वह सीमित है, इसलिए नहीं कि वह उर्वर है। उसकी सीमितता के कारण कम अच्छी भूमि पर खेती करना आवश्यक हो जाता है।

6. उत्पत्ति के अन्य साधनों को भी लगान प्राप्त हो सकता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पत्ति के अन्य साधनों को भी लगान प्राप्त हो सकता है; यदि उनकी पूर्ति सीमित है।

7. लगान' निर्धारण के लिए किसी अलग सिद्धान्त की आवश्यकता नही है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पत्ति के सभी साधनों का पुरस्कार एक ही सिद्धान्त के द्वारा निर्धारित हो सकता है और भूमि के पुरस्कार निर्धारण के लिए किसी अलग सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है।

8. लगान दीर्घकाल की ही विशेषता नही है। यह अल्पकाल में भी उत्पन्न हो सकता है, जब साधन या वस्तु की पूर्ति सिर हो। मार्शल ने इसे आभास लगान कहा है।

9. लगान मूल्य को प्रभावित करता है। यह आवश्यक नही है कि सीमान्त भूमि हमेशा लगानहीन भूमि हो। उस पर भी लगान प्राप्त हो सकता है।

इन सब आलोचनाओं के बावजूद भी रिकार्डों के सिद्धान्त का अपना महत्व और उपयोगिता है। राबर्टसन' के अनुसार 'नीतियों के दृष्टिकोण से रिकार्डों का लगान सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है।"

रिकार्डों का यह निष्कर्ष सत्य प्रतीत होता है कि जनसंख्या के दबाव में आकर मनुष्य कालान्तर में घटिया भूमि पर खेती करने को विवश हो जायगा।

27.8 सारांश

लगान राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो भू-स्वामी को प्राप्त होता है। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियों का प्रतिफल है। आधुनिक अर्थशास्त्री मानते है कि लगान अवसर लागत के ऊपर प्राप्त आधिक्य है।

लगान के तीन प्रकार है। आर्थिक लगान, कुल लगान और ठेका का लगान। आर्थिक लगान सिर्फ भूमि के प्रयोग का पुरस्कार है जबकि कुल लगान में आर्थिक लगान के अतिरिक्त उस भूमि पर लगे हुए श्रम, पूँजी, संगठन और साहस का पुरस्कार भी शामिल होता है। ठेका का लगान भू-स्वामी और काश्तकार के बीच परस्पर समझौते के द्वारा तय होता है;

रिकार्डों ने आर्थिक लगान का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार "अधि सीमान्त भूमियों को सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत के ऊपर जो आधिक्य प्राप्त होता है, वह लगान है।" यह लगान विस्तृत खेती में भी प्राप्त होता है और गहरी खेती में भी। लगान एक भेदात्मक बचत और

अनार्जित आय है। वह भूमि की सीमितता एवं उसकी मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के कारण उत्पन्न होता है। लगान मूल्य में शामिल नहीं होता। रिकार्डो का सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता, दीर्घकाल, उत्पत्ति ह्रास नियम और जनसंख्या वृद्धि की मान्यताओं को लेकर चलता है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अनेक आधारों पर रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचना की है परन्तु इस सिद्धान्त का अपना एक महत्व है।

27.9 शब्दावली

लगान (Rent)	भूमि-का पुरस्कार।
आर्थिक लगान (Economic Rent)	शुद्ध लगान को सिर्फ भूमि के प्रयोग का पुरस्कार है।
कुल लगान (Gross Rent)	आर्थिक लगान + भूमि पर लगे श्रम, पूँजी, संगठन साहस का पुरस्कार।
ठेके का लगान (Contract Rent)	जो भू-स्वामी और काश्तकार के बीच परस्पर समझौते से तय होता है।
विस्तृत खेती (Extensive Farming)	जिसमें उत्पादन 'बढ़ाने के लिए- भूमि की मात्रा बढ़ाई जाती है।
गहन खेती (Intensive Farming)	जिसमें उत्पादन बढ़ाने के लिए श्रम व पूँजी की मात्रा बढ़ाई जाती है।
भेदात्मक बचत (Differential Income)	जो भेद के कारण उत्पन्न होती है।
अनार्जित आय (Unearned Income)	जो बिना श्रम के उत्पन्न होती है।
अधिसीमान्त (Extra Marginal)	जो सीमान्त से पहले की हो।
आभास लगान (Quasi rent)	अल्पकाल में पूर्ति की स्थिरता के कारण बढ़ने वाले मूल्य से प्राप्त लाभ।

27.10 उपयोगी पुस्तकें

व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, डा. एच. एस. अग्रवाल, प्रकाशक - लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

आर्थिक विश्लेषण, के. पी. जैन, प्रकाशक - आगरा बुक स्टोर, आगरा

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, एस.पी.दूबे एवं वी.सी.सिन्हा, प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, डा. एस. एन. दूबे, प्रकाशक - लोकभारती प्रकाशन, आगरा

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, सुन्दरम् एवं वैश्य, प्रकाशक - रतन प्रकाशन मन्दिर, आगत

Micro Economist Theory, M.L. Jhingan, Konark Publishers Pvt. Ltd. Delhi.

Micro Economics, M.L. Seth, Laxminarayan Agrawal, Agra

27.11 बोध प्रश्न

1. लगान का क्या अर्थ है? लगान के कितने प्रकार होते है? उन्हें समझाइए।
2. आर्थिक लगान, कुल लगान और ठेके के लगान का अर्थ समझाइए और उनका अन्तर बताइए!
3. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को विस्तृत और गहरी खेती में समझाएं।
5. लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भू-स्वामी को भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के बदले मिलता है।" समझाइए।
6. 'गेहूं इसलिए ऊंचा नही कि लगान दिया जाता है बल्कि लगान इसलिए ऊंचा है कि गेहूं ऊंचा है।" (रिकार्डो) इस कथन का परीक्षण कीजिए।

इकाई 28

लगान के सिद्धान्त II: आधुनिक सिद्धान्त

Principle of Rent II: Modern Theory

इकाई की रूपरेखा

28.2 उद्देश्य

28.1 प्रस्तावना

28.2 आधुनिक सिद्धान्त का आधार

28.3 आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान का अर्थ

28.4 आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या

28.5 लगान की उत्पत्ति

28.5.1 विशिष्ट साधनों का लगान (पूर्णत : बेलोचदार पूर्ति की स्थिति)

28.5.2 अविशिष्ट साधनों का लगान (पूर्णत : लोचदार पूर्ति की स्थिति)

28.5.3 अर्द्ध-विशिष्ट. साधनों का लगान (अंशत : लोचदार पूर्ति की स्थिति)

28.6 आधुनिक सिद्धान्त के मुख्य तत्व

28.7 रिकार्डो के सिद्धान्त से तुलना

28.8 लगान तथा मूल्य

28.9 आभास लगान की धारणा

28.10 योग्यता- का लगान

28.11 सारांश

28.12 शब्दावली

28.13 उपयोगी पुस्तकें

28.14 बोध प्रश्न

28.0 उद्देश्य

इकाई 27 में रिकार्डो के सिद्धान्त का विस्तृत और गहन अध्ययन किया गया है। इकाई 28 में आप लगान के आधुनिक सिद्धान्त को सविस्तार देखेंगे। इस इकाई में आप पढ़ेगे-

1. लगान के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या,
2. उत्पत्ति के साधनों के विशिष्टता के आधार पर प्रकार,
3. विशिष्ट साधनों का लगान
4. अविशिष्ट साधनों का लगान,
5. अंशत: विशिष्ट साधनों का लगान,
6. आधुनिक सिद्धान्त के मुख तत्व,
7. रिकार्डो के सिद्धान्त से आधुनिक सिद्धान्त की तुलना,
8. लगान व मूल्य का सम्बंध
9. आभास लगान और;
10. योग्यता लगान।

28.1 प्रस्तावना

आपने पूर्व में देखा कि लगान के दो सिद्धान्त है। लगान का परम्परागत सिद्धान्त या रिकार्डो का आर्थिक लगान का सिद्धान्त और लगान का आधुनिक सिद्धान्त। रिकार्डो के अनुसार लगान सिर्फ भूमि का पुरस्कार है जो उसकी मौलिक और अविनाशी शक्तियों के कारण और भूमि की सीमितता व स्थिति सम्बन्धी भेद के कारण उत्पन्न होता है जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान उत्पत्ति के किसी भी साधन को प्राप्त हो सकता है और लगान अक्सर लागत के ऊपर प्राप्त आधिक्य है। अवसर लागत वह न्यूनतम आय है और लगान अक्सर लागत के ऊपर प्राप्त जनाधिक्य है। अवसर लागत वह न्यूनतम आय है जो किसी साधन की किसी कार्य में बनायें रखने के लिये अनिवार्य है।

28.2 आधुनिक सिद्धान्त का आधार

आधुनिक अर्थशास्त्री कहते है कि लगान 'की उत्पत्ति का कारण भूमि के उपजाऊपन की भिन्नता नहीं बल्कि भूमि की स्वल्पता है। यदि भूमि के उपजाऊपन में समानता हो तो भी भूमि की स्वल्पता के कारण लगान उत्पन्न होता है। जब तक भूमि में उपजाऊपन के अलावा स्वल्पता का गुण नहीं होगा, उस पर लगान उत्पन्न नही होगा। अत,. लगान उत्पन्न होने के लिए भूमि की स्वल्पता एक अनिवार्य शर्त है। जब तक एक विशेष श्रेणी की भूमि दुर्लभ नही हो जायेगी तब तक उत्पादकता होते हुए भी उस पर लगान देना सम्भव नहीं होगा। इस प्रकार लगान के निर्धारण में दुर्लभता और उत्पादकता दोनों का महत्व है। उत्पादकता भूमि की मांग को प्रभावित करती है और दुर्बलता या स्वल्पता भूमि की पूर्ति को। मांग और पूर्ति की दोनों शक्तियां संयुक्त रूप से लगान का निर्धारण करती है।

चूंकि उत्पादकता और स्वल्पता के गुण सिर्फ भूमि के ही नहीं बल्कि उत्पत्ति के अन्य साधनों के भी है। अत: लगान का संयन्त्र भी उत्पादन के सभी साधनों से है और भूमि के अलावा श्रम, पूँजी और साहस भी लगान प्राप्त कर सकते है।

28.3 आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान का अर्थ

आधुनिक अर्थशास्त्री विस्तृत अर्थ में ' लगान' ' शब्द क प्रयोग करते है। उत्पादन के किसी भी साधन की प्राप्त आधिक्य लगान है।

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार - ' लगान वह आधिक्य है जो साधन की एक विशिष्ट इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जो साधन को अपना कार्य करते रहने के लिये आवश्यक है। अर्थात न्यूनतम पूर्ति मूल्य के ऊपर प्राप्त आधिक्य लगान है। न्यूनतम पूर्ति मूल्य अर्थात् हस्तान्तरण आय अथवा अवसर लागत अर्थात मुद्रा की वह मात्रा जो साधन की एक इकाई अपने सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में प्राप्त कर सकती है।

प्रोफेसर बॉल्डिंग के शब्दों में ' 'आर्थिक लगान वह भुगतान है जो किसी सन्तुलन की स्थिति में किसी उद्योग में लगे उत्पत्ति के किसी साधन की एक इकाई को दिया जाता है और यह उस न्यूनतम राशि से अधिक होता है जो साधन-विशेष को उसके वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिये आवश्यक होती है।

प्रोफेसर बेन्हम के अनुसार-'किसी साधन की स्थानान्तरण आय के ऊपर जो भी प्राप्त होता है वह सामान्यत: लगान के स्वभाव का ही होता है। प्रोफेसर रिचर्ड लिप्से ने आर्थिक लगान को साधन की वास्तविक आय और हस्तान्तरण आय के मध्य का अन्तर माना है।

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि आधुनिक अर्थशास्त्री लगान का व्यापक अर्थ में प्रयोग करते है। उत्पादन के किसी भी साधन को प्राप्त अतिरेक लगान कहा जा सकता है। किसी साधन विशेष की एक इकाई के प्रयोग के न्यूनतम अनिवार्य भुगतान को उसकी अवसर लागत कहते है। किसी साधन को उसकी अवसर लागत के ऊपर जो भी अतिरिक्त प्राप्ति होती है, वह उसका लगान है। यह लगान उत्पत्ति के किसी भी साधन को प्राप्त हो सकता है।

28.4 आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या

आस्टिन अर्थशास्त्री वॉन वीजर ने उत्पादन के साधनों को तीन भागों में बांटा है

1. विशिष्ट साधन (Specific Factors)
2. अविशिष्ट साधन (Non-Specific)
3. अर्द्ध-विशिष्ट साधन (Semi Specific Factors)

विशिष्ट साधन के होते है जिनका उपयोग केवल एक विशिष्ट कार्य के लिये किया जा सकता है और जिनमें गतिशीलता नही होती। अत: इनकी पूर्ति पूर्णत: बेलोचदार होती है। परिणामस्वरूप उनकी

अवसर लागत शून्य होती है और उन्हें जो भी पुरस्कार मिलता है, उनका लागत ही है। अविशिष्ट साधन वे है जिसका उपयोग किसी भी कार्य में किया जा सकता है और उनमें गतिशीलता भी होती है। अत: इनकी पूर्ति पूर्णत: लोचदार होती है। परिणामस्वरूप उन्हें अपनी अवसर लागत से अधिक पुरस्कार नही मिल पाता और उनका लगान शून्य होता है।

अर्द्ध-विशिष्ट साधन वे है जिनकी पूर्ति न तो पूर्णत: लोचदार होती है और न पूर्णत: बेलोचदार। इस प्रकार इनकी विभिन्न इकाइयों की अवसर लागत अलग-अलग होती है और इन विभिन्न 'इकाइयों को उनकी अवसर लागत के ऊपर होने वाली प्राप्ति' उनका लगान है। संक्षेप में वास्तविक आय और अवसर लागत या स्थानान्तरण आय के अन्तर को लगान कहते है।

लगान= वास्तविक आय - स्थानान्तरण आय या अवसर लागत

Rent= Actual Earnings--Transfer Earning or- Opportunity Cost

इस सूत्र की सहायता से हम जान सकते है कि उत्पत्ति के किसी साधन की आय में कितना अंश लगान का है। लगान की सभी स्थितियों को जानने के लिए तालिका 28.1 का प्रयोग कर सकते है-

तालिका 28.1

स्थिति	साधन की वर्तमान आय	अवसर लागत (हस्तान्तरण आय)	लगान (2-3)
स्थिति -1	1000रु. प्रतिमाह	1000रु. प्रतिमाह	0
स्थिति -2	1000रु. प्रतिमाह	0.0 रु.प्रतिमाह	1000रु.
स्थिति -3	1000रु. प्रतिमाह	900 रु.प्रतिमाह	100रु.
स्थिति -4	1000रु. प्रतिमाह	1100रु. प्रतिमाह	100रु

स्थिति 1- प्रथम स्थिति में साधन की वर्तमान आय 1000 रुपये प्रतिमाह है और उसकी अवसर लागत भी 1000 रुपये प्रतिमाह है अर्थात् उसे 1000 रुपये प्रतिमाह से अधिक कही नही मिलता। ऐसी स्थिति मे उसस लगान शून्य होगा।

स्थिति 2- दूसरी स्थिति में साधन पूर्णत: विशिष्ट है यानी उसे वर्तमान व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य कही काम नहीं मिलता इसका अर्थ यह है कि उसकी अवसर लागत या हस्तान्तरण आय शून्य है अर्थात् साधन की पूरी वर्तमान आय अवसर लागत के ऊपर बचत यानी लगान होगी । इस प्रकार यह स्थिति दर्शाती है कि पूर्णत: विशिष्ट साधनों की पूरी आय लगान होती है।

स्थिति 3- तीसरी स्थिति मे साधन को अन्यत्र जाने पर रुपये 900 प्रतिमाह मिलते है । यानी 900 रुपये उसकी अवसर लागत हुई जबकि वर्तमान व्यवसाय में उसे 1000 रु. मिल रहे है । इस प्रकार

1000-900 = 100 रु. उसका लगान हुआ। इस स्थिति में साधन अंशत: विशिष्ट है और अन्य जाने को तैयार है।

स्थिति -4 चौथी स्थिति में साधन की वर्तमान व्यवसाय में 1000 रुपये मिलते है जबकि अन्यत्र जाने पर 1100 रुपये मिल- सकते है क्योंकि उसकी अवसर लागत 1100 रुपये है यानी गणितीय दृष्टि से उसका लगान -100 रुपये हुआ । किन्तु ऐसा नहीं होगा क्योंकि साधन-अन्यत्र चला जायेगा; जहां उसे 1100 रुपये मिलते है ।

28.5.1 लगान की उत्पत्ति

पूर्ण में हम देख चुके है कि उत्पत्ति के साधन तीन प्रकार के होते है- विशिष्ट, अविशिष्ट और अंशत: विशिष्ट। इनकी पूर्ति क्रमश: पूर्णत: बेलोच, पूर्णत: लोचदार और अंशच: लोचदार होती है। इन तीनों प्रकार के साधनों के सम्बन्ध में लगान की उत्पत्ति को चित्र 28. 1 में दर्शाया जा सकता है ।,

28.5.1विशिष्ट साधनों का लगान (पूर्णत: बेलोचदार पूर्ति की स्थिति)

लगान विशिष्टता के कारण उत्पन्न होता है । किसी साधन को लगान तब प्राप्त होता है, जब वह पूर्णत: विशिष्ट हो या एक सीमा तक विशिष्ट हो या उसकी पूर्ति पूर्णत: बेलोच हो या एक सीमा तक बेलोच हो। जब किसी साधन की पूर्ति बेलोचदार है या वह विशिष्ट है तो उसकी पूर्ति रेखा Y अक्ष पर लम्बवत होगी जैसा कि चित्र 28.1 मे SM रेखा द्वारा दर्शाया गया है । साधन कि मांग DD रेखा द्वारा दर्शित है जो SM को P बिन्दु पर काटती है अर्थात् साधन का मूल्य PM या LO है । ऐसे साधन की अवसर लागत शून्य होती है अर्थात् उसे PM से नीची कीमत देने पर भी वह कहीं नही जाएगा क्योंकि वह पूर्णत : विशिष्ट है और विशिष्ट प्रयोग तक सीमित-है । अत: साधन की सम्पूर्ण आय OMPL ($=OM_XPM$) उसका लगान होगी व्यवहारिक जीवन में यह स्थिति बहुत कम पाई जाती है ।

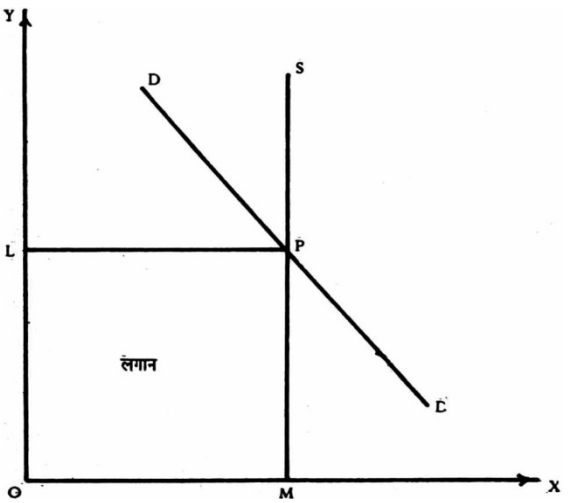

चित्र 28.1

28.5.2 अविशिष्ट साधनो का लगान (पूर्णत: लोचदार पूर्ति की स्थिति)

पूर्णत: अविशिष्ट साधन या पूर्णत: लोचदार पूर्ति वाले साधन को कोई लगान प्राप्त नही होता। क्योंकि एक विशेष कीमत पर साधन की कितनी भी इकाइयां उपलब्ध हो सकती है और इस विशेष कीमत से कम कीमत पर कोई इकाई काम करने को तैयार नहीं होती । यह विशेष कीमत इनकी हस्तान्तरण आय या अवसर लागत होती है। ये साधन इस कीमत से कम पर काम करने को तैयार नहीं होते और इस कीमत से अधिक उन्हें मिलता नही है। अथवा इनकी वास्तविक आय इनकी हस्तान्तरण आय के बराबर होती है। अत: उनका लगान शून्य होता है। चित्र 28.2 में साधन की प्रति इकाई कीमत OL या PM है और कुल आय ही साधन की अवसर लागत है। अत: उसे कोई लगान प्राप्त नहीं होता।

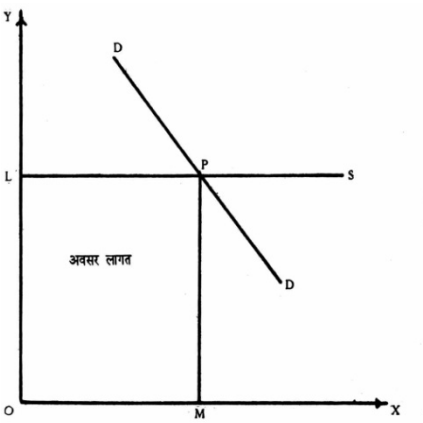

चित्र 28.2

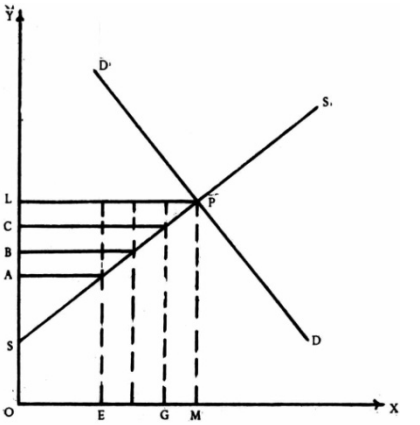

चित्र 28.3

28.5.3 अंशत: विशिष्ट साधनों का लगान (अंशत: लोचदार पूर्ति की स्थिति)

अधिकांश साधन ऐसे होते है जो न तो पूर्णत: विशिष्ट होते है; पूर्णत: अविशिष्ट अर्थात् तो उनकी पूर्ति पूर्णत: लोचदार होती है, न पूर्णत: बेलोचदार। इनका मूल्य जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उनकी पूर्ति बढ़ती जाती है। वास्तविक मूल्य क्या तय होगा यह इस बात पर निर्भर होता है कि साधन की मांग कितनी है। चित्र 28.3 में SS साधन का पूर्ति वक्र है और DD मांग वक्र। सभ्य P बिन्दु पर है। अत: मूल्य PM या LO तय हुआ है। इस मूल्य पर साधन की OM मात्रा की मांग की जाती है। अत: साधन की कुल आय OMxMP=OMPL है। उस कुल आय में से OMPS साधन की अवसर लागत है और शेष अर्थात् SPL साधन का लगान है। चित्र 28.3 में OE श्रम की ऐसी इकाइयों है जो OA मूल्य पर काम करने को तैयार है जबकि उन्हें OL मूल्य प्राप्त होता है। प्राप्त होता है। अर्थात् AL उनका लगान है। OF श्रम की ऐसी इकाइयां जो OB मूल्य पर काम कर OL को तैयार है जबकि उन्हें OL मूल्य मिलता हैं। अत: BL उनका लगान है। OG श्रम की ऐसी इकाइयां है जो OC मूल्य नर काम करने को प्रस्तुत है और OL मूल्य पा रही है अत: CL उनका लगान है। ON साधन की ऐसी इकाइयां है जो OL मूल्य पर काम करने को तैयार है और उन्हें OL मूल्य ही मिल रहा है अर्थात उन्हें कोई लगान नही मिल रहा है। इस प्रकार कुल OMPL है। कुल-अवसर लागत OMPS है और कुल लगान OMPL-OMPS= SPL है।

28.6 आधुनिक सिद्धान्त के मुख्य तत्व

उपर्युक्त विवेचन से लगान के आधुनिक सिद्धान्त की निमां कित विशेषताएं स्पष्ट होती है-

1. लगान सिर्फ भूमि का पुरस्कार नही है। उत्पादन के प्रत्येक साधन को लगान प्राप्त हो सकता है।
2. साधन की वास्तविक आय में से उसकी अवसर लागत को घटाकर लगान प्राप्त किया जा सकता है।
3. लगान साधन की विशिष्टता या बेलोचपूर्ति के कारण उलझन होता है।
4. पूर्णत: विशिष्ट या बेलोच पूर्ति वाले साधनों की पूरी आय लगान होती है।
5. पूर्णत: अविशिष्ट या लोचदार पूर्ति वाले साधनों की आय उसकी अवसर लागत के बराबर ही होती है। अत: उन पर कोई लगान नही होता।
6. आंशिक रूप से विशिष्ट या लोचदार पूर्ति वाले साधनों की पूर्ति मूल्य बढ़ने पर बढती है और उनकी पूर्व इकाइयां को क्रमश: बढ़ता हुआ लगान प्राप्त होता है।

28.7 रिकार्डों के सिद्धान्त से तुलना

आधुनिक लगान के सिद्धान्त की रिकार्डों के लगान सिद्धान्त से तुलना करने पर निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है।

1. रिकार्डों के अनुसार लगान की उत्पत्ति भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के कारण होती है। जबकि आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान का कारण साधन की विशिष्टता और बेलोच पूर्ति है।
2. रिकार्डों के अनुसार लगान सिर्फ भूमि का पुरस्कार है जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान भूमि को ही नही; उत्पादन के अन्य साधनों को भी मिलता है। क्योंकि भूमि की तरह अन्य साधनों की पूर्ति भी सीमित होती है और उनमें भी विशिष्टता या बेलोच या कम लोचदार पूर्ति की विशिष्टताएं हो सकती है। इसे रिकार्डों "भूमि तल" कहते है। इस भूमि तल के कारण ही साधन की लगान प्राप्त होता हैं।
3. रिकार्डों के अनुसार यदि विभिन्न भूमियों पर उर्वरा शक्ति एवं स्थिति सम्बन्धी भेद के कारण लगान में भिन्नता होती है। जबकि आधुनिक के अनुसार भूमि की सापेक्षिक मांग व पूर्ति में विभिन्नता के कारण लगान में भिन्नता होती है।
4. रिकार्डों के अनुसार यदि भूमि एक समान हो तो लगान उत्पन्न नहों होगा। जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार भूमि एक समान होने पर भी भूमि की मांग अधिक होने और पूर्ति सीमित होने से लगान उत्पन्न होता है।
5. रिकार्डों के अनुसार सीमान्त भूमि लगानहीन भूमि होती है। -जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार सीमान्त भूमि पर भी लगान प्राप्त हो सकता है क्योंकि लगान वह बचत है जा न्यूनतम पूर्ति

मूल्य पर प्राप्त होती है और सीमान्त भूमि भी न्यूनतम पूर्ति मूल्य से अधिक मूल्य प्राप्त कर सकती है।

6. रिकार्डो के अनुसार लगान वस्तु के मूल्य में शामिल नही होता। जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार वस्तु के मूल्य में लगान शामिल होता है।

28.8 लगान तथा मूल्य

लगान तथा मूल्य के सम्बन्ध के बारे में विभिन्न अर्थशास्त्रियों के अलग-अलग विचार है परन्तु दो मत अधिक प्रचलित है। पहला मत रिकार्डो का है जिसके अनुसार लगान मूल्य में शामिल नही होता। अत मत आधुनिक अर्थशास्त्रियों का है जिसके अनुसार लगान मूल्य में शामिल हो सकता

1. रिकार्डो का मत

रिकार्डो एवं अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान मूल्य की निर्धारित नही करता बल्कि स्वयं मूल्य द्वारा निर्धारित होता है। लगान एक प्रकार का आधिक्य है जो लागत तथा मूल्य के अंतर को प्रकट करता है। रिकार्डो के अनुसार मूल्य सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत के द्वारा तय होता है और सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत के बराबर होता है। अत: भूमि पर कोई भी आधिम्य या लगान उत्पन्न नही होता। सीमान्त भूमि के पूर्व की भूमियों पर लगान उत्पन्न होती है क्योंकि उनकी लागत सीमान्त भूमि की लागत या अनाज के मूल्य से कम होती है। इस प्रकार रिकार्डो के अनुसार वस्तु के मूल्य पर लगान का कोई प्रभाव नही पड़ता बल्कि लगान पर वस्तु के मूल्य का प्रभाव पड़ता है। रिकार्डो के शब्दों में ' 'अनाज का मूल्य इसलिए अधिक नहीं है क्योंकि लगान दिया जाता है बल्कि लगान इसलिए दिया जाता है क्योंकि अनाज का मूल्य अधिक है। " इस प्रकार लगान की कमी या वृद्धि लगान की प्रभावित करती है। इसलिए कहा जाता है कि लगान मूल्य द्वारा प्रभावित तो होता है पर मूल्य को प्रभावित नही करता।

2. आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान मूल्य की प्रभावित करता है या इस बात पर निर्भर है कि हम लगान को अर्थव्यवस्था में किस दृष्टि से देखते है? व्यक्तिगत उत्पादन की दृष्टि से, एक उद्योग की दृष्टि से या सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से।

1. **व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से-** एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि -से वह उत्पादन के अन्य साधनों की तरह भूमि साधन को भी मूल्य देकर खरीदता है। अत: उत्पन्न वस्तु का इतना मूल्य रखता है कि भूमि की कीमत या लगान भी निकल आवे। यदि लगान उत्पत्ति की कीमत से वसूल नही होता है तो वह निश्चय ही उत्पादन कार्य बन्द कर देगा। अत: एक व्यक्तिगत उत्पादक के दृष्टि कोण से उसकी लागत का सम्पूर्ण लगान उसकी लागत का अंग है और लगान के घटने-बढ़ने का प्रभाव मूल्य पर अवश्य पड़ता है।

2. **एक उद्योग की दृष्टि से-** एक उद्योग की दृष्टि से भूमि की स्थानान्तरण लागत या हस्तान्तरण आय या अवसर लागत होती है और इस प्रकार किसी उपयोग में भूमि की समस्त आय लगान नहीं होती बल्कि समस्त आय का वह भाग लगान होता है जो स्थानान्तरण लागत या अवसर लागत के ऊपर प्राप्त हो रहा है। एक उद्योग की दृष्टि से स्थानान्तरण लागत या अवसर लागत उत्पादन लागत का एक अंग है और इसलिए कीमत की निर्धारक है। जबकि इसके ' ऊपर प्राप्त होने वाला आधिक्य या लगान कीमत द्वारा निर्धारित होता है।

3. **सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से -** सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से भूमि की कुल पूर्ति पूर्णत: निश्चित एवं बेलोचदार है अर्थात् मूल्य घटने या बढ़ने से बदलती नहीं है। भूमि प्रकृति का नि:शुल्क उपहार है, उसकी कुल पूर्ति स्थिर है, उसका कोई पूर्ति मूल्य नही है और उसकी कोई अवसर लागत या स्थानान्तरण लागत मही है। अत: उसकी समस्त आय एक बचत अर्थात् लगान है अत: वह लागत में प्रवेश नहीं करती तथा कीमत को प्रभावित नहीं करती।

निष्कर्ष के रूप में हम प्रोफेसर सेम्युलसन के इस विचार पर गौर कर सकते है कि कभी लगान कीमत की निर्धारित करने वाला होता है और कभी कीमत द्वारा निर्धारित होने वाला होता है। डेवनपोर्ट के अनुसार न तो लगान का प्रभाव कीमत पर पड़ता है और न कीमत का प्रभाव लगान पर पड़ता है। वास्तव में लगान तथा कीमत दोनों पर ही भूमि की उपज की मांग एवं पूर्ति का सापेक्षिक प्रभाव पडता है। यदि भूमि की उपज कीं मांग उसकी पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो तो कीमत और लगान दोनों अधिक होगे और यदि मांग पूर्ति की अपेक्षा कम हो तो कीमत तथा लगान दोनों कम होंगे।"

28.9 आभास लगान की धारणा

आभास लगान की धारणा एल्फ्रेड मार्शल की देन है। मार्शल के अनुसार- ' 'आभास लगान उस अतिरिक्त आय को कहते है जो उत्पादन के निर्मित साधनों की पूर्ति के अल्पकाल में सीमित होने के कारण उत्पन्न होती है।"

प्रोफेसर सिल्वरमैन के अनुसार- 'उत्पत्ति के कुल साधनों, जिनकी पूर्ति दीर्घकाल में तो बढाई जा सकती है परन्तु अल्पकाल' में स्थिर रखती है, की अतिरिक्त आय को आभास लगान कहते है "

स्टोनियर एवं हेग के अनुसार, - "अल्पकाल में उत्पादन के किसी साधन (भूमि को छोडकर) की पूर्ति मांग की अपेक्षा कम होने से उस पर जो आधिक्य मिलता है, उसे आभास लगान कहते है। इसे लगान न कहकर आभास लगान इसलिए कहते है क्योंकि इसका सम्बन्ध अल्पकाल से है। दीर्घकाल में इन साधनों की पूर्ति बढ़ाई जा सकती है और यह अतिरिक्त आधिक्य समाज हो जाता है। "आभास लगान औसत परिवर्तनशील आगत से अधिक होता है परन्तु वह औसत कुल लागत से कम, अधिक या उसके बराबर हो सकता है।

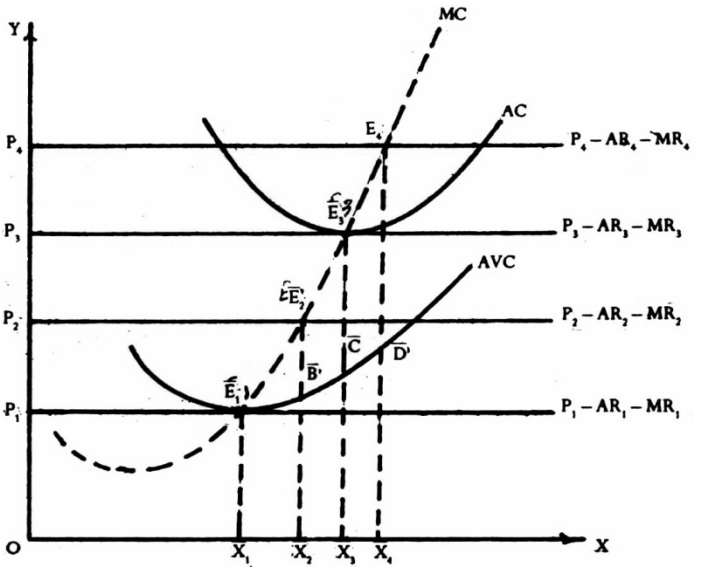

चित्र 28.4

चित्र 28.4 में AVC औसत परिवर्तनशील लागत है और AC औसत कुल लागत है। पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य उद्योग द्वारा दिया हुआ होता है। मान लो आरम्भिक मूल्य OP_1 है जहाँ फर्म OX_1 मात्रा का उत्पादन करती है। यहां वह अपनी औसत परिवर्तनशील लागत को ही वसूल कर पाती है। और आमास लगान शून्य है।

यदि मूल्य और बढ़कर P_2 हो जाता है तो आमास लगान उत्पन्न होता है और प्रति इकाई आभास लगान E_2B के बराबर होता है। यह प्रति इकाई औसत स्थिर लागत (औसत परिवर्तनशील लागत और औसत लागत का अंतर) से कम है।

यदि मूल्य और बढ़कर P_3 हो जाता है तो आभास लगान और बढ़कर प्रति इकाई E_3C के बराबर हो जाता है। यह औसत स्थिर लागत (औसत लागत-औसत परिवर्तनशील लागत के बराबर है। यदि मूल्य और बढ़कर P_4 हो जाता है तो फार्म OX_4 मात्रा उत्पन्न करती है और प्रति इकाई E_4D आभास लगान प्राप्त करती है जो औसत स्थिर लागत से अधिक है।

इस प्रकार आभास औसत स्थिर लागत से कम, उससे अधिक या उसके बराबर हो सकता है।

28.10 योग्यता का लगान

आधुनिक अर्थशास्त्री लगान को वास्तविक आय एवं स्थानान्तरण आय या अवसर लागत का अन्तर मानते है। साथ ही वे यह भी कहते है कि लगान तब उत्पन्न होता है जब साधन की पूर्ति बेलोचदार लेती है। अनेक व्यक्तियों में कुछ प्राकृतिक योग्यता या विशिष्ट गुण होते है जिनके कारण वे अवसर लागत से अधिक प्राप्त करते है और यह आधिक्य उनकी योग्यता के कारण उत्पन्न होता है। अत: मार्शल के अनुसार यह उनकी योग्यता का लगान है।

28.11 सारांश

लगान के दो सिद्धान्त है (1) परम्परागत और (2) आधुनिक। परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार लगान सिर्फ भूमि का पुरस्कार है जो स्थिति एवं उपजाऊपन सम्बन्धी भेद एवं सीमितता के कारण प्राप्त होता है। जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान भूमि को ही नही बल्कि उत्पत्ति के किसी भी साधन को प्राप्त हो सकता है और साधन की अवसर लागत के ऊपर प्राप्त आधिक्य है। अवसर लागत वह न्यूनतम आय है जो किसी साधन को किसी कार्य सें बनाये रखने के लिये देना अनिवार्य है। उत्पत्ति के साधन तीन प्रकार के होते है।

1. **विशिष्ट साधन -** जिनकी पूर्ति पूर्णत: बेलोच होती है और जिन्हें किसी विशिष्ट प्रयोग में ही लाया जा सकता है। इनकी अवसर लागत शून्य होती है। अत: इनकी सम्पूर्ण आय उनका लगान होती है।
2. **अविशिष्ट साधन-** जिनकी पूर्ति पूर्णत लोचदार होती है और इन्हें अनेक प्रयोगों में लाया जा सकता है। इनकी एक निश्चित अवसर लागत होती है और इनकी पूर्ति पूर्णत: लोचदार होने के करण इन्हें अपनी अवसर लागत से अधिक प्राप्त नहीं होता। अत इन्हें कोई लगान प्राप्त नहीं होता।
3. **अंशत: विशिष्ट साधन-** जिनकी पूर्ति अंशत लोचदार होती है और मूल्य बढ़ने पर बढ़ती जाती है। इनकी विभिन्न इकाइयों की निश्चित अवसर लागत होती और इस अवसर लागत के ऊपर होने वाली प्राप्ति उनका लगान है।

लगान के आधुनिक सिद्धान्त की अपनी विशेषताएं है और कुछ अर्थों में वह रिकार्डों के लगान सिद्धान्त से भिन्न है।

28.12 शब्दावली

1. विशिष्ट साधन (Specific Factors) -जिनका प्रयोग विशिष्ट कार्यो में ही होता है।
2. अविशिष्ट साधन (Non-Specific Factors)-जिनका प्रयोग अनेक कार्यो में हो सकता है।
3. अर्द्ध-विशिष्ट साधन (Specific Factors)-जो न तो पूर्णत: विशिष्ट है, न पूर्णत: अविशिष्ट।
4. पूर्णत: बेलोच पूर्ति (Completely Inelastic Supply)-जिनकी पूर्ति किसी भी पूर्ति पर स्थिर रहती है।
5. पूर्णत: लोचदार पूर्ति (Completely Elastic Supply)-जिनकी पूर्ति एक ही मूल्य स्तर पर बदली जा सकती है।
6. अंशत: लोचदार पूर्ति (Semi-Elastic Supply)-जिनकी पूर्ति मूल्य बढ़ने के साथ बढ़ती है।
7. आभास लगान (Quasi Rent)-वह लगान जो अल्पकाल में साधन की पूर्ति की स्थिरता के करण उत्पन्न होता है।

8. योग्यता का लगान (Ability Rent) लगान जो साधन या व्यक्ति को उसकी विशेष योग्यता के कारण प्राप्त होता है।

28.13 उपयोगी पुस्तकें

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, डा. एच. एस. अग्रवाल, प्रकाशक-लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
2. आर्थिक विश्लेषण, के. पी. जैन, प्रकाशक-आगरा बुक स्टोर, आगरा
3. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, एस. पी. दूबे एवं वी. सी. सिन्हा, प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, डा. एस. एन. दूबे, प्रकाशन-लोक भारती प्रकाशन, आगरा
5. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, सुन्दरम् एवं वैश्य, प्रकाशक-रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा
6. Micro Economic Theory, M.L. Jhingan, Konark Publishers Pvt. Ltd, Delh
7. Micro Economics, M.L. Seth, Laxminarayan Agrawal, Agra.

28.14 बोध प्रश्न

1. "लगान विशिष्टता का भुगतान है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. लगान के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. 'लगान तब उत्पन्न होता है जब किसी साधन की पूर्ति पूर्णत: लोचदार से कम होती है।' विवेचना कीजिए।
4. आधुनिक लगान सिद्धान्त की तुलना रिकार्डो के लगान सिद्धान्त से कीजिए। यह सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्त पर किस तरह एक सुधार है।
5. लगान के आधुनिक सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।
6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:
    1. स्थानान्तरण आय या अवसर लागत,
    2. आभास लगान,
    3. योग्यता का लगान
    4. लगान और मूल्य
    5. विशिष्ट साधन
    6. अविशिष्ट साधन
    7. अंशत: विशिष्ट साधन।
    8.

इकाई 29

ब्याज के सिद्धान्त I : कीन्स पूर्व

Theories of Interest I: Before Keynes

इकाई की रूपरेखा

29.1 ब्याज

29.1.1 ब्याज क्या है?

29.1.2 ब्याज की परिभाषाऐं

29.1.3 ब्याज देने का औचित्य

29.1.4 कुल एवं वास्तविक ब्याज

29.2 ब्याज के सिद्धांत

29.2.1 सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत

29.2.2 त्याग या प्रतीक्षा का सिद्धांत

29.2.3 ब्याज का आस्ट्रियन सिद्धांत

29.2.4 फिशर का समय पसन्दगी सिद्धांत

29.2.5 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धांत

29.2.6 ब्याज का नवप्रतिष्टित सिद्धांत

29.6 शब्दावली

29.4 उपयोगी पुस्तकें

29.5 अभ्यासों के उत्तर

29.1 ब्याज

29.1.1 ब्याज क्या है?

उत्पादन के लिए कई साधनों की आवश्यकता पड़ती है जिनमें पूँजी भी सम्मिलित है। ब्याज इस पूँजी की उत्पादकता का पुरुस्कार है। उत्पादन करने वाला यह समझता है कि पूँजी का प्रयोग करने से उत्पादन क्षमता बढ़ जाएगी। जैसे हाथ से काम करने वाले श्रमिक की कार्य क्षमता मशीन प्राप्त करने

पर बढ़ जाती है। इसलिए वह पूँजी की मांग करता है। पूँजी के प्रयोग से बढ़ी हूई क्षमता में से प्रत्येक साधन को उनकी सेवा का पुरस्कार मिलता है। पूँजी के परिप्रेक्ष्य में यह भुगतान ब्याज कहलाता है।

29.1.2 ब्याज की परिभाषाऐं

ब्याज को कई प्रकार से परिभाषित किया गया है। कुछ प्रमुख अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषायें निम्न है

1. मेयर्स के अनुसार,-"ब्याज वह कीमत है जो उधार देने योग्य कोष के प्रयोग के लिए दी जाती है"।
2. मार्शल के अनुसार, -'ब्याज किसी बाजार में पूँजी के प्रयोग के बदले दी जाने वाली कीमत है।"
3. विकसेल के अनुसार,-"ब्याज उस भुगतान को कहते है। जो पूँजी उधार लेने वाला, पूँजी की उत्पादन शक्ति के कारण, पूंजीपति को उसकी विरक्ति के पारितोषिक स्वरूप देता है।"
4. कार्वर के अनुसार,-"ब्याज वह आय है जो पूँजी के स्वामी को प्राप्त होती है।" कीन्स के अनुसार,-"ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए द्रवता के परित्याग का पुरस्कार है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकालने है

(अ) ब्याज पूँजी के प्रयोग के लिए दिया जाता है।

(ब) ब्याज का संबंध पूंजीकी उत्पादक शक्ति से है।

(स) पूंजीपति उधार देने योग्य कोष से ही पूँजी उधार देता है।

(द) उधार दी गयी पूँजी की द्रवता पूंजीपति के लिए, एक निश्चित अवधि के दौरान, नष्ट रहती है।

(व) ब्याज, द्रवता के परित्याग की क्षतिपूर्ति करता है।"

29.1.3 ब्याज देने का औचित्य

पूँजी पर ब्याज कई कारणों से दिया जाता है। इन सबसे महत्वपूर्ण कारण है, पूँजी की उत्पादन बढ़ाने की क्षमता। इसमें कोई भी विवाद नही है कि पूँजी की सहायता से आवश्यक वस्तुएं, मशीनें, कच्चा माल, उपकरण आदि खरीद कर उत्पादन की क्षमता एवं स्तर बढ़ाये जा सकते है। इसलिए पूँजी के उपयोग का पुरस्कार तो पूँजी के स्वामी को मिलना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित प्रमुख कारणें से ब्याज अवश्य दिया जाना चाहिए।

(1) पूँजी लगाने से व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक जोखिम उठाने पड़ते है व्यक्तिगत जोखिम ऋणी पर अविश्वास के कारण उत्पन्न होता है जबकि व्यवसायिक जोखिम व्यापार में हानि की आशंका के फलस्वरूप प्रतिबिम्बित होते है।

(2) पूंजीपति को ऋण देने से असुविधा का सामना करना पड़ सकता है। एक बार ऋण देने के पश्चात उसकी पूँजी भी फंस जाती है। वह उसे अन्यत्र विनियोग के लिए निकाल नही सकता।

(3) पूँजीपति को ऋण देने एवं उसे वसूल करने का व्यवस्था बनाये रखने पर खर्च करना पड़ता है। यह खर्च हिसाब किताब रखने में होता है।

29.1.4 कुल एवं वास्तविक ब्याज :

सामान्य रूप से ब्याज से हमारा तात्पर्य कुल ब्याज से ही होता है। जैसा कि ब्याज का औचित्य के वर्णन में लिखा गया है, ब्याज कई कारणों से दिया जाता है। यह कारण एक दूसरे से घनिष्ट संबंध रखते है। एवं सामान्यत: अलग-अलग नहीं देखे जाते। इसलिए सामान्य रूप से लिया दिया जाने वाला ब्याज कुल ब्याज की श्रेणी में ही आता है। किन्तु कुल ब्याज एवं वास्तविक आज में स्पष्ट अंतर है।

कुल ब्याज

पूंजी को उधार देने से प्राप्त होने वाली कुल आय को कुल ब्याज कहा जाता है। चैपमैन के अनुसार कुल आज में वास्तविक ब्याज, जोखिम, पूँजीपति की असुविधा का भुगतान, एवं व्यवस्था का प्रतिफल शामिल रहता है।

वास्तविक ब्याज

वह राशि जो केवल पूँजी के उपयोग के प्रतिफल में मिलती है, उसे वास्तविक ब्याज कहते है। चैपमैन के अनुसार वास्तविक ब्याज वह भुगतान है जो पूँजी के उपयोग के बदले दिया जाता है और जिसमें कोई जोखिम, असुविधा एवं वसूली में झंझट नही रहता है। इसे आर्थिक आज भी कहते है एवं यह कुल ब्याज का एक अंग है।

कुल ब्याज = वास्तविक ब्याज + जोखिम उठाने की क्षतिपूर्ति + व्यवस्था का खर्च + पूंजीपति की असुविधाओं का प्रतिफल

बोध प्रश्न 1

अपना उत्तर लिखने के लिए प्रत्येक प्रश्न के सामने छोड़ी गयी खाली जगह का प्रयोग करें। इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरी का मिलान करें।

1. कुल ब्याज एवं शुद्ध आज में क्या अंतर है?
2. प्रतिष्ठित एवं नत प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार आज देने के क्या कारण है?

29.2 ब्याज के सिद्धांत :

ब्याज क्यों दिया जाता है एवं ब्याज की दर कितनी होनी चाहिए, इसकी व्याख्या करने के लिए समय समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने कई सिद्धांत दिए है। कीन्स के पूर्व दिए गए सिद्धांतों में अधिकतर केवल ब्याज का कारण ही बतलाते है। ब्याज की दर कैसे निर्धारित की जाएगी, इसकी व्याख्या सर्व प्रथम मार्शल, वालरस, नाइट एवं पीगू ने क्लासिकल सिद्धांत में दी थी। ब्याज के कुछ सिद्धांत वास्तविक तत्वों पर जोर देते है। कीन्स के पूर्व दिए गए सिद्धांत मेंसे निम्नलिखित प्रमुख है

1. सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत
2. त्याग या प्रतीक्षा का सिद्धांत
3. आज का आस्ट्रियन या पारितोषिक सिद्धांत.
4. फिशर का समय पसन्दगी सिद्धांत
5. ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धांत
6. ब्याज का नवप्रतिष्ठित सिद्धांत

29.2.1 सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत

पृष्ठ भूमि:

ब्याज का कारण बताने वाला यह प्राचीनतम सिद्धांत है। इस सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाले अर्थशास्त्रियों में माल्थस, कैरे, जे. बी. से, एवं वान थ्युनन खनन प्रमुख है।

प्राचीन अर्थशास्त्रियों का पहले यह विचार था कि भूमि की भांति पूँजी भी वस्तुओं के उत्पादन में सक्षम है। पूँजी पर ब्याज इसलिए दिया जात है क्योंकि पूँजी की सहायता से उत्पादन अधिक होता है। जैसे एक मछुआरा पूँजी द्वारा प्राप्त किए जाल से अधिक मछलियों पकड़ सकता है मुकाबले, बिना जाल के। पूंजी की सहायता मिल जाने से श्रम की उत्पादकता बढ़ जाती है। जहांतक ब्याज की दर का प्रश्न है वह पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की प्रवृति दिखाती है।

उत्पादन के साधनों में एक महत्वपूर्ण साधन है। इसकी उत्पादकता के आधार पर ही ब्याज देय होता है। यदि उत्पादन के अन्य साधनों का प्रयोग एक निश्चित स्तर पर स्थिर रखा जाए तो अन्य साधनों की भांति इस पर भी उत्पादन स नियम लागू हो जाता है। अर्थात्, पूँजी के उत्तरोत्तर प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। दीर्घकाल में ब्याज की दर, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की प्रवृति दिखाती, है। यदि ब्याज की दर सीमान्त उत्पादकता से कम होती है तो पूँजी की मांग बढ़ जाती है एवं अंतत: पूंजी की सीमांत उत्पादकता घटकर ब्याज की दर के स्तर पर आ जाती है। इसके विपरीत यदि ब्याज की दर सीमान्त उत्पादकता सें अधिक होती है तो पूंजी की मांग कम हो जाती है एवं उसकी सीमान्त उत्पादकता बढ़कर ब्याज की दर के स्वर पर आ जाती है।

इस सिद्धांत के दिए जाने से फक्सवैल ने ब्याज की दर के शून्य एवं ऋणात्मक होने की भी कल्पना की थी जिसका समर्थन बाद में मार्शल ने भी किया था। उनके अनुसार मंदी के दिनों में पूँजी की मांग नगण्य रह जाती है, उत्पादन कार्य बंद सा हो जाता है। ऐसी स्थिति में ब्याज की दर शून्य होती है। अधिक मंदी के समय, सुरक्षा की भावना से, पूँजीपति पूंजी सुरक्षित रखने के लिए धन भी खर्च करता है। यह स्थिति ऋणात्मक ब्याज की द्योतक है।

इस सिद्धांत के दिए जाने के उपरांत यह बात सुस्थापित हो गयी कि ब्याज की दर ऋणात्मक नहीं हो सकती। ब्याज की दन सदैव समाज उत्पादकता के बराबर होने की कोशिश करेगी। एवं पूँजी की

सीमान्त उत्पादकता नकारात्मक नही हो सकती है। पूंजी की सुरक्षा पर किया गया व्यय, ब्याज की श्रेणी में नही रखा जा सकता है।

आलोचना

ब्याज के सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत की कई प्रकार से आलोचना की गयी है। इनमें से निम्नलिखित मुख्य आधार है-

1. ब्याज का कारण उत्पादकता नही दुर्लभता है

यदि पूँजी बहुतायत में जलवा हो तो दीर्घकाल में पूँजीपति बिना ब्याज के भी पूँजी लगाएगा। इस स्थिति में वस्तुओं का मूल्य इतना घट जाएगा कि वह ब्याज को छोड़कर बाकी लागत ही निकाल पायेगा। पूंजी पर ब्याज तो सभी मिलना शुरू हुआ जब पूँजी की मांग उसकी पूर्ति से बढ़ जायेगी। अर्थात् पूंजी दुर्लभ हो जायेगी।

2. सिद्धांत अनुत्पादक ऋणों पर ब्याज व्याख्या नही करता

पूजी का उपयोग उत्पादन के अतिरिक्त अनुत्पादक कार्यो के लिए भी किया जाता है। जैसे त्यौहार मनाना, जन्म दिवस मनाना, मृत्यु भोज देना, इत्यादि। यह सभी कार्य अनुत्पादक है फिर भी इन पर प्रयुक्त पूँजी ब्याज अर्जित करती है। अत: ब्याज केवल उत्पादकता का प्रतिफल नही कहा जा सकता है।

3. यह सिद्धांत पूंजी का पूर्ति पक्ष नही देखता है

यह सिद्धांत केवल पूँजी की मांग के पक्ष को देखते हुए ही ब्याज की व्याख्या करता है। इस प्रकार यह कहा जाता है कि ब्याज की उच्चतम सीमा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से अधिक नहीं हो सकती क्योंकि इससे अधिक ब्याज दर पर कोई भी पूंजी की मांग नही करेगा। लेकिन इस सिद्धांत में पूँजी की पूर्ति पर कोई ध्यान नही दिया गया है। अत: ब्याज की न्यूनतम दर के बारे में कुछ नही कहा जा सकता है।

4. सीमान्त उत्पादकता मे परिवर्तन से ब्याज दर अपरिवर्तित रहती है

सामान्यत: ब्याज की दर में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की घट-बढ़ का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अत यह माना जा सकता है कि आज की दर का निर्धारण केवल सीमान्त उत्पादकता ही नही करती है।

5. सीमान्त उत्पादकता ब्याज की दर से प्रभावित होती है

ऐसा देखा जाता है कि ब्याज की दर ऊँची होने, पर, साहसी पूँजी के स्थान पर अन्य साधनो का प्रयोग बढा देता है। इस तरह पूंजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़कर कर ब्याज की दर के बराबर हो जाती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ब्याज की दर भी सीमान्त उत्पादकता को प्रभावित करती है। निष्कर्ष: सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत ब्याज के कई कारणों में से एक कारण की व्याख्या करता है। यह ब्याज की

दर निर्धारित नही कर सकता। परंतु ब्याज की दर कम या अधिक होनी चाहिए। इसका केवल आभास दे सकता है।

29.2.2 त्याग या प्रतीक्षा का सिद्धांत :

पृष्ठभूमि

प्रतीक्षा के सिद्धांत का प्रतिपादन इंग्लैंड के अर्थशास्त्री सीनियर ने, किया था। इस सिद्धांत का समर्थन कैरनीज द्वारा किया गया एवं कालांतर में मार्शल ने इसमें संशोधन भी किया।

सिद्धांत : अपनी आय का वर्तमान में उपभोग न करने का त्याग करके बचत करने वाले को दिया जाने वाला पारितोषिक ब्याज कहलाता है। मार्शल ने इस सिद्धांत में त्याग के स्थल पर प्रतीक्षा शब्द दिया।

व्याख्या: भविष्य में उत्पादकता कार्यो के लिए पूंजी की उपलब्धता वर्तमान में की गयी बचत पर निर्भर करती है। जो व्यक्ति बचत करना है उसे वर्तमान में कुछ उपभोग का त्याग करना पड़ता है। किसी भी व्यक्ति को इस त्याग एवं भविष्य में उपभोग के लिए प्रतीक्षा करने के लिए प्रेरित करना अनिवार्य है। इस प्रेरणा देने के लिए जो पुरस्कार दिया जाता है उसे ब्याज कहते है। बचत करने में किए गए ब्याज का द्राव्यिक मूल्य ही ब्याज की दर होता है।

विशेषता: सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत के विपरीत यह सिद्धांत पूँजी के पूर्ति पक्ष पर ध्यान देता है। इस सिद्धांत के ब्याज के एक प्रमुख कारण प्रतीक्षा को प्रतिपादित किया गया है।

आलोचना :

अन्य सिद्धांत की भांति यह सिद्धांत भी अपने आप में परिपूर्ण नही है। इसकी प्रमुख आलोचनाएं निम्नलिखित है-

1. धनी व्यक्तियों को बचत करने मे त्याग नही करना पड़ता :

समाज के कुछ ऐसे लोग जिनके पास धन अधिक है, बिना किसी प्रकार के उपभोग का त्याग नही करना पड़ता है। किन्तु इनके द्वारा की गयी बचत पर भी ब्याज मिलता है। इसलिए ब्याज का कारण केवल आग नही हो सकता। प्रो. मार्शल ने त्याग के स्थान पर प्रतीक्षा शब्द का प्रयोग कर इस सिद्धांत को कुछ हद तक सार्थक बनाया है।

2. इस सिद्धांत मे मांग पक्ष की उपेक्षा की गयी है:

सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत की भांति यह भी एक पक्षीय सिद्धांत है। यह पूँजी के केवल पूर्ति पक्ष की ओर ही ध्यान देता है। मंदी के समय पूंजी की मांग नगण्य रह जाती है। इस समय त्याग या प्रतीक्षा का वांछित प्रतिफल नही मिलता। अत इस प्रकार का एक क्षेत्रीय सिद्धांत ब्याज के कारणें की ठीक ठीक व्याख्या नही कर सकता। निष्कर्ष :

प्रो. मार्शल द्वारा संशोधन के पश्चात यह सिद्धांतपूर्ति पक्ष को बहुत अच्छी तरह प्रस्तुत करता हे । किन्तु एक पक्षीय होने के कारण यह अपूर्ण है ।

29.2.3 ब्याज का आस्ट्रियन सिद्धांत :

पृष्ठभूमि : इस सिद्धांत को सर्वप्रथम जीन रे ने प्रस्तुत किया था । तत्पश्चात बॉम बावर्क, जो कि एक आस्ट्रियन अर्थशास्त्री थे, ने इसे समर्थन एवं अंतिम रूप दिया । परितोषिक सिद्धांत के नाम से भी जाने वाले इस सिद्धांत में फिशर ने भी कुछ संबोधन किए ।

सिद्धांत : किसी पूंजी से वर्तमान एवं भविष्य में प्राप्त सुख के मौद्रिक रूप में परिवर्तित अंतर को ही उस पूंजी पर ब्याज कहते है ।

व्याख्या : यह एक मनौवैज्ञानिक सिद्धांत है । प्रत्येक व्यक्ति भविष्य की अनिश्चितता के कारण वर्तमान को अधिक महत्व देता है । वह यह मानकर चलता है कि भविष्य किसने देखा है अत: पूँजी का उपयोग वर्तमान में सुख प्राप्ति के लिए ही करना चाहिए । अर्थात् झाड़ी में छुपी दो चिड़ियों से हाथ आयी एक चिड़िया बेहतर है । इस मनोवैज्ञानिक आधार पर जब कोई व्यक्ति वर्तमान उपभोग का त्याग कर पूँजी उधार देता है तो वह उस पर पारितोषिक चाहता है । यदि वह वर्तमान में 10 रुपये एक वर्ष के लिए उधार देने से उसे एक रूपए के सुख का परित्याग करना पड़ता है । इसलिए वह अपनी 10 रुपये की पूँजी पर कम से कम एक रूपया ब्याज चाहेगा। यह एक रूपया उसके वर्तमान एवं भविष्य के सुख के अंतर को बराबर कर देगा ।

बॉम बावर्क ने इस सिद्धांत को अंतिम रूप देते हुए यह व्याख्या की है कि वर्तमान को अधिक महत्व क्यों दिया जाता है । उनके अनुसार इसके तीन कारण है । एक तो भविष्य की अनिश्चितता है । दूसरा वर्तमान आवश्यकताओं की तीव्रता है, एवं तीसरा वर्तमान वस्तुओं में अधिक उपयोगिता का अनुभव होना । चूंकि उत्पादन निरंतर बढ़ता रहता है, वस्तुओं का भण्डार बढ़ता जाता है एवं सीमान्त उपयोगिता कम होती जाती है । अत: वर्तमान में वस्तुएं, भविष्य की अपेक्षा अधिक उपयोगी जान पड़ती है ।

विशेषताएं: इस सिद्धांत की प्रमुख विशेषता है कि यह अनुत्पादक ऋणों पर दिए जाने वाले ब्याज का कारण भी साज कर देता है । इसके अतिरिक्त यह आज के कई कारणें में से एक कारण की भी सफलतापूर्वक व्याख्या करता है ।

आलोचना : अन्य सिद्धांत की भांति यह सिद्धांत भी एक पक्षीय है अर्थात् यह केवल पूर्ति पक्ष ही ध्यान देता है । इसलिए इस सिद्धांत को पूर्ण नही कहा जा सकता ।

निष्कर्ष : इस सिद्धांत में ब्याज दिये या के जाने के कारणों की बड़ी अच्छी मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है । किन्तु ब्याज के सभी पहलुओं की व्याख्या न कर पाने के कारण यह सिद्धांत भी अपूर्ण है ।

29.2.4 फिशर का समय पसन्दगी सिद्धांत:

पृष्ठ भूमि: फिशर द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत उनके गुरू बॉम बावर्क के आस्ट्रियन या पारितोषिक सिद्धांत पर सुधार है। बॉम बावर्क ने वर्तमान को भविष्य की तुलना में अधिक महत्व तो दिया था वस्तु इसकी हर कोण से व्याख्या नही की थी। फिशर ने वर्तमान को अधिमान दिये जाने के कारणों पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

सिद्धांत: फिशर के अनुसार ब्याज वह भुगतान है जिसे भविष्य एवं वर्तमान के आनंद को समान बनाने में करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में समय का मूल्य भी कह सकते है। जिसकी माप आनन्द की आतुरता से की जा सकती है।

व्याख्या : समय पसन्दगी फिशर के सिद्धांत का केन्द्र बिन्दु है। प्रत्येक व्यक्ति वर्तमान संतोष को अधिक महत्व देता है और इसलिए खर्च करने को आतुर रहता है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की यह आतुरता दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है। आतुरता की माप निम्नलिखित घटकों पर निर्भर करती है?

1. **व्यक्ति की आय :** अधिक आय वाले व्यक्तियों की वर्तमान आवश्यकतायें लगभग से पूरी हो जाती है। इसलिए ऐसे व्यक्ति भविष्य को अधिक महत्व देते है। एवं उस पर कम बट्टा लगाने है। निर्धन व्यक्तियों में वर्तमान खर्च की अधिक आतुरता रहती है एवं वे भविष्य पर अधिक बट्टा लगाते है।
2. **आय का वितरण :** आय के वितरण से तात्पर्य है कि कोई व्यक्ति भविष्य में आय बढ़ने की आशा रखता है, घटने की आशा रखता है, अथवा समान रहने की आशा रखता है। यदि भविष्य में आय बढ़ने की आशा है तो भविष्य सुनिश्चित है एवं वर्तमान में खर्च करने की अधिक आतुरता होगी। यदि भविष्य में आय घटने की आशा है तो वर्तमान में खर्च करने की आतुरता कम होगी एवं व्यक्ति भविष्य के लिए बचा कर रखेगा। किन्तु आय के समान रहने की आशा होने पर वर्तमान में खर्च की आतुरता व्यक्ति के स्वभाव, चरित्र एवं उसकी आय पर निर्भर करेगी।
3. **भविष्य मे आय की निश्चितता :** भविष्य में आय की निश्चितता होने पर कोई भी व्यक्ति वर्तमान के खर्च को अधिक पसंद करता है। किन्तु भविष्य में आय की अनिश्चितता होने पर वह भविष्य के लिए धन बचाकर रखना चाहता है। अत वर्तमान में खर्च करनें की उसकी आतुरता भी कम होती है।
4. **व्यक्ति का चरित्र एवं स्वभाव :** खर्च करने की आतुरता का यह एक महत्वपूर्ण मापक है। एक दूरदर्शी व्यक्ति वर्तमान की अपेक्षा भविष्य को सदैव अधिमान देता है। इसके विपरीत एक अदूरदर्शी व्यक्ति वर्तमान को अधिक महत्व देता है। इस वजह से दूरदर्शी व्यक्ति भविष्य पर कम बट्टा लगाता है एवं अदूरदर्शी अधिक।

विशेषतायें : आस्ट्रियन सिद्धांत की भांति यह सिद्धांत भी अनुत्पादक ऋणों पर ब्याज के कारण की व्याख्या करता है। यही नही इस सिद्धांत में वर्तमान को अधिमान दिये जाने के कारण एवं परिस्थितियों की भी विवेचना की गयी है। इस तरह समय पसन्दगी ब्याज सिद्धांत, ब्याज के आस्ट्रियन सिद्धांत पर सुधार है।

आलोचना : यह सिद्धांत दो मान्यताओं पर आधारित है। प्रथम, द्रव्य की क्रय-शक्ति परिवर्तित होती रहती है एवं पूँजी की पूर्ति भी कई कारकों पर निर्भर करती है। यह सिद्धांत भी अन्य सिद्धांतों की तरह एक पक्षीय है तथा केवल पूर्ति पक्ष पर ही ध्यान देता है।

निष्कर्ष : कुछ मान्यताओं के अन्तर्गत यह सिद्धांत ब्याज लिए दिये जाने के कारणों की अच्छी व्याख्या करता है। परन्तु यह सिद्धांत भी ब्याज की दर निर्धारित करनें में असफल है और एक पक्षीय भी।

29.2.5ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धांत :

पृष्ठभूमि : प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री कभी भी इस बात पर एक मत नहीं हुए कि ब्याज के क्या कारण है औ ब्याज क्यों दिया जाता है? परन्तु इनके मतानुसार बचत एवं विनियोग के संतुलन बिन्दु पर ही ब्याज की दर का निर्धारण होता है। इस सिद्धांत के प्रमुख प्रतिपादकों में मार्शल, वालरस नाइट एवं पीगू है। इन्होंने इस सिद्धांत में सीमान्त उत्पादकता, प्रतीक्षा एवं समय पसन्दगी ब्याज सिद्धांत को कई स्थान पर व्याख्या के लिए प्रयोग किया है। इनका मत है कि ब्याज के निर्धारण में द्रव्य का प्रत्यक्ष हाथ न होकर उत्पादकता एवं मितव्ययता जैसी वास्तविक बातों का हाथ होता है। इसलिए इस सिद्धांत को ब्याज का वास्तविकता सिद्धान्त भी कहा जाता है। ब्याज की दर दे निर्धारण में यह सिद्धान्त मांग और पूर्ति का सहारा लेता हे। अत: ब्याज का मांग और पूर्ति का सिद्धांत भी कहलाता है। सिद्धांत:

आज पूँजी के प्रयोग का प्रतिफल है। ब्याज की प्रवृति एक संतुलन की ओर बढ़ने की होती है। जिस पर किसी बाजार में पूंजी की कुल मांग पूर्ति के बराबर होती है।

व्याख्या : प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज प्रतीक्षा का मूल्य है। बचत करने वाले पूँजी के वर्तमान उपभोग का परित्याग करते है एवं भविष्य में उसकी वापसी की प्रतीक्षा करते है। उन्हें इसके प्रतिफल स्वरूप ब्याज दिया जाता है। पूँजी की मांग विनियोग करने वाले करते है। इसकी पूर्ति बचत करने वालों द्वारा होती है। पूँजी की इस मांग एवं पूर्ति द्वारा ही ब्याज की दर का निर्धारण होता है।

ब्याज की दर के निर्धारण के लिए पूँजी की मांग एवं पूर्ति का अध्ययन अनिवार्य है।

पूँजी की मांग :

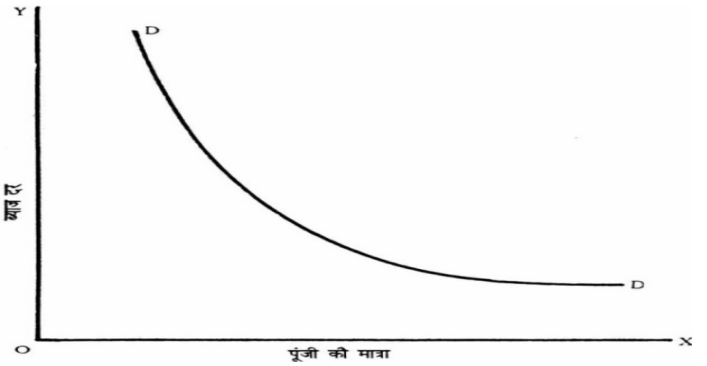

चित्र 29.1

उत्पादकों द्वारा इसकी मांग-पूंजीगत वस्तुओं को खरीदने के लिए की जाती है। पूँजीगत वस्तुओं का प्रयोग उपभोग वस्तुओं के उत्पादन के लिए होता है। इसलिए पूंजी की मांग उसकी उत्पादकता के कारण होती है। उत्पादन में पूँजी के उत्तरोतर प्रयोग से, उत्पत्ति ह्रास नियम के कारण उसकी सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। उत्पादक को पूँजी के प्रयोग के बदले, बचत करने वाले को पुरस्कार (ब्याज) देना पड़ता है। अत: वह पूँजी की मांग उस बिन्दु तक ही करेगा जहां पूंजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज की दर के बराबर हो जाये। यदि ब्याज दर सीमान्त उत्पादकता से कम होगी तो पूँजी की मांग बढ़ जायेगी एवं उसकी सीमान्त उत्पादकता घट कर ब्याज के बराबर हो जायेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्याज दर एवं पूँजी की मांग में ऋणात्मक संबंध होता है और पूँजी की मांग रेखा(DD) वाये से दायें नीचे की ओर गिरती जाती है। पूँजी की मांग रेखा को विनियोग की मांग रेखा भी कहते है।

पूंजी की पूर्ति

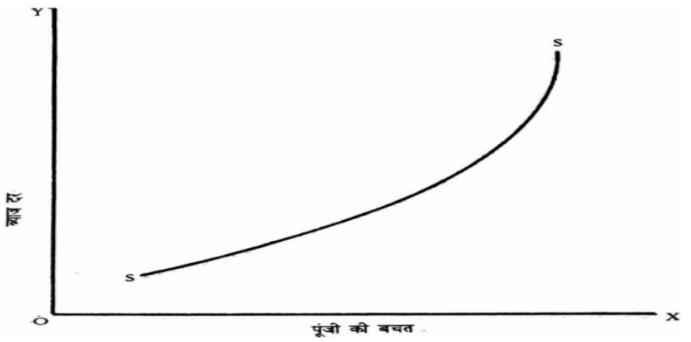

चित्र 29.2

समाज का प्रत्येक वर्ग अपने वर्तमान उपयोग में कटौती कर बचत करता है। आ पर ब्याज के रूप में दिया जाने वाला पुरस्कार इन लोगों को बचत करने के लिए प्रेरित करता है। किसी व्यक्ति द्वारा बचत किये जाने पर उसे वर्तमान उपभोग का त्याग करना पड़ता है एवं भविष्य में उस उपभोग के लिए प्रतीक्षा करनी होती है। अत: ब्याज के रूप में मिलने वाले पुरस्कार की अनुपस्थिति में कोई भी बचत नही करेगा। समाज के प्रत्येक वर्ग द्वारा की गयी बचत का योग पूँजी की पूर्ति कहलाता है। ब्याज की दर जैसे-जैसे बढ़ती है पूँजी की पूर्ति भी बढ़ती जाती है। ब्याज की दर के घटने पर पूँजी की पूर्ति भी घटती जाती है। चित्र 29.2 में SS पूँजी की पूर्ति रेखा है जिसे बचत की पूर्ति रेखा भी कहते है। इसका ब्याज की दर के साथ घनात्मक संबंध होता है।

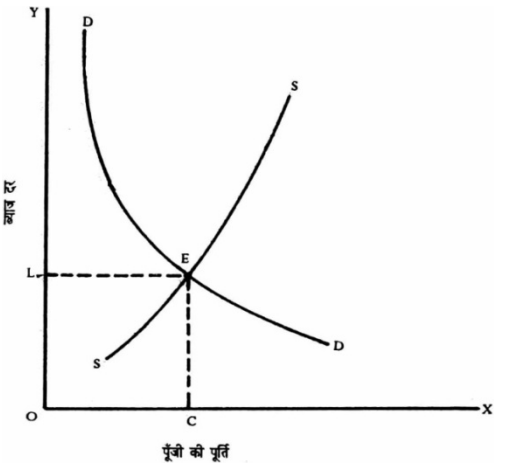

चित्र 29.3

ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है, जहां पूँजी की मांग रेखा, पूँजी की पूर्ति रेखा को काटती है। इस बिन्दु पर कुल विनियोग कुल बचत के बराबर होता है। जैसा कि चित्र 19.3 से स्पष्ट है कि पूँजी की मांग रेखा (DD) एवं रेखा (SS) का कटान बिन्दु E है। इस पर आज की दर (L) एवं पूँजी की कुल बचत C होगी। स्थिति में ब्याज की दर पूँजी की सीमांत उत्पादकता के भी बराबर होगी। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर से कम होने पर उसकी मांग घट जायेगी एवं व्याज की दर कम हों कर सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। इसी तरह पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर से अधिक होने पर उसकी मांग बढ़ेगी एवं ब्याज दर बढ़ कर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हों जायेगी।

विशेषतायें: यह पहला सिद्धांत था जिसमें पूँजी के दोनों पक्षों, अर्थात मांग एवं पूर्ति की व्याख्या की गयी। इस सिद्धांत ने प्रथम बार ब्याज दर निर्धारण की विधि का भी प्रतिपादन किया। अत: मार्शल एवं पीगू के समय का यह एक प्रतिष्ठित सिद्धांत है।

आलोचना : ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धांत की कीन्स ने बहुत कड़ी आलोचना की है। इस सिद्धांत की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित है:

1. ब्याज असंचय का प्रतिफल है:

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धांत की यह मान्यता है कि ब्याज व्यय न करने का पुरस्कार है। परन्तु कीन्स का यह कहना है कि यदि कोई व्यक्ति व्यय न करके उस बचत को संचय कर लेता है तो कोई ब्याज नही मिलेगा। ब्याज तो तभी मिलेगा ? जब वह बचत का संचय न करके उसे विनियोग के लिए पूंजी की मांग करने वालों को दे। इस प्रकार आज बचत के असंचय का प्रतिफल हुआ।

2. पूंजी की पूर्ति की व्याख्या:

इस सिद्धांत के अनुसार पूँजी की पूर्ति, समाज के विभिन्न वर्गो द्वारा, वर्तमान आय में से की गयी कुल बचत है। जबकि भूतकाल में की गयी संचयित बचत का असंचय भी पूंजी की पूर्ति करता है। इसके अतिरिक्त संस्थागत स्त्रोतों द्वारा निर्गत साख भी पूंजी की पूर्ति करती है।

3. आय स्तर को स्थिर मानना :

प्रस्तुत सिद्धांत में, आय के स्तर को स्थिर मानते हुए यह कहा गया है कि बचत ब्याज की दर पर निर्भर करती है। ब्याज की दर में परिवर्तन द्वारा ही बचत तथा विनियोग में संतुलन स्थापित होता है। परन्तु आय स्तर तो परिवर्तनशील होते है आय के स्तर का भी बचत का प्रभाव पड़ता है। कीन्स के अनुसार बचत एवं विनियोग में साम्य आय स्तर में परिवर्तन द्वारा ही स्थापित होता है।

4. प्रतिष्ठित सिद्धांत की व्याख्या वृताकार तर्क मे फंसी है :

कीन्स के अनुसार बचत आय पर, आय विनियोग पर एवं विनियोग ब्याज दर पर निर्भर करता है। अत: बचत की स्थिति जानने के लिए ब्याज की दर का पता होना जरूरी है। जबकि इस सिद्धांत में यह कहा गया है कि बचत पूंजी की बतलाती है एवं पूँजी की मांग व पूर्ति का कटाव का बिन्दु ब्याज की दर दिखलाता है। इस तरह यह सिद्धांत ब्याज दर निर्धारण करने में सर्वथा असफल है।

निष्कर्ष :

ब्याज की दर का प्रतिष्ठित सिद्धांत पूँजी की मांग एवं पूर्ति पक्षों की व्याख्या करने की कोशिश करता है एवं ब्याज देर निर्धारण की भी बात करता है किन्तु इस सिद्धान्त की व्याख्या अवास्तविकता से ग्रस्त है एवं ब्याज दर के निर्धारण में असफल।

29.2.6 ब्याज का नव प्रतिष्ठित सिद्धांत :

पृष्ठभूमि : ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धांत की कुछ कमियों को दूर करने के लिए गुन्नार मिर्डल, बेण्ट हेनसन, बर्टिल ओहलिन एवं ऐरिक लिण्डल आदि अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धांत में संशोधन किए। अत यह सिद्धांत ब्याज का नव प्रतिष्ठित सिद्धांत कहलाता है। इस सिद्धांत के प्रतिपादक ब्याज का कारण समय पसंदगी को मानते थे।

सिद्धांत: नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज, उधार देय कोष (loanable funds) के प्रयोग का मूल्य है। प्रतिष्ठित सिद्धांत की भांति इस सिद्धांत के विचारक भी इसे मांग एवं पूर्ति का सिद्धांत समझते है। ब्याज की दर, उधार देय कोष की मांग एवं पूर्तिके संतुलन बिन्दु पर निर्धारित होती है।

व्याख्या : इस सिद्धांत के प्रतिपादक भी यह समझते है कि लोग भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को अधिक महत्व देते है। अत वर्तमान में धन का उपभोग वर्तमान में न करने उसे ब्याज मिलता है। कोई व्यक्ति जिसे धन का उपयोग वर्तमान में न करके उसे पूँजी की मांग करने वालों को दे सकता है वह उसका उधार देय कोष हुआ। इस प्रकार सभी स्त्रोतों सें अगर देय दोष का योग कुल उधार देय योग्य कोष कहलाता है। इसी प्रकार उधार देय कोष की मांग भी विभिन्न लोगों द्वारा विभिन्न कार्यो के लिए की जाती है। इन मांगो का योग उधर देय कोष की कुल मांग हुई। इस मांग एवं पूर्ति के संतुलन बिन्दु पर योग अगर देय कोष की कुल मांग हुई। इस मांग एवं पूर्ति के संतुलन बिन्दु पर ही ब्याज की दर निर्धारित होती है। अत इसे मांग अगर देय कोष सिद्धांत भी कहते है। यहां पूर्ति एवं मांगपक्षों की अलग-अलग व्याख्या की गयी है।

उधार देय कोष की पूर्ति :

1. **बचते :**प्राय: व्यक्तिगत एवं पारिवारिक बचते इस कोष की पूर्ति में सहायता देती है। वैसे तो बचत आय के स्तर पर निर्भर करती है किन्तु आय का स्तर स्थिर होने पर यह ब्याज की दर से प्रभावित होती है। ऊँची ब्याज दर पर लोग अधिक बचत करते है और नीची ब्याज दर पर कम। व्यक्तिगत एवं पारिवारिक बचतों की भांति व्यवसाय में भी बचत होती है। यह भी अधिक ब्याज दर पर अधिक एवं कम ब्याज दर पर कम होती है किन्तु अक्सर व्यवसाय की बचत फर्म में ही विनियोग में लग जाती है एवं उधार देय कोष की पूर्ति में सहायक नही होती।
2. **विसंचय :** विसंचय का तात्पर्य पिछली बचतों के विसंचय से होता है। जब ब्याज दर अधिक होने लगती हो तो पूर्व में संचयित द्रव्य का लोग विसंचय करते है, जिससे उधार देय कोष में वृद्धि होती है। ब्याज दर के कम होने पर विसंचय भी कम होता है अथवा नहीं होता है।
3. **संस्थागत स्त्रोतों से ऋण :**बैंक एवं अन्य संस्थागत स्त्रोत भी उधार देय कोष के निर्माण में सहायक होते है। ऊँची ब्याज दर पर बैंक अधिक ऋण देने को प्रस्तुत रहते है एवं नीची आज दर पर कम।
4. **अविनियोग :**कई बार संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण वर्तमान मशीनों को घिसने दिया जाता है। उसकी घिसाई के व्यय एवं उनके प्रतिस्थापन की कोई व्यवस्था नही की जाती है। इस प्रकार उत्पाद की बिक्री से प्राप्त राशि का एक भाग जो मशीनों के रख रखाव पर खर्च होता, बाजार में अगर देय कोष की वृद्धि करता है। इस प्रक्रिया को अविनियोग कहते है।

उधार देय कोष की मांग :

उधार देय कोष की मांग मुख्यत: निम्नलिखित तीन कारणों से की जाती है।

1. **विनियोग :** उधार देय कोष की मांग का प्रमुख स्त्रोत व्यापारी वर्ग है ।यह पूँजीगत वस्तुओं को खरीदने के लिए इसकी मांग करता है। सरकार भी अपने स्तर पर विनियोग के लिए इसकी मांग करती है। अधिक ब्याज दर पर उधार देय कोष की मांग कम एवं कम ब्याज दर पर अधिक होती है।
2. **उपभोग :** व्यक्ति या परिवार भी उपभोग के लिए उधार देय कोष की मांग करते है। इसकी मांग मुख्यत कार, स्कूटर, फ्रिज, टी. वी. जैसी वस्तुओं को खरीदने के लिए की जाती है। अर्थात् अधिक ब्याज पर मांग कम एवं कम ब्याज पर मांग अधिक होती है।
3. **संचय :** द्रव्य की तरलता की संतुष्टि के लिए कुछ लोग धन का संचय भी करते है। यह वे ही व्यक्ति है जो अधिक ब्याज मिलने पर धन का विसंचय कर देते है। ब्याज की दर कम होने पर संचय अधिक एवं अधिक होने पर संचय कम किया जाता है।

ब्याज की दर का निर्धारण :

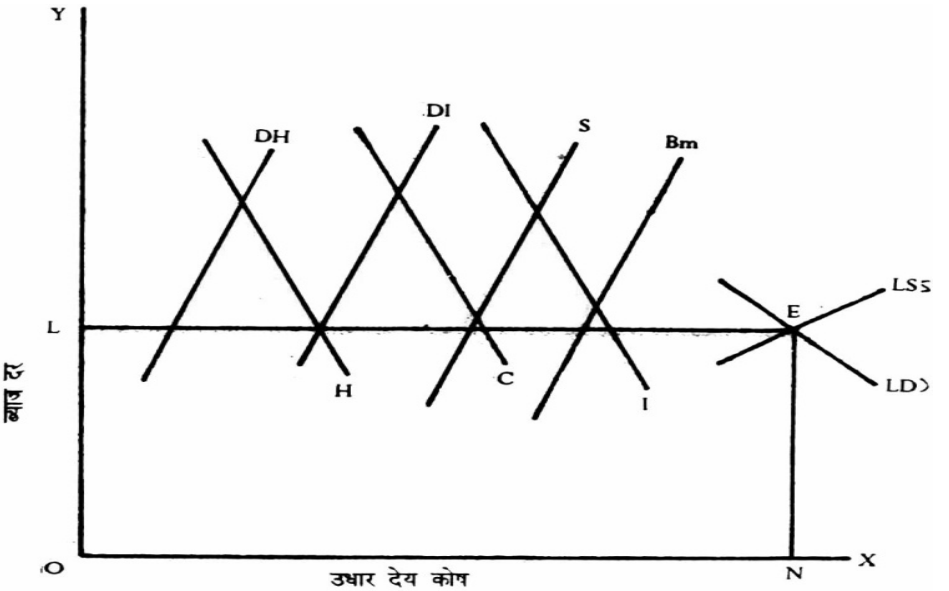

चित्र 29.4

ब्याज की दर का निर्धारण उधार देय कोष की मांग एवं पूर्ति के संतुलन बिन्दु पर होता है। चित्र 29.4 में DH.DI.S एवं BM क्रमश: विसंचय, अविनियोग, बचत एवं संस्थागत ऋण द्वारा उधार देय कोष की पूर्ति है। LS, कुल उधार देय कोष की पूर्ति का वक्र है। इसी प्रकार H, C, एवं I क्रमश: संचय, उपभोग एवं विनियोग के लिए मांग है एवंLD कुल उधार देय कोष की मांग है।LD एवं LS का कटाव बिन्दु E ब्याज की दर OL का निर्धारण करता है। इस ब्याज दर पर उधार देय कोष की कुल मांग एवं पूर्ति बराबर है।

विशेषताएं :

नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धांत में पूंजी की मांग एवं पूर्ति, दोनों ही पक्षों, की समुचित व्याख्या की है। इस प्रकार यह सिद्धांत प्रतिष्ठित सिद्धांत की, मांग एवं पूर्ति संबंधी, कई आलोचनाओं का निराकरण कर देता है। इस सिद्धांत में भी ब्याज दर निर्धारण की विधि की चर्चा की गयी है।

आलोचना :

आज के प्रतिष्ठित सिद्धांत की भांति यह सिद्धांत भी अनेक आलोचनाओं से ग्रसित है। वास्तव में प्रतिष्ठित सिद्धांत की कई खामियां इसमेंभी है। इस सिद्धांत की दो प्रमुख आलोचनाएं है।

1. **संदिग्ध सिद्धान्त :** नव प्रतिष्ठित सिद्धांत के अनुसार ब्याज की दर उधार देने योग्य कोष की मांग एवं पूर्ति की प्रतिक्रिया द्वारा निर्धारित होती है। उधार देय कोष की पूर्ति बचत, पिछली बचतों के विसंचय, अविनियोग एवं बैंक साख द्वारा होती है। चूंकि पूर्ति का बचत वाला भाग आय के स्तर के अनुसार बदलता है। अत: कुल उधार देय कोषों की पूर्ति भी आय के अनुसार परिवर्तित होगी। इसलिए यह सिद्धांत भी अन्य सिद्धांतों की भांति संदिग्ध है।

2. **वृताकार तर्क फंसा सिद्धांत :** ब्याज की दर उधार देय कोष की मांग एक पूर्ति के संतुलन पर निर्धारित होती है। उधार देय ' कोष की पूर्ति विभिन्न स्रोतों से की गयी बचतों पर आधारित है। अत: ब्याज दर ज्ञात करने के लिए बचतों का मालूम होना अनिवार्य है। किन्तु बचत स्वयं ब्याज दर एवं आय स्तर पर निर्भर करती है। इसलिए यह सिद्धांत ब्याज दर निकालने में सहायक नहीं हो सकता।

निष्कर्ष :

ब्याज के अन्य सिद्धांतों की अपेक्षा यह सिद्धांत मांग एवं पूर्तिपक्षों की अच्छी व्याख्या करता है लेकिन अन्य सिद्धांतों की भांति ही अपूर्ण एवं अव्यवहारिक है।

बोध प्रश्न 2

इकाई के अंत में दिए गय उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. ब्याज के किन सिद्धांतों में पूँजी की मांग एवं पूर्ति, दोनों ही पक्षों की व्याख्या की गयी है?
2. नव प्रतिष्ठित सिद्धांत के अनुसार उधार देय कोष की मांग करने वाले कौन्कौन से घटक है?
3. व्यक्तिगत बचते किन घटको पर निर्भर है?
4. ब्याज के आस्ट्रियन सिद्धांत एवं सुधारक का नाम लिखें।
5. ब्याज का समय पसंदगी सिद्धांत किन मान्यताओं पर आधारित हैं?

29.3. शब्दावली

सीमान्त उत्पादकता : उत्पादन के परिवर्तनशील घटक की एक अतिरिक्त इकाई के फलस्वरूप कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि को उस घटक की सीमान्त उत्पादकता कहते है।

ब्याज की मांग रेखा : विभिन्न ब्याज दरों पर पूँजी की कुल मांग के विभिन्न बिन्दुओं को जोड़ती सरल रेखा, ब्याज की मांग रेखा कहलाती है।

ब्याज की पूर्ति रेखा : विभिन्न ब्याज दरों पर पूँजी की कुल पूर्ति के विभिन्न बिन्दुओं को जोड़ती सरल रेखा, ब्याज की पूर्ति रेखा कहलाती है।

पूंजी का विसंचय: ब्याज दर के बढ़ जाने पर पूँजी का संचय करने वाले इसे उधार देने के लिए प्रस्तुत हो जाते है। यह पूँजी का विसंचय कहलाता है।

पूँजी का अविनियोग : संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण वर्तमान मशीनों को घिसने दिया जाना एवं उसके प्रतिस्थापन के लिए किसी घिसाई व्यय कोष का प्रबंध न करना पूंजी का अविनियोग है।

घिसावट : प्रयोग से अथवा समय व्यतीत होने से किसी वस्तु के मूल्य में होने वाली कमी उसमें घिसावट कहलाती है।

संस्थागत ऋण : बैंक, सहकारी समिति अथवा अन्य सार्वजनिक संस्थानों द्वारा दिया गया ऋण संस्थागत ऋण आ है।

29.1 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र	:	सी.एस बरला
2. आर्थिक विश्लेषण	:	बोल्डिंग
3. Micro Economic Theory	:	D.N. Gurtoo
4. Micro Economic Theory	:	A. Koutsoyiynnis
5. Advanced Economic Theory	:	H.L Ahuja
6. Elements of Economics	:	Thomas
7. Economics	:	P.A. Samuelson

29.5 अभ्यासों के उत्तर :

बोध प्रश्न 1

1. पूँजी को उधार देने से होने वाली कुल आय को कुल ब्याज कहा जाता है । जबकि केवल पूंजी के उपयोग से मिलने वाला प्रतिफल वास्तविक ब्याज कहलाता है ।
2. कुल ब्याज = वास्तविक ब्याज = व्यवस्था की खर्च = पूँजीपति की असुविधाओं का प्रतिफल
3. पूँजी पर ब्याज पूँजी की उत्पादकता, व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक जोखिम, पूँजीपति की असुविधा एवं पूँजी की लेन देन की व्यवस्था बनाये रखने के खर्च के कारण देय होता है ।

बोध प्रश्न 2

1. ब्याज के प्रतिष्ठित एवं नव प्रतिष्ठित सिद्धांतों में पूँजी की मांग एवं पूर्ति दोनों ही पक्षों की व्याख्या की गयी है।
2. नव प्रतिष्ठित सिद्धांत के अनुसार उधार देय कोष की पूर्ति व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक बचतों, पूँजी के विसंचय, संस्थागत स्त्रोतों से ऋण एवं पूँजी के अविनियोग से होती है ।
3. व्यक्तिगत बचते आय के स्तर एवं ब्याज की दर पर निर्भर करती है।
4. ब्याज के आस्ट्रियन सिद्धांत के प्रतिपादक जॉन रे एवं बाम बावर्क थे एवं इस सिद्धांत में संशोधन प्रो फिशर ने किया ।
5. ब्याज के समय पसंदगी सिद्धांत की मान्यताएं है कि द्रव्य की क्रय-शक्ति समान रहती है एवं ऋणदाता की परिस्थितियाँ समान रहती है।

इकाई 30

ब्याज के सिद्धान्त : कीन्स का सिद्धान्त

Interest Theory: The Theory Of Keynes

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य

30.1 प्रस्तावना

30.2 सिद्धान्त का प्रतिपादन

30.2.1 मुद्रा की मांग

(अ) सौदा उद्देश्य

(ब) सतर्कता अथवा दूरदर्शिता उद्देश्य

(स) सट्टा उद्देश्य

(द) मुद्रा की कुल मांग

30.2.2 मुद्रा की पूर्ति

30.2.3 ब्याज की साम्य दर का निर्धारण

30.3 सिद्धान्त से सम्बन्धित अन्य बिन्दु

30.3.1 ब्याज दर और बन्ध मूल्य

30.3.2 भावी प्रत्याशा

30.3.3 तरलता जाल

30.3.4 मुद्रा की पूर्ति और ब्याज की दर

30.4 सिद्धान्त की आलोचना

30.5 सारांश

30.6 शब्दावली

30.7 उपयोगी पुस्तकें

30.8 अभ्यासों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य है?

1. उस पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करना जिसमें कीन्स ने अपने ब्याज दर के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।
2. उन तत्वों को समझाना जो आर्थिक व्यवस्था में ब्याज दर की निर्धारित करते है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान जाएंगे.

- कीन्स का ब्याज के सिद्धांत के प्रति रुख
- तरलता अधिमान व मुद्रा की मांग का अर्थ
- मुद्रा की मांग के प्रभाव तत्व
- ब्याज दर के निर्धारण का तरीका

30.1 प्रस्तावना

ब्याज का सिद्धान्त -ब्याजदर - पूँजी के मूल्य - के निर्धारण से सम्बन्धित है। ब्याजदर निर्धारण के प्रमुख चार प्रकार है। प्रतिष्ठित, नव-प्रतिष्ठित, कीनीसयन और आधुनिक। प्रतिष्ठित और नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त वास्तविक सिद्धांत कहलाते है क्योंकि वे वास्तविक कारणों के प्रकाश में ब्याजदर के निर्धारण को समझाते है। दूसरी ओर कीन्स का मौद्रिक सिद्धांत तत्वों के प्रकाश में ब्याजदर के निर्धारण को समझाता है। इन दोनों सिद्धान्तों का समन्वय आधुनिक सिद्धांत में किया गया है।

कीन्स का ब्याज दर का सिद्धान्त उनके ' 'रोजगार, ब्याज एवं मुद्रा के सामान्य सिद्धान्त" का एक भाग है। उसे ब्याजदर का सूक्ष्म नही बल्कि वृहद् सिद्धान्त कहा जा सकता है। कीनीसयन अर्थशास्त्र के शब्दों में अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार, कुल प्रभावी मांग पर निर्भर है और प्रभावी मांग उपभोग मांग एवं विनियोग मांग पर निर्भर हैं। उपभोग मांग स्वयं सीमांत उपभोग प्रवृत्ति और गुणक के आकार पर निर्भर है। इस प्रकार आज की दर कुल रोजगार के निर्धारण में एक तत्व है।

कीन्स मुद्रा के कार्यों में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों से भिन्न मत रखते है। प्रतिष्ठिततों के अनुसार मुद्रा विनिमय का माध्यम है परन्तु कीन्स का मत है। कि विनिमय के माध्यम के अलावा मुद्रा मूल्य का संचय' भी है। इससे उन्होनें निष्कर्ष निकाला है कि मुद्रा 'सम्पत्ति' का कार्य भी करती है।

कीन्स का सिद्धान्त' मुद्रा का तरलता अधिमान सिद्धान्त" भी कहलाता है

30.2 सिद्धान्त का प्रतिपादन

मूलभूत मान्यताएं

(अ) मुद्रा को दो रूपों में रखा जा सकता है- नकद में (या तरल सम्पत्ति के रूप में) अथवा बन्धों और प्रतिभूतियों के रूप में

(ब) किसी निश्चित समय पर मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है और उसे किसी देश के मौद्रिक अधिकारी द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

कीन्स ने ब्याज को तरलता से अलग होने का पुरस्कार कहा है । अत: नकद रूप में मुद्रा सर्वाधिक तरल परिसम्पत्ति है । जब कोई किसी भी रूप में किसी निश्चित अवधि-मानलो, एक वर्ष- थे मुद्रा उधार देता है तो वह मुद्रा की तरलता से विलग होता है । अत: उसे इसके लिये जो मूल्य मिलता है वह ब्याज है ।

कीन्स के अनुसार, ब्याज एक मौद्रिक घटना है- ब्याज की दर अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मांग एवं मुद्रा की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। अत: यह जानना आवश्यक है कि मुद्रा की मांग' और मुद्रा की पूर्ति में क्या आता है?

30.2.1 मुद्रा की मांग

मुद्रा की मांग का अर्थ है नकद कोष रखने की मांग ।कीन्स के अनुसार मुद्रा सिर्फ खर्च करने के लिये ही नही बल्कि धन और परिसम्पत्ति के रूप में रखने के लिये भी प्रयुक्त की जाती है । कोई किसी भी समय इस इन और परिसम्पत्ति को मुद्रा में और मुद्रा को परिसम्पत्ति में बदल सकता है।

कीन्स के अनुसार मुद्रा की मांग तीन महत्वपूर्ण उद्देश्यों पर निर्भर है -

(अ) सौदा उद्देश्य (ब) सतर्कता अथवा दूरदर्शिता उद्देश्य (स) सट्टा उद्देश्य । इसी प्रकार इन तीनों उद्देश्यों के लिये मांगी जाने वाली मुद्रा क्रमश: सौदा मांग, सतर्कता मांग और सट्टा मांग कहलाती है । अब हम देखें कि उन पर किन तत्वों का प्रभाव पड़ता है?

30.2.1 (अ) सौदा उद्देश्य

सामान्यत: लोग दिन-प्रतिदिन के लेनदेन को पूर्ण करने थे नकद मुद्रा अपने पास रखना चाहते है । उदाहरणार्थ-लोगों को प्रतिदिन बहुत से चालू व्यय करने पड़ते है, जैसे-भोजन पर व्यय, परिवहन पर व्यय, बच्चों की शिक्षा पर व्यय, मनोरंजन पर व्यय आदि । इसी प्रकार व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को दिन-प्रतिदिन के व्यावसायिक लेनदेन, जैसे- मजदूरों को मजदूरी के भुगतान , परिवहन व्यय ,कच्चे माल के भुगतान, शक्ति के साधन पर व्यय आदि हेतु नकद मुद्रा रखनी पड़ती हें । इन सब व्ययों का यह अर्थ है कि व्यक्तियों और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को मुद्रा की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि उसके द्वारा वे आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कर सकते है । इस प्रकार मुद्रा विनिमय का माध्यम है । अत: लोग उसकी मांग करते हें । मुद्रा की यह मांग कुछ तत्वों पर निर्भर है-

व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह निर्भर है- (1) आय के स्तर पर (11) आय की प्राप्ति और व्यय की अवधि पर। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के सम्बन्ध में यह निर्भर है-

व्यावसायिक गतिविधि के स्तर पर। इस प्रकार हम कह सकते है कि आय का स्तर जितना ऊँचा होगा, व्यक्ति की लेनदेन हेतु मुद्रा रखने की इच्छा उतनी ही अधिक होगी। उसी प्रकार आय प्राप्ति और व्यय की अवधि जितनी अधिक होगी, नकद मुद्रा रखने को आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी। उदाहरणार्थ- व्यक्ति को आय तुलनात्मक रूप से एक लम्बी अवधि, जैसे-सप्ताह, महीना, वर्ष आदि- के बाद मिलती है परन्तु उसे व्यय अक्सर जल्दी-जल्दी, जैसे-रोज और कई बार हर घण्टे करना पड़ता है। अत: उन्हें इन व्ययों हेतू अपनी मौद्रिक आय का कुछ भाग नकद में रखना पड़ता है। यदि व्यक्ति को मासिक आय प्राप्त होती है तो उसे अधिक नकद कोष रखने पड़ेंगे बजाय तब के जब उसे साप्ताहिक आय प्राप्त होती है।

व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के संबंध में यदि व्यावसायिक क्रिया तीव्र है तो प्रतिष्ठान को अधिक नकद द्रव्य रखना पड़ेगा, पर यदि व्यावसायिक गतिविधियों धीमी है तो कम नकद द्रव्य रखने से भी काम चल जायेगा। इस प्रकार हम कह सकते है कि मुद्रा की सौदा मांग आय के स्तर पर निर्भर है। हम इस सम्बन्ध को संकेत रूप में इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते है -

$$Lt= f(Y)$$

जहां Lt =मुद्रा की सौदा उद्देश्य हेतु मांग, Y= आय का स्तर, f= फलन

इस सम्बन्ध के कारण कहा जाता हैं कि मुद्रा की सौदा मांग आय सापेक्ष होती है, अर्थात आय के स्तर के अनुसार बदलती है।

एक सुधार

आय के स्तर पर निर्भर होने के अतिरिक्त मुद्रा की सौदा मांग ब्याज दर पर भी निर्भर होती है, खासकर तब, वह काफी ऊँची है। आइये, इसे समझने का प्रयास करे। हमें मालूम है कि किसी भी व्यक्ति, परिवार व्यावसायिक प्रतिष्ठान के समक्ष दो विकल्प होते है। या तो वह 'नकद 'धारण कर सकता है या वित्तीय बॉण्ड्स और प्रतिभूतियों धारण कर सकता है। परन्तु यदि वह 'नकद ' धारण करता है तो उसे वित्तीय परिस्थितियों को धारण करने से प्राप्त होने वाली आय (जो ब्याज से उत्पन्न होती है) से वंचित होना पड़ता हें। इसी प्रकार यदि वह परिसम्पत्ति ' धारण करता है तो परिसम्पत्ति को नकद में बदल ने में कुछ व्यय में करना पड़ता है। इसे 'सौदा ' की लागत कहते है। मानलो, यह व्यय परिसम्पत्ति का 5 प्रतिशत है। लोग तब तक 'नकद ' धारण करना पसन्द करेंगे। जब वक्र स्थानान्तरण लागत परिसम्पत्ति से प्राप्त होने वाली ब्याजदर से अधिक हें। परन्तु यदि ब्याजदर इस प्रतिस्थापन लागत से अधिक है (मान लो 6 प्रतिशत) तो लोग परिसम्पत्ति धारण करना पसन्द करेंगे, नकद नही अत: हम कह सकते है कि ब्याज की अधिक ऊंची दर पर मुद्रा की सौदा मांग ब्याजदर के प्रति भी लोचपूर्ण हो जाती है। इसे चित्र 30.1 में दर्शाया गया है। यहां L_t, वक्र 5 प्रतिशत ब्याजदर की सीमा तक सीधा खड़ा है क्योंकि इस दर

तक वह लागत वक्र के लगभग बराबर है परन्तु 5 प्रतिशत के बाद वक्र पीछे की ओर झुका हुआ है जिससे पता चलता है कि अब सौदा उद्देश्य हेतु कम नकद रखा जा रहा है।

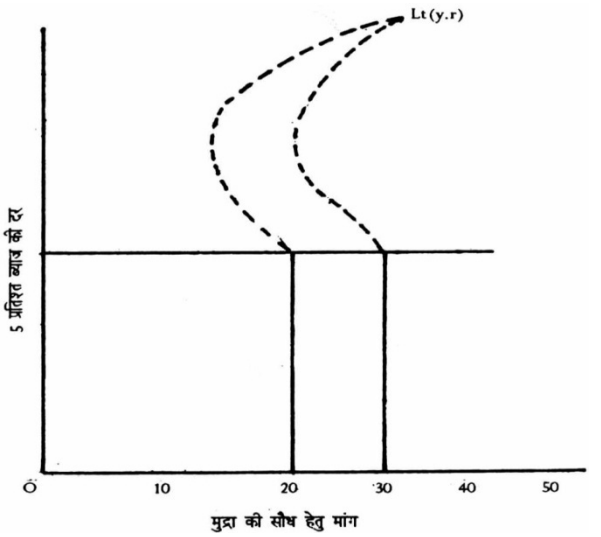

चित्र 30.1

30.2.1 (ब) सतर्कता अथवा दूरदर्शिता उद्देश्य

सौदा उद्देश्य के अतिरिक्त लोग मुद्रा की कुछ मात्रा अप्रत्याशित घटनाओं, जैसे-बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी आदि के लिये भी रखते है। कीन्स ने इन अप्रत्याशित घटनाओं को "वर्षा दिवस" कहा है। इन वर्षा दिवसों की सम्भावना पहले से नही जानी जा सकती। व्यक्ति, परिवार और व्यावसायिक संस्थान सभी इन अप्रत्याशित घटनाओं के विरूद्ध सतर्कता बरतते है और इसके लिये नकद मुद्रा रखते है। इस नकद राशि का आकार निम्न बातों पर निर्भर होता है-

(i) लोगों का भविष्य के सम्बन्ध में दृष्टिकोण एवं उनका मनोवैज्ञानिक स्वरूप।

(ii) लोगों द्वारा ऐसी आकस्मिकताओं के विरुद्ध बरती जाने वाली संरक्षण की मात्रा।

यदि लोग लोचते है कि भविष्य अधिक अनिश्चित है या यदि वह भविष्य के सम्बन्ध में अधिक चिन्तित है तो वे अधिक नकद मुद्रा अपने पास रखना चाहते है। इसी प्रकार यदि लोग अदृश्य बाधाओं के विरूद्ध अधिक सुरक्षा चाहते है। तो वे अधिक नकद रखना चाहेंगे।

व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के सम्बन्ध में सतर्कता उद्देश्य हेतु नकद की मात्रा निम्न बातों पर निर्भर होती है-

I. उनकी साधन सम्पन्नता

II. साख बाजार में उनकी पहुंच

III. अतरल परिसम्पत्ति के तरल परिसम्पत्ति में बदलने की उनकी क्षमता।

प्रथम के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि एक साधन सम्पन्न व्यवसाय को भावी अनिश्चितताओं के लिये कम नकद मात्रा रखनी पड़ती है। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी शर्तों के परिप्रेक्ष्य में हम कह सकते है कि यदि साख बाजार में फर्म की पहुँच है और अतरल सम्पत्तियों को वह तेजी से तरल में बदल सकती है तो वह कम नकद मात्रा रखकर अपना काम चला सकेगी।

वास्तव में ये तीनों तत्व आपस में सम्बन्धित है और एक फर्म सामान्यत: साख बाजार में भी अधिक साधन सम्पन्न होती है और अपनी परिसम्पत्तियों को नकद में भी आसानी से बदल सकती है। सौदा मांग की तरह सतर्कता मांग भी आय के स्तर और व्यावसायिक क्रिया के स्तर परनि करती है। संकेत रूप में-

$L_p = f(Y)$

जहां Lp= मुद्रा की सतर्कता मांग, f= फलन, Y= आय का स्तर

चूंकि ये दोनों प्रकार की मुद्रा की मांग (सौदा मांग व सतर्कता मांग) मुख्यत: आय का फलन है। अत: हम उन्हें एकसाथ रखकर इस प्रकार दिखा सकते है-

$L_t + L_p = L_1 = f(Y)$; और $L_1 = f(Y, r)$; तुलनात्मक ऊँची ब्याजदर पर।

30.2.1 (स) सट्टा उद्देश्य

उपर्युक्त दो उद्देश्यों के अतिरिक्त लोग मुद्रा को एक परिसम्पत्ति के रूप में भी रखना चाहते है। वे बंधों और प्रतिभूतियों के मूल्यों में होने वाली वृद्धि और कमी से लाभ उठाना चाहते है। कीन्स के अनुसार सट्टा उद्देश्य का अर्थ है भविष्य के पारे में बाजार से बेहतर जानने का लाभ उठाना। इस प्रकार लोग भविष्य में ब्याजदर में होने वाले परिवर्तन के बारे में सट्टा लगाते है, जैसे-कुछ

लोग भविष्य में ब्याजदर घुनें की आशा करते है और कुछ लोग भविष्य में ब्याजदर बढ़ने की आशा करते है। तदनुसार वे वर्तमान में कम या अधिक नकद द्रव्य रखते है। अत: सट्टा उद्देश्य में ब्याज की भावी दर और उसके सम्बन्ध में लोगो के अनुमान का वर्तमान ब्याजदर से अधिक महत्व है।

वास्तव में आज की दर और प्रतिभूति के मूल्य में विपरीत सम्बन्ध होता हें। जब ब्याज मांग कम होती हें और नीची ब्याजदर पर सट्टा मांग अधिक होती है। चित्र 30. 2 में यह सम्पन्न दर्शाया गया है। चित्र 30.2 में I_2 वक्र दर्शाता है कि ब्याजदर घटने पर मुद्रा की सट्टा मांग बढ़ती है और ब्याजदर बढ़ने पर वह घटती है।

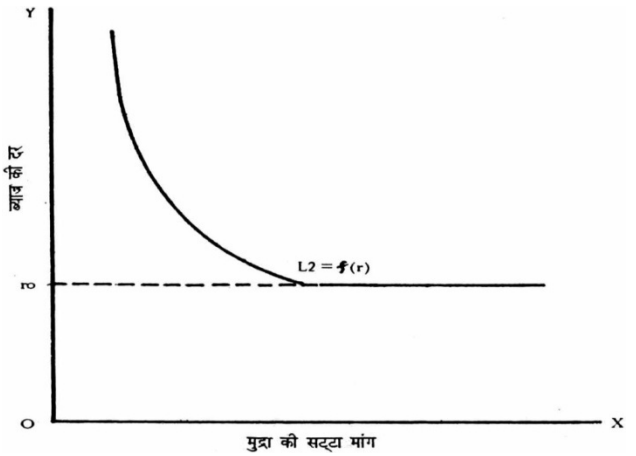

चित्र 30.2

इस सम्बन्ध में एक महत्तवपूर्ण तथ्य देखना आवश्यक है। ब्याज को घटने की प्रवृत्ति की एक सीमा होती है जिसके नीचे वह सामान्यत: नहीं गिरती। चित्र 30.2 में यह सीमा Or_0 है जिस पर L_2, वक्र पूर्णत: लोचदार हो गया है (क्षतिज अंश के समानान्तर) इस स्थिति को 'तरलता जाल' कहते है। इस स्थिति को भाग 30.3.3 में समझाया जायेगा। संकेतों का प्रयोग कर हम सट्टा मांग एवं ब्याजदर के सम्बन्ध को इस प्रकार दशा सकते है-

$$L_2=f(r)$$

जहां L_2= मुद्रा की सट्टा मांग, r= ब्याज की दर

30.2.1 (द) मुद्रा की कुल मांग

कीन्स के अनुसार मुद्रा की कुल मांग सौदा मांग सतर्कता मांग एवं सट्टा मांग का योग हें इस प्रकार हम कह सकते है कि

$$L=L_1+L_2=L_t+L_p+L_s;$$

जहां

L= मुद्रा की कुल मांग, $L_1=L_t+L_p$= सौदा मांग + सतर्कता मांग

$L_2=L_s$ सट्टा मांग

चूंकि L_1 और L_2 मुख्यत: क्रमश: आय के फलन और ब्याजदर के फलन है। अत: हम कह सकते है कि

$$L=L_1(Y)+L_2(r);$$

हम मुद्रा की कुल मांग की चित्र 30.3 में एक विशेष उदाहरण द्वारा दर्शाते है। मान लो किसी अवधि में किसी देश में कुल राष्ट्रीय आय 100 करोड़ रुपये है। मानलो 10 प्रतिशत राशि यानी 10 करोड़ रुपये सौदा मांग (L_1) है। अत: 10 करोड़ के स्तर पर L_1 वक्र एक उदग्र रेखा होगी। L_2 हेतु मांग ब्याजदर

के अनुसार बदलेगी। इस प्रकार L_1 एवं L_2 थे कुल मांग 6 प्रतिशत ब्याजदर पर 15 करोड़ होगी, 5 प्रतिशत पर 20 करोड़ होगी और 4 प्रतिशत पर 30 करोड़ होगी। 2 प्रतिशत पर असीमित होगी क्योंकि यहां तरलता की स्थिति आ गई है।

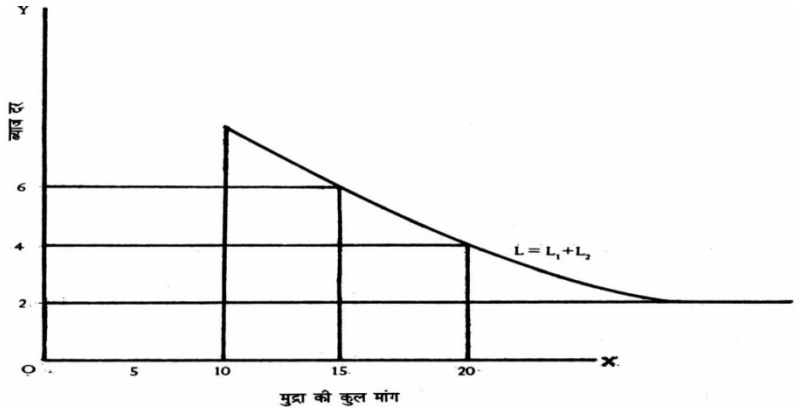

चित्र 30.3

30.2.2मुद्रा की पूर्ति

मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है- अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल मात्रा। इसमें चलन में मुद्रा और जनता की बैंक जमाएं शामिल होती है। चलन में सभी सिक्के और सरकार व केन्द्रीय बैकों द्वारा प्रचलित कागजी मुद्रा शामिल है। बैंक जमाएं, विशेषकर जो मांग पर देय हो, भी मुद्रा की पूर्ति में शामिल है। किसी दिये हुए समय में अर्थव्यवस्था में मुद्रों की पूर्ति ब्याजदर से सम्बन्धित नही होती। अत: कीन्स का सिद्धांत एक दिये हुए समय में मुद्रा की पूर्ति को स्थित मानता है। चित्र 30.4 में इसे एक सीधी उदय रखा SS या S'S' द्वारा दर्शाया गया है। उदग्र रखा या पूर्णत: बेलोच रेखा यह बताती है कि मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है-

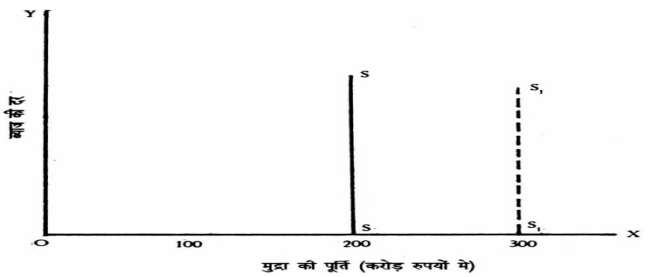

चित्र 30.4

संकेतों का प्रयोग करते हुए यदि M का अर्थ मुद्रा की पूर्ति है। उसके दो भाग है। M_1 और M_2IM$_1$ आ वह भाग है जो L_1 की पूर्ति करता है। यानी सट्टा मांग की पूर्ति करता है। अत: हम कह सकते है कि-

$$M_1=L_1=f(Y) \text{ या } M_1=L_1(Y); \text{ और}$$

$$M_2=L_2=f(r) \text{ Or } M_2=L_2(r).$$

30.2.3 ब्याज की साम्य दर का निर्धारण

कीन्स के सिद्धांत के अनुसार ब्याज की साम्य दर अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मांग व पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। पूर्व मांगों में हमने मुद्रा की मांग व पूर्ति के तत्वों को देखा है। अब हम साध्य ब्याजदर के निर्धारण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करेगें-

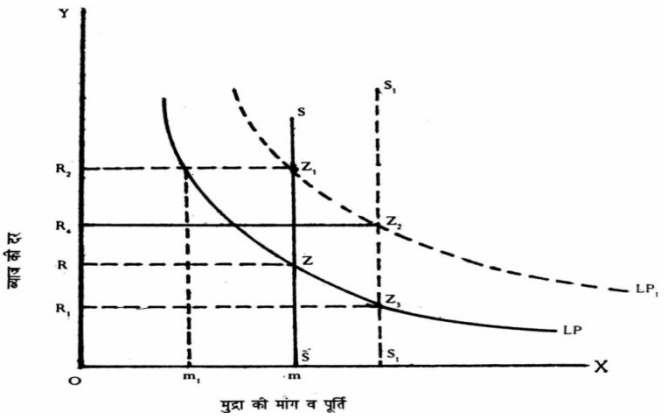

चित्र 30.5

चित्र 30.5 में हमने मुद्रा की मांग एवं पूर्ति वक्रों का साथ-साथ रखा है। LP वक्र कुल मांग को दर्शाती है। यानी तरलता अधिमान की स्थिति को दर्शाती है जबकि SS वक्र मुद्रा की पूर्ति को दर्शाती हें जो आरम्भ में OS स्तर पर है। ये दोनों वक्र बिन्दु Z पर मिल रही है जहां मुद्रा की हेतु समान है। यह स्थिति OR ब्याज दर पर है। अत: OR ब्याज की साध्य दर है। इस ब्याज दर पर लोग मुद्रा की मात्रा को घटाना या बढ़ाना नही चाहते। अन्य सभी ब्याज दरों पर या तो मांग पूर्ति से अधिक है(जैसे OR_1,पर) पूर्ति मांग से अधिक है-जैसे (OR पर)। अत: ये असाम्य की स्थितियां है।

LP एवं SS वक्रों में परिवर्तन (गतिशील स्थितियां)

जब LP वक्र ऊपर सरकती है (जैसे LP_1 पर) तो इसका अर्थ है कि लोग उसी ब्याजदर पर मुद्रा की अधिक मात्रा नकद में रखना चाहते है। चित्र 30.5 में सरकी हुई LP वक्र दर्शाती है कि मुद्रा की मांग OR_2 ब्याज दर पर OM_1 से बढ़कर OM हो जाती है। इसी तरह जब-SS वक्र S'S' तक सरकती है तो मौद्रिक अधिकारी मुद्रा की पूर्ति बढ़ा देते है (अन्य काल अवधि में) । हर दशा में साध्य की स्थिति निम्नानुसार होती है-

I. यदि LP LP_1 तक सरके और SS स्थिर रहे तो नया साम्य Z_1 बिन्दु पर होगा जबकि ब्याज की दर OR_2रु है।
II. यदि SS S'S' तक सरके और LP स्थिर रहे तो सान्द्र बिन्दु Z_3 बिन्दु पर होगा और ब्याजदर OR_1 होगी।
III. यदि दोनों वक्र साथ -साथ दाई और खिसकें तो नया साम्य Z_2 बिन्दु पर होगा और ब्याजदर OR_4 होगी। यह ब्याजदर पुरानी साध्य ब्याजदर पर OR से बहुत दूर नही होगी परन्तु LP एवं SS वक्रों में

होने वाले तुलनात्मक परिवर्तन नये साम्य को प्रभावित करेगा। उदाहरणार्थ यदि LP SS से अधिक सरकती हैं तो नया साम्य पुराने साम्य से ऊपर स्थित होगा।

30.2.4 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Interest)

आधुनिक अर्थशास्त्री जैसे कि जेआरहिक्स तथा ए.एचहैन्सन के अनुसार प्रतिष्ठित तथा ऋण योग्य राशियों के सिद्धान्त ब्याज निर्धारण का निश्चित समाधान प्रस्तुत नहीं करते और न ही कीन्स का तरलता अधिमान सिद्धान्त ब्याज निर्धारण का पूर्ण सिद्धान्त है । अत: उन्होंने कीन्स तथा प्रतिष्ठित सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित करके ब्याज का एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत किया है जिसे ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त कहा जाता है । कीन्स के नकदी अधिमान सिद्धान्त की सहायता से एक वक्र जिसे LM वक्र कहा जाता है। व्युत्पादित करते हैं तथा प्रतिष्ठित सिद्धान्त से एक वक्र जिसे IS वक्र कहा जाता है, व्युत्पादित करते हैं और फिर दो वक्रों IS तथा LM की परस्पर प्रतिच्छेदन द्वारा आज दर के निर्धारण की व्याख्या करते हैं । इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर की संतुलन दर वह दर है जहां अर्थव्यवस्था के वास्तविक क्षेत्र तथा मौद्रिक क्षेत्र दोनों एक साथ संतुलन में होते हैं ।

आय संतुलनमें IS वक्र

IS वक्र वास्तविक क्षेत्र में विभिन्न आय मात्राओं तथा विभिन्न ब्याज दरों के ऐसे संयोगों को प्रदर्शित करने वाला वक्र है जिसके प्रत्येक बिन्दु पर कुल वास्तविक बचत (S) कुल वास्तविक विनियोग (I) के बराबर है। दूसरे शब्दों में IS वक्र आय तथा ब्याज दरों के उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करता है जिन पर कुल बचतों एवं कुल निवेशों में संतुलन होता है । IS वक्र अर्थव्यवस्था के वास्तविक क्षेत्र में संतुलन का द्योतक है ।

रेखा चित्र (A) में विभिन्न आय स्तरों पर बचतों तथा विभिन्न ब्याज दरों पर विनियोगों के ऐसे संयोगों को दर्शाया गया है जहां पर बचतों तथा निवेश में संतुलन है जबकि रेखा चित्र (B) में IS वक्र आय की विभिन्न मात्राओं द्वारा ब्याज की विभिन्न दरों के ऐसे संयोगों को व्यक्त करता है जिन पर बचतों व विनियोगों में संतुलन है ।

बचत तथा विनियोग (करोड़ रू.)

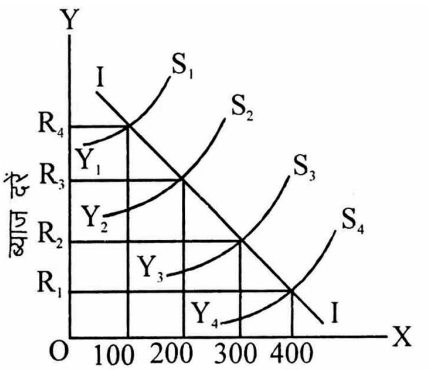

आय स्तर (करोड़ रू.)

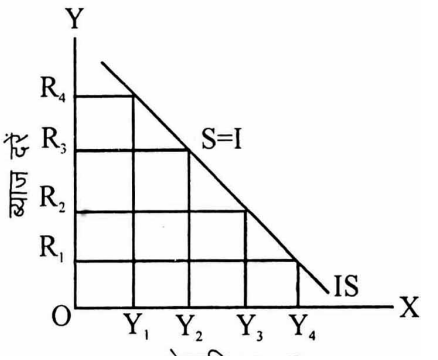

IS वक्र ऊपर दायें से नीचे बायीं ओर गिरता हुआ होता है इसकी स्थिति बचत व विनियोग वक्रों की स्थिति के अनुसार बदलती रहती है।

LM वक्र

LM वक्र अर्थव्यवस्था के मौद्रिक क्षेत्र में संतुलन का द्योतक होता है यह वक्र अर्थव्यवस्था में आय (Y) तथा ब्याज दरों (R) के उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करता है जिन पर मुद्रा की तरलता पसन्दगी कुल मांग (L) तथा मुद्रा पूर्ति (M) में समानता होती है। अर्थात् LM वक्र ब्याज दरों तथा आय के उन विभिन्न संयोगों को बताता है जिन पर मुद्रा की कुल मांग एवं मुद्रा की कुल पूर्ति में संतुलन होता है।

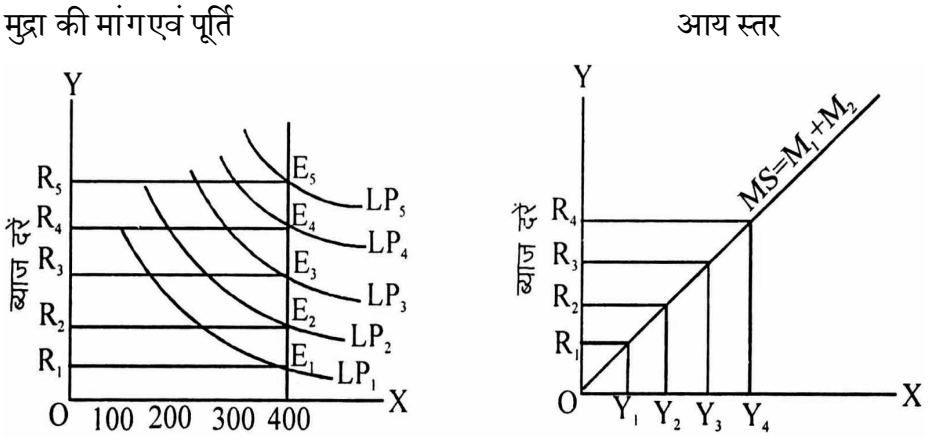

रेखा चित्र (A) में Y_1 आय स्तर पर R_1 ब्याज की वह संयोग दर है जिस पर मुद्रा की मांग एवं पूर्ति E_1 बिन्दु पर (L=M) बराबर है। रेखा चित्र (B) में LM वक्र बताया गया है जो विभिन्न ब्याज दरों तथा विभिन्न आय स्तरों के ऐसे संयोगों को व्यक्त करता है जिन पर मुद्रा की कुल मांग और मुद्रा की कुल पूर्ति (MS) बराबर है। यह LM वक्र अर्थव्यवस्था में मौद्रिक क्षेत्र में संतुलन को व्यक्त करता है। LM वक्र दायें से बायें उपर की ओर उठता हुआ होता है क्योंकि जैसे-जैसे आय स्तर में वृद्धि होती है लोगों की तरलता पसन्दगी बढ़ती जाती है।

ब्याज दर का निर्धारण

ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां IS तथा LM वक्र एक दूसरे को काटते हैं। IS तथा LM वक्र के इस परिच्छेदन बिन्दु पर ब्याज दर तथा आय का वह संयोग ज्ञात होता है जहां मौद्रिक क्षेत्र के साथ-साथ वास्तविक क्षेत्र भी संतुलन में होता है। अर्थात् IS तथा LM वक्र के परिच्छेदन बिन्दु पर अर्थव्यवस्था में ब्याज दर तथा आय का वह स्तर ज्ञात हो जाता है जिस पर आय संतुलन तथा मौद्रिक संतुलन दोनों शर्तें एक साथ पूरी हो जाती है।

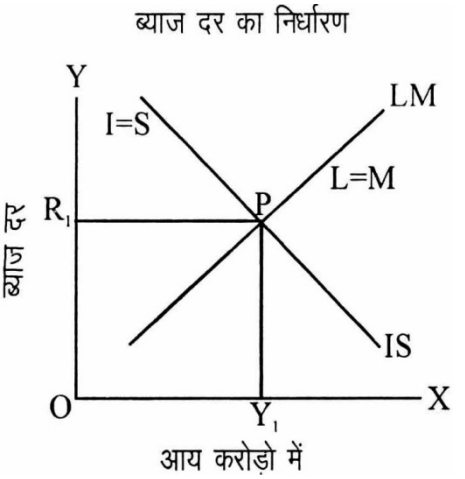

रेखाचित्र

रेखा चित्र में IS तथा LM वक्र के परिच्छेदन बिन्दु P के अनुसार ब्याज दर OR_1 का निर्धारण होता है। स्पष्ट है कि जहां कीन्स के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त में केवल मौद्रिक संतुलन शर्त तथा प्रतिष्ठित सिद्धान्त में केवल वास्तविक क्षेत्र में संतुलन की शर्त पूरी होती है, वहां प्रोहिक्स हेन्सन के इस सिद्धान्त में दोनों शर्तें एक साथ पूरी होती है।

IS तथा LM वक्र में परिवर्तन होने पर संतुलन बिन्दु में परिवर्तन होता है तथा साथ ही संतुलन ब्याज दर तथा आय स्तर में भी परिवर्तन हो जाता है।

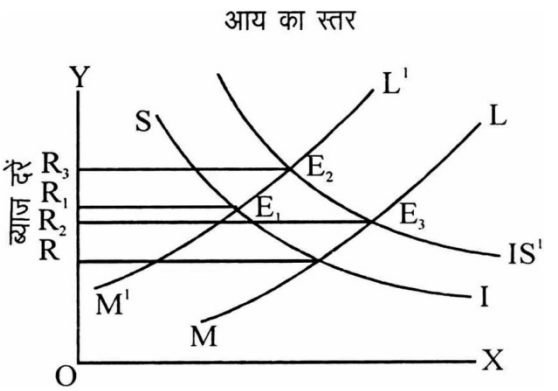

रेखाचित्र 8.10

रेखा चित्र के अनुसार IS तथा LM वक्रों के परिच्छेदन बिन्दु E के अनुसार OR ब्याज दर का निर्धारण होता है। इस संतुलन बिन्दु पर माना कि तरलता अधिमान वक्र विवर्तित होकर L^1M^1 हो जाता है तो संतुलन बिन्दु E से E^1 तथा ब्याज दर OR से OR_1 हो जायेगी। तरलता अधिमान समान रहते हुए IS वक्र के विवर्तित होने पर संतुलन बिन्दु E_3 होगा तथा IS तथा LM दोनों ही वक्रों के विवर्तित होने पर नया संतुलन बिन्दु E_2 होगा। इस प्रकार बाजार में वास्तविक क्षेत्र अथवा मौद्रिक क्षेत्र में परिवर्तन होने पर ब्याज दर में भी परिवर्तन होगा।

स्पष्ट है कि आधुनिक सिद्धान्त में निवेश मांग सूची, बचत मांग सूची, मुद्रा की मात्रा तथा द्रव्य की तरलता पसन्दगी चारों तत्वों का एकीकरण कर ब्याज की दर तथा आय के संदर्भ में उनका समन्वित विश्लेषण किया जाता है। उपर्युक्त चार तत्वों में से किसी में भी परिवर्तन होने पर ब्याज की दर में परिवर्तन होता है।

30.3 सिद्धान्त से सम्बन्धित अन्य बिन्दु

30.3.1 ब्याज दर और बन्ध मूल्य

हमने 30.2.1 (सी) भाग में उल्लेख किया है कि ब्याज दर और बन्ध के मूल्य परस्पर विरोधी रूप से संबंधित होते है। मानलो आपने 10.000-00 रुपये का एक बन्ध खरीदा जिस पर ब्याज दर 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। इससे आपको रुपये 500-00 की स्थिर आय प्रतिवर्ष प्राप्त होगी। यदि ब्याज दर गिरकर 4 प्रतिशत हो जाय तो वह बन्द आपका 500-00 रुपयों की स्थिर आय तभी दे पायेगा जब उसका मूल्य बढ़कर रुपये 12,500.00 (12,500 x 4% - 500) हो जाय। इसके विपरीत यदि ब्याज दर बढ़कर 6 प्रतिशत हो जाय तो बन्ध का मूल्य लगभग रुपये 8,300 x 6% - 498-00)। इस प्रकार बन्द के मूल्य और ब्याज की दर में विपरीत सम्बन्ध होता है तो ऐसी स्थिति में लोग सट्टा कैसे लगाते है?

यदि ब्याज दर ऊंची है (यानी बन्द का मूल्य नीचा है) तो लोग मुद्रा को नकद रखने की अपेक्षा उससे बन्ध खरीदना पसन्द करेगें। यदि उन्हें यह अनुमान हो कि भविष्य में बन्ध का मूल्य बढ़ जायगा। दूसरी ओर यदि ब्याज दर कम है (यानी बन्ध का मूल्य अधिक है) और भविष्य में बन्ध का मूल्य घटने की सम्भावना है तो लोग अभी बन्ध बेचकर अपनी नकद राशि को बढ़ाएंगे।

30.3.2. भावी प्रत्याशा

कीन्स के सिद्धान्त में भावी प्रत्याशा का महत्वपूर्ण स्थान है। हमने 30.2.1 भाग में देखा कि भविष्य में ब्याजदर की अनिश्चितता लोगों को अलग-अलग प्रकार से सट्टा लगाने को मुद्रा की प्रोत्साहित करती है। कुछ लोग मुद्रा को नकद रखना पसन्द करते है तो कुछ बंध खरीदकर रखना पसन्द करते है। यह इस बात पर निर्भर करते है कि भविष्य के बारे में ब्याजदर के समय में उनकी प्रत्याशा कैसी है? ब्याज की सामान्य दर एक ' 'अवधारणा " है। यदि बन्ध धारक यह लोचते है किया ब्याज की चालू दर ऊँची है (बन्ध का मूल्य कम है) तो वे भविष्य में ब्याज की दर गिरने की सम्भावना मानते है। अत: वे अधिक बन्ध खरीदेंगे और अपने पास कम नकद मुद्रा रखेंगे। इसके विपरीत यदि बन्ध धारक लोचते है कि ब्याज की चालू दर कम है और भविष्य में उसके बढ़ने की सम्भावना है तो वे अधिक नकद रखेंगे और बन्ध बेचेंगे। प्रथम व्यवहार 'बुलिश' कहलाता है जबकि दूसरा 'बिअरिश ' कहलाता हें। साम्य जहां उत्पन्न होती है वहां दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां एक दूसरे के समायोजित कर देती है।

30.3.3 तरलता जाल

30.2.1 भाग में हमने 'तरलता जाल' का सन्दर्भ दिया है। यह स्थिति दर्शाती है कि जब हम L_2 वक्र (चित्र 30.2) पर बढ़ते है तो ब्याज दर को घटते जाना मुश्किल है। जैसे-जैसे ब्याज दर गिरती जाती

है, यह वक्र अधिक लोचदार होती जाती है और अन्तत : OR_0 दर पर वक्र पूर्णत : लोचदार हो जाती है। इसका मुख्य कारण निम्नानुसार है-

I. जैसे-जैसे ब्याज दर घटती जाती है, ब्याज आय की हानि का जोखिम बढ़ता जाता है।

II. बन्द और प्रतिभूति जैसी वित्तीय परिसम्पत्तियों के क्रय की प्रक्रिया में कुछ असुविधाएं और व्यय भी होते है। ब्याज की बहुत नीची दर पर इसका समायोजन नही हो पाता।

III. बन्द के धारक लोचते है कि बन्द के मूल्य के बहुत बढ गये है और यदि अब उनमें कोई परिवर्तन होगा तो वे गिरेगें ही, बढेगे नही।

हम इन बिन्दुओं को उदाहरण लेकर समझायेंगे। मानलो 1000 -00 रुपये का एक बन्ध धारक को 2 प्रतिशत ब्याज दर पर 20 रुपये प्रतिवर्ष की ब्याज आय प्रदान करता है। मानलो यह 2 प्रतिशत धारक द्वारा प्रत्याशित न्यूनतम दर है। अब यदि ब्याज की दर बढ़ने लगे (मानलो 3 प्रतिशत तक) तो बन्ध का मूल्य गिरकर 670 रुपये हो जाएगा अर्थात् पूंजी का रुपये 330 (1000-670) का नुकसान होगा। यदि व्यक्ति के पास पर्याप्त तरल परिसम्पत्ति (मुद्रा) हो तो वह इस हानि को तरल कर सकता है और घटे हुए मूल्य पर बन्ध खरीद सकता है। अत: इस घटे हुए मूल्य पर मुद्रा की मांग असीमित रूप में अधिक होती है।

पूर्व में हमने 'हस्तान्तरण लागत' की चर्चा की है जो बन्दों या प्रतिभूतियों के क्रय की प्रक्रिया में उत्पन्न होती है। मानलो यह हस्तान्तरण लागत परिसम्पत्ति के मूल्य की 3 प्रतिशत है। यदि ब्याज दर 2 प्रतिशत है तो स्पष्ट है कि यह ब्याज दर हस्तान्तरण लागत की भरपाई नही करती। अत: लोग 2 प्रतिशत ब्याज दर पर बन्ध की अपेक्षा मुद्रा रखना पसन्द करेंगे।

परिसम्पत्ति के धारकों को यह लोचने का कुछ कारण होता है कि बन्ध का मूल्य काफी बढ़ गया है। यह उनके अनुभव और प्रत्याशाओं पर निर्भर होता है। इस प्रकार वे बन्ध के मूल्य गिरने की उम्मीद करते है। इस परिस्थिति का पूर्ण लाभ उठाने थे वे पर्याप्त नकद मुद्रा धारण करते है जिससे मूल्य गिरने पर बन्धों को खरीद सकें।

30.3.4मुद्रा पूर्ति और ब्याजकी दर

मौद्रिक अधिकारी मुद्रा की पूर्ति को बढ़ा या घटाकर ब्याज दर को प्रभावित कर सकते है। कीन्स ने इसी आधार पर रोजगार बढ़ाने के लिये 'सस्ती मुद्रा नीति ' की सलाह दी। तर्क यह है कि बड़ी हुई पूर्ति से ब्याज दर घटेगी जिससे विनियोग बढ़ेंगे और रोजगार बढ़ेगा।यह सम्भव हो सकेगा कि क्योंकि सट्टा उद्देश्य के लिये अधिक मुद्रा उपलब्ध होगी जिससे ब्याज दर घटेगी। ब्याजदर विनियोग की लागत होती है। अत: विनियोग सरते हो जाने से विनियोग बढ़ जाएंगे। इस प्रकार मौद्रिक अधिकारी मुद्रा की पूर्ति को ब्याजदर घटाने और विनियोग बढ़ाने के साधन के रूप में प्रयुक्त कर सकते है।

यथापि इसमें काफी सन्देह है कि यह प्रक्रिया सहजता से सम्पन्न होगी। उदाहरणार्थ यदि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि से तरलता अधिमान भी बढ़ जाता है (जिससे LP वक्र दाई ओर सरक जाती हें तो ब्याज

दर अधिक नहीं गिरेगी। यदि LP मुद्रा की पूर्ति की तुलना में अधिक बढ़ जाती है तो ब्याजदर वास्तव में बढ़ जाएगी।

प्रश्न

- अपना उत्तर हर प्रश्न के नीचे प्रदत्त जगह में लिखें।
- उत्तरी का मिलान इकाई के अन्त में प्रदत्त उत्तरी से करें।

1. तरलता अधिमान की परिभाषा लिखे।
2. व्याख्या कीजिए- "मुद्रा की सौदा मांग की लोच आय सापेक्ष होती है।"
3. सट्टा उद्देश्य ब्याजदर सें कैसे सम्बन्धित है?
4. बन्ध के मूल्य और ब्याज की दर के सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।
5. तरलता जाल क्या है? कौन से तत्व उसकी व्याख्या करते है?

30.4 सिद्धान्त की आलोचना

(अ) यह एक निर्धारणीय सिद्धान्त नही है- कीन्स का तरलता अधिमान सिद्धांत उन सब तत्वों को नही पहचान पाता जो ब्याज दर का निर्धारण करते है। उदाहरणार्थ- मुद्रा की मांग का पहला भाग L_1 तब तक नही जाना जा सकता जब तक हम आय का स्तर नही जानते। राष्ट्रीय आय के विभिन्न स्तरों पर Lअलग2 होगा। कींस का सिद्धान्त हमें राष्ट्रीय आय के विभिन्न स्तरों पर तरलता अधिमान की अनुसूची के बारे में बताता है परन्तु वह यह बताने में असमर्थ है कि ब्याज की दर कैसे तय होती है?

(ब) सिद्धान्त बचत और विनियोग जैसे वास्तविक तत्वों की अवहेलना करता है- मौद्रिक तत्वों के पीछे हेतु वास्तविक तत्व होते है। उदाहरणार्थ - मुद्रा की मांग आवश्यक रूप से बचत से होती है। व्यक्ति आय कमाता है, उसका एक भाग वह बचाता है और फिर तय करता है कि उसे कैसे रखना है- नकद में या परिसम्पत्ति के रूप में। इसी प्रकार कीन्स के सिद्धांत में विनियोग के ऋण देने के पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। विनियोग का उधार लेने का पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है। जो विनियोग के लिये कोष अगर लेते है वे ऐसा इसलिए करते है क्योंकि पूंजी उत्पादक है और उसके लिये ब्याज दिया जाता हें।

(स) यदि कीन्स के सिद्धान्त को सही माने तो **मन्दी के काल में ब्याजदर** क्षत ऊँची होनी चाहिए क्योंकि ऐसे समय में लोग अधिकांश नकद अपने पास रखना चाहते हें। परन्तु हम जानते है कि मंदी में सभी मूल्य और ब्याज की दरें नीचे स्तर पर होते है। इस प्रकार कींस का ब्याज का सिद्धान्त मरी की दशा का समझाने में असमर्थ है। अत: वह स्थिति के अनुकूल नही है।

(द) सिद्धान्त विकसित देशों हेतू लागू होता है- विकसित देशों में जहां मुद्रा बाजार अधिक विकसित और सुसंगठित होता है लोग विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में सट्टा उद्देश्य थे अपना चुनाव स्वतंत्रता

पूर्वक कर सकते हें। दूसरी ओर पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं में, मुद्रा बाजार इतना विकसित नही होता कि लोग ऐसे चुनाव कर सकें। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में परिसम्पत्तियों के चुनाव बड़े सीमित होते है।

(ड़) कीन्स ने तरलता का एक सरलीकृत स्वरूप लिया है- कीन्स ने तरलता और अतरलता के बीच अन्तर का एक बहुत सी सरल दृष्टिकोण लिया है। वास्तव में यह सम्भव हें कि तरलता की मात्राएं विभिन्न हो और ब्याजदर की प्रक्रिया जटिल हो। उदाहरणार्थ- दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और वार्षिक ऋणों की ब्याज की दरें एक दूसरे से अलग होती है और दीर्घकालीन ब्याज दर से भी अलग होती है।

(फ) सिद्धान्त एकपक्षीय है- तरलता अधिमान सिद्धान्त ब्याज दर के निर्धारक के रूप में मुद्रा की मांग पर अधिक बल देता है। वह मुद्रा की पूर्ति के प्रभावित करने वाले तत्वों का विश्लेषण नही करता। इस प्रकार वह मुख्यत: एक एक पक्षीय सिद्धान्त है।

30.5 सारांश

1. कींस के 'रोजगार, ब्याज और मुद्रा के सामान्य सिद्धान्त ' में ब्याज के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान हें। अत: उसे ब्याज का वृहद् सिद्धान्त कहा जा सकता है।
2. कीन्स का सिद्धान्त मौद्रिक या तरलता अधिमान सिद्धान्त कहलाता है।
3. इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर मुद्रा की मांग और मुद्रा की पूर्ति द्वारा तय होती है।
4. मुद्रा की मांग समाज के सौदा, सतर्कता और सट्टा उद्देश्य पर निर्भर होती है।
5. सौदा और सतर्कता उद्देश्य आय के स्तर से सम्बन्धित होते हें जबकि सट्टा उद्देश्य ब्याज कर दर स सम्बन्धी होता हे।
6. मुद्रा की सट्टा मांग का ब्याज की दर से विपरीत दिशाई सम्बन्ध होता हें।
7. क्या के मूल्य और' ब्याज दर में विपरीत दिशाई सम्बन्ध होता है।
8. भावी ब्याज दर के समय में लोगों की प्रत्याशा का तरलता अधिमान में महत्वपूर्ण स्थान होता है।
9. भावी नीची ब्याजदर पर 'तरलता जाल' की स्थिति उत्पन्न होती है।
10. मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण देश के मौद्रिक अधिकारी द्वारा किया जाता है।
11. ब्याज की साम्य दर वह होती हें जहां मुद्रा की कुल मांग मुद्रा की कुल पूर्ति के बराबर होती है। सिद्धान्त की
12. उसकी अनिर्धारणीयता, अपर्याप्तता, सीमित क्षेत्र, तथ्यों से असम्बद्ध और एकपक्षीय होने के कारण आलोचना की जाती है।

30.6 शब्दावली

तरलता अधिमान- तरलता अधिमान का अर्थ हें- मुद्रा की उसके सर्वाधिक तरल रूप (नकद) में मांग।

सट्टा मनोवृत्ति- बन्धों एवं प्रतिभूतियों में विनियोग कर ब्याज आय कमाने की इच्छा।

बन्ध प्रतिभूतियां- सरकार, वित्तीय संस्थाओं, सार्वजनिक या निजी कम्पनियों द्वारा निर्गमित वित्तीय परिसम्पत्तियां जिनकी एक निश्चित अंकित मूल्य, ब्याजदर और समय की निर्धारित अवधि होती है और जो जन-समुदाय के किसी भी सदस्य द्वारा धारण की जाती है।

30.7 उपयोगी पुस्तकें

1. R.D Gupta : Keynes and Post Keynesian Economics: Kalyani Publishers, New Delhi, 1983.
2. W. Stonier and D.C Hague\ue: A Text Book of Economic Theory :ELBS, London
3. T.N. Hajela : Text Book of Monetary Economics, Shiv Lal and Company, Agra.

30.8 अभ्यासों के उत्तर

1. तरलता अधिमान का अर्थ है लोगों द्वारा मुद्रा को उसके सर्वाधिक तरल रूप यानी नकद में रखने की इच्छा। तरलता अधिमान लोगों की मुद्रा की मांग को दर्शाता है।
2. लोगों की दिन-प्रतिदिन के सौदों के लिये मुद्रा रखने की इच्छा मुद्रा की सौदा मांग कहलाती है। इस प्रकार मांगी जाने वाली मुद्रा की सौदा मांग भी बढ़ती है और यदि आय का स्तर घटता है तो लोगों की सौदा मांग भी घटती है।
3. मुद्रा धारण के सट्टा उद्देश्य का ब्याज दर से विपरीत सम्बन्ध होता है। जब ब्याज की दर उंची होती है तो मुद्रा रखने का सट्टा उद्देश्य कम होता है और जब ब्याज दर नीची होती है तो सट्टा मांग ऊँची होती हैं।
4. बन्ध के मूल्य और ब्याज की दर में आपस में उल्टा सम्बन्ध है। यदि ब्याज दर बढ़ती है तो बन्ध से प्राप्त होने वाली वार्षिक आय का मूल्य स्थिर रखने के लिये बन्ध का मूल्य घटना चाहिए।
5. जब ब्याज की दर काफी निचले स्तर पर गिर जाती है तो लोग लोचते है कि वह सामान्य से नीचे है और मुद्रा की सट्टा मांग असीमित रूप से बढ़ जाती है। इस स्थिति को 'तरलता जाल ' कहते है। तरलता जाल को समझाने वाले प्रमुख तत्व है-
6. निचली ब्याज दर पर पूंजी के नुकसान का बढ़ता हुआ जोखिम।
7. बन्धों व प्रतिभूतियों को तरल में परिवर्तित करने के हस्तान्तरण व्यय की, अपर्याप्त क्षतिपूर्ति।
8. भविष्य में ब्याज दर बढ़ने की बन्धधारकों की प्रत्याशा।

इकाई 31

मजदूरी सिद्धान्त

Wages Theory

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य

31.1 प्रस्तावना

31.2 मजदूरी निर्धारण के सिद्धान्त : परम्परागत अर्थशास्त्रीय विचारधाराऐं

31.2.1 मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धान्त (Subsistence Theory of Wages)

31.2.2 मजदूरी कोष सिद्धान्त (Wage Fund Theory).

31.2.3 मजदूरी का अविशिष्ट भुगतान सिद्धान्त (Residual claimant Theory)

31.3 मजदूरी निर्धारण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त।

31.3.1 सिद्धान्त की समीक्षा

31.4 मजदूरी निर्धारण की आधुनिक व्याख्या :

31.4.1 श्रम की मांग धारणा।

31.4.2 श्रम की पूर्ति धारणा तथा पीछे झुकता श्रम पूर्ति वक्र।

31.5 पूर्ण प्रतियोगिता दशाओं में मजदूरी नि र्धारण

31.6 क्रय - एकाधिकार (Monopsony) अवस्था में मजदूरी निर्धारण।

31.6.1 क्रय एकाधिकार में श्रम का शोषण

31.6.2 श्रम तथा वस्तु बाजार में अपूर्णताओं की स्थिति में श्रम शोषण

31.6.3 प्रतियोगी श्रम तथा वस्तु बाजार

31.6.4 अपूर्ण वस्तु बाजार

31.6.5 श्रम का दोहरा शोषण

31.6.6 दोनों बाजार अपूर्ण होने पर

31.6.7 पीटर रॉबिन्सन धारणा

31.6.8 चैम्बरसिन के विचार

31.7 श्रम संघ, सामूहिक सौदेबाजी तथा मजदूरी निर्धारण

31.7.1 द्विपक्षीय एकाधिकार

31.8 अभ्यास के प्रश्न

31.9 उपयोगी पुस्तकें

नोट : पाठक इस इकाई के साथ साथ एक बार दुबारा इकाई 25 (साधन कीमत निर्धारण: सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त-पूर्ण, प्रतियोगिता के अन्तर्गत) और 26 (साधन कीमत निर्धारण-सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त-अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत) अवश्य पढ़ें।

31.0 उद्देश्य :

इस अध्याय के पूर्व यह तथा स्पष्ट किया जा चुका है कि श्रम उत्पादन का सक्रिय साधन है। इस अर्थ में यह उत्पादन के अन्य साधनों भूमि, पूँजी आदि से अपनी अलग पहचान रखता है। वस्तु कीमत निर्धारण सिद्धान्त को मजदूरी निर्धारण के सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस इकाई के अध्ययन से पाठकों को यह स्पष्ट हो सकेगा कि संस्थागत अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) ने श्रम की प्रवृति को ठीक से नही समझा तथा इसे एक (Commodity) मान लिया। इसी आधार पर उन विचारकों ने मजदूरी निर्धारण सम्बन्धी अपने विचारों का प्रतिपादन किया जो तर्क तथा आर्थिक व सामाजिक न्याय की कसौटियों पर खरे साबित नहीं हुऐ। श्रमिक एक इन्सान है। यदि उसका शोषण किया जा सकता है तो वह संगठित होकर सौदेबाजी करके न्यायसंगत मजदूरी भी प्राप्त करने को सक्षम है। श्रम की ये क्षमताऐं उसे उत्पादन के अन्य साधनों से विलग करती है। इन्हीं विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में मजदूरी निर्धारण सिद्धान्तों की व्याख्या करना इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है।

31.1 प्रस्तावना

सामान्य अर्थ में किसी भी प्रकार के शारीरिक श्रम के बदले में जो भुगतान दिया जाता है, उसे मजदूरी कहा जाता है। अर्थशास्त्र में शारीरिक तथा मानसिक कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों को श्रमिक वर्ग में रखा जाता है। इस अर्थ में अध्यापक, प्रोफेसर, डॉ. ,वकील, इन्जीनियर कारखाने का मैनेजर तथा खेत में दिहाड़ी पर काम करने वाले सभी व्यक्ति मजदूर है तथा इन सभी को प्राप्त होने वाले भुगतान मजदूरी की श्रेणी में आते है। ये विभिन्न प्रकार के भुगतान दैनिक, साप्ताहिक अथवा मासिक आधार पर किये जा सकते है। कार्य की सामाजिक पर किया गया भुगतान तथा अतिरिक्त प्रेरणा राशि (बोनस) का भुगतान भी मजदूरी वर्ग में ही आते है। इसी प्रकार अतिरिक्त कार्य के लिये किये जाने वाले भुगतान (Overtime Payments) भी मजदूरी के अंग माने जाते है।

श्रमिक अपना श्रम बेचता है स्वयं को नहीं। भूमिपति (Landlord) तथा पूँजीपति (Capitalist) की भांति वह अपने श्रम का मालिक होता है। लेकिन श्रमिक की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अपने श्रम को संग्रहित करके नही रख सकता। इस कारण हम के क्रेता (नियोक्ता) श्रमिक का शोषण करने की स्थिति में होते है लेकिन भूमिपति या पूंजीपति का इस अर्थ के शोषण नही किया जा सकता। अत: उत्पादन के अन्य साधनों की कीमतें के निर्धारण तथा श्रम की कीमत (मजदूरी) निर्धारण

को प्रभावित करने वाले तत्वों में अन्तर होता है। भूमि तथा पूंजी दोनों में स्वल्पता (Scarcity) का गुण होता है जबकि सामान्य किस्म के श्रम की बहुलता आधुनिक आर्थिक जगत की आम स्थिाइ५ है। श्रम बहुलता (Labour abundance) के करण गिरती मजदूरी दरों को रोकने हेतु राजकीय हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती है तथा न्यूनतम मजदूरी (Minimum wages) दरों के निर्धारण की समस्या का हल भी खोजना पड़ता है।

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में मजदूरी निर्धारण सिद्धान्तों को समझने की जरूरत है।

31.2 मजदूरी निर्धारण के सिद्धान्त : परम्परागत अर्थशास्त्रीय विचारधाराऐं

31.2.1 मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धान्त

निर्बाधावादी विचारकों के युग में प्रचलित मजदूरी सम्बन्धी धारणा को आदम स्मिथ तथा अन्य संस्थागत स्कूल (Classical School) के अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी की दरें उस स्तर पर निर्धारित होती है, जो श्रमिक तथा उसके परिवार के न्यूनतम जीवन स्तर (जीवन निर्वाह स्तर) के लिये पर्याप्त हो। यदि मजदूरी की दरें जीवन निर्वाह से ऊँची जाती है तो श्रमिक वर्ग विवाह तथा बड़े परिवारों की तरफ प्रेरित होता है फलत: श्रम की पूर्ति बढ़ती है तथा मजदूरी की दरें पुन: जीवन निर्वाह स्तर पर लौट आती है। इसके विपरीत जीवन निर्वाह स्तर से मजदूरी की दरें नीचे गिरने की स्थिति में विवाह तथा बड़े परिवारों की लालसा हतोत्साहित होती है, भूख से श्रमिक मरते है, श्रम' की पूर्ति में कमी होती है। जिससे मजदूरी पुन: बढ़कर 'जीवन निर्वाह स्तर" पर पहुँच जाती है।

एडम स्मिथ अपनी इस धारणा (जिसे जर्मन अर्थशास्त्री लासले (Lassalle) द्वारा मजदूरी का लोह सिद्धान्त (Iron Law or Brazen Law of Wages) कहा गया है) कि प्रति दृढ़ नही थे। वे मजदूरी की दरों में वृद्धि से श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार तथा उनकी कार्यकुशलता में सुधार के कारण आर्थिक विकास पर पड़ने वाले अनुकूल प्रभावों से परिचित थे। एक अर्थशास्त्री के रूप में स्मिथ न्यूनतम मजदूरी दरों के पक्षपाती थे। किन्तु एक नीतिपरक दार्शनिक के रूप में उन्होंने मजदूरी की वृद्धि तथा मजदू के जीवन स्तर सुधार की वकालत की। स्मिथ की इसी विचार-धारा को कतिपय अर्थशास्त्रियों ने "मजदूरी के जीवन स्तर सिद्धान्त" (Standard of Living Theory of Wages) का नाम दिया है।

31.2.2 मजदूरी कोष सिद्धान्त (Wage Fund Theory)

जे.एस. मिल इस सिद्धान्त के प्रतिपादक माने जाते है। इस धारणा के अनुसार मजदूरी दो तत्वों पर निर्भर करती है

1. श्रम की खरीद के लिये चल पूंजी कोष का खर्च किये जाने वाला अंश।
2. कार्य करने (रोजगार) को उपलब्ध श्रमिक संख्या।

चल पूँजी कोष (Wage Fund) में रोजगार के लिये उपलब्ध श्रमिकों की संख्या का भाग देकर मजदूरी की दर को शत किया जा सकता है। अत: मजदूरी की दर में तभी परिवर्तन हो सकता है। जब या

तो मजदूरी कोष में वृद्धि हो अथवा काम करने वाले श्रमिकों को संख्या में कमी हो। इन दशाओं में - श्रमिक संगठन भी मजदूरी की दरों को बढ़ाने के सफल नही हो सकते। यदि किसी एक उद्योग में मजदूरी बढ़ती है तो इसका-विपरीत असर दूसरे उद्योग की मजदूरी दरों पर मजदूरी कोष की स्थिरता के कारण पड़े बिना नही रहेगा।*

एडम स्मिथ तथा मिल द्वारा प्रतिपादन मजदूरी सिद्धान्तों की समाजवादी अर्थशास्त्रियों के हाथों तीव्र आलोचना हूई। इन्हें मजदूरों के शोषण के प्रवर्तक विचारकों के रूप में प्रस्तुत किया गया। मार्क्स इन सिद्धांतों के कटु आलोचक थे। ये सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त से प्रेरित लगते है जो स्वयं एक अव्यावहारिक सिद्धान्त साबित हो चुका है। वस्तुत: परम्परागत अर्थशास्त्री कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति को मजदूरी तथा लाभ मात्राओं के योग के बराबर मानते थे। आर्थिक विकास के लिये लाभ स्तर को ऊंचा बनाये रखने की आवश्यकता की पूर्ति तभी संभव थी जबकि मजदूरी कोष (Wage Fund) को स्थिर रखा जखा जा सके। यह तभी संभव था जबकि मजदूरी' की दरें जीवन निर्वाह स्तर पर स्थिर रखी जा सकें। आर्थिक गणनाओं के आधार पर श्रमिक वर्ग के शोषण की अव्यक्त स्वीकृति के कारण ही अर्थशास्त्र को समाजवादी विचारकों का कोपभाजक बनना पड़ा।'

31.2.3 मजदूरी का अवशिष्ट भुगतान सिद्धान्त(Residual Claimant Theory) :

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वाकर (Walker) के मतानुसार राष्ट्रीय उत्पत्ति में से लगान, ब्याज तथा लाभांशों का भुगतान करने के पश्चात् जो भाग अवशिष्ट (residual) रहता है उसे ही श्रमिकों के बीच मजदूरी के रूप में बॉटा जा सकता है। लगान तथा ब्याज राशियों का भूगतान तय किये गये अनुबन्धों (contracts) के तहत किया जाता है।, लाभांश वितरण के भी कुछ निर्धारित सिद्धान्त है। लेकिन मजदूरी भुगतान के लिये कोई विशेष नियम या सिद्धान्त नही होते।

श्रम की कुशलता बढ़ने से यदि इस अवशिष्ट अंश में वृद्धि हो तो ही मजदूरी की दरों में वृद्धि हो सकती है अन्यथा नही।

आधुनिक अर्थशास्त्री उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों को नही स्वीकारते। उत्पादन के अन्य साधनों की भांति श्रम की कीमत निर्धारण ' के लिये समान मानदण्ड तथा सिद्धान्त होने चाहिये। चूंकि उपर्युक्त सिद्धान्त श्रमिक वर्ग के प्रति भेद-भाव का दृष्टिकोण अपनाते है, पूंजीपति तथा भूमिपति वर्ग के हितों के संवर्द्धन दिखाई देते है तथा श्रमिक संगठनों की भूमिका को नकारते है। अत. इन्हें मजदूरी निर्धारण के तर्कसंगत एवं व्यावहारिक सिद्धान्तों के रूप में लोकप्रियता तथा मान्यता प्राप्त नही हो सकी।

---

* "A Plentiful subsistence increase as the bodily strength of the Labourer and the comfortable hope of bettering his conditions..... Animates him to exert that strength to the utmost.

* (Book I Ch. III Vol. 7p. 91)

* $ “Wages not only depend upon the relative amount of capital and population, but cannot, under the rule of competition, be effected by anything else.”
* 'रिकार्डो : श्रमिक की मजदूरी में लाभ में कमी हुये बिना कमी संभव नहीं है। और यदि अनाज का कृषक तथा श्रमिक के मध्य विभाजन होता है और श्रमिक को इस अनाज का अधिक अनुपात प्राप्त होता है तो स्पष्ट है कि कृषक के पास कम अनाज रहेगा।"

31.3 मजदूरी निर्धारण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

(Marginal Productivity Theory of Wages) :

19 वीं सदी के अन्त तक अर्थशास्त्रियों ने श्रम की मांग सम्बन्धी परम्परागत धारणा के विपरीत लोचना प्रारंभ किया । केवल नियोक्ताओं की इच्छा पर श्रम की मांग को निर्भर मानने की संस्थागत धारणा के स्थान पर यह सोचा जाने लगा कि श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग तथा उसमें होने वाले परिवर्तन श्रमिकों की मांग को प्रभावित करते है । मार्शल जैसे अर्थशास्त्रियों के प्रभाव में श्रम की प्रत्यक्ष मांग (direct demand) के बजाय “व्युत्पन्न मांग " (derived demand) की धारणा बलवती होती गई । मार्शल ने इस बात पर बल दिया है कि ' मजदूरी की दरें मांग कीमत या आपूर्ति कीमत से नियंत्रित नही होती बल्कि श्रम- की मांग तथा पूर्ति को निर्देशित करने वाले कारणों की संपूर्ण श्रृंखला से प्रभावित होती है । " वस्तु बाजार (Commodity market) तथा साधन बाजारों (Factor Markets) को निर्देशित करने में प्रतियोगी शक्तियों (Competitive Forces) के महत्व के साथ-साथ सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) तथा सीमान्त उत्पादकता (Marginal productivity) की तर्कसंगत धारणाओं के आर्थिक प्रभावों को अधिक समान के साथ देखा जाने लगा ।

जे बी. क्लार्क ने इस बात पर जोर दिया के उत्पादन के किसी भी साधन के प्रतिफलों (returns) को इन्सान की इच्छा से बदला नहीं जा सकता । किसी साधन के प्रतिफल इस बात पर निर्भर करते है कि वह उत्पादन -में क्या योगदान (-contribution) दे रहा है? किसी साधन की एक इकाई को बढ़ाने से कुल उत्पादन में जो परिवर्तन होता है उसे उस साधन की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति (Marginal Physical Product MPP या Marginal Product) कहा जाता है । श्रमिक भी उत्पादन का एक साधन. है । यह नियोक्ता (Employer) श्रम की एक ईकाई बढ़ाता है या कम करता है तो ऐसी श्रम इकाई (Labour unit) को सामान्य अर्थ में सीमान्त श्रम इकाई (Marginal labour unit) कहा जायेगा। इस परिवर्तन के कारण उत्पादन वृद्धि अथवा कमी होगी उसे श्रम की सीमान्त उत्पत्ति MP) कहा जायेगा।

इस प्रकार नियोक्ता या उत्पादनकर्ता किसी श्रमिक को जो भुगतान करेगा वह उसके द्वारा उत्पादन में दिये गये योगदान (Marginal Product) के बराबर होगा। प्रतियोगी बाजार दशाओं में समान कुशलता तथा योग्यता वाले प्रत्येक श्रमिक को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर मजदूरी मिलेगी। नियोक्ता द्वारा अतिरिक्त श्रमिक को तब तक काम पर लगाया जाता रहेगा। जब तक

अन्तिम/अतिरिक्त श्रमिक (Last/Marginal Labour) को दी जाने वाली मजदूरी (Marginal factor cost) लागत उसके द्वारा उत्पादन में दिये जाने वाले योगदान (सीमान्त उत्पत्ति मूल्य - (Value of marginal Product, VMP) के बराबर नही हो जाती।

प्रत्येक उद्योग/व्यवसाय में एक अवस्था ऐसी आती है जबकि उत्पादन के किसी परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पत्ति घटने लगती है। अल्पकाल में उत्पादन के अन्य स्थिर साधनों के साथ श्रम की इकाइयों से बढ़ाते रहने से व्यवसाय में उत्पत्ति ह्रास (Diminishing Returns) जई ऐसी दशाऐं उत्पन्न होने लगती है। चूंकि मजदूरी की दर सभी श्रमिकों के लिये एक समान रहती है। अत: नियोक्ता (Employer) अतिरिक्त श्रम को काम पर लगाना उस रोजगार स्तर पर बन्द कर देता है जहां एक अतिरिक्त श्रमिक की भौतिक उत्पत्ति का मूल्य (VMP) उसे दी जाने वाली मजदूरी (Marginal factor cost) के बराबर हो जाता है। अस्तु, सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के आधार पर मजदूरी भुगतान की इस अधिक तर्कसंगत धारणा को अर्थशास्त्र में मजदूरी निर्धारण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Wage Determination) के नाम से जाना जाता है। यह सिद्धान्त वस्तुत: वितरण का सिद्धान्त (Theory of Distribution) है। जब श्रमिक वर्ग के भुगतान निर्धारण के लिये प्रयुक्त किया जाता है तो इसे 'मजदूरी निर्धारण सिद्धान्त" कहा जाता है।

यह भान देने योग्य बात है कि समय के साथ उत्पादन के अन्य साधनों के प्रयोग को भी बढ़ाया जाता है। इस कारण किसी वस्तु के उत्पादन में होने वाली वृद्धि में श्रम के अलावा अन्य सहयोगी साधनों के अंशदान को नकारा नही जा सकता। अत: अकेले श्रम के योगदान की व्याख्या करने के लिए अथवा अर्थशास्त्रियों द्वारा सीमान्त भौतिक उत्पत्ति (MPP) के बजाय 'श्रम की सीमान्त शुद्ध उत्पत्ति (Marginal Net Product of Labour) धारणा का प्रयोग किया जाता है।

31.3.1सिद्धान्त की समीक्षा :

(1) मजदूरी निर्धारण के इस सिद्धान्त को एक पक्षीय सिद्धान्त कहा गया है। यह सिद्धान्त श्रम की मांग के कारणों तथा मजदूरी पर पड़ने वाले प्रभावों की एक तरफा व्याख्या करता है। श्रम की मांग का कारण उसकी भौतिक योगदान क्षमता है। जो मजदूरी दर को प्रभावित करती है। लेकिन यह सिद्धान्त श्रम को पूर्ति पक्ष की पूर्णतया उपेक्षा करता है जो तर्कसंगत नही है।

(2) पूर्ण प्रतियोगिता, श्रम की पूर्ण व्यावसायिक गतिशीलता, सभी श्रमिक इकाइयों की समान उत्पादन क्षमता, ब्याज तथा लगान दरों में स्थिरता तथा उत्पादन क्षमता, ब्याज तथा लगान दरों में स्थिरता तथा उत्पादित वस्तु की दी हुई कीमतें जैसी अनेक अव्यवहारिक मान्यताओं पर आधारित होना इस सिद्धान्त की एक अन्य कमजोरी है।

(3) व्यावहारिक जगत में एक ही व्यवसाय में तथा विभिन्न व्यवसायों के बीच मजदूरी दरों में बहुत अन्तर देखे जाते है। श्रमिकों की कुशलता तथा उत्पादन क्षमताओं में अन्तर पाये जाते है तथा उत्पादन के अन्य सहयोगी साधनों (Cooperating Factor of Production) की प्रयुक्त मात्राओं (Used

Quantities) में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इन बदलती परिस्थियों में श्रमिक के सीमान्त भौतिक योगदान (Contribution) का मूल्यांकन कर सकना अत्यधिक कठिन

---

* 'This doctrine has been put forward as a theory as a theory of wages. But there is no valid ground for such pretention.. Demand and supply exert equally important influences on wages; neither has a claim to predominance…(however) the doctrine throws into clear light one of the causes that governs wages.' Principles p. 758-38.

काम है। इन तथ्यों की पृष्ठ भूमि में इस सिद्धान्त की समीक्षा मार्शल के निम्न शब्दों में करना अधिक युक्ति संगत लगता है: 'इस सिद्धान्त को मजदूरी सिद्धान्त के रूप में आगे लाया गया है, लेकिन इसके लिये युक्तिसंगत आधार नहीं है। मजदूरी दरों पर मांग तथा पूर्ति की शक्तियां एक समान प्रभात डालती है कोई अधिक प्रभावी होने का दावा नहीं कर सकती लेकिन फिर भी यह सिद्धान्त मजदूरी दरों को प्रभावित करने वाले कारणों में से एक कारण पर अच्छा प्रकाश डालता है।"

31.4 मजदूरी निर्धारण के आधुनिक व्याख्या:

प्रो. मार्शल ने इस बात पर बल दिया कि उत्पादन के किसी अन्य साधन की भांति मजदूरी दर निर्धारण में श्रम की मांग तथा पूर्ति शक्तियों की समान भूमिका रहती है। अत: वस्तु तथा साधन बाजा से में प्रतियोगी दशाऐं होने पर तथा श्रम संघों को अनुपस्थित मानते हुए मजदूरी निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिए श्रम की मांग तथा पूर्ति दशाओं की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

31.4.1 श्रम की मांग धारणा :

श्रम की मांग उद्यमी की किसी प्रत्यक्ष आवश्यकता की पूर्ति के लिये नहीं की जाती। श्रमिकों की सहायता से ऐसी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन किया जा सकता है जो उपभोक्ताओं द्वारा मांगी जाती है। अत: श्रम की मांग वस्तुत: अप्रत्यक्ष मांग (Indirect demand) या व्युत्पन्न मांग (derived demand) है। बाजार में उपभोक्ताओं द्वारा जिन वस्तुओं की अधिक मांग की जाती है। इन वस्तुओं के उत्पादन में सहायता देने वाले श्रम की मांग ऊंची तथा अधिक होगी।

श्रम की कुल मांग तथा उसमें आने वाले परिवर्तनों में "श्रम की मांग लोच" (Elasticity of demand for labour) पर भी ध्यान देना आवश्यक है। सामान्यतया किसी विशिष्ट प्रकार के श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु की बाजार मांग लोचदार होने पर श्रम की मांग भी लोचदार होगी। लेकिन यदि उद्यमी की कुल उत्पादन लागत में मजदूरी की राशि एक छोटा सा अंश (Small proportion)हो तो ऐसे व्यवसायी के लिये श्रम: की मांग बेलोचदार रहेगी। इसके अलावा निम्न तत्व भी श्रम की मांग को प्रभावित करते है:

1. उत्पादन के अन्य सहयोगी साधनों की कीमतें।
2. हम तथा पूँजी के बीच प्रतिस्थापन संभावनाऐं।
3. उत्पादन की तकनीकी दशाऐं-मशीन तथा श्रम की आनुपातिक अनुपूरकात (Complementarity)
4. उत्पादन कार्यो के लिये उपलब्ध पूंजीगत साधनों की मात्रा।

ℓ इस खण्ड तथा आगे के अध्ययन को ठीक से समझने के लिये पाठकों को तटस्थता वक्र रेखा विश्लेषण को ठीक से समझ लेना चाहिये।

इन तत्वों द्वारा श्रम की कुल मांग को प्रभावित किया जाता है। मजदूरी की दरों में तथा श्रम की मांग में विपरीत सम्बन्ध होता है। कम मजदूरी पर श्रम की अधिक मांग तथा ऊंची मजदूरी होने पर श्रम की मांग घटती है। मजदूरी दर में परिवर्तन के कारण श्रम की मांग में कितनी मात्रा में परिवर्तन होगा। यह तथ्य श्रम की मांग लोच (Elasticity of demand for labour) पर निर्भर करेगा। अल्पकाल में आमतौर पर श्रम की मांग बेलोचदार होती है किन्तु दीर्घकाल में ऊँची मजदूरी दरें जारी रहने पर नियोक्ता प्रतिस्थापक साधनों की खोज करने को विवश होते है; चाहे फिर श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु की उपभोक्ता मांग कितनी ही बेलोचदार क्यों न हो।

उद्यमी द्वारा श्रम की मांग उसकी उत्पादकता के कारण की जाती है। श्रम को एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से उद्यमी की कुल आय (Total Revenue) में जो वृद्धि होती है उसे हम की 'सीमान्त आगम उत्पत्ति (Marginal Revenue Productivity- MRP) कहा जाता है। जब तक यह सी. आ. उत्पत्ति प्रचलित मजदूरी दर से ऊँची रहती है, नियोक्ता द्वारा अतिरिक्त श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है किन्तु श्रमिकों की संख्या बढ़ने के साथ एक बिन्दु के बाद व्यवसाय में उत्पत्ति ह्रास (Diminishing Returns) की अवस्था उत्पन्न होने लगती है।

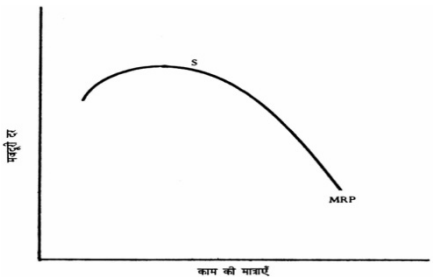

चित्र 31.1

जिससे श्रम की सी.आ. उत्पत्ति वक्र ऊपर बॉये से नीचे की तरफ गिरने लगता है तथा इसका आकार अंग्रेजी वर्णमाला के उल्टे यू (U) जैसा बन जाता है । रेखाचित्र 31.1 में दिखाये गये सी.आ. उत्पत्ति वक्र (MRP) के S बिन्दु के बाद का नीचे की तरफ गिरता हुआ हिस्सा ही किसी फर्म के लिये श्रम का मांग वक्र (Firm's demand curve for labour) माना जाता है। एक अन्य ध्यान देने योग्य

बात यह है कि प्रतियोगी बाजार दशाओं में फर्म द्वारा उत्पादित तथा बेची जाने वाली वस्तु की प्रत्येक इकाई की कीमत एक ही रहने के कारण सीमान्त उत्पत्ति मूल्य (VMP) तथा सीमांत आगम उत्पत्ति (MRP) वक्र एक ही होता है । चूंकि किसी एक फर्म को बाजार में प्रचलित मजदूरी दर को स्वीकार करना होता है । अत: उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी दर पर श्रमिकों को कितनी संख्या में काम पर लगाया जायेगा, यह फैसला श्रम के सी.आ. उत्पत्ति वक्र से ही लिया जायेगा ।

यूनिट के इस खण्ड का अध्ययन करने के पूर्व उपभोक्ता विश्लेषण में प्रयुक्त तटस्थता वक्रों की सहायता से आप तथा प्रतिस्थापन प्रभाव विश्लेषण को स्पष्टत: समझ लेना पाठकों के लिये उपयोगी रहेगा।

31.4.2 श्रम की पूर्ति धारणा तथा पीछे झु कती श्रम पूर्ति वक्र

श्रम की पूर्ति एक व्यापक विचार हें। इसमें त्रि-स्तरीय पूर्ति धारणाएं शामिल है:

(1) फर्म के लिये श्रम की पूर्ति
(2) उद्योग के लिऐ श्रम की पूर्ति तथा
(3) सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिये श्रम की पूर्ति। ये तीन बातें श्रम की मांग के संदर्भ में भी लागू होती है।

उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी दरों पर कोई एक फर्म जितने चाहे उतने श्रमिकों को काम पर लगा सकती है। अत: उसके लिये हम का पूर्ति वक्र पूर्णतया लोचदार (Perfectly elastic) होता है। इसके विपरीत उद्योग को श्रम की पूर्ति बढ़ाने के लिये थोड़ी ऊँची मजदूरी देकर अन्य उद्योगों से श्रमिकों को आकर्षित करना पड़ेगा या फिर अपने उद्योग में लगा श्रमिकों को अतिरिक्त कार्य (Overtime) करने के लिये प्रेरित करना होगा। दोनों ही स्थितियों में मजदूरी दर के बीच सीधा सम्बन्ध (direct-relationship) देखने को मिलता है।

अत: ऊंची मजदूरी दर पर अधिक श्रम की पूर्ति तथा कम मजदूरी दर पर श्रम की पूर्ति में गिरावट की स्थिति बनती है जिसे चित्र 31.2 द्वारा दर्शाया जा सकता है।

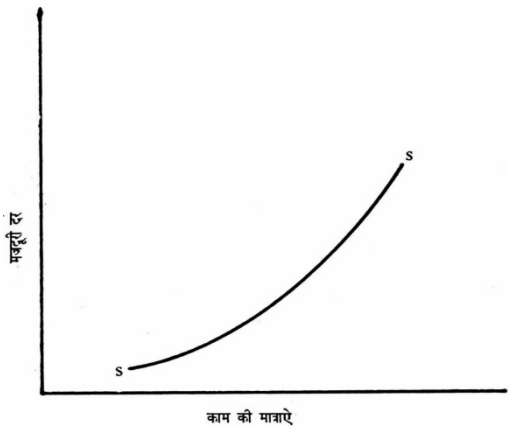

चित्र 31.2

सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये श्रम की पूर्ति, जनसंख्या वृद्धि दर, काम के घण्टे, बच्चों तथा महिलाओं की श्रम में भागीदारिता अनुपात, शिक्षा तथा प्रशिक्षण अवधियों, आब्रजन कानून (Immigration laws) जैसे अनेक कारणों पर निर्भर करती है। वर्तमान संदर्भ में श्रम की पूर्ति से हमारा अभिप्राय: उद्योग तथा फर्म के लिये श्रम की पूर्ति से है।

मजदूरी दरें, श्रम आय तथा श्रम पूर्ति वक्र का आकार

एक सामान्य श्रमिक को अपने-जीवन निर्वाह के लिये काम करना ही पड़ता है। यदि उसे न्यूनतम मजदूरी मिल जाये तो वह खाली बैठे रहना कभी पसंद नही करेगा। क्योंकि श्रम को संग्रहित करके रखना असंभव है। जैसे-जैसे मजदूरी दरों में वृद्धि होती हें। आमतौर पर अधिक श्रमिक काम पर आने को उत्सुक होगें तथा पहले से ही काम में लगे श्रमिक कुछ अतिरिक्त घण्टे (extra hours) काम करना चाहेंगे। इस प्रकार मजदूरी दरों में वृद्धि के साथ श्रम पूर्ति में बढ़ोतरी होना सामान्य आर्थिक प्रवृत्ति का परिचायक है। किन्तु यदि प्रति घण्टा मजदूरी की दरें इतनी ऊँची हो जायें कि इससे श्रमिक की सभी जरूरतें पूरी हो जाती है तो फिर वह बढती मजदूरी दरों के साथ काम के बजाय विश्राम को वरियता (Prefers leisure to work) देने लगता है।

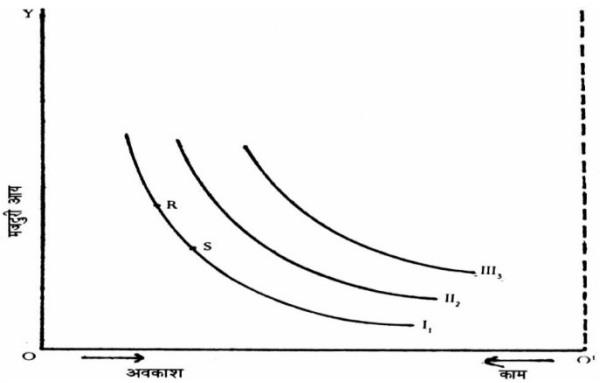

चित्र 31.3

रेखा चित्र 31.3 में अधिमान वक्रों (Indifference curves) की सहायता से श्रमिक की आय विश्राम-श्रम (Income leisure-labour) वरियताओं को दर्शाया गया हैं।

a) चित्र 31.3 में r बिन्दु ऊँची आमदनी तथा कम अवकाश (प्रतिसप्ताह) को इंगित करता है तथा S बिन्दु निम्न आमदनी (Lower income and larger leisure) व अधिक विश्राम को दर्शाता है। यदि श्रमिक बिन्दु का चयन करता है। तो स्पष्टत: वह अधिक अवकाश के लिये कुछ आमदनी का त्याग करने को तत्पर दिखाई देता है।

b) चित्र 31. 3 के O^1 मूल बिन्दु से विचार करने पर अधिक काम तथा ऊंची आमदनी के विभिन्न संयोगों को समझाया जा सकता है। यदि श्रमिक तटस्थता वक्र I_1 के S बिन्दु के बजाय R बिन्दु

को पसंद करता है तो इसका अर्थ यह होगा कि वह ऊंची आमदनी के लिये अधिक काम करने को तैयार हें तथा आराम को त्यागना चाहता हें।

रेखा चित्र 31.3 में दिये गये I_2 तथा I_3 तटस्थता वक्र. श्रमिक की आय-विश्राम / कार्य Income-leisure/ works) के ऊंचे स्तरों को दर्शाते हें। श्रमिक की आय केवल काम के घण्टों पर ही निर्भर नही करती। प्रति घण्टा मजदूरी दरें भी उसकी आमदनी को प्रभावित करती हैं। सामान्यतया श्रमिक प्रति सप्ताह 48 घण्टे कार्य कर सकता हें। ऐसी स्थिति में श्रमिक की साप्ताहिक आय प्रति घण्टा मजदूरी से प्रभावित होती है। जिसे चित्र 31.4 द्वारा दर्शाया जा सकता है।

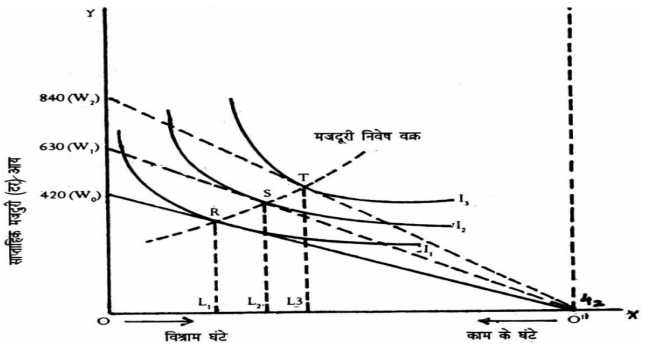

चित्र 31.4 (A)

रेखा चित्र 31.4 (A) में OO^1 अक्ष पर विश्राम/ काम के घण्टे (कुल 48) दर्शायें गये है। OY अक्ष पर मजदूरी आय स्तर, (W_0,W_1,W_2) दिखाये गये है। $W_0O^1W^1O^1$ तथा W_2O^1 रेखाओं का ढाल (SIope) मजदूरी दरों को दिखाते है।

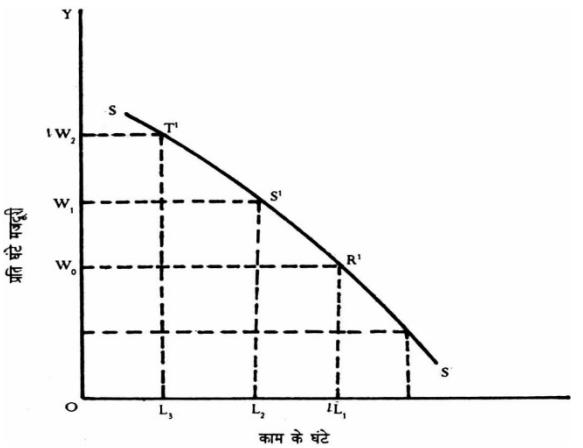

चित्र 31.4 (B)

(i) मजदूरी आय रेखाओं (Woo^1,W_{10} W_2O^1) पर श्रमिकों के आय अवकाश/काम वरियता वक्री (Wage Income-leisure/work) के स्पर्श बिन्दुओं (Tangency points) R,S,T मिलाकर जो वक्र प्राप्त किया गया हें उसे मजदूरी निवेद वक्र (Wage offer curve) कहा जाता है। यह

वक्र श्रमिकों की मजदूरी आय स्तरों (मजदूरी दरों) तथा उनकी तरफ से उपलब्ध कराये जाने वाले काम के घण्टों (hours offered for work) के बीच के सम्बन्ध को समझाता है।

मजदूरी दर 10 रुपये प्रति घण्टा होने पर श्रमिकों को प्रति सप्ताह 420 रु. की आमदनी होती है। मजदूरी आय तथा मजदूरी दर के इस न्यूनतम स्तर पर श्रमिक O^1L_1 घण्टे काम करना चाहते है तथा केवल OL_1 घण्टे विश्राम करना पसंद करता हें। यदि O^1L_1 कार्य घण्टे 42 माने तो प्रचलित मजदूरी दर पर श्रमिक 420 /- रु. की साप्ताहिक मजदूरी आय से संतुष्ट प्रतीत होते हें तथा वे 6 घण्टे के विश्राम के बदले 60 रु0 की आमदनी को त्यागने को उद्यत हो जाते है। ठीक इसी प्रकार मजदूरी दर बढ़कर 15 रू. प्रति घण्टा हो जाने पर O^1L_2 (40) घण्टे प्रति सप्ताह कार्य करने 1600 रु0 की आय प्राप्त करने तथा 20 रु. प्रति घण्टा मजदूरी दर होने पर O^1L_3 (37घण्टे) तक कार्य करने को (740 रु. की आय) आगे आते है।

(3) इस विश्लेषण से स्पष्ट होता हें कि प्रति घण्टा मजदूरी दरों में वृद्धि के साथ-श्रमिक अधिक काम के बजाय अधिक विश्राम को प्रतिस्थापित करने की प्रवृत्ति रखता हें। श्रमिक की इस मनोवृत्ति के 'कारण श्रम पूर्ति वक्र सामान्य आकार (Normal Shape) का नही रहता तथा यह पीछे की ओर बांयी तरफ झुकने लगता है। रेखाचित्र 31.4 (B) में दिखाया गया हम का पूर्ति वक्र पीछे की ओर मुड़ने (Backward sloping) की प्रवृत्ति के दर्शाता है। चित्र 31.4 (A) में प्रति घण्टा मजदूरी दरों में वृद्धि के कारण काम के घण्टों मे कमी की जो प्रवृति दिखाई दे रही है उसे ही इस खण्ड में (31.4 B) में अलग से दिखाया गया है।

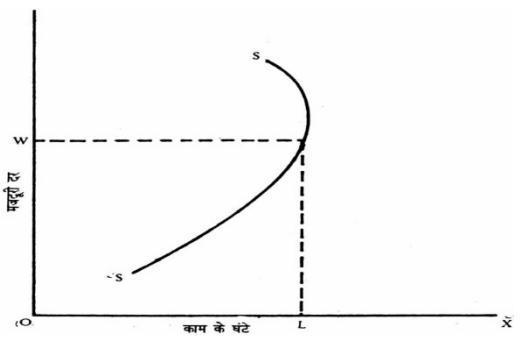

चित्र 31.5

किसी उद्योग में काम करने वाले श्रमिक बदलती मजदूरी दरों पर कितने घण्टे काम करना पसन्द करेगें यह निर्णय उनकी आय की मांग लोच (Elasticity of demand for Income) पर निर्भर करेगा जो स्वयं श्रमिकों के जीवन स्तर सम्बन्धी दृष्टिकोण (Attitude towards standard of living) तथा आम सामाजिक प्रगति के वातावरण (Social environment for economic advancement) पर निर्भर करती हैं।

अत्यधिक निम्नस्तर पर मजदूरी दर होने पर मजदूरी में प्रत्येक वृद्धि के साथ हम की पूर्ति स्तर (चित्र 31.5) तक बढ़ती जाती है। OW मजदूरी पर श्रमिक स्वयं को सुविधाजनक आर्थिक स्थिति में महसूस करते है। इस स्तर के पश्चात् मजदूरी दरें बढ़ने पर वे धीर-धीरे हम के घण्टों में कमी करना तथा

विश्राम घण्टों में वृद्धि करना चाहेंगे जिससे श्रम का पूर्ति- वक्र पीछे की तरफ झुकता हुआ (Backward sloping supply curve) दिखाई देने लगता है।

31.5 पूर्ण प्रतियोगिता दशाओं मे मजदूरी निर्धारण :

प्रतियोगी दशाओं में मजदूरी दर का निर्धारण निम्न दो दृष्टियों से देखा जाना चाहिये

a) उद्योग मे मजदूरी निर्धारण
b) उद्योग की किसी एक फर्म द्वारा मजदूरी निर्धारण।

उद्योग विशेष में मजदूरी दर का निर्धारण श्रम के मांग तथा पूर्ति वक्रों के सहयोग से समझाया जा सकता है। श्रम के मांग तथा पूर्ति वक्र जिस बिन्दु पर आपस में एक -दूसरे को काटते है वह बिन्दु साम्य (Equilibrium Point) अवस्था को इंगित करता है तथा यह संतुलन स्तर निर्धारित मजदूरी साम्य मजदूरी कहलाती है।

उद्योग में श्रम मांग तथा पूर्ति दशाओं से निर्धारित साम्य मजदूरी दर (Equilibrium wage Rate) किसी एक फर्म के लिये दी हुई मजदूरी दर (Given Wage Rate) होती है। उद्योग द्वारा निर्धारित इस मजदूरी दर पर एक फर्म को यह स्वतंत्रता होती हें कि वह जितने चाहे उतने श्रमिकों, को काम पर रख सके। श्रमिकों की संख्या निर्धारित करते समय फर्म उनकी सीमान्त आगम उत्पत्ति (Marginal Revenue Productivity) को अपनी हम मांग (Labour demand) का आधार बनाती है। उद्योग तथा फर्म की इस मजदूरी तथा रोजगार निर्धारण प्रक्रिया को रेखाचित्र 31.6 की सहायता से समझा जा सकता है :

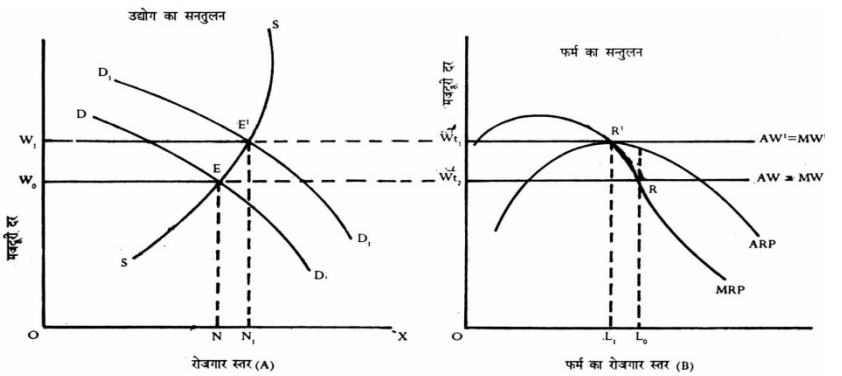

चित्र 31.6

रेखाचित्र 31.6(A) में उद्योग मजदूरी दर निर्धारण को दिखाया गया है। चित्र में E बिन्दु पर श्रम की मांग तथा पूर्ति पारस्परिक संतुलन में है। इस संतुलन बिन्दु पर उद्योग में ON मात्रा में श्रम की मांग होती है। तथा श्रमिक उतने ही श्रम की पूर्ति W_0 मजदूरी दर पर करने को तैयार है। उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग बढ़ जाने पर श्रम का मांग वक्र विवर्तित होकर D'D' हो जाता है। फलत: मजदूरी दर W_0

से बढ़कर W_1 हो जाती है। श्रम की मांग तथा पूर्ति दशाओं के मध्य नया संतुलन E^1 बिन्दु पर स्थापित हो जाता है।

चित्र 31.6(B) में उत्पादक फर्म के संतुलन की दशाओं को देखा जा सकता है। उद्योग में निर्धारित मजदूरी फर्म के लिये दी हूई दर है। चूंकि उद्योग की कुल श्रम मांग का एक छोटा सा अंश किसी एक उद्यमी के द्वारा अपने उद्योग में खपाया जाता है, अत: अकेला उद्यमी अपनी निजी श्रम मांग के आधार पर मजदूरी दर को प्रभावित नही कर सकता। इस कारण उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी किसी एक फर्म के लिये श्रम की पूर्ति रेखा एवं औसत तथा सीमांत श्रम लागत (Average and Marginal factor(labour) Cost) दोनों ही है। लेकिन वस्तु विक्रय का कार्य फर्म स्वतंत्र ढंग से करती है। अत फर्म के अपने सीमान्त आगम उत्पत्ति (MRP) तथा औसत आगम उत्पत्ति (Average Revenue Productivity) वक्र होते है। W_0 प्रारम्भिक मजदूरी पर फर्म जितने चाहे उतने श्रमिकों को काम पर रख सकती है। इसी कारण इस दर को OX अक्ष के समानान्तर एक पड़ी हुई रेखा (horizontal to ox axis) दिखाया गया है। इस मजदूरी दर पर (फर्म के लिये श्रम लागत रेखा)फर्म का सीमान्त आगत उत्पत्ति वक्र (MRP) R बिन्दु से गुजरता है। यह R बिन्दु फर्म का संतुलन स्तर दिखाता है। जहाँ OLo मात्रा में श्रमिकों को रोजगार दिया जाता है।

(A) मजदूरी की इस प्रचलित दर (W_0) पर OL_0 श्रमिकों को रोजगार देना फर्म के लिये कितना लाभदायक है; यह जानने के लिये औसत आगम उत्पत्ति वक्र (ARP)का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान संदर्भ में, उत्पादक फर्म श्रमिकों को औसत RLo मजदूरी चुकाती है जबकि श्रमिकों का औसत आगत योगदान KLo के बराबर है। चूंकि KLo>RLo (आगम लागत से ज्यादा है अत: फर्म प्रति श्रम इकाई के प्रयोग पर औसतन के बराबर अतिरिक्त लाभ अर्जित कर रही है।

(B) उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग बढ़ने पर श्रम की मांग भी बढेगी। चित्र 31. 6(A) में मांगवक्र के विवर्तित होकर D^1D^1 हो जान के कारण फर्म के लिये नई मजदूरी दर OW1 हो जाती है। अत फर्म का सीमांत मजदूरी लागत वक्र (जो औसत मजदूरी लागत वक्र भी है। Wf AW / MW से बढ़कर Wf_1-AW^1/MW^1 हो जाता है जिसे R^1 बिन्दु पर फर्म का सीमान्त आगम उत्पत्ति वक्र (MRP) काटता है। फर्म के लिये यह बदले संतुलन की अवस्था है जहां मजदूरी दर बढ़ने के कारण श्रम के प्रयोग को OLo से घटाकर OL_1 कर दिया गया है।

इस R^1 कटाव बिन्दु (Point of intersection) पर फर्म की औसत आगम उत्पत्ति (ARP) उसकी औसत मजदूरी लागत (AFC)के बराबर होने से इसे सामान्य लाभ (Normal Profit) प्राप्त हो रहा है। सामान्यतया ऐसी स्थिति दीर्घकालीन श्रम मांग तथा पूर्ति के समायोजन से बनती है। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कोई एक फर्म मजदूरी का निर्धारण नहीं करती। उसके द्वारा उद्योग में निर्धारित मजदूरी को अपने लिये दिया हुआ मानकर केवल श्रमिकों के रोजगार स्तर को निर्धारित किया जाता है। फर्म मजदूरी को श्रम के पूर्ति वक्र (Supply Curve of Labour) के रूप में स्वीकरती है। जो पूर्णतया

लोचदार वक्र (Perfectly elastic) होता है। इस वक्र के साथ फर्म के सीमान्त आगम उत्पत्ति (MRP) वक्र के कटाव बिन्दु पर फर्म अपने व्यवसाय के लिये रोजगार की मात्रा तय करती है।

अल्पकाल में कोई फर्म अधिसामान्य लाभ (Supernormal) अथवा हानि (Loss) स्थिति में रह सकती है। लाभ-हानि की परिस्थितियां श्रमिकों की व्यावसायिक गति-शीलता (Occupational mobility) को बढ़ा देती है जिससे उद्योग की विभिन्न फर्मों के बीच श्रम का विवेकपूर्ण पुन: वितरण (re-distribution)हो जाता हें तथा प्रत्येक कर्म दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ पर अपना व्यवसाय चलाने को विवश होती है। अर्थात् फर्म के संतुलन स्तर पर MRP=MW=ARP=AW की दशाऐं स्थापित हो जाती है।

31.6 क्रय-एकाधिकार अवस्था मे मजदूरी निर्धारण :

(Wage Determination Under Monopsony)

वस्तु बाजार की भांति साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता स्थिति के बजाय अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition) की दशाऐं अधिक व्यापक स्तर पर देखने को मिलती है। जब श्रमिकों की सेवाओं को खरीददार क्रेता आपस में संगठित होकर (Cartel or Association) श्रम बाजार को प्रभावित करने का प्रयास करते हो तो ऐसी अवस्था को सामान्यतया क्रय-एकाधिकार (Monopsony) श्रम बाजार अवस्था कहा जाता है। इसी प्रकार यदि कोई नियोक्ता (Employer) श्रम की कुल पूर्ति के एक बड़े अंश को खरीदने की सामर्थ्य रखता हें तो वह भी क्रय-एकाधिकारी कहा जायेगा।

श्रम बाजार में अपूर्णताएँ श्रमिक वर्ग द्वारा भी पैदा की जा सकती है। यदि श्रमिकों में व्यावसायिक तथा भौगोलिक, गतिशीलता का अभाव हो, उद्योग विशेष की आवश्यकताओं के अनुरूप- प्रशिक्षित श्रमिक न हो, अथवा वे रोजगार विकल्पों के बारे में अज्ञानी (Ignorant) लापरवाह, सुस्त या सामाजिक तथा धार्मिक रीति-रिवाजों, दृष्टिकोणों तथा परंपमराओं के कारण उदासीन हो। श्रम बाजार में इन अपूर्णताओं (Imperfections) का लाभ एकाधिकारी क्रेता (Monopsonist) उठाता है तथा मजदूरी दरों में परिवर्तन करके अपनी क्षमता के अनुसार श्रमिकों का शोषण (Exploitation for labourers) करने से नही चूकता। अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी दरके निर्धारण की प्रक्रिया को रेखाचित्र : 31.7 से समझा जा सकता है।

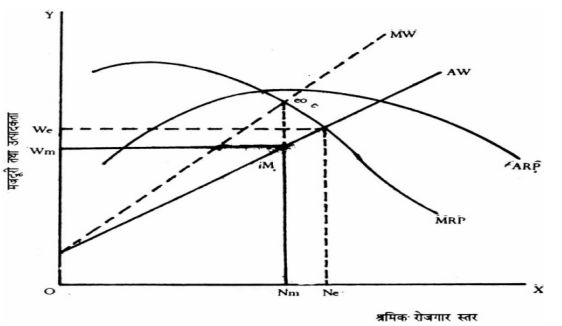

चित्र 31.7

1) रेखाचित्र 31.7 में श्रम लागत वक्रों (Labour cost curves MW, AW) का स्वरूप पूर्ण प्रतियोगिता में देखे गये वक्रों (रेखाचित्र 31.6.(B) से भिन्न है। एक क्रय एकाधिकारी प्रारंभ में कम मजदूरी देकर श्रमिकों को काम पर रखता है। अपने व्यवसाय के विस्तार के साथ जब उसकी श्रम मांग बढ़ती है तो अधिक श्रमिकों को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए अथवा पहले से कार्यरत् श्रमिकों को अतिरिक्त काम करने के लिए प्रेरित करने के लिये उसे मजदूरी दरों को बढ़ाना होता है। अन्य शब्दों में एकाधिकारी श्रम क्रेता बढ़ी हुई मजदूरी दरों पर ही ज्यादा श्रमिकों की सेवाऐं प्राप्त कर सकते है।

2) श्रम की अलग-अलग मात्राओं के लिये अलग मजदूरी दरें होने के कारण एकाधिकारी क्रेता के सीमान्त मजदूरी लागत (Marginal Wage cost) वक्रों तथा औसत मजदूरी लागत (Average Wage Cost) में अन्तर पैदा हो जाता है, जो चित्र 31.7 में ऊपर की तरफ उठते हुए AW तथा MW वक्रों के आकार से स्पष्ट हो जाता है।

3) चित्र 31.6 तथा 31.7 के तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि उद्यमियों के श्रम आगम उत्पादकता वक्रों (MRP Curves) के स्वरूप में कोई अन्तर नही होता।

4) एकाधिकारी क्रेता फर्म के संतुलन की मूल शर्त वही हो जो प्रतियोगी फर्म की होती है। अर्थात् श्रमिकों के रोजगार स्तर का निर्धारण वही होगा; जहां फर्म का सीमान्त आगम उत्पत्ति वक्र के बराबर (MRP=MW) हो। चित्र 31.7 में e_0 बिन्दु पर यह शर्त पूरी होने से उद्यमी द्वारा ON_m श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है।

31.6.1 क्रय-एकाधिकार मे श्रम का शोषण: (Monopsonist Exploitation)

श्रम की मांग पर अपने प्रभावपूर्ण नियंत्रण के कारण क्रेता मजदूरों को उनकी सीमान्त आगम उत्पादकता से कम भुगतान करने की स्थिति में होते है तथा मजदूरों का आर्थिक शोषण करते है। रेखाचित्र 31.7 में प्रत्येक अतिरिक्त श्रमिक द्वारा N_me_0 के बराबर उद्यमी की आय में योगदान दिया जा रहा है, जबकि मजदूरी भुगतान की औसत दर N_mM ($=OW_M$) के बराबर है। इससे स्पष्ट होता है कि मजदूर उद्यमी की आय वृद्धि में जो योगदान दे रहा है उसकी अपेक्षा उसे Meo के बराबर कम भुगतान किया जा रहा है। श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने श्रमिकों को किये जाने वाले इस कम मजदूरी भुगतान को क्रय एकाधिकारी शोषण (Monopsonic exploitation) की संज्ञा दी है। श्रम शोषण की यह अवस्था मुख्यतया हम बाजार में अपूर्णताओं (Imperfections-Monopsonic) तथा वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect completion in commodity market) की स्थिति में पायी जाती है।

31.6.2 श्रम तथा वस्तु बाजार मे अपूर्णताओं की स्थिति मे श्रम शोषण:

31.6.3प्रतियोगी श्रम तथा वस्तु बाजार :

1. वस्तु बाजार में प्रतियोगी दशाऐं होने पर वस्तु की कीमत तथा सीमान्त आय बराबर (P=AR=MR) होती है। इसी कारण श्रम की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (Value for marginal Product VMP) तथा फर्म की सीमान्त आगम उत्पादकता भी बराबर (VMP=MRP) रहते है।

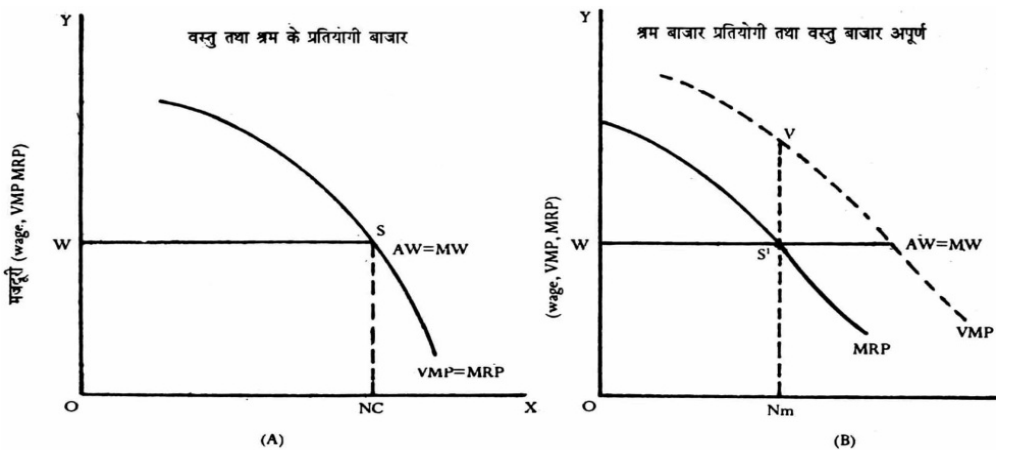

चित्र 31.8

2. इसके अलावा प्रतियोगी दशाओं में उत्पादन करने वाली फर्म को उद्योग में मांग तथा पूर्ति की शक्तियों से निर्धारित मजदूरी दर को अपने लिये यथावत स्वीकारना पड़ता है जिससे कर्म के औसत श्रम लागत (AFC) तथा सीमांत श्रम लागत (MFC) या मजदूरी वक्र में कोई अन्तर नही होता। अर्थात् AW=MW ये वक्र फर्म के लिये श्रम के पूर्ति वक्र होते हें।

चित्र 31.8 (A) में. फर्म का सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र (MRP=VMP) S बिन्दु पर सीमान्त मजदूरी लागत (MW) को काटता हें। जहां श्रमिकों की उत्पत्ति के मूल्य (VMP) फर्म की सीमान्त आगम उत्पत्ति (AFC) तथा मजदूरी दर आपस में बराबर (W=MRP=VMP=MW=AW) है। अत: श्रमिकों को उतना मिल जाता हैं जितना वे योगदान करते हें तथा उनका शोषण नही होता।

---

* The Theory of Wages. A.M Kelley New York 1966. P.102-3.

* H. Henderson" It is ... an illusion to suppose that the general level of wages can be appreciably and permanently raised by trade union action, except in so far as it increase the efficiency of workers or incidently stimulates the efficiency of employers (Supply and Demand).

31.6.4 अपूर्ण वस्तु बाजार:

यदि वस्तु बाजार अपूर्ण (Imperfect) हैं तो फर्म की सीमान्त आय (MR) तथा औसत आय अथवा वस्तु कीमत में अन्दर (AR or Price) होता हें ।सीमान्त आय (MR) कीमत (P) से कम रहने के कारण फर्म की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) श्रम के सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) से कम रहती है। चित्र 31.8 (B) में दोनों वक्रों का स्पष्ट अफर दिखाया गया है।

चित्रानुसार N_mS' छ मजदूरी दर पर श्रमिकों को भुगतान किया जा रहा हें, लेकिन उनकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य (VMP) VN_m के बराबर है। श्रमिकों को मिलने वाली मजदूरी (N_mS^1) तथा उनके सीमान्त योगदान (VMP) में S^1V के बराबर जो अन्तर हें, श्रमिकों के शोषण (Exploitation of labour) का प्रतीक हें । श्रीमती जॉन रॉबिन्सन इसे एकाधिकारात्मक शोषण (Monopolistic exploitation) कहती हें।

31.6.5 श्रम का दोहरा शोषण (Double Exploitation):

31.6.6 दोनो बाजार अपूर्ण होने पर (Imperfections in Both Markets)

दोनों बाजारों (वस्तु तथा श्रम) में अपूर्णताएं पाये जाने पर श्रम का दोहरा शोषण (Double exploitation) होता है। इस: स्थिति को रेखाचित्र 31.9की सहायता से समझाया जा सकता है।

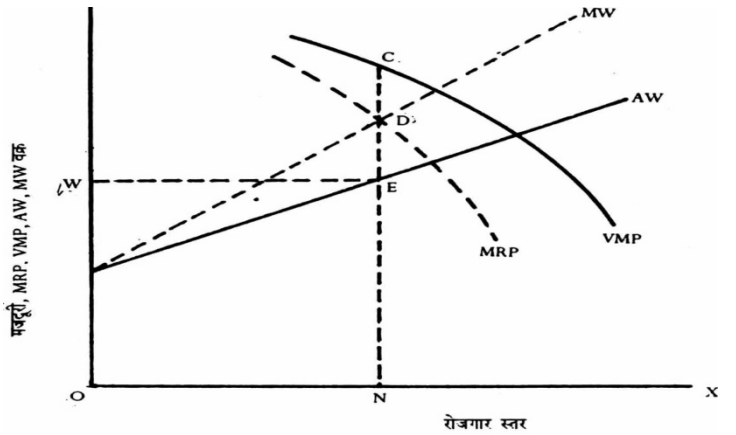

चित्र 31.9

(1) रेखाचित्र 31.9 में:

1) वस्तु बाजार की अपूर्णताओं (एकाधिकारी प्रतियोगिता) के कारण फर्म के सामने MRP तथा VMP अलग-अलग स्वरूपों में विद्यमान हें।
2) साधन बाजार की अपूर्णताओं के कारण (क्रेता-एकाधिकार) फर्म के औसत मजदूरी लागत (AW)तथा सीमान्त मजदूरी लागत (MW) वक्रों में अन्तर पेंदा हो जाता है।
3) श्रम के रोजगार संतुलन की दशाऐं रेखा चित्र में D बिन्दु पर संतुष्ट (MR=MRP) होती है। इस बिन्दु पर फर्म ON श्रमिकों को रोजगार देती हें तथा प्रत्येक श्रमिक को (OW) (=NE) मजदूरी

दी जाती हें। श्रमिक के सीमान्त योगदान (MRP-ND) की तुलना में उसे जो NE(ow) मजदूरी मिल रही है, वह ED के बराबर कम हें तथा यह क्रेता - एकाधिकारी शोषण का प्रतीक है।

4) वस्तु बाजार में अपूर्णता के कारण MRP तथा VMP वक्रों के स्वरूप में अन्तर आ जाता है।
5) दोनों बाजारों की अपूर्णताओं के कारण श्रमिकों का शोषण स्तर EC (रेखाचित्र 31.9) के बराबर है। इसमें से ED शोषण का कारण साधन बाजार की अपूर्णता हें तथा शेष DC मात्रा में शोषण के लिये वस्तु बाजार की अपूर्णताओं को जिम्मेदार ठहराया जा सकता हें।
6) यदि दोनों बाजार प्रतियोगी होते तो रेखाचित्र 31 .9 में R बिन्दु पर मजदूरी तथा रोजगार संतुलन होता MRP तथा VMP बराबर होने से तथा MW=AW भी एक ही वक्र बन जाने से इस E बिन्दु पर मजदूरी की दर WC है (जो OW से ज्यादा है) तथा रोजगार स्तर O_{NC} है जो ON से ऊँचा है । श्रमिकों को मिलने वाले भुगतान (OWC) तथा उनके सीमान्त योगदान (MRP=VMP) में समानता के कारण श्रमिकों का शोषण समाज हो जाता है।

31.6.7 पीगू-रॉबिन्सन धारणा :

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि प्रतियोगी दशाओं में मजदूरी दर तथा रोजगार का स्तर दोनों ही ऊँचे रहते है। पीगू तथा श्रीमती रॉबिन्सन ने श्रमिकों के शोषण सम्बन्धी विचार इसी परिप्रेक्ष्य में दिये है। वे दोनों प्रतियोगी दशाओं को उचित मजदूरी की दृष्टि से आदर्श दशाएं (जिनका न्यायसंगत होना जरूरी नही है) मानते है। प्रतियोगी दशाओं से विचलन (deviation from competitive conditions) के कारण ही उनकी राय, में श्रमिकों के शोषण की अवस्थाएं उत्पन्न होती है।

Rothschild* के शब्दों में प्रों. पीगू तथा उनकी समर्थक जोन रॉबिन्सन ने पूर्ण प्रतियोगिता के आदर्श को अपना प्रारंभ बिन्दु अपनाया है इस प्रणाली में श्रमिक सीमान्त भौतिक उत्पादन के मूल्य के बराबर मजदूरी प्राप्त कर लेता है। इससे प्रत्येक विचलन शोषण समझा जाता है। "

31.6.8 चैम्बरलिन के विचार :

प्रो. चेम्बरलिन ने उपर्युक्त विचारों से अपनी असहमती व्यक्त की है। इनके मतानुसार-वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता हो (या एकाधिकारात्मक दशा) तो, उत्पादन के सभी साधनों को (अकेले श्रम को नही) सीमान्त आय उत्पादन (MRP) के अनुसार भुगतान दिया जाता है, न कि सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) के आधार पर। VMP के आधार पर सभी साधनों से भुगतान करने से भुगतान की कुल राशि फर्म प्राप्त होने चली कुल आय से अधिक हो जायेगी। अत: VMP सिद्धान्त के आधार पर भुगतान करना कदापि संभव नही होता।

अस्तु श्रमिक का शोषण तभी हो सकता है जब उसे उसकी सीमान्त आय उत्पत्ति (MRP) की अपेक्षा कम भुगतान दिया जाता है इस प्रकार चेम्बरलिन की राय में चित्र 31.8 (B) की स्थिति को श्रमिक शोषण की अवस्था के रूप में स्वीकार नहीं है किया जा सकता। वे रेखा चित्र 31.9 में दर्शाये गये ED शोषण को स्वीकारते है जो दोनों बाजारों की अपूर्णताओं के कारण उत्तम होता है। चूंकि उनके मत से MRP के आधार पर ही भुगतान संभव है (VMP आधार पर नही) इसलिये वे दोहरे शोषण की

स्थिति (CD) को मान्यता नही देते है । किन्तु श्रीमती रॉबिन्सन के क्रय-एकाधिकारी शोषण (Monopsonic exploitation) की धारणा को चेम्बरलिन स्वीकार करते है।

क्रेता एकाधिकारी शोषण को दूर करने के लिये या तो श्रम संघों का दबाव अथवा सरकारी हस्तक्षेप की जरूरत रहती है। लेकिन वस्तु बाजार की एकाधिकारी दशाओं से उत्पन्न शोषण (चित्र 18.8 B) को केवल बाजार में व्याप्त अपूर्णताओं को दूर करके ही समाप्त किया जा सकता है।

31.7 श्रम संघ, सामूहिक सौदेबाजी तथा मजदूरी निर्धारण:

पूर्व के विश्लेषण में श्रमिकों को अपनी सेवाओं के असंगठित तथा कमजोर विक्रेता (Unorganised and weak sellers of services) के रूप में मान लिया गया था। मजदूरी दर निर्धारण का विशेषाधिकार उद्यमी अथवा नियोक्ताओं का ही होता है, अब यह बात नहीं रही। बीसवीं सदी के मध्य से श्रमिक वर्ग संगठित होकर नियोक्ताओं ले मजदूरों में वृद्धि करने ले विवश करते देखे गये है। अत: आज महत्वपूर्ण प्रश्न यह हें कि क्या श्रमिक संघ, सामूहिक सौदेबाजी के द्वारा रोजगार स्तर को प्रभावित किये बिना मजदूरी दरों को बढ़वाने की स्थिति में होते है?

पुरातन अर्थशास्त्रियों के साथ-साथ (स्मिथ, रिकार्डो, जेवन्स) रॉबिन्सन तथा एच. हेन्डरसन' जैसे आधुनिक विचारक भी इस बात पर बल देते है। कि श्रमिक संघ स्थायी रूप से मजदूरी दरों को प्रभावित नही कर सकते। लेकिन ये अर्थशास्त्री निम्न दो दशाओं में मजदूरी दरों के निर्धारण में श्रम-संघों की भूमिका को स्वीकारते है:

1) श्रमिकों की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति को बढ़ाकर

2) सामूहिक सौदेबाजी अथवा द्विपक्षीय एकाधिकार दशा में।

यदि किसी व्यवसाय में कार्यरत् श्रमिक इतने अधिक संगठित हो कि वे व्यवसायी को मजदूरी दर बढ़ाने के लिये विवश कर सके, तो श्रमिकों की इस सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining) के रोजगार तथा उत्पादकता प्रभावों को रेखाचित्र 31.10 से समझा जा सकता है।

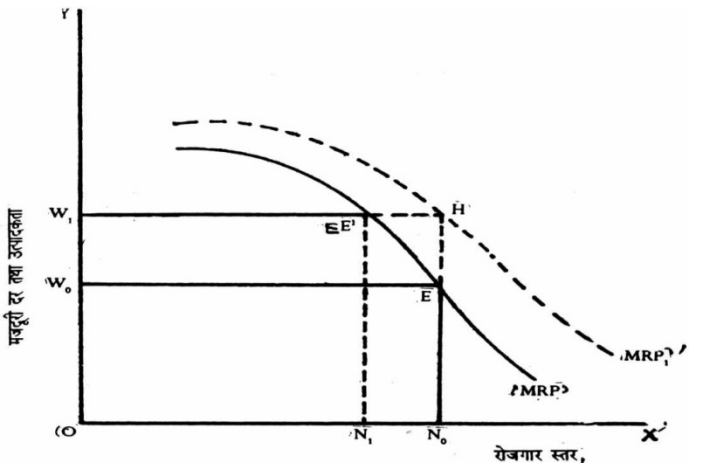

चित्र 31.10

1) रेखाचित्र 31.10 में प्रारम्भिक संतुलन दशाऐं E बिन्दु पर संतुष्ट होती है। फलत: फर्म OWo मजदूरी पर Ono श्रमिकों को रोजगार पर लगाती: है।

2) यदि श्रमिक संघ अपनी सामूहिक सौदेबाजी के द्वारा नियोक्ता को OW_1 दर से मजदूरी पुछने के लिये बाध्य कर देता है तो प्रारंभ में नया संतुलन E^1 बिन्दु पर स्थापित होगा। जिससे श्रमिकों का रोजगार स्तर घटकर ON_1 रह जायेगा।

3) लेकिन यदि मजदूरी दर में वृद्धि से श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार होता है तथा उनकी कार्यकुशलता (Work efficiency) बढ़ती है। तो श्रम की आगम उत्पादकता वक्र ऊपर तरफ विवर्तित होकर MRP^1 हो सकता है। ऐसा होने पर ऊँची मजदूरी के साथ पूर्व का रोजगार स्तर प्राप्त किया जा सकता है। तथा श्रमिक वर्ग को कोई नुकसान नही होता।

4) एक दूसरी संभावना यह हो सकती है कि ऊँची मजदूरी के आय प्रभाव (Income-effect of higher wages) के कारण श्रम की पूर्ति में स्वैच्छिक कमी (महिलाओं तथा बच्चों के कम से बाहर जाने के कारण) हो सकती है ऐसी स्थिति में पूर्ति वक्र पीछे की ओर मुड़ता हुआ होगा। तथा S से R बिन्दु पर ऊंची मजदूरी के साथ ON, रोजगार स्तर श्रमिक संधों को स्वीकार्य हो सकता है।

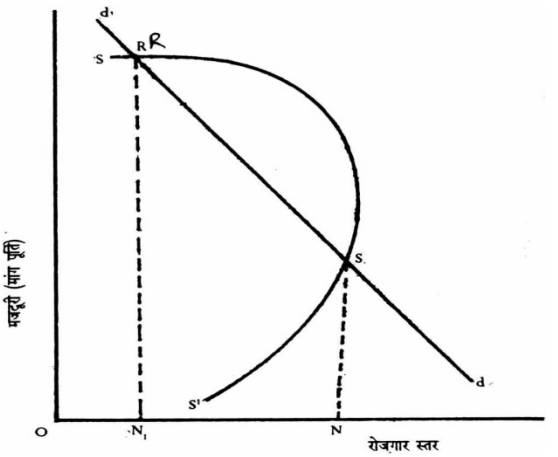

चित्र 31.11

चित्र 31.11 श्रमिकों को रोजगार में हुई कमी से कोई शिकायत नही होगी। नियोक्ता भी ऊंची मजदूरी के कारण मजदूरी लागत में हुई वृद्धि को रोजगार में आयी कमी के परिप्रेक्ष्य में समायोजित कर लेता है।

(2) वस्तु बाजार तथा श्रम बाजार में अपूर्णताएँ हो तथा श्रमिकों के शक्तिशाली संगठन हो तो नियोक्ताओं को दिये स्तर तक मजदूरी बढ़ाने के लिये बाध्य कर सकते है जिससे रोजगार स्तर में भी ON_t तक वृद्धि हो सकती है। मजदूरी तथा रोजगार के ये स्तर प्रतियोगी बाजार दशाओं के अनुरूप है

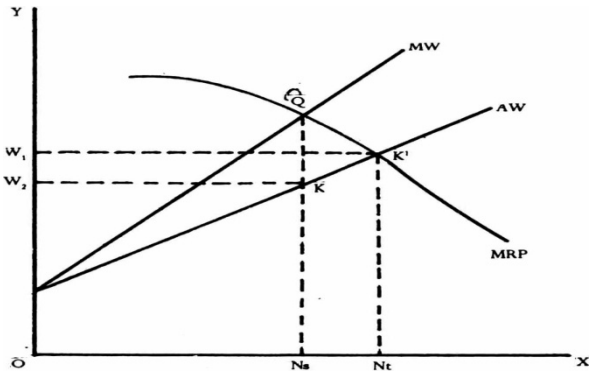

चित्र 31.12

श्रमिक संगठन चाहे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों वे बिन्दु से अधिक ऊंची मजदूरी दर बढ़ाने को बाध्य नही कर सकते। जहां उद्यमी की उत्पादन दशायें अनुकूलतम संतुलन (Optimum equilibrium conditions) में है। यदि इसके बाद श्रमसंघ का दबाव बना रहता हें तो रोजगार स्तर में गिरावट की संभावना बन जाती हें; जो श्रमिकों के हित में नही होती।

31.7.1 द्विपक्षीय एकाधिकार : (Bi-lateral Monopoly)

जब श्रम के क्रेता तथा श्रमिक संगठित होकर अपने अपने स्तर पर एकाधिकारी सा व्यवहार करने लगे तो बाजार की ऐसी अवस्था को द्विपक्षीय एकाधिकारी अवस्था कहा जाता है। बाजार की ऐसी स्थिति में मजदूरी दर का निर्धारण श्रमिकों के मजदूरी तथा रोजगार वरीयता फलनर (Preference-function) से प्रभावित होगा। यदि श्रमिक ऊंची मजदूरी को पसंद करते हो तथा इसके कारण रोजगार स्तर में गिरावट के प्रति उदासीन (indifferent) हो तो मजदूरी दर का निर्धारण निम्नानुसार होगा :

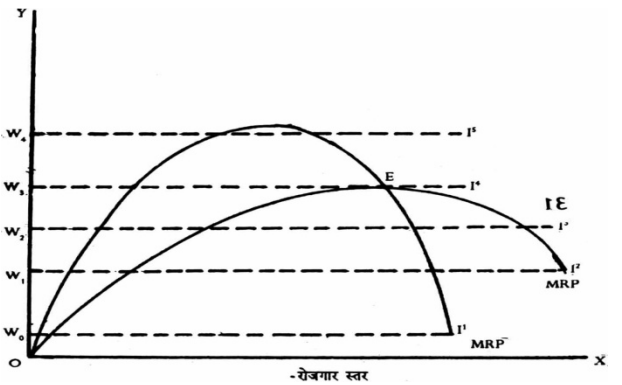

चित्र 31.13

(1) रेखा चित्र 31.13 में I^1, I^2, I^3 तथा I^4 श्रमिकों के वरियता अधिमान वक्र है। प्रो फैलनर ने अधिमान वक्रों की आकृतियाँ सीधी रेखाओं के रूप में होने की स्थिति में मजदूरी दर निर्धारण बाबत कहा है 'यदि श्रमिक संघ के पास सामूहिक सौदेबाजी की संपूर्ण शक्ति हो अर्थात् वे अपनी तरफ से ही शर्तें तय करने की स्थिति में हों .... तो सीधी रेखा के अधिमान वक्रों की अवस्था में मजदूरी दर की उस रेखा का चयन किया जायेगा जो औसत आगम उत्पत्ति (ARP) वक्र को स्पर्श करती है।" जहां मजदूरी

की दर OW_3 है। श्रम संघ इससे अधिक मजदूरी की मांग नही कर सकते। क्योंकि इस मांग से नियोक्ता को हानि उठानी पड़ेगी। ARP मजदूरी दर ऊंची होने पर (जिससे वह अपने व्यवसाय के आकार में कमी कर सकता है अथवा इसे बन्द भी कर सकता हैं।

अत: द्विपक्षीय एकाधिकार में नियोक्ता तथा श्रमिकों के हितों की दृष्टि से मजदूरी दर का निर्धारण OW_0 तथा OW_3 के बीच कही होगा। जो दोनों की सापेक्ष सौदेबाजी श्रमता (Relative bargaining Power) से प्रभावित होकर ऊपरी अथवा निचली सीमा के आस-पास भी हो सकती है। सौदेबाजी के जाल में दोनों पक्षों के उलझते रहने से वे किसी एक सर्वमान्य मजदूरी दर को स्थायी रूप से स्वीकार कर ले यह आवश्यक नही। इसी कारण यह माना जाता है कि द्विपक्षीय एकाधिकार (Bi-lateral monopoly) दशाओं में वास्तविक मजदूरी दर अनिर्धारित (Indeterminate) रहती है।

31.8 अभ्यास के प्रश्न :

1. "मांग तथा पूर्ति शक्तियां मजदूरी दर पर एक समान प्रभाव डालती हें। दोनों में से कोई विशेष प्रभाव का दावा नही कर सकती" (मार्शल) इस कथन के संदर्भ में श्रम की मांग तथा पूर्ति का अभिप्राय: समझाते हुऐ मजदूरी निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
2. 'किसी व्यक्तिगत फर्म के लिये श्रम की मांग उसकी उत्पादकता तथा फर्म की वस्तु की मौद्रिक मांग का फलन है।" (कार्टर) इस उद्धरण के परिप्रेक्षय में मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की समीक्षात्मक व्याख्या कीजिये।
3. क्रय-एकाधिकारी (Monopsonist) द्वारा मजदूरी दर का निर्धारण कैसे किया जाता हें? क्या वह मजदूरी का शोषण कर सकता है?
4. 'पूर्ण प्रतियोगिता प्रणाली में श्रमिक सीमान्त भौतिक उत्पादन के मूल्य के बराबर मजदूरी प्राप्त कर लेता है। इससे (प्रतियोगिता से) प्रत्येक विचलन शोषण समझा जाता है" रोथसचाइल्ड की इस शक्ति की पृष्ठभूमि में उन श्रम बाजार दशाओं को समझाइये) जिनमें श्रमिकों का दोहरा शोषण होता है।
5. श्रमिकों के शोषण सम्बन्धी श्रीमती रॉबिन्सन -पीगू धारण को समझाइये। प्रो. चैम्बरलिन इस धारणा से कहीं तक सहमत है?
6. यह लोचने का कोई आधार नही है कि श्रम-संघ स्थायी रूप से मजदूरी दर को ऊँचा उठा सकते है। (जेवन्स) के इस कथन के संदर्भ में सामूहिक सौदेबाजी के आधार पर मजदूरी दरों का प्रभावित करने की श्रमसंघों की क्षमता का विश्लेषण कीजिये।
7. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये
   a) पीछे की तरफ मुड़ता हुआ श्रम का पूर्ति वक्र।
   b) क्रय-एकाधिकार में श्रमिकों का शोषण।

c) श्रम का आय विश्राम/काम फलन (Income-leisure/work function).

d) द्विपक्षीय एकाधिकार में अनिर्धारित (Indeterminate) मजदूरी दर।

e) ऊंची मजदूरी दर का आय प्रभाव।

f) श्रम की मांग लोच (Elasticity of Demand for labour)

g) मजदूरी निवेद वक्र (Wage offer Curve).

31.9 उपयोगी पुस्तकें

1. R. Leftwitch-Price System & Resource Allocation.
2. Henderson & Quandt : Micro Economic Theory Chapt. 6.5.
3. बरला सी. एस: व्यष्टि अर्थशास्त्र
4. आहूजा एच. एल. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त
5. डयूवेट के.के. : कीमत सिद्धान्त
6. झिंगन एम.एल. व्यष्टि अर्थशास्त्र सिद्धान्त

इकाई 32

लाभ के सिद्धान्त
Principles of Profit

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य

32.1 लाभ का अर्थ

32.2 लाभ के प्रकार

- 32.2.1 सकल और शुद्ध लाभ
- 32.2.2 सामान्य और असामान्य लाभ
- 32.2.3 एकाधिकारात्मक लाभ
- 32.2.3 अप्रत्याशित लाभ

32.3 लाभ के सिद्धांत

- 32.3.1 परंपरावादी विचार
- 32.3.2 व परंपरावादी विचार - मार्शल
- 32.3.3 लाभ का लगान सिद्धांत
- 32.3.4 लाभ का मजदूरी सिद्धांत
- 32.3.5 लाभ का गतिशील आधिक्य का सिद्धांत
- 32.3.6 लाभ का नव प्रवर्तन का सिद्धांत
- 32.3.7 जोखिम उठाने व अनिश्चितता वहन करने का सिद्धांत
- 32.3.8 अन्य सिद्धांत

32.4 सारांश

32.5 उपयोगी पुस्तकें

32.6 बोध प्रश्नों के उत्तर : संकेत

32.7 शब्दावली

32.0 उद्देश्य

आर्थिक सिद्धांत के अरब तक के अध्ययन से आप जान चुके है कि एक उद्यमी लाभ कमाने के उद्देश्य से अपने आप को उत्पादन-प्रक्रिया से जोड़ता हें। लाभ को ही ध्यान में रखकर वह अपने उत्पादन स्तर का निर्धारण करता है और बाजार-परिस्थितियों के अनुसार अपने उत्पाद का विक्रय करता है।

क्या अपने उत्पादन के विक्रय से प्राप्त होने वाली सारी विक्रय-आय वह स्वयं रख लेता है? नही, इस राशि में से उसे :

उन सभी उत्पादन साधनों को भुगतान करना होता हें, जिन्होंने किसी न किसी रूप में उत्पादन में योगदान किया हें जैसे-श्रमिक को मजदूरी व वेतन, भूमि के लिए लगान तथा पूंजी के लिए ब्याज 1 इकाई संख्या 26 से 31 में आप देख चुके है कि इन साधनों को प्राप्त होने वाले भाग का निर्धारण किस प्रकार होता हें। साथ ही, उसे उत्पादन प्रक्रिया के दौरान काम में आने वाले सभी कच्चे माल व अन्य सामग्री का भी भुगतान करना पड़ता हें।

ऐसे सभी भुगतानों के बाद उद्यमी के पास जो अधिशेष बचा रहता है, उसे सामान्यत: उद्यमी का अंश यानि लाभ समझा जाता है। इस इकाई में, हम लाभ से जुड़े हुए पहलुओं का अध्ययन करेंगे। संक्षेप में, हम समझने का मल करेंगे कि :

अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से, लाभ किसे माना जाता है, तथा उद्यमी को मिलने वाले लाभ किन कारकों से प्रभावित होता है?

32.1 लाभ का अर्थ

जैसा कि हमने कहा, एक उद्यमी का लाभ उसकी प्राप्तियों ओर कुल व्ययों के अंतर पर निर्भर करता है। अगर यह अंतर धनात्मक है तो उसे लाभ होता है और ऋणात्मक हो तो हानि। धनात्मक अंतर जितना ज्यादा होगा, उद्यमी का लाभ उतना ही ज्यादा होगा।

लेकिन यदि अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से देखा जाए तो लाभ का अर्थ मात्र कुल प्राप्तियों व कुल व्यय का अंतर नही है। वास्तव में यह उद्यमी को उसकी उद्यमीय क्षमता के लिए मिलने वाला प्रतिफल हें। अपनी इसी क्षमता का उपयोग करके उद्यमी न सिर्फ साधन आवंटन से जुड़े निर्णय लेता है बल्कि वह उत्पादन व प्रबंध व्यवस्था में नव-प्रवर्तन भी लागू करता है। ऐसा करते समय वह सभी प्रकार की अनिश्चितताओं व जोखिमों को ध्यान में रखता है। वह देखता है कि भविष्य में बाजार मांग में किस प्रकार की होगी? प्रतिस्पर्धा फर्में बाजार में किस प्रकार व्यवहार करेगी, विक्रय-प्रसार में वह अपनी प्रतिस्पर्धा फर्मों से कैसे निपटेगा आदि। उसे मिलने वाला लाभ इस बात पर निर्भर करेगा कि वह इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर किस हद तक सही निर्णय लेता है? उसके द्वारा लिए गए सही व सटीक निर्णय उसके अर्जित लाभ की मात्रा बढ़ाते है, जबकि गलत निर्णय उसे हानि पहुंचा सकते है। उपर्युक्त विवरण से यह तो स्पष्ट हो ही जाता हें कि उद्यमी को मिलने वाला लाभ दिन-प्रतिदिन के प्रबंधकीय निर्णय के लिए नही मिलता। उसके लिए तो "प्रबन्ध की मजदूरी " ही काफी है।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उद्यमी व्यवहार के लिए मिलने वाला प्रतिफल, यानि लाभ की प्रकृति उत्पादन के अन्य साधनों को मिलने वाले प्रतिफल की प्रकृति से अलग है। वहां सभी उत्पादन के साधनों को मिलने वाला प्रतिफल पहले से ही तय होता है, वहां उद्यम को मिलने वाला, प्रतिफल अनिश्चित होता है और उद्यमी व्यवहार की सफलता या विफलता पर निर्भर करता है। ऐसी स्थिति में यह आश्चर्यजनक नही है कि लाभ ऐसी कुछ अवधारणाओं में से एक है, जिस पर अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग पहलुओं पर जोर दिया हें और उसी अनुरूप लाभ के अर्थ को स्पष्ट किया है। लाभ के कुछ प्रमुख अर्थ इस प्रकार हें :-

1. लाभ सभी उत्पादन के साधनों को उनका पारिश्रमिक चुकाने के बाद बचने वाली अवशिष्ट आय है।
2. लाभ पूंजी निवेश पर प्राप्त होने वाली प्रतिशत प्रत्याय है।
3. लाभ उद्यमी को उद्यमीय क्षमता के लिए मिलने वाला प्रतिफल है।
4. लाभ उद्यमी द्वारा जोखिम उठाने व अनिश्चितता वहन करने के बदले में मिलने वाला प्रतिफल है।
5. लाभ उद्यमी को नयी खोजों को व्यवहार में लाने के लिए मिलने वाला पुरस्कार हें।
6. लाभ योग्यता का लगान हें।

इन सबसे अलग समाजवादी विचारकों, जिनमें कार्ल मार्क्स प्रमुख है इनका मानना हैं कि उत्पादन प्रक्रिया में श्रम की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अत: श्रम को भुगतान के बाद जो कुछ बच रहता हें, यानि सारी गैर-श्रम आय, वह लाभ है। उनके अनुसार-लाभ का उच्च स्तर अधिक श्रम-शोषण का प्रतीक है, जो किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए अच्छा नही हें। यही कारण है कि इन विचारकों ने लाभ को हेय दृष्टि से देखा हें।

32.2 लाभ के प्रकार

32.2.1 सकल और शुद्ध लाभ

सकल लाभ का अर्थ वही है जो एक सामान्य व्यक्ति समझता है यानि वह अवशिष्ट आय जो एक उद्यमी के पास उस सभी उत्पादन साधनों को देने के बाद बचती है। जिन्हें उसने उत्पादन प्रक्रिया को पूरा करने के लिए भुगतान के बदले में प्राप्त किया हें। सकल लाभ में उद्यमी के स्वयं के साधनों का प्रतिफल भी शामिल है। उदाहरणार्थ-यदि उद्यमी ने अपनी पूंजी लगा रखी है तो उसकी ब्याज, यदि उसने अपनी भूमि या भवन लगा रखा हें तो उसका लगान या किराया, यदि वह स्वयं प्रबंध व्यावस्था देखता हें तो उसे मिलने वाला वेतन आदि।

इसी प्रकार उत्पादन प्रक्रिया के दौरान मशीनों व उपकरणों का भी मूल्य-ह्रास होता है। जिसके कारण समय-समय पर उनके रख-रखाव की व्यवस्था करनी होती हें तथा एक निश्चित समय के बाद उनको बदलना होता है। इसका प्रावधान भी सकल लाभ में से ही करना होता है। अर्थशास्त्र में हम इनको अस्पष्ट लागत कहते है इसके बारे में आप पड़ चुके हें। चूंकि यह भी लागत का ही एक भाग है

अत: इसे लाभ में शामिल करना उचित नही है। अत: हम सकल लाभ में से इनको घटा कर शुद्ध लाभ प्राप्त कर सकते है। अर्थात्

सकल लाभ = कुल प्राप्तियां-कुल व्यय

शुद्ध लाभ= सकल लाभ-अस्पष्ट लागतें

अर्थशास्त्रीय विश्लेषण में शुद्ध लाभ को ही लाभ समझा जाता है। उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम यह निकाई निकाल सकते है कि लाभ की अर्थशास्त्रीय परिभाषा, इसके सामान्य अर्थ से भिन्न है, और यही अर्थ हमें लाभ की मात्रा के बारे में सही अनुमान देता हें।

32.2.2. सामान्य व असामान्य लाभ

विनिमय से जुड़ी इकाइयों में आपने देखा कि एक उद्यमी अधिकतम लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से अपने उत्पादन का बाजार में विक्रय करता हें। आपने यह भी देखा की दीर्घकाल में उद्यमी पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति में सामान्य लाभ तथा एकाधिकार की स्थिति में असामान्य लाभ कमाता है। अत: आप जानते होगे कि सामान्य लाभ, लाभ की वह न्यूनतम मात्रा है जो एक उद्यमी को क्षेत्र-विशेष में कार्यरत रखने में समर्थ होती है। दूसरे शब्दों में, यह लाभ की वह मात्रा है जो यदि उद्यमी को न मिले तो वह उस क्षेत्र विशेष में उत्पादन बंद करके वैकल्पिक क्षेत्र में अपने साधनों को लगा देगा। सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो भी लाभ उत्पादक को मिलता है, उसे असामान्य लाभ कहा जाता है।

अर्थात्-

असामान्य लाभ = कुल लाभ - सामान्य लाभ।

वस्तुत: आर्थिक विश्लेषण में हम सामान्य-लाभ को लागत का एक अंग मानते हें। क्योंकि उद्यमी को यह अवश्य ही मिलना चाहिए अन्यथा वह क्षेत्र विशेष से बाहर हो जाएगा।

32.2.3 एकाधिकारात्मक लाभ :

कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि एक उद्यमी को मिलने वाला लाभ मात्र उसके प्रयत्नों व प्रबंधकीय कार्यो के लिए ही नही मिलता। कई बार बाजार परिस्थितियों से भी वह लाभ कमा लेता हें। उदाहरणस्वरूप, एकाधिकारात्मक बाजार परिस्थितियों में एक उद्यमी अपने उत्पादन को नियमित करके बाजार मूल्यों को बढ़ा सकता हें, इससे उसे मिलने वाला लाभ भी बढ़ जाता हें। ऐसा इसलिए होता है कि बाजार में असंतुलन व अप्रतिस्पर्धा बाजार परिस्थितियों के कारण भाग व लागतों में होने वाली परिवर्तनों से समायोजन करने का पर्याप्त समय नही मिलता। इस असंतुलन से एकाधिकारी उद्यमी अपना लाभ बढ़ा लेता हें।

32.2.4 अप्रत्याशित लाभ :

इस प्रकृति का लाभ उद्यमी की योग्यता या क्षमता से नही बल्कि परिस्थितियाँ में अनुकूल परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता हें। उदाहरणस्वरूप यदि अर्थव्यवस्था के सामान्य या वस्तु

विशेष के मूल्य स्तर में अनायास वृद्धि को जाती है तो स्वाभाविक है कि उद्यमी को मिलने वाला लाभ बढ़ जाता हें। मान लीजिए एक उद्यमी जिस वस्तु का उत्पादन करता हें उसकी देश में कुल पूर्ति का एक भाग आयात किया जाता हें। अब यदि सरकार एक घोषणा के द्वारा आयात पर रोक लगा दे तो बाजार में वस्तु की पूर्ति कम हो जायेगी और परिणामस्वरूप उसके मूल्य बढ़ जाएगें। ऐसी स्थिति में जो उद्यमी बाजार में वस्तु पूर्ति करने की क्षमता रखते है उनको मिलने वाला लाभ अनायास बढ़ जाएगा क्योंकि अब वे अपना उत्पादन बढ़ हुए मूल्यों पर बेचेंगे। इस तरह के लाभ, जो बाजार परिस्थितियों में अनायास परिवर्तनों से उत्पन्न होता है, को अप्रत्याशित लाभ कहा जाता है।

बोध प्रश्न :

(1) लाभ की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए और बतलाइये कि आम आदमी की दृष्टि में लाभ का अर्थ इसके अर्थशास्त्रीय अर्थ से किस प्रकार भिन्न है।

32.3 लाभ के सिद्धांत

जैसा कि हमने देखा कि लाभ उत्पन्न होने के अनेक स्त्रोत है। यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है, कि लाभ उत्पन्न होने में कौन सा स्त्रोत ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। हमारे पास कोई ऐसा एक सिद्धांत नही हैं जो सभी परिस्थितियां में उत्पन्न होने वाले लाभ की संपूर्ण व्याख्या कर सकें। इसी बात को ध्यान में रखकर अर्थशास्त्रियों ने जैसे-गार्डन,टॉसिग आदि ने इस बात पर बल दिया है कि लाभ अर्थशास्त्र की उन कुछ अवधारणाओं में से एक है जिनके बारे में स्थिति काफी अस्पष्ट और विवादग्रस्त है। अलग-अलग अर्थशास्त्रियों ने अपने द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में लाभ उत्पन्न होने के अलग-अलग कारकों पर बल दिया हें। लेकिन कोई एक ऐसा सिद्धांत नही है जो सभी कारकों को समाविष्ट करता हो। अत: लाभ को सही परिपेक्ष्य में समझने के लिए हमें इससे जुड़े सभी विचारों को विस्तार से देखना होगा।

32.3.1 परंपरावादी विचार

लाभ के आधुनिक सिद्धांतों के अध्ययन के पूर्व हमें संक्षेप में परंपरावादी विचारकों द्वारा की गयी लाभ की व्याख्या समझ लेनी चाहिए। अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ के अनुसार उत्पादक को अपने उत्पाद के प्राकृतिक मूल्य से अधिक जो कुछ अतिरेक प्राप्त होता हें वह उसका लाभ हें। वस्तु के प्राकृतिक मूल्य से उसका तात्पर्य उस मूल्य से हें जो श्रम की प्राकृतिक दर यानि श्रमिक के न्यूनतम जीवन यापन पर होने वाला व्यय की पूर्ति कर दें। अन्य परंपरावादी विचारकों ने भी मोटे तौर पर इसी विचार को स्वीकार करते हुए उसका विश्लेषण किया है। संक्षेप में, परंपरावादी विचार की के मतानुसार लाभ का अर्थ उपर्युक्त वर्णित कुल लाभ के विचार के समकक्ष है। इनके अनुसार-पूंजीपति को लाभ उसके द्वारा लगायी गयी पूंजी के प्रतिफल के रूप में तथा उसकी उद्यमीय भूमिका के बदलें में, मिलने वाली राशि हें। यह बात ध्यान देने योग्य हें कि अधिकांश परंपरावादीअर्थशास्त्रीय ब्याज और लाभ में 'भेद नहीं करते थे।

32.3.2 नवपरंपरावादी विचार : मार्शल

नवपरंपरावादी विचारकों में मार्शल का नाम काफी महत्व से लिया जाता हें । मार्शल ने भी अपनी पुस्तक Principle of Economics में लाभ के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की है । एवं इसके प्रभावित करने वाले कई पक्षों पर प्रकाश डाला हें । मार्शल के अनुसार एक उद्यमी तीन महत्वपूर्ण कार्य करता हैं । (i) वह उद्यम को पूंजी उपलब्ध करवाता हें, (ii) वह उद्यम के संचालन के लिए प्रबंधकीय व्यवस्था करता हें तथा (iii) वह उद्यम के संगठनात्मक व्यवस्था करता है । ताकि उत्पादन कार्य ठीक ढंग से चल सके । यही नही, उद्यमी अपने क्षेत्र में नव-प्रवर्तन भी लागू करता हें । मार्शल के अनुसार उद्यमी दो प्रकार के होते हें एक वे जो परंपरागत तरीकों से उत्पादन कार्य करते है और दूसरे वे जो उत्पादन कार्य में नए-नए प्रयोग करते रहते हें । इन दोनों प्रकार के उद्यमियों में से दूसरे प्रकार के उद्यमी ज्यादा लाभ कमाते हैं । इसी प्रकार, कुछ उद्यमी प्रबंध व्यवस्था में ज्यादा कुशल होते हैं और अपनी कुशलता से उत्पादन साधन कम कीमत पर जुटा पाते हें । अत: यह स्वाभाविक है कि अधिक कुशल उद्यमी ज्यादा लाभ कमाते है । मार्शल ने यह विचार भी व्यक्त किया हें कि उत्पादन के कुछ क्षेत्र ज्यादा जोखिम भरे होते हें । ऐसे क्षेत्रों में कार्य करने के लिए भी उद्यमी ज्यादा लाभ की अपेक्षा रखते हें । परंपरावादी अर्थशास्त्रियों की तरह मार्शल भी यह मानता हें कि लाभ पूर्ति कीमत का एक भाग होता है ।

32.3.3 लाभ का लगान सिद्धांत

लाभ का लगान के समरूप समझने वाले इस सिद्धांत पर मिल व सीनियर जैसे परंपरावादी अर्थशास्त्रियों ने प्रकाश डाला परन्तु इसकी स्पष्ट व्याख्या अमरीकी-अर्थशास्त्री एफ. एल. वाकर ने की । इस सिद्धांत के अनुसार लाभ उद्यमी की योग्यता का लगान है । जिस प्रकार भूमि पर उसकी उपजाऊपन के अनुरूप लगान मिलता हें- अधिक उपजाऊ भूमि पर अधिक व कम उपजाऊ भूमि पर कम उसी प्रकार उद्यमियों को भी अपनी योग्यता के अनुसार ज्यादा या कम लगान मिलता है । जो उद्यमी ज्यादा कुशल व योग्य होते हैं वे अधिक लाभ अर्जित करते हें एवं जो उद्यमी कम कुशल व योग्य होते है वे कम लाभ अर्जित करते हें । कम कुशल उद्यमियों को अपने प्रबंधकीय कार्य के बदले मे वेतन ही मिलता हें । ऐसा उद्यमी इस सिद्धांत के अंतर्गत मापदंड तैयार करता है । इनको हम सीमांत उद्यमी कहते हें । एक उद्यमी सीमांत उद्यमी से जितना ज्यादा कुशल होता हें वह उतना ही अधिक लाभ उत्पन्न कर पाता है ।

यह सिद्धांत अपने आप में जितना सरल है, उतनी ही इसकी आलोचना भी हुई है । जैसे क्या एक उद्यमी (सीमांत उद्यमी) बिना लाभ के उस क्षेत्र विशेष में कार्यरत रहेगा? नही, वह अपना उत्पादन क्षेत्र बदल लेगा ताकि वह लाभ कमा सके । फिर लगान सामान्यत: धनात्मक या ज्यादा से ज्यादा शून्य हो सकता हें । जबकि यदि उद्यमी सही निर्णय न ले पाए तो उसे हानि भी उठानी पड़ती है । इसी प्रकार लगान हमेशा अधिक प्रतिफल देने वाली भूमि पर मिलता है । लेकिन लाभ की मात्रा कई बार ऐसे तलों से प्रभावित होती हें, जिनका उद्यमी की योग्यता से कोई संबंध नही होता । ऐसा हम एकाधिकारात्मक लाभ व अप्रत्याशित लाभ की अवस्था मे देख चुकें हें । इन आलोचनाओं के आधार पर हम कह सकते हें कि यह सिद्धांत लाभ जैसी व्यापक अवधारण की सीमित व्याख्या करता है ।

32.3.4 लाभ का मजदूरी सिद्धांत

यह सिद्धांत भी लाभ को स्पष्ट करने वाला एक प्रारंभिक सिद्धांत हैं जो लाभ को ' 'उद्यमी की मजदूरी " मानता है। इसके प्रतिपादक प्रो. टॉजिग ने विचार व्यक्त किया है कि लाभ उद्यमकर्ता की वह मजदूरी हें जो उसे उसकी विशेष योग्यता के कारण प्राप्त होती हें। दूसरे शब्दों में जिस प्रकार एक श्रमिक को अपने श्रम के बदले में मजदूरी या वेतन भोगी व्यक्तियों की अपनी सेवाओं के बदले में वेतन मित्रता हें, उसी प्रकार एक उद्यमी को उसकी सेवाओं के प्रतिफल के रूप में लाभ प्राप्त होता हें।

लेकिन यह सिद्धांत भी लाभ को संकुचित दृष्टि से देखता है क्योंकि हम जानते है कि लाभ मात्र उद्यमी की सेवाओं का प्रतिफल नही होता बल्कि उसके द्वारा जोखिम उठाने व नव प्रवर्तन लागू करने के बदले में मिलने वाला प्रतिफल भी होता है। फिर उद्यमी के लिए यह आवश्यक भी नही कि सदैव उसे अपनी सेवाओं का प्रतिफल मिले ही। कई बार उद्यम को हानि होने की स्थिति में उद्यमी को अपने हक से हाथ भी धोना पड़ जाता है। अत: हम कह सकते है कि लगान सिद्धांत के समान, लाभ का यह सिद्धांत भी सीमित महत्व का हें जो उद्यमी की बहुआयामी भूमिका की उपेक्षा करता है।

32.3.5 लाभ का गतिशील आधिक्य का सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन अमरीकी अर्थशास्त्री जे. बी. क्लार्क J.B. Clark ने किया था। अत: इसे क्लार्क-सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता हें। इस सिद्धांत के अनुसार उद्यमी को मिलने वाला लाभ गतिशील (यानि प्रावैगिक) अर्थव्यवस्था में होने वाले उच्चावचनों का परिणाम हें। जैसा कि हम जानते हें, एक प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में निरंतर परिवर्तन आते रहते हैं और मांग व पूर्ति में उच्चावचन होते रहते हें। इससे अर्थव्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न होता हें। एक उद्यमी, जो उत्पादन के साधनों को संगठित करता हें, इसी असंतुलन द्वारा अपने लिए लाभ उत्पन्न करता है। नियमित रूप से उत्पन्न होने वाले असंतुलनों को ध्यान में रखते हुए एक उद्यमी जितनी अधिक कुशलता से अपने उद्यम को संगठित कर सकता हें और उसका संचालन कर सकता है, वह उतना ही अधिक लाभ कमाने में सफल होता हें। यहां यह ध्यान देने योग्य बात हें कि अर्थव्यवस्था में होने वाले उन्हीं परिवर्तनों से उद्यमी लाभ उत्पन्न कर सकता हें जिनका पहले सें अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। यदि परिवर्तनों को पहले से अनुमान लगा पाना संभव हो तो उद्यमी लाभ उत्पन्न नही कर पाएगा क्योंकि तब अर्थव्यवस्था आने वाले परिवर्तनों के अनुरूप अपने को समायोजित कर लेगी अर्थात् उद्यमी द्वारा लाभ कमाना संभव होने के लिए यह आवश्यक हें कि अर्थव्यवस्था में आने वाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान न लगाया जा सके।

यही कारण है कि क्लार्क लाभ का उत्पन्न होना एक प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में ही संभव मानता है। यदि अर्थव्यवस्था स्थैतिक प्रकृति की है तो उसमें अनुमान न लगा सकने वाले परिवर्तन पैदा ही नहीं होंगे। अर्थव्यवस्था एक चक्र की भांति कार्य करती रहेगी और अनुमानित परिवर्तनों के अनुरूप अपने आप को समायोजित करती रहेगी। ऐसी स्थिति में वस्तु-विक्रय से मिलने वाली संपूर्ण विक्रय राशि उत्पादन साधनों के महज उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार वितरित हो जाएगी। (इसके बारे में

आप विस्तार से इकाई 25 व इकाई 26 में अध्ययन कर चुके हें) इस व्यवस्था के अंतर्गत उद्यमी को भी उत्पादन प्रक्रिया मे उसके योगदान के अनुसार हिस्सा मिल जाएगा, न कि कोई लाभ।

क्लार्क ने इस बारे में आगे कहा है कि एक प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में आने वाले परिवर्तनों मे से कुछ मांग को प्रभावित करते है एवं कुछ पूर्ति को। जनसंख्या में वृद्धि तथा मानवीय आवश्यकताओं में होने वाले मात्रात्मक व गुणात्मक परिवर्तन अर्थव्यवस्था में मांग को प्रभावित करते है। उदाहरणस्वरूप आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप आय में वृद्धि होती है और व्यक्ति नयी व उत्तम किस्मों की वस्तुओं की मांग करता है। इसी प्रकार अर्थव्यवस्था में होने वाले कुछ परिवर्तन पूर्ति को प्रभावित करते है जैसे- उत्पादन तकनीकों में सुधार, अर्थव्यवस्था के पूंजी स्टॉक में वृद्धि, व्यापारिक संगठन में सुधार आदि। समय के साथ व्यापारिक संगठन में होने वाले सुधारों के परिणामस्वरूप ही हम देखते हैं कि एक गतिशील अर्थव्यवस्था में कम कुशल फर्में बाजार से बाहर होती जाती हैं व अधिक कुशल फर्में बाजार पर अपना नियंत्रण स्थापित करने में सफल होती जाती है। इसी प्रकार जो उद्यमी उत्पादन तकनीकों में निरंतर सुधार लाते रहते है। वे अन्य उद्यमियों की अपेक्षा अधिक लाभ अर्जित करने में सफल रहते है।

यह बात सही हें कि क्लार्क ने उद्यमी के लाभ सृजन की विस्तृत व्याख्या की है। फिर भी वह इससे जुड़े सभी पहलुओं का अपने सिद्धांत में समावेश नही कर पाया। उदाहरणस्वरूप उसने लाभ सृजन में जोखिम उठाने एवं अर्थव्यवस्था में पायी जाने वाली अनिश्चितताओं की भूमिका की अपेक्षा की है। उसने तो यहां तक कहा है कि उद्यमी कोई जोखिम नही उठाता। क्योंकि उसके पास खोने के अलावा कुछ नहीं होता। वास्तविकता तो यह है कि कई बार उद्यमी को हानि उठानी पड़ती है और कभी-कभी तो अपना सब कुछ खोना पड़ जाता हें। क्लार्क तो यह भी नही देख पाया हें कि गतिशील अर्थव्यवस्था में भी कुछ परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। यही नही ऐसे ज्ञात परिवर्तनों के लिए बीमा द्वारा सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। अत: इन परिवर्तनों से उद्यमी लाभ सृजन नही कर पाता। वह उन्ही परिवर्तनों से लाभ उत्पन्न कर पाता है जिनके बारे में पूर्वानुमान लगा पाना संभव न हो। इस तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते है कि क्लार्क का लाभ का गतिशील आधिक्य का सिद्धांत ' भी लाभ सृजन की पूर्ण व्याख्या नही करता हें।

32.3.6लाभ का नव प्रवर्तन का सिद्धांत

प्रो. जोसफ ए. शुम्पीटर (Joseph a schumpeter) ने 1912 में अपनी कृति (Theory of Economic Development) में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। शुम्पीटर का मत था परंपरावादी अर्थशास्त्रियों ने उद्यमी को पूँजीपति के रूप में अधिक महत्ता दी ओर एक नव प्रवर्तक के रूप में उसकी भूमिका की अपेक्षा की। उसके विचारो में उद्यमी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य नव प्रवर्तनों को व्यवहार में लागू करना होती हें और उसे मिलने वाला लाभ उसके इसी कार्य का प्रतिफल है। उसके अनुसार नव प्रवर्तन अर्थ व्यवस्था के चक्रीय प्रवाह को तोड़ता है और आर्थिक विकास को तेज करता है जिससे अर्थव्यवस्था आय के उच्च स्तर पर संतुलन प्राप्त करती है। यही कारण है। कि उद्यमी की नव प्रवर्तक रूप में भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है।

दूसरे शब्दों में लाभ के बारे में प्रो. शुम्पीटर के विचारों को समझते हुए हम कह सकते है कि उद्यमों को मिलने वाला लाभ ऐसे प्रावैगिक परिवर्तनों का परिणाम है जो नव प्रवर्तन से उत्पन्न होते है। इस दृष्टि से शुम्पीटर के विचार क्लार्क से मेल खाते है। दोनों प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों को लाभ का कारण बताते है लेकिन शुम्पीटर इसके लिए नव-प्रवर्तन पर जोर देते हें जबकि क्लार्क पांच प्रकार के सामान्य परिवर्तनों पर।

शुम्पीटर ने नव-प्रवर्तन शब्द का प्रयोग काफी व्यापक संदर्भ में किया है। उसके अनुसार हर ऐसा परिवर्तन जो उद्यमी के लिए लागत में-कमी लाए या मांग में वृद्धि करें, नवप्रवर्तन है। इन्होंने सभी प्रकार के नव-प्रवर्तनों को दो भागों मे रखा है।

प्रथम प्रकार के नव प्रवर्तन है। जैसे-उद्यमी द्वारा नई मशीनों का उपयोग, किसी नयी अधिक उपयोगी कार्य विधि की काम में लाना, किसी नए सस्ते कच्चे माल का प्रयोग कर पाना आदि। स्वाभाविक है कि इस प्रकार के परिवर्तन उत्पाद की लागत में कमी लाएंगे और उद्यमी का लाभ बढ़ायेंगे। दूसरे प्रकार के नव-प्रवर्तन वें हें- जो उद्यमी के उत्पाद की मांग बढाते है। जैसे-नए संशोधित उत्पाद को बाजार में लाना, उत्पादों के लिए नए बाजारों की खोज करना, अपने उत्पादों की नए व आकर्षक डिजाईन व पैकिंग में प्रस्तुत करना आदि। ऐसे नव-प्रवर्तन ज्यादा उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकृष्ट करते है। इससे उद्यमी अपने उत्पाद की अधिक मात्रा विक्रय कर पाता है व अधिक लाभ उत्पन्न करता है।

यहां यह बात ध्यान देने की है कि नव-प्रवर्तनों को कार्यरूप देने में एक उद्यमी जितना सफल होता है उसका लाभ उतना ही अधिक होता है। यदि दुर्भाग्यवश वह अपने प्रयत्नों में असफल रहता है तो उसे हानि उठानी पड़ती हें। यह बात भी ध्यान देने की है कि नव-प्रवर्तनों से मिलने ताला लाभ सदैव अल्पकालिक होता है। एक उद्यमी जब किसी नव-प्रवर्तन को सफलतापूर्वक लागू कर देता है तो कालांतर में दूसरे उद्यमी भी उसका अनुसरण करते है। इस तरह उसे मिलने वाला लाभ शनैः शनैः सभी उद्यमियों के मिलने वाला लाभ अल्पकालिक होता हैं। एक उद्यमी नियमित रूप से लाभ कमा सके इसके लिए यह आवश्यक है कि वह निरंतर नव-प्रवर्तन ला करने का प्रयास करता रहे ताकि पुराने नव-प्रवर्तनों का लाभ समाप्त होते नए नव प्रवर्तन का लाभ मिलने लग जाए।

शुम्पीटर का यह सिद्धांत अपने आप में काफी महत्वपूर्ण है लेकिन यह भी लाभ की सम्पूर्ण व्याख्या नही करता है। उद्यमी का लाभ मात्र नव-प्रवर्तनों को लागू करने के लिए ही नही मिलता। कुल लाभ का एक भाग उसे इसलिए मिलता हें कि वह अपने उद्यम की प्रबंधकीय व्यवस्था करता है। ऐसी स्थिति में उद्यमों को मिलने वाले संपूर्ण लाभ के लिए मात्र उसकी नव-प्रवर्तक रूप में होने वाली गतिविधियों को उत्तरदायी मान लेना उचित नही है।

32.3.7 जोखिम उठाने व अनिश्चितता वहन करने का सिद्धान्त

यह हम अच्छी तरह जानते है कि एक उद्यमी को भविष्य की अनिश्चितताओं के मध्य कार्य करना होता हें। वह भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का अनुमान लगा कर अपनी नीतियाँ तय करता है।

वैसे उत्पादन क्षमता स्थापित करते समय वह भविष्य में होने वाले मांग परिवर्तनों को ध्यान मे रखता हें। इस तरह वह प्रतियोगी फर्मों के व्यवहार का भी आंकलन करता है ताकि उसका उत्पाद प्रतिस्पर्धा का सामना कर सके। इससे स्पष्ट हें कि एक उद्यमी को जोखिम उठाते हुए कार्य करना पड़ता है। उसके द्वारा कमाए गए लाभ पर इस पहलू का भी असर पड़ता है। एफ. बी. हॉले (F.B. Hawley) ने इसी महत्व की आधार बना कर अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया। बाद में एफ एच. नाईट (F.H. Knight) ने इसको और विकसित करते हुए अनिश्चितता को उद्यमी के लाभ अर्जन का प्रमुख कारण बताया।

प्रो. हॉले का मत हें कि एक उद्यमी को लाभ जोखिम उठाने के लिए मिलता है। कोई भी उद्यमी उस समय तक जोखिम नही उठाना चाहेगा जब तक कि उसे सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त न हो। किसी उद्यम में जोखिम जितना ज्यादा होगा; उद्यमी उतने ही ज्यादा लाभ की अपेक्षा के साथ-अपने आप को उस क्षेत्र में जोड़ेगा। हॉल के अनुसार उपभोक्ता द्वारा अदा की गयी कीमत में न सिर्फ उसकी लागत शामिल है बल्कि बीमा योग्य व गैर बीमा योग्य जोखिम का भुगतान भी शामिल हें। बीमा योग्य जोखिमों के लिए वह प्रीमियम अदा करता हें जबकि गैर बीमा योग्य जोखिम से जुड़ा अंश उसका लाभ हें।

प्रो. हॉले के विचारों से नाइट पूरी तरह सहमत नहीं थे। उनका मत था कि जोखिम लाभ का प्रमुख कारण अवश्य है परन्तु समी प्रकार के जोखिम लाभ उत्पन्न नहीं करते है। केवल वे जोखिम ही लाभ उत्पन्न करते हें। जिनका पूर्वानुमान संभव नही होता। वे यह भी नही मानते है कि लाभ उद्यमी की उद्यमीय क्षमता का प्रतिफल हें। नाइट के विचारों से लाभ अनिश्चितता वहन करने के कारण उत्पन्न होता है। लाभ की दृष्टि से, नाइट ने उन अनिश्चितताओं पर बल दिया जिनकी सांख्यिकीय गणना संभव नही है। इनके बारे में उद्यमी अपनी-अपनी जानकारी और समझ के अनुसार अनुमान लगाते है और कार्य से संबंधित निर्णय लेते है। चूंकि उद्यमी के निर्णय उसके अपने अनुमानों पर आधारित हें। अत उनके गलत होने की भी पूरी संभावना हें। ऐसी स्थिति में उद्यमी का लाभ इस बात पर निर्भर करता हें कि उसके द्वारा लगाए गए अनुमान समय की कसौटी पर किस हद तक सही साबित होते है।

अपनी बात को आगे बढाते हुए नाइट ने जोखिमों व अनिश्चितताओं को दो भागो में बांटा है। प्रथम वे जोखिम व अनिश्चितता एक जिनकी पूर्वानुमान लगाया जा सके व जिनका सांख्यिकीय गणना की जा सके। ऐसे जोखिम एवं अनिश्चितताओं के लिए वह बीमा कंपनियों से एक निश्चित प्रीमियम देकर सुरक्षा प्राप्त कर लेता है। इसके अंतर्गत हम आग लगने का जोखिम आदि। इन जोखिमों व इनसे जुड़ी अनिश्चितताओं का लाभ सृजन से कोई संबंध नही है। दूसरे प्रकार के जोखिम व अनिश्चितताएँ वे होती हें जिनकी सांख्यिकीय गणना संभव नही है। इनके लिए बीमा-सुरक्षा उपलब्ध नही होती हें।

1. प्रतियोगिता से जुड़ी जोखिमें :-

एक उद्यमी के लिए यह पक्के तौर पर जान पाना कठिन होता हें कि भविष्य में प्रतिस्पर्धी फर्में अपने उत्पादन स्तर व कीमतों मे किस प्रकार के परिवर्तन लाएगी या फिर प्रचार के लिए कौन से उपाय अपनाएगी। नयी फर्मों के बाजार में प्रवेश की संभावनाओं को भी उसे ध्यान में रखना होता है। अगर वह

इस प्रकार के सभी संभावित परिवर्तनों का सही अनुमान लगा पाता है एवं इनसे निपटने के पर्याप्त उपाय कर पाता हें तो वह उद्यमी अधिक लाभ का अधिकारी होता है।

2. बाजार परिस्थितियां :-

उद्यमी को अर्थव्यवस्था में आने वाले उच्चावचनों के प्रति भी सजग रहना होता है । अगर बाजार में मंदी आजाए तो उद्यमी को माल बेचने में कठिनाई होती है और कई बार उसे हानि भी उठानी पड़ती है। इसी प्रकार तेजी की स्थिति में उसको अनायास लाभ प्राप्त होता है।

3. तकनीकी परिवर्तन :-

हम जानते है कि समय के साथ तकनीकी सुधार होता रहता है। उत्पादन तकनीकी पुरानी होती जाती है एवं नयी तकनीकी की खोज होती रहती है। एक उद्यमी के सामने हमेशा यह संकट रहता है कि कब नयी तकनीकी के आने से उसकी उत्पादन व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाए। इसलिए उत्पादन क्षमता स्थापित करते समय उसे भावी सुधारों का समावेश कर पाने की गुंजाइश रखनी पड़ती है।

इस प्रकार के परिवर्तनों से सदैव अनिश्चितता बनी रहती है और उद्यमी को जोखिम उठाकर निर्णय लेने होते है। अगर उसकी निर्णय -प्रक्रिया और कार्य-प्रणाली इस प्रकार की अनिश्चितताओं का ठीक से सामना कर पाती हें, तो स्वाभाविक हें कि उद्यमी अच्छा लाभ कमाता हें। साथ ही यह बात भी सही है कि ऐसा न कर पाने में सक्षम उद्यमी हानि उठाते हें और कालांतर में बाजार से बाहर हो जाते हें।

नाइट क्लार्क की इस बात से सहमत हें कि अर्थव्यवस्था की प्रावैगिक परिस्थितियों से लाभ उत्पन्न होता है। परन्तु वह इस बात से सहमत नही है कि लाभ इन परिस्थितियों में परिवर्तन से उत्पन्न होता हें। उसके अनुसार लाभ इन परिवर्तनों में छिपी अनिश्चितताओं से उत्पन्न होता है। यही करण है कि एक उद्योग में अलग-अलग फर्में एक ही समय पर लाभ की अलग -अलग दरें प्राप्त करती हें क्योंकि उनकी जोखिम उठाने व अनिश्चितता वहन करने की क्षमता अलग अलग होती हें।

नाइट यह स्वीकार करता है कि उद्यमों को मिलने वाले प्रतिफल में उसके द्वारा उद्यम को दी गई सेवाओं की मजदूरी भी शामिल है। लेकिन लाभ उसकी इस मजदूरी से अलग है। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वह कहते है। कि एक स्थिर अर्थव्यवस्था में उद्यमी के संगठनात्मक कार्य नगण्य हो जाते है और उद्यमी की सारी आय लाभ बन जाती है। इसके विपरीत एक प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में निरंतर आने वाले परिवर्तनों के कारण संगठन में ही उद्यमी को अनुबंधित आय प्राप्त होती हें। इस दृष्टि से नाइट व क्लार्क के विचारो में काफी समानता देखने को मिलती है।

नाइट ने जोखिम व अनिश्चितताओं के मध्य भी अंतर किया हें। उसके अनुसार हर अनिश्चितता जोखिम हें परंतु हर जोखिम में अनिश्चितता हो यह आवश्यक नही हें। जैसा कि हम देख चुके है कई प्रकार के जोखिम ऐसे होते है जिनके लिए बीमा द्वारा सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। ऐसे जोखिमें मे उद्यमी कि लिए कोई अनिश्चितता नही होती। अत: उद्यमी को इनके बदले में कोई लाभ नही मिलता हें।

कई अर्थशास्त्रियों ने नाइट के अनिश्चितता के सिद्धान्त की आलोचना की है। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत हें कि नाइट उद्यमी के कार्यो को ठीक से नही समझ पायें। उनके विचारानुसार उद्यमी का एक मात्र कार्य 'अनिश्चितताओं का वहन करना है। इस संदर्भ में याद हम आजकल के बड़े निगमों के देखे तो पता चलता है कि इनके निर्णय मुख्यत: वेतन पर रखे गये प्रबंधक लेते है। जिनका फर्म की लाभ-हानि से सहित सका नही है। उद्यम पर स्वामित्व शेयर के मालिकों का होता हें जो निर्णय प्रक्रिया से सही नही जुड़े होते हें। नाइट अपने सिद्धांत में इन दोनों मे मध्य भेद कर पाने में असफल रहा हें।

कुछ अर्थशास्त्रियों के मतानुसार अनिश्चितता वहन करने को एक स्वतंत्र उत्पादन साधन के रूप में नही लिया जा सकता हैं। यह तो एक प्रकार की मानवीय भावना है जो वास्तविक उत्पादन लागत का हिस्सा हें। लेकिन इस लागत पर उत्पादन साधनों की पूर्ति निर्भर नही करती है। उत्पादन साधनों की पूर्ति तो उनकी अवसर लागत पर निर्भर करती है। अत: इस कारक का लाभ सृजन में प्रत्यक्ष योगदान नही है।

इसी प्रकार आलोचकों का यह मत भी है कि कई बार अनिश्चितता न होते हुए भी उद्यमी लाभ कमा सकता है। उदाहरणस्वरूप एक एकाधिकारी मूलत: बाजार की एकाधिकारी परिस्थितियों का अवसर उठाकर लाभ सृजन करता है, न कि अनिश्चितताएं वहन करने के प्रतिफल के रूप में। इन सब आलोचनाओं के बावजूद यह सिद्धांत लाभ कि सिद्धांत में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह लाभ सृजन को सबसे अच्छे ढंग से प्रस्तुत करता है।

32.3.8 अन्य सिद्धांत

इन प्रमुख सिद्धांतों के अलावा भी लाभ-सृजन को साट करने के कुछ प्रयत्न किए गए है। कुछ विद्वानों ने एकाधिकारी परिस्थितियों में उत्तम होने वाले लाभ को एकाधिकारी लाभ माना है। यह लाभ एकाधिकारी द्वारा प्राप्त किए गए नयी खोजो के पेटेंट-अधिकार से उत्पन्न हो सकता है। अथवा उत्पादन साधनों पर एकाधिकारात्मक नियंत्रण से अथवा फिर किसी अन्य प्रकार के एकाधिकार से।

इसी प्रकार कुछ विद्वानों ने लाभ की व्याख्या एक उद्यमी को मिलने वाले प्रतिफल के रूप में की हैं। जिस प्रकार विभिन्न उत्पादन के साधनों को उत्पादन में अपने-अपने योगदान के लिए ब्याज, लगान किराया आदि प्राप्त होता हें। इसी प्रकार उद्यकी को उत्पादन के लिए लाभ प्राप्त होता हें। इसलिए उन्होंने लाभ की गणना उद्यमी की सीमांत उत्पादकता के आधार पर की है। इसके अनुसार उद्यमी सीमांत उत्पादकता जितनी ज्यादा होती हें, उसे मिलने वाली लाभ भी उतना ही ज्यादा होता है। लेकिन यह सिद्धांत भी आलोचनाओं से परे नहीं हें। जैसे यह- कहा जा सकता है कि एक उद्यमी के बारे में सीमान्त उत्पादकता की गणना बहुत मुश्किल होती है, अधिकांशत: एक फर्म में एक ही उद्यमी होता हें। फिर यह मानना भी कठिन हें कि एक उद्योग में पाये जाने वाले सभी उद्यमी सजातीय होगे। उद्यमियों की क्षमताओं में समांगता: काफी अंतर पाया जाता है। फिर यह सिद्धान्त यह भी स्पष्ट नही कर पाता है कि उद्यमी को कभी कभी 'अनायास- लाभ क्यों मिलता है?

32.4 सारांश

संक्षेप में लाभ सृजन के भिन्न भिन्न सिद्धांतों के अध्ययन से तीन प्रमुख विचारधाराओं का पता चलता हैं।

प्रथम विचारधारा के अंतर्गत लाभ उद्यमी को मिलने वाला वह मांग है जो निवेशित पूँजी पर ब्याज के अतिरिक्त मिलता है । यह उसे उत्पादन कार्य संगठित करने व उद्यम के संचालन करने के प्रतिफल के रूप में प्राप्त होता हें ।

दूसरी विचारधारा के अंतर्गत लाभ को शुद्ध लाभ के रूप मे देखा जाता है ।इसके अनुसार लाभ वह अतिरेक है जो एक उद्यमी के पास सभी उत्पादन साधनों के भुगतान व प्रबंध की मजदूरी चुकाने के पश्चात बचता है । यह लाभ एक प्राथमिक अर्थव्यवस्था में आने वाले परिवर्तनों के कारण जैसे नयी खोजो को लागू करने, जोखिम उठाने व अनिश्चितता के वातावरण में कार्य करने के प्रतिफल के रूप में मिलता हें ।

तीसरी विचारधारा के अंतर्गत आने वाले विचारकों का मानना है कि लाभ बाजार की अपूर्णता व अप्रतिस्पर्धी वातावरण के कारण उत्पन्न होता है, जिसके लिए उद्यमी के प्रयास उत्तरदायी नही है। उपर्युक्त अध्ययन से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि लाभ क्यों उत्पन्न होता है, इसको स्पष्ट करने वाला एक भी पूर्ण सिद्धान्त अर्थशास्त्र के पास नही है । सभी सिद्धान्तों के प्रतिपादक अपनी-अपनी दृष्टि से इसको समझाते है लेकिन सभी की दृष्टि संकीर्ण है ।

बोध प्रश्न

1. लाभ का सिद्धान्त इस समय अर्थशास्त्र का सबसे अधिक विवादग्रस्त एवं असंतोषजनक सिद्धांत हें । विवेचना कीजिए ।
2. "लाभ सामान्यत: अर्थव्यवस्था की प्रावैगिक विशेषताओं एवं अनिश्चितताओं से जुड़ा होता है । "समझाइये।
3. "एक स्थिर अर्थव्यवस्था में लाभ उत्पन्न नही हो सकता। टिप्पणी कीजिए।
4. "नव-प्रवर्तन लाभ सृजन का मूलाधार हें।" व्याख्या कीजिए।
5. क्या जोखिम एवं अनिश्चितता एक हैं? सदि नही तो इसको सविस्तार समझाइये।

32.5 उपयोगी पुस्तकें

M.L. Jhingan : 'Advance Economic Theory'

H.L. Ahuja : "Advance Economic Theory'

P.L. Mehta : 'Essentials of Micro-Economics'

32.5 बोध प्रश्नों के उत्तर : संकेत

1. अंतर्गत लाभ की अर्थशास्त्रीय दृष्टि से व्याख्या कीजिए व कुल लाभ तथा शुद्ध लाभ के अंतर पर प्रकाश डालिए।
2. इसके अंतर्गत लाभ के सभी प्रमुख सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण देते हुए बताइए कि कोई भी सिद्धांत पर्याप्त रूप से व्यापक नही है।
3. इसके अंतर्गत लाभ पर क्लार्क व नाइट के विचारों के स्पष्ट कीजिए।
4. इसके अंतर्गत क्लार्क के सिद्धांत के माध्यम से बताइए कि क्यों एक स्थिर अर्थव्यवस्था में लाभ उत्पन्न नही होगा और एक प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में लाभ उत्पन्न होने लगेगा।
5. इस प्रश्न के उत्तर में प्रो. शुम्पीटर के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
6. इसमें नाइट द्वारा जोखिम व अनिश्चितता में किए गए अंतर को स्पष्ट कीजिए और इस पक्ष पर आलोचकों के विचार दीजिए।

32.7 शब्दावली

साधन आवंटन	Resource-Allocation
विक्रय-प्रसार	Sale-promotion
उद्यमी व्यवहार	Entrepreneurial behavior
अवशिष्ट आय	Residual-income
सकल लाभ	Gross-profit
शुद्ध लाभ	Net-profit
अस्पष्ट लागतें	Implicit cost
असामान्य लाभ	Abnormal profit
अप्रत्याशित लाभ	Windfall profit
अनायास लाभ	Windfall profit
अतिरेक	Surplus
प्राकृतिक मूल्य	Natural price
बाजार मूल्य	Market price
सीमांत उद्यमी	Marginal Entrepreneur
गतिशील आधिक्य	Dynamic Surplus
प्रावैगिक अर्थव्यवस्था	Dynamic Economy

स्थतिक अर्थव्यवस्था	Stationary Economy
लाभ सृजन	Profit generation
चक्रीयप्रवाह	Circular Flow
नवप्रवर्तन	Innovation
अनुबंधित आय	Contractual Income
एकाधिकारी लाभ	Monopoly Profit

इकाई-33

सामान्य साम्य की अवधारणा

The Concept Of General Equilibrium

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य

33.1 प्रस्तावना

33.2 सामान्य साम्य का अर्थ

33.3 सामान्य साम्य की अवधारणा का विकास

33.3.1 प्रकृतिवादी दृष्टिकोण

33.3.2 एडम स्मिथ के विचार

33.3.3 वाल्रा, परेटो एवं लियोन्तीफ का दृष्टिकोण

33.4 सामान्य साम्य में निहित मान्यताएं

33.5 उपभोक्ता की साम्य स्थिति

33.6 विनिमय का सामान्य सिद्धान्त

33.7 सारांश

33.8 शब्दावली

33.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

33.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

33.0 उद्देश्य

इससे पूर्व यह स्पष्ट किया जा चुका है कि एक उपभोक्ता अथवा एक फर्म या उत्पादक अपने व्यक्तिगत कल्याण को अधिकतम करने के लिए किस प्रकार साम्य स्थिति में पहुंचता है। आप यह समझ चुके होंगे कि आर्थिक कल्याण तभी अधिकतम हो सकता है जब अर्थव्यवस्था की निर्दिष्ट इकाई अपनी साम्य स्थिति में हो। प्रस्तुत इकाई में आपका परिचय सामान्य साम्य की अवधारणा से कराया जाएगा।

इस इकाई के माध्यम से आप

- सामान्य साम्य की अवधारणा को समझ सकेंगे

- यह जान सकेंगे कि यदि किसी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता व उत्पादकों को पृथक-पृथक रूप में तथा एक साथ साम्य स्थिति प्राप्त हो जाएं तो पूरे समाज का आर्थिक कल्याण किस प्रकार अधिकतम होगा, तथा

यह जानकारी प्राप्त करेंगे कि सामान्य साथ की स्थिति में पहुंचने थे किन शर्तों का पूरा होना आवश्यक है,

33.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते है, अर्थशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त अधिकतम कल्याण प्राप्ति का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक आर्थिक इकाई स्व-हित को अधिकतम करने हेतु निर्णय लेती है। एक उपभोक्ता अपनी आय का आवंटन विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं के मध्य इस प्रकार करता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो। एक उद्यमी अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता हें तथा उसी उद्देश्य को लेकर विभिन्न साधनों का प्रयोग करके निर्दिष्ट मात्रा में वस्तु की उतनी मात्रा का उत्पादन करता है ताकि लाभ अधिकतम हो जाए। इसी प्रकार श्रमिक अपने श्रम को आपूर्ति निर्दिष्ट मजदूरी दर पर इस प्रकार करना चाहता हैं कि उसे अधिकतम आय प्राप्त हो।

परन्तु जैसा कि आप जानते है मानव एक सामाजिक प्राणी है। यद्यपि स्व-हित को अधिकतम करने हेतु वह स्वतंत्र रूप से निर्णय लेता है तथापि यह देखना भी आवश्यक है कि निर्णय-प्रक्रिया की यह स्वतंत्रता अन्य व्यक्तियों या आर्थिक इकाइयों की निर्णय प्रक्रिया के अनुरूप हो तथा व्यक्तिगत एवं समष्टिगत कल्याण में तालमेल हो। सभी आर्थिक इकाइयां-चाहे वे उपभोक्ता हो, उत्पादकता हो अथवा साधनों के स्वामी हो- परस्पर निर्भर भी हैं।

क्या इनमें से प्रत्येक का स्वतंत्र निर्णय एवं तदनुसार साधनों का आवंटन, एक ऐसी स्थिति का निर्माण कर सकता है जिसमें सभी इकाइयां साम्य स्थिति में हों? यही स्थिति सामान्य साम्य की है जिसमें सभी उपभोक्ता, सभी उत्पादक, सभी उद्यमी तथा साधनों के सभी स्वामी समानान्तर रूप से साम्य स्थिति में हो, अर्थात् स्वतंत्र रूप से अपने अपने कल्याण को अधिकतम करनें में सफल हो। प्रस्तुत इकाई में आप उपभोक्ता के सामान्य साथ का अध्ययन करेंगे जबकि अगली इकाई में उत्पादक के सामान्य साम्य का विश्लेषण करते हुए दोनों वर्गो के साम्य का अध्ययन करेंगे।

33.2 सामान्य साम्य का अर्थ-उपभोक्ता के सन्दर्भ मे

साधारणतया साम्य एक ऐसी स्थिति को कहा जाता है जिसमें दो या इससे अधिक परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच संतुलन स्थापित हो जाता है। उदाहरण के लिए, मांग तथा पूर्ति के मध्य जिस कीमत पर संतुलन स्थापित होता है उसे बाजार की साम्य स्थिति कहा जाता है। इसी प्रकार व्यक्तिगत स्तर पर जब किसी उपभोक्ता को किसी वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता एवं वस्तु की कीमत में समानता होती है, तो -हम इसे उपभोक्ता की साम्य स्थिति कहते है। एक से अधिक वस्तुएं होने पर यह आवश्यक है कि सभी वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता व कीमत के अनुपातों में समानता हो।

परन्तु यह स्थिति केवल व्यक्तिगत साम्य की दिग्दर्शक है तथा एक उपभोक्ता की साम्य स्थिति को व्यक्त करती है जहां अपनी आय के आवंटन द्वारा वह प्राप्त संतुष्टि को अधिकतम कर सकता है। परन्तु यदि समाज में विद्यमान सभी उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं की निर्दिष्ट कीमतों पर साम्य स्थिति में पहुंच जाएं तो इसे एक व्यक्तिगत साम्य की स्थिति न मानकर सामान्य साम्य का एक पक्ष मानना होगा।

अस्तु ; एक उपभोक्ता की साम्य स्थिति हेतु;

A के लिए

$$\frac{Mu_X}{Mu_Y} = \frac{P_X}{P_Y} -; = \frac{Mu_X}{Mu_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$$

(यह वह स्थिति है जहां प्रत्येक उपभोक्ता की बजट रेखा किसी उदासीनता वक्र को स्पर्श करती है)

परन्तु दोनों उपभोक्ताओं की साथ स्थिति को एक साथ प्राप्त करने हेतु निम्न शर्त पूरी होनी चाहिए;

$$\frac{MuX}{MuY}(A) = \frac{MuX}{MuY}(B) = \frac{P_X}{P_Y}$$

जैसा कि आप जानते है, मार्शल तथा हिक्स दोनों के विश्लेषणों में प्रत्येक उपभोक्ता उस समय साम्य स्थिति में होता है जब सीमान्त उपयोगिता व कीमत, अथवा सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात कीमतों के अनुपात, के समान हों। उदाहरण के लिए यदि ए' व 'बी' की उदासीनता रेखाओं तथा बजट सीमा को लिया जाए तो चित्र 33.1 के माध्यम से दोनों उपभोक्ताओं की साम्य स्थिति का रेखाचित्रीय रूप प्रस्तुत किया जा सकता है।

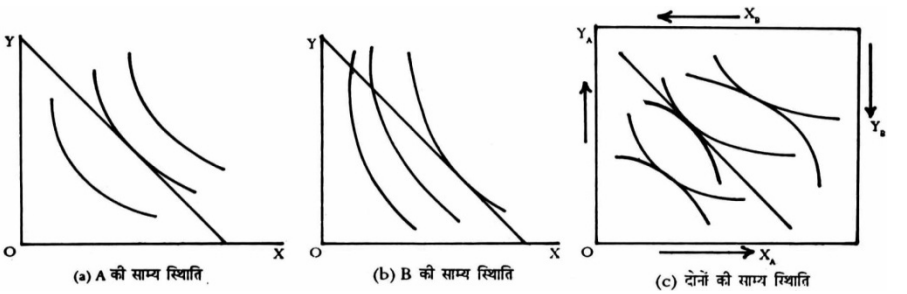

चिर 33.1 उपभोक्ताओं की साम्य स्थिति

संक्षेप में यदि समाज में n उपभोक्ता हों तो उन सभी को साथ स्थिति X तथा Y के उस आवंटन पर होगी जहां निम्न शर्त पूरी हो;

$$MRS_{XY}(A) = MRS_{XY}(B) = \ldots\ldots\ldots MRS_{XY}(n) = \frac{P_X}{P_Y} - \quad (33.1)$$

समीकरण (33.1) में यह मान्यता ली गई है कि उपलब्ध साधनों द्वारा X तथा Y की

इष्टतम मात्राएं प्राप्त कर ली गई है तथा उपभोक्ताओं के मध्य इनका इष्टतम रूप में वितरण कीमत प्रणाली के माध्यम से किया जाना हें।

इस नियम की आगे विस्तृत व्याख्या की गई है।

33.3 सामान्य साम्य की अवधारणा का विकास

सामान्य साम्य की अवधारणा को वस्तुत: वाला ने 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकसित किया था। परन्तु वाला से भी पूर्व 18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डॉ. केने तथा एडमस्मिथ ने जो विचार प्रस्तुत किए थे, वे सामान्य साम्य की अवधारणा को विकसित करने में काफी सहायक हुए।

33.3.1 प्रकृतिवादी दृष्टिकोण: डॉ. केने की आर्थिक तालिका

फ्रांस के 'प्रकृतिवादी" विचारकों में अग्रणी डॉ. केने ने 1758 में सामान्य साम्य का चित्रण अपनी "आर्थिक तालिका" के माध्यम से प्रस्तुत किया। केने ने समाज की सभी आर्थिक इकाईयों को तीन वर्गो में विभाजित किया कृषक अथवा उत्पादक वर्ग, भू-स्वामी तथा अनुत्पादक को तीनों वर्गो में इस प्रकार विभाजित किया जाना चाहिए कि साम्य की स्थिरता बनी रहे। उन्होंने यह मान्यता ली कि देश में 13 करोड़ हैक्टर भूमि एवं 3 करोड़ व्यक्ति विद्यमान है। भूमि के प्रयोग से 40 लाख इकाई खाद्यान एवं 10 लाख इकाई कच्चे माल की प्राप्ति होती है। इस उत्पाद के वितरण हेतु उन्होंने निम्न योजना प्रस्तुत की:

उत्पादक वर्ग आगामी वर्ष में उत्पादन प्रक्रिया जो जारी रखते हुए 20 लाख इकाई के खाद्यान अपने पास रख लेता है तथा शेष 20 लाख इकाई भूस्वामियों को लगान के रूप में चुका देता है। इसी प्रकार कच्चे माल को 10 लाख इकाई अनुत्पादक वर्ग को 20 लाख विनिर्मित इकाइयों के बदले बेचता है। वस्तुत: इस अनुत्पादक वर्ग में व्यापारी व उद्योगपति शामिल किए गए थे।

उधर भू-स्वामी अपने पास 10 लाख इकाई खाद्यान स्वयं के उपभोग हेतु रखकर शेष 10 लाख इकाई खाद्यान को अनुत्पादक वर्ग को 10 लाख विनिर्मित इकाइयों के बदले बेच देते है। अन्त में, अनुत्पादक वर्ग उत्पादक वर्ग से प्राप्त कच्चे माल को 10 लाख इकाईयों को 30 लाख विनिर्मित इकाईयों में परिवर्तित करके इनमें से 20 लाख इकाईयां तो कच्चे माल की 10 लाख इकाइयों के बदले उत्पादक वर्ग को, तथा शेष 10 लाख विनिर्मित इकाईयों की भू-स्वामियों की 10 लाख इकाई खाद्यान के बदले दें देता है।

सामान्य साम्य के इस मॉडल में डॉ. केने ने निम्न बातें बताने का प्रयास किया है.

1. समाज के तीनों वर्गो-भूस्वामी, उत्पादक (कृषक) तथा अनुत्पादक (विनिर्माता)- के कार्यो में विशिष्टीकरण है तथा प्रत्येक व्यक्ति उत्पादन प्रक्रिया मे निर्दिष्ट कार्य का ही सम्पादन करता है।
2. उत्पादित वस्तुएं तीन प्रकार की है- खाद्यान, कच्चा माल एवं कच्चे माल से निर्मित वस्तुएं।

3. उत्पादक वर्ग ही वस्तुओं का मूलत: उत्पादन करता है जबकि भूस्वामी एवं अनुत्पादक वर्ग के लोग उसका विनिमय संभव बनाते है।

4. विनियम प्रक्रिया सम्पूर्ण होने पर खाद्यानों, कच्चे -माल, एवं कच्चे माल से विनिर्मित वस्तुओं की आपूर्ति इनकी वितरित मात्राओं के समान होती है।

इस प्रकार डॉ. केने की आर्थिक तालिका के माध्यम से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि समाज के सभी (तीनों) वर्गो को जो कुछ उनकी सेवाओं के बदले प्राप्त होता हें वह विभिन्न वर्गो द्वारा उत्पादित वस्तुओं (कच्चे माल सहित) की उत्पादित मात्राओं के समान होता है। यह तभी संभव हो पाता है जब सभी वर्गो में परस्पर वस्तुओं का स्वतंत्र विनिमय संभव हो।

33.3.2 एडमस्मिथ के विचार

संस्थापक विचारधारा के जनक एडम स्मिथ यह मानते थे कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्व-हित की अदृश्य शक्ति से प्रेरित होकर निर्णय लेता है। उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक ' वेल्थ ऑफ नेशन्स " में स्पष्ट रूप से कहा :

"प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूंजी का निवेश इस प्रकार करता है कि इससे अधिकतम मूल्य का उत्पाद प्राप्त हो। सामान्यतया न तो वह सार्वजनिक हित की दृष्टि से कुछ करता हैं और न ही उसे पता है कि उसके क्रिया कलापों से सार्वजनिक हित में कितनी वृद्धि हुई है। उसका साध्य केवल स्वयं की सुरक्षा एवं लाभ है और इस प्रक्रिया में यह अदृश्य शक्ति उसे एक ऐसे कार्य को सम्पादित करने की प्रेरणा दे देती है जिसके विषय में उसनें कभी सोचा भी नही था। वह व्यक्ति बहुधा समाज का अधिक प्रभावी रूप से हित पोषण कर देता है। (देखिए : सैमुअलसन "अर्थशास्त्र" दसवां संस्करण, पृष्ठ 41)"

संक्षेप में, एडमस्मिथ यह बतलाना चाहते थे कि यदि समाज में सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्राप्त हो तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने हित (आर्थिक कल्याण) के पोषण हेतु साधनों का प्रयोग करता हो तो स्वत : समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम हो जाएगा।

वस्तुत: एडमस्मिथ ने सामान्य साम्य ' की अवधारणा को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत न करके परोक्ष रूप में इसकी व्याख्या की। आप यह जानते है कि प्रत्येक वस्तु अथवा साधन की कीमत प्रतियोगी बाजार में मांग व पूर्ति द्वारा निर्धारित की जाती है। मांग का निरूपण उपभोक्ता द्वारा वस्तु की उपयोगिता के माध्यम से होता है जबकि पूर्ति फलन का निर्धारण उत्पादन फलन की प्रकृति के अनुसार होता हें। वस्तु कीमत निर्धारण की प्रक्रिया में उपभोक्ताओं व उत्पादकों की परस्पर निर्भरता निहित है चाहे यह कीमत साधन की हो अथवा वस्तु की। निर्णय लेने का अधिकार (प्रत्येक व्यक्ति को) स्वतंत्र रूप से भले ही दिया जाए, तथापि आप यह भली भांति समझ सकते है कि पूर्ति, मांग लागत, उपयोगिता, साधन की उत्पादकता एवं मांग इन सभी की निर्धारण प्रक्रियाएं वस्तुत: वृहत् एवं समानांतर रूप से चलने वाली प्रक्रिया के विभिन्न पहलू मात्र हें। इसी को एडम स्मिथ का सामान्य साम्य से सम्बद्ध दृष्टिकोण कहा जा सकता है।

33.3.3 लियो वाल्रा, परेटो तथा लियोन्तीफ का दृष्टिकोण

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, सामान्य साम्य की अवधारणा को वस्तुत: वाला ने 1874 में प्रतिपादित किया था और इसके तीन वर्ष बाद ही परेटो ने इसकी विस्तृत विवेचना की। इन दोनों ने यह तर्क दिया कि सामान्य साम्य का समय समूची आर्थिक प्रणाली के साम्य में अन्तर्निहित लाखों आर्थिक इकाईयों के व्यष्टिगत साम्य से होता है। प्रोफेसर लियोन्तीफ ने आगे चलकर अपने आदा-प्रदा विश्लेषण के रूप में सामान्य साम्य के सिद्धान्त को एक व्यावहारिक रूप प्रदान किया। हम संक्षेप में इन तीनों के विचारों से आपका परिचय करायेंगे।

पहले वाल्रा के मॉडल को लीजिए। वाल्रा ने सामान्य मांग व पूर्ति फलनों की अपेक्षा साम्य निर्धारण थे अधिशेष मांग फलन का प्रयोग किया, हालांकि दोनों में वे प्रत्यक्ष संबंध मानते थे। साधारण तौर पर किसी एक वस्तु की मांग बाजार में विद्यमान सभी (n) वस्तुओं की कीमतों, आय के स्तर एवं उपभोक्ताओं की संख्या पर निर्भर करती है। इस प्रकार, किसी एक (i^{th}) वस्तु के मांग फलन को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

$$Q_1=D_1(P_1,P_2,P_3,\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots,P_i\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots P_n) \quad \ldots(33.2)$$

$$(i=1,2,3,\ldots\ldots\ldots\ldots n)$$

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में पूर्ति भी कीमतों पर निर्भर करती है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के अन्तर्गत पूर्ति फलन का कोई अर्थ नही है। फर्मों की निर्दिष्ट संख्या को दृष्टिगत रखते हुए i^{th} वस्तु की पूर्ति को भी फलनिक रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

$$Q_i\text{-}S_i\ (P_1,P_2,P_3,\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots P_i\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots P_n) \quad \ldots.(33.3)$$

$$(i=1,2,3\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots n)$$

i^{th} वस्तु का अधिशेष मांग फलन वस्तुत: मांग व पूर्ति के अन्तर को व्यक्त करता है।

अस्तु,

$$Ei\ (P_1,P_2,P_3,\ldots\ \ldots..P_i,\ldots..P_n) = Di(P_1,P_2,P_3,\ \ldots P_i,\ \ldots P_n)\text{-}\ Si\ (P_1,P_2,P_3,\ldots$$
$$\ldots.P_i\ldots\ldots\ldots P_n) \quad \ldots(33.4)$$

समीकरण (33.4) बतलाता है कि अधिशेष मांग वस्तुत: मांग के पूर्ति से आधिक्य को व्यक्त करता है जबकि प्रत्येक वस्तु/साधन की मांग व पूर्ति दोनों उसकी कीमत पर निर्भर करती है,

चूंकि समीकरण (33.4) में दांई और की मदें n कीमतों पर निर्भर करती है, बायां पक्ष भी निश्चित तौर पर n कीमतों पर ही निर्भर करेगा।

अधिशेष मांग के सिद्धान्त को आप निम्न वक्र द्वारा भी समझ सकते है।

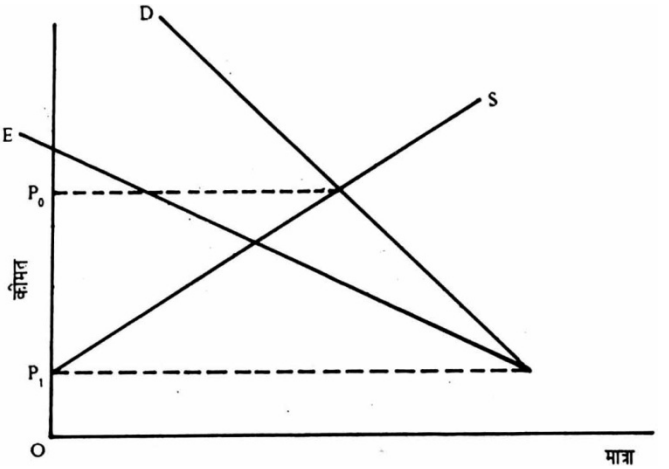

चित्र 33.2 अधिशेष मांग वक्र

चित्र 33.2 में मांग तथा पूर्ति दोनों ही वक्र सरल रेखाओं के रूप में प्रस्तुत किए गए है। परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार साम्य कीमत P_0 पर मांग व पूर्ति दोनों समान है तथा अधिशेष मांग शून्य है।

परन्तु जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, अधिशेष मांग फलन S भी सरल रेखा है। यदि कीमत P_0 से अधिक है ($P>P_0$) तो अधिशेष मांग की मात्रा ऋणात्मक होगी। जब कीमत P_0 से कम है ($P<P_0$) तो मांग की मात्रा पूर्ति से अधिक होती जाएगी। अन्त में P_1, कीमत पर पूर्ति शून्य हो जाती है तथा अधिशेष मांग कुल मांग के समान होजाती हें।

चित्र 33.2 में प्रस्तुत वक्रों को रैखिक समीकरणों के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

$Qd=A-aP$……..(A, a>o)……..(33.5)

$Qs=B+bP$……..(B,b>o)……..(33.6)

तथा $E=(A-B)-(a+b)P$……..(33.7)

वक्र E (चित्र 33.2) वस्तुत: समीकरण (33.7) का विलोम हें तथा उसे निम्न रूप में लिखा जा सकता है

$Ep=A'-a'Q$……..(33.8)

जबकि $A'=(A-B)/(a+b)$

तथा $a'= 1/(a+b)$

समीकरण (33.8) रैखिक होने के साथ ही अधिशेष मांग वक्र के ऋणात्मक ढलान को भी स्पष्ट करता हें।

वाला ने बताया कि उपभोक्ता न केवल साधनों के स्वामी है अपितु इन साधनों के प्रयोग से प्राप्त अन्तिम वस्तुओं के प्रयोगकर्ता भी है। आपने अब तक देखा था कि अन्तिम वस्तुओं की मांग

उपभोक्ताओं के व्यवहार पर तथा श्रम की पूर्ति मजदूरी की दर पर निर्भर करती हें। अधिशेष मांग के सिद्धान्त के अनुसार यदि पूर्ति को ऋणात्मक मांग माना जाए तो मांग व पूर्ति में कोई अन्तर नही रह जाएगा। श्रम के संदर्भ में, जितना समय कोई व्यक्ति (उपभोक्ता) नींद (या विश्राम, मनोरंजन) जैसी निजी गतिविधियों में लगाता हें उसे धनात्मक मांग कहा जाता है जबकि शेष समय को अधिशेष मांग मान लेते है (जो बहुधा ऋणात्मक होता हें)। इसके विपरीत उत्पादक आदाओं के रूप में स्वयं की मदें भी प्रयुक्त करते है जो धनात्मक मांग है तथा शेष को ऋणात्मक अधिशेष मांग की संज्ञा दी जा सकता है। प्रत्येक वस्तु की सकल अधिशेष मांग विभिन्न धनात्मक व ऋणात्मक अधिशेष मांग फलनों के योग से प्राप्त होती है। इसके फलस्वरूप साधारण साम्य की स्थिति में साधन व वस्तु के बाजारों में कोई अन्तर नहीं होता।

वाल्रा के माडल में विद्यमान अधिशेष मांग फलनों की संख्या n होती हें तथा इन फलनों में न केवल सभी वस्तुएं सम्मिलित की जाती है अपितु उत्पादन के साधनों तथा ऐसी शेष वस्तुओं को भी शामिल किया जाता है जिनका बाजार मे विनिमय होता है। अन्य शब्दों में, वाल्रा के मतानुसार सामान्य साथ की स्थिति तब प्राप्त होती हें जब सभी वस्तुओं (उपभोग वस्तुएं एवं उत्पादन के साधन) के बाजार एक ही समय सन्तुलन की स्थिति में हो। इस स्थिति में प्रत्येक वस्तु साधन की अधिशेष मांग शून्य होती है।

गणितीय दृष्टि से n वस्तुओं के लिए n समीकरण होते है तथा सभी समीकरण अन्य समीकरणों से स्वतंत्र नहीं होते। यह भी जरूरी है कि सभी खरीदी गई वस्तुओं का मौद्रिक मूल्य समस्त बेची गई वस्तुओं के मौद्रिक मूल्य के समान हो। अर्थात्

$$\sum_{i=1}^{n} P_i E_i(P_1, P_2, P_{3,}.....P_i,.....P_n) = 0.....(33.9)$$

समीकरण (33.9) वस्तुत: वाल्रा के नियम के रूप में जाना जाता हें जिसका अर्थ यह है कि सामान्य साम्य की स्थिति में उपभोग वस्तुओं तथा उत्पादन के साधनों की अधिशेष मांग का मौद्रिक मूल्य शून्य होना चाहिए।

विल्फ्रेडो परेटो ने वाल्रा की भांति यह मान्यता ली कि जहां प्रत्येक आर्थिक इकाई-लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है, वही इस बात को भी सिद्ध किया जा सकता है कि समाज में एक व्यक्ति के आर्थिक कल्याण को केवल तभी बढ़ाया जा सकता है जबकि दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के आर्थिक कल्याण में कमी की जाए। इसी प्रकार, जहां प्रत्येक वस्तु का उत्पादन न्यूनतम लागत अथवा अधिकतम दक्षता के आधार पर करने से अधिकतम कल्याण की प्राप्ति होती है, वही किसी एक वस्तु के उत्पादन को बढ़ाने थे दूसरी अन्य वस्तु/वस्तुओं के उत्पादन में कमी करना अनिवार्य होगा। परेटो ने कहा कि अधिकतम (आर्थिक) कल्याण की स्थिति वह होगी जिसमें सभी उत्पादन के साधनों एवं इनके प्रयोग से प्राप्त उपभोग वस्तुओं का आवंटन इष्टतम रूप में होता है तथा इस (सामान्य साम्य) स्थिति से विचलित

होने पर आर्थिक कल्याण के स्तर में कमी आ जाती है। परेटो के कल्याण अर्थशास्त्र की विस्तृत विवेचना अगली इकाइयों में प्रस्तुत की गई हें।

वैसिली लियोन्तीफ ने आधुनिक युग में आदा-प्रदा तालिका के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि समूची अर्थव्यवस्था में किस प्रकार उपभोग तथा उत्पादन की प्रक्रियाओं को एक साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। लियोन्तीफ ने डॉ. केने के मॉडल को प्रतीक मानते हुए बतलाया कि वस्तुओं तथा उत्पादन के साधनों के मध्य किस प्रकार संबंध स्थापित किए जौ सकते हें। उन्होंने कहा कि प्रत्येक वस्तु जहां एक व्यक्ति (क्षेत्र) के लिए उपभोग की वस्तु होती हें, वही किसी अन्य व्यक्ति (क्षेत्र) के लिए यह एक आदा अथवा साधन का रूप भी ले सकती है। प्रत्येक वस्तु तथा अन्य वस्तुओं के परस्पर संबंध को उन्होंने आदा-प्रदा गुणांक के रूप में प्रस्तुत किया।

इस प्रकार खण्ड 33. 3 में आपने देखा कि सामान्य साम्य के अन्तर्गत हम केवल एक वस्तु या उत्पादन के एक साधन के इष्टतम आवंटन की बात नही करते, अपितु समानान्तर रूप सें सभी वस्तुओं व साधनों के इष्टतम आवंटन का विश्लेषण करते है। इस विश्लेषण की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें समाज के सभी वर्गो एवं सभी वस्तुओं व साधनों के बीच संबंध को आधार बनाया जाता है।

अब हम सामान्य साम्य के विश्लेषण में निहित प्रमुख मान्यताओं की चर्चा करेंगे।

33.4 सामान्य साम्य मे निहित मान्यताएं

वाल्रा ने साट रूप से यह मान्यता ली थी कि विभिन्न वस्तुओं (उत्पादन के साधनों सहित) की अधिशेष मांग शून्य होने पर सामान्य साम्य की स्थिति प्राप्त होती हें। अन्य शब्दों मे, प्रत्येक उपभोग वस्तु की बाजार मांग इसकी कुल पूर्ति के समान होनी चाहिए। इसी प्रकार साम्य स्थिति में प्रत्येक साधन की पूर्ति एवं मांग मे समानता होनी चाहिए। वाल्रा ने यह भी कहा कि कुल आय एवं कुल व्यय में भी समानता होनी चाहिए।

वस्तुत : इस समूचे विश्लेषण की पृष्ठभूमि में निम्नलिखित मान्यताएं निहित थी।

1. सभी उपभोग वस्तुओं तथा सभी साधनों के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता होनी चाहिए। अन्य शब्दों में, प्रत्येक वस्तु/साधन की कीमत का निर्धारण कुल मांग व पूर्ति की साम्य स्थिति में हो तथा प्रत्येक विक्रेता व विक्रेता के लिए बाह्य रूप में निर्धारित इस कीमत पर अधिकतम कल्याण प्रदान करने वाली मात्रा का चुनाव ही मुख्य लक्ष्य होना चाहिए।
2. अर्थव्यवस्था में विद्यमान साधनों (श्रम, पूंजी आदि) की मात्रा स्थिर रहनी चाहिए। उत्पादकों का एक मात्र उद्देश्य निर्दिष्ट साधनों में से प्रत्येक का इष्टतम प्रयोग से संबंध होना चाहिए। उत्पादन प्रविधि अपरिवर्तित रहनी चाहिए। इसी प्रकार उपभोक्ताओं की रुचियां यथावत रहनी चाहिए। अन्य शब्दों में प्रत्येक उपभोक्ता व उपयोगिता फलन एवं प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन स्थिर रहना चाहिए। इसी प्रकार उपभोक्ता की आय, व उत्पादक के पास विद्यमान साधन (यानि प्रत्येक आर्थिक इकाई की साधन सीमा) अपरिवर्तित रहने चाहिए।

3. समाज के प्रत्येक व्यक्ति (आर्थिक इकाई) की दोहरी भूमिका होनी चाहिए। प्रत्येक उपभोक्ता एक ओर वस्तु/वस्तुओं की मांग करता है तथा दी हुई आय का इष्टतम आवंटन करता है, और वही दूसरी ओर वह उत्पादन के साधन/साधनों की आपूर्ति का इष्टतम आवंटन करके अधिकतम आय प्राप्ति का भी प्रयास करता है। इसी प्रकार उत्पादक साधनों का क्रेता होने के साथ वस्तु/वस्तुओं की आपूर्ति करता है। सामान्य स्थिति के लिए यह आवश्यक हें कि प्रत्येक साधन/वस्तु के बाजार में पूर्ति व मांग में संतुलन हो।
4. प्रत्येक आर्थिक इकाई का उद्देश्य स्वहित को अधिकतम करना है तथा वह अपनी आया साधनों का आवंटन इसी उद्देश्य को सिद्ध हेतु करती है। अर्थात् उपभोक्ताओं का उद्देश्य अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना तथा फर्मों का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। साथ ही यह भी मान्यता ली गई कि इस निर्णय प्रक्रिया में सरकार अथवा किसी अन्य इकाई/संगठन की ओर से कोई व्यवधान उपस्थित नही किया जाता और न ही उपभोक्ता या उत्पादन की निर्णय प्रक्रिया पर किसी अन्य व्यक्ति के निर्णय का कोई प्रभाव होता है।
5. समाज में जहां साधनों की मात्रा, उत्पादन प्रविधि, रुचियां, तथा व्यष्टिगत स्तर पर जहाँ आय एवं कीमतें बाह्य रूप से प्रदत्त या सीमित है, वही उपभोक्ताओं तथा विक्रेताओं की संख्या भी निर्दिष्ट होती है।
6. चूंकि उत्पादन के साधन एवं उत्पादन प्रविधि स्थिर है अत: विभिन्न वस्तुओं की अधिकतम मात्रा कितनी होगी यह भी निश्चित है। यदि एक वस्तु की मात्रा बढ़ाई जानी है तो ऐसा तभी संभव हैं जब दूसरी अन्य वस्तु या वस्तुओं की मात्रा में कमी हो। इसी प्रकार एक व्यक्ति को अधिक वस्तुएं प्राप्त होने पर दूसरे व्यक्तियों को प्राप्त संतुष्टि में कमी हो जाएगी।
7. उपभोग वस्तुओं अथवा उत्पादन के साधनों के बीच स्थानापन्नता होनी चाहिए।

33.5 उपभोक्ता की साम्य स्थिति

आर्थिक विश्लेषण में उपभोक्ता की प्राथमिकताओं की भूमिका प्राय: दो प्रकार की होती है। प्रथम, ये प्राथमिकताएं उसके व्यवहार को निर्धारित करती है, तथा आय का आवंटन किस कम में करके उपभोक्ता अपने संतुष्टि स्तर को अधिकतम करता है, इसे सुनिश्चित करती है द्वितीय इन प्राथमिकताओं के आधार पर यह भी निर्धारित किया जाता है कि बाजार की स्थिति से अधिकतम सामाजिक (आर्थिक) कल्याण प्राप्त होता है या नही।

यद्यपि प्राथमिकताओं की इस अहम् भूमिका के विषय में अनेक विवाद हें, तथापि हम आर्थिक कल्याण के स्तर को समझने में इनकी नि:सन्देह मदद ले सकते है। उदाहरण के लिए, यदि एक उपभोक्ता (A) x को y की तुलना में अधिक प्राथमिकता प्रदान करता है (x>y) तो इसका यह अर्थ हुआ कि x की मात्रा अधिक मिलने पर उसका संतुष्टि स्तर भी अधिक होगा। यदि उपभोक्ता केवल आर्थिक साम्य के आधार पर अपनी आय का आवंटन करता हो।

तो उसका आर्थिक कल्याण उस स्तर पर अधिकतम होगा जहां उपयोगिता फलन में सम्मिलित प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता एवं कीमत का अनुपात समान हो।

अस्तु;

$$\frac{Mu_X}{P_X} = \frac{Mu_X}{P_Y} = \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \frac{Mu_n}{P_n} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (33.10)$$

आपको स्मरण होगा कि मार्शल ने इसे सम सीमान्त उपयोगिता के नियम की संज्ञा दी थी तथा हिआ ने उदासीनता वक्रों के संदर्भ में इसी बात को निम्न रूप में प्रस्तुत किया था;

$$MRS_{XY} = \frac{Mu_X}{Mu_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$$

(यहां कुल दो ही वस्तुओं X व Y का विश्लेषण होगा)

संक्षेप में, आंशिक साम्य की दशा में उपभोक्ता को X तथा Y की उतनी ही मात्राओं से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होगी जिनका निर्धारण उदासीनता वक्र एवं कीमत रेखा के ढलान समान होने पर होता है। यही बात ऊपर आपने खण्ड 33.2 में देखी थी।

परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में अनेक उपभोक्ता विद्यमान होते हें और साथ ही उन सभी के लिए P_x एवं P_y भी पूर्व निर्धारित रहती है। अस्तु, उपभोक्ताओं की साम्य स्थिति के लिए निम्न स्थिति प्राप्त होनी चाहिए;

$$\frac{Mu_X}{Mu_Y}(A) = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(B) = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(C) = \frac{P_X}{P_Y} \ldots\ldots\ldots (33.11)$$

यहां हमने तीन उपभोक्ता लिए हें, परन्तु आप सुविधा के लिए दो या अधिक उपभोक्ता भी ले सकते है। यदि दो ही उपभोक्ता लिए जाएं तो समीकरण (33.11) का यह अभिप्राय होगा कि उपभोक्ताओं की प्राप्त कुल उपयोगिता X एवं Y के उस आवंटन से अधिकतम होगी जिस पर दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता वक्र परस्पर स्पर्श करते हों। साथ ही, उसी स्तर पर दोनों की बजट रेखा का ढलान भी समान होना चाहिए, अर्थात्

$$MRS_{xy}(A) = MRS_{xy}(B) = = \frac{P_X}{P_Y}$$

यदि A की प्राथमिकता X के लिए Y की तुलना में अधिक हो, तथा B,Y को अपेक्षाकृत अधिक पसंद करता हों और अगर समाज X की मात्रा अधिक Y की कम उत्पादित करता हो तो उपरोक्त साम्य स्थिति में दोनों उपभोक्ताओं का संयुक्त कल्याण अधिकतम होने पर भी A का संतुष्टि स्तर B की अपेक्षा अधिक ऊंचा होगा। इसके विपरीत Y का उत्पादन अधिक होने पर B का सन्तुष्टि स्तर A की तुलना में अधिक होगा । इसका कारण यह है कि प्राय: उपभोक्ताओं की रूचि उनके तटस्थता वक्रों के ढलान में प्रतिबिम्बित होती है और यदि A की रूचि X के प्रति अधिक हें तो उसके उदासीनता वक्र का

ढलान अधिक होगा। जब समाज X का अधिक उत्पादन करता है तो कम कीमत (अपेक्षाकृत) पर A को X की अधिक इकाइयां प्राप्त होगी तथा B की तुलना में उसे प्राप्त कुल कल्याण भी अधिक होगा।

इसी बात को चित्र 33.3 के माध्यम से आप समझ सकते है।

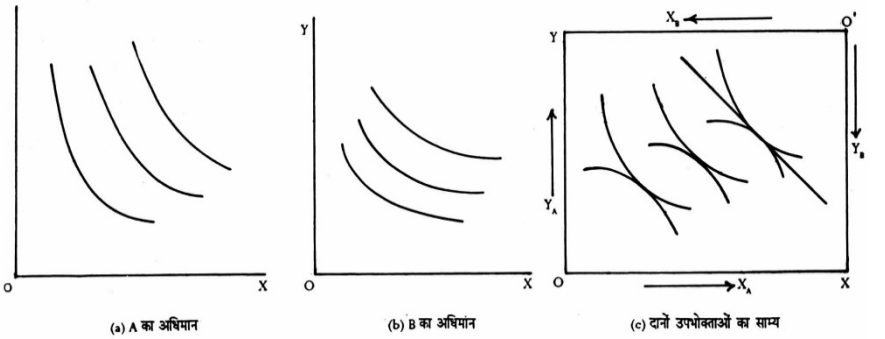

चित्र 33.3 उपभोक्ताओं का समान्य साम्य

जैसा कि चित्र के भाग (a) व (b) से स्पष्ट है, A के अधिमान चित्र में उदासीनता वक्रों का ढलान अधिक है जबकि X में रूचि कम होने के कारण B के उदासीनता वक्रों का ढलान कम है। भाग C से पता चलता है कि समाज OX मात्रा X की OY व Y मात्रा Y की तैयार करता है (OX>OY) और बजट रेखा का ढलान कम होने के कारण Y की उपेक्षा X की कीमत कम है। यही कारण है कि A को प्राप्त कल्याण स्तर B की तुलना में अधिक माना जा सकता है।

33.6 विनिमय का सामान्य सिद्धान्त

यह आप जानते है कि विनिमय का अर्थ वस्तुओं (या मुद्रा-वस्तु) के आदान प्रदान से है। सुविधा के लिए हम यह मान्यता ले सकते है कि समाज में दो ही व्यक्ति है जो दो वस्तुओं के उत्पादक भी है तथा उपभोक्ता भी। सुविधा के लिए ही हम उपभोक्ताओं को A व B तथा वस्तुओं को X तथा Y का नाम दे सकते है।

दोनों व्यक्तियों, A व B के बीच X तथा Y का विनिमय केवल उसी दशा में होगा जब A के पास जितनी मात्रा में X उपलब्ध है वह उसकी अपेक्षा अधिक Y चाहता है। दोनों व्यक्तियों में विनिमय केवल दोहरे संयोग के अन्तर्गत ही संभव है। तदनुसार A कुछ मात्रा X की देकर B से कुछ इकाईयां Y की लेने को सहमत हो। इसी प्रकार यह भी जरूरी है कि B स्वयं के पास विद्यमान Y में से कुछ इकाईयां A को देने, एवं बदले में कुछ इकाईयां X लेने को सहमत हो जाए।

सामान्य साम्य के अन्तर्गत विनिमय का आशय उस दशा से है जिसमें विनिमय के पश्चात् दोनों, यानि A तथा B को प्राप्त कुल संतुष्टि या उपयोगिता का स्तर अधिकतम हो। अन्य शब्दों में, उस इष्टतम स्थिति से. विचलित होने पर किसी एक उपभोक्ता, या दोनों ही उपभोक्ताओं का उपयोगिता स्तर कम हो सकता है।

चित्र 33.4 में इसी विनिमय सिद्धान्त की व्याख्या की गई है। इस चित्र में समाज को प्राप्त X की कुल मात्रा OAX(=OBY) तथा Y की कुल मात्रा OAY (=OBX) है। चूंकि वस्तुओं की मात्राएं सीमित है, यदि A को, X या Y या दोनों की अधिक मात्राएं प्राप्त होती है तो स्वाभाविक रूप से B को इनकी कम इकाइयां प्राप्त होंगी। अन्य शब्दों में ए को प्राप्त संतुष्टि का स्तर बढ़ने पर B को प्राप्त संतुष्टि के स्तर में कमी आएगी। यह इसी बात से स्पष्ट होता है कि जैसे A,O_A से O_B की ओर प्रवृत्त होता है, वह उत्तरोत्तर उंचे तटस्थता वक्र (I_A से II_A, III_A ,IV_A आदि) पर पहुंचता है परन्तु B का तटस्थता वक्र उत्तरोत्तर नीचे की ओर (IVB से III_B,UU_B, I_B) प्रवृत्त होता है। यदि इसके विपरीत OB से OA की ओर आएं तो B के संतुष्टि स्तर में वृद्धि होगी जबकि A का संतुष्टि स्तर गिरता जाएगा।

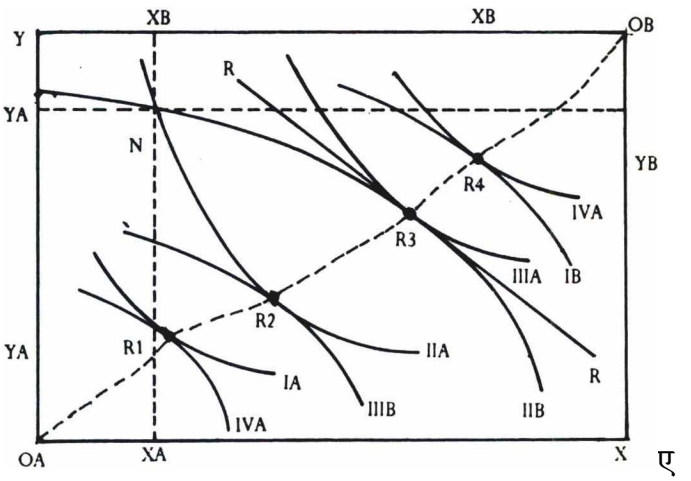

चित्र 33.4 विनिमय का सामान्य साम्य

अब कल्पना कीजिए कि A तथा B दोनों की प्रारम्भिक स्थिति N बिन्दु पर है जहां A को $\bar{X}_A$ तथा $\bar{Y}_A$ इकाइयां क्रमश: X तथा Y की प्राप्त होती हें। इसी प्रकार N बिन्दु पर B को क्रमश: $\bar{X}_B$ तथा $\bar{Y}_B$ इकाइयां प्राप्त होती है।

जैसा कि आप देख सकते है N बिन्दु पर A के तटस्थता वक्र का ढलान B के तटस्थता वक्र के ढलान से अधिक है

$$\frac{Mu_X}{Mu_Y}(A) > \frac{Mu_X}{Mu_Y}(B)$$

जिसका अभिप्राय: यह हुआ कि A अधिक मात्रा X की लेकर Y की मात्रा का के साथ विनिमय करना चाहेगा। यदि वह चतुर है तो बिना B के सन्तुष्टि स्तर में कमी किए R3 पर B को ले जाना चाहेगा जहां वह अपनी Y की कुछ इकाइयां देकर पर्याप्त मात्रा X की प्राप्त कर लेगा तथा ऊंचे तटस्थता वक्र पर पहुंच जाएगा। जैसा कि आप देख सकते है, N से R3 पर जाने के दौरान B का संतुष्टि स्तर तो II_B के स्वरूप यथावत रहता है जबकि A का संतुष्टि स्तर II_A से बढ़कर III_A हो जाएगा ।

इसके विपरीत यदि B अधिक चतुर सौदागर है तो वह II_A का संतुष्टि स्तर II_A के स्वरूप रखते हुए उसे थोड़ी सी इकाइयां X की देकर पर्याप्त इकाइयां Y ले सकेगा और अपने संतुष्टि स्तर को II_B से बढ़ाते हुए III_B पर छुप जाएगा।

जहां तक दोनों के संयुक्त संतुष्टि स्तर का प्रश्न है, R_4, R_3, और यहां तक कि R_2 व R_1 पर भी, खंड 33.2 में प्रस्तुत समीकरण (33.1) के अनुरूप साथ स्थिति की निम्न शर्त पूरी होती है MRS_{XY} (A) = MRS_{XY} (B)

इस प्रकार जहां भी दोनों उपभोक्ताओं के तटस्थता वक्रों के ढलान समान होते है, विनिमय की साम्य स्थिति वही हो सकती है। यदि इसी स्तर पर किसी बिन्दु (जैसे R_3) पर आगम रेखा का ढलान भी समान हो तो आप X व Y की उन मात्राओं को ज्ञात कर सकते है जो विनिमय के पश्चात् A तथा B को वास्तव में दी हुई कीमतों पर प्राप्त होती है।

33.7 सारांश

इस इकाई में आपने सामान्य साम्य की अवधारणा की जानकारी प्राप्त की। आपने देखा कि प्राय: प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपनी उपयोगिता के स्तर को अधिकतम करने का प्रयास करता है, परन्तु सामान्य साम्य की स्थिति वह है जब समाज के सभी व्यक्ति एक साथ साम्य या संतुलन की स्थिति में हो। यह वही स्थिति होती है जब सभी उपभोक्ताओं को सभी वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त उपयोगिताएं अथवा उनके अनुपात एक ही स्थिति में कीमतों या कीमतों के अनुपात के समान हो।

आपने इस इकाई में यह भी पड़ा कि सामान्य साम्य की अवधारणा का सूत्रपात 18 वी शताब्दी में फ्रांस के डॉ. केने द्वारा प्रस्तुत आर्थिक तालिका से हुआ, परन्तु इसके विकास में परोक्ष रूप से एडम स्मिथ ने भी योगदान दिया। आगे चलकर वाल्रा, परेटो एजवर्थ, व लियोंतीफ ने भी सामान्य साम्य की अवधारणा का प्रयोग अपने विश्लेषण में किया। वाल्रा ने अपने मॉडल में माँग व पूर्ति तथा अधिशेष मांग के गणितीय दृष्टिकोण का विकास किया।

इसी इकाई में आपने सामान्य साम्य की अवधारणा मे निहित मान्यताओं का भी अध्ययन किया। अब में आपने इस इकाई में दो उपभोक्ताओं द्वारा दो वस्तुओं का विनिमय किस प्रकार इष्टतम रूप में किया जा सकता है इसका भी विश्लेषण पढ़ा।

33.8 शब्दावली

आर्थिक तालिका- फ्रांस के प्रकृतिवादी विद्वान डॉ. केने द्वारा प्रस्तुत एक तालिका जिसके माध्यम से उन्होंने यह बताने का प्रयास किया था कि राष्ट्रीय आय का वितरण उत्पादक वर्ग, भू-स्वामी वर्ग एवं अनुत्पादक वर्ग के मध्य होता है।

अदृश्य शक्ति- एडम स्मिथ द्वारा प्रदत्त अवधारणा जिसके अनुसार स्व-हित को अधिकतम करने की लालसा प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक क्रियाएं संपादित करने की प्रेरणा देती है।

अधिशेष मांग फलन- लियो वाल्रा द्वारा प्रतिपादित अवधारणा जिसके अनुसार किसी एक वस्तु की अधिशेष मांग दी हुई कीमतों पर उसकी मांग का पूर्ति से आधिक्य है। मांग व पूर्ति समान होने पर अधिशेष मांग शून्य होती है।

वाल्रा का नियम- इसके अनुसार सामान्य साम्य की स्थिति में उपयोग वस्तुओं व उत्पादन के साधनों की अधिशेष मांग का मौद्रिक मूल्य शून्य होता है।

चतुर्भुजीय चित्र- इस अवधारणा का प्रतिपादन विल्फ्रेड़ों परेटो ने किया। इसके अनुसार दो वस्तुओं (या साधनों) की मात्रा सीमित होने पर यदि इनकी अधिक मात्रा एक व्यक्ति को दी जाए (या साधनों का प्रयोग एक वस्तु के लिए अधिक किया जाप तो दूसरे व्यक्ति को उपलब्ध मात्राएं (दूसरी वस्तु का उत्पादन) कम हो जाती है।

इष्टतम स्थिति-वस्तुओं या साधनों का वह संयोग जिस पर निर्दिष्ट आर्थिक इकाई (उपभोक्ता या उत्पादक) का आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है, इष्टतम स्थिति है। जब तक बाजार की परिस्थितियां, उपभोक्ताओं की रुचियां, उत्पादन की तकनीक तथा कीमतें अपरिवर्तित रहती है, इष्टतम स्थिति बनी रहती है।

बोध प्रश्न

- इकाई के अंत में प्रस्तुत उत्तर संकेतों से अपने उत्तर का मिलान करें।

1- सामान्य साथ की परिभाषा दीजिए। सामान्य साथ की प्रस्तुति डॉ. केने तथा एडम स्मिथ द्वारा किस प्रकार की गई थी।

2- सामान्य साम्य की प्राप्ति किस प्रकार होती है? इसका विश्लेषण किन मान्यताओं पर आधारित है?

33.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- A Koutsoyiannis, modern Microeconomics, Second Edition, ELBS/Macmillan
- Ferguson, C.E., Micro Economic Theory, Richard D-Irwin Inc.
- Henderson, J.M. and R.E. Quandt, Microeconomic theory : A Mathematical Approach, McGraw Hill Book Company.

33.10 बोध प्रश्नों के उत्तर संकेत

1- सामान्य साम्य का अभिप्राय है, समानान्तर रूप में साधनों तथा उपभोक्ता-आय का इष्टतम आवंटन जिसके द्वारा उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों की एक ही स्थिति में अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हो जाती है। देखें खंड 33.2।

आपको इस प्रश्न के उत्तर में यह भी बताना है कि सर्व प्रथम डॉ. केने ने अपनी आर्थिक तालिका के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया था कि उत्पादन का वितरण उत्पादक वर्ग, भू-स्वामी वर्ग एवं अनुत्पादक वर्ग में किया जाता है इसी प्रकार स्मिथ ने यह बतलाया था कि जब प्रत्येक व्यक्ति स्व-हित के पोषण का प्रयास करता हें तब वह वस्तुत : सार्वजनिक हित में ही वृद्धि करता है।

(देखें खण्ड 33.3.1 एवं 33.3.2)

2- सामान्य साम्य की प्राप्ति का विश्लेषण करते समय पहले उपभोक्ताओं की इष्टतम स्थिति का (गणितीय एवं रेखाचित्रों के माध्यम से) का विवरण दीजिए फिर साधनों के इष्टतम आवंटन का उसी प्रकार वर्णन कीजिए और अन्त में बतलाइए कि किस प्रकार उत्पादन संभावना वक्र के माध्यम से दोनों वर्गों की इष्टतम स्थिति को एक साथ व्यक्त किया जा सकता है (देखें खण्ड 33.5)।

सामान्य साम्य की अवधारणा कुछ महत्वपूर्ण मान्यताओं पर आधारित है। खण्ड 33, 4 में बतलाया गया है कि इन्हीं मान्यताओं के आधार पर सामान्य साम्य की प्राप्ति हो सकती हें ऐसा वाल्रा ने बतलाया था।

इकाई -34

सामान्य साम्य की अवधारणा : उत्पादकों का साम्य

The Concept of General Equilibrium: Equilibrium of Producers

इकाई की रूपरेखा

34.0 उद्देश्य

34.1 प्रस्तावना

34.2 उत्पादन में सामान्य साम्य का अर्थ

34.3 उत्पादक की साम्य स्थिति

34.3.1 उत्पादन का सामान्य साम्य

34.4 उत्पादन संभावना वक्र का निरूपण

34.4.1 इष्टतम उत्पादन एवं विनिमय का साम्य

34.5 वस्तुओं व साधनों की कीमतें

34.6 सारांश

34.7 शब्दावली

34.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

34.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

34.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने सामान्य साम्य की परिभाषा एवं मान्यताओं का अध्ययन था। आपने यह भी पढ़ा था कि यदि समाज मे दो वस्तुओं का उत्पादन होता हो तथा दो उपभोक्ता इनका परस्पर विनिमय करना चाहे तो उन्हें किस स्तर पर स्वतंत्र रूप से और साथ ही संयुक्त रूप से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त होगी। वर्तमान इकाई में आप उत्पादन के क्षेत्र में विभिन्न उत्पादक किस प्रकार साधनों का इष्टतम आवंटन करते है इस बात का अध्ययन करेंगे। इकाई के अन्त में आप उत्पादकों व उपभोक्ताओं को एक साथ किस स्तर पर इष्टतम स्थिति प्राप्त होती है इसका भी विश्लेषण कर सकेंगे। इस इकाई के द्वारा आप :

– यह जान सकेंगे कि एक या एक से अधिक उत्पादक साधनों का इष्टतम आवंटन किस प्रकार करते है

- यह देखेंगे कि साधनों के इष्टतम आवंटन द्वारा वस्तुओं की इष्टतम मात्रा का उत्पादन किस प्रकार किया जाता है; तथा
- वस्तुओं की इष्टतम मात्रा को फिर उपभोक्ताओं में किस प्रकार इष्टतम रूप में आवंटित किया जाता है।

34.1 प्रस्तावना

जिस प्रकार उपभोक्ता अपनी निर्दिष्ट आय में अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने का प्रयास करते है, उसी प्रकार प्रत्येक उत्पादक भी यह प्रयास करता है कि उत्पादन - प्रक्रिया में प्रयुक्त साधन का इष्टतम रूप में प्रयोग हो। इस उद्देश्य के पीछे उत्पादक का यही प्रयोजन रहता है कि निर्दिष्ट साधनों के प्रयोग से वह अधिकतम उत्पादन या आगम प्राप्त करे अथवा निर्दिष्ट मात्रा में वस्तु का न्यूनतम लागत पर उत्पादन करें।

जैसा कि आपने पिछली इकाई में देखा था, यदि समाज को दो या अधिकतम वस्तुओं हा उत्पादन करना हो, तो साधनों का इष्टतम प्रयोग प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में होना चाहिये। अन्य शब्दों में, आपने इससे पूर्व आंशिक विश्लेषण के अन्तर्गत दो या अधिक साधनों के एक वस्तु के उत्पादन हेतु इष्टतम प्रयोग की शती का अध्ययन किया था। इन साधनों का दो या अधिक वस्तुओं के उत्पादन में किस प्रकार इष्टतम रूप में प्रयोग किया जाता है, इस प्रक्रिया का प्रस्तुत इकाई में अध्ययन किया जाएगा। आप यह समझ सकते है कि यदि उत्पादक एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाना चाहें तो उन्हें अन्य किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की मात्रा कम करनी होगी। यह पुनरावंटन की प्रवृत्ति केवल उस स्थिति में बंद होगी जब प्रत्येक साधन का प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में इष्टतम प्रयोग हो जाता है। यही स्थिति उत्पादन के सामान्य साथ की स्थिति कहलाती है।

34.2 उत्पादन में सामान्य साम्य का अर्थ

आप इससे पूर्व यह पढ़ चुके हें कि यदि उत्पादन के किसी एक साधन (Z_i) का किसी वस्तु (X) के उत्पादन हेतु प्रयोग किया जा रहा हो तो साधन की निर्दिष्ट कीमत पर उसका इष्टतम प्रयोग उस स्तर पर होगा जहाँ

$$MPzi = Pzi \quad \text{----------(34.1)}$$

की शर्त पूरी होती है। यदि इस साधन का प्रयोग अनेक वस्तुओं के उत्पादन में किया जा रहा हो तो प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में इस साधन की सीमान्त उत्पादकता व कीमत में समानता होनी चाहिए अन्यथा जहां सीमान्त उत्पादकता का स्तर कीमत से कम हैं वहां से साधन को हटा कर जहां यह स्तर अधिक है वहां अधिक इकाइयां प्रयुक्त की जाएंगी।

यदि एक वस्तु (X) के उत्पादन हेतु Z_1 व Z_2 (दो साधनों) का प्रयोग किया जा रहा हो तो, जैसा कि आप समोत्पाद वक्र विश्लेषण में पढ़ चुके है, दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकता का अनुपात

इनकी कीमतों के अनुपात के समान होना चाहिए। अस्तु, X के उत्पादन में साधनों के इष्टतम प्रयोग की शर्त निम्न होगी :

$$\frac{MP_{Z1}}{MP_{Z2}} = \frac{P_{Z1}}{P_{Z2}} = \qquad \text{.....(34.2)}$$

परन्तु समीकरण (34. 2) भी आंशिक साम्य स्थिति को ही व्यक्त करता है। उत्पादन के सामान्य साम्य के लिए दो या अधिक साधनों को दो या अधिक वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। सुविधा के लिए, हम दो ही वस्तुओं का उत्पादन मॉडल लेते है। अलग अलग रूप में Z_1 व Z_2 के प्रयोग की इष्टतम स्थिति इस प्रकार होगी :

X के लिए Y के लिए

$$\frac{MP_{Z1}}{MP_{Z2}}(X) = \frac{P_{Z1}}{P_{Z2}} \qquad \frac{MP_{Z1}}{MP_{Z2}}(Y) = \frac{P_{Z1}}{P_{Z2}}$$

परन्तु जहां तक साधनों की कीमतों का प्रश्न है, प्रतियोगी परिस्थिति में ये कीमतें समूचे बाजार में समान रहती है तथा किसी भी वस्तु के उत्पादन हेतु Z_1 व Z_2 को प्रयुक्त किया जाए, इन कीमतों में कोई अन्तर नही आएगा। इसी दृष्टि से हम दोनों वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त दोनों साधनों की इष्टतम शर्त, यानी एक सरलीकृत सामान्य साम्य की शर्त को निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते है

$$\frac{MPz_1}{MPz_2}(X) = \frac{MPz_1}{MPz_2}(Y) = \frac{Pz_1}{Pz_2} = \text{.....(34.3)}$$

यदि आप चाहें तो समीकरण (34.3) में अन्य वस्तुओं को भी शामिल कर सकते है। संक्षेप में, उत्पादन के सामान्य साम्य हेतु निम्न शर्त प्रस्तुत की जा सकती है।

यदि उत्पादन प्रक्रिया में दो साधन प्रयुक्त किए जाते ही तो इन साधनों की सीमान्त उत्पादकता का अनुपात सभी वस्तुओं के उत्पादन में इनकी कीमतों के अनुपात के समान होना चाहिये।

सामान्य साम्य का यह एक सरलीकृत रूप है। यदि n साधनों व K वस्तुओं के उत्पादन का मॉडल लिया जाए तो हम यह जान सकते है कि समूची अर्थव्यवस्था में साधनों का इष्टतम प्रयोग किस स्तर पर हो रहा है। परन्तु उस विशाल एवं जटिल मॉडल को समझने हेतु उच्चतम स्तर की गणित अथवा कम्पयूटर की सहायता लेना अपरिहार्य होगा।

34.3 उत्पादक की साम्य स्थिति

आपको स्मरण होगा कि अर्थव्यवस्था के वर्तुल प्रवाह के अन्तर्गत सभी परिवारों को दो कार्य- उपयोग एवं साधनों की आपूर्ति करने होते है जबकि उत्पादकों द्वारा भी वस्तुओं की आपूर्ति एवं साधनों के न्यूनतम लागत पर प्रयोग से संबंधित दो कार्य संपादित किएजाते है। स्वाभाविक हें कि उपभोग एवं उत्पादन के कार्यो में स्वतंत्रता होने पर भी इन्हें बाजार प्रणाली द्वारा परस्पर आश्रित बनाया जाता है। इस खण्ड में आप देखेंगे कि विभिन्न उत्पादक किस प्रकार न्यूनतम लागत पर वस्तुओं का उत्पादन करते है।

आप यह पढ़ चुके है कि श्रम (L) के प्रयोग की इष्टतम स्थिति वह होती है जब निम्न शर्त पूरी होती हो:

$MP_L = W$

अर्थात् श्रम की सीमान्त उत्पादकता एवं मजदूरी की दर में समानता होनी चाहिए। मौद्रिक रूप में भौतिक सीमान्त उत्पादन को वस्तु की कीमत से गुणा करके $(MP_L.P_X)$ इसे मजदूरी के समान रखना होगा। आप पूर्वी में यह भी पढ़ चुके है कि यदि किसी वस्तु के उत्पादन में श्रम व पूंजी दोनों का प्रयोग होता हो तो इन साधनों के प्रयोग का न्यूनतम लागत वाला (इष्टतम) संयोग वह होता है जहां निम्न शर्त पूरी होती हो :

$$MRTS_{KL} == \frac{MP_L}{MP_K} = \frac{W}{r} \text{.....(34.4)}$$

अर्थात् किसी समोत्पाद वक्र का ढलान या दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकता के अनुपात तथा मजदूरी व ब्याज की दरों के अनुपात में समानता होनी चाहिये।

जैसा कि आप पढ़ चुके है, यह स्थिति केवल एक वस्तु (X) के उत्पादन में साधनों के प्रयोग को इष्टतम स्थिति को व्यक्त करती है। यदि उपलब्ध साधनों को Y के उत्पादन हेतु भी इष्टतम रूप में आवंटित करना हो तो निम्न शर्त पूरी होनी चाहिए :

$$MRTS_{KL}(X) = MRTS_{KL}(Y) = \frac{W}{r} \text{.....(34.5)}$$

समीकरण (34.5) को समोत्पाद वक्रों की सहायता से भी समझाया जा सकता है।

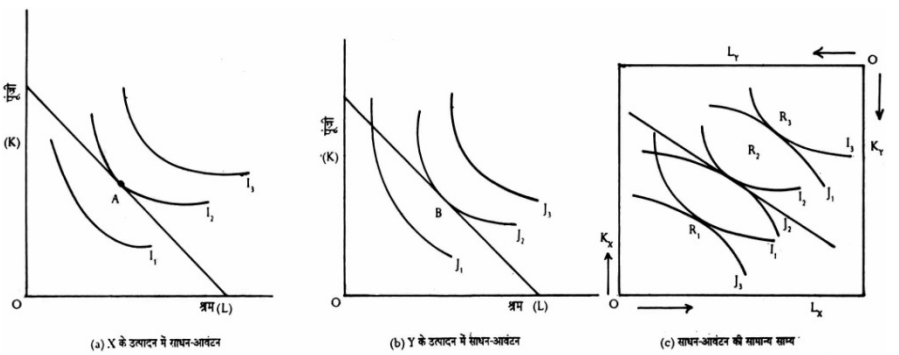

चित्र 34.1 उत्पादन का सामान्य साम्य

चित्र 34.1 के भाग (a) में बतलाया गया है कि X के उत्पादन हेतु श्रम व पूंजी का इष्टतम संयोग A बिन्दु पर स्थित होगा जहां श्रम व पूंजी की सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर, यानी सीमान्त उत्पादकताओं का अनुपात, मजदूरी व ब्याज के अनुपात केर समान है। इसी बिन्दु पर X के समोत्पाद वक्र I_2, को समलागत रेखा स्पर्श करती है।' भाग (b) में इसी प्रकार के उत्पादन हेतु श्रम व पूंजी का इष्टतम संयोग B बिन्दु पर स्थित होगा जहां Y के समोत्पाद वक्र 1, को इसकी सम लागत रेखा स्पर्श

करती है। अस्तु, A व B दोनों ही बिन्दुओं पर न्यूनतम लागत वाली शर्तें (समीकरण 34.4 व 34.5) पूरी होती है।

अब चित्र 34.1 का भाग (C) देखिए। चूंकि श्रम व पूंजी की मात्राएं सीमित है, जैसे-जैसे Xका उत्पादन बढ़ाने थे I_1 से 1_2 या 1_3 से 1_4 की ओर जाते है Y के उत्पादन में श्रम व पूंजी का प्रयोग कम होता जाएगा और इसके फलस्वरूप Y का उत्पादन J_3 से घटकर J_2 व J_2 से J_1 हो जाएगा।

चित्र 34.1 के भाग (C) में यद्यपि R_1 व R_3 पर X तथा Y के उत्पादन में श्रम व पूंजी की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात ($MRTS_{KL}$) समान है तथापि दोनों वस्तुओं का उत्पादन न्यूनतम लागत पर R_2 के अनुरूप ही होगा क्योंकि इसी स्तर पर सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दरों व साधनों की कीमतों के अनुपात में समानता है, यानी समीकरण (34.5) में प्रस्तुत शर्त पूरी होती है।

इस खंड में आपने यह पढ़ा कि यदि किसी समाज को दो वस्तुओं का उत्पादन दो साधनों के सहयोग से करना हो तो उत्पादकों का साधन-आवंटन के पीछे यही उद्देश्य रहेगा कि दोनों साधनों का स्वतंत्र रूप से तथा संयुक्त रूप से इष्टतम प्रयोग हो, यानी साधनों की इष्टतम मात्रा से वस्तुओं की अधिकतम मात्रा का उत्पादन हो।

34.3.1 उत्पादन का सामान्य साम्य

उत्पादन के सामान्य साम्य तथा विनिमय के सामान्य साम्य (पिछली इकाई) के विश्लेषण में मूलत: कोई अन्तर नही है। हम यहां यह सिद्ध करने का प्रयास करेंगे कि समीकरण (34.5) पर ही इष्टतम स्थिति क्यों प्राप्त होती है?

चित्र 34.2 में श्रम की कुल मात्रा OL (=O'K') तथा पूंजी की कुल मात्रा OK (=O1L) है। जैसा कि आप देख सकते है, R_1,R_2 ; R_3 व R_4 पर X तथा Y के प्रयोग में श्रम व पूंजी की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात समान है परन्तु, केवल TR_1 या TR_2 पर ही समीकरण (34.5) की शर्त पूरी होती है यानि X तथा Y से प्राप्त कुल आगम अधिकतम हो सकता है।

परन्तु यदि साधनों का प्रयोग R_1 या R_2 या R_3 के अनुरूप न हो तो कुल आगम अधिकतम नही हो सकता।

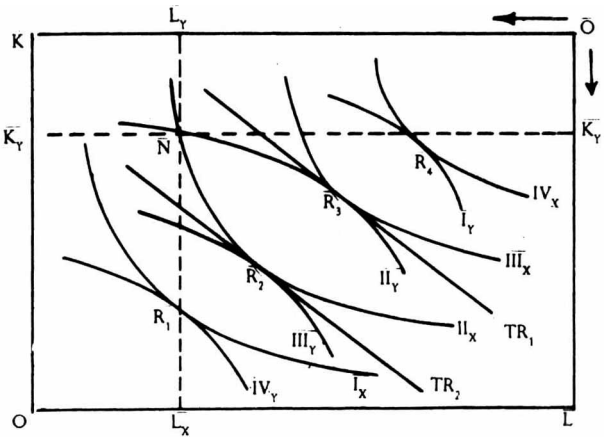

चित्र 34.2 उत्पादन का सामान्य साम्य

उदाहरण के तौर पर N बिन्दु को लीजिए। इस बिन्दु पर IIx समोत्पाद वक्र IIy को काटता है (यानि स्पर्श नही करता)। यदि समाज चाहे तो X का उत्पादन IIx के अनुरूप रखते हुए Y का उत्पादन बढ़ाकर IIIy के अनुरूप किया जा सकता है। आप यह देख सकते है कि N बिन्दु पर श्रम की OLx इकाइयां तथा पूंजी की OKy इकाइयां X के उत्पादन हेतु प्रयुक्त की जाती है। इसी प्रकार Y के उत्पादन हेतु Lyo' इकाइयां श्रम की एवं O'ky इकाइयां पूंजी की प्रयुक्त की जाती है। साधनों का पुनरावंटन होने पर X के उत्पादन थे पूंजी का उपयोग कम करके श्रम का उपयोग बढ़ाना होगा जबकि Y के लिए श्रम का उपयोग कम करके पूंजी का उपयोग बढ़ाना होगा।

अस्तु, N से चाहे R_2 पर आएं या R_3 पर, X तथा Y मे से किसी एक वस्तु का उत्पादन यथावत रखते हुए दूसरी वस्तु के उत्पादन स्तर में वृद्धि की जा सकती है, और इससे कुल आगम में वृद्धि की जा सकती है। जैसा कि आप पढ़ चुके है, R_2 व R_3 दोनों ही बिन्दुओं पर समीकरण (34.5) में प्रस्तुत इष्टतम शर्त पूरी होती है, यानी इनमें से किसी के भी अनुरूप X व Y का उत्पादन करने पर साधनों की निर्दिष्ट मात्राओं का प्रयोग करके अधिकतम आगम प्राप्त किया जा सकता है।

34.4 उत्पादन संभावना वक्र का निरूपण

इस खण्ड में आप चित्र 34.2 के आधार पर उत्पादन संभावना वक्र का निरूपण करेंगे। पहले X तथा Y के समोत्पाद वक्रों से संबद्ध उत्पादन कीं मात्राओं का अनुमान कीजिए। जैसा कि आप जानते है, यदि श्रम व पूंजी का प्रयोग X हेतु बढ़ाया जाए तो Y में इनका आवंटन कम होने से Y का उत्पादन घट जाएगा। तालिका 34.1 को देखने से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है

तालिका 34.1

निर्दिष्ट श्रम व पूंजी द्वारा X व Y का उत्पादन

क्रमांक	संभावित इष्टतम	X		Y	
	बिन्दु	समोत्पाद वक्र मात्रा		समोत्पाद वक्र मात्रा	
1.	R_1	Ix	100	Ivy	500
2.	R_2	IIx	150	IIIy	300
3.	R_3	IIIx	180	IIy	150
4.	R_4	IVx	190	Iy	50

इस प्रकार एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाने थे दूसरी वस्तु के उत्पादन मे कमी करनी ही पड़ती है, हालांकि वस्तुओं के रूपान्तरण की यह सीमान्त दर बढ़ती जाती है।

चित्र 34.3 को तालिका 34.1 के आधार पर ही बनाया गया है। हमने सिर्फ प्रस्तुतीकरण की सुविधा के लिए उत्पादन संभावना वक्र को X तथा Y अक्षों तक बढ़ा दिया है।

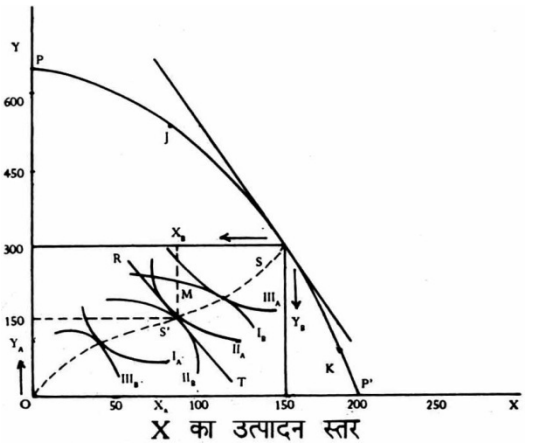

चित्र 34.3 उत्पादन सम्भावना वक्र

चित्र 34.3 में PP' को उत्पादन संभावना वक्र कहते है। इस चित्र में P' वस्तुत: चित्र 34.2 के बिन्दु O' के ही अनुरूप है जिसमें श्रम व पूंजी की समूची मात्राओं को X के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसके विपरीत P बिन्दु को चित्र 34.2 के बिन्दु O के अनुरूप माना जा सकता है। जहां दोनों साधनों की सारी मात्राएं Y के लिए प्रयुक्त की जाती है। P तथा P' के बीच श्रम व पूंजी का प्रयोग X व Y दोनों के उत्पादन हेतु किया जाता हें। आप यह समझ सकते हें कि P तथा P' के बीच प्रत्येक बिन्दु पर श्रम व पूंजी का इष्टतम प्रयोग किया जाता है।

अब प्रश्न है, P व P' के बीच वस्तुत: किस स्तर पर हम व पूंजी के उपयोग द्वारा X एवं Y का इष्टतम उत्पादन किया जाता हें: इसके लिए S बिन्दु देखिए जहां समआगम रेखा (RT) उत्पादन संभावना रेखा को स्पर्श करती हें। इसके अनुरूप समाज 150X एवं 300Y का उत्पादन करता हें।

34.4.1 इष्टतम उत्पादन एवं विनिमय का साम्य

आप पिछली इकाई में विनिमय के सामान्य साम्य की शर्तें पढ़ चुके हैं। आपने वहां यह पढ़ा था कि यदि X तथा Y की मात्राएं दी हुई हो तो A तथा B के मध्य उनका आवंटन उस स्तर पर होगा जहां उनके उदासीनता वक्रों के ढलान दोनों वस्तुओं की कीमतों के अनुपात के समान हों। यह स्थिति चित्र 34.3 में बॉक्स चित्र के बिन्दु S' पर दर्शायी गई हैं। इस स्थिति में दोनों उपभोक्ताओं को X तथा Y का इष्टतम आवंटन प्राप्त होता हैं।

इस प्रकार चित्र 34.3 दो साधनों के इष्टतम संयोग द्वारा X तथा Y की कितनी मात्राओं का उत्पाद होगा, इसे व्यक्त करने के साथ साथ यह भी जाट करता हैं कि दोनों वस्तुओं के इस इष्टतम उत्पादन का दो उपभोक्ताओं के मध्य किस प्रकार इष्टतम रूप में विनिमय होता है। यहां भी आप यह सिद्ध कर सकते है कि यदि कीमतों का अनुपात बदल जाए तो X तथा Y के उत्पादन का इष्टतम संयोग भी

बदलेगा तथा फिर अपनी अपनी रुचि के अनुसार A तथा B भी उनके इष्टतम विनिमय की स्थिति में परिवर्तन कर लेंगे।

कुल मिलाकर चित्र 34.3 उत्पादन तथा विनिमय (उपभोग) की इष्टतम स्थितियों को एक साथ प्रस्तुत करता हे और इसलिए इसे ही सामान्य साम्य के सम्पूर्ण मॉडल के रूप में स्वीकार किया जा सकता हे।

आप यह जानते हैं कि दिए हुए साधनों (कुल लागत) से यदि X या Y का उत्पादन ह्रास नियम के अन्तर्गत प्राप्त किया जाए तो X या Y की सीमान्त लागत वर्द्धमान होगी। उदाहरण के लिए, कुल लागत दी हुई हो तथा X का उत्पादन वर्द्धमान लागत के अन्तर्गत बढ़ाया जाए तो Y के उत्पादन में कमी करना जरूरी होगा। अस्तु;

$$dc = \frac{\delta c}{\delta x}.dx + \frac{\delta c}{\delta y}.dy = 0 \quad \text{.....(34.6)}$$

इसे उत्पादन संभावना रेखा का समीकरण भी कहा जा सकता हें।

उक्त समीकरण का अर्थ है कि X तथा Y की कुल उत्पादन लागत स्थिर है परन्तु जब X का उत्पादन बढ़ाना जाता है (dx>0) तथा तदनुसार के उत्पादन में कमी की जाती है (dy<0) तो X की उत्पादन लागत में हुई वृद्धि तथा Y की उत्पादन लागत में हुई कमी में समानता होने से कुल लागत यथावत् रह जाती है।

परन्तु समीकरण (34.6) को निम्न रूप में भी लिखा जा सकता है :

$$-dy = \frac{\delta c}{\delta y} = \frac{\delta c}{\delta x} dx \quad \text{.....(34.7)}$$

अथवा

$$-\frac{dy}{dx} = \frac{\delta_C}{\delta x} \Big/ \frac{\delta c}{\delta y} = \frac{MC_X}{MC_Y}$$

समीकरण 34.7 में बायां पक्ष X तथा Y के बीच की सीमान्त रूपान्तरण दर को बतलाता हें जो, दाएं पक्ष के अनुसार X तथा Y की सीमान्त लागत के अनुपात के समान हैं। इसे उत्पादन संभावना वक्र का ढलान भी कहा जा सकता है। चूंकि उत्पादन की प्राप्ति वर्द्धमान लागतों के अन्तर्गत हो रही है X का उत्पादन बढ़ाने के साथ इसकी सापेक्ष लागत (MCx/MCy) बढ़ती जाती है ओर फलस्वरूप उत्पादन संभावना वक्र मूल बिन्दु से नतोदर हो जाता है। समीकरण (34.7) यह स्पष्ट करता हैं कि जैसे-जैसे X का उत्पादन बढ़ाया जाता है, उत्पत्ति हास नियम के कारण इसकी सापेक्ष सीमान्त लागत में वृद्धि होती जाती है।

चित्र 34.3 में RT सम आगम रेखा के रूप में है जो बतलाती है कि कुल आगम (जो अर्थव्यवस्था को दी हुई कीमतों पर X व Y से प्राप्त होती है) स्थिर है। अस्तु;

TR = Px . Py . Y……(34.8)

सम आगम वक्र के उपर्युक्त समीकरण को निम्न रूप में भी व्यक्त किया जा सकता हें।

$$\frac{TR}{P_Y} - \frac{P_X}{P_Y} X \frac{TR}{P_Y} - \frac{P_X}{P_Y} ..X = Y .....(34.9)$$

अन्य शब्दों में, सम आगम रेखा का ढलान X एवं Y की कीमतों का अनुपात (Px/Py) है। आप यह भली भांति जानते है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत X तथा Y के उत्पादन से अधिकतम लाभ उस स्थिति में प्राप्त होगा जब Px=MCx तथा Py=MCy की स्थिति हो। अन्य शब्दों में, X तथा Y का इष्टतम संयोग उस स्थिति में प्राप्त होगा जब

$$\frac{P_X}{P_Y} = \frac{MC_X}{MC_Y}$$ हो .....(34.10)

चित्र 34.3 में समाज की उपलब्ध दोनों वस्तुओं की (इष्टतम) मात्राओं को चतुर्भुजीय चित्र के रूप में दर्शाया गया है। यदि A को ही X व Y की समूची मात्राएं प्राप्त हो जाएं तो वह अपने सर्वोच्च उदासीन वक्र पर S बिन्दु पर स्थित होगा, जबकि B को ये सभी मात्राएं प्राप्त होने की स्थिति में वह O बिन्दु पर समाज को प्राय समूची उपयोगिता (संतुष्टि) का अकेला स्वामी होगा।

परन्तु जैसा कि आप जानते है, प्रतियोगी बाजारों में दोनों उपभोक्ताओं को उस दशा में अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है जब दोनों की प्राप्य सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात X व Y की कीमतों के अनुपात के समान ही। यह स्थिति चित्र 34.3 में S' बिन्दु पर दिखाई देती हें। अस्तु, S' उपभोक्ताओं की साथ स्थिति को दर्शाने वाली स्थिति है। इस स्थिति में A को X एवं Y की क्रमश: $O\bar{X}_A$ एवं $O\bar{Y}_A$ इकाइयां प्राप्त होती है जबकि B को शेष मात्राएं SX_B व SY_B प्राप्त होती है।

परन्तु हम यह भी जानते है कि S' को हमने S से निरूपित किया है। अन्य शब्दों में S' एक ऐसी स्थिति का परिचायक है जहां साधनों के इष्टतम आवंटन की शर्त भी पूरी होती है। अस्तु, सामान्य साम्य की इस स्थिति में साधनों के इष्टतम आवंटन, एवं उससे प्राप्त X तथा Y की मात्राओं के A व B द्वारा इष्टतम उपभोग, दोनों की स्थिति समानान्तर रूप में प्राप्त होती है। इस प्रकार S' पर निम्न स्थिति दर्शायी जा सकती है :

$$MRS_{XY}(A) = MRS_{XY}(B) = \frac{P_X}{P_Y} = \frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{-dy}{dx} .....(34.11)$$

समीकरण (34.11) में व्यक्त स्थिति सामान्य साम्य को दर्शाती है। आप यही जानते है कि साधनों के प्रयोग की इष्टतम स्थिति (समीकरण 34.5 के अनुसार) वह होती है जब दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकताओं एवं साधनों की कीमतों का अनुपात दोनों वस्तुओं में समान हो।

इस प्रकार यदि पूर्ण प्रतियोगिता की परिस्थिति वस्तुओं व साधनों के बाजार में विद्यमान हो तो समीकरण (34.11) के आधार पर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि जिस बिन्दु पर उत्पादक के

साधनों का इष्टतम प्रयोग होगा, समानान्तर रूप में उसी के अनुरूप उपभोक्ता भी अपनी आय को X व Y के मध्य आवंटित करके अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करेंगे। जब तक कीमतों में यथास्थिति रहती है, सामान्य साम्य की स्थिति भी अपरिवर्तित रहेगी। परन्तु यदि दोनों में से एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन हो जाए, तथा अथवा साधन की कीमत में परिवर्तन हो जाए तो इसके फलस्वरूप जो प्रतिक्रियाएं होगी उनसे अन्तत: एक नई सामान्य साथ की स्थिति प्राप्त हो जाएगी। इससे उपभोक्ताओं के बीच X व Y की आवंटन स्थिति भी बदल जाएगी जिसका प्रभाव दोनों को प्राप्त उपयोगिता स्तर पर भी हो सकता है।

चित्र 34.3 में S' के अतिरिक्त किसी अन्य स्थिति में दोनों उपभोक्ताओं को प्राप्त कुल उपयोगिता में कमी हो जाएगी। उदाहरण के तौर पर M बिन्दु पर जहां A का संतुष्टि का स्तर वही रहता है, वही B को प्राप्य संतुष्टि में कमी आ जाती है। OS रेखा के अतिरिक्त, अन्य किसी भी बिन्दु पर सामान्य साम्य की शर्त पूरी नहीं हो सकती। हॉ, यदि कीमतों का अनुपात X(Y) के पक्ष में हो जाए तो नई साम्य स्थिति J या K पर भी हो सकती है तथा नई कीमतों के अनुरूप हमें नए चतुर्भुजीय चित्र की प्राप्ति होगी जिसमें X या Y का नए सिरे से आवंटन A व B के बीच किया जाएगा।

34.5 वस्तुओं व साधनों की कीमतें

पिछले बिन्दु में प्रस्तुत विवरण को गणितीय रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

आप जानते है कि L तथा K के न्यूनतम लागत संयोग थे यह जरूरी है कि दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकता का अनुपात इनकी पूर्व-निर्धारित कीमतों के अनुपात के समान हो।

यानि,

$$MRTS_{KL}(X) = MRTS_{KL}(Y) = \frac{w}{r}$$

इसी बात को निम्न रूप में भी कहा जा सकता है :

$w=MP_L(X) \cdot P_X=MP_L(Y) \cdot P_Y$ तथा.....(34.12)

$r=MP_K(X) \cdot P_X=MP_K(Y) \cdot P_Y$

परन्तु $\frac{w}{r} = \frac{MP_L}{MP_K}$ की सामान्य शर्त को भी निम्न रूप मे लिखा जा सकता है।

$$w = r\frac{MP_L}{MP_K} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (34.13)$$

जबकि $r=MP_K(X) \cdot P_X$ भी है। अत:

$$w = \frac{MP_L}{MP_K}\frac{MP_Y}{MP_K}(X).P_X$$

हम यह भी जानते है की उपभोक्ताओ की साम्य स्थिति मे

$$\frac{MP_L}{MP_K}(X) = \frac{MP_Y}{MP_K}(Y) = \frac{w}{r}$$

$$MRS_{XY}(A) = \frac{P_X}{P_Y} = MRS_{XY}(B) \text{ है}$$

अस्तु,सामान्य साम्य की स्थिति में वस्तुओं तथा साधनो की

कीमतों की स्थिति होगी।

$$\frac{w}{P_X} MRTS_{XY}.MP_K(X) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (34.14)$$

$$\frac{r}{P_X} = MP_K(X) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (34.15)$$

$$\frac{P_Y}{P_X} = MRS_{YX} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (34.16)$$

उपरोक्त समीकरणों में दाएं पक्ष के सभी मूल्य उन 'ज्ञात" मूल्यों को व्यक्त करते है जिनका निर्धारण सामान्य साम्य स्थिति के प्राप्त करने के साथ ही हो जाता है। अन्य शब्दों में, यदि वस्तुओं व साधनो के मूल्य ज्ञात ही तो हम X के उत्पादन में प्रयुक्त श्रम व पूंजी की सीमान्त उत्पादकता तथा सीमान्त उपयोगिताओं के वे अनुपात ज्ञात कर सकते है जहां इष्टतम स्थिति हो। इस उदाहरण में हमने X को विश्लेषण का प्रतीक माना है पर व्यवहार में किसी भी वस्तु को लेकर सामान्य साम्य की स्थिति में प्राप्त विभिन्न मूल्यों को ज्ञात किया जा सकता है।

34.6 सारांश

व्यष्टिगत विश्लेषण में प्राय: अर्थव्यवस्था की एक इकाई एक उपभोक्ता एक उत्पादक या फर्म अथवा एक साधन स्वामी की उस निर्णय प्रक्रिया का अध्ययन करते हैं जिसके माध्यम से उसका आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है। इस इकाई में यह मान्यता ली गई है कि एक उत्पादक दी हुई सीमा। अपने ही कल्याण (लाभ) को अधिकतम करने का प्रयास करता है। यह मान्यता ली गई हें इस आर्थिक इकाई का निर्णय स्वतंत्र हैं तथा अन्य उत्पादकों के निर्णय से प्रभावित नही होता। इसलिए हम इस आंशिक साम्य विश्लेषण भी कहते है।

सामान्य साम्य विश्लेषण में हमने देखा कि उपभोक्ता अधिकतम उपयोगिता को प्राप्त करने हेतु अपनी आय का दो वस्तुओं के मध्य इष्टतम आवंटन करते हैं। इन वस्तुओं की उन्हीं मात्राओं के उत्पादन हेतु उत्पादक किस प्रकार साधनों (श्रम व पूंजी) का न्यूनतम लागत पर प्रयोग करते है तथा फिर इन वस्तुओं की बिक्री द्वारा अधिकतम लाभ किस प्रकार अर्जित करते हें, यह भी आपने प्रस्तुत इकाई में पड़ा। अन्य शब्दों में, उपभोग तथा उत्पादन की इष्टतम स्थितियों को स्वतंत्र न मान कर सामान्य साम्य विश्लेषण में परस्पर निर्भर प्रक्रियाओं के रूप में माना जाता (और यह सिद्ध करने का प्रयास किया जाता

हें कि वस्तुओं की जिन मात्राओं को उत्पादक साधनों के इष्टतम आवंटन द्वारा प्राप्त करते हैं उन्हीं मात्राओं को उपभोक्ता अपनी आय के इष्टतम आवंटन द्वारा उपभोग करके अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करतें हें।

परन्तु सामान्य साथ विश्लेषण इस प्रमुख मान्यता पर आधारित है कि वस्तुओं व साधनों के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है तथा कीमतों का निर्धारण बाजार में मांग व पूर्ति के द्वारा किया जाता हें। यह भी मान्यता ली जाती है कि साधनों और साया ही वस्तुओं के मध्य स्थानापन्नता हें। साधनों की मात्रा सीमित हें तथा उत्पादन एवं उपभोग प्रक्रियाओं मे हास नियम लागू होते हैं।

34.7 शब्दावली

सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर ($MRTS_{KL}$)- यह दर बतलाती हें कि निर्दिष्ट मात्रा में किसी वस्तु का उत्पादन करने हेतु यदि एक साधन की एक इकाई बढ़ाई जाए तो दूसरे साधन की कितनी मात्राएं कम करनी होगी।

उत्पादन की इष्टतम स्थिति (Optimum in Production)- साधनों के आवंटन की वह दशा, जिसमें उनकी सीमान्त उत्पादकताओं का अनुपात व साधनों की कीमतों का अनुपात उन सभी वस्तुओं के लिए समान होना चाहिये जिनके उत्पादन में साधनों को प्रयुक्त किया जा रहा है।

उत्पादन संभावना वक्र (Production Possibility Curve)- यदि दो साधनों को दो वस्तुओं के उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया जाए तो उनकी सीमान्त उत्पादकताओं का अनुपात X व Y के विभिन्न स्तरों पर समान हो सकता हैं। इन बिन्दुओं को मिलाने पर जो वक्र प्राप्त होता हें वह स्पष्ट करता हैं कि यदि साधनों का (इष्टतम) प्रयोग एक वस्तु हेतु बढ़ाया जाए तो उस वस्तु का उत्पादन बढ़ेगा परंतु दूसरी वस्तु का उत्पादन घट जाएगा। उत्पादन हास नियम के कारण उत्पादन संभावना वक्र मूल बिन्दु से नतोदर होता है।

बोध प्रश्न

– इकाई के अंत में प्रस्तुत उत्तर संकेतों से अपने उत्तर का मिलान करें।

1. सामान्य साम्य की प्राप्ति किस प्रकार होती हें इसका विश्लेषण किन मान्यताओं पर आधारित है।
2. उत्पादन एवं विनिमय के सामान्य साम्य का उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए।

34.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

– Koutsoyiannis, Modern Microeconomics, Second Edition, ELBS/Macmillan

– C.E. Ferguson, Micro Economic Theory; Richard D. Irwin

– Henderson, J.M. and R.E. Quandt, Microeconomic Theory : A Mathematical Approach Mc Graw Hill Company

– Sher, William and Rudy Pinola, Microeconomic Theory, Edward Arnold.

34.9 बोध प्रश्नों के उत्तर-संकेत

1. सामान्य साथ की प्राप्ति का विश्लेषण करते समय पहले एक वस्तु में साधनों के प्रयत्नों की इष्टतम स्थिति का विवरण दीजिए। फिर बतलाइए कि यदि साधनों का प्रयोग दो या अधिक वस्तुओं के उत्पादन में किया जाए तो उत्पादन के किस स्तर पर निर्दिष्ट साधनों के प्रयोग से अधिकतम आगम प्राप्त किया जा सकता है। इस विश्लेषण हेतु समीकरणों तथा रेखाचित्रों का प्रयोग करें। (खण्ड 34.3 देखें)।
2. उत्पादन के सामान्य साम्य के विश्लेषण के आधार पर उत्पादन संभावना वक्र का निरूपण कीजिए तथा यह बताइए कि साधनों के इष्टतम प्रयोग की स्थितियों के आधार पर X तथा Y की उत्पादन सीमाएं किस प्रकार निर्धारित की जाती हें फिर आगम रेखा के आधार पर X तथा Y के इष्टतम संयोग को ज्ञात कीजिए। इन मात्राओं को A तथा B किस प्रकार इष्टतम रूप में परस्पर आबंटित अत हैं इसका भी खण्ड 34.4 में प्रस्तुत सामग्री विशेषत: चतुर्भुजीय चित्र के माध्यम से के आधार पर यहां विश्लेषण कीजिए।

इकाई - 35

कल्याण अर्थशास्त्र
Welfare Economics

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य

35.1 प्रस्तावना

35.2 कल्याण अर्थशास्त्र का अर्थ

35.2.1 कल्याण अर्थशास्त्र एवं सरकार की भूमिका

35.3 व्यक्तिगत कल्याण एवं सामाजिक कल्याण

35.4 अन्त: व्यक्ति उपयोगिताओं की तुलना एवं कल्याण अर्थशास्त्र

35.5 कल्याण अर्थशास्त्र की मान्यताएं व शर्तें

35.6 व्यक्तिगत कल्याण एवं सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया

35.7 कल्याण अर्थशास्त्र की सीमाएं

35.8 सारांश

35.9 शब्दावली

35.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

35.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

35.0 उद्देश्य

अर्थशास्त्र के उद्भव से लेकर आज तक जितने भी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है उन सभी के केन्द्र में मानव कल्याण विद्यमान हें। व्यष्टि अर्थशास्त्र के जितने सिद्धान्त आपने अब तक पड़े है उनसे आप यह समझ चुके होंगे कि प्रत्येक उपभोक्ता, उत्पादक अथवा फर्म का उद्देश्य निर्दिष्ट साधनों के इष्टतम. प्रयोग द्वारा अपने कल्याण (उपयोगिता या लाभ) के स्तर को अधिकतम करना है। परन्तु इस सबके उपरान्त भी उन सिद्धान्तों को कल्याण अर्थशास्त्र के रूप में परिभाषित नही किया जा सकता। जिसे अर्थशास्त्री कल्याण अर्थशास्त्र की संज्ञा देते है यह अर्थशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा हें वस्तुत: उसके पीछे नैतिक दृष्टिकोण निहित हें। इस दृष्टिकोण को लेकर अर्थशास्त्री समाज के लिये (व्यक्ति के लिए नही) विभिन्न विकल्पों की सापेक्ष वांछनीयता का मूल्यांकन करता है। प्रस्तुत इकाई में आपको कल्याण

अर्थशास्त्र की अवधारणा इसमें निहित मान्यताओं एवं सीमाओं से परिचित कराया जाएगा। इस इकाई में आप :

- व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण का अंतर समझ सकेंगे,
- कल्याण अर्थशास्त्र के अर्थ एवं इसमें निहित मान्यताओं का अध्ययन करेंगे
- कल्याण की अभिवृद्धि हेतु अपनाई गई प्रक्रिया को जानेंगे, तथा
- कल्याण अर्थशास्त्र की सीमाएं क्या है, इनकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

35.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हें, प्रत्येक आर्थिक क्रिया या अन्तिम उद्देश्य निर्णय कर्ता को अधिकतम प्रतिफल प्रदान करना है। एक उपभोक्ता दी हुई आय में अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना चाहता हें जबकि एक फर्म या उत्पादक का उद्देश्य निर्दिष्ट साधनों के प्रयोग से अधिकतम लाभ कमाना है।

प्राय: अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों में इस बात पर बल दिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति विवेकशील निर्णय लेने में सहम है, तथा उपयोगिता अथवा लाभ को अधिकतम करने की प्रक्रिया में कोई भी बाहरी शक्ति व्यवधान नही डालती। यदि समाज के सभी उत्पादक तथा सभी उपभोक्ता वांछित कल्याण के स्तर को प्राप्त करने में सफल हो जाएं तो समूचे समाज का आर्थिक कल्याण भी अधिकतम हो जाता है।

आपने इकाई संख्या 33 एवं 34 में यह पता था कि यदि समाज में दो व्यक्ति हो तया दो साधनों को दो वस्तुओं के उत्पादन हेतु इष्टतम रूप में प्रयुक्त करते हो, तो वस्तुओं की निर्दिष्ट कीमतों के अनुरूप दोनों व्यक्ति वस्तुओं की कितनी मात्रा का उपभोग करेंगे ताकि प्राप्त कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाए। परन्तु यह सब व्यवस्था तभी तक उपयुक्त रहती है जब तक समाज में विद्यमान सदी उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं की स्थिति में समानता हो, तथा इष्टतम की प्राप्ति में कोई भी बाधा न आती हो। परन्तु व्यवहार में न तो विभिन्न व्यक्तियों की स्थिति मे समानता पाई जाती हें और न ही सभी लोग-चाहे उपभोक्ता हो अथवा उत्पादक-इष्टतम निर्णय लेने में सक्षम होते है। अन्य शब्दों में, निर्णय प्रक्रिया में दोष उत्पन्न होने के कारण व्यक्तिगत कल्याण तथा सामाजिक कल्याण के मध्य विरोधाभास भी हो सकता है। यही नहीं, एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि से अन्य दूसरे व्यक्ति के कल्याण में कमी होना भी संभव है। इस प्रकार के विरोधाभास की कल्पना परम्परागत अर्थशास्त्र में कभी नही की गई थी, और इसीलिए उसमें सरकार की अहस्तक्षेप की नीति को उपयुक्त माना जाता रहा।

परन्तु पिछले अनेक दशकों से कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह तर्क दिया है कि सरकारी हस्तक्षेप द्वारा भी सामाजिक आर्थिक कल्याण में वृद्धि की जा सकती हें।

कल्याण अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आप यही देखते है कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक आर्थिक कल्याण में किस सीमा तक सह-संबंध हें तथा कहां विरोधाभास है। इसके अन्तर्गत आप यह भी पढ़ेंगे कि सरकारी हस्तक्षेप किस सीमा तक वांछनीय है। आप यह भी पढ़ेंगे कि निर्णय प्रक्रिया का नैतिक पक्ष कितना वांछनीय हें। प्रस्तुत इकाई में आपको कल्याण अर्थशास्त्र के विषय मे प्राथमिक जानकारी प्राप्त

होगी। इसके पश्चात् अगली इकाई में आप परेटो के कल्याण अर्थशास्त्र के विषय में पढ़ेंगे जबकि 37 वी इकाई में आपको परेटो के पश्चात् विकसित कल्याण अर्थशास्त्र, यानि नव कल्याण-अर्थशास्त्र, के विषय में जानकारी दी जाएगी।

35.2 कल्याण अर्थशास्त्र का अर्थ

ए0 कॉत्सोयानिस के शब्दों में, कल्याण अर्थशास्त्र का संबंध समाज के कल्याण की दृष्टि से, वैकल्पिक आर्थिक स्थितियों के मूल्यांकन से है। यह अर्थशास्त्र की एक ऐसी विशिष्ट शाखा हें जिसमें उपलब्ध विकल्पों की वांछनीयता को नैतिकता की दृष्टि से परखा जाता हें। इस प्रकार कल्याण अर्थशास्त्र को आदर्श मूलक अर्थशास्त्र की भी संज्ञा दी जा सकती हें।

कल्याण अर्थशास्त्र का अर्थ समझने हेतु एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए श्रम व पूंजी की निर्दिष्ट मात्राओं एवं निर्दिष्ट तकनीक का प्रयोग करते हुए समाज में X तथा Y की जितनी इकाइयों का उत्पादन किया जा रहा है उससे समाज को प्राप्त होने वाले आर्थिक कल्याण का वर्तमान स्तर W है। अब कल्पना कीजिए आर्थिक कल्याण का एक स्तर W* है जो W से अधिक उपयोगिता/लाभ प्रदान कर सकता है। कल्याण अर्थशास्त्र हमें इस संदर्भ में दो बातें बतलाता है। प्रथम, तो यह कि वैकल्पिक स्तर W* से W की अपेक्षा अधिक कल्याण (उपयोगिता या लाभ) प्राप्त हो सकता है (W*>W)। द्वितीय, समाज (या सरकार) को कौन से उपाय करने चाहिये जिससे W* को प्राप्त किया जा सके।

वस्तुत: कल्याण अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आर्थिक कल्याण को व्यक्तिगत कल्याण की परिधि से निकाल कर सामाजिक कल्याण के रूप में ले जाया जाता है। इसीलिए इसमें नैतिक स्तर, तथा अन्तवैयक्तिक तुलनाओं का स्थान महत्वपूर्ण होता है।

35.2.1 कल्याण अर्थशास्त्र एवं सरकार की भूमिका

आपने पिछली ये इकाइयों में यह पड़ा था कि उपभोक्ता तथा उत्पादकों की सामान्य साम्य स्थितियों की प्राप्ति पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत होती है तथा सरकार का वस्तुओं के चुनाव अथवा साधनों के प्रयोग की प्रक्रिया में कोई हस्तक्षेप नही होता।

परन्तु प्राय: ऐसा देखा गया है कि समाज की संरचना में इस प्रकार की विसंगतियां उत्पन्न हो जाती है कि उपभोक्ता या उत्पादक (अथवा दोनों) साम्य स्थिति को प्राप्त करने में विफल रहते है। ऐसी स्थिति में सरकार का यह दायित्व हो जाता है कि वह उन विसंगतियों को दूर करके समाज के आर्थिक कल्याण के स्तर को इष्टतम स्थिति में पहुंचाए।

इसी प्रकार जन साधारण के कल्याण एवं लाभ में वृद्धि थे प्राय: सरकार को नीतियां बनानी पड़ती है। इन नीतियों के माध्यम से जहां समाज के एक वर्ग को लाभ होता है। एवं उनकी उपयोगिता का स्तर बढ़ जाता है, वही इनकी वित्त व्यवस्था हेतु एक दूसरे वर्ग को कर का भार वहन करना होता हैं। अर्थशास्त्रियों का ऐसा मत हें कि कर के भार से उत्पन्न अनुपयोगिता की तुलना में समाज के बहुसंख्यक

वर्ग को प्राप्त अतिरिक्त उपयोगिता काफी अधिक होती है और इससे समाज के कल्याण का स्तर (W) बढ़ जाता है।

कल्याण अर्थशास्त्र के माध्यम से आप यही जानकारी प्राप्त करते है कि सरकारी नीतियों के माध्यम से आर्थिक कल्याण के स्तर (कुल उपयोगिता/लाभ) में किस प्रकार वृद्धि की जा सकती है। जैसा कि आप ऊपर देख चुके है, इन्हीं कारणों से कल्याण अर्थशास्त्र को आदर्श मूलक अर्थशास्त्र की भी संज्ञा दी जाती है।

35.3 व्यक्तिगत कल्याण एवं सामाजिक कल्याण

सन् 1881 में प्रकाशित पुस्तक ' 'मैथेमेटिकल साइकिक्स " में एजवर्थ ने यह बतलाया था कि ' 'अर्थशास्त्र का मूलभूत सिद्धान्त यही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। " वस्तुत: एडम स्मिथ से लेकर मार्शल तक सभी अर्थशास्त्री यह मानते थे कि समाज के सारे सदस्यों का स्तर समान है, और इसलिए यदि प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम स्व-कल्याण प्राप्त कर लेता है तो समाज का कल्याण भी स्वत: अधिकतम हो जाएगा। अन्य शब्दों में, व्यक्तिगत कल्याण एवं सामाजिक कल्याण में कोई विरोधाभास नही पाया गया था और इसीलिए सरकार के किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप को अवांछनीय माना गया था। अस्तु, संस्थापक तथा नव संस्थापक अर्थशास्त्रियों ने व्यष्टिगत कल्याण पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया। उनके समूचे विश्लेषण में एक व्यक्ति की विवेकशीलता को संदेह से परे मानते हुए यह तर्क दिया गया कि आर्थिक विश्लेषण में नैतिकता व परोपकार का कोई स्थान नही है। उपभोक्ता व्यवहार, उत्पादन प्रक्रिया तथा फर्म के विपणन विश्लेषण में यही मान्यता ली गई कि इनमें से प्रत्येक की आर्थिक किया स्वतंत्र एवं निरपेक्ष है। यह भी तर्क दिया गया कि एक उपभोक्ता या फर्म के कल्याण में होने वाले परिवर्तन का दूसरी फर्म या उपभोक्ता के कल्याण पर कोई प्रभाव नही पड़ता।

सर्वप्रथम बर्गसन ने 1937 में सामाजिक कल्याण फलन की अवधारणा का प्रतिपादन किया। उनके अनुरूप ही हम सामाजिक कल्याण फलन का भी निरूपण कर सकते है। समाज का आर्थिक कल्याण वस्तुत: प्रत्येक उपभोक्ता को प्राप्य उपयोगिता के स्तर पर निर्भर करता है। लेकिन बर्गसन के सामाजिक कल्याण फलन में उल्लेखनीय बात यह है कि एक सामाजिक कल्याण फलन विभिन्न व्यक्तियों के संतुष्टि स्तर या कल्याण स्तर का योग है और इस कारण यदि एक व्यक्ति का उपयोगिता स्तर बढ़ता है तो दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के उपयोगिता स्तर में कमी हो जाएगी।

सुविधा के लिए हम समाज में दो ही व्यक्तियों का संतुष्टि स्तर ले सकते है। चित्र 35.1 में X तथा Y अक्ष क्रमश : A तथा B के संतुष्टि या उपयोगिता स्तर को व्यक्त करते है। सामाजिक कल्याण फलन W_1 का ऋणात्मक ढलान यह स्पष्ट करता है कि यदि A का संतुष्टि स्तर बढ़ाया जाता है तो B को प्राप्त कल्याण में कमी हो जाएगी। बर्गसन की ऐसी मान्यता है कि निर्दिष्ट सामाजिक कल्याण स्तर (W_1) के अन्तर्गत एक व्यक्ति के कल्याण में केवल तभी वृद्धि हो सकती है जब किसी अन्य व्यक्ति के कल्याण स्तर में कटौती की जाए। परन्तु यदि सामाजिक कल्याण स्तर W_2 या W_3 हो जाए तो दोनों व्यक्तियों के

कल्याण-स्तर में या कम से कम एक के कल्याण में बिना दूसरे व्यक्ति के कल्याण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किए-वृद्धि की जा सकती है।

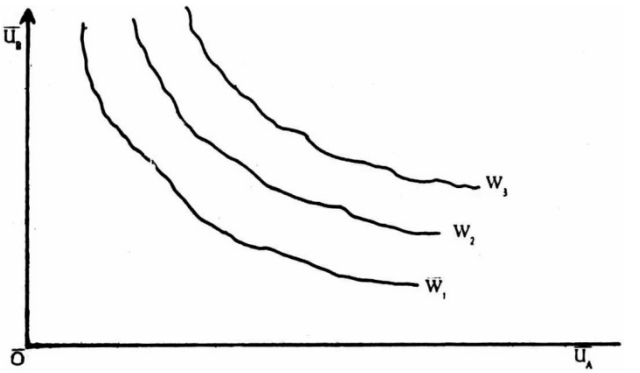

चित्र 35.1 बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन

इस प्रकार यदि केवल व्यक्तिगत कल्याण की ही व्याख्या की जाए तो निर्णय प्रक्रिया स्वतंत्र रह सकती है तथा यह मान्यता ली जा सकती है कि व्यष्टिगत स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण (उपयोगिता या लाभ) को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है। इसके विपरीत सामाजिक कल्याण की अवधारणा में विभिन्न व्यक्तियों के कल्याण में पारस्परिक निर्भरता परिलक्षित होती यहाँ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक कल्याण, दोनों के स्तर साधनों की मात्रा पर निर्भर करते है। यदि व्यक्ति अथवा समाज को प्राप्त साधनों की मात्रा बढ़ जाए तो स्वभावत: कल्याण का स्तर भी बढ़ जाएगा।

35.4 अन्त: व्यक्ति उपयोगिताओं की तुलना एवं कल्याण अर्थशास्त्र

जे0 हर्सेनी ने 1953 में जर्नल ऑफ पॉलिटिकल इकानॉमी में प्रकाशित एक लेख में किसी व्यक्ति की "नैतिक" प्राथमिकताओं तथा "व्यक्तिपरक" प्राथमिकताओं में अन्तर बतलाने का प्रयास किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि नैतिक प्राथमिकताओं का निरूपण सामाजिक कल्याण के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। इन प्राथमिकताओं को निर्धारित करते समय व्यक्ति-हित को गौण मानता हें। इसके विपरीत यदि वह केवल अपने ही हित को सर्वोपरि मानता है तो उसकी प्राथमिकताएं व्यक्तिपरक हो जाएंगी। इस दोहरी स्थिति में हम समझ सकते हैं कि उस व्यक्ति की दृष्टि में समाज के हित तथा व्यक्तिगत हित में क्या अन्तर हें। हर्सेनी के मत में यद्यपि (दोनों दृष्टिकोण पृथक पृथक है परन्तु कभी कभी निर्णय प्रक्रिया उस स्थिति में अस्पष्ट हो जाती है जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या समूह से सहानुभूति रखते हुए केवल स्वयं के कल्याण को अधिकतम करने की बात को विस्मृत कर दे। संक्षेप में, जब तक आर्थिक कल्याण के विश्लेषण में व्यक्तिगत कल्याण (उपयोगिता या लाभ) का लक्ष्य निहित है तब तक निर्दिष्ट साधनों का आवंटन एक सरल प्रक्रिया है, परन्तु जब कोई व्यक्ति स्व-हित के साथ साथ पर हित के विषय में भी लोचना प्रारंभ कर देता है तो उसका निजी कल्याण किस प्रकार अधिकतम होगा इसका पूर्वानुमान नही किया जा सकता।

एक लम्बे समय तक अर्थशास्त्री यह मानते रहे थे कि विभिन्न व्यक्तियों के कल्याण स्तर (उपयोगिताएं) अतुलनीय हें। रॉबिन्स ने 1935 में स्पष्ट कहा कि इस प्रकार की तुलना वैज्ञानिक आधार पर संभव नही है। उन्होंने कहा कि हमारे पास विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त संतुष्टि की तुलना करने का कोई मापदंड नही है।

इसके विपरीत अनेक अर्थशास्त्रियों ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि कल्याण या संतुष्टि की अन्त: व्यक्ति तुलना संभव हें। लिटिल, वाल्डनर तथा राइल आदि यह तर्क देते हैं कि किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति को देखकर हम यह निष्कर्ष देने की स्थिति में होते है कि वह अन्य व्यक्तियों की ' 'तुलना " में अपने आपको अधिक ' 'सुखी " अनुभव कर रहा है अथवा ' 'दुखी "। उस व्यक्ति का यह मानस वस्तुत: उसके द्वारा अपनी व अन्य व्यक्तियों की स्थिति की तुलना की परिणति मात्र है। प्राय: व्यक्ति की यह मानसिकता उसकी इस धारणा के कारण बन जाती है कि ' 'यदि मै उस (दूसरी) स्थिति में होता तो (अधिक सुखी हो सकता था " या ' 'में अन्य स्थिति में सुखी तो हो सकता हूँ परन्तु वहां पहुंचना संभव नही है," अथवा ' 'में वहां पहुंचना नही चाहता।" उदाहरण के लिए एक क्लर्क यदि अपनी स्थिति की तुलना किसी उद्योगपति से करे अथवा किसी तस्कर से अपनी दशा की तुलना करे तो उसके वक्तव्य कुछ इसी प्रकार के हो सकते हैं। यह अन्त व्यक्ति कल्याण (दो स्थितियों के बीच) की तुलना ही है।

अन्त: व्यक्ति कल्याण की तुलना का एक उदाहरण और भी भिन्न है। इसमें नीति निर्धारक यह देखते है कि एक स्थिति की तुलना में दूसरी स्थिति में किस व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक आर्थिक कल्याण प्राप्त होता हें, और यदि तुलनात्मक रूप में द्वितीय स्थिति में अधिक व्यक्तियों का कल्याण अधिक होता है (जबकि किसी को हानि नही होती अथवा कुछ को अपेक्षाकृत बहुत कम हानि होती है) तो द्वितीय स्थिति को प्राप्त करने थे नीतियों मै परिवर्तन किया जाता है। इस प्रकार अन्त: व्यक्ति कल्याण की दृष्टि से द्वितीय स्थिति श्रेष्ठम मानी जा सकती है। यहां यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि द्वितीय स्थिति में यदि एक व्यक्ति का संतुष्टि स्तर भी बढ़ता है, जबकि अन्य व्यक्तियों के कल्याण में कोई कमी नही होती, तभी उसे प्रथम स्थिति की तुलना में श्रेष्ठ माना जाएगा।

35.5 कल्याण अर्थशास्त्र की मान्यताएं एवं शर्तें

कल्याण अर्थशास्त्र की शुरूआत वैसे तो वर्तमान दशक के प्रारंभ से मानी जाती हें लेकिन एडम स्मिथ से लेकर मार्शल व पीगू में से प्रत्येक ने यह मान्यता ली थी कि प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य स्व-हित को अधिकतम करना है। हालांकि विल्फ्रेडो परेटो तथा आगे चलकर अनेक अन्य अर्थशास्त्रियों ने वैयक्तिक कल्याण की अवधारणा का विस्तार करके सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

कल्याण अर्थशास्त्र का चाहे संस्थापक रूप हो अथवा नवसंस्थापक, या फिर इसके विषय में प्रस्तुत किए गए आधुनिक अर्थशास्त्रियों -बर्गसन, सैम्युअलसन, लिटिल, हिक्स, सीटोवस्की, रॉइल आदि के विचार रहे हों, समूचा विश्लेषण कुछ सामान्य मान्यताओं पर आधारित हें। ये सर्वसम्मत मान्यताएं इस प्रकार है

1. प्रत्येक व्यक्ति/इकाई के आर्थिक कल्याण (उपयोगिता या लाभ) को एक सामान्य मूल्य के रूप में मापा जा सकता हें। यह सामान्य मूल्य डालर, पाउण्ड या रुपया, किसी भी मुद्रा के रूप में माप सकते है। इसके फलस्वरूप विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त उपयोगिता/लाभ को जोड़कर सामाजिक कल्याण का स्तर ज्ञात कर सकते है। कुछ अर्थशास्त्री यह मानते है कि उपयोगिता को द्रव्य के रूप में न माप कर वस्तुओं की मात्रा को कल्याण का आधार मानना अधिक उपयुक्त है।
2. उपभोक्ताओं के प्राथमिकता फलन एवं विभिन्न वस्तुओं के संयोगों से सम्बद्ध वरीयता-क्रम अपरिवर्तित रहते है। उपभोक्ताओं की रूचियों में कोई परिवर्तन नही होता।
3. समाज तथा व्यक्तियों/इकाइयों को उपलब्ध साधन सीमाएं अपरिवर्तित रहती हें। इस प्रकार व्यष्टिगत स्तर या सामाजिक स्तर पर निर्दिष्ट कीमतों व प्राथमिकताओं के अनुरूप अधिकतम कल्याण का स्तर-व्यष्टिगत व सामाजिक दोनों-ज्ञात करना संभव हें। यदि व्यक्तिगत अथवा सामाजिक स्तर पर उपलब्ध साधनों में वृद्धि हो जाए तो कल्याण का स्तर भी बढ़ जाएगा।
4. व्यष्टिगत स्तर पर निर्णय प्रक्रिया स्वतंत्र रहती हें। प्रत्येक आर्थिक इकाई निर्दिष्ट साधन सीमा में अपने हित को अधिकतम करने का प्रयास करती है, तथा उसकी साधन आवंटन से सम्बद्ध प्रक्रिया अन्य इकाई या इकाइयों के निर्णय से अप्रभावित रहती है।
5. उत्पादन की टेक्नोलॉजी में कोई परिवर्तन नही होता। प्राय: टेक्नोलॉजी में परिवर्तन होने पर उन्हीं साधनों के अन्तर्गत अधिक उत्पादन करके व्यष्टिगत या सामाजिक ' कल्याण के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।
6. वस्तुओं तथा साधनों के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान हें। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी व्यक्ति का कल्याण स्तर किसी अन्य व्यक्ति के कल्याण स्तर से कम केवल इस कारण होगा कि उसके (प्रथम व्यक्ति) पास उपलब्ध साधन कम हैं। अन्य शब्दों में, एकाधिकारिक या क्रेताधिकारिक शोषण की कोई संभावना नहीं है। पूर्ण प्रतियोगिता के फलस्वरूप प्रत्येक आर्थिक इकाई बाह्य निर्धारित साधनावस्तु के मूल्यों के अनुरूप अपने साधनों का इष्टतम आवंटन करके अधिकतम कल्याण प्राप्त कर सकती है। ऐसी दशा से सरकारी नीतियों द्वारा आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने की आवश्यकता अनुभव नहीं की जाती।

   अधिकतम कल्याण की शर्तें - सुविधा के लिए हम यह मान लेते है कि समाज में केवल दो व्यक्ति (A व B) दो साधन (L व K) तथा दो वस्तुएं (X व Y है। ऐसी दशा में व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण अधिकतम तभी होगा जब निम्न शर्तें पूरी हों :

व्यक्तिगत स्तर		सामाजिक स्तर
	MUX= PX	$\frac{Mu_X}{Mu_Y}(A) = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(B) = \frac{P_X}{P_Y}$

उपभोग में	$MUY = PY$	
तथा	$\frac{Mu_X}{Mu_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$	
उत्पादन में	$MP_L = w$ $MP_K = r$	$\frac{MP_L}{MP_K}(X) = \frac{MP_Y}{MP_K}(Y) = \frac{w}{r}$
तथा	$\frac{MP_L}{MP_K} = \frac{w}{r}$	
वस्तुओं का संयोग		
	$MC_X = P_X$; $MC_Y = P_Y$	
तथा	$\frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$	$\frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{P_X}{P_Y} = \frac{Mu_X}{Mu_Y}$

इसका यह भी अर्थ हुआ कि यदि प्रत्येक उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता हो, यदि प्रत्येक वस्तु का न्यूनतम लागत पर उत्पादन किया जाता हो तथा प्रत्येक फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करती हो तो व्यष्टिगत स्तर पर तो आर्थिक कल्याण अधिकतम होगा ही, सामाजिक कल्याण का स्तर भी उसी स्थिति में अधिकतम होगा। 35.6 व्यक्तिगत कल्याण एवं सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, संस्थापक तथा नव संस्थापक अर्थशास्त्री यही मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति (उपभोक्ता, उत्पादक या फर्म) अपने कल्याण को अधिकतम करने का प्रबल करता है। उसकी यह निर्णय प्रक्रिया उपलब्ध साधन सीमा के अनुरूप सम्पादित की जाती है। इस विश्लेषण में चूंकि प्रत्येक, आर्थिक इकाई अपने कल्याण को अधिकतम करने में सक्षम है, कीमत प्रणाली के माध्यम से निर्दिष्ट साधनों के अन्तर्गत सामाजिक कल्याण भी उस दशा में अधिकतम हो जाता है जहां व्यक्तिगत कल्याण अधिकतम है। ऐसी दशा में सरकार का साधन आवंटन में कोई हस्तक्षेप उपयुक्त नही माना जा सकता। संक्षेप में, सामाजिक कल्याण व्यक्तिगत कल्याण के स्तरों का योग मात्र है।

1979 में वैसिली लियोन्तीफ ने सामाजिक कल्याण तथा व्यक्तिगत कल्याण के विरोधाभास के विषय में एक लेख प्रस्तुत किया। उन्होंने सामाजिक कल्याण फलन की तीन विशेषताएं बतलाई :

कल्याण बाद (Welfarism) - सामाजिक कल्याण वैयक्तिक कल्याण के स्तरों का फलन (योग) हें। यदि हम दो स्थितियों के सामाजिक कल्याण की तुलना करना चाहते हें तो हमें समाज के सभी व्यक्तियों को प्राप्त वैयक्तिक उपयोगिताओं के डर को देखना होगा।

कम सूचकता (Ordinalism) - सामाजिक कल्याण फलन में केवल वैयक्तिक उपयोगिता फलनों की कम सूचकता का प्रयोग करना होगा।

उपयोगिताओं मे अतुलनीयता (Non-Comparability) -सामाजिक कल्याण की वरीयता का विभिन्न व्यक्तियों की उपयोगिताओं की तुलनाविधि से कोई संबंध नहीं हैं।

केनेथ एरो ने सामाजिक कल ला फलन को परिभाषित करते हुए कहा कि इस फलन में प्रत्येक व्यक्ति के संतुष्टि कम को लेते हुए सामाजिक कल्याण का एक क्रम तैयार किया जाता हैं परन्तु व्यक्तियों (तथा समाज) की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने वाली दशाएँ दी हुई होनी चाहिए। एरो ने यह भी स्पष्ट किया कि व्यक्तिगत वरीयता-क्रम के आधार पर सामाजिक वरीयता कम तैयार करते समय कम-सूचकता तथा उपयोगिताओं की अतुलनीयता को भी शामिल किया जाता है।

जब तक वैयक्तिक कल्याण को प्रभावित करने वाले घटक तथा व्यक्तियों के संतुष्टि-कम यथावत रहते हैं तब तक सामाजिक कल्याण के वरीयता-कम में भी कोई परिवर्तन नही होता। यदि वैयक्तिक कल्याण-कम पूर्णत: लोचहीन हें तो किन्हीं दो सामाजिक स्थितियों की वरीयता भी संबंध वैयक्तिक संतुष्टि-स्तर के अनुरुप निर्धारित होगी। परन्तु एरो ने कहा "किसी भी सामाजिक कल्याण फलन में ये समी शर्तें पूरी नही होती। "

प्राय: यह देखा गया है कि समाज में आय का वितरण विषम होता है। यदि किसी स्थिति (a) में समाज के सभी वर्गो का उपयोगिता (कल्याण) कम लिया जाए तो हमें उस स्थिति से सम्बद्ध सामाजिक कल्याण फलन प्राप्त हो जाएगा। निर्दिष्ट स्थिति में यदि समाज के एक वर्ग का संतुष्टि स्तर बढ़ता है तों किसी दूसरे वर्ग के कल्याण में उतनी ही कमी होगी परन्तु समाज का कल्याण स्तर यथावत रहेगा।

अब एक दूसरी स्थिति (b) की कल्पना कीजिए जिसमें सरकार आय के पुनर्वितरण की दृष्टि सें निधन व्यक्तियों के कल्याण-स्तर में वृद्धि हेतु कोई नीति अपनाती हें। द्वितीय स्थिति स्वभावत: प्रथम स्थिति की तुलना में श्रेष्ठ होगी क्योंकि उसमें एक वर्ग का कल्याण-स्तर बढ़ता हें, वही या तो अन्य वर्गो के कल्याण-स्तर पर कोई प्रभाव नही होता अथवा उनके कल्याण-स्तर में होने वाली कमी की तुलना में निर्धन वर्ग के कल्याण-स्तर में हुई वृद्धि काफी अधिक है।

प्राय: समाज के विभिन्न व्यक्तियों या समूहों के हितों या कल्याण स्तरों में परस्पर विरोध होता है। ऐसी स्थिति में a स्थिति से b स्थिति में समाज को पहुंचाने सें सम्बद्ध निर्णय भी इस परस्पर विरोध: से प्रभावित होते हैं। वस्तुत: राजनैतिक तथा सामाजिक निर्णयों में से अनेक निर्णय इसी परस्पर विरोध वाले दृष्टिकोण के आधार पर लिए जाते है। यदि हम यही मान कर चलें कि विभिन्न व्यक्तियों या समूहों के कल्याण-स्तर उल्लेखनीय है तो हम सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया में विवेकशीलता की उपेक्षा कर सकते हैं क्योंकि वास्तविक जगत में एक व्यक्ति या समूह का कल्याण दूसरे व्यक्ति या समूह के कल्याण से स्वतंत्र

नही है। चाहे राजनैतिक उद्देश्य के आधार पर हो अथवा सामाजिक/मानवीय आधार पर, प्राय: सरकार को ऐसी नीतियां बनानी ही पड़ती हैं जिनके माध्यम से विद्यमान आय वितरण की विषमताओं को कम किया जा सके।

35.7 कल्याण अर्थशास्त्र की सीमाएं

कल्याण अर्थशास्त्र का प्रतिपादन जिन मान्यताओं को लेकर किया गया था, वस्तुत: उनमें से अधिकांश मान्यताओं की आधुनिक जगत में वैधता समाप्त हो गई है। इसी कारण अनेक अर्थशास्त्रियों ने कल्याण अर्थशास्त्र की ही वैधता पर प्रश्न वाचक चिन्ह लगा दिया है। कल्याण अर्थशास्त्र की इन सीमाओं को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता हें

1. कल्याण का माप - कल्याण का माप क्या वस्तुओं की संख्या या संतुष्टि के मौद्रिक माप मे ही लिया जाना चाहिए? समाज मे अनेक व्यक्ति ऐसे भी हैं जिन्हें भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा आध्यात्मिक उपलब्धियों से अधिक संतुष्टि प्राप्त होती हें। यह भी कहा जाता है कि आधुनिक युग में प्रत्येक फर्म के लिए अपना अस्तित्व बनाए रखना अधिक महत्वपूर्ण हें न कि अधिकतम लाभ अर्जित करना।
2. उपभोक्ताओं की रुचियां एवं उनके प्राथमिकता फलन यथावत नही रहते। सहानुभूति , प्रदर्शन प्रभाव विज्ञापन आदि के कारण उनके वरीयता-कम अथवा प्राथमिकताओं में परिवर्तन होते रहते है।
3. यह ठीक हें कि सामाजिक स्तर पर साधन दिए हुए रहते हैं, परन्तु परम्परागत कल्याण अर्थशास्त्र में जिस प्रकार वैयक्तिक साल सीमा को स्थिर मानते है वह अनेक अर्थशास्त्रियों के मत में उचित नही है। प्राय: सरकारी नीतियां साधन सीमा को प्रभावित करती हैं और इनके फलस्वरुप वैयक्तिक कल्याण के स्तर भी प्रभावित होते हैं। सरकार की अनुदान नीति अथवा वर्ग विशेष को सहायता देने की नीति के संदर्भ में साधन सीमा यथावत नही रह सकती।
4. व्यष्टिगत स्तर पर निर्णय प्रक्रिया स्वतंत्र नही रह पाती। प्राय: उपभोक्ता किसी वस्तु की मांग को प्रदर्शन प्रभाव या विस्थापन के कारण बढ़ा देता है चाहे उसे प्राप्य उपयोगिता उसके अनुरुप बड़े या न बड़े। इसी प्रकार फर्म भी अन्य फर्मो की नीतियों के अनुरूप कीमत या वस्तु की किस्म/डिजाइन में परिवर्तन करती है। ऐसी दशा में व्यष्टिगत कल्याण किस स्थिति में अधिकतम होगा यह पता लगाना कठिन हो जाता हें।
5. बाजार में कहीं भी पूर्ण प्रतियोगिता दृष्टिगोचर नही होती। क्रेता या विक्रेताओं में से प्रत्येक के व्यक्तिगत या समूहगत दबाव बाजार में बने रहते हैं और ऐसी दशा में कीमत बाह्य निर्धारित नही रह पाती। साथ ही इस दबाव के फलस्वरूप समूह दूसरे पर हावी होने या उसका शोषण करने का प्रयास करता रहता हें।
6. एफ0एम0 बेटर ने व्यष्टिगत या सामाजिक कल्याण की शर्तों (खण्ड 35.5) पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया हें। वास्तविक जीवन में सीमान्त उपयोगिता से कीमत अधिक या कम हो सकती हें। इसी प्रकार सीमान्त उत्पादकता की तुलना मे साधन की कीमत अधिक या कम हो जाती हें। बेटर इन्हें बाह्यताओं का परिणाम मानते हैं।

7. प्राय: कतिपय कठिनाइयों के कारण हमें दो वस्तुओं या साधनों के इष्टतम संयोग की प्राप्ति नही हो पाती और "इष्टतम" की प्राप्ति कोणीय समाधान (Corner solution) के रुप में होती हें।

8. आधुनिक अर्थशास्त्र में वैयक्तिक कल्याण के स्तर को प्रभावित करने हेतु सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया का आश्रय लिया जाता हें। यदि सरकारी नीति एक अधिनायक द्वारा निर्धारित की जाए या साधनों के पुनर्वितरण हेतु संसद अथवा विधान सभा में बहुमत से निर्णय हो जाए तो इस नीति के माध्यम से सामाजिक कल्याण को बढ़ाना संभव है। परन्तु केनेथ एरो का मानना है कि कभी कभी जन प्रतिनिधि विभिन्न नीतियों में से किसी एक पर बहुमत से भी निर्णय नहीं ले पाते।

9. प्राय: व्यष्टिगत वरीयता कम भी सुस्पष्ट नहीं होते और ऐसी स्थिति में सामाजिक कल्याण फल का स्वरूप भी सुस्पष्ट नही हो पाता। कल्याण अर्थशास्त्र में यह मान्यता ली जाती है कि निर्दिष्ट सामाजिक कल्याण फलन में सम्बद्ध सभी व्यक्तियों के उपयोगिता फलनों के वरीयता क्रम दिए हुए हैं, परन्तु किसी अन्य सामाजिक कल्याण फलन में इन वरीयता कमी की स्थित हो सकती है। दोनों सामाजिक कल्याण फलनों की तुलना किस प्रकार की जाए यह भी एक समस्या ही है। उपरोक्त कारणों से कल्याण अर्थशास्त्र का औचित्य अत्यन्त सीमित रह गया हे।

इसके बावजूद नीति निर्धारण की पृष्ठभूमि में प्राय: सामाजिक कल्याण में अभिवृद्धि को ही सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है और इसीलिए सैद्धांतिक दृष्टि से न सही, व्यवहार में कल्याण अर्थशास्त्र का ज्ञान नीति-निर्धारकों एवं नीतियों को क्रियान्वित करने वालों के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

35.8 सारांश

इस इकाई में आपने कल्याण अर्थशास्त्र के अर्थ एवं इसकी प्रकृति के विषय में जानकारी प्राप्त की। आपने यह देखा कि यद्यपि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के अनुसार प्रत्येक आर्थिक इकाई अपने हित (उपयोगिता अथवा लाभ) को अधिकतम करने का यत्न करती हें तथापि कुल साधनों के सीमित रहते यदि एक व्यक्ति का संतुष्टि स्तर बढ़ता है तो दूसरे व्यक्ति के संतुष्टि स्तर में कमी हो जाएगी। इस प्रकार व्यक्तिगत कल्याण का योग लेकर सामाजिक कल्याण का स्तर ज्ञात किया जा सकता हें।

आपने इस इकाई में यह भी पड़ा कि किसी व्यक्ति की नैतिक प्राथमिकताओं तथा व्यक्ति परक प्राथमिकताओं में क्या अन्तर हें। प्रस्तुत इकाई में आपने कल्याण अर्थशास्त्र की मान्यताओं तथा अधिकतम कल्याण प्राप्ति हेतु आवश्यक शर्तों का भी अध्ययन किया।

आपने इस इकाई में यह भी पड़ा कि आय के वितरण की असमानताओं के संदर्भ में सरकारी नीतियाँ किस प्रकार सामाजिक कल्याण को प्रभावित करती हें। सामाजिक कल्याण की एक स्थिति में व्यक्तिगत कल्याण के वरीयता-क्रम भी निर्धारित हो जाते है परन्तु एक अन्य स्थिति में वरीयता क्रम भी भिन्न हो जाते हैं। यही कारण है कि दो स्थितियों में प्राप्त सामाजिक कल्याण के स्तर भी अतुलनीय होते हैं।

इकाई के अन्त में आपने यह पड़ा कि अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हेतु कल्याण अर्थशास्त्र में जो मान्यताएं ली जाती है, प्राय व्यावहारिक जगत में वे पूरी नही हों पाती और इसलिए कल्याण अर्थशास्त्र का पारंपरिक स्वरूप भी व्यवहार में अप्रासंगिक हो जाता हें।

35.9 शब्दावली

व्यक्तिगत कल्याण -प्रत्येक उपभोक्ता, उत्पादनकर्ता तथा प्रत्येक फर्म निर्दिष्ट साधन सीमा में अपने हित (उपयोगिता या लाभ) को अधिकतम करने का प्रयत्न करती है।

सामाजिक कल्याण -व्यक्तिगत कल्याण को एक सामान्य मूल्य के रुप में मापते हुए जब सभी आर्थिक इकाइयों के कल्याण-स्तर का योग लिया जाता है तो सामाजिक कल्याण का स्तर प्राप्त होगा। साधन सीमा तथा विभिन्न व्यक्तियों के प्राथमिकता क्रम के यथावत रहते हुए सामाजिक कल्याण का स्तर भी यथावत रहता है। परन्तु यदि एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि होती है तो अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के कल्याण-स्तर में कमी हो जाएगी।

प्राथमिकता क्रम - मार्शल ने उपयोगिता को मुद्रा के रुप में मापा था परन्तु हिक्स आदि नें उपयोगिता के मौद्रिक माप के स्थान पर कम सूचक माप को मान्यता प्रदान की। तदनुसार प्रत्येक व्यक्ति वस्तुओं के वैकल्पिक संयोगों को वरीयता-क्रम में संजोता है। वह एक संयोग को की अपेक्षा कम या अधिक प्राथमिकता देता है। जिस संयोग को अधिक प्रधानता प्राप्त होती है उसकी प्राप्ति से उसको अधिक संतुष्टि मिलती हें। एक अन्य स्थिति में उस व्यक्ति का प्राथमिकता क्रम बदल सकता हें परन्तु सामाजिक कल्याण की निर्दिष्ट स्थिति में यह का यथावत रहता है।

नैतिक तथा व्यक्तिपरक प्राथमिकताएं - जे0 हर्सेनी के मतानुसार यदि कोई व्यक्ति केवल अपनी ही हित साधना करता है तथा साधनों के आवंटन द्वारा अपने लिए ही अधिकतम उपयोगिता/लाभ प्राप्त करने का प्रयास करता है तो इन्हें व्यक्तिपरक प्राथमिकता कहा जाता है। परन्तु यदि वह समाज के अन्य व्यक्ति से सहानुभूति रखते हुए आंशिक रूप से अपने कल्याण का परित्याग कर देता है तो इसे नैतिक प्राथमिकताओं की संज्ञा दी जाएगी।

बोध प्रश्न 1

– इकाई के अन्त में प्रस्तुत उत्तर संकेतों से अपने उत्तर का मिलान करें।

1. कल्याण अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए। व्यक्तिगत तथा सामाजिक कल्याण में क्या संबंध है?
2. कल्याण अर्थशास्त्र की मान्यताओं तथा इसकी शर्तों पर प्रकाश डालिए।
3. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए:
   I. अन्त: व्यक्ति उपयोगिताएं
   II. व्यक्तिपरक तथा नैतिक प्राथमिकताएं

III. सामाजिक कल्याण फलन

35.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Amartya Kumar Sen – Choice, Measurement and Welfare
2. A. Koutsoyiannis – Modern Micro Economics

35.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. कल्याण अर्थशास्त्र का अर्थ प्रस्तुत इकाई के खण्ड 35.2 में समझाया गया है । संक्षेप में, कल्याण अर्थशास्त्र हमें यह बतलाता है कि निर्दिष्ट साधनों के अन्तर्गत किस प्रकार प्रत्येक आर्थिक इकाई, तथा तदनुसार पूरा समाज अधिकतम उपयोगिता या लाभ को प्राप्त कर सकती हें। यदि दो स्थितियां हमारे समक्ष हों तो कल्याण अर्थशास्त्र यह बतलाता है कि आर्थिक कल्याण की दृष्टि से कौन सी स्थिति श्रेष्ठ हें तथा उस श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त करने हेतु क्या उपाय अपनाने चाहिए।

   इकाई के खण्ड 35.3 में व्यक्तिगत तथा सामाजिक कल्याण के संबंध एवं यदाकदा उत्पन्न विरोधाभास पर प्रकाश डाला गया है।

2. कल्याण अर्थशास्त्र की मान्यताओं को खण्ड 35.5 में समझाया गया है । इन मान्यताओं के आधार पर ही समाज की प्रत्येक इकाई का आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है। इनमें से यदि एक भी मान्यता पूरी न हों तो व्यक्तिगत कल्याण अधिकतम नही हो सकता। साधनों की मात्रा बढ़ने या तकनीकी परिवर्तन होने की दशा में कल्याण का इष्टतम स्तर भी विवर्तित हो जाता है।

   आर्थिक कल्याण अधिकतम तभी होगा जब प्रत्येक आर्थिक इकाई सीमान्त उपयोगिता (उपभोग में) व सीमान्त उत्पादन (उत्पादन में) को वस्तुओं व उत्पादन के साधनों की बाह्य निर्धारित कीमतों के समान करते हुए उपलब्ध साधनों का आवंटन करें।

3. उत्तर

   I. अन्त : व्यक्ति उपयोगिताओं की तुलना परम्परागत अर्थशास्त्र में अनुपयुक्त समझी जाती थी। आधुनिक अर्थशास्त्री यह मानते हें कि उपयोगिताओं के आधार पर भले ही अन्त: व्यक्ति उपयोगिताओं की तुलना संभव न हो, उपभोक्ताओं की मानसिक स्थिति के अनुरुप उनके "सुख" या दुख का अनुमान लगाया जा सकता है। (खण्ड 35.4)।

   II. व्यक्ति परक तथा नैतिक प्राथमिकताओं की चर्चा जे0 हर्सेनी ने की थी (खण्ड 35.4 देखें)। यदि व्यक्ति केवल स्व-हित का पोषण करने हेतु साधनों का आवंटन करता है तो यह उसकी व्यक्तिपरक प्राथमिकताओं का उदाहरण हें । इसके विपरीत नैतिक प्राथमिकताओं में वह समाज के अन्य व्यक्तियों के हितों को भी ध्यान में रखता है।

III. सामाजिक कल्याण फलन की अवधारणा को बर्गसन ने प्रस्तुत किया था। इसके अनुसार सामाजिक कल्याण फलन विभिन्न व्यक्तियों के कल्याण फलनों का योग हें। परन्तु यदि एक व्यक्ति या समूह के कल्याण में वृद्धि की जाती है तो (साधनों के यथावत रहते हुए) अन्य व्यक्तियों या समूह के कल्याण में कमी हों जाएगी।

इकाई- 36

अधिकतम कल्याण हेतु परेटो की इष्टतम शर्तें
Pareto Optimality for Maximum Social Welfare

इकाई की रूपरेखा

36.0 उद्देश्य

36.1 प्रस्तावना

36.2 संख्या सूचक व क्रम सूचक उपयोगिता, उपयोगिताओं की अन्त: व्यक्ति तुलना एवं सामाजिक आर्थिक कल्याण

36.3 विल्फ्रेडो परेटो एवं कल्याण अर्थशास्त्र

36.3.1 परेटो की मान्यताएं

36.4 परेटो श्रेष्ठता, परेटो इष्टतमता तथा सहमति सिद्धान्त

36.5 परेटो की इष्टतम शर्तें

36.5.1 विनिमय की इष्टतम शर्त

36.5.2 साधन प्रयोग की इष्टतम शर्त

36.5.3 उत्पादन रूपांतरण की इष्टतम शर्त

36.5.4 दो अवधियों के बीच आवंटन की इष्टतम स्थिति

36.6 उत्पादन संभाव्यता वक्र एवं इष्टतम विनिमय स्थिति

36.7 इष्टतम विनिमय तथा उपयोगिता संभावना वक्र

36.7.1 वृहत् उपयोगिता संभावना सीमा

36.7.2 सीमाबद्ध अधिकतम कल्याण फलन

36.7.3 अधिकतम कल्याण एवं दक्षता

36.8 परेटो इष्टतम शर्तें एवं पूर्ण प्रतियोगिता

36.9 क्या परेटो की इष्टतम शर्तें पूरी हो सकती हैं?

36.10 द्वितीय श्रेष्ठ प्रमेय

36.11 सारांश

36.12 शब्दावली

36.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

36.14 अभ्यासों के उत्तर संकेत

36.0 उद्देश्य

इकाई 35 में आपने कल्याण अर्थशास्त्र का अर्थ पड़ा था। आपने उस संदर्भ में व्यक्तिगत तथा सामाजिक कल्याण के परस्पर संबंध एवं इनके मध्य विद्यमान अन्तर का भी अध्ययन किया। व्यक्तिगत तथा सामाजिक कल्याण के स्तर को अधिकतम किस आधार पर किया जा सकता है इसे समझने हेतु आपने कल्याण अर्थशास्त्र की मान्यताओं एवं शर्तों का भी अध्ययन किया। आपने इकाई के अन्त में कल्याण अर्थशास्त्र की सीमाओं की भी जानकारी प्राप्त की थी।

प्रस्तुत इकाई में आप परेटो के कल्याण अर्थशास्त्र का अध्ययन करेंगे। विल्फ्रेडो परेटो ही पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने यह स्पष्ट किया कि समाज के अधिकतम कल्याण को प्राप्त करने हेतु एक ही साथ उपभोक्ताओं व उत्पादन कर्ताओं की इष्टतम स्थिति प्राप्त करनी होगी। इस इकाई में आप

- परेटो की इष्टतम कल्याण संबंधी शर्तों का अध्ययन करेंगे
- उपभोक्ताओं तथा उत्पादन कर्ताओं की इष्टतम स्थिति के आधार पर सामाजिक कल्याण किस प्रकार अधिकतम होगा इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे
- सामाजिक कल्याण फलन तथा इष्टतम साधन आवंटन के संबंधों का अध्ययन करेंगे, तथा
- किन कारणों से परेटो इष्टतम की प्राप्ति नही हो पाती और इसके फलस्वरुप समाज को किस प्रकार "द्वितीय श्रेष्ठ" के रूप में वैकल्पिक स्थिति स्वीकार करनी पड़ती है इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

36.1 प्रस्तावना

19वी शताब्दी के अन्त तक अर्थशास्त्रियों का ध्यान व्यष्टिगत कल्याण को अधिकतम किन स्थितियों में किया जा सकता है, इसी से सम्बद्ध सिद्धान्तों पर केन्द्रित था। समाज के अलग अलग व्यक्ति उपभोग व उत्पादन के क्षेत्र में साधनों का इष्टतम प्रयोग करने में सक्षम है इसी आधार पर नव संस्थापक अर्थशास्त्री यह तर्क दे रहे थे कि सरकार की ओर से साधनों के पुन: आवंटन करने की कोई आवश्यकता नही थी।

सर्वप्रथम, प्रथम महायुद्ध के आसपास नव-संस्थापक अर्थशास्त्रियों में से एक, प्रो.ए0सी0 पीगू ने यह बतलाया कि समाज की संरचना कुछ इस प्रकार की है कि इसमें निर्धन व्यक्ति सदैव निम्न कल्याण स्तर पर रहते है और धनी व्यक्तियों का कल्याण स्तर हमेशा काफी ऊपर रहता है।

पीगू ने आर्थिक कल्याण को सामान्य कल्याण के उस भाग के रुप में परिभाषित किया जिसे परोक्ष या प्रत्यक्ष रुप से मुद्रा के रूप मे मापा जा सकता है। संभवत: पीगू अपने आपको मार्शल के संख्या

सूचक उपयोगिता सिद्धान्त के प्रभाव से मुक्त नही कर पाए थे। पीगू ने यह भी कहा कि मुद्रा तथा सम्पत्ति/आय पर भी सीमान्त उपयोगिता इस नियम लागू होता है। इसी बात को लेकर उन्होंने संस्थापक तथा नवसंस्थापक अर्थशास्त्रियों की सरकार द्वारा अहस्तक्षेप की नीति की आलोचना की, और यह तर्क दिया कि यदि सरकार धनी व्यक्तियों से कर लेकर उस राशि को निर्धन व्यक्तियों पर खर्च कर दे तो समाज के आर्थिक कल्याण-स्तर में वृद्धि हो जाएगी। इसका स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा कि क्रमागत इस नियम के कारण धनी व्यक्तियों से कर लेने पर उनकी कुल उपयोगिता (कल्याण) में जितनी कमी होगी उसकी तुलना में निर्धन व्यक्तियों को सरकारी भुगतान से प्राप्त उपयोगिता (कल्याण) काफी अधिक होगा।

परन्तु पीगू के तर्कों से अधिकांश अर्थशास्त्री सहमत नही हुए क्योंकि उन्होंने कल्याण का संख्या सूचक माप लिया था।

पीगू से कुछ वर्ष पूर्व ही 1906 मे इतालवी अर्थशास्त्री विल्फ्रेडो परेटो ने यह स्पष्ट किया था कि उपयोगिता या कल्याण को मुद्रा के रूप में मापना सर्वथा अनुपयुक्त है। एजवर्थ तथा वालरस की भांति परेटो ने भी उपयोगिता को क्रम सूचक रूप में मापने का आग्रह किया तथा सामान्य साम्य की प्राप्ति हेतु एजवर्थ बाडली आयताकार चित्र का प्रयोग किया।

आर्थिक कल्याण का अधिकतम स्तर कहां होगा इसके लिए परेटो ने कुछ शर्तें प्रस्तुत की जिन्हें 'परेटिन इष्टतम शर्तें" कहा जाता है। परन्तु मुख्य बात यह है कि परेटो ने भी व्यक्तिगत कल्याण से ही सामाजिक कल्याण को सम्बद्ध किया। इन्हीं इष्टतम शर्तों की विस्तृत जानकारी आप प्रस्तुत इकाई में प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु इससे पूर्व यह उपयुक्त होगा कि आप सखा सूचक तथा क्रम सूचक उपयोगिताओं पर पूर्व में पढ़े गए विवरण को दोहरा लें।

36.2 संख्या सूचक व क्रम सूचक उपयोगिता, उपयोगिताओं की अन्तः व्यक्ति तुलना एवं सामाजिक आर्थिक कल्याण

एडम स्मिथ से लेकर आज तक सभी अर्थशास्त्री यह स्वीकार करतें है कि आर्थिक विश्लेषण का केन्द्र बिन्दु उपभोक्ता की प्रभुसत्ता है। इस दृष्टि से हम यह कह सकते है कि किसी उपभोक्ता को स्थिति B की अपेक्षा स्थित A इसलिए पसन्द हें क्योंकि उसे A से B की तुलना में अधिक उपयोगिता मिलती है। इसी प्रकार, समाज की दृष्टि से B की तुलना में A तभी अपेक्षाकृत उपयुक्त होगी यदि समाज के सभी व्यक्ति B की तुलना में A को अधिक पसन्द करते हो। परन्तु यदि समाज के कुछ व्यक्ति B को A से अधिक पसन्द करें और अन्य A को B की अपेक्षा अधिक चाहे तो यह तुलना उतनी सरल नही रह जाएगी। उस जटिल समस्या का एक समाधान तो यह हो सकता है कि A को प्राथमिकता देने वाले व्यक्तियों की सखा की तुलना B को प्राथमिकता देने वाले व्यक्तियों से की जाए। परन्तु यह विकल्प भी सरलता से हमारी समस्या का समाधान प्रदान नही करता क्योंकि इसमें यह मान्यता लें ली जाती है कि समाज के सभी व्यक्तियों की पसन्द या ना-पसन्द की तीव्रता समान है। उदाहरण के तौर पर B को पसन्द करने वाले व्यक्ति B को आ की अपेक्षा कुछ अधिक पसन्द करते ही, और इसके विपरीत A के पक्षधरों

की राय में A अपेक्षाकृत बहुत अधिक श्रेष्ठ हो तो कुल मिलाकर निर्णय यही होगा कि स्थिति A स्थिति B से बेहतर है (A>B)। अन्य शब्दों में, यदि एक-व्यक्ति को एकमत दिया जाए तो पसन्द या ना-पसन्द की तीव्रता का कोई औचित्य नही है। वस्तुत: पसन्द या प्राथमिकता की तीव्रता को ध्यान में रखने पर हमें सामूहिक निर्णय लेने थे एक व्यक्ति एक मत के सिद्धान्त को छोड़ना होगा।

ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति की पसन्द या प्राथमिकता को हम संख्या-सूचक आधार पर मापते है। कोई व्यक्ति किसी वस्तु की निर्दिष्ट इकाई या उपभोग स्थिति को जितनी तीव्रता से पसन्द (नापसन्द) करता है उसे उससे उतनी ही अधिक (कम) उपयोगिता प्राप्त होगी। आप समझ गए होंगे कि यह मार्शल द्वारा लिया गया उपयोगिता का संख्या सूचक माप है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु की हर -इकाई से प्राप्त होने वाली (प्रत्याशित) उपयोगिता को मुद्रा (या एक सामान्य-मूल्य) के रूप में मापा जाता है। जब उपयोगिता मापनीय है तो स्वाभाविक तौर पर यह योगशील भी है, तथा हम दो व्यक्तियों को प्राय उपयोगिता के स्तरों को अथवा दो स्थितियों में विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं की सहज में तुलना कर सकते है। संख्या सूचक माप लेने 'पर दो स्थितियों के बीच कभी कभी तुलना तो की जा सकती है परन्तु यह आवश्यक नही कि उनमें योगशीलता भी हो। उदाहरण के लिए यदि एक सप्ताह के दौरान दैनिक तापमान 45^0, 40^0, 38^0, 32^0, 37^0, 38^0, तथा 42^0 सेल्सियस हो और दूसरे सप्ताह का तापमान 41^0, 42^0, 40^0 36^0, 44^0, 40^0 तथा 44^0 सेल्सियस हो तो इनमें तुलना तो हो सकती है, परन्तु इनका योग नही लिया जा सकता। संक्षेप में, संख्या सूचक माप भी हमेशा हमें सही निष्कर्ष प्रदान करे, यह जरुरी नही है।

जिस प्रकार दो सप्ताहों के दैनिक तापमानों की तुलना करके भी हम यह नही कह सकते कि कौन सा सप्ताह अधिक गर्म रहा था, उसी प्रकार दो व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं की तुलना संभव होने पर भी यह एक कठिन कार्य है। वस्तुत: अर्थपूर्ण तुलना के लिए उपयोगिता में मापनीयता के साथ साथ तुलनात्मकता एवं योगशीलता, इन दोनों गुणों का होना भी आवश्यक है। परिस्थितियों में भिन्नता होने पर दो व्यक्तियों को प्राप्त उपयोगिता-स्तरों, अथवा एक ही व्यक्ति को अलग अलग समय या दशाओं में प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं में तुलना करना उपयुक्त नही होगा।

यदि दो व्यक्तियों को प्राप्त उपयोगिताओं की तुलना करना कठिन है तो इन्हें प्राप्त उपयोगिताओं का योग लेना और भी कठिन कार्य है। वस्तुत: उपयोगिता का संख्या सूचक माप इस आधार पर लिया जाता है कि किसी वस्तु की अमुक इकाई के लिए उपभोक्ता क्या कीमत देने को तत्पर है, जबकि बाजार में कीमत इस बात से निर्धारित होती है कि इस तत्परता के साथ साथ वह क्या कीमत दे सकता है।

यही कारण है कि एजवर्थ, परेटो, एलन आदि अर्थशास्त्रियों ने संख्या सूचक की अपेक्षा क्रमसूचक माप लेना अधिक उचित समझा। कल्याण अर्थशास्त्र में अधिकांश अर्थशास्त्रियों ने उपयोगिता का कम सूचक माप ही लिया है।

36.3 विल्फ्रेडो परेटो एवं कल्याण अर्थशास्त्र

जैसा कि ऊपर आपने पड़ा था, परेटो ने वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में नवसंस्थापक अर्थशास्त्रियों की व्यष्टिगत कल्याण अवधारणाओं को एक नया रूप प्रदान किया। परेटो ने अधिकतम कल्याण की स्थिति को "इष्टतम" स्थिति के रुप में परिभाषित किया तथा कहा: "इष्टतम स्थिति वह है जहां किसी भी प्रकार का परिवर्तन करना असंभव है क्योंकि इससे यदि कुछ व्यक्ति लाभान्वित होते है तो अन्य पर इसका प्रतिकूल प्रभाव हो जाता है। परेटो के मतानुसार अधिकतम कल्याण या "इष्टतम" स्थिति में समाज के सभी व्यक्ति उपभोक्ता तथा उत्पादनकर्ता व्यक्तिगत एव सामूहिक रुप से अधिकतम कल्याण प्राप्त कर रहे है। आर्थिक कल्याण में वृद्धि (या कमी) का आशय यह होगा कि कम से कम एक व्यक्ति को प्राप्त उपयोगिता/लाभ को अन्य दूसरे व्यक्ति को प्राप्त उपयोगिता/लाभ में बिना कमी किए-बढ़ाना (कम करना) संभव हो। चित्र 36.1 के माध्यम से आप परेटो द्वारा प्रदत्त आर्थिक कल्याण की व्याख्या को समझ सकते है। चित्र में X तथा Y अक्ष क्रमश: दो व्यक्तियों A तथा B के संतुष्टि स्तर (कल्याण) को व्यक्त करते है। इन अक्षों के बीच विद्यमान PP वक्र सैम्युअलसन द्वारा प्रस्तुत उपयोगिता संभावना वक्र है।

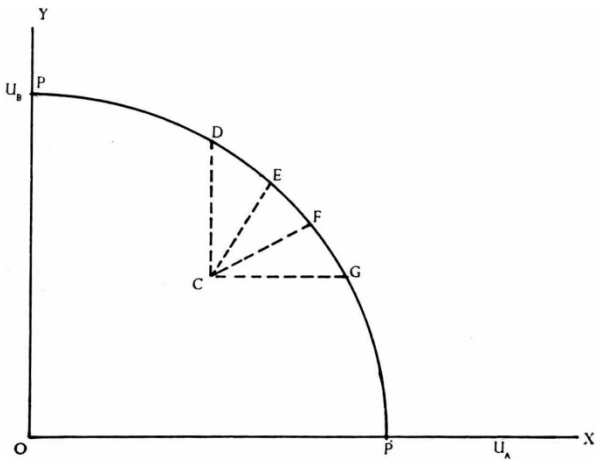

चित्र 36.1 उपयोगिता संभावना वक्र

चित्र 36.1 में यदि समाज का विद्यमान स्तर C है तो इसे परेटो इष्टतम के रुप में स्वीकार नही किया जा सकता क्योंकि C से E पर जाने पर A तथा B दोनों को प्राप्त उपयोगिता का स्तर बढ़ जाता है। यदि C से D पर जाएं तो A का कल्याण स्तर वही रहने पर भी B को प्राप्त उपयोगिता में वृद्धि होती है। इसी प्रकार C से G पर जाने पर A के कल्याण में वृद्धि होती है जबकि B को प्राप्त उपयोगिता यथावत रहती है। इस प्रकार C से विचलित होने पर PP वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर समाज का आर्थिक कल्याण अधिक होगा।

परन्तु PP वक्र पर यदि D से E या F या G या नीचे की ओर किसी भी बिन्दु पर आएं तो A के कल्याण में वृद्धि होती है जबकि B का कल्याण-स्तर (UB) गिर जाता है। परेटो की दृष्टि में PP का

प्रत्येक बिन्दु (परेटो) इष्टतम हो सकता हे जबकि इससे नीचे के प्रत्येक बिन्दु पर समाज को प्राप्त उपयोगिता (आर्थिक कल्याण) कम होगी।

36.3.1 परेटो की मान्यताएं

परेटो के कल्याण-अर्थशास्त्र या इससे सम्बद्ध इष्टतम शर्तों का अध्ययन करने से पूर्व यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि आप परेटो द्वारा ली गई मान्यताओं की जानकारी प्राप्त कर ले।

1. समाज में प्रत्येक उपभोक्ता, उत्पादन कर्ता एवं प्रत्येक साधन-स्वामी अपने हित को स्वतंत्र रूप से अधिकतम करना चाहता है। अन्य शब्दों में, प्रत्येक आर्थिक इकाई का व्यवहार विवेकपूर्ण है।
2. प्रत्येक इकाई स्वतंत्र रुप से निर्णय लेती है। अपने हित (उपयोगिता, लाभ या साधन के पारिश्रमिक) को अधिकतम करने की प्रक्रिया में उस इकाई पर न तो बाहरी वातावरण का कोई दबाव रहता है और न ही कोई प्रलोभन।
3. प्रत्येक आर्थिक इकाई को उपलब्ध साधन सीमित है। उपभोक्ता की आय व उत्पादनकर्ता के पास उपलब्ध भूमि, श्रम, पूंजी आदि साधन निर्णय प्रक्रिया के दौरान यथावत रहते है।
4. सभी उपभोक्ताओं की रुचियों (प्राथमिक फलनों) व उत्पादन की प्रविधियों (आदा-प्रदा गुणांक) में कोई परिवर्तन नहीं होता। इनके फलस्वरूप उपभोक्ताओं के उदासीनता वक्रों तथा वस्तुओं के समोत्पाद वक्रों के ढलान यथावत रहते है।
5. वस्तुओं तथा साधनों के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान रहती है। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रत्येक साधन तथा प्रत्येक वस्तु की कीमत सम्बद्ध बाजार में कुल मांग व कुल पूर्ति के आधार पर निर्धारित होती है तथा इसी कीमत के अनुरुप उपभोक्ता अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं के मध्य, तथा उत्पादनकर्ता अपने साधनों को विभिन्न वस्तुओं के मध्य इस प्रकार आवंटित करते है कि उनका (व्यष्टिगत) कल्याण अधिकतम हों जाए।
6. सुविधा के लिए परेटो ने समाज में दो व्यक्तियों (A तथा B), दो वस्तुओं (X तथा Y) एवं दो साधनों (L तथा K) को लिया तथा यह मान्यता ली कि जिस स्तर पर प्रत्येक उपभोक्ता एवं प्रत्येक उत्पादनकर्ता का आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है उसी स्तर पर समाज का आर्थिक कल्याण भी अधिकतम होगा।
7. यदि साधनों या वस्तुओं के आवंटन में परिवर्तन के फलस्वरुप समाज के किसी एक व्यक्ति (A) के कल्याण-स्तर में वृद्धि हो जबकि अन्य व्यक्तियों, (B) के कल्याण-स्तर में कोई परिवर्तन न हो, तो इस पुन: आवंटन के फलस्वरूप समाज का आर्थिक कल्याण बढ़ जाता है।

36.4 परेटो श्रेष्ठता, परेटो इष्टतमता तथा सहमति सिद्धान्त

(Pareto Superiority, Pareto Optimality and Unanimity Principle)

जैसा कि आप पढ़ चुके है, कल्याण अर्थशास्त्र का सम्बन्ध समूचे समाज (A तथा B) के लिए विभिन्न आर्थिक विकल्पों की उपयुक्तता के मूल्यांकन से होता है। आप आगे देखेंगे कि प्रत्येक विकल्प में प्रत्येक उपभोक्ता तथा फर्म की स्थिति निहित होती है और इस दृष्टि से कल्याण अर्थशास्त्र हमें दो बातें बतलाता है: (1) उपभोक्ता प्रत्येक वस्तु की कितनी मात्रा का उपभोग करता है तथा (2) फर्म या उत्पादनकर्ता साधनों की कितनी मात्रा का प्रयोग करता है तथा इसके फलस्वरुप वस्तुओं की कितनी मात्राओं का उत्पादन होता है।

आप यह जानते हें कि निर्दिष्ट साधनों के प्रयोग से प्राप्त वस्तुओं (X तथा Y) के इष्टतम संयोग वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करते हैं। कीमतों के अनुपात में जैसे परिवर्तन होते है, ये इष्टतम संयोग भी बदलते जाएगें। चूंकि उपभोक्ताओं की रुचियां बिन होती है वस्तुओं कै (इष्टतम) संयोग बदलने पर उपभोक्ताओं के संतुष्टि स्तर भी परिवर्तनशील होंगे। अन्य शब्दों में, निर्दिष्ट साधनों के दक्षतम उपयोग के अनेक बिन्दु हो सकते हें और इन्हीं के अनुरूप वस्तुओं के उपभोक्ताओं के संतुष्टि स्तर भी भिन्न होना संभव है क्योंकि उपभोक्ताओं की रुचियां (प्राथमिकता फलन) भी भिन्न है।

अब प्रश्न है, उपभोक्ताओं के संतुष्टि स्तर को हम किस प्रकार देखें? चूंकि अधिकांश अर्थशास्त्री संतुष्टि स्तर या उपयोगिता को संख्या सूचक रुप में मापने को उचित नहीं मानने, परेटो ने इसके लिए हिक्सीय विधि यानी कम सूचक उपयोगिता का आश्रय लिया। परेटो ने इसी आधार पर परेटो "इष्टतम स्थिति" की व्याख्या की। परेटो इष्टतम स्थिति को परिभाषित करने से पूर्व यह अधिक उपयुक्त होगा कि इसी से सम्बद्ध एक अवधारणा "परेटो श्रेष्ठता" की जानकारी कर ली जाए।

परेटो श्रेष्ठता- किसी अर्थव्यवस्था की कोई एक स्थित "अ" एक अन्य स्थिति "ब" की तुलना मे श्रेष्ठतर हें यदि "ब" की तुलना मे "अ" में कम से कम एक व्यक्ति को प्राप्त संतुष्टि (या लाभ) का स्तर अधिक हो।

आगे इस अवधारणा को चित्रों के माध्यम से समझाया गया हें।

" परेटो इष्टतमता" - यदि अनेक संभावित स्थितियों (अ, ब, स, द आदि) में कोई भी स्थिति ऐसी नही है जो मौजूदा स्थिति-मान लीजिए "इ" से श्रेष्ठतर हो तो स्थिति "इ" को "परेटों इष्टतम" माना जाएगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि परेटो इष्टतम स्थिति एक श्रेष्ठतम स्थिति हें जिसे साधन-सीमा, उपभोक्ताओं की रुचि, कीमतों तथा आदा प्रदा गुणांकों को स्थिर मानते हुए प्राप्त किया गया है तथा इन सभी के निर्दिष्ट मूल्यों के अन्तर्गत इससे बेहतर स्थिति दूसरी नही हो सकती।

सहमति सिद्धान्त - परेटो के सिद्धान्त को कभी कभी "सहमति सिद्धान्त" या "सहमति नियम" की भी संज्ञा दी जाती है। सहमति नियम का अर्थ निम्न है "यदि सभी सामाजिक स्थितियों में प्रत्येक की प्राथमिकता एक जैसी हो तो सामाजिक निर्णय में यह प्राथमिकता पूर्ण रुप से प्रतिबिम्बित होनी चाहिये।"

इसे इस रुप में भी समझा जा सकता है कि किन्ही दो वस्तुओं या साधनों के संयोग हेतु सामाजिक प्राथमिकता इस संयोग के लिए व्यक्त निजी प्राथमिकता पर ही निर्भर करनी चाहिये। इस शर्त को केनेथ एरो ने "असंगत विकल्पों की असम्बद्धता" के रूप में व्यक्त किया। (इकाई 37 देखिये।

किसी व्यक्ति की सहमति सिद्धान्त के अनुरुप जो निर्णय प्रक्रिया होती है उसमें विकल्पों की इस असम्बद्धता का विशिष्ट महत्व है। एक उदाहरण लीजिए मान लीजिए, कोई व्यक्ति दो संयोगों "अ" व 'ब" में "अ" को अधिक पसन्द करता है तो इस स्थिति में सामाजिक दृष्टि से भी "ब" की अपेक्षा "अ" श्रेष्ठ होगा। इसके साथ ही यदि यह कहा जाए कि जब वह ' ब " को ' 'अ' ' की तुलना में अधिक प्राथमिकता देता हो तो सामाजिक दृष्टि से भी अब" "अ" की तुलना में श्रेष्ठ है, तो वह व्यक्ति दोनों ही प्रकार से निर्णायक स्थिति में माना जाएगा। उसके ये दोनों ही निर्णय परस्पर असम्बद्ध एवं स्वतंत्र है।

36.5 परेटो की इष्टतम शर्तें

(Paretian Optimality Conditions)

खण्ड 36.3.1 में आपने परेटो के कल्याण अर्थशास्त्र की मान्यताओं का अध्ययन किया। परेटो ने इन मान्यताओं के आधार पर पहले समाज के अलग-अलग वर्गों की इष्टतम (अधिकतम कल्याण की) स्थितियों का विश्लेषण किया तथा फिर सर्च समाज को किस स्थिति में अधिकतम आर्थिक कल्याण प्राप्त होगा इसका विवरण प्रस्तुत किया। अलग-अलग क्षेत्रों में इष्टतम की प्राप्ति किस दशा में होगी, इसी को परेटो की "इष्टतम शर्तों" की संज्ञा दी जाती है। प्रस्तुत खण्ड में आप इन्हीं शर्तों का अध्ययन करेंगे।

36.5.1 विनिमय की इष्टतम शर्त

परेटो के अनुसार : "अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हेतु किन्हीं दो वस्तुओं के बीच की प्रतिस्थापन दर उन सभी व्यक्तियों के लिए समान होनी चाहिए जो उनका उपभोग करते है।" इस शर्त को दो वस्तुओं (X तथा Y) तथा दो उपभोक्ताओं (A तथा B) के संदर्भ में निम्न रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

$$\frac{Mu_X}{Mu_Y}(A) = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(B) = ...(36.1)$$

आपको स्मरण होगा कि इकाई 33 में उपभोग के अन्तर्गत सामान्य साम्य की व्याख्या हमने समीकरण (36.1) के ही अनुरुप की थी। चित्र 36.2 में विनिमय की इष्टतम शर्त की रेखागणितीय व्याख्या की गई है।

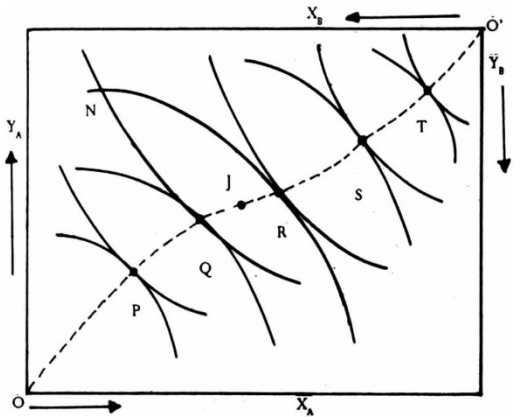

चित्र 36.2 विनिमय की इष्टतम शर्त एवं उपभोग-साम्य

चित्र 36.1 में वक्र 00 संविदा वक्र (इकाई 33 देखिए है जो दोनों उपभोक्ताओं की विभिन्न साम्य स्थितियों (P,Q,R,.....T) को मिलाने पर प्राप्त हुई है। यह भी स्पष्ट है कि बिन्दु O पर A को X तथा Y की कोई भी इकाई प्राप्त नहीं होती जबकि B की यही स्थिति O' पर है।

आप चित्र में यह भी देखते है कि जैसे A के संतुष्टि स्तर में वृद्धि होती है, वैसे वैसे B के संतुष्टि स्तर में कमी होगी। परन्तु बिन्दु N एक ऐसा बिन्दु है जिससे यदि Q पर जाएं तो A के संतुष्टि स्तर में कमी किए बिना B के कल्याण स्तर को बढ़ाया जा सकता है। इसके विपरीत यदि समाज की स्थिति R पर हो तो B के कल्याण स्तर को कम किए बिना भी A के संतुष्टि स्तर में वृद्धि की जा सकती है। यदि N से हट कर समाज की स्थिति R व Q के बीच लाई जाए (जैसे कि J) तो दोनों के कल्याण स्तर में वृद्धि की जा सकती है।

अस्तु, गैर परेटो-इष्टतम स्थिति से जब भी समाज ले परेटो-इष्टतम स्थिति (यानि संविदा वक्र पर कहीं भी) में लाया जाए तो समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो जाती है।

36.5.2 साधन प्रयोग की इष्टतम शर्त - यह शर्त इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है:

"परेटो इष्टतम की प्राप्ति हेतु दो साधनों के बीच सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर उन सभी उत्पादकों के लिए समान होनी चाहिए जो दोनों साधनों का प्रयोग करते है।. अर्थात्

$MRTS_{KL}(X) = MRTS_{KL}(Y)$

$$\frac{MP_L}{MP_K}(X) = \frac{MP_L}{MP_K}(Y) = ...(36.2)$$

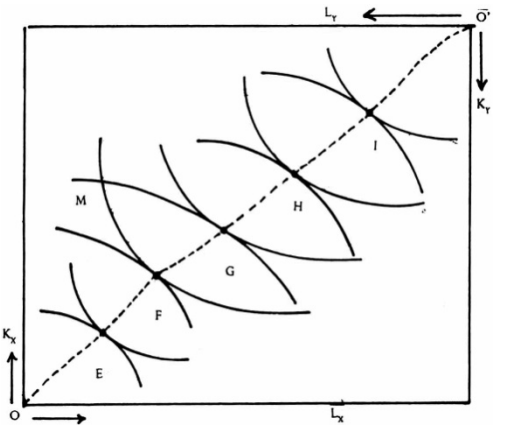

चित्र 36.3 साधन प्रयोग की इष्टतम स्थितियां

चित्र 36.3 वस्तुत: चित्र 36.2 के ही अनुरुप है। इनमें केवल इतना अन्तर है कि जहां चित्र 36.2 दो वस्तुओं के दो उपभोक्ताओं के मध्य इष्टतम आवंटन से सम्बद्ध था, वही चित्र 36.3 दो साधनों के इष्टतम संयोग का विवरण प्रस्तुत करता है। यदि श्रम व पूंजी का उत्तरोत्तर प्रयोग X के लिए अधिक किया जाए तो Y का उत्पादन घटता जाएगा। चित्र 36.3 में OO' रेखा दोनों साधनों के X तथा Y के उत्पादन में इष्टतम संयोग को दर्शाती है, क्योंकि इसी रेखा पर L तथा K की सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दरें समान है। इसीलिए OO' पर स्थित प्रत्येक बिन्दु को परेटो इष्टतम कहा जाता है।

बिन्दु M परेटो इष्टतम नहीं है। यहां से हटाकर समाज के साधन प्रयोग की स्थिति परेटो इष्टतम के अनुरूप करने पर X या Y या दोनों का उत्पादन बढ़ जाता है। इस प्रकार गैर-परेटो इष्टतम से परेटो इष्टतम स्थिति में पहुंचने से समाज को प्राप्त कुल आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो जाती है।

36.5.3 उत्पादन रूपान्तरण (अथवा विशिष्टीकरण) की इष्टतम शर्त

यदि A तथा Y दो उत्पादनकर्ता है तो इनके द्वारा अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हेतु दो वस्तुओं के इष्टतम संयोग का उत्पादन करना अनिवार्य है। परेटों के अनुसार "दो वस्तुओं की सीमान्त रुपान्तरण दर उन सभी फर्मो के लिए समान होनी चाहिए जो उनका उत्पादन करती हैं।"

$$\frac{MC_X}{MC_Y}(A) = \frac{MC_X}{MC_Y}(B) = ...(36.3)$$

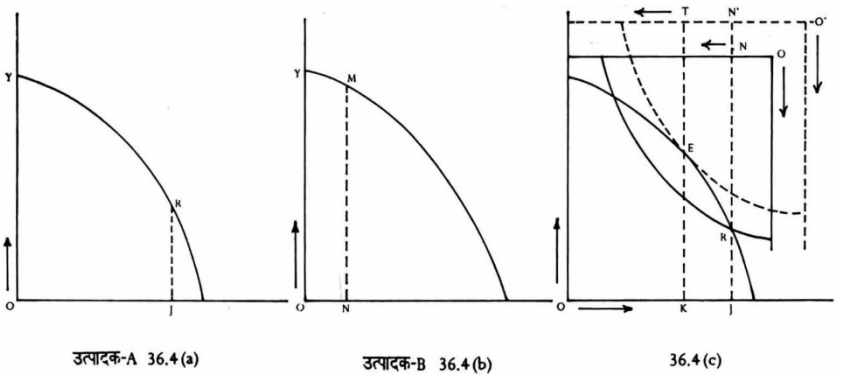

चित्र 36.4 उत्पादन रुपान्तरण की इष्टतम स्थिति

चित्र 36.4(a) तथा 36.4(b) में क्रमश: A व B के रुपान्तरण वक्र प्रस्तुत किए गए है। स्वतंत्र रूप में A, OJ मात्रा X की, तथा JR मात्रा Y की तैयार करता है जबकि B के लिए ये मात्राएं ON तथा NM है। यदि दोनों रूपान्तरण वक्रों को 36.4 (c) चित्र में एक साथ प्रस्तुत किया जाए तो वे परस्पर R बिन्दु पर काटते है। आप यह देख सकते है कि R पर दोनों वक्रों के ढलान समान नही है यानि दोनों वस्तुओं की सीमान्त रूपान्तरण दरें समान नही है। यदि B के वक्र को थोड़ा ऊपर की ओर खिसका दें तो E बिन्दु पर साम्य की शर्त पूरी हो जाती है। क्योंकि E पर A व B के वक्र परस्पर स्पर्श करते है। आप यह देख सकते है कि E पर X की कुल मात्रा पूर्वापेक्षा अधिक हो जाती है।

(O'T+OK>OJ+ON)। इसी प्रकार Y की मात्रा भी साम्य स्थित में (E पर) उस स्थिति की तुलना में अधिक होती है जहां A व B स्वतंत्र रूप से Y का उत्पादन करते थे (KE+TE>JR+NR) इस प्रकार गैर-इष्टतम स्थित की तुलना में इष्टतम स्थिति में अधिक मात्राएं प्राप्त होती है।

36.5.4 दो अवधियों के बीच आवंटन की इष्टतम स्थिति

परेटो ने यह भी बतलाने का प्रयास किया कि वर्तमान तथा भविष्य के बीच साधनों का इष्टतम आवंटन भी अधिकतम आर्थिक कल्याण के लिए आवश्यक है। उनके अनुसार "साधनों व वस्तुओं के प्रत्येक संयोग की सीमान्त वर्तमान रुपान्तरण दर, साधनों के प्रत्येक संयोग की सीमान्त प्रतिस्थापन दर' तथा वस्तुओं के संयोग की सीमान्त प्रतिस्थापन दर एवं जोखिम रहित प्रतिभूतियों पर अंकित ब्याज की दरें समान होनी चाहिये।"

वस्तुत: यह शर्त आस्ट्रिया के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री बॉम बावर्क द्वारा प्रदत्त ब्याज के समय अधिमान सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अनुसार कोई उत्पादक जिस ब्याज दर पर उत्पादन थे पूंजी उधार लेना चाहता है, वह दर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के समान तो होनी ही चाहिए, साथ ही उधार देने वाले व्यक्ति द्वारा स्वयं के उपभोग में की गई सीमान्त कटौती के बदले चाहे गए प्रतिफल के समान होनी भी आवश्यक है।

चित्र 36.5 में इस इष्टतम शर्त की व्याख्या की गई है। इसमें वक्र RR' ऋण लेने वाले व्यक्ति के लिए समय उत्पादन संभावना वक्र है तथा पूंजी की ह्रासमान सीमान्त उत्पादकता के कारण RR' का स्वरूप नतोदर हो जाता है।

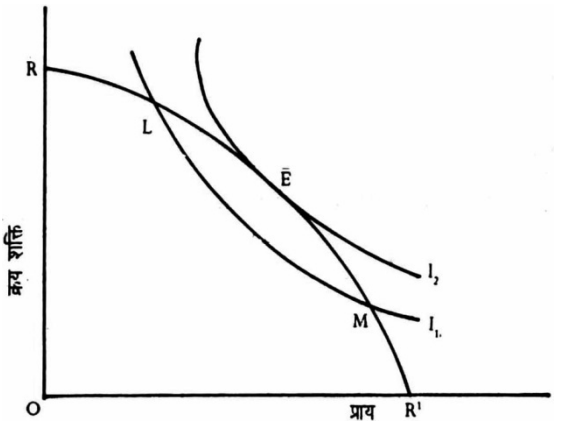

चित्र 36.5 दो अवधियों के बीच साधन आवंटन

I_1 व I_2 ऋण देने वाले व्यक्ति के लिए समय अधिमान वक्र है। इनका घटता हुआ ढलान वर्तमान व भविष्य के आय-स्तरों की ह्रासमान प्रतिस्थापन दर को व्यक्त करता है। स्वाभाविक है कि ऋण दाता उच्चतर अधिमान वक्र पर पहुंचना चाहेगा।

आप यह भी जानते है कि कोई भी व्यक्ति तभी आ लेना चाहेगा जब पूंजी की सीमान्त उत्पादकता दर ब्याज की दर से अधिक या कम से कम समान हो। कोई व्यक्ति इसके विपरीत तभी ऋण देना चाहेगा जबकि उसकी समय अधिमान दर ब्याज की दर से कम या समान हो। आप यह देख सकते है कि बिन्दु E पर ऋणी व ऋणदाता वर्तमान व भविष्य के मध्य साधनों का इष्टतम आवंटन करते है। यदि साधनों का आवंटन L या M के अनुरूप किया जाए तो वह इष्टतम स्थिति नही होगी।

36.6 उत्पादन संभाव्यता वक्र एवं इष्टतम विनिमय स्थिति

उत्पादन संभाव्यता वक्र प्राय: यह बतलाता है कि उत्पादन के निर्दिष्ट साधनों एवं उत्पादन की निर्दिष्ट प्रविधि के अन्तर्गत दो (या अधिक) वस्तुओं की अधिकतम कितनी मात्राएं निर्मित की जा सकती है। यदि दोनों वस्तुओं की कीमतें ज्ञात हों तो इनके इष्टतम संयोग को ज्ञात किया जा सकता है।

चित्र 36.6 में आप यह देख सकते है कि निर्दिष्ट साधनों, निर्दिष्ट तकनीक तथा वस्तुओं की निर्दिष्ट कीमतों के अनुरूप X तथा Y की क्रमश: $O\overline{X}$ तथा $O\overline{Y}$ इकाइयां उत्पादित करने पर उत्पादन में अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। आप यह जानते है कि उत्पादन संभाव्यता वक्र का ढलान दोनों वस्तुओं की सीमान्त लागतों के अनुपात को तथा सम-आगम रेखा RR' का ढलान दोनों वस्तुओं की कीमतों के अनुपात को व्यक्त करते है। इष्टतम स्थिति E पर सम-आगम रेखा, उत्पादन सम्भाव्यता वक्र को स्पर्श करती है। अस्तु E बिन्दु पर इष्टतम संयोग में X तथा Y का उत्पादन होगा क्योंकि यहां निम्न इष्टतम शर्त पूरी होती है।

$$\frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$$

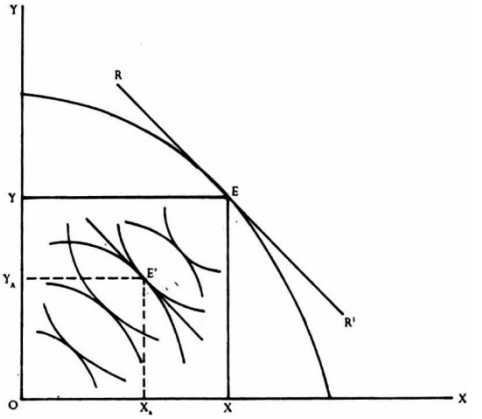

चित्र 36.6 उत्पादन संभाव्यता वक्र एवं इष्टतम विनिमय

अब चित्र 36.6 के भीतर निर्मित एजवर्थ आयताकार चित्र को देखिए। इसमें क्रमश: A व B के तटस्थता या अधिमान वक्र दिए गए है। खण्ड 36.5.1 के अन्तर्गत आपने पड़ा था कि इष्टतम विनिमय की शर्त वहां पूरी होती है जहां X तथा Y की कीमतों का अनुपात दोनों उपभोक्ताओं की सीमान्त प्रतिस्थापन दरों के समान हो। अस्तु, E' बिन्दु पर A व B के बीच इष्टतम विनिमय की शर्त पूरी होती है जहां निम्न शर्त पूरी होती है :

आप यह देख सकते है कि इष्टतम मात्राओं ($O\overline{X}$ व $O\overline{Y}$) को हम E' के आधार पर A व B के बीच इष्टतम रूप में आवंटित कर सकते है जहां A को $O\overline{X}_A$ व $O\overline{Y}_A$ इकाइयां प्राप्त होती है जबकि B को X की $\overline{X}_A\overline{X}$ तथा Y की $\overline{Y}_A\overline{Y}$ इकाइयां प्राप्त होती है।

आप जैसे कि आगे देखेंगे, यदि X तथा Y की कीमतों में परिवर्तन होता है तो X तथा Y की (इष्टतम) मात्राओं का आवंटन एवं तदनुसार A तथा B को प्राप्त उपयोगिताओं का स्तर भी बदल जाता है।

यदि E तथा E' को एक ही सिक्के के दो पहलुओं के रूप में लिया जाए तो X तथा Y के इष्टतम उत्पादन तथा A एवं B के बीच उन इष्टतम मात्राओं का आवंटन उसी स्थिति में अधिकतम कल्याण प्रदान करेगा जहां निम्न शर्त पूरी होती है :

$$\frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{P_X}{P_Y} = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(A) = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(B) = ...(36.4)$$

जैसा कि ऊपर आपने पढ़ा था, यह इष्टतम स्थिति केवल P_X तथा P_Y के निर्दिष्ट स्तर से ही समद्ध है। यदि हम इस स्थित के अनुरूप X तथा Y के दोनों उपभोक्ताओं के मध्य इष्टतम आवंटन की स्थिति को देखें तो हम यह भी पाएंगे कि A को प्राप्त संतुष्टि या उपयोगिता का स्तर बढ़ाना तभी संभव है जबकि B को प्राप्त संतुष्टि स्तर में कमी हो। इसी के आधार पर हमने चित्र 36.1 में उपयोगिता संभावना

वक्र का निरूपण किया था। यदि कीमतों (P_X व P_Y) में परिवर्तन हो जाता है तो तदनुसार X तथा Y की इष्टतम मात्राएं तथा उनका दोनों उपभोक्ताओं के मध्य आवंटन करने पर प्राप्य उपयोगिता संभावना वक्र की स्थिति भी परिवर्तित हो जाएगी। आगे के खण्ड में आप यही पढ़ेंने।

36.7 इष्टतम विनिमय तथा उपयोगिता संभावना वक्र

चित्र 36.7 में निर्दिष्ट साधनों तथा टेक्नोलॉजी के अन्तर्गत X तथा Y की भिन्न भिन्न कीमतों के अनुरूप प्राप्त इष्टतम मात्राओं के दर्शाया गया है।

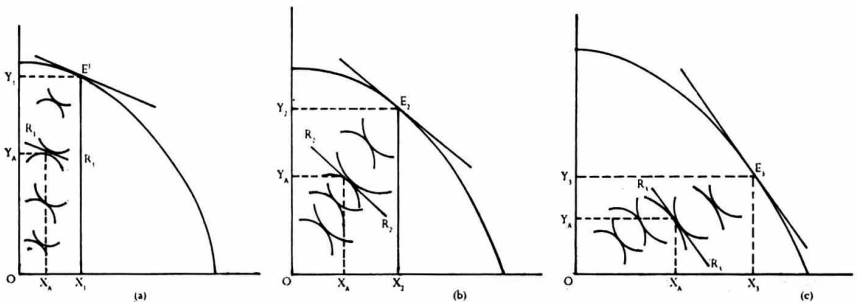

चित्र 36.7 विभिन्न कीमत स्तर एवं इष्टतम विनिमय स्थितियां

जैसा कि आप देख सकते है तीनों स्थितियों में X तथा Y के इष्टतम संयोग ही परिवर्तित नही होते, अपितु इनकी इष्टतम मात्राओं का आवंटन भी भिन्न हो जाता है। यदि तीनों पैनलों में प्रस्तुत संविदा वक्रों (OE_1,OE_2, तथा OE_3,) को एक ही चित्र में प्रस्तुत करें तो हमें तीन उपयोगिता संभावना वक्र प्राप्त होंगे। चित्र 36.8 में इस स्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

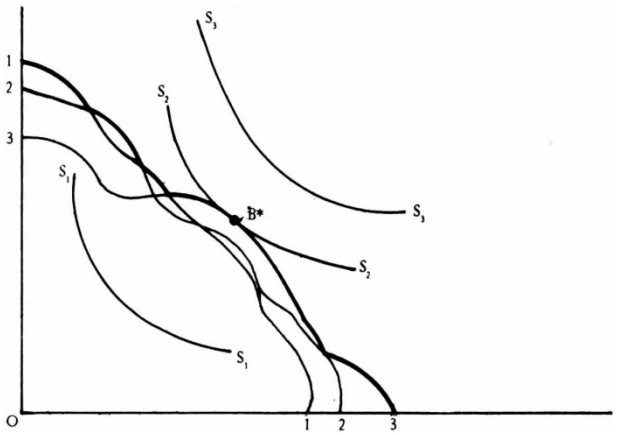

चित्र 36.8 विभिन्न उपयोगिता संभावना वक्र

आप यदि कीमतों के और भी संयोग लेना चाहे तो आपको तीन से अधिक उपयोगिता वक्र प्राप्त हो सकते है।

36.7.1 वृहत् उपयोगिता संभावना सीमा

चित्र 36.8 को पुन: देखिए। तीनों स्थितियों को देखते हुए अब आपको यह पता लगाना है कि A तथा B को निर्दिष्ट साधनों तथा टेक्नोलॉजी के अन्तर्गत विभिन्न विनिमय दशाओं में अधिकतम कितनी उपयोगिता प्राप्त हो सकती है। जैसा कि आप चित्र में प्रस्तुत ऊपरी सीमा (गहरी रेखा) से समझ सकते है, हमें एक वृहत्तम उपयोगिता संभावना सीमा मिलती है। यदि समाज को उपलब्ध साधनों में वृद्धि हो जाती है या टेक्नोलॉजी में पर्याप्त सुधार हो जाता है तो यह वृहत् उपयोगिता संभावना वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो सकता है।

36.7.2 सीमाबद्ध अधिकतम कल्याण फलन

आपने पिछली इकाई में सामाजिक कल्याण फलन के बारे में पढ़ा था तथा यह समझ लिया था कि यदि समाज के सभी वर्गो (या कम से कम एक) को प्राप्त संतुष्टि-स्तर में वृद्धि होती है तो समाज का आर्थिक कल्याण स्तर भी बढ़ जाएगा।

चित्र 36.8 में सुविधा के लिए तीन सामाजिक कल्याण फलन दिए गए है (S_1S_1, S_2S_2, तथा S_3S_3) जैसा कि आप देख सकते है, S_3S_3 तक पहुंचना समाज के लिए संभव नहीं है क्योंकि यह स्थिति वृहत् उपयोगिता संभावना वक्र से काफी दूर है। इसके विपरीत S_1S_1 पर सामाजिक कल्याण का स्तर काफी नीचे है। परन्तु S_2S_2 समाज के वृहत् उपयोगिता संभावना वक्र को B* पर स्पर्श करता है। इस प्रकार B* समाज के सीमाबद्ध अधिकतम कल्याण की स्थिति को व्यक्त करता है।

हम उक्त स्थिति को "सीमाबद्ध" अधिकतम कल्याण की स्थिति इसलिए कहते है कि साधनों की निर्दिष्ट मात्रा तथा निर्दिष्ट टेक्नोलॉजी के अन्तर्गत A तथा B को अधिकतम संतुष्टि केवल इसी स्थिति में प्राप्त हो सकती हें चाहे कीमतों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन क्यों न हो जाए। इसे कुछ अर्थशास्त्रियों ने "सीमाबद्ध परम कल्याण (Constrained bliss) की भी संज्ञा दी हें।"

36.7.3 अधिकतम कल्याण एवं दक्षता

यदि परेटो इष्टतम स्थिति की विभिन्न शर्तों के अनुरूप साधनों का आवंटन किया जाए तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता हें कि यह स्थिति अधिकतम दक्षता की स्थिति होगी। जैसा कि आप जानते है, एक उपभोक्ता अपने साधनों का इष्टतम आवंटन उस स्थिति में करता है जब उसे प्राप्त सीमान्त उपयोगिताओं तथा कीमतों के अनुपात समान हों। इसी प्रकार उत्पादन में साधनों की उत्पादकता तथा साधन-कीमतों के अनुपात समान हों। अय शब्दों में, उपभोग, उत्पादन, विनिमय एवं निवेश के क्षेत्रों में साधनों का दक्षतम या इष्टतम प्रयोग होने के फलस्वरुप समाज के प्रत्येक वर्ग का कल्याण अधिकतम हो जाता हैं। खण्ड 36.5 में प्रस्तुत परेटो इष्टतम शर्तों इन्हीं इष्टतम स्थितियों को अभिव्यक्त करती है।

36.8 परेटो इष्टतम शर्तें एवं पूर्ण प्रतियोगिता

आप यह ऊपर पढ़ चुके हें कि परेटो के कल्याण अर्थशास्त्र में प्रत्येक गैर-इष्टतम स्थिति को इष्टतम स्थिति से श्रेष्ठ माना जाता है। किन्हीं परिस्थितियों में किसी एक बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान हो तब भी परेटो इष्टतम स्थिति को प्राप्त करना संभव हें, परन्तु आदर्श स्थिति के लिए यह जरूरी हें कि सभी वस्तुओं तथा साधनों के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान हो। अन्य शब्दों में, प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक साधन की कीमत उपभोक्ताओं, उत्पादनकर्ताओं तथा साधनों के स्वामियों के लिए बाह्य रूप में निर्धारित की हुई हों। इस संदर्भ में प्रोफेसर कूपमैन्स ने एक प्रमेय प्रस्तुत की है जिसके अनुसार निर्दिष्ट मान्यताओं के अन्तर्गत प्रत्येक प्रतियोगितात्मक साम्य की स्थिति ही होती है।

आपने ऊपर परेटो-इष्टतम शर्तों का विश्लेषण दो वस्तुओं, दो उपभोक्ताओं, तथा दो साधनों के संदर्भ में पढ़ा। यदि अनेक वस्तुएं या अनेक उपभोक्ता या अनेक साधनों की विद्यमानता हो तब भी विश्लेषण एवं उससे प्राप्त निष्कर्षो पर कोई प्रभाव नही पड़ेगा। उदाहरण के तौर पर विनिमय में परेटो-इष्टतम शर्त को n व्यक्तियों के लिए इस प्रकार लिखा जा सकता हें :

$$\frac{Mu_X}{Mu_Y}(A) = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(B) = \ldots \frac{Mu_X}{Mu_Y}(n) = \frac{P_X}{P_Y} \ldots\ldots\ldots (36.5)$$

इसी प्रकार अनेक वस्तुओं (R) का दो साधनों की सहायता से उत्पादन करने पर परेटो इष्टतम स्थिति को निम्न रूप में लिखा जा सकता है :

$$\frac{MP_L}{MP_K}(X) = \frac{MP_L}{MP_K}(Y) = \ldots \frac{MP_L}{MP_K}(R) = \frac{w}{r} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (36.6)$$

इसी प्रकार दो वस्तुओं के रूपान्तरण की शर्त विभिन्न (n) व्यक्तियों के संदर्भ में निम्न होगी :

$$\frac{P_X}{P_Y} = \frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(A) = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(B) = \ldots = \frac{Mu_X}{Mu_Y}(n) \ldots (36.7)$$

आप यह सहज मे अनुमान कर सकते हैं कि PxPy या w,r का निर्धारण प्रतियोगी बाजारों में प्रत्येक वस्तु या साधन की मांग व पूर्ति के आधार पर किया जाता है। यही नहीं, प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता मूल्य के समान कीमत मिलने, अथवा उपभोक्ता को सीमान्त उपयोगिता के समान वस्तु की कीमत चुकाने, अथवा फर्म को सीमान्त लागत के समान वस्तु की कीमत मिलने, के कारण परेटो इष्टतम स्थिति में किसी भी व्यक्ति का शोषण नही होता, और यह सब पूर्ण प्रतियोगी बाजार की ही देन हो सकती है।

36.9 क्या परेटो की इष्टतम शर्तें पूरी हो सकती है?

परेटो के कल्याण अर्थशास्त्र को आधुनिक अर्थशास्त्री एक ऐसी आदर्श स्थिति का प्रतीक मानते है जिसकी प्राप्ति वर्तमान संदर्भ में ' मृग-मरीचिका के सदृश है। परेटो की इष्टतम शर्तों को अव्यवहारिक माना गया है। इन शर्तों के विषय में विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत आलोचनाएं इस प्रकार हें :

1. परेटो ने अत्यधिक सरलीकृत मॉडल लेते हुए केवल दो वस्तुओं, दो साधनों व दो व्यक्तियों के लिए इष्टतम शर्तें प्रस्तुत की। यदि हम nxnxn मॉडल लेने का प्रयास करें तो यह एक अत्यधिक जटिल स्थिति का द्योतक होगा जिसमें अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति कहां होगी यह ज्ञात करना अत्यधिक दुष्कर हो जाएगा।
2. सैम्युअलसन के मतानुसार समाज के अनधिमान वक्रों की स्थिति ज्ञात करना संभव नही है आपने चित्र 36.1 व 36.8 में $u_A u_B$ के निर्दिष्ट संयोग को x तथा y की निर्दिष्ट मात्राओं के आधार पर ज्ञात किया जा सकता है। सैम्युअलसन का यह तर्क है कि $u_A u_B$ के उसी संयोग को X तथा Y के अनेक संभावित संयोगों से प्राप्त किया जा सकता हें। संक्षेप में, X तथा Y का एक ही संयोग $u_A u_B$ वक्र (उपयोगिता संभावना वक्र) पर इष्टतम स्थिति प्रदान करे यह जरूरी नही है। इष्टतम की प्राप्ति हेतु हमें आय का अनवरत पुनर्वितरण करना होगा।
3. परेटो की यह मान्यता भी अनुचित हें कि साधनों की मात्राएं तथा टेक्नोलॉजी यथावत रहती है। आधुनिक युग के अनुरूप यदि नए साधनों की प्राप्ति तथा/अथवा नई टैक्नोलॉजी के प्रयोग की छूट दी जाए तों परेटो इष्टतम स्थिति वस्तुत: कहॉ होगी, इसका अनुमान अग्रिम रूप से करना असंभव है।
4. ए0 कॉत्सौयानिस का तर्क हें कि परेटो का मॉडल संयुक्त उत्पादों तथा मध्यवर्ती वस्तुओं के संदर्भ में लागू नहीं किया जा सकता। यह मॉडल केवल अंतिम वस्तुओं के संदर्भ में ही उपयुक्त है।
5. परेटो का मॉडल परोक्ष रूप से इस मान्यता पर भी आधारित हें कि यदि पैमाने में परिवर्तन किया जाए तो उसी अनुपात में उत्पादन मे, भी वृद्धि हो जाएगी। परन्तु यदि एक उत्पादक भी पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन करता हो तो परेटो-इष्टतम शर्त पूरी नहीं होगी।
6. बाह्यताए - बेटर के मतानुसार यदि किसी वस्तु की सीमान्त उत्पादन लागत, कीमत से कम या ज्यादा हो (MC#P) तो यह बाह्यता का परिणाम हो सकता हें। परेटो ने बाह्यताओं की कल्पना नही की थी और वे इनके प्रभावों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। बाह्यताओं का विवरण तथा इनके प्रभावों की समीक्षा अगली इकाई में की जाएगी।
7. आधुनिक संदर्भ में परेटो की इष्टतम शर्तें इस कारण भी पूरी नही हो सकती क्योंकि वास्तविक बाजारों (वस्तु या साधन के) में पूर्ण प्रतियोगिता की आदर्श स्थिति कही भी दिखाई नही देती।

36.10 द्वितीय श्रेष्ठ प्रमेय (Second Best Theorem)

यह अनुभव करते हुए कि परेटों इष्टतम स्थिति को प्राप्त करने थे जिन शर्तों का पूरा किया जाना अनिवार्य है, वे पूरी नही हो सकती 1956 में लिप्से तथा लंकास्टर ने एक लेख में यह बतलाया कि अर्थव्यवस्था को बहुधा इष्टतम से कम यानी द्वितीय श्रेष्ठ की स्थिति पर ही संतोष करना पड़ सकता है। चित्र 36.9 में इस स्थिति को समझाया गया है।

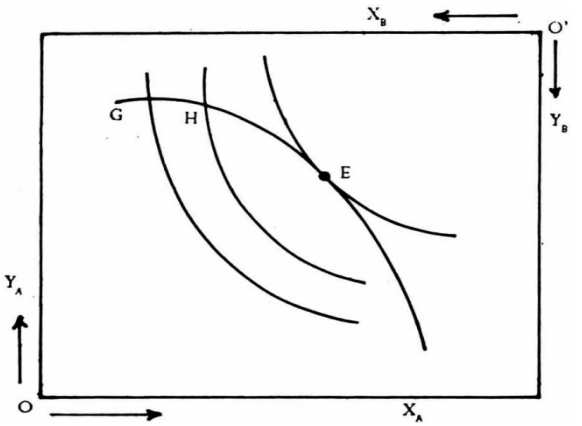

चित्र 36.9 द्वितीय श्रेष्ठ

चित्र 36.9 में तीन स्थितियां दर्शायी गई है। स्थिति E पर परेटो इष्टतम की शर्त पूरी होती है। यदि किन्हीं परिस्थितियों के कारण परेटो-इष्टतम की प्राप्ति न हो सके तो दोनों व्यक्तियों A व B के बीच X तथा Y के विनिमय हेतु दो विकल्प शेष रहते है या तो G या H1 स्पष्ट है, H पर 0 की तुलना में अधिक आर्थिक कल्याण प्राप्त होता है। इसी कारण विनिमय के क्षेत्र में इष्टतम की 'प्राप्ति न होने पर जो भी इसके बाद की श्रेष्ठतम स्थिति है उसे प्राप्त करना श्रेयस्कर है। इसी कारण H को द्वितीय श्रेष्ठ स्थिति कहा जाता है।

36.11 सारांश

आपने इस इकाई में अधिकतम आर्थिक कल्याण की प्राप्ति हेतु परेटो द्वारा प्रस्तुत इष्टतम शर्तों का अध्ययन किया। आपने यह देखा कि यदि दो व्यक्ति, दो साधन तथा दो वस्तुओं का मॉडल लिया जाए तो दोनों वस्तुओं का दोनों व्यक्तियों के बीच इष्टतम वस्तुओं के उत्पादन में इष्टतम आवंटन किस प्रकार किया जाएगा तथा दोनों साधनों का निर्दिष्ट वस्तुओं के उत्पादन में इष्टतम आवंटन किस प्रकार होगा। आपने यह भी पढ़ा कि दोनों व्यक्तियों के बीच वस्तुओं के इष्टतम आवंटन तथा दोनों वस्तुओं के इष्टतम रूपान्तरण के बीच क्या संबंध है।

इसके बाद आपने कीमतों के परिवर्तन की ' छूट देते हुए वृहद उपयोगिता संभावना सीमा तथा सामाजिक कल्याण फलन का संबंध देखा, तथा सीमाबद्ध परम कल्याण की स्थिति किस प्रकार प्राप्त होती है इसका अध्ययन किया।

परेटो इष्टतम शर्तों का साधन आवंटन की दक्षता तथा पूर्ण प्रतियोगिता मे क्या संबंध है यह भी आपने इस इकाई में पढ़ा। आपने परेटो की इष्ट शर्तों की व्यावहारिकता की आलोचनात्मक समीक्षा भी की, और यह पाया कि ये शर्तें अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। अन्त में आपने लिप्से तथा लंकास्टर के "द्वितीय-श्रेष्ठ" प्रमेय का अध्ययन किया जिसके अनुसार यदि "परेटो-इष्टतम" की प्राप्ति किन्ही व्यवधानों या कारणों से न हो पाए तब जिस श्रेष्ठतम स्थिति में अर्थव्यवस्था पहुंच सकती हें, वह द्वितीय-श्रेष्ठ विकल्प होगा।

36.12 शब्दावली

परेटो इष्टतम (Pareto Optimum) परेटो इष्टतम स्थिति साधनों के आवंटन की वह स्थिति है जिससे बेहतर स्थिति को साधनों की मात्रा तथा टेक्नोलॉजी के यथावत रहते हुए प्राप्त करना संभव न हो। अन्य शब्दों में, परेटो इष्टतम स्थिति एक श्रेष्ठतम स्थिति हें।

परेटो श्रेष्ठतर (Pareto Superior) यदि दो स्थितियों अ तथा ब में से अ पर ब की तुलना में कम से कम एक व्यक्ति को, अथवा दोनों व्यक्तियों को, अधिक संतुष्टि (लाभ) प्राप्त होती हो तो अ को परेटो श्रेष्ठतर स्थिति कहते हैं।

सहमति सिद्धान्त (Unanimity Principle) यदि सभी सामाजिक स्थितियों में सभी व्यक्तियों की प्राथमिकताएं एक जैसी हों तो इस स्थिति को सहमति तया इसके आधार पर इष्टतम स्थिति प्राप्त करने की प्रक्रिया को सहमति सिद्धान्त कहा जाता है।

सीमाबद्ध परम कल्याण (Constrianed Bliss) साधना तथा टेक्नोलॉजी यथावत रखते हुए विभिन्न कीमतों के अन्तर्गत प्राप्त वृहत् उपयोगिता संभावना वक्र पर A तथा B को प्राप्त अधिक संतुष्टि का स्तर, सीमाबद्ध परम कल्याण की स्थित को व्यक्त करता हें।

द्वितीय श्रेष्ठ (Second Best) यदि बाजार की अपूर्णताओं या अन्य किसी कारण से परेटो इष्टतम की प्राप्ति संभव न हो तो उसके बाद की वैकल्पिक स्थितियों में से जो भी सबसे होश हो उसे द्वितीय श्रेष्ठ की स्थिति कहा जाता है।

बोध प्रश्न 1

– इकाई के अन्त में प्रस्तुत उत्तर संकेतों से अपने उत्तर का मिलान करें।

1. परेटो इष्टतम शर्तों का विवरण दीजिए। क्या व्यवहारिक जगत में ये शर्तें पूरी हो सकती हैं?
2. वृहत् उपयोगिता संभावना सीमा का निरुपण कीजिए सीमा पर अधिकतम सामाजिक कल्याण किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है?
3. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए
   - I. अधिकतम कल्याण एवं दक्षतम साधन आवंटन
   - II. पूर्ण प्रतियोगिता एवं परेटो इष्टतम स्थिति
   - III. द्वितीय श्रेष्ठ प्रमेय

36.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Koutsoyiannis – Modern Microeconomics Second, Edition (ELSB) 1985 Chapter 23

2. William Sher and Rudy Pinolo, Microeconomic Theory (Adward Arnold) 1981 Chapter 13
3. Amartya Kumar Sen, Choice, Welfare and Measurement (1983) Chapter 13& 15
4. J.P. Gould and E.P. Lazear, Ferguson and Gould's Microeconomic Theory (Sixth Edition, 1989) Chapter 17

36.14 अभ्यासों के उत्तर संकेत

1. परेटो इष्टतम स्थिति को प्राप्त करने हेतु विनिमय के क्षेत्र मे, साधन प्रयोग के क्षेत्र में, वस्तुओं के रुपान्तरण के क्षेत्र में तथा दो अवधियों के बीच निवेश संबंधी जो इष्टतम शर्तें इकाई के खण्ड 36.5 में प्रस्तुत की गई हें उनका रेखाचित्रों के साथ विवरण दीजिए। प्रश्न के द्वितीय भाग के उत्तर हेतु इकाई के खण्ड 9 में प्रस्तुत परेटो इष्टतम की आलोचनाओं का उल्लेख कीजिए।

2. वृहत् उपयोगिता संभावना सीमा या वक्र का निरुपण करने हेतु उत्पादन संभावना वक्र पर विभिन्न कीमत अनुपातों को लेते हुए तत्सम्बंधी विभिन्न उपयोगिता संभावना वक्र खींचिए तथा सभी उपयोगिता संभावना वक्रों की ऊपरी सीमा को स्पर्श करते हुए वृहत् उपयोगिता संभावना सीमा ज्ञात कीजिए। यह ज्ञात रहे कि उत्पादन संभाव्ना वक्र की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता क्योंकि साधनों की मात्राएं तथा टैक्नोलॉजी यथावत रहती हें। अब दो या अधिक सामाजिक कल्याण फलन खींचिए। जिस बिन्दु पर कोई सामाजिक कल्याण फलन वृहत् उपयोगिता संभावना वक्र को स्पर्श करता हें वही सीमाबद्ध परम कल्याण की स्थिति होगी।

3. संक्षिप्त टिप्पणी - इकाई के खण्ड 36.7.3 में परेटों की इष्टतम स्थितियों तथा साधनों के आवंटन की दक्षता के मध्य संबंध बतलाया गया हें। खण्ड 36.8 में यह बतलाया गया हें कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति परेटो इष्टतम शर्तों के पूरा होने के लिए क्यों आवश्यक है। इकाई के खण्ड 36.10 मे लिप्से तथा लंकास्टर द्वारा प्रतिपादित द्वितीय श्रेष्ठ प्रमेय की चित्र सहित व्याख्या की गई हें।

इकाई-37

नव-कल्याण अर्थशास्त्र
New Welfare Economics

इकाई की रूपरेखा

37.0 उद्देश्य

37.1 प्रस्तावना

37.2 नव-कल्याण अर्थशास्त्र का अर्थ

37.2.1 सामाजिक कल्याण फलन

37.2.2 एरो द्वारा प्रस्तुत सामाजिक चुनाव की अवधारणा

37.2.3 बर्गसन-सैम्युअलसन द्वारा एरो के सिद्धान्त की व्याख्या

37.3 पीगू के आदर्श उत्पादन की विलियम बॉमोल द्वारा विवेचना

37.4 परम्परागत कल्याण अर्थशास्त्र की अव्यावहारिकता

37.4.1 बाजार में उत्पन्न एकाधिकार या अपूर्णताऐं

37.4.2 बाह्यताए एवं आर्थिक कल्याण के सिद्धान्त

37.5 वैयक्तिक कल्याण तथा सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया

37.5.1 सार्वजनिक निर्णय में विरोधाभास

37.6 सारांश

37.7 शब्दावली

37.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

37.9 अभ्यासों के उत्तर

37.0 उद्देश्य

इससे पूर्व 36 वीं इकाई में आपने परेटो के कल्याण अर्थशास्त्र एवं परेटों की इष्टतम कल्याण संबंधी शर्तों का अध्ययन किया था। आपने उस सन्दर्भ में परेटो द्वारा ली गई मान्यताओं का अध्ययन करने के पश्चात् यह पड़ा था कि व्यावहारिक जगत में ये मान्यताएं असंगत है और इस कारण परेटो के कल्याण अर्थशास्त्र से सम्बन्धित इष्टतम शर्तें भी पूरी नही हो पाती।

प्रस्तुत इकाई में आप नव कल्याण अर्थशास्त्र की जानकारी लेंगे। परेटो के पश्चात् अर्थशास्त्रियों ने व्यावहारिक जगत का अवलोकन कर अधिकतम कल्याण की प्राप्ति किस हद तक संभव हें तथा इसमें क्या-क्या कठिनाइयां आती हैं, इसकी विस्तृत विवेचना की। वस्तुत: नव कल्याण अर्थशास्त्र का प्रतिपादन किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं किया गया। इसके प्रतिपादन एवं विकास में अनेक विद्वानों का योगदान रहा दें। आप इस इकाई में

- सामाजिक कल्याण फलन की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे तथा सामाजिक चुनाव प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे,
- पीगू के आदर्श उत्पादन की संशोधित व्याख्या देखेंगे,
- बाह्यताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे तथा इनका आर्थिक कल्याण से क्या संबंध हें यह पढ़ेगे, तथा
- सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया से वैयक्तिक कल्याण को किस प्रकार प्रभावित किया जा सकता हें इसकी जानकारी हासिल करेंगे।

37.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप पिछला इकाई में पड़ चुके हें, परेटो के अर्थशास्त्र का प्रतिपादन 1906 में किया गया था। इसके कुछ वर्षों के बाद पीगू के कल्याण अर्थशास्त्र का प्रतिपादन हुआ। परन्तु परेटो व पीगू के अर्थशास्त्र को संपूर्णता प्रदान करने के उद्देश्य से चौथे दशक में बर्गसन ने सामाजिक कल्याण फलन की अवधारणा दी गया इसके बाद केनेथ एरो, सैम्युअलसन आदि ने सामाजिक कल्याण फलन एवं सामाजिक चुनाव की अवधारण की आलोचनात्मक समीक्षा की। छटे दशक में मीड तथा फ्रांसिस बेटर ने बाह्यताओं की विस्तृत चर्चा करते हुए एक तर्क दिया कि कल्याण अर्थशास्त्र की आधारभूत मान्यताएं ही गलत हें। उन्होंने कहा कि इन बाह्यताओं के कारण व्यक्तिगत तथा सामाजिक कल्याण में विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है।

इसी बीच अनेक अर्थशास्त्रियों ने यह बतलाने का प्रयास किया कि सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया द्वारा व्यक्तिगत आर्थिक कल्याण को प्रभावित करने का प्रयत्न किया जाता हें। परन्तु एरो, अमर्त्य कुमार सेन आदि ने यहां भी संदेह व्यक्त किया कि कभी कभी सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया में भी अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं। कैनथ एरा ने इससे सम्बद्ध मतदान या चुनाव के विरोधाभास का भी एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

परन्तु जैसा कि पूर्व में कहा गया था, नव कल्याण अर्थशास्त्र के विकास में एक व्यक्ति की प्रमुख भूमिका कभी नहीं रही, ओर इसीलिए इसमें से एक सुनिश्चित अवधारणा प्रस्फुटित नही हों पाई। विविध विचारधाराओं को जिनमें से कुछ परस्पर विरोधी भी रही हें - मिलाकर ही हम परेटो के बाद विकसित कल्याण अर्थशास्त्र, विशेषकर विगत तीन चार दशकों में प्रस्तुत विचारों, को समझ सकते हैं। इन्हीं विविध विचारों को नव-कल्याण अर्थशास्त्र के रूप में आप प्रस्तुत इकाई में पढ़ेंगे।

37.2 नव-कल्याण अर्थशास्त्र का अर्थ

नव-कल्याण अर्थशास्त्र वस्तुत: कल्याण अर्थशास्त्र से सम्बद्ध वे सभी विचारधाराएं हैं जिन्हें परेटों के पश्चात् प्रतिपादित या विकसित किया गया। जैसा कि पिछली इकाई में आपने पड़ा था, परेटो का कल्याण अर्थशास्त्र अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है तया उससे न तो किसी अर्थव्यवस्था की वस्तु-स्थिति को समझा जा सकता हें, और ना ही नीति-निर्धारण में इससे कोई सहायता मिल सकती हें। आपने पिछली इकाई में यह भी पड़ा था कि अवास्तविक मान्यताओं के कारण ही परेटो का कल्याण शास्त्र वर्तमान अर्थशास्त्रियों को मान नही हें।

प्रस्तुत खण्ड में आप परेटो-उत्तर कल्याण अर्थशास्त्र की तीन प्रमुख धाराओं-सामाजिक कल्याण फलन, एरो के सामाजिक चुनाव तथा बर्गसन सैम्युअलसन सिद्धान्त की जानकारी प्राप्त करेंगे।

37.2.1 सामाजिक कल्याण फलन

आधुनिक कल्याण अर्थशास्त्र के विकास में कैनथ एरो का योगदान सर्वाधिक हें। यद्यपि एरो से पूर्व बर्गसन ने सामाजिक कल्याण फलन की अवधारणा प्रस्तुत कर दी थी, तथापि 1951 में प्रकाशित एरो की पुस्तक "सोशल चोईस एण्ड इन्डीविजुअल वैल्यूज" मे यह बतलाया गया कि व्यक्तिगत प्राथमिकता क्रमों का योग लेकर एक सामाजिक क्रम का निरूपण करना असंभव हें। सामाजिक कल्याण फलन की अवधारणा का वास्तविक विकास एरो की पुस्तक के प्रकाशन से ही प्रारम्भ हुआ।

एरो की सामाजिक चुनाव अवधारणा का अध्ययन करने से पूर्व यह उचित होगा कि आप बर्गसन के सामाजिक कल्याण फलन की जानकारी प्राप्त कर लें।

1938 में बर्गसन ने सामाजिक कल्याण फलन की परिभाषा इस प्रकार दी थी :

"सामाजिक कल्याण या तो समाज के प्रत्येक सदस्य के कल्याण का फलन (योग) है या फिर समाज के प्रत्येक सदस्य द्वारा उपयोग की गई तहा अर्पित सेवाओं (के मूल्य) का योग है।"

आप यह अनुमान कर सकते है कि समाज द्वारा उपभोग की गई वस्तुओं के रूप में, अथवा अर्पित सेवाओं के रूप में यदि आर्थिक कल्याण को मापा जाए तो यह वस्तुत: राष्ट्रीय उत्पाद या सामाजिक उत्पाद की ही व्याख्या है, एवं तदनुसार समाज के कल्याण को अधिकतम करने का अर्थ सामाजिक कल्याण समाज के प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण का फलन है जो दो बातों पर निर्भर करता है, (i) उसका स्वयं का कल्याण, तथा (ii) समाज के सभी सदस्यों के मध्य कल्याण के वितरण के सम्बन्ध में उसका अपना मूल्यांकन। इसी बात को इस रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है कि सामाजिक कल्याण से हमारा आशय वस्तुओं या सेवाओं से प्राप्त आय एवं उसके वितरण से है। फलनिक रूप में इसे निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है :

$$W=F(u_1,u_2,u_3.....u_n) \quad \ldots (37.1)$$

इस फलन में W समाज के सकल आर्थिक कल्याण का माप हैं जबकि $u_1,u_2,u_3.....u_n$ विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त (क्रमसूचक) उपयोगिता या संतुष्टि स्तरों का माप प्रदान करते है। चूंकि u_1,u_2 आदि से W धनात्मक रूप से सम्बद्ध है, इनमें से किसी एक में भी वृद्धि होने पर W में वृद्धि होती है। इसी कारण W को लयबद्ध (Monotonic) फलन कहा जाता है।

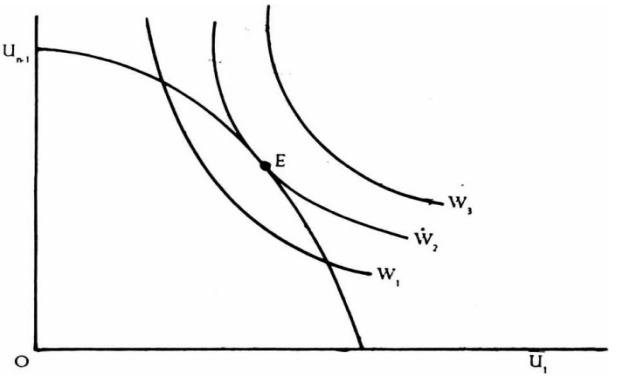

चित्र 37.1 सामाजिक कल्याण फलन

चित्र 37.1 में सामाजिक कल्याण के तीन-स्तर W_1, W_2 तथा W_3 प्रस्तुत किए गए है। जैसा कि आप पिछली इकाई में पढ़ चुके है, समाज को उपलब्ध साधनों तथा दी हुई टैक्नोलॉजी के अन्तर्गत समाज को एक उपयोगिता संभावना सीमा प्राप्त होती है। सुविधा के लिए हम समाज को प्राप्त संतुष्टि को दो समूहों में विभाजित कर संकेत हें u_1 तथा u_{n-1} यदि u_1 यानी प्रथम व्यक्ति को प्राप्त संतुष्टि स्तर में वृद्धि होती है तो ऐसा तभी संभव है जब समाज के अन्य सदस्यों को प्राप्त संतुष्टि स्तर (u_{n-1}) में कमी हो। आप यह भी पढ़ चुके है कि उपयोगिता संभावना सीमा, u एवं u_{n-1} के समस्त संभव उपयोगिता-संयोगों के आधार पर प्राप्त होती है।

चित्र 37.1 में E बिन्दु पर समाज के दोनों समूहों को इष्टतम स्थिति प्राप्त होती है क्योंकि इसी स्तर पर उपलब्ध साधनों तथा दी हुई टैक्नोलॉजी के आधार पर जितनी उपयोगिता (संतुष्टि-स्तर) प्राप्त करना संभव हें उतनी ही उपयोगिता समाज के ये समूह प्राप्त करना चाहते हैं, यानी अभीष्ट कल्याण तथा संभव कल्याण में सामंजस्य स्थापित होता है।

परन्तु एरो सामाजिक कल्याण की इस अवधारणा से सहमत नही थे। उन्होंने प्रश्न किया कि क्या विभिन्न व्यक्तियों के अधिमानों का योग लेना संभव है? उनकी ऐसी मान्यता है कि व्यक्तिगत कल्याण फलन ज्ञात करने में ही कठिनाई उत्पन्न होती है और ऐसी स्थिति में सामाजिक कल्याण फलन का सही रूप शर्त करना भी संभव नही है।

एरो ने इसकी व्याख्या करते हुए चुनाव के विरोधाभास का विवरण दिया तथा बतलाया कि यदि समाज के भिन्न भिन्न व्यक्तियों की प्राथमिकताएं भिन्न भिन्न हो तो सामाजिक कल्याण फलन का निरूपण संभव नही है। ऐसी स्थिति मे एक गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। इसे अगले बिन्दु में विस्तार से समझाया गया हें।

37.2.2 एसे द्वारा प्रस्तुत सामाजिक चुनाव की अवधारणा

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, 1951 में एरो ने सामाजिक कल्याण फलन का एक नया रूप प्रस्तुत किया था। उन्होंने सामाजिक कल्याण फलन को एक ऐसे फलनिक सम्बन्ध के रूप में परिभाषित किया जो निर्दिष्ट वैयक्तिक प्राथमिकता क्रमों (R1,R2.....Rn) के आधार पर सामाजिक प्राथमिक क्रम (R) को निरुपित करता हैं। परन्तु एरो ने यह स्पष्ट किया कि वैयक्तिक अधिमान स्थिर होने पर भी सामाजिक कल्याण फलन को उपलब्ध करना संभव नही होता क्योंकि इसके लिए आवश्यक शर्तें प्राय: पूरी नहीं हो पाती। ये शर्तें इस प्रकार है

1. इस फलन मे कितने ही (n) वैयक्तिक प्राथमिकता क्रमों को शामिल किया जा सकता हें, यानी इस फलन का क्षेत्र असीमित होना चाहिये,
2. यदि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी X को किसी भी Y की तुलना में प्राथमिकता देता हो तो सामाजिक दृष्टि से Y की तुलना में X को प्राथमिकता मिलती है (दुर्बल परेटो सिद्धान्त)
3. कोई भी व्यक्ति अधिनायक की भांति अपनी इच्छा से X को Y की तुलना में प्राथमिकता देते हुए यह घोषणा नही कर सकता कि X को सामाजिक दृष्टि से Y की अपेक्षा प्राथमिकता मिलती हें (गैर अधिनायकवाद), तथा
4. दो वस्तुओं के किसी भी युगल के लिए अक्त व्यक्तिगत कम के आधार पर ही इस युगल के लिए सामाजिक क्रम का निर्धारण होता है (असंगत विकल्पों की परस्पर असम्बद्धता)। एरो ने बतलाया कि इन सभी शर्तों को एक साथ पूरा कराना असंभव है और इसी प्रकार कम से कम एक शर्त का उल्लंघन किए बिना वैयक्तिक अधिमानों के प्रत्येक सेंट के आधार पर सामाजिक चुनाव कर पाना भी संभव नही हें। इसी को एरो के असंभवता प्रमेय (Impossibility Theorem) की संज्ञा दी जाती है। अस्तु,

"ऐसा कोई सामाजिक कल्याण फलन नही है जो असीमित क्षेत्र, दुर्बल परेटो सिद्धान्त, गैर-अधिनायकवाद तथा असंगत विकल्पों की परस्पर असम्बद्धता की शर्तों को पूरा करता हो।"

यदि समाज में तीन व्यक्ति है तथा उन्हें X, Y तथा Z इन तीन विकल्पों के मध्य किन्हीं दो के लिए अपनी प्राथमिकता व्यक्त करनी हो तो उनके अधिमानों के आधार पर सामाजिक कल्याण फलन का निर्धारण हो सकता है या नहीं इसके लिए तालिका 37.1 देखिए।

तालिका 37.1

सामाजिक चुनाव की वैकल्पिक स्थितियां

व्यक्ति	विकल्प I			विकल्प II		
	X	Y	X	X	Y	Z
A	3	2	1	3	2	1
B	1	2	3	1	3	2
C	3	1	2	2	1	3

उपरोक्त तालिका में विकल्प I के अन्तर्गत तीनों व्यक्तियों की प्राथमिकताएं इस प्रकार व्यक्त की गई है:

A : X > Y

B : Z > Y

C : X > Z

इस प्रकार तीन में से दो व्यक्ति X को अन्य वैकल्पिक स्थितियों की अपेक्षा प्राथमिकता देते है और इस कारण बहुमत के आधार पर X के पक्ष में सामाजिक चुनाव हो जाएगा।

परन्तु यदि प्राथमिकता कम विकल्प II के अनुरुप हो तो इनका रुप निम्न होगा:

A : X > Y

B : Y > Z

C : Z > X

यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें किसी भी स्थिति के पक्ष में बहुमत नही है तथा इससे सामाजिक चुनाव असंभव हो जाता है। इसे एरो ने मतदान का विरोधाभास (Paradox of Voting) मानते हुए सामाजिक चुनाव की असंभवता का एक कारण माना।

37.2.3 बर्गसन-सैम्युअलसन द्वारा एरो के सिद्धान्त की व्याख्या

1938 में बर्गसन ने जिस सामाजिक कल्याण फलन की परिकल्पना की थी, उसमें यह मान्यता ली गई थी कि सभी व्यक्तियों की रुचियां यथावत है। उन्होंने कहा कि सभी व्यक्तियों की प्राथमिकताओं का संभावित पैटर्न समरूपी है। सैम्युअलसन ने 1947 तथा बाद में 1967 में बर्गसन के सामाजिक कल्याण फलन की व्याख्या करते हुए एरो की इस बात के लिए आलोचना की कि उन्होंने (एरो ने) असंगत विकल्पों की असम्बद्धता का आश्रय लेकर सामाजिक कल्याण फलन के निरुपण को असंभव मान लिया था।

एक प्रश्न है, सैम्युअलसन तथा बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन एरो के विचारों से कितना भिन्न है?- जहां तक सामाजिक कल्याण का प्रश्न है, दोनों ही विचारधाराओं का आधार कम सूचक उपयोगिता की अतुलनीयता है। काफी हद तक दोनों विचार धाराओं में सामाजिक कल्याण का सीधा सम्बन्ध प्राथमिकता-क्रम से है।

यह भी तर्क दिया जाता हें कि बर्गसन-सैम्युअलसन के विचार मे सामाजिक कल्याण फलन का सम्बन्ध विभिन्न (n) प्राथमिकता क्रमों में से एक (चाहे कोई सा हो) से है।

परन्तु सैम्युअलसन की मान्यता है कि व्यवहार में यह जरूरी नहीं है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी X को किसी भी Y की तुलना में प्राथमिकता देता हो (एरो द्वारा प्रस्तुत दुर्बल परेटो सिद्धान्त) तो सामाजिक दृष्टि से Y को X की तुलना मे प्राथमिकता मिले। सैम्युअलसन यह मानते है कि निर्दिष्ट व्यक्ति स्पष्ट रूप में विभिन्न सामाजिक स्थितियों के प्रत्येक युगल (X,Y तथा Z) के विषय में अपनी प्राथमिकता व्यक्त करे।

जहां तक क्षेत्र की असीमितता से सम्बद्ध एरो की शर्त का प्रश्न है, यदि इसे छोड़ दिया जाए तो एरो के असंभवता प्रमेय का भी कोई औचित्य शेष नहीं रह जाता। वस्तुत: 1967 के अपने लेख में सैम्युअलसन ने अनेक प्राथमिकताओं में से किसी एक की वकालत करके क्षेत्र की असीमितता तथा विभिन्न व्यक्तियों के प्राथमिकता क्रमों की शर्त के साथ इसे जोड़ दिया और इसी सें वर्गसन-सैम्युअल्सन के सामाजिक कल्याण फलन के वास्तविक स्वरूप तथा इसकी संगति के बारे में भ्रांतियां उत्पन्न हो गई। बर्गसन-सैम्युअलसन का सामाजिक कल्याण फलन वास्तविक हें या एरो की भांति यह भी असंभवता से ग्रसित है इसका कोई उत्तर सैम्युअलसन नही दे पाए।

हालांकि बर्गसन-सैम्युअलसन का सामाजिक कल्याण फलन ($W=F(u^1, u^2, u^3, ...un)$ इस मान्यता पर आधारित है कि सभी (n) व्यक्तियों या परिवारों के संतुष्टि स्तरों (u) का सामाजिक कल्याण के स्तर (W) से सीधा समक्ष है, यह फलन कल्याण के अन्तर-युगल तथा एकल स्वरूप (Single profile) को ज्ञात करने हेतु वैयक्तिक उपयोगिताओं के एकल स्वरूप पर ही लागू होता है।

कुल मिलाकर, सामाजिक कल्याण फलन वैयक्तिक प्राथमिकताओं के बहुत-स्वरुप से सम्बद्ध है या एकल स्वरूप से, स्पष्ट नही हो पाता और इसी कारण सामाजिक कल्याण फलन का सचमुच निरुपण संभव है या नही, यह आज भी एक पहेली हें।

37.3 पीगू के आदर्श उत्पादन की विलियम बॉमोल द्वारा विवेचना

जैसा कि आपने ऊपर पढ़ा था, नव-कल्याण अर्थशास्त्र किसी एक व्यक्ति अथक विचारात्मक के विश्लेषण तक सीमित नही है। पीगू के कल्याण अर्थशास्त्र में आदर्श उत्पादन की चर्चा की गई थी। पीगू ने कहा कि जब सभी साधनों की सीमान्त सामाजिक उत्पादकता का मूल्य सभी संभव प्रयोगों में समान हो तो उस स्थिति में राष्ट्रीय उत्पादन (लाभांश) अधिकतम हो जाता है। उन्होंने यह भी कहा कि

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही यह आदर्श उत्पादन की स्थिति प्राप्त होती है। यदि किसी कारण किसी एक प्रयोग में किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य अन्य किसी प्रयोग की अपेक्षा कम हो तो सामाजिक नियंत्रण, करों या अनुदान के द्वारा साधनों को अधिक उत्पादकता वाले प्रयोग मै अंतरित किया जाता है। इस प्रकार सीमान्त उत्पादकताओं में समानता लाई जाती हें तथा सामाजिक उत्पादन की आदर्श स्थिति प्राप्त की जा सकती है।

विलियम बॉमोल ने पीगू की आदर्श उत्पादन अवधारणा की नए ढंग से व्याख्या की। बॉमोल के अनुसार आदर्श स्थिति वह है जहां साधनों का पुनआवंटन करने पर भी समाज को प्राप्त कुल उत्पादन (राष्ट्रीय लाभांश) में कोई वृद्धि नही हो सकती। यह स्थिति परेटों स्थिति के ही अनुरुप प्रतीत होती हें।

बॉमोल ने आदर्श उत्पादन के स्तर की प्राप्ति हेतु निम्न मान्यताएं ली:

(1) बाजार में तैयार वस्तुओं की कीमत मांग व पूर्ति के आधार पर निर्धारित होती है, (2) वस्तुओं का वितरण इष्टतम रुप में होता है, (3) उपभोक्ता व उत्पादनकर्ता की निर्णय प्रक्रिया स्वतंत्र होती है, (4) उपभोक्ताओं की रुचियां तथा उत्पादन की टैक्नोलॉजी दी हुई रहती है और इस कारण उनके प्राथमिकता कम भी दिए हुए रहते है (5) प्रत्येक उपभोक्ता व उत्पादन कर्ता उच्चतर कल्याण-स्तर प्राप्त करना चाहता है, (6) साधनों की मात्रा दी हुई है तथा (7) विभिन्न तटस्थता वक्र परस्पर नही काटते।

बॉमोल ने अपने विश्लेषण में दो ही वस्तुओं (X तथा Y) को शामिल किया तथा इन्हीं के उपभोग (विनिमय) तथा उत्पादन के आधार पर आदर्श स्थिति की प्राप्ति की प्रक्रिया को समझाया।

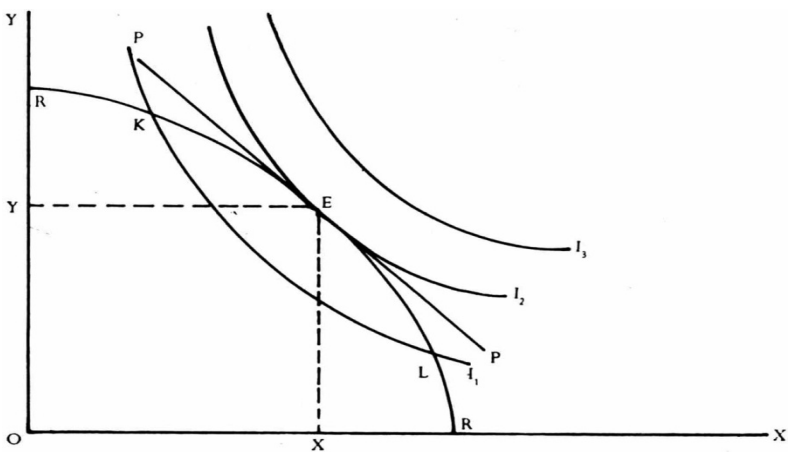

चित्र 37.2 बॉमोल की आदर्श स्थिति

चित्र 37.2 में समाज के उदासीनता वक्र I_1I_2 व I_3 दिए गए है जबकि RR दोनों वस्तुओं का उत्पादन सम्भावना (रूपान्तरण) वक्र है। आप यह जानते है कि उदासीनता वक्र का ढलान X तथा Y की सीमान्त प्रतिस्थापन दर को व्यक्त करता है जबकि उत्पादन संभावना वक्र इनकी सीमान्त रुपान्तरण दर का प्रतीक है। बॉमोल के विश्लेषण में E एक आदर्श स्थिति है जिसमें निम्न शर्त पूरी होती है:

$$\frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{Mu_X}{Mu_Y} = \frac{P_X}{P_Y} \quad \text{.....(37.2)}$$

चूंकि बॉमोल ने निर्णय प्रक्रिया में बाह्य प्रभावों को पूर्णतया अनुपस्थित माना है, उत्पादन संभावना वक्र का ढलान MC_X/MC_Y यानी दोनों वस्तुओं की सीमान्त निजी लागत का अनुपात, इनकी सीमान्त सामाजिक लागत के अनुपात (MC_X/MC_Y) के रुप में भी व्यक्त किया जा सकता है। अर्थात् E पर निम्न शर्त पूरी होती है :

$$\frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{MXC_X}{MSC_Y} = \frac{Mu_X}{Mu_Y} = \frac{P_X}{P_Y} \quad \text{.....(37.3)}$$

यदि आदर्श स्थिति से विचलित होते है तो समाज निचले तटस्थता वक्र पर K या L कहीं भी आ जाएगा। अन्य शब्दों में, समीकरण (37.3) में प्रस्तुत शर्त पूरी होने पर समाज न केवल X तथा Y का इष्टतम उत्पादन करता हें, अपितु इनका इष्टतम आवंटन भी करता हें, परन्तु यदि यह शर्त पूरी नही होती तो समाज का प्राप्त उत्पादन आदर्श या इष्टतम स्तर से कम होगा।

बॉमोल ने यह भी कहा कि यदि समाज की मील स्थिति E के अनुरुप नही है तो सरकार कर-नीति या अनुदान द्वारा कीमतों के अनुपात में इस प्रकार समायोजन कर सकती है कि इष्टतम की प्राप्ति हो जाए। आप यह देख सकते है कि बॉमोल तथा परेटो की विचारधारा में काफी समानता है, अलबत्ता इष्टतम की प्राप्ति हेतु सरकारी हस्तक्षेप के प्रति बॉमोल के विचार अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है।

37.4 परम्परागत कल्याण अर्थशास्त्र की अव्यावहारिकता

जैसा कि आपने पिछली एवं इस इकाई में पढ़ा, परम्परागत रुप से अर्थशास्त्री यह मानते रहे है कि अधिकतम कल्याण या इष्टतम स्थिति की प्राप्ति हेतु पूर्ण प्रतियोगिता एक अनिवार्यता है। आपने यह भी पड़ा है कि प्रत्येक आर्थिक उपभोक्ता को प्राप्त सीमान्त उपयोगिता वस्तु की कीमत के बराबर या उत्पादनकर्ता के लिए वस्तु की कीमत इसकी सीमान्त लागत के बराबर होनी चाहिये। परन्तु अनेक ऐसी स्थितियाँ व्यावहारिक जीवन में देखी जाती है जब बाजार में एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती हें। ऐसे भी अवसर आते है जब प्राप्त प्रतिफल (उपयोगिता या कीमत) इसके लिए किए गए त्याग से अधिक या कम होता है। इन्हीं कारणों से परम्परागत कल्याण अर्थशास्त्र की व्यावहारिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया जाता है। प्रस्तुत खंड में हम यही देखेंगे कि परम्परागत कल्याण अर्थशास्त्र किन कारणों से अव्यावहारिक हो जाता है

37.4.1 बाजार मे उत्पन्न एकाधिकार या अपूर्णताएं

यदि वस्तु तथा साधन, दोनों ही के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है, तो व्यक्तिगत तथा सामाजिक कल्याण के स्तर अधिकतम होते है। आपने पिछली इकाई, तथा इस इकाई में भी समीकरण (37.1) व (37. 2) के माध्यम से इष्टतम शर्तों का अवलोकन किया। यह सब पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक सहज तथा सुगम परिणति होती है। अन्य शब्दों में, परम्परागत कल्याण अर्थशास्त्र में X (या Y) का उत्पादन करने वाली प्रत्येक फर्म के लिए P_X (या P_Y) तथा MC_X में समानता होनी चाहिए। परन्तु आप यह भी जानते है कि प्रतियोगी बाजार में फर्म में लिए $MR_X=P_Y$ की स्थिति भी होती हें। इसी

प्रकार समीकरण (37. 1) के अनुरूप आपने यह पाया कि कीमतों का अनुपात सीमान्त लागतों के समान $\frac{P_X}{P_Y} = \frac{MC_X}{MC_Y}$ होने पर इष्टतम उत्पादन की प्राप्ति होती है।

अब मान लीजिए, वस्तुओं के बाजार एकाधिकारिक है, या उनमें अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति आ जाती है। ऐसी स्थिति में फर्म के लिए अधिकतम लाभ की स्थिति तब होगी जब निम्न शर्त पूरी हो :

$$\frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{MR_X}{MR_Y} < \frac{P_X}{P_Y}$$

स्पष्ट है, यह इष्टतम स्थिति नही हो सकती। इसी प्रकार यदि X के बाजार में एकाधिकार हो तथा Y का बाजार पूर्ण प्रतियोगिता वाली स्थिति में हो तो अधिकतम लाभ के लिए

$MC_X = MRx < Px$; तथा

$MC_Y = MR_Y = P_Y$ की शर्तों के कारण एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाएगी जिसमें

$\frac{MC_X}{MC_Y} < \frac{P_X}{P_Y}$ और साथ ही विनिमय की स्थिति में

$\frac{MC_X}{MC_Y} < \frac{P_X}{P_Y} = \frac{Mu_X}{Mu_Y}$ की स्थिति में समीकरण (37.1) की शर्त पूरी नही हो पाएगी। इसी कारण एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में इष्टतम कल्याण की प्राप्ति नहीं हो सकती।

एक अन्य उदाहरण लीजिए। उत्पादन प्रक्रिया में साधनों के आवंटन की इष्टतम स्थिति वह हें जब प्रत्येक साधन की कीमत इसकी सीमान्त उत्पादकता के समान हो, अथवा दो साधनों की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात इनकी कीमतों के अनुपात के समान हो। परन्तु यदि , उदाहरण के लिए, श्रमिकों के संगठन के कारण $MP_L < W$ की स्थिति आ जाए या साधन के बाजार में क्रेताधिकार हो और इस कारण साधन के स्वामी का शोषण हो रहा हो तब भी इष्टतम की प्राप्ति नही हो पाती।

इसी संदर्भ में 1938 में होटलिंग ने पूर्ण प्रतियोगिता से सम्बद्ध कीमत (P=MR=MC) की अपेक्षा सीमान्त लागत के आधार पर कीमत निर्धारण (P=MC) का सुझाव दिया, तथा कहा कि इससे साधनों के आवंटन की विसंगतियां समाज हो सकती हैं। परन्तु सीमान्त लागत-निर्धारित कीमत की अवधारणा उपयुक्त नही है। उदाहरण के लिए एक पुल या सड़क पर चलने वाले अतिरिक्त वाहन की (सीमान्त) लागत शून्य होगी। क्या ऐसी स्थिति में कीमत शून्य हो जाएगी?

यदि औसत लागत (AC) तथा सीमान्त लागत (MC) ऋणात्मक ढलान युक्त हों जिसके कारण औसत लागत, सीमांत लागत से अधिक (AC>MC) हो तथा एकाधिकार के कारण मांग तथा सीमान्त आगम रेखाएं भी ऋणात्मक ढलानयुक्त हो (P>MR), तो सीमांत लागत के आधार पर कीमत लेने पर एकाधिकारी को हानि होगी (AC>MC>MR) और ऐसी दशा में या तो उसे उत्पादन बंद करना पड़ेगा,

अथवा सरकारी अनुदान का आश्रय लेना पड़ेगा। ये दोनों ही विकल्प परम्परागत कल्याण अर्थशास्त्र में स्वीकार्य नही हें।

37.4.2 बाह्यताएं (Externalities) एवं आर्थिक कल्याण के सिद्धान्त

बाह्यता उस स्थिति को कहते है जिसमें किसी एक आर्थिक इकाई के निर्णय से किसी अन्य इकाई को बिना चुकाए लाभ हो जाए, अथवा बिना लाभ प्राप्त किए क्षति हों जाए। सामान्य रुप से बाह्यता के अभाव में अधिकतम कल्याण की स्थिति में निजी लागत निजी लाभ, सामाजिक लागत व सामाजिक लाभ में समानता होती हें (MCB=MSC; MSB=MPB; MSC=MPC), परन्तु बाह्यता होने पर इनमें समानता नही होती।

1958 में फ्रेंसिस एम0 बेटर ने क्वार्टर्ली जर्नल आफ इकॉनोमिक्स में प्रकाशित एक लेख में बतलाया कि प्राय: बाह्यताओं के कारण सीमान्त सामाजिक लागत तथा सीमान्त निजी लागत में अन्तर उत्पन्न हो जाता है। बेटर ने बाह्यताओं को निम्म श्रेणियों में विभाजित किया (अ) स्वामित्व सम्बन्धी बाह्यताएं, (ब) सार्वजनिक वस्तुओं की बाह्यताएं तथा (स) तकनीकी बाह्यताएं

बाह्यताओं के कारण सीमान्त निजी लागत या लाभ तथा सीमान्त सामाजिक लाभ या लागत में विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है तथा इसके फलस्वरूप साधनों का वितरण इष्टतम रुप में नहीं हो सकता।

(अ)स्वामित्व सम्बन्धी बाह्यताएं- बेटर ने कहा कि प्राय: किसी व्यक्ति को बाहरी घटकों से बिना कुछ लागत वहन किए लाभ प्राप्त हो जाता हें, अथवा बिना कोई प्रतिफल प्राप्त किए लागत वहन करनी पड़ जाती हें । दोनों ही दशाओं में सीमान्त सामाजिक लागत (लाभ) तथा निजी सीमान्त लागत (लाभ) में विषमता उत्पन्न हो जाती हें । प्रथम स्थिति में सीमान्त निजी लाभ, सीमान्त सामाजिक लागत से अधिक हो जाता हें, जबकि द्वितीय स्थिति में सीमान्त निजी लागत, सीमान्त सामाजिक लाभ से अधिक हो जाती है ।

उदाहरण के तौर पर एक मधुमक्खी पालक के पड़ौस में सेव का बाग स्थित हें । मधुमक्खियां सेवों का पराग लेती है जिसके बदले मधुमक्खी पालक को कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता ।

अस्तु,

MPB>MSC=0 साथ ही MPB>MPC

इसके विपरीत उदाहरण एक लॉड्री मालिक का है जिसके पड़ोस में रसायन बनाने वाली फैक्ट्री है । इस फैक्ट्री से निकलने वाला धुंआ लाही के धुले हुए वस्त्रों को गंदा करता है और इस कारण उन्हें बार-बार धोना पड़ता हें । ऐसी दशा में वस्त्रों की धुलाई की अतिरिक्त लागत बहुत ज्यादा हो जाती हें । इस स्थिति को निम्न रुप में व्यक्त किया जा सकता है :

MPC>MSB=0; MPC>MPB

(ब) सार्वजनिक वस्तुओं की बाह्यताएं आपने ऊपर पढ़ा कि यदि A का कल्याण स्तर (u_A) बढ़ता है तो अनिवार्य रुप से B को प्राप्त संतुष्टि स्तर (u_B) में कमी होगी । आपने यह देखा कि उपयोगिता संभावना वक्र इसी कारण ऋणात्मक ढलानयुक्त होता हें।

परन्तु बेटर ने एक उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया कि यदि एक व्यक्ति को प्राप्त उपयोगिता में कमी किए बिना किसी अन्य की उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती हो तो इसे बाह्यता कहा जाता है। यदि A एक संगीत समारोह का आयोजन अपने निवास पर करें और उसका पड़ोसी B भी मुक्त में इसका आनन्द उठा ले, तो (u_A) में कमी किए बिना (u_B) बढ़ सकती है। अस्तु,

$\overline{X} = \overline{X} + \overline{X}$ जबकि MPC=0 है।

यानी वस्तु की निर्दिष्ट मात्रा का उपभोग B करे तब भी $\overline{X}_A$ में कोई कमी नही आती है। ऐसी स्थिति में B को मुफ्त में आनन्द उठाने वाला (Free Rider) भी कहा जा सकता है । परम्परागत कल्याण अर्थशास्त्र में इसकी भी कोई गुंजाइश नही थी।

इस उदाहरण में यदि A चाहे तो संगीत समारोह का आनन्द अकेले भी उठा सकता है (वंचित किए जाने का सिद्धान्त Exclusion) पर, चूंकि उसे स्वयं कोई हानि नहीं होती, वह B को भी इस आनन्द का भागीदार बना लेता हें। प्राय: सार्वजनिक उपयोग की वस्तुएं/सेवाएं बाह्यताओं की श्रेणी में आती हैं, परन्तु यदि उनका प्रबंध निजी संस्थाओं के हाथ में हो तो उन पर वंचित किए जाने का सिद्धान्त लागू किया जा सकता है।

(स) तकनीकी बाह्यताएं कभी कमी बड़े संयंत्रों में अविभाज्यता की समस्या उत्पन्न हो जाती हें। ऐसी दशा में उत्पादन बढ़ाने के साथ औसत तथा सीमान्त लागतें घटती जाती हैं जिनके फलस्वरुप उत्पादन संभावना वक्र नतोदर न होकर उन्नतोदर (Convex) हो जाता हें। जिस फर्म को इस प्रकार के उत्पादन संभावना वक्र प्राप्त होते हैं वह अपनी घटती हुई लागतों के कारण अन्नत: एकाधिकारी फर्म बन जाती है। तथा कीमत तया सीमान्त लागत में (संयंत्रकी अविभाज्यता के कारण) समानता स्थापित नही होने पाती।

बेटर ने यह भी कहा कि यदि सभी बाजारों में समानान्तर रुप से परेटो इष्टतम शर्तें पूरी न हो तो बाजार मे असफलता की स्थिति उत्पन्न हो जाती हें तथा आधिक कल्याण अधिकतम नही हो पाता।

ए0 कॉत्सोयानिस ने बाह्यताओं को बाह्य बचतों या अ-बचतों की संज्ञा दी है। उनके मतानुसार बाह्यताओं को निम्न श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

1. **उत्पादन की बाह्यताएं -** इनमें निजी व सामाजिक लागतों की असमानता, निजी व सामाजिक लाभ की असमानता, आदि स्वामित्व की बाह्यताओं को शामिल किया गया हें। कॉत्सोयानिस यह भी मानते है कि इनमें सरकारी शोध व अनुसंधान, प्रशिक्षण व प्रदूषण नियंत्रण (निजी या सरकारी) को शामिल किया जा सकता है।

2. **उपभोग मे बाह्यताएं –** प्राय: अर्थशास्त्र में यही मान्यता ली जाती है कि उपभोक्ता का निर्णय स्वतंत्र होता हें तथा उपभोक्ता का कल्याण अधिकतम तब होगा जब प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता व कीमत में समानता हो । परन्तु बहुधा यह देखा जाता है कि उपभोक्ता अन्य उपभोक्ताओं की पसंद या फैशन के अनुरूप साधनों का आवंटन करता है अथवा विज्ञापन से प्रभावित होकर कोई वस्तु खरीद लेता हें । इन समी दशाओं में साधनों का आवंटन उपयोगिता के आधार पर नही हो पाता ।

3. **उदासीनता वक्रों मे विकुंचन -** कम सूचक उपयोगिता के अन्तर्गत उदासीनता वक्र मूल बिन्दू से उन्नतोदर होते हें । परन्तु यदि किसी उपभोक्ता का प्राथमिकता मान सुगम न होकर विकुंचित हो जाए या उसका ढलान ऋणात्मक न होकर शून्य या धनात्मक हो जाए तो फिर ऐसे उपभोक्ता का प्राथमिकता क्रम निरूपित करना भी असम्भव हो जाता है ।

इन सभी कारणों से निजी लागत (लाभ) तथा सामाजिक लागत (लाभ) में विसंगति उत्पन्न हो जाती है तथा अधिकतम आर्थिक कल्याण की प्राप्ति नही हो पाती ।

37.5 वैयक्तिक कल्याण तथा सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया

अमर्त्य कुमार सेन ने अपनी पुस्तक के अध्याय 15 में परेटो तथा केनथ एरो के विचारों की समीक्षा की । कल्याण बाद (Welfarism) के अन्तर्गत प्राय सामाजिक कल्याण फलन को वैयक्तिक उपयोगिताओं का योग माना जाता हें, और दो स्थितियों का कम मूलत : उनमें विद्यमान व्यक्तिगत उपयोगिताओं (कल्याण स्तरों) के आधार पर ही निर्धारित होता है । वस्तुत: सामाजिक कल्याण फलन की प्रत्येक स्थिति व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के एक निर्दिष्ट कम की प्रतीक हें । परेटो से लेकर आज तक अधिकांश अर्थशास्त्री यह तर्क देते रहे है कि विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली उपयोगिता (संतुष्टि) की संख्या सूचक तुलना उपयुक्त नही होती और इसीलिए कम सूचक माप लेकर ही यह तुलना की जानी चाहिये । यदि व्यक्तिगत उपयोगिता कम सुस्पष्ट है तो दो सामाजिक स्थितियों का कम भी उन स्थितियों में पूर्णरूप से व्यक्तिगत उपयोगिताओं के आधार पर निर्धारित होगा । संक्षेप में, सामाजिक कल्याण की स्थितियों का क्रम सम्बद्ध वैयक्तिक प्राथमिकता कम पर निर्भर करेगा ।

परन्तु सामाजिक कल्याण के इस विश्लेषण में आय के वितरण की उपेक्षा की जाती हें । अमर्त्य कुमार सेन का प्रश्न है, क्या निर्धन तथा धनी व्यक्तियों के विरोधी हितों व निर्णयों को देखते हुए समान रुप से उनके प्राथमिकता क्रम निर्धारित किए जा सकते हें और फिर क्या उनका योग लिया जा सकता है? एरो तथा परेटो दोनों ही ने इस महत्वपूर्ण बिन्दु की ओर कोई ध्यान नही दि या । प्राय: इन प्राथमिकता क्रमों के विषय में हमें पूरी जानकारी नही होती और इसी कारण आर्थिक नियोजन में हम निर्धन तथा धनी वर्गो को अलग अलग रुप में नही देख पाते ।

प्राय : बडे-बड़े राजनैतिक तथा सामाजिक निर्णय इन परस्पर विरोधी हितों व प्राथमिकताओं क योग लेकर कर लिए जाते है । सार्वजनिक निर्णय के द्वारा सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना तभी

संभव है जब या तो समाज के विभिन्न वर्गो के हितों में कोई विरोधाभास न हो, अथवा इनके हितों मे निहित परस्पर विरोध की हमें पूरी जानकारी हों।

आर्थिक नियोजन का उद्देश्य समाज के सभी वर्गो की आय मे वृद्धि करना है। प्रश्न है, क्या निर्धन व्यक्तिया पर योजनाओं में अधिक ध्यान देने का कोई औचित्य है? क्या हम धनी उन व्यक्तियों के माने जिन्हें गरीबो की अपेक्षा अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। एरो ने गरीब व अमीर के इस भेद पर कोई विचार नहीं किया। जैसा कि आप पूर्व में पढ़ चुके है, पीगू के मतानुसार बनी व्यक्ति कै लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम होती हें और इसलिए शायद उसका संतुष्टि स्तर उतने ही व्यय से गरीब की तुलना में कम हो। इसके विपरीत धनी व्यक्ति वह हो सकता है जिसकी आय अधिक हो। परन्तु कल्याण अर्थशास्त्र में, हम निर्धन व धनी के इस अन्तर को अब तक उपेक्षित करते आए है। इसके विपरीत यदि धनी व निर्धन की प्राथमिकताओं को केवल आय के आधार पर परस्पर विरोधी माने तब भी क्या इनका योग लिया जा सकेगा?

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता हें कि सामाजिक कल्याण फलन का निरुपण प्राय: विभिन्न वर्गो की प्राथमिकताओं के परस्पर विरोध के कारण भी संभव नहीं हो पाता। भले ही हमारी सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया में. हम धनी की तुलना में निर्धन वर्ग को अधिक महल -दो - इससे यह सिद्ध नही हो जाता कि हमने इन वश की प्राथमिकताओं का योग लेकर सामाजिक कल्याण कई एक स्थिति प्राप्त कर ली है तथा नियोजन के माध्यम से एक बेहतर स्थिति में पहुंचने क सार्थक प्रयास कर रहे हैं।

37.5.1 सार्वजनिक निर्णय मे विरोधाभास

प्राय: यह तर्क दिया जाता हें कि यदि सामाजिक चुनाव प्रक्रिया में विभिन्न व्यक्तियों के भिन्न भिन्न प्राथमिकता क्रमों के कारण मतदान का विरोधाभास उत्पन्न हो जाए और इसके फलस्वरुप इष्टतम से हट कर समाज को उपलब्ध साधनों को प्रयुक्त करना पड़े, तो इष्टतम की प्राप्ति के लिए सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिए। पीगू ने आय के पुनर्वितरण की वकालत इसी आधार पर की थी कि इससे आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती हैं।

परन्तु सरकारी नीतियों का उद्देश्य सदैव आर्थिक कल्याण में वृद्धि करना हो यह जरुरी नही है। गूल्ड व लैजिएर यह तर्क देते हैं कि अनेक सरकारी नीतियों के पीछे समाज के एक 'बड़े वर्ग को संतुष्ट करनें का उद्देश्य निहित हो सकता है। 1990 - 91 के केन्द्र सरकार के बजट में कृषकों को राष्ट्रीयकृत बैकों द्वारा अक्टूबर, 1989 तक दिए गए ऋणों को माफ करने का प्रावधान रखा गया। अमरीका में सरकार प्रतिवर्ष करोड़ों डालर शकों को समर्थन कीमतों के अन्तर्गत चुकाती है। भारत में भी उपभोक्ताओं, पूंजी निवेशकर्ताओं तथा कृषिकों को अनेक रुप में अनुदान प्राप्त होता हें। इन सभी की पृष्ठभूमि में "नैतिकता" या "तुष्टिकरण" की भावना अधिक प्रबल होती है, जबकि आर्थिक दक्षता में वृद्धि का लक्ष्य गौण रहता है। संक्षेप में, साधनों के पुनरआवंटन द्वारा आर्थिक दक्षता को बढ़ाया जाए, तथा पृष्ठो इष्टतम की प्राप्ति में सहायता मिले, यह अनिवार्य नही हैं।

पॉल स्ट्रीटन ने सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया के विषय में एक शंका व्यक्त की हें । यदि जन प्रतिनिधि अपने अपने क्षेत्र के हितों का पोषण करने हेतु साधनों (सरकारी राजस्व) का आवंटन करने का आग्रह करते हैं तो यह जरुरी नही है कि इससे कुल आर्थिक कल्याण अधिकतम हो जाए। इसके विपरीत यह भी संभव है कि प्रभावशाली जनप्रतिनिधि (सांसद या सेनेटर) दबाव डालकर अपनी इच्छानुसार साधनों का आवंटन करवा लेते हों तो जहां आर्थिक प्रतिफल अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त हो सकता था वे क्षेत्र सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया में उपेक्षित रह जाएंगे।

कुल मिलाकर यह कही जा सकता है कि सरकारी नीतियों द्वारा इष्टतम-इतर स्थिति से षष्ट्म की स्थिति में तभी पहुंचा जा सकता है जब सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया वस्तु परक हो तथा साधन-आवंटन में लाभ लागत विश्लेषण, यानि आर्थिक प्रतिफल को ही ध्यान में रखा जाए। ऐसा न होने पर सरकारी राजस्व का सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया द्वारा आवंटन तो हो जाएगा परन्तु आर्थिक कल्याण अधिकतम नहीं हो जाएगा।

37.6 सारांश

आपने इस इकाई में परेटो के बाद कल्याण अर्थशास्त्र के क्षेत्र में जो विचारधाराएं प्रकाश में आई उनकी संक्षिप्त विवेचना पढ़ी। आपने यह पड़ा कि नव-कल्याण अर्थशास्त्र के प्रतिपादन में किसी एक व्यक्ति या विचारधारा की भूमिका नही रही है, अपितु इसमें विभिन्न व्यक्तियों ने अपने-अपने तरीके से आर्थिक कल्याण की व्याख्या की है। आपने पहले सामाजिक कल्याण फलन का अर्थ समझा, तथा इसके पश्चात् केनेथ एरो के द्वारा प्रतिपादित सामाजिक चुनाव अवधारणा का अध्ययन किया। जैसा कि आपने देखा, एरो के अनुसार सामाजिक कल्याण फलन के अनुरुप शर्तों को पूरा करना संभव नही हें। इसे एरा के "असंभवता प्रमेय" का नाम दिया गया हें। इसी संदर्भ में एरो द्वारा सामाजिक चुनाव की प्रक्रिया में बहुमत निर्णय तथा मतदान के विरोधाभास की भी आपने जानकारी इस इकाई में प्राप्त की।

इसी इकाई में आपने आर्थिक कल्याण के विषय में रौम्यूअल्सन तथा बॉमोल के विचारों का भी अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त आपने यह भी पता कि परम्परागत कल्याण अर्थशास्त्र की प्रामाणिकता एवं व्यावहारिकता पर बाजार में उत्पन्न एकाधिकार तथा विविध प्रकार की बाह्यताओं के कारण किस प्रकार प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया जा सकता है। अन्त में आपने सार्वजनिक निर्णय में उत्पन्न विरोधाभास का अध्ययन किया।

37.7 शब्दावली

सामाजिक चुनाव (Social Choice) : - केनथ एरो ने 1951 में बतलाया कि निर्दिष्ट वैयक्तिक प्राथमिकता क्रम के अन्तर्गत किस सामाजिक स्थिति को चुना जाएगा यह इस पर निर्भर करता है कि समाज के अधिक व्यक्ति (बहुमत द्वारा) किस विकल्प के पक्ष में है। संक्षेप में व्यक्तिगत प्राथमिकताओं को मिलाने पर बहुमत जिस स्थिति के पक्ष में है उसी का सामाजिक स्तर पर चुनाव होगा ।

असंभवता प्रमेय (Impossibility Theorem) एरो ने बतलाया कि सामाजिक कल्याण फलन के निरुपण -हेतु चार शर्तें पूरी होनी चाहिए : क्षेत्र की असीमितता, दुर्बल परेटो सिद्धान्त असंगत विकल्पों की परस्पर असम्बद्धता, तथा गैर अधिनायकवाद। व्यवहार में इन चारों शर्तों को पूरा करना असंभव है और इसलिए सामाजिक चुनाव कर पाना भी असंभव है।

मतदान का विरोधाभास (Paradox of Voting) यदि समाज के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के प्राथमिकता कम इस प्रकार के हों कि एक भी सामाजिक स्थिति (विकल्प) का बहुमत द्वारा चुनाव न हो पाए, तो यह मतदान के विरोधाभास की स्थिति कहलाती है।

आदर्श उत्पादन (Ideal Output) पीगू की इस अवधारणा को विलियम बॉमोल ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया। बॉमोल ने बाह्यताओं को अनुपस्थित मानते हुए आदर्श उत्पादन की स्थिति को उस स्थिति के रुप में व्यक्त किया जहां उपभोक्ता तथा उत्पादनकर्ता एक साथ साम्य स्थिति में हों।

बाह्यताएं (Externalities) यदि निजी लाभ, निजी लगती, सामाजिक लाभ व सामाजिक लागतों में समानता न हो तो यह बाह्यता कहलाती है। यदि किसी एक आर्थिक इकाई को बिना कुछ खर्च किए लाभ हो जाए, अथवा बिना कोई लाभ प्राप्त हुए उसे अधिक लागत वहन करनी पड़े तो निजी लाभ, लागत तथा सार्वजनिक लाभ/लागत में परस्पर विरोध उत्पन्न हो जाएगा। बाह्यताएं उपभोग या उत्पादन, किसी भी क्षेत्र में उत्पन्न हो सकती है।

बोध प्रश्न

इकाई के अन्त में प्रस्तुत उत्तर संकेतों से अपने उत्तर का मिलान करें।

1. एरो की सामाजिक चुनाव अवधारणा की आलोचनात्मक समीक्षा करें।
2. इष्टतम कल्याण की प्राप्ति में क्या कठिनाइयां हैं? इस दृष्टि से बाह्यताओं तथा एकाधिकारिक प्रवृतियों द्वारा उत्पन्न व्यवधानों को स्पष्ट कीजिए।
3. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए
   1- मतदान का विरोधाभास
   2- सार्वजनिक निर्णय का विरोधाभास

37.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. A. Koutsoyiannis- Modern Microeconomics (Ch.23) 1985
2. A.K. Sen, Choice, Welfare & Measurement Ch. 15
3. William Sher & Rudy Pinola-Micro-economics Theory PP.667-667
4. J.P. Gould & E.P. Lazear, Ferguson & Gould's Microeconomics Theory (1989) Chapter 17

37.9 अभ्यासों के उत्तर

1. कैनथ एरो ने 1951 में सामाजिक चुनाव की अवधारणा को प्रस्तुत किया। उन्होंने बतलाया कि सामाजिक कल्याण फलन की प्राप्ति थे कुछ शर्तों पूरी होनी आवश्यक है। परन्तु उन्होंने यह भी कहा कि जब तक व्यक्तिगत प्राथमिकता कमी के आधार पर बहुमत से किसी सामाजिक स्थिति का चुनाव संभव है कोई समस्या उत्पन्न नही होती। परन्तु यदि आवश्यक शर्तों को एक साथ पूरा नही किया जा सके तो सामाजिक चुनाव असंभव हो जाएगा। इसे एरो का असंभवता प्रमेय कहा जाता है। (खण्ड 37.2.2)
2. इष्टतम कल्याण की प्राप्ति में न केवल विविध प्राथमिकता क्रमों का पारस्परिक विरोध एक बाधा है, अपितु एकाधिकार, अपूर्ण प्रतियोगिता एवं विभिन्न प्रकार की बाह्यताएं भी बाधा उपस्थित करती है अपने उत्तर में एकाधिकार तथा बाह्यताएं किस प्रकार उपभोग व उत्पादन के क्षेत्रों मे अलग अलग व संयुक्त रूप से इष्टतम की प्राप्ति में अवधान डालती है, इनका उदाहरणों के साथ विवरण दीजिए। (खण्ड 37.4)
3. संक्षिप्त टिप्पणियों में प्रथम एरो का मतदान का विरोधाभास पूछा गया है। यदि समाज में तीन या पांच व्यक्ति है तथा वैकल्पिक सामाजिक स्थितियों के विषय में उनके प्राथमिकता क्रम पूछे गए है तो प्राय: बहुमत एक स्थिति के पक्ष में मत दे सकता है। परन्तु यदि प्रत्येक व्यक्ति को प्राथमिकता अन्य प्रत्येक व्यक्ति से सर्वथा भिन्न है तो यह अनिर्णय की स्थिति होगी जिसे मतदान का विरोधाभास कहा जाता है। (खण्ड 37.2.2)

सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया में यदि साधनों (सरकारी राजस्व) का आवंटन आर्थिक दक्षता में वृद्धि के लक्ष्य पर आधारित हो तो ऐसा प्रत्येक साधन आवंटन अधिकतम आर्थिक कल्याण की प्राप्ति में सहायक होगा । परन्तु यदि ये निर्णय "तुष्टिकरण" या नैतिकता के लक्ष्य को लेकर लिए जाएं तो जहां निर्णय लेने वाले प्रभावशाली जन प्रतिनिधि एवं उनके साथ कुछ व्यक्ति जिन्हें ऐसे निर्णय से लाभ मिलने वाला हो, उच्च संतुष्टि स्तर को प्राप्त कर लेते हें, वही साधना का अनुपयुक्त (इष्टतम से कम) आवंटन होने से या तो आर्थिक दक्षता में कमी होगी या यह यथावत रहेगी । यही सार्वजनिक निर्णय का विरोधाभास है जिसके अनुसार जन प्रतिनिधियों के निर्णय सदैव परेटो इष्टतम की प्राप्ति मे सहयोगी हो, यह आवश्यक नहीं होता।

इकाई 38

क्षतिपूर्ति सिद्धान्त

Compensation Principles

इकाई की रूपरेखा

38.0 उद्देश्य

38.1 प्रस्तावना

38.2 क्षतिपूर्ति का अर्थ एवं आवश्यकता

38.2.1 कल्याण के स्तर में परिवर्तन की नीति

38.3 क्षतिपूर्ति मापदण्ड

38.3.1 केल्डोर का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त

38.3.2 हिक्स का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त

38.3.3 सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूर्ति सिद्धान्त

38.4 क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों की आलोचना

35.4.1 आइ0एम0डी0 लिटिल द्वारा प्रस्तुत मापदण्ड

38.5 आय में समानता की समस्या तथा रॉल्स का "न्याय का सिद्धान्त"

38.6 सारांश

38.7 शब्दावली

38.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

38.9 अभ्यासों के उत्तर

38.0 उद्देश्य

आपने इससे पूर्व की इकाइयों में सामाजिक कल्याण की इष्टतम स्थिति के विषय में पड़ा। आपने यह भी जानकारी प्राप्त की कि व्यावहारिक जीवन में कल्याण अर्थशास्त्र में निहित मान्यताएं पूरी नही हो पाती, और इस कारण प्राय: इष्टतम, अथवा अधिकतम कल्याण की, स्थिति प्राप्त नही हो पाती।

अनेक बार ऐसी स्थिति आती है कि सरकारी हस्तक्षेप के माध्यम से सामाजिक स्थिति को बदलने का प्रयास किया जाता है। सरकार की प्रत्येक नीति जहां कुछ व्यक्तियों या एक वर्ग के लिए लाभप्रद होती है, वही एक दूसरे वर्ग को इस नई स्थिति में हानि हो सकती है। प्राय: जिन्हें किसी नई नीति

के फलस्वरुप हानि होने की आशंका रहती है वे ऐसा प्रयास करते है जिससे नीति क्रियान्वित नही हो पाए । यही कारण है कि नीति के फलस्वरूप नई स्थिति जिनके लिए लाभप्रद हें वे संभावित हानि उठाने वालों को इस बात के लिए मनाने का प्रयत्न करते है ताकि वे नीति का विरोध न करे । वे इसके लिए संभावित हानि उठाने वाले, को क्षतिपूर्ति (या रिश्वत) देने का प्रस्ताव कर सकते है ताकि वे नीति का विरोध नही करे । इसके विपरीत यह भी संभव हें कि संभावित हानि उठाने वाले लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों को इस बात के लिए रिश्वत देने में सक्षम हो सकते हें ताकि वे नीति क्रियान्विति न करे । यह भी संभव हें कि एक पक्ष दूसरे पक्ष को क्षतिपूर्ति (या रिश्वत) देकर भी नई स्थिति में पहुंच कर अधिक आय या संतुष्टि प्राप्त कर ले । ऐसी स्थिति में नई स्थिति (क्षतिपूर्ति के बावजूद) पुरानी स्थिति की तुलना में सामाजिक दृष्टि से बेहतर मानी जाएगी । प्रस्तुत इकाई मे आप :

- क्षतिपूर्ति का अर्थ तथा इसकी आवश्यकता के विषय में पढ़ेंगे,
- क्षतिपूर्ति सहित या इसके बिना दो स्थितियों में से कौन सी स्थिति सामाजिक दृष्टि से बेहतर है व कौन सी हल्की, इसके लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तावित मापदण्डों का अध्ययन करेंगे,
- क्षतिपूर्ति किस स्थिति में उपयुक्त हें तथा किस स्थिति में उपयुक्त नही है, इसका अध्ययन करेंगे; तथा
- एक सामाजिक स्थिति A से दूसरी सामाजिक स्थिति B में जाने पर आय की विषमताएं प्रारम्भ होने पर भी B को न्यायपूर्ण स्थिति कब मान सकते है, इस बात की जानकारी प्राप्त करेंगे ।

38.1 प्रस्तावना

आपने पिछली दो इकाइयों में यह पड़ा कि यदि सभी बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता की दशाएं विद्यमान हों, उत्पादन फलन की संरचना व टैक्नोलॉजी अपरिवर्तित रहती हो, तथा उपभोक्ताओं के प्राथमिकता क्रम यथावत रहें, तो समाज में उपलब्ध साधनो का इष्टतम आवंटन किया जाकर अधिकतम व्यक्तिगत तया सामाजिक कल्याण प्राप्त किया जा सकता है । परन्तु, जैसा कि आपने गत इकाई में पढ़ा, बाह्यताओं तथा अनेक अन्य कारणों से साधनों का इष्टतम आवंटन नही हो पाता ।

प्राय: सरकार इस प्रकार की नीतियां बनाती हें जिससे समाज को प्राप्त आर्थिक कल्याण के वितरण में परिवर्तन हो सके । उदाहरण के तौर पर सरकार यदि एक बाद का निर्माण करती हें तो इससे उस परियोजना के क्षेत्र मे कार्यरत कृषकों को लाभ होगा । परन्तु सरकार की इस नीति से एक दूसरे वर्ग को हानि भी होना संभव है । उदाहरण के लिए, बांध की डूब में जो गांव आते है वहां के निवासियों को बेदखल होने से उनको भारी हानि उठानी पड़ेगी । ऐसी स्थिति में दो विकल्प दिखाई देते हैं । प्रथम विकल्प के अन्तर्गत बांध के निर्माण से लाभान्वित होने वाला समूह, उन लोगों को क्षतिपूर्ति (मुआवजा) वे जिन्हें बांध से हानि की आशंका है, और इसके बावजूद वे लाभ में रहें । दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि जिन्हें बांध-निर्माण से क्षति होने का डर हैं वे उन लोगों को क्षतिपूर्ति (मुआवजा) दें ताकि बांध का निर्माण ही न हो और इस क्षतिपूर्ति के बाद भी वे (संभावित हानि उठाने वाले) फायदे में रहें ।

1939 से 1941 के बीच केल्डोर, हिला तथा सिटोवस्की ने अपने अपने दृष्टिकोण से क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या की। यहां यह स्पष्ट किया जाना उचित होगा कि इन तीनों विद्वानों द्वारा क्षतिपूर्ति हेतु प्रस्तुत मापदंडों में वास्तविक की अपेक्षा संभावित आर्थिक कल्याण निहित है क्योंकि इनमें से किसी के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति का वास्तविक भुगतान किया जाना अनिवार्य नही हैं।

38.2 क्षतिपूर्ति का अर्थ एवं आवश्यकता

लियोनल रॉबिन्स ने 1932 में प्रकाशित अपनी पुस्तक के एक लेख में कहा कि सरकार की कोई भी नीति व्यक्तिपरक निर्णय अथवा नैतिकता आधारित दृष्टिकोण से मुक्त नही होती। उन्होंने अर्थशास्त्र में व्यक्तिपरकता के समावेश का विरोध करते हुए स्पष्ट कहा कि अर्थशास्त्री को अपना कार्यक्षेत्र केवल वैज्ञानिक विश्लेषण तक ही सीमित रखना चाहिये। अन्य शब्दों में, रॉबिन्स के मतानुसार आर्थिक कल्याण के स्तर को किस प्रकार प्रभावित किया जाए तथा को न सी नीति इस दिशा में उपयुक्त होगी अथवा अनुपयुक्त, इसकी चिन्ता अर्थशास्त्रियों को नही करने चाहिये। परन्तु चौथे दशक के उत्तरार्द्ध में अर्थशास्त्रियों ने रॉबिन्स की इस आधार पर आलोचना की कि अर्थशास्त्र में न केवल वस्तु स्थिति का विश्लेषण होना चाहिये, अपितु इसके अन्तर्गत यह देखना भी आवश्यक है कि साधनों के पुनआवंटन के द्वारा समाज को एक बेहतर सामाजिक स्थिति में किस प्रकार ले जाया जा सकता है। जैसा कि आपने ऊपर पढ़ा, 1939 मे केल्डोर ने इकॉनोमिक जर्नल में प्रकाशित एक लेख में यह तर्क दिया कि यदि वर्तमान स्थिति से समाज को एक अन्य स्थिति में ले जाने थे कोई नीति बनाई जाती है तो इससे जहां समाज के एक वर्ग को लाभ होगा, वही दूसरे वर्ग को हानि होगी। ऐसी स्थिति में यदि नीति के पक्ष में मतदान कराया जाए तो संभव है मतदान का विरोधाभास उत्पन्न हो जाए अथवा बहुमत से इस नीति को अल्पमत पर थोपने क कोशिश की जाए। केल्डोर ने कहा कि यदि जिन व्यक्तियों को स्थिति "अ" में स्थिति "ब" की अपेक्षा लाभ होने वाला है वे संभावित हानि उठाने वालों को मुआवजा देकर इस बात के लिए राजी कर ले कि नीति क्रियान्वित होने पर वे इसका विरोध नही करेंगे तो "ब" से "अ" में ले जाने वाली नीति के पक्ष में निर्णय हो जाएगा। यहां एक रोचक बात यह है कि मुआवजा देने के बाद भी 'अ" से लाभान्वित होने वाला समूह फायदे में रहता है।

इस प्रकार क्षतिपूर्ति का अर्थ ऐसे भुगतान (रिश्वत) से है जिसके माध्यम से एक समूह दूसरे समूह को अपने पक्ष में (सामाजिक स्थिति के परिवर्तन के पक्ष में) मतदान करने थे राजी कर लेता है अथवा इस बात के लिए सहमति प्राप्त कर लेता है कि दूसरा पक्ष इसका (परिवर्तन का) विरोध नहीं करेगा। परन्तु हिक्स तथा सीटोवस्की ने क्षतिपूर्ति की अवधारणा को एक अलग रूप में प्रस्तुत किया। इनके क्षतिपूर्ति मापदण्डों को आगे स्पष्ट किया जाएगा।

अब प्रश्न है, क्षतिपूर्ति क्यों दी जाए? जैसा कि आप पड़ चुके है दो सामाजिक स्थितियों "अ" तथा "ब" में विभिन्न समूहों के प्राथमिकता कम भी भिन्न होते है। यदि "ब' से समाज को लाने हेतु नीति बनाई जाती है तो यह आवश्यक नही है कि 'अ" पर सभी (दोनों) समूहों की स्थिति 'ब" की अपेक्षा बेहतर हो। इसके विपरीत यह भी संभव है कि "अ" पर एक समूह को जहां पर्याप्त लाभ हो सकता है वही

दूसरे समूह को काफी हानि हो सकती है। यदि नीति क्रियान्वित की जाती है तो दूसरे समूह का विरोध रोकने थे प्रथम समूह उसे क्षतिपूर्ति देगा। इसके बाद भी उसकी स्थिति पूर्वापेक्षा बेहतर होगी, अंचथा नीति की क्रियान्विति के समर्थन में प्रथम समूह भी अपना मत व्यक्त नही करेगा।

इसके विपरीत यदि द्वितीय समूह यह चाहता है कि "ब" से "अ" पर लाने वाली नीति की (क्रियान्विति ही न हो तो वह प्रथम समूह को क्षतिपूर्ति देगा ताकि नीति) विषयक प्रस्ताव ही मतदान थे नही लाया जाए। परन्तु द्वितीय समूह क्षतिपूर्ति का भुगतान "ब" पर बने रहने के लिए तभी करेगा जब इसके 'बाद भी वह लाभ में रहे, यानी अधिक हानि वाली स्थिति (अ) पर जाने से बच जाए। अस्तु, किसी नीति के पक्षधरों या विरोधी समूह द्वारा अपनी अभीष्ट स्थिति को प्राप्त करने अथवा इसे बनाए रखने थे क्षतिपूर्ति देना वांछनीय होता है। परन्तु जब सामाजिक दृष्टि से क्षतिपूर्ति देना वांछनीय है या नही, इस बात पर विचार किया जाता है तो केल्डोर, हिक्स. तथा सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत भिन्न भिन्न मापदण्डों के आधार पर यह देखा जाता है कि क्षतिपूर्ति करने पर अथवा न करने पर "अ" सामाजिक दृष्टि से "ब" की तुलना में बेहतर है अथवा नही। इन क्षतिपूर्ति मापदण्डों का विवरण आगे किया गया है।

38.2.1 कल्याण के स्तर मे परिवर्तन की नीति

क्षतिपूर्ति की वांछनीयता तथा दो सामाजिक स्थितियों की तुलना हेतु एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए समाज में दो व्यक्ति A तथा B है जिनके दो वस्तुओं, X तथा Y के लिए व्यक्त प्राथमिकता कम हमें ज्ञात है। अब दो सामाजिक स्थितियां I तथा II लीजिए जिन में A व B की प्राथमिकताएं इस प्रकार हैं :

A की प्राथमिकताएं : (2X,OY) की तुलना में (1X तथा 1Y)
तथा : (1X,OY) की तुलना में (2Y तथा OY)
B की प्राथमिकताएं : (OX, 2Y) की तुलना में (1X तथा 1Y)
तथा : (OX, 1Y) को तुलना में (OX तथा 2Y)

अधिक पसन्द है।

अब मान लीजिए स्थिति I में 2X तथा 1Y का उत्पादन होता हें जबकि स्थिति II में 1X तथा 2Y का उत्पादन होता है। तालिका 38.1 में दोनों स्थितियों के उत्पादन तथा X व Y के आवंटन दिए गए है.

तालिका 38.1 **दो सामाजिक स्थितियों के उत्पादन व प्राथमिकता क्रम**

स्थितियां	**A** **B**	**कुल उत्पादन**(X,Y)
I	(2,0) (0, 1)	(2, 1)
II	(1 ,0) (0,2)	(1,2)

अब हम यह सिद्ध कर सकते हें, कि क्षतिपूर्ति के आधार पर चाहे I से II पर जाएं या II से I पर आएं, समाज की स्थिति बेहतर ही होगी। मान लीजिए, वर्तमान स्थिति I है तथा समाज को स्थिति II में ले जाने वाली नीति प्रस्तावित है। यदि उस स्थिति में A से एक इकाई X की लेकर उसे एक इकाई Y की दी जाए जबकि B के पास पहले जितनी ही मात्राएं रहे तो अब नई स्थिति इस प्रकार होगी :

	A	B	कुल उत्पादन
	(2,0)	(0,1)	(1,2)
स्थिति IIc	(1,0)	(0,2)	(1,2)

हम ऊपर यह देख. चुके है कि A,(1, 1) (स्थिति II) को स्थिति (2,0) की अपेक्षा अधिक पसन्द करता है जबकि B स्थिति I तथा स्थिति II के बीच तटस्थ है (0,1 ही दोनों स्थितियों में मिलती है।) इस प्रकार B की स्थिति को प्रभावित किए बिना क्षतिपूर्ति के माध्यम सें A की स्थिति में सुधार लाया जा सकता हें, और इसीलिए सामाजिक दृष्टि से IIc स्थिति I की अपेक्षा बेहतर है। इसके विपरीत यदि समाज को वर्तमान स्थिति II से नई सामाजिक स्थिति I में लाने का

प्रस्ताव हो तब भी हम सह सिद्ध कर सकते है कि क्षतिपूर्ति के बाद नई स्थिति सामाजिक दृष्टि से बेहतर होगी। अब B को प्राप्त Y की इकाई एक कम करके उसे X की एक इकाई दे दी जाती है, परन्तु A अपनी पूर्व स्थिति में ही रहता है। इस प्रकार II से Ic में जाने पर निम्न स्थिति बनेगी।*

	A	B	कुल उत्पादन
स्थिति Ic	(1,0)	(1,1)	(2,1)

जैसा कि आपने देखा था, A को II तथा Ic में X तथा Y की समान इकाइयां मिलने के कारण वह दोनों स्थितियों के मध्य तटस्थ है जबकि B को II की अपेक्षा Ic में अधिक इकाइयां (0,1 की तुलना में 1 ,1) मिलती है। इस प्रकार II की अपेक्षा Ic में सामाजिक कल्याण अधिक प्राप्त होता है।

38.3 क्षतिपूर्ति मापदण्ड (Compensation Criteria)

दो सामाजिक स्थितियों के मध्य आर्थिक कल्याण की दृष्टि से कौन सी स्थिति श्रेष्ठ है, इस विषय पर चौथे दशक से ही अर्थशास्त्रियों में पर्याप्त मतभेद रहा है। सामाजिक आय अथवा कल्याण, तथा इसमें होने वाले परिवर्तनों का माप क्या हो, इस विषय पर पिछले चार पांच दशकों में केल्डोर, हैरॉड हिक्स, सैम्युअलसन, साइमन कुजनेट्स, लिट्ल आदि ने परस्पर विरोधी या मिलते जुलते विचार प्रस्तुत किए है। सितम्बर, 1938 में हैरॉड ने रॉबिन्स के इस विचार पर, कि अर्थशास्त्र में नीति-विषयक कोई सुझाव दिया जाना उपयुक्त नहीं है, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि इंग्लैंड में कॉर्न लॉज की समाप्ति से भूमि की कीमतों (व लगान दरों) में कमी हुई और इस कारण भू-स्वामियों को हानि हुई परन्तु इसके विपरीत जनसाधारण को कही अधिक लाभ हुआ। हैरॉड ने प्रश्न किया कि यदि अन्तर्व्यक्ति संतुष्टि-स्तरों की

तुलना संभव नही होती तो क्या समाज के एक वर्ग की हानि की दूसरे वर्ग के लाभ से तुलना की जा सकती थी? उन्होंने कहा कि कल्याण अर्थशास्त्र के अन्तर्गत जो नीतियां लागू की जाती है उनके अन्तर्गत इस अन्तर्व्यक्ति तुलना का काफी अधिक महत्व है।**

रॉबिन्स ने इसी बात को इस रुप में प्रस्तुत किया था कि वैयक्तिक उपयोगिताओं की तुलना केवल तभी करना उचित होता है जब किसी नीति (या नीतिगत परिवर्तन) से प्रभावित सभी व्यक्तियों की संतुष्टि प्राप्त करने की क्षमता समान हो। कार्न लॉज की समाप्ति सें भू-स्वामियों की हानि तथा उपभोक्ताओं को प्राप्य लाभ को इसी रूप में देखा जाना चाहिए।****

38.3.1 केल्डोर का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त

निकोलस केल्डोर ने इसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए 1939 में इकॉनोमिक जर्नल में एक लेख लिखा। केल्डोर नें कॉर्न लॉज को समाज किए जाने वाले प्रभावों को दो रूप में व्यक्त किया (1) इससे अनाज की कीमतें कम होगी तथा उसी मौद्रिक आय की क्रय शक्ति बढ़ जाएगी, तथा (2) इससे आय का वितरण प्रभावित होगा जिसके अनुसार भू-स्वामियों की मौद्रिक आय पूर्वापेक्षा कम होगी जबकि अन्य लोगों की आय बढ़ जाएगी। हालांकि इससे कुल मौद्रिक आय में कोई परिवर्तन नही होगा, तथापि आय के पुनर्वितरण के कारण जहां उपभोक्ताओं को लाभ होगा वही भू-स्वामियों को हानि होगी। केल्डोर ने स्पष्ट किया कि चूंकि आय के पुनर्वितरण से कुछ व्यक्ति लाभान्वित होते है जबकि अन्य को हानि होती है, यह जरुरी समझा जाता है कि दोनों वर्गों पर नीतिगत परिवर्तनों के प्रभावों की तुलना की जाए। अन्य शब्दों में, अन्तर्व्यक्ति उपयोगिता की तुलना इसीलिए उपयुक्त है कि एक ही नीति से एक वर्ग को लाभ होता है जबकि दूसरे वर्ग को हानि उठानी पड़ती है।

परन्तु यदि सरकार कॉर्न लॉज को समाप्त करने के साथ साथ आय के वितरण को पूर्ववत् रखने के उद्देश्य से भू-स्वामियों को होने वाली क्षति के बदले मुआवजा दे और इसके लिए लाभान्वित व्यक्तियों से कर वसूल करे तो उक्त नीति (कॉर्न लॉज की समाप्ति) से होने वाले वास्तविक लाभ का पता चल सकता है। केल्डोर ने कहा कि भले ही क्षतिपूर्ति के माध्यम से मौद्रिक आय के वितरण को यथावत रखा जा सकता है, तथापि अनाज की नीची कीमतों से होने वाला लाभ तो उपभोक्ताओं को फिर भी मिलेगा ही। इस प्रकार केल्डोर ने निष्कर्ष दिया कि यदि क्षतिपूर्ति के बाद भी नई सामाजिक स्थिति (A) पहले वाली स्थिति (B) से बेहतर हो तो नीतिगत परिवर्तन वांछनीय है।

---

* नोट - Ic तथा IIc क्षतिपूर्ति के बाद की स्थितियों को व्यक्त करती है।

** Harrod "Scope and Methods of Economics", Economic Journal, Sept. 1938.

*** L. Robbins, Inter personal Comparisons of Utility : A Comment Economic Journal, Dec. 1938.

केल्डोर के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त या क्षतिपूर्ति मापदण्ड को निम्न रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है :

"कोई भी (नई) स्थिति A (पुरानी) स्थिति B की तुलना में सामाजिक दृष्टि से उसी समय बेहतर मानी जा सकती है जब A से लाभान्वित व्यक्ति उन व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति करें, जिन्हें A पर हानि हो रही है, और फिर भी B की अपेक्षा बेहतर स्थिति में ही।"

अन्य शब्दों में, जिन्हें नई स्थिति में लाभ होने वाला है वे ऐसे व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति दें जिन्हें नई स्थिति में हानि होने की आशंका है। यहां यह अपेक्षा की जाती है कि इस रिश्वत या क्षतिपूर्ति के फलस्वरूप संभावित हानि उठाने वाले A को स्वीकार कर लेंगे और साथ ही क्षतिपूर्ति भुगतान के बाद भी A से लाभ उठाने वालों के पास धनात्मक अतिरिक्त आय शेष रह जाएगी। इसीलिए B की अपेक्षा A को बेहतर स्थिति के रुप में स्वीकार किया जा सकता है।

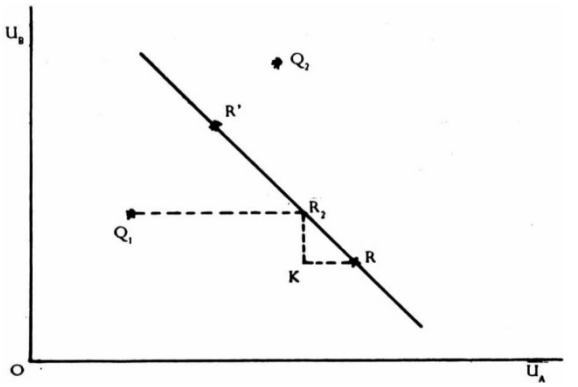

चित्र 38.1 क्षतिपूर्ति मापदण्ड

चित्र 38.1 के माध्यम से केल्डोर के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त को समझा जा सकता है। यदि इस चित्र में हम Q1 से R पर जाएं तथा R से यह बिन्दु पथ Q1 से उत्तर पूर्व की दिशा में चलता हो (यानि Q1 से बेहतर स्थिति में हो) तो इस परिवर्तन से लाभान्वित व्यक्ति उन व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति दे सकते है, जिन्हें परिवर्तन से हानि होती है और इसके बावजूद बेहतर स्थिति में हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि R पर u_B में जो कमी हो रही हें उसके लिए RK क्षतिपूर्ति देकर भी यदि लाभावन्ति व्यक्ति R_2 पर रहे तो जहां u_B का स्तर Q_1, के अनुरुप हो जाता है, u_A का स्तर Q_1, यानी पूर्व स्थिति की अपेक्षा बेहतर हो जाता है। अस्तु, नई स्थिति R_2 को पूर्व स्थिति Q_1, की तुलना में क्षतिपूर्ति के बावजूद श्रेष्ठ माना जाएगा। यदि नई स्थिति बिन्दु-पथ पर R_2 व R' के बीच हो तो यह भी संभव है कि क्षतिपूर्ति के पश्चात् दोनों पक्षों की स्थिति पूर्वापेक्षा बेहतर हो।

केल्डोर द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के प्रकाशन के कुछ समय बाद ही जे0आर0 हिक्स ने दो सामाजिक स्थितियों की तुलना हेतु एक नया क्षतिपूर्ति सिद्धान्त प्रतिपादित किया। अब आप हिक्स के क्षतिपूर्ति मापदंड के विषय में पढ़ेंगे।

38.3.2 हिक्स का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त*

1940 में प्रोफेसर हिला ने B से A पर जाने पर सामाजिक स्थिति बेहतर होती हें अथवा नहीं, इसके लिए केल्डोर से सर्वथा भिन्न मापदंड प्रस्तुत किया। चित्र 38.1 को पुन: देखिए। यदि हम Q2 से

R2 X पर आएं तो हम यह देखते हें कि X_2R से निकलने वाला बिन्दु पथ Q_2, से नीचे है। इसका यह अर्थ हुआ कि अब नीति परिवर्तन से लाभान्वित होने वाला समूह क्षतिपूर्ति चुकाने की स्थिति में नही है हालांकि नई स्थिति उसके लिए लाभप्रद है। यदि R तथा Q_2, के बीच तुलना की जाए तो Q_2, पर सामाजिक कल्याण अपेक्षाकृत अधिक हैं। अन्य शब्दों में, R से Q_2, पर जाने पर अधिक सामाजिक कल्याण की प्राप्ति होती है। हिला ने यह सिद्ध करने के लिए कि Q_2 पर R की अपेक्षा क्षतिपूर्ति के बाद भी अधिक बेहतर स्थिति प्राप्त होती है, निम्न शर्त या मापदंड प्रस्तुत किया:

"B(R) की तुलना में नई स्थिति $A(Q_2)$ सामाजिक दृष्टि से बेहतर हैं बशर्ते जिन्हें नई स्थिति में हानि होने की आशंका है वे संभावित लाभ प्राप्त करने वालों को इस बात के लिए रिश्वत देने की स्थिति में नहीं हें कि वे (लाभान्वित होने वाले लोग) परिवर्तन को नहीं लाएं।" इस मापदंड को इस रुप में समझा जा सकता है कि (B से A तक परिवर्तन की प्रक्रिया में जिन व्यक्तियों को हानि होने की संभावना है वे किसी भी प्रकार से रिश्वत देकर भी इस परिवर्तन को रोकने में सफल नही हो पाते और ऐसी स्थिति मे, जिन्हें लाभ होने वाला हैं उनका पलड़ा भारी होने के कारण वे परिवर्तन को लाने में कामयाब हो जाते है।

निस्सदेह, हिक्स के मतानुसार यदि वास्तविक आय की दृष्टि से दो स्थितियों की तुलना की जाए तो A पर B की तुलना मे सामाजिक वास्तविक आय अधिक प्राप्त होनी चाहिए, यानी अथवा

$$\sum p_{2,} q_2 > \sum p_{2,} q_1$$

$$\sum p_1, q_1 < \sum p_1, q_2$$

उक्त दशा में $\sum p_{2,} q_2 > \sum p_{2,} q_1$ का अर्थ यह होगा कि q_1, का वितरण कुछ इस प्रकार का हें जिससे समूह का प्रत्येक व्यक्ति नई स्थिति की अपेक्षा कम संतुष्टि प्राप्त करता है। सैम्युअलसन, हिक्स की इसी बात को लेकर आलोचना करते है कि उन्होंने समाज की वास्तविक आय का माप उपरोक्त सूत्र के रुप में लेकर द्वितीय स्थित (A) को प्रथम स्थिति (B) से बेहतर

---

* J.R. Hicks, "The Valuation of Social Income" Economical, Vol. VII (1940)

सैम्युअलसन की मान्यता है कि केल्डोर तथा हिक्स दोनों ही व्यक्तिपरक निर्णयों के आधार पर A को B की तुलना में बेहतर मानते हें, तथा वस्तुत : दोनों के मापदंड ऊपरी तौर पर कुछ भिन्न होते हुए भी समान निष्कर्ष प्रदान करते है। यदि एक आर्थिक परिवर्तन के फलस्वरुप अधिक वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन होता हो तथा उनका इस प्रकार वितरण किया जा सकता हो कि कुछ व्यक्तियों की स्थिति पूर्वापेक्षा बेहतर हो जाए तथा अन्य लोगों की स्थिति यथावत रह सके तो ऐसे प्रत्येक परिवर्तन का स्वागत होना चाहिये। हॉ, प्राय : यह जरुरी है कि दूसरे वर्ग को यथास्थिति में रखने हेतु पहला वर्ग उन्हें क्षतिपूर्ति अदा करे।

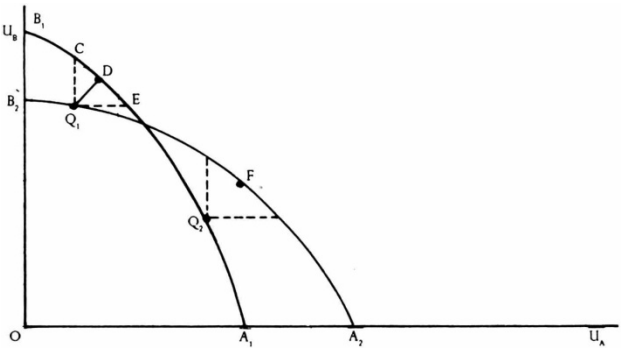

चित्र 38.2 केल्डोर हिक्स का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त

चित्र 38.2 में केल्डोर तथा हिक्स के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त को संयुक्त रुप से प्रस्तुत किया गया हैं। पहले दो उपयोगिता संभावना वक्रों (B_1A_1 तथा B_2A_2) को देखिए। जैसा कि आप जानते है, किसी भी उपयोगिता संभावना वक्र पर कुल सामाजिक कल्याण समान रहता है हालांकि एक व्यक्ति या समूह का कल्याण-स्तर बढ़ता है और दूसरे व्यक्ति को कम वास्तविक आय प्राप्त होती है।

अब कल्पना कीजिए, समाज की प्रारंभिक स्थिति Q_1 है। जैसा कि आप जानते है, Q_1 तथा F पर कुल कल्याण समान होता है ($Q_1 \square F$) परन्तु B_1A_1, पर स्थित बिन्दुओं C,D या E में से D पर दोनों समूहों का कल्याण स्तर अधिक होगा, हालांकि D व Q_2, से भी समान कुल कल्याण प्राप्त होता है ($D \square Q_2$)। अब Q_2, की तुलना Q_1, से कीजिए। जैसा कि आप देख सकते है, Q_2, पर Q_1, की तुलना में B को काफी क्षति होती है। इस दशा में दो विकल्प है (1) B अपनी ओर से A को क्षतिपूर्ति दे ताकि सामाजिक स्थिति Q_1, पर ही बनी रहे, तथा (2) A नई स्थिति का परित्याग करने हेतु B को क्षतिपूर्ति अदा करे। यदि A द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति B द्वारा प्रस्तावित क्षतिपूर्ति से अधिक है तो पर Q_2, की अपेक्षा अधिक कल्याण की प्राप्ति होगी क्योंकि क्षतिपूर्ति के बावजूद यदि A नई स्थिति Q_2, पर रहता है तो उसकी स्थिति बेहतर है, जबकि B अपनी पुरानी स्थिति में ही है।

---

* T. Scitovsky, "A not on welfare propositions in Economics, The Review of Economics Studies, (1941).

Q_2 वस्तुत: Q_1 से बेहतर स्थिति में है या नही, इसे परखने हेतु आप देख सकते है कि Q_2, की स्थिति B_1A_1 पर हें जो उपयोगिता संभावना वक्र B_2A_2 के Q_1 से नीचे स्थित है। आप यह देख सकते है कि Q_1 से D पर जाने पर u_B, व u_A दोनों में वृद्धि होती हें। अब यदि D से Q_2, पर सामाजिक स्थिति को लाना चाहें तो कुल कल्याण के स्तर में परिवर्तन नहीं होगा ($D \square Q_2$) क्योंकि दोनों बिन्दु एक ही उपयोगिता संभावना वक्र B_1A_1 पर स्थित है। इसके साथ ही आप यह भी देख सकते है कि A यदि Q_2 तक आने हेतु B को क्षतिपूर्ति दे तब भी Q_2, पर उसे प्राप्त वास्तविक आय Q_1 की तुलना में अधिक होगी।

38.3.3 सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूर्ति सिद्धान्त*

केल्डोर तथा हिक्स द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के प्रकाशन के कुछ ही समय बाट सीटोवस्की ने एक लेख प्रकाशित किया। उन्होंने सर किया कि वस्तुत: आंशिक कल्याण का माप लिया ही नहीं जा सकता। उन्होंने यह भी कहा कि केल्डोर तथा हिक्स दोनों ही दो सामाजिक स्थितियों से सम्बद्ध वास्तविक आय की जिस रूप में तुलना करते है वह सूचकांकों का निरुपण ही है। सीटोवस्की ने तर्क दिया कि अलग-अलग रुप में केल्डोर तया हिक्स के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त महत्वहीन हैं। स्थिति A को यदि स्थिति B से श्रेष्ठ माना जाता हें तो वह सिर्फ इसलिए कि हिक्स व केल्डोर दोनों ही के द्वारा प्रस्तुत मापदंडों के अनुसार A पर B की तुलना मे अधिक वास्तविक आय प्राप्त होती है। उनका क्षतिपूर्ति सिद्धान्त निम्न रुप मे व्यक्त किया जा सकता है :

"स्थिति A सामाजिक दृष्टि से स्थिति B की तुलना में बेहतर है यदि जिन्हें लाभ होता है वे उन्हें क्षतिपूर्ति दे जिन्हें हानि होने वाली है और इसके साथ ही, जिन्हें हानि होने की संभावना हें वे संभावित लाभ प्राप्त करने वालों को इस बात के लिए रिश्वत देने की स्थिति मे न हो ताकि वे परिवर्तन नही लाएं।"

सीटोवस्की ने कहा कि सम्पन्नता के समय अधिकांश लोगों की स्थिति बेहतर हो जाती हें परन्तु थोड़े से ऐसे व्यक्ति जरूर रहते है जिनकी आय यथावत रहती हें अथवा जो पुरानी बचत पर जीवित रहते है तथा सम्पन्नता के बावजूद जिन्हें लाभ होने की अपना हानि होती हें। परन्तु प्राय: अर्थशास्त्र समानता तथा पूर्ण रोजगार की नीतियों की इसलिए वकालत करते है कि इसके फलस्वरूप करोड़ों व्यक्तियों को जो लाभ होता है थोड़े से उन व्यक्तियों की हानि से कई गुना अधिक होता है जिनकी (कीमत वृद्धि के कारण) वास्तविक आय में कमी हो जाती हें।

सीटोवस्की ने केल्डोर तथा हिक्स के क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों की इसलिए आलोचना की थी कि उन दोनों ने प्रस्तावित परिवर्तन से पूर्व आय के पुनर्वितरण को अनावश्यक रुप से प्राथमिकता दी। यदि सरकारी नीति का उद्देश्य परिवर्तन से पूर्व की स्थिति को बनाए रखना हो तथा वह परिवर्तन के पश्चात् (प्रगतिशील) कर नीति के माध्यम से कल्याण के वांछित स्तर को प्राप्त करना चाहती है, तो केल्डोर का अति पूर्ति सिद्धान्त वैध है। सीटोवस्की ने कहा कि दो स्थितियों की वरीयता की जांच न तो केवल केल्डोर के मापदंड के आधार पर संभव है और न ही केवल हिक्सीय मापदंड के आधार पर।

केल्डोर-हिक्स के सिद्धान्तों में विद्यमान विसंगतियों को दर्शाने हेतु सीटोवस्की ने जो तर्क प्रस्तुत किया है उसे समझने हेतु चित्र 38. 3 देखिए।

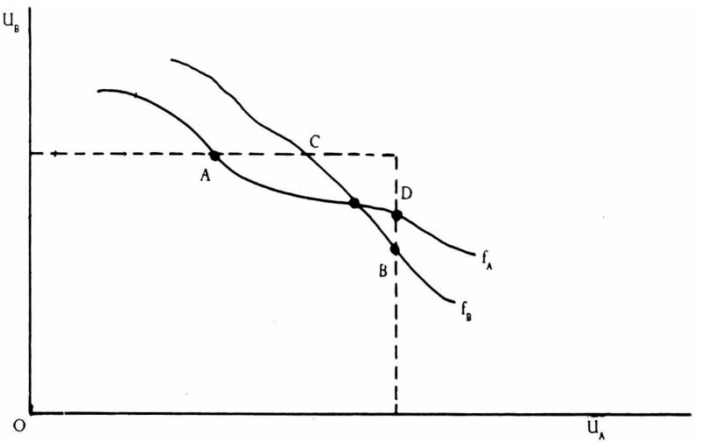

चित्र 38.3 सीटोवस्की का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त

यदि सामाजिक स्थिति को A के बदल कर B पर, अथवा B से A पर, लाया जाए तो हिक्स या केल्डोर के मतानुसार कल्याण में वृद्धि हो सकती है। मान लीजिए चित्र 38. 3 में समाज को B पर लाया जा चुका है और किसी का सुझाव है कि वापस A पर जाना चाहिए। F_A उपयोगिता संभावना वक्र है जो A से गुजरता है तथा A से प्राप्त होने वाले कल्याण-स्तरों को व्यक्त करता हें। परन्तु f_A इस चित्र में D से भी गुजरता है जहां पहले व्यक्ति (समूह) का कल्याण स्तर (u_A) पूर्ववत् रहता है जबकि दूसरे व्यक्ति (समूह) की स्थिति बेहतर हो जाती है। केल्डोर के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के अनुसार ऐसी दशा में A पर जाना श्रेयस्कर रहेगा। सीटोवस्की ने तर्क दिया कि समाज A तथा B के बीच तब तक अपनी स्थिति बदलता रहेगा जब तक क्षतिपूर्ति भुगतान वस्तुत: नही दिया जाता। ऐसी दशा में केल्डोर के सिद्धान्त का कोई नीति विषयक औचित्य नही है।

यदि f_B की स्थिति सर्वत्र f_A के ऊपर हो तो केल्डोर के सिद्धान्त में कोई विसंगति नही है। परन्तु दोनों उपयोगिता संभावना वक्रों का परस्पर प्रतिच्छेदन केवल यह बतलाता है कि किसी भी नीति से निर्दिष्ट साधनों, टैक्नोलॉजी व संस्थाओं के अनुरुप एक वर्ग को आय वितरण की एक रेन्ज में जहां लाभ होता है वही दूसरी रेन्ज में उसे हानि होती है। सीटोवस्की ने यह भी कहा कि केल्डोर-हिक्स के सिद्धान्त व्यक्ति परक निर्णयों से मुक्त नही है।

कुल मिलाकर यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि हिक्स तथा केल्डोर दोनों के क्षतिपूर्ति मापदण्डों को देखकर ही दो सामाजिक स्थितियों, में से कौन सी बेहतर है इसका निर्णय लिया जाना चाहिये।

38.4 क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों की आलोचना

केल्डोर तथा हिला के सिद्धान्तों की केवल सीटोवस्की ने ही नही, अपितु सैम्युअलसन लिटिल, बिलियन बॉमोल आदि ने भी कड़ी आलोचना की है। प्रस्तुत खण्ड में आप यही देखेंगे कि क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों में क्या दोष है।

1. बॉमोल के मतानुसार हिक्स-केल्डोर के मॉडल में केवल दो ही वस्तुओं का विश्लेषण निहित है। चूंकि भिन्न भिन्न वस्तुओं की उपयोगिताओं का (क्रम-सूचक) माप भी भिन्न होता है, व्यावहारिक जगत में इन सिद्धान्तों की कोई उपादेयता नहीं है।
2. सीटोवस्की ने कहा कि यदि किसी नीति के द्वारा धनी व्यक्ति बहुत अधिक धनी होने वाले ही तथा गरीब अधिक गरीब न हो तो केल्डोर हिक्स क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के अनुसार ऐसी नीति से सामाजिक स्थिति बेहतर होती हें। परन्तु क्या सरकार को ऐसी नीति बनानी चाहिए?
3. केल्डोर तथा हिक्स आय के वितरण को पूर्व-स्थिति में लाने के पक्षधर है। यह इसलिए संभव नही है कि समाज जब एक पुरानी स्थिति से नई स्थिति जो बेहतर है- में पहुंचता है तो आय का वितरण पूर्ववत् नही रह सकता।
4. सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये दोनों ही विद्वान संभावित क्षतिपूर्ति की चर्चा करतें है परन्तु इनके मॉडल में क्षतिपूर्ति भुगतान वास्तव में नही दिया जाता। इस प्रकार यह सिद्धान्त प्रतिपूर्णत हो जाता है। क्योंकि वास्तविक भुगतान करने से पूर्व हमें प्रत्येक समूह के उपयोगिता फलन ज्ञात होने चाहिये।
5. केल्डोर व हिक्स के मत में पुरानी से नई स्थिति पर आने के बाद भी आय के वितरण को यथावत बनाए रखने का सम्पूर्ण दायित्व राज्य का होना चाहिए। परन्तु वे यह नही बता पाए कि इसके लिए राज्य का नियंत्रण समूची अर्थव्यवस्था पर किस सीमा तक हो।
6. केल्डोर तथा हिक्स यह मानते है कि यदि परिवर्तन के बाद एक वर्ग (व्यक्ति) की स्थिति में क्षतिपूर्ति के बावजूद सुधार हो तथा दूसरे वर्ग (व्यक्ति) की स्थिति यथावत रहे तो परिवर्तन लाभप्रद है। सीटोवस्की के मतानुसार नई स्थिति को केवल उस दशा में बेहतर मानना उचित होगा जब वास्तविक क्षतिपूर्ति के बाद (नई स्थिति में) प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति बेहतर हो।

38.4.1 आइ0 एम0 डी0 लिटिल द्वारा प्रस्तुत मापदण्ड

प्रो. लिटिल ने केल्डोर, हिक्स व सीटोवस्की तीनों के क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों को अपर्याप्त मानते हुए दो तर्क दिए। प्रथम, यदि किसी व्यक्ति को उसकी प्राथमिकता-क्रम में बेहतर स्थिति में जाने योग्य बना दिया जाए तो उसे प्राप्त कल्याण में वृद्धि हो जाती है। द्वितीय, समाज की स्थिति में उस समय सुधार माना जाता है जब एक व्यक्ति अपनी बेहतर स्थिति में पहुंच जाए परन्तु साथ ही अन्य किसी भी व्यक्ति की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। लिटिल ने नैतिकता के आधार पर आय के पुनर्वितरण को उचित माना।

लिटिल ने तीन प्रश्न किए (अ) क्या केल्डोर-हिक्स द्वारा प्रस्तुत शर्त पूरी होती है? (ब) क्या सीटोवस्की की शर्त पूरी होना संभव है, तथा (स) क्या आय के पुनर्वितरण का प्रभाव अनुकूल होता हें? इन तीनों प्रश्नों के संभावित आठ उत्तरों में से यदि प्रत्येक का उत्तर "हां" में हो तो पुरानी की अपेक्षा नई स्थिति बेहतर मानी जाएगी।

38.5 आय में समानता की समस्या तथा रॉल्स का "न्याय का सिद्धान्त"

जैसा कि आपने पढ़ा, क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों की प्रमुख मान्यता यह रही है कि इनमें क्षतिपूर्ति तथा दो सामाजिक स्थितियों की तुलना करते समय आय के वितरण को यथावत मान लिया जाता है। प्राय: सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं, विशेषरूप से प्रजातांत्रिक प्रणाली, में आय की समानता को एक महत्वपूर्ण राजनैतिक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। मान लीजिए, समाज के सभी व्यक्तियों के उपयोगिता फलन संख्या सूचक माप पर आधारित है तथा उनके बीच तुलना संभव है। यह भी मान लीजिए कि उपयोगिता हास नियम लागू हो रहा है तथा सभी व्यक्तियों के उपयोगिता फलन समरूपी है। ऐसी दशा में सभी व्यक्तियों को प्राप्य उपयोगिता अधिकतम उसी दशा मे, होगी जब आय का वितरण सभी में समान रुप से किया गया हो।

1971 में जॉन रॉल्स नामक दार्शनिक ने "सामाजिक न्याय" के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

रॉल्स के मतानुसार समाज को उपलब्ध मापनीय वस्तुओं के वितरण के आधार पर

कल्याण के स्तर की समीक्षा की जाती है। उनके सिद्धान्त का आधार "अन्तर की अवधारणा" है। उन्होंने कहा कि समाज मे असमानता केवल उस सीमा तक उपयुक्त हें जहां तक इससे सबसे पीछे वाले व्यक्ति को लाभ होता हो।

रॉल्स के सामाजिक न्याय के सिद्धान्त को समझने हेतु चित्र 38.4 देखिए।

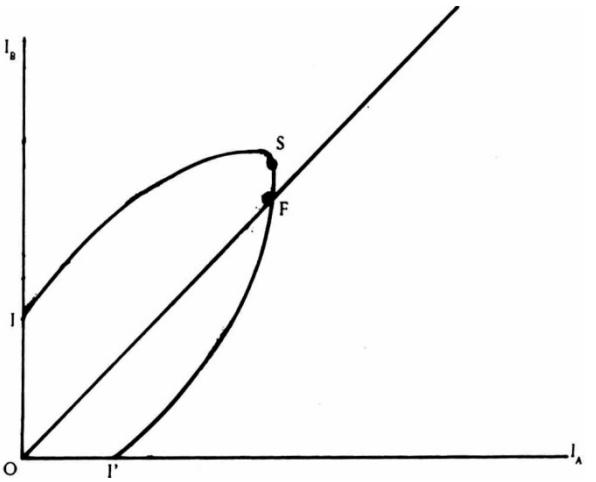

चित्र 38.4 रॉल्स का सामाजिक न्याय सिद्धान्त

चित्र 38.4 मे दो व्यक्तियों (या समूहों) के मध्य सभी संभावित आय स्तरों का समान वितरण 45^0 की रेखा के द्वारा दर्शाया गया है। इस रेखा पर $I_A = A_B$ हें। अब सामाजिक अवसर सैट को प्रदर्शित करने वाले वक्र II' को देखिए। इस वक्र पर श्रेष्ठतम प्राप्त किया जा सकने वाला बिन्दु F है जहां इष्टतम समान आय प्राप्त होती है। यदि F से S पर जाएं तो आय वितरण में विषमता उत्पन्न हो जाती है, यानी B की आय A की आय से अधिक हो जाती है। परन्तु रॉल्स ने कहा कि यह विषमता किसी सीमा तक उचित है क्योंकि S पर A की स्थिति पी अंशत: बेहतर होती है।

आप यह देख सकते है कि रॉल्स के सिद्धान्त में अंतत: S सामाजिक दृष्टि से इष्टतम स्थिति बन जाती है। यदि इस सामाजिक अवसर सीमा II' के स्थान पर हम उपयोगिता संभावना वक्र को निरुपित करें तो चूंकि उसका ढलान सर्वत्र ऋणात्मक होता हें, B की स्थिति में केवल उसी दशा में सुधार संभव है जब A को प्राप्य संतुष्टि-स्तर या आय में कमी की जाए। इस प्रकार सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के अनुसार एक व्यक्ति की स्थिति में सुधार के साथ साथ अंशत: दूसरे व्यक्ति की आय मे भी वृद्धि की जा सकती है, और केवल तभी नई- स्थिति को पुरानी स्थिति से बेहतर माना जा सकता है भले ही उस नई स्थिति में आय का वितरण रम हो जाए।

38.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने क्षतिपूर्ति का अर्थ तथा इसकी आवश्यकता के विषय में पढ़ा। आपने यह भी पढ़ा कि यदि किसी नीति के द्वारा एक व्यक्ति की स्थिति बेहतर होती हो जबकि दूसरे व्यक्ति की स्थिति यथावत रहने वाली हो तो इस प्रकार की नीति से सदैव सामाजिक कल्याण वृद्धि होती है। परन्तु यदि किसी नीति के फलस्वरूप एक वर्ग को हानि होने की आशंका है तथा दूसरे वर्ग को लाभ होने की संभावना हो तो द्वितीय वर्ग प्रथम वर्ग को मुआवजा देकर उसे नीति का विरोध करने से रोक सकता है। आपने केल्डोर द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के अन्तर्गत यह पड़ा कि यदि क्षतिपूर्ति देने के बाद भी दूसरा वर्ग लाभ में रहे तो नई स्थिति पुरानी स्थिति की अपेक्षा बेहतर मानी जाएगी।

आपने इस इकाई में हिला तथा सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों का भी अध्ययन किया। हिक्स ने कहा था कि नई स्थिति पुरानी स्थिति से तब बेहतर मानी जाएगी जब जिन्हें हानि होने की आशंका है वे संभावित लाभ उठाने वाली को इस बात के लिए मुआवजा देने में सक्षम नहीं है कि वे नीति को क्रियान्वित न करें। आपने यह भी पढ़ा कि सीटोवस्की के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त में केल्डोर व हिक्स दोनों द्वारा प्रस्तुत मापदंड शामिल किए गए है। इसके बाद आपने क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों की आलोचना हेतु सैम्युअलसन, बॉमोल, लिटिल आदि के विचार पड़े। लिटिल ने पुरानी व नई स्थितियों की तुलना हेतु जो मापदंड प्रस्तुत किए है उनमें नैतिकता के आधार पर आय का पुनर्वितरण करने की वकालत की गई हें जबकि हिक्स-केल्डोर आय के पुनर्वितरण को अनावश्यक मानते है।

इकाई के अन्त में आपने जॉन रॉल्स का "सामाजिक चाय सिद्धान्त" पढ़ा। रॉल्स ने कहा था कि प्राय: आय में समानता हेतु प्रत्येक अर्थव्यवस्था में प्रयास किए जाते है तथा तत्सम्बंधी नीतियां लागू की

जाती है। फिर भी यदि किसी नीति के फलस्वरूप समाज के सभी वर्गो की आय पूर्वापेक्षा अधिक हो जाए तो आय-वितरण की विषमताओं के बावजूद नई स्थिति न्यायपूर्ण मानी जाएगी।

38.7 शब्दावली

क्षतिपूर्ति (Compensation): क्षतिपूर्ति एक ऐसा भुगतान (रिश्वत) है जिसके माध्यम से समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग को इस बात के लिए सहमत करने का प्रयास करता है कि निर्दिष्ट नीति के द्वारा नई सामाजिक स्थिति लाने थे वह (दूसरा की) पहले वर्ग के पक्ष का समर्थन करेगा।

केल्डोर का क्षतिपूर्ति मापदंड (Kaldor's Compensation Criterion): केल्डोर के मतानुसार किसी (नई) स्थिति A को उस समय पुरानी स्थिति B से बेहतर माना जा सकता है जब A से लाभान्वित होने वाले व्यक्ति उन व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति (रिश्वत) दे जिन्हें A पर हानि होने की आशंका है, और फिर भी वे B की अपेक्षा बेहतर स्थिति मे हो जाएं।

हिक्स का क्षतिपूर्ति मापदंड (Hicksian Compensation Criterion): पुरानी स्थिति B की अपेक्षा नई स्थिति A उस समय बेहतर होगी जब नई स्थिति पर जिन्हें हानि होने की आशंका है वे संभावित लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों को इस बात के लिए रिश्वत (क्षतिपूर्ति) देने में सक्षम नही है कि वे (लाभान्वित होने वाले) परिवर्तन को नही लाएं।

सीटोवस्की का दोहरा मापदंड (Double Critesion of Scitovsky): स्थिति A सामाजिक स्थिति B से उस समय बेहतर मानी जायेगी यदि जिन्हें, लाभ होता है वे उन्हें क्षतिपूर्ति दे जिन्हें हानि होने वाली है, तथा इसके साथ ही जिन्हें हानि होने की आशंका है वे संभावित लाभ उठाने वालों को इस बात के लिए रिश्वत देने में सक्षम नही है कि वे B से A तक के परिवर्तन को न लाएं।

रॉल्स का सामाजिक न्याय सिद्धान्त (Concept of Social Justice Given by Rawls): जॉन रॉल्स के मतानुसार आय की समानता एक आदर्श एवं अभीष्ट लक्ष्य है। परन्तु यदि सामाजिक परिवर्तन की किसी स्थिति में समाज के सभी वर्गो को थोड़ा सा अधिक लाभ हो तो आय की विषमता के बावजूद नई स्थिति में अधिक सामाजिक कल्याण प्राप्त होगा।

बोध प्रश्न

- इकाई के अंत में प्रस्तुत उत्तर संकेतों से अपने उत्तर का मिलना करें।

1. क्षतिपूर्ति किसे कहते है? एक सामाजिक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने थे क्षतिपूर्ति भुगतान की आवश्यकता क्यों होती है?
2. केल्डोर तथा हिक्स के क्षतिपूर्ति सिद्धान्तों की उदाहरण-सहित व्याख्या कीजिए। इन सिद्धान्तों का व्यावहारिक महत्व बतलाइए।
3. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए

a. सीटोवस्की का क्षतिपूर्ति मापदंड

b. लिटिल का क्षतिपूर्ति मापदंड

c. रॉल्स का सामाजिक न्याय का सिद्धान्त

38.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. American Economic Association, Readings in Welfare Economics, Part V, George Allen & Unwin Ltd. (1969)
2. J.De V. Greaf, Theoretical Welfare Economics, Economics, Cambridges University Press (1957)
3. H. Gravelle & R. Rees, Microeconomics, Chapter 17, Long Man (1988).
4. Jack Hirshleifer, Price Theory and Applications, Ch. 17, Prentice Hall of India (1980)

38.9 अभ्यासों के उत्तर

1- क्षतिपूर्ति का अर्थ है मुआवजा या रिश्वत। वस्तुत: जब किसी नीति के माध्यम से पुरानी के स्थान पर नई स्थिति में समाज को लाया जाता है तो कुछ व्यक्ति लाभान्वित होते है जबकि अन्य को हानि उठानी पड़ती है। ऐसी दशा में क्षतिपूर्ति भुगतान इसलिए किए जाते है कि जिन्हें हानि उठानी पड़ेगी वे नीति का विरोध न करें। खण्ड 38.2 में इसकी विवेचना उदाहरण सहित दी गई है। वस्तुत: आपको यह बतलाता है कि क्षतिपूर्ति के प्रस्ताव द्वारा हम प्रस्तावित नीति के सम्भावित विरोध करने वालों को नीति के पक्ष में मतदान थे सहमत कर सकते है।

2- केल्डोर तथा हिक्स ने क्रमश: 1939 व 1940 में क्षतिपूर्ति के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि यदि क्षतिपूर्ति के बाद भी कुल मिलाकर क्षतिपूर्ति करने वाला वर्ग पूर्वापेक्षा बेहतर स्थिति में रहे तो नई स्थिति सामाजिक दृष्टि से पुरानी स्थिति से बेहतर होगी। वस्तुत: केल्डोर तथा हिक्स नई नीति के माध्यम से सामाजिक स्थिति में परिवर्तन तथा पुरानी तथा नई स्थितियों की तुलना तो करते है, परन्तु वे आय के वितरण को यथावत ही रखना चाहते है। खण्ड 38.4 में प्रस्तुत सामग्री के आधार पर आप केल्डोर व हिक्स के सिद्धान्तों के विषय में सैम्युअलसन, बॉमोल, सीटोवस्की तथा लिटिल द्वारा प्रस्तुत आलोचनाओं का विवरण दे सकते है।

संक्षिप्त टिप्पणियों में (अ) के लिए सीटोवस्की द्वारा क्षतिपूर्ति के दोहरे मापदंड हेतु खण्ड 38. 3. 3 देखिए। इसके अनुसार केल्डोर तथा हिक्स दोनों द्वारा दिए क्षतिपूर्ति मापदंडों को एक साथ देखकर ही पुरानी व नई सामाजिक स्थितियों की तुलना की जा सकती हैं।

टिप्पणी (ब) खण्ड 38. 4. 1 के आधार पर लिखिए। इसमें लिटिल ने बतलाया है कि नई सामाजिक स्थिति पुरानी स्थिति से तभी बेहतर मानी जा सकती है जब नीतिगत परिवर्तन से एक वर्ग की स्थिति बेहतर हो परन्तु साथ ही किसी अन्य वर्ग पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

टिप्पणी (स) का उत्तर खण्ड 38.5 के आधार पर लिखें। रॉल्स ने बतलाया है कि आय की विषमताएं उस दशा में आपत्तिजनक नही होती जब एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने पर थोड़ी बहुत सभी वर्गो की आय में वृद्धि हो।

इकाई 39

द्वितीय श्रेष्ठतम का सिद्धांत तथा ऐरो का असम्भावना सिद्धांत

Theory of the Second Best and Arrows Impossibility Theorem

इकाई की रूपरेखा

39.1 उद्देश्य

39.2 प्रस्तावना

39.3 द्वितीय श्रेष्ठतम सिद्धान्त

39.4 ऐरो का असम्भावना प्रमेय

39.5 अभ्यास हेतू प्रश्न

39.6 शब्दावली

39.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

39.1 उद्देश्य :

इस अध्याय के मुख्य उद्देश्य निम्न है :-

(i) उन परिस्थितियों को स्पष्ट करना जिनके कारण द्वितीय सर्वोत्तम सिद्धान्त की आवश्यकता |

(ii) कल्याण अर्थशास्त्र स संबंधित द्वितीय श्रेष्ठतम सिद्धान्त से अवगत करवाना|

(iii) ऐसे के असम्भावना सिद्धान्त की व्याख्या करना |

39.2 प्रस्तावना :

पैरेटो अनुकूलतम उस स्थिति का सूचक होता है जहाँ सामाजिक कल्याण अधिकतम होता है | पैरेटो अनुकूलतम की सीमांत शर्ते आर्थिक कुशलता को व्यक्त करती है| इसे उत्पादन एवं विनिमय की अनुकूलतम दशाओ के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है | इन शर्तों को [प्राप्त करने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण गतिशीलता, पूर्ण ज्ञान, उत्पादकों की प्रतिस्थापकता, उत्पादकों तथा साधनों की विभाज्यता की दशाएं आवश्यक है | इनमे से कुछ शर्ते वास्तविक संसार में लागू नहीं होती परिणामस्वरूप पैरेटो स्पष्टतम को प्राप्त करने में रुकावट आती है परिणामस्वरूप समूचे समाज के लिए पैरेटो की प्राप्ति एक मरीचिका बनकर रह जाती है

| पैरेटो इष्टतम के लिए अवश्यक शर्तों का पूरा न होना कई कारणों जैसे संस्थानिक संरोधनो (Constraints) उत्पाद विभेदिकरण, करो और अनुदानों से संबंधित सरकारी नीतियों, साधन बाजार में अपूर्णताओं, बहिर्भावो, अविभाज्यताओ, व्यवहार सम्बन्धी संरोधनो तथा उत्पन्न और साधन बाजारों में कीमतों में अंतरो से होता है |

काफी लंबे समय तक अर्थशास्त्रियों में बड़ा विश्वास था की यदि किसी कारण से पैरेटो इष्टतम के लिए कोई एक सीमांत शर्त पूरी नहीं होती तो भी जहां तक संभव हो, बाकि सीमांत शर्तों को प्राप्त करना उचित है| ऐसा विश्वास उस निहित मान्यता पर टिका था की एक आर्थिक प्रणाली में जितनी अधिक सीमांत शर्तों को पूरा किया जा सकेगा उतनी ही आर्थिक प्रणाली इष्टतम के अधिक निकट होगी |इस विचार का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और सार्वजानिक वित्त जैसे क्षेत्रो में प्रयोग किया गया |

एक दूसरे के अनुसार जब पैरेटो इष्टतम की कुछ शर्तों को संतुष्ट नहीं किया जा सकता तो इसे प्राप्त करने के प्रयास छोड़ देने चाहिए | यदि सर्वश्रेष्ठ को प्राप्त नहीं किया जा सकता तो प्रयास श्रेष्ठतम को प्राप्त करने की दिशा में करना चाहिए |

39.3 द्वितीय श्रेष्ठतम का सिद्धान्त (The Theory of Second Best)

द्वितीय श्रेष्ठतम के सिद्धान्त का निर्माण करने के लिए प्रारम्भिक प्रयत्न जैकब वाइनर ने कस्टम यूनियन की समस्या की विवेचना करने के लिए किया था | सम्यीकृत रूप में इसका विकास रिचर्ड जीठ लिप्से और केल्विन लंकास्टर के द्वारा अपने लेख The Theory of Second Best, Review of Economic Studies vol. 24 (i) PP 11-32 में किया |

लिप्से और लंकास्टरके अनुसार " यदि यह दिया गया है की पैरेटो की इष्टतम शर्तों मे से किसी एक को पूरा नहीं किया जा सकता तब बाकि सभी पैरेटो शर्तों से केवल प्रस्थान करके ही इष्टतम की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है अन्त में प्राप्त की गयी इष्टतम स्थिति को द्वितीय सर्वश्रेष्ठ का नाम दिया जा सकता है क्योकि इसे एक संशोधन के अंतर्गत प्राप्त किया जा सकता है जो परिभाषा के अनुसार पैरेटो इष्टतम की प्राप्ति में रुकावट डालता है|"

हैंडरसन और कवेंट के अनुसार –" जहाँ सर्वश्रेष्ठ कल्याण अवस्था प्राप्त करने योग्य नहीं है , यह जांच करना संबद्ध (relevant) है कि क्या बाकि पैरेटो शर्तों को संतुष्ट करके द्वितीय सर्वश्रेष्ठ का सिद्धांत कहता है , नहीं : यदि पैरेटो इष्टतमता के लिए एक अथवा अधिक आवश्यक शर्तों को संतुष्ट नहीं किया जा सकता तो, सामान्य रूप में, न तो आवश्यक है और न ही उचित है की बाकि बची शर्तों को पूरा किया जाये |" यह सिद्धान्त इस निष्कर्ष को सुझाता है की सभी पैरेटो सीमांत शर्तों को एक साथ

संतुष्ट करने से कुछ ही कम है तो कल्याण में सुधार नि होगा| ऐसी परिस्थिति में, उस परिस्थिति की तुलना में जिसमे कोई भी सीमांत शर्त संतुष्ट नहीं होती , निःसंदेह कल्याण के स्तर में कमी हो जायेगी | दूसरे शब्दों में, यदि कुछ संरोधनो के कारण सभी सभी सीमांत शर्तों को प्राप्त करना असंभव है तो पैरेटो की सभी शर्तों से पूरा प्रस्थान कर देना चाहिए और द्वितीय सर्वोत्तम तक पहुचने के प्रयत्नं करने चाहिए | द्वितीय सर्वोत्तम सिद्धांत में लिप्से व लंकास्टर बल दे कर कहते है की यह द्वितीय सर्वोत्तम हल सामाजिक कल्याण में वृद्धि ने करेगा |(The next best solution will not lead to increase in social welfare)

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण – माना की एक बाजार में एकाधिकार का अस्तित्व होता है तथा सरकार इस बाजार को प्रतियोगी बनाना चाहती है तो ऐसा प्रतीत होता है की सामाजिक कल्याण बडेगा (क्यूंकि इस बाजार में कीमत तथा लागत समाप्त हो जायेंगे) भले ही कुछ अन्य बाजारो में प्रतियोगिता को लागु न किया जा सके और इसीलिए उनमे पैरेटो अनुकूलतम की शर्ते पूरी नही की जा सकती | द्वितीय सर्वोत्तम सिद्धान्त के अनुसार इससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि नहीं होगी | तात्पर्य यह है की द्वितीय सर्वोत्तम हल वांछनीय नहीं होता है|

लिप्से तथा लंकास्तर के अनुसार यदि सभी सीमांत शर्ते संतुष्ट नहीं होती है तो सामाजिक कल्याण के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर को प्राप्त करने के लिए कभी कभी उत्पादन संभावना वक्र के अंदर की और चलन बेहतर होता है |

द्वितीय श्रेष्ठत्तम सिद्धान्त का रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण –

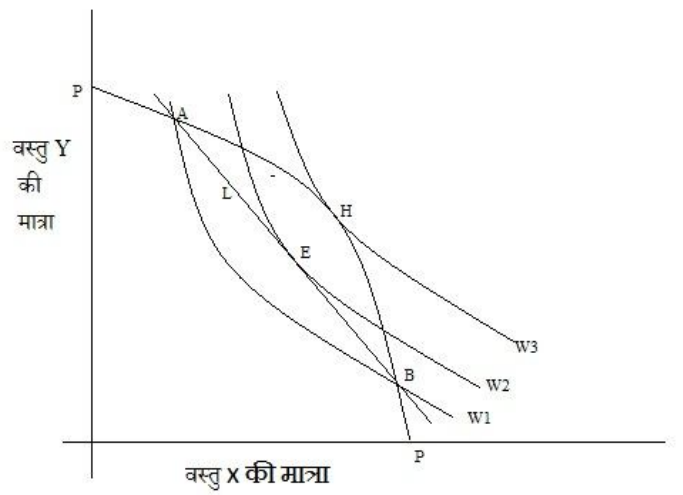

रेखा चित्र में PP उत्पादन सम्भावना वक्र है | W1, W2 व W3 सामाजिक कल्याण वक्र है | ये सामाजिक कल्याण वक्र प्रदर्शित करते है | ये सामाजिक कल्याण वक्र दो वस्तुओं X तथा Y के उन संयोंगो को प्रदर्शित करते है जो समाज कल्याण करते है | इसके अतिरिक्त सामाजिक कल्याण वक्र जितने ऊँचे होते है | सामाजिक कल्याण का स्तर उतना ही अधिक होता है| रेखा चित्र में H बिन्दू पर सामाजिक कल्याण वक्र w3, उत्पादन सम्भावना वक्र PP को स्पर्श करता है जो पैरेटो अनुकूलतम की सभी सीमांत शर्तों को संतुष्ट करते हुए अधिकतम सामजिक कल्याण के बिन्दू को प्रदर्शित करता है| अब माना की दो वस्तुओ के बजारो में एकाधिकार होने के कारण सामाजिक द्रष्टिकोण से सर्वोत्तम बिन्दू H प्राप्त करने योग्य नहीं है | इसके अतिरिक्त माना की एकाधिकार के अस्तित्व के कारण CC रेखा पर स्थित संयोग ह प्राप्त करने योग्य है| माना की रेखा वर्तमान में अर्थव्यवस्था प्राप्त करने योग्य रेखा cc के L बिन्दू पर स्थित जो उत्पादन संभावना वक्र PP पर स्थित है A या B बिन्दू के अंदर स्थित है जो प्राप्त करने योग्य रेखा CC पर भी स्थित है तथापि उत्पादन सम्भावना वक्र के A या B बिन्दू पर जाना अपेक्षाकृत निचे सामाजिक कल्याण वक्र w1 पर कर देगा | यदि इसके बजाय L बिन्दू से E बिन्दू पर जाते है जो उत्पादन सम्भावना वक्र के निचे है और इसीलिए पैरेटो अकुशल है कंतु A या B की अपेक्षा अधिक कल्याण दता है क्योंकि सामाजिक कल्याण वक्र w2 पर स्थित है अतः द्वितीय सर्वश्रेष्ठ की स्थिति w2 सामाजिक कल्याण वक्र पर E बिन्दू पर प्राप्त होती है | इस प्रकार द्वितीय सर्वोत्तम सिद्धांत जोर देकर कहता है की जब पैरेटो अनुकूलतम की सीमांत शर्तों में से एक भी संतुष्ट नहीं होती है (वर्तमान उदाहरण में, एकाधिकार का अस्तित्व उत्पादन भी अनुकूलतम दशा की शर्त को पूरा नहीं करता है अथार्त MRSxy तथा MRTxy समान नहीं होते है) तो अधिकतम संभव सामाजिक कल्याण प्राप्त करने क लिए पैरेटो अनुकूलतम की अन्य सीमांत शर्तों का उलंघन करना बेहतर हो सकता है|

एस. चार्ल्स एवं फिलिप्स के अनुसार "द्वितीय सर्वोत्तम सिद्धांत सर्वाधिक मजबूती से तब लागु होता है जबकि बजार से सम्बन्धित होते है : अथार्त वे या तो पूरक वस्तुए जैसे – रोई तथा मक्खन उत्पादित करते है या एक बाजार दूसरे का माध्यमिक पूर्तिकर्ता होता है जैसा की टायर निर्माताओ की स्थिति में होता है जो स्वचालित वाहनों के उत्पादकों को पूर्ति करते है |"

39.4 ऐरो का सम्भावना सिद्धान्त [Arrow's Impossibility Theorem]

बर्गसन – सैम्युल्सन सामाजिक कल्याण फलन प्रकट मूल्य निर्णयों के कारण पहले से कल्याण सम्बन्धी विश्लेषण पर स्पष्ट सुधार था | इसके अतिरिक्त इसमें माना गया था की व्यक्तिगत चयनो के योग द्वारा सामाजिक कल्याण फलन को बनाया जा सकता है | बर्गसन – सैम्युल्सन सामाजिक कल्याण फलन की इस बहुत महत्वपूर्ण प्रतिसंस्था को कैनथ जे. ऐरो के द्वारा अपने

प्रसिद्ध कार्य Social choice and Individual Values में चुनौती दी गयी | उनके अनुसार सामाजिक कल्याण फलन का निर्माण करने के लिए व्यक्तिगत अभियानों से सामाजिक अभियानों की और बढना असंभव है | एक सामाजिक कल्याण फलन जो सभी व्यक्तियों के चयन को दर्शाता हो बना सकना असंभव है|

सामाजिक चयनो को करने के बारे में ऐरो ने बताया की ये चयन किसी धार्मिक अथवा अध्यात्मिक गुरु के द्वारा , एक तानाशाह अथवा सुपरमेन के द्वारा और प्रजातांत्रिक मतदान की विधि के द्वारा किये जा अकते है परन्तु इनके द्वारा मूल्य निर्णय करना अथवा सामाजिक (biases) के कारण संभवतः वैध (Valid) नहीं है| उन के द्वारा लागु किये गए मूल्य निर्णय समाज के चयनो को सत्य रूप में संभवतः प्रकट नहीं कर सकते

बर्गसन – सैम्युल्सन सामाजिक कल्याण फलन सुझाता है की एक व्यक्ति का कल्याण दूसरों के द्वारा नहीं बल्कि केवल उसके द्वारा वस्तुओ और सेवाओ की उपयोग की गयी मात्राओ पर पूरी तरह निर्भर है | ऐरो ने ऐसे विचार को अस्वीकार कर दिया | उनके विचार में व्यक्तियों के चयन अथवा अधिमान , उनके द्वारा उपयोग की गई वस्तुओ और सेवाओ के अतिरिक्त, विभिन्न प्रकार की सामूहिक सेवाओ जैसे सडको , पुलों, पार्को, पानी और बिजली की आपूर्ति, सफाई, पुस्तकालयों, प्रसिद्ध पुरुषों, और नारियो की प्रतिमाओ के निर्माण आदि नगरपालिका की सेवाओ पर भी निर्भर करता है | एक व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं है की वह केवल अपने स्वयं के उपभोग के आधार पर सामूहिक कार्यों से प्राप्त कल्याण का मूल्यांकन कर सके | यह व्यक्ति के अपने उपभोग और समाज में अन्य लोगो के उपभोग दोनों ही है जिन पर सामाजिक हलत के व्यक्तिगत क्रम निर्भर है | ऐरो के अनुसार एक वैध सामाजिक कल्याण फलन का निर्माण व्यक्तिगत रुचियों के आधार पर नहीं बल्कि वैकल्पिक सामाजिक हालातों के व्यक्तिगत कर्मो अथवा व्यक्तिगत मूल्यों के आधार पर किया जा सकता है |

ऐरो की शर्त्ते (Arrow's conditions)

ऐरो के अनुसार , एक स्वीकार करने योग्य सामाजिक कल्याण फलन, जिसमे सामाजिक चयन व्यक्तिगत कोटि कर्मो के द्वारा पक्ति किय गए है, तब संभव हो सकता है यदि निम्न लिखित चार शर्ते पूरी होती है|

1. सामाजिक चुनाव आवश्यक रूप से संगत (Consistent) होने चाहिए अर्थात या A स्थिति को B की अपेक्षा अधिक तथा B स्थिति को C स्थिति की अपेक्षा अधिक अधिमान प्रदान

किया जाता है तो A स्थिति C स्थिति की अपेक्षा भी अधिक अधिमान्य (Preferred) होगी |

2. समुदाय जो निर्णय किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा न थोपे जाएँ जो उस समुदाय के बहार रहते हो| वे निर्णय समुदाय के किसी एक व्यक्ति द्रव भी न थोपे जाएँ | इस प्रकार कोई भी निर्णय समुदाय के सभी सदस्यो की इच्छाओ के अनुरूप लिया जाना चाहिए अथार्त विकल्पों में चयन पैरेटो मान दंड की पूर्ति करता हो|
3. सामाजिक चुनाव किसी दिशा में अपरिवर्तित नहीं होना चाहिए अथार्त सामाजिक चुनाव विभिन्न व्यक्तियों के चुनावो के अनुरूप होने चाहिए|
4. दो विकल्पों के मध्य सामाजिक निर्णय तब तक परिवर्तित नहीं होने चाहिए जब तक की समुदाय का कोई व्यक्ति अपने उस क्रम को परिवर्तित नहीं करता है जिसमे वः अपने अधिमानो के अनुसार इन विकल्पों को क्रमबद्ध करता है | इसका तात्पर्य यह है की A तथा B दो विकल्पों के मध्य समजिक अधिमान लोगो के केवल इन्ही दो विकल्पों के सम्बन्ध में मत पर ही निर्हर रहना चहिये

ऐरो के द्वारा निश्चित ये शर्ते प्रजातांत्रिक विधि के द्वारा सामाजिक चयन करने के लिए बहुत यक्ति संगन और उचित लगती है | परन्तु ऐरो ने यह विचार प्रकट किया की बिना उपरोक्त काम से काम एक शर्त का उलंघन किये सामाजिक चयन कर सकना असंभव है |

ऐरो के सम्भावना का सार यह है की सामाजिक कल्याण फलन का निर्माण करने के लिए व्यक्तिगत चयनो से सामाजिक चयन को निर्धारित करना असंभव है | यदि व्यक्ति गत चयन संगत है तो भी प्रजातांत्रिक बहुमत वोटिंग के द्वारा असंगत हो सकता है और वः उपरोक्त शर्तोंका उलंघन कर सकता है |

ऐरो ने स्वीकार किया की यदि दो वैकल्पिक सामाजिक चयनो की सरल अवस्था डी गयी है तो स्वतंत्र मतदान अथवा बहुमत के नियम के आधार पर सामाजिक चयनो को करने ऐसा सामाजिक चयन उपलब्ध हो सकता है जो संभवत ऊपर दी गयी शर्तों के विरुद्ध ना हो | परन्तु यदि दो से अधिक विकल्प पाए जाते है तो बहुमत संभवत ऐसा सामाजिक चयन उपलब्ध करने में असफल रहे जो की उपरोक्त शर्तों में से काम से काम एक के साथ संगत न हो | दूसरे शब्दों में, व्यक्तिगत चयनो,जो स्वतंत्र मतदान के द्वारा व्यक्त किया गए है , उनके आधार पर सामाजिक कल्याण फलन का निर्माण करना तब असंभव है, जब दो से अधिक् विकल्प पाए जाते है | ऐसी परिस्थिति में सामाजिक कल्याण फलन की असम्भावना को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है |

माना की x, y तथा z ततें व्यक्तियों को A, B तथा C तीन विकल्पों में से चुनाव करना है | माना की सर्वाधिक, मध्यम तथा न्यूनतम अधिमान को वे क्रमशः3, 2 तथा 1 संख्या लिखकर व्यक्त करते है, जिस के आधार पर तीनो विकल्पों के सम्बन्ध में विभिन्न व्यक्तियों के उपर्युक्त प्रकार केअधिमान क्रम प्राप्त करते है |

	A	**B**	**C**
X	3	2	1
Y	1	3	2
Z	2	1	3

उपरोक्त सारणी को देखने से स्पष्ट होता है की X व्यक्ति A को B की ऊपेक्षा तथा B को C की अपेक्षा अधिक अधिमान प्रदान करता गई | इसी प्रकार Y व्यक्ति B को C की अपेक्षा तथा C को A की अपेक्षा अधिक अधिमान देता है इसी प्रकार Z व्यक्ति C को A की अपेक्षा तथा A को B की अपेक्षा अधिक अधिमान प्रदान करता है | इस प्रकार X तथा Z दोनों व्यक्ति A को B की अपेक्षा अधिक अधिमान प्रदान करते है | तथा X और Y दो व्यक्ति B को C की अपेक्षा अधिक अधिमान प्रदान करते है इसी प्रकार Y तथा Z दोनों व्यक्ति C स्थिति को A की अपेक्षा अधिमान्यता देते है | इस प्रकार स्पष्ट है की 3 में से 2 अर्थात बहुसंख्यक (Majority) Aको B की अपेक्षा तथा B को C की अपेक्षा अधिक अधिमान्यता देते है किन्तु बहुसंख्यक ही C को A की अपेक्षा अधिक अधिमान्यता देते है जबकी संगति परिक्षण के अनुसार यदि Aको B की अपेक्षा तथा B को C की अपेक्षा अधिक अधिमान्यता दी जाती है तो A को C की अपेक्षा अधिक अदिमंयता दी जानी चाहिए |

किन्तु उपर्युक्त स्पष्टीकरण से हमे विरोधाभास परिणाम प्राप्त होते है |

अतः एक ऐसे सामाजिक कल्याण फलन का निर्माण करना संभव नहीं है जो सभी व्यक्तिगत अधिमानो को समाविष्ट कर सके |

सामाजिक चुनाव तथा व्यक्तिगत मूल्यों की उपर्युक्त व्याख्या करने के पश्चात ऐरो न गणित तथा प्रतीकात्मक तर्क शास्त्र (symbolic logic) की सहायता से सामान्य असम्भ्वना सिद्धात का प्रतिपादन किया है जिसकी सहायता से उन्होंने व्यक्तिगत अधिमानो के आधार पर सामूहिक अधिमान का निर्माण करने को असंभव सिद्ध किया है | यह ऐरो का सामान्य असम्भ्वना सिद्धान्त है जिसकी उन्होंने निम्नं प्रकार व्याख्या की है – " यदि हम उपयोगिता की अंतव्यक्तिक तुलना को स्वीकार नहीं करते है तो व्यक्तिगत रुचियो से सामाजिक अहिमानो की और जाने की एकमात्र विधि, जो संतोषजनक श्रेणी के लिए परिभाषित होगी, या तो अध्यारोपित (imposed) अथवा अधिनाय्कीय (dictatorial) है |"

मुल्यांकन(Evaluation)

ऐरो क सामाजिक कल्याण से संबंधित प्रमेय में ऊँचे दर्जे की तार्किक सुंदरता और सामान्यता है |बौमोल(baumol) के अनुसार ," उसने यह दिखाया है की विषय वस्तु सांकेतिक तर्क की विधियों के अनुरूप है और इस प्रदर्शन के द्वारा ऐरो ने अर्थशास्त्रियों के लिए उपयोगी विश्लेषण के संयंत्रों के भण्डार में महत्वपूर्ण वृद्धि की है |" ए के सेन (A. K. Sen) अनुसार "प्रमेय पूरी तरह सामान्य है और इसी में इस की सुंदरता और महत्व स्थित है|" ऐरो का प्रमेय निःसंदेह कल्याण का महत्वपूर्ण मिल पत्थर है फिर भी निम्नं लिखित आधारों पर इसकी आलोचनाओ की जाती है-

1. **अन्तर – व्यक्तिक तुलनाएँ** – मिशान के अनुसार , एक संतोषजनक सामाजिक कल्याण फलन के लिए अपनी खोज में ऐरो ने यद्यपि माप – योग्य तुश्तिगुण और अंतर – वैयक्तिक तुलनाओ को रद्द किया फिर भी उसके बहुमत नियम के सिद्धांत में अंतर वैयक्तिक तुलनाएँ सम्मिलित है |
2. **निर्णय करने की प्रक्रिया –** डा. लिटिल के अनुसार ऐरो का सामाजिक कल्याण फलन के संबंध में नकरात्मक निष्कर्ष अथार्त सम्भाविता (Impossible) का कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कोई प्रयोग नहीं है | अतः ऐरो के फलन को सामाजिक कल्याण फलन के बजाय निर्णय करने की प्रक्रिया के रूप में साझा जाना चाहिए | इसका अभिप्राय कल्याणकारी अर्थशास्त्र की अपेक्षा राजनैतिक संस्थाओ के लिए अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक है|
3. **सामाजिक अधिमानो को निकलना**: ऐरो व्यक्तिगत अधिमानो में से सामाजिक अधिमानो को निकालने में अत्यधिक व्यस्त रहा | लिटिल और बसीन ने बताया की सामाजिक कल्याण फलन को एक अथवा अन्य व्यक्ति के अधिमानो या फिर सभी व्यक्तिगत अधिमानो को इकट्ठा लेकर परिभाषित किया जा सकता है | यदि व्यक्तिगत अधिमानो में परिवर्तन होते है तो यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है की सामाजिक कल्याण फलन को निकालना असंभव है | केवल बात यह है की व्यक्तिगत अधिमानो में परिवर्तन सामाजिक कल्याण फलन में संबद्ध परिवर्तन ला सकते है |
4. **अधिमानो की तीव्रता की उपेक्षा :** बोमेल का विचार है की यद्यपि व्यक्तिगत कर्मो के आधार पर संतोषजनक सामाजिक क्रम निर्मित करना असंभव है किन्तु इसका कारण ऐरो की मान्यताये

ही है | इस के अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक स्तरों में किसी विकल्प के चुनाव के लिए ऐरो ने केवल क्रमबद्धता को ही ध्यान में रखा है | ऐसे इच्छाओ की तीव्रता के आधार पर विभिन्न विकल्पों को भार प्रदान नहीं करता है |

5. **अनुभव दृष्टि से कमजोर :** ऐरो का प्रमेय अनुभव सिद्ध अथवा व्यवहारिक स्तर पर वेध सिद्ध नहीं हो सकता | ऐरो ने मान्यता ली थी की व्यक्ति कठोरता से अपने स्वयं के अधिमानो के अनुसार मतदान करते है| यदि एक निश्चित विकल्प को प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों के द्वारा सामरिक (strategic) मतदान किया जाता है तो मत मतदाताओ के अधिमानो को प्रकट नहीं करेंगे| इसके अतिरिक्त एसी परिस्थिति में सामाजिक कल्याण फलन का निर्माण चाहे यह वास्तविक है अथवा अवास्तविक असंभव नहीं होगा |

इस प्रकार ऐरो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र की भी अनेक दृष्टिकोणों से आलोचना की गयी , जिससे स्पष्ट हो जाता है की कल्यांकई अर्थशास्त्र के क्षेत्र में इतनी अधिक सैधांतिक तथा व्यवहारिक प्रगति होने पर भी सामाजिक कल्याण में परिवर्तन को ज्ञात कने के लिए किसी उचित मापदंड की खोज नहीं की जा सकी है | एक वास्तविक सामाजिक कल्याण फलन के अंतर्गत उन समस्त सामाजिक, धार्मिक, तथा राजनैतिक तत्वों को सम्मिलित करना है | किन्तु एक तो सामाजिक कल्याण को प्रभावित करने वाले अनेक चरो को सम्मिलित करना असंभव है तथा इसके साथ उन अनेक चरो की परिमाणात्मक माप करना भी असंभव है | अत सर्वमान्य सामाजिक कल्याण फलन का निर्माण भी असंभव प्रतीत होता है|

39.5 अभ्यास हेतू प्रश्न

(i) द्वितीय श्रेष्ठतम के सिद्धांत की स्पष्ट व्याख्या करे |

(ii) यदि सर्वश्रेष्ठ कल्याण अवस्था प्राप्त करने के योग्य नहीं है तो द्वितीय सर्वश्रेष्ठ को प्राप्त करने का प्रयत्न संबद्ध है- विवेचना कीजिये|

(iii) द्वितीय श्रेष्ठतम का क्या अर्थ है? इस किपैरेतो के कल्याण इष्टतम के संदर्भ में व्याख्या करे|

(iv) ऐरो का असम्भावना प्रमेय क्या है? इस के विरुद्ध क्या आपत्तियाँ की जाती है |

(v) ऐरो के द्वारा चयन करने के लिए क्या आवश्यक शर्ते निश्चित की गयी है?

39.6 शब्दावली

(i) पैरेटो इष्टतम

(ii) संरोधन (Constraint)

(iii) द्वितीय श्रेष्ठतम
(iv) उत्पादन सम्भावना वक्र
(v) सामाजिक चयन
(vi) वैयक्तिक मूल्य
(vii) सामाजिक कल्याण
(viii) असम्भावना प्रमेय
(ix) अधिक अधिमान्य
(x) अध्यारोपित (imposed)
(xi) अधिनायकिय (dictatorial)
(xii) अंतर वैयक्तिक तुलनाए
(xiii) सामरिक
(xiv) निर्णय लेने की प्रक्रिया
(xv) अधिमानो की तीव्रता
(xvi) संगति

39.7 कुछ उपयोगी पुस्तके

(i) J.M. Henderson and R.E.quanl, Microeconomic Theory A mathematical approach
(ii) R.G.Lipsey and Lancaster – The General Theory of second Best, Review of economic Studies vol.24(1) (1956-57)Pp 11-32
(iii) S. Charles Maurice & Own R Phillips- Economic Analysis: Theory and operations
(iv) W.J. Boumol – Economic Theory and operation Analysis
(v) Dominick Salvatore – Principals of micro Economics
(vi) Riturabjian , Micro Economics: Theory and Application
(vii) H.L. Ahuja, Advanced Economic Theory (Microeconomic Analysis)
(viii) K.N. Verma, Micro Economic Theory.